उदरचिकित्सितंनाम अष्टादशोऽध्यायः

ग्रहणीरोग चिकित्सितंनामएकोनविंशोऽध्यायः

इतिअनुक्रमणिका समाप्ता

तिब्बअकबर ।

यद्यपि बहुत से छोटे २ यूनानी ग्रंथ अबतक छप चुके हैं परन्तु ऐसा बडा और प्रतिष्ठित ग्रन्थ अब तक नहीं छपा था इस के लिये बहुत से सज्जन मनुष्यों की इच्छा थी ॥ इस में रोगों के निदान अत्यन्त अनोखे ढंग पर विस्तारपूर्वक दिये गये हैं और उसके पास ही उस रोग की चिकित्सा भी दी गई है हमारे आयुर्वेद में जैसे चरक; सुश्रुत, वाग्भटादि ग्रन्थ बहुमान्य और प्रतिष्ठित हैं उसी तरह यूनानी यह ग्रन्थ भी उच्चश्रेणी में विराजमान है—यह बात कितनी ही वार देखी गई है कि जब आयुर्वेदीय वैद्य और वडे २ डाक्टर किसी रोगमें आशाहीन होजाते हैं तब यूनानी हकीमों के छोटे २ नुस्खे तीर से अधिक काम देजाते हैं । भारतवर्ष में सहस्रों मनुष्यों की प्रकृति ऐसी बदल गई है कि यूनानी इलाज ही उनकी प्रकृति के अनुकूल पडता है । इन सब बातों को विचारकर हमने सोचा कि हमारी हिन्दी ऐसे अनुपम ग्रन्थसे सुशोभित क्यों न हो और उर्दू फारसी न पढे हुए हमारे भाई इस से क्यों वञ्चित रहें, और सब अमीर गरीब इस ग्रन्थ से समान भाग लाभ उठावें इसी हेतु से हमने इस ग्रन्थ का उर्दू से भाषानुवाद करके छापा है यह ग्रंथ मुम्बई के सुवाच्य अक्षरों में चिकने बढिया कागज पर छापा है ।आशा है कि सब हकीम वैद्य छोटे बडे अमीर गरीब शौकीन लोग इसकी एक २ प्रति अपने पास रक्खेंगे और तन्दुरुस्ती रखने के लिये अमिति लाभ उठावेंगे यह प्रायः १२५० पृष्ठ में समाप्त हुआ है की० ७) रु० डाक।।।)

बूंटीप्रचार ।

यह वैद्यकका छोटासा ग्रन्थ अपने ढंगका एकही है इसको स्वर्गवासी महात्मा महंत सुखरामदासजी ने जीवनभर अपने अनुभव किये हुए चुटकुलों से भराहै बडे से बडे और छोटे से छोटे रोगों के बहुत ही सुगम उपाय लिखे हैं यह पुस्तक प्रत्येक गृहस्थी को सदैव अपने अपने घर में रखना उचित है इसके पास होने से साधारण रोगों में वैद्य और हकीमों के पास दौडने की आवश्यकता नहीं रहेगी, इस पुस्तक को विदेशमें भी साथ रखने से मनुष्य अपना और अपने साथियों का रोग दूर कर सकता है इन सब बातों के सिवाय धातुओं के जारण मारण की विधि जंगल की जडी बूंटी द्वारा बहुतही सहज लिखी है तथा औषधि प्रस्तुत करने की प्रणाली भी विधिपूर्वक लिखी है । जिन जिन जडी बूंटियों का नाम इस पुस्तक में आया है उन सबके ऐसे सुन्दर चित्र दिये हैं मानों अक्सही खींच दिया है. ये चित्र प्रायः २०२ से अधिक हैं पुस्तक के अंतमें नागेश्वर यंत्र बालुका यंत्र मृगांगयंत्र आदिके कितने ही अद्भुत और उपयोगी चित्र दिये हैं । इस तरह सब मिलाकर यह पुस्तक प्रायः २०० पृष्ठ में सम्पूर्ण हुई है मूल्य विलायती कपडे की जिल्द का १) रु० डा० म० =)

स्मरणशक्ति, मेधा, आरोग्यता, तरुणावस्था, प्रभा, वर्णन, स्वरकी स्पष्टता, देह और इन्द्रिय गण में उत्तम बल, वाक्सिद्धि, प्रणति और कान्ति प्राप्त करता है ।

रसायन की निरुक्ति ।

लाभोपायोहिशस्तानांरसादीनांरसायनम् ।

अर्थ—रसादि उत्तम धातुओं के प्राप्त करने का यह एकमात्र उपाय है इससे इसे रसायन कहते हैं ।

वाजीकरणके लक्षण ।

अपत्यसन्तानकरंयत्सद्यःसंप्रहर्षणम् । वाजीवातिबलोयेनयात्यप्रतिहतःस्त्रियः भवत्यतिप्रियःस्त्रीणांयेनयेनोपचीयते । जीर्यतोऽप्यक्षयंशुक्रंफलवद्येनदृश्यते ॥ प्रभूतशाखःशाखीवयेनचैत्योयथामहान्। भवत्यर्च्योबहुमतःप्रजानांसुबहुप्रजः ॥ सन्तानमूलंयेनेहप्रेत्यचानन्त्यमश्नुते । यशःश्रियंबलंपुष्टिंवाजीकरणमेवतत् ॥

अर्थ—जिस के सेवन करने से बहुतसी सन्तान की उत्पत्ति होती है, जो तत्कालही आल्हाद उत्पन्न करती है, जिसके सेवन से अश्वके समान बल प्राप्त कर मनुष्य स्त्री संगम में कभी प्रतिहत नहीं होता है, जिस के सेवन से पुरुष स्त्रियों का अत्यन्त प्यारा होजाता है और बहुत पुष्ट भी होता है । जिस के सेवन से वृद्धावस्था में भी वीर्य अक्षयहोकर फलवान् होता है । जैसे बड़ा पेड़ बहुतसी शाखा प्रशाखाओं से युक्त हो कर शोभित होता है उसी तरह मनुष्य भी बहुतसी सन्तानों से युक्त होकर शोभित होजाता है । जो सन्तान की मूल कारण है उसके सेवन करने से मनुष्य अनन्त यश, श्री, बल, पुष्टि प्राप्त करता है उसेही वाजीकरण कहते हैं ॥

स्वस्थस्योजस्करन्त्वेतद्द्विविधं प्रोक्तमौषधम् । यद्व्याधिनिर्घातकरंवक्ष्यन्तेतच्चिकित्सिते ॥ चिकित्सितार्थएतावान्विकाराणांयदौषधम् । रसायनविधिश्चाग्रे वाजीकरणमेव च ॥

अर्थ—जो दो प्रकार की औषध कही है एक स्वस्थके लिये ओजस्कर दूसरी रोगनाशक । जो रोगनाशक हैं वे इस चिकित्सा स्थान में कही जांयगी, आगे रसायनविधि और वाजीकरण औषधकावर्णन किया जायगा॥

अभेषज का लक्षण

अभेषजमितिज्ञेयंविपरीतं यदौषधात् । तदसेव्यंनिषेव्यन्तुप्रवक्ष्यामियदौषधम्॥

अर्थ—जो इन औषधों से विपरीतहोती है उसे अभेषज कहते हैं, यह असेव्य अर्थात् सेवन के योग्य नहीं होती, अब इस जगह सेव्य औषधि का वर्णन किया जायगा ।

रसायन के भेद

रसायनानांद्विविधंप्रयोगमृषयोविदुः । कुटीप्रावेशिकंचैववातातपिकमेव च ॥

अर्थ—ऋषियोंने रसायनके दो प्रकार के प्रयोग वर्णन कियेहैं उन में से एक को कुटीप्रावेशिक और दूसरे को वातातपिक कहते हैं ॥

कुटीप्रावेशिक की विधि ॥

कुटीप्रावेशिकस्यादौविधिःसमुपदेक्ष्यते।

नृपवैद्यद्विजातीनांसाधूनांपुण्यकर्म्मणाम् निवासेनिर्भयेशस्तेप्राप्योपकरणेपुरे ।दिशिपूर्वोत्तरस्यान्तुसुभूमौकारयेत्कुटीम् ॥ विस्तारोत्सेधसम्पन्नांत्रिगर्भांसूक्ष्मलोचनाम् । घनभित्तिमृतुसुखांसुस्पष्टांमनसःप्रियाम् ॥ शब्दादीनामशस्तानामगम्यांस्त्रीविवर्जिताम् । इष्टोपकरणोपेतांसज्जवैद्यौषधद्विजाम् ॥

अर्थ—प्रथम कुटीप्रावेशिक की विधि वर्णन की जाती है । साधु तथा पुण्यकर्म्मा राजवैद्य और द्विजातियों के निवासस्थान में जहां किसी प्रकार का भय न हो और जो उत्तम भी हो और जहां सब प्रकार की सामग्रियां भी उपस्थित हो सक्ती हों, एक स्थान लेवै, इस स्थान के उत्तर वा पूर्वकी ओर एक अच्छी सी भूमि में एक कुटी बनवावै । कुटी खूब लम्बी चौड़ी और ऊंची होनी चाहिये, इस कुटी के बाहर तीन परकोटा होने चाहियें और इन परकोटाओं में वायुके आने जाने के लिये छोटे छोटे छिद्र भी रक्खे । कुटी की भींत मोटी होवेऔर इस में प्रत्येक ऋतुका सुख होवे अर्थात् वह कुटी ग्रीष्मऋतु में शीतल और शीत ऋतु में गरम रहै यह स्वच्छ मनोहर, कुत्सित शब्दों से रहित, स्त्री वर्जित, अभीष्ट सामग्रियों से युक्त हो और उस में वैद्य औषध और द्विजों का सदा संग रहै ॥

अथोदगयनेशुक्लेतिथिनक्षत्रपूजिते ।मुहूर्तेकरणोपेतेप्रशस्तेकृतवापनः ॥धृतिस्मृतिबलंकृत्वाश्रद्दधानः समाहितः ॥ विधूय मानसान्दोषान्मैत्रींभूतेषुचिन्तयन्॥ देवताः पूजयित्वाग्रेद्विजातींश्चप्रदक्षिणम् । देवगोब्राह्मणान्कृत्वाततस्तांप्रविशेत्कुटीम् ॥ तस्यांसंशोधनैः शुद्धः सुखीजातबलःपुनः । रसायनंप्रयुञ्जीततत्प्रवक्ष्यामिशोधनम् ।

अर्थ—पूर्वोक्त विधि से स्थान तयार करा के सूर्य के उत्तरायण काल में शुक्लपक्षके शुभ तिथि, नक्षत्र मूहूर्त्त, करण में हजामत बनवाकर, धृति, स्मृति और बल धारण करके श्रद्धायुक्त और एकाग्रचित्त होकर मानसिक दोषों को दूर करै और सम्पूर्ण प्राणियों में मैत्रीभाव स्थापनकरै, तदनन्तर प्रथम देवताओं का पूजन और फिर गोद्विजादि का पूजन करके इनकी प्रदक्षिणा कर के उस स्थान में प्रवेश करै । प्रवेश करने के पीछे संशोधन योगों से देहको शुद्धकरै फिर सुखीहोनेपर बललाभ करने के निमित्त रसायन द्रव्यों का सेवन करै ।

अब प्रथम संशोधन विधिका वर्णन किया जाता है ॥

संशोधन विधि

हरीतकीनांचूर्णानिसैन्धवामलकेगुडम् । वचांविडंगंरजनींपिप्पलींविश्वभेषजम् ॥ पिबेदुष्णाम्बुनाजन्तुःस्नेहस्वेदोपपादितः तेनशुद्धशरीरायकृतसंमार्जनायच ॥ त्रिरात्रंयावकंदद्यात्पश्चाहंवापिसर्पिषा । सप्ताहंवापुराणस्ययावच्छुद्धेस्तुवर्चसः ॥

अर्थ—हरड, सेंधानमक, आंवला , गुड, बच, वायविडंग, हल्दी, पीपल, सोंठ, इन

सबका चूर्ण गरमजल के साथ फांके परन्तु इससे पहिले स्नेहन और स्वेदन कर्म कर लेवे। जब संशोधन से देह शुद्ध होजाय तब स्नानादि करके मलकी शुद्धि के लिये तीनरात्रि तक यवागू पान करे अथवा पांच दिन तक घृतपान करे अथवा सात दिनतक पुराने चावलों का माढ लेवे ॥

शुद्धकोष्ठन्तुतंज्ञात्वारसायनमुपाचरेत्। चयप्रकृतिसात्म्यज्ञोयोगिकंयस्ययद्भवेत्

अर्थ—जब कोठा शुद्ध जान पडे तब रसायन का प्रयोग करे। रोगी की आयु, प्रकृति और सात्म्यका विचार करके जिसके लिये जैसी रसायन हितकारी हो उस को वैसीही देवे।

हरीतकी वर्णन।

हरीतकीपञ्चरसामुष्णामलवणांशिवाम् दोषानुलोमिनींलघ्वींविद्यादीपनपाचनीम् आयुष्यांपौष्टिकींधन्यांवयसःस्थापनींप-राम्। सर्वरोगप्रशमनींबुद्धीन्द्रियबलप्र-दाम्॥ कुष्ठंगुल्ममुदावर्तंशोषंपाण्ड्वामयं मदम्। अर्शांसिग्रहणीदोषंपुराणंविषम ज्वरम्॥ हृद्रोगंसशिरोरोगमतीसारमरो-चकम्। कासंप्रमेहमानाहंप्लीहानमुदरं-नवम्॥ कफप्रसेकंवैस्वर्यंवैवर्ण्यंकामलान् क्रिमीन्। श्वयथुन्तमकंछर्दिंक्लैब्यमंगाव सादनम्॥ स्रोतोविबन्धानविविधानप्र-लेपंहृदयोरसोः। स्मृतिबुद्धिप्रमोहञ्जये च्छीघ्रंहरीतकी॥

अर्थ—हरीतकी में लवणरस को छोडकर पांचारस हैं इस से इसे पंचरसाभी कहते हैं यह उष्ण लवणरस रहित कल्याण करने वाली, दोषानुलोमिनी, हलकी और दीपन पाचनभी होती है। यह हरड़ आयु की हितकारी, पुष्टिकर्त्ता, धन्य, उत्तम, वयः-स्थापन करने वाली, सर्व रोगनाशिनी, बुद्धि इन्द्रियगणऔर बलको बढानेवाली होती है तथाकोढ़, गुल्म, उदावर्त्त, शोष, पाण्डुरोग, मदरोग, अर्श, महणीदोष, पुरानाज्वर, विषमज्वर, हृद्रोग, शिरोरोग, अतीसार अरुचि, खांसी प्रमेह, आनाह,प्लीहा, नवीन उदररोग, कफप्रसेक, वैस्वर्य, विवर्णता, कामलारोग क्रमिरोग, शोथ, तमकश्वास, वमन, क्लीवता, अङ्गोंकी शिथिलता,अनेक प्रकारके स्रोतविबंध, हृदयप्रलेप, स्मरणशक्ति का नाश, बुद्धिभ्रम, इन सब को हरड़ शीघ्रही जीतलेतीहै।

हरीतकी के अयोग्य व्यक्ति।

अजीर्णिनोरूक्षभुजःस्त्रीमद्यविषकर्षिताः सेवेरन्नाभयामेतेक्षुत्तृष्णोष्णार्दिताश्चये॥

अर्थ—अजीर्णरोगी, रूक्षभोजी, स्त्रीसेवी, मद्यप, विषभक्षी, क्षुधा, तृष्णा, और उष्णतासे पीडित मनुष्यों को हरडका सेवन करना उचित नहीं है॥

आंवले के गुण।

तान्गुणांस्तानिकर्माणिविद्यादामलकी-ष्वपि। यान्युक्तानिहरीतक्यावीर्यस्यतु विपर्ययः

अर्थ—जोजो गुण और कर्म हरड़ के वर्णन किये गये हैं वेही गुण और कर्म आंवले में भी होतेहैं केवल वीर्यमें अन्तर होता है अर्थात् हरडका वीर्य उष्ण है और आंवले का शीतल।

अतःश्वामृतकल्पानिविद्यात्कर्म्मभिरीदृशैः हरीतकीनांशस्यानिभिपगामलकानिच।

अर्थ—ऊपर कहेहुये गुण और कर्मो के कारण वैद्य हरड़ और आंवलेको अमृत कल्प कहते हैं।

ओपधीनांपराभूमिर्हिमवान्शैलसत्तमः तस्मात्फलानितज्जानिग्राहयेत्कालजानि तु ॥ आपूर्णरसवीर्याणिकालेकालेयथाविधि । आदित्यपवनच्छायासलिलप्रीणितानिच ॥ यान्यजग्धान्यपूतीनिनिर्व्रणान्यगदानितु । तेपांप्रयोगंवक्ष्यामि-फलानांकर्म्मचोत्तमम् ॥

अर्थ—औषधियों के उत्पन्न होने का सर्वोत्तम स्थान हिमालयपर्वत है, इसलिये जिससमय जिस औषधके लानेकी इच्छा हो उसे वहीं से लावै। समय समय पर विधि पूर्वक ऐसी औपधों को लावे जो रस और वीर्य से परिपूर्ण हों, सूर्य की धूप वायु छाया और जल के संसर्ग से अच्छी तरह फूली हों, जो अजग्ध हों अर्थात् जिनको कोई पशु न चरगया हो (अजग्धकी जगह अदग्ध पाठ भी है = बिना जलीहुई), बिनागली खोखलों तथा रोगों से रहित हों। अब हम उन औपधों के उत्तम २ प्रयोग फल और कर्मोका वर्णन करेंगे।

ब्राह्म रसायन ।

पञ्चानांपञ्चमूलानांभागान्दशपलोन्मितान्। हरीतकीसहस्रञ्चत्रिगुणामलकंनवम् विदारिगन्धांबृहतींपृश्निपर्णींनिदिग्धिकाम् विद्याद्विदारिगन्धाद्यंश्वदंष्ट्रापञ्चमङ्गणम्। बिल्वाग्निमन्थश्योनाककाश्मर्य्यमथपाटलाम्। पुनर्नवासूर्पपर्ण्यौबलामैरण्डमेवच जीवकर्षभकौमेदांजीवन्तींसशतावरीम् । शरेक्षुदर्भकासानांशालीनांमूलमेवच ॥ इत्येपांपञ्चमूलानांपञ्चानामुपकल्पयेत् भागान्यथोक्तांस्तत्सर्वंसाध्यंदशगुणेऽम्भसि ॥ दशभागावशेपन्तुपूतन्तद्ग्राहयेद्रसम् । हरीतकीश्चताःसर्वाःसर्वाण्यामलकानिच॥ तानिसर्वाण्यनस्थीनिफलान्यापोथ्यकूर्चनैःविनीयतस्मिन्निर्यूहेचूर्णानीमानिदापयेत् ॥ मण्डूकपर्ण्याः पिप्पल्याःशंखपुष्प्याःप्लवस्यच। मुस्तानां सविडङ्गानांचन्दनागुरुणोस्तथा॥मधुकस्यहरिद्रायावचायाःकनकस्यच । भागांश्चतुष्पलान्कृत्वासूक्ष्मैलायास्त्वचस्तथा। सितोपलासहस्रन्तुचूर्णितन्तुलयाधिकम् तैलस्यद्व्याढकंतत्रदद्यात्त्रीणिचसर्पिषः ॥ साध्यमौदुम्बरेपात्रेतत्सर्वंमृदुनाग्निना। ज्ञात्वालेह्यमदग्धञ्चशीतंक्षौद्रेणसंसृजेत् क्षौद्रप्रमाणंस्नेहार्द्धंतत्सर्वंघृतभाजने ॥ तिष्ठेत्संमूर्च्छितंतस्यमात्रांकालेप्रयोजयेत् यानोपरुन्ध्यादाहारमेकंमात्राजरांप्रति ॥ षष्टिकःपयसाचात्रजीर्णेभोजनमिष्यते । वैखानसावालखिल्यास्तथाचान्येतपोधनाः ॥ रसायनमिदंप्राश्यवभूवुरमितायुपः । मुक्त्वाजीर्णंवयश्चाग्र्यमवापुस्तरुणंवयः ॥ वीततन्द्राक्लमाश्वासानिरातङ्काः समाहिताः । मेधास्मृतिबलोपेताश्चिररात्रंतपोधनाः ॥ब्राह्मंतपोब्रह्मचर्य्यंचेरुश्चात्यन्तनिश्चयाः ।रसायनमिदंब्राह्म

रम्भःपरमायुरवाप्नुयादिति ॥

अर्थ—हरड, आंवला, वहेड़ा, पांचोंपंच मूलका काथ, पीपल, शहत, मुलहठी, काकोली, क्षीरकाकोली कैंच, जीवक, ऋषभक, और क्षीरविदारी इन सवका कल्क और दूध, दूध से आठगुना विदारी कंदका रस मिलाकर इन सव को सर्पिष्कुम्भ अर्थात् बत्तीस सेर घृत में पकावै। इस घृतकी मात्रा का प्रयोग अग्नि वलके समान करै।औषध के पचने पर दूध और घी के साथ साठी चांवलों को खाय ऊपर से उष्णोदक पान करै। इस घृत के सेवन करने से बुढापा रोग, पाप, अभिचार और भय दूर होकर अतुल शारीरिक और इन्द्रिय वलकी प्राप्ति होगी सम्पूर्ण प्रकार के कामोंमें हतोत्साह न होगा और आयु भी दीर्घ होगी।

हरीतक्यादिरसायनका दूसराप्रयोग

हरीतक्यामलकविभीतकहरिद्रास्थिरावचाविडङ्गामृतवल्लीविश्वभेषजमधुकपिप्पलीसोमवल्कसिद्धेनक्षीरसर्पिषामधुशर्कराभ्यामपिचसन्नीयामलकस्वरसशतपलपीतमामलकचूर्णमयःचूर्णचतुर्भागसम्प्रयुक्तंपाणितलमात्रम्प्रातःप्रातःप्राश्ययथोक्तेनाविधिनासायंयूषेणपयसावासर्पिष्कं शालिपष्टिकमश्नीयात्।त्रिवर्षप्रयोगादस्य वर्षशतमजरंवयस्तिष्ठतिश्रुतमवतिष्ठतेसर्वामयाःप्रशाम्यन्तिविषमविषंभवतिगात्रे गात्रमश्मवत्स्थिरीभवतिअदृश्योभूतानां भवतीति ॥

अर्थ—हरड, आंवला, वहेड़ा, हल्दी, शालपर्णी, वच, वायविडंग, गिलोय, सोंठ, मुलहटी, पीपल, सफेद खैर इनके साथ दूध और घीको सिद्ध करै। जब यह ठंढाहोजाय तव इसमें घी और खांड मिलादे। तदनन्तर इसमें स्वरसपीत (आंवलेके रसमें भावना दिये हुये) आंवले का सौपल चूर्ण पच्चीस पल लोहचूर्ण मिलावै। पूर्वोक्त विधिके अनुसार हथेली भर अर्थात् दो तोले प्रतिदिन प्रातः काल सेवन करै। सायंकालके समय मांसयूप और दूध के साथ घृत मिलाहुआ साठीचावलों का भातखाय। इस रसायनका तीनवर्ष पर्य्यन्त सेवन करने से आयु सौ वर्षकी होजाती है और बुढापा पास नहीं आता है। सुनीहुई बातबहुत दिवसतक विस्मृत नहीं होती है। सम्पूर्ण रोग शान्त होजातेहैं विषनष्ट होजाताहै। देहमें पत्थरके समान दृढता होजातीहै, प्राणियोंमें अदृश्य हो जाताहै अर्थात् ऐसा हृष्ट पुष्ट होजाता है कि आदमियों की उसपर निगाह नहीं ठहरतीहै

प्रथम पाद का उपसंहार

यथामराणाममृतंयथाभोगवतांसुधा।
तथाभवन्महर्षीणांरसायनविधिःपुरा॥
नजरांनचदौर्वल्यन्नातुर्यन्निधनंनच।
जग्मुर्वर्षसहस्राणिरसायनपराःपुरा।
नकेवलंदीर्घमिहायुरश्नुते, रसायनंयोविधिवन्निषेवते। गतिंसदेवर्षिनिषेवितांशुभांमपद्यतेशर्मतथेतिचाक्षयमिति॥

अर्थ—जैसे देवताओं को अमृत, सर्पों को सुधा थे वैसेही प्राचीन समयमें ऋषियों

के लिये रसायन विधि थी । पूर्वकाल में रसायन सेवन करने वालों के पास सहस्र वर्ष पर्य्यन्त बुढ़ापा, दुर्बलता, रोग और मृत्यु नहीं आते थे ।

जो मनुष्य विधिपूर्वक रसायन सेवन करता है उसको केवल दीर्घायुही नहीं मिलती है, किन्तु उसे देव और ऋषि गण सेवित शुभगति और अक्षयकल्याण अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

अभयामलकीयेऽस्मिन्पड्योगाःपरिकीर्तिताः । रसायनानांसिद्धानामायुर्यैरनुवर्तते ॥

अर्थ—अभयामलकीयाध्याय के इस प्रथम पाद में छः रसायन प्रयोगों का वर्णन किया गया है, इन सिद्ध रसायनों के सेवन से दीर्घायु मिलती है ।

चिकित्सितेऽभयामलकीयोरसायनपादः प्रथमः

द्वितीयः पादः।

अथातःप्राणकामीयंरसायनपादंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम प्राणकामीयनामक रसायन पाद की व्याख्या करेंगे ।

रसायन की प्रशंसा ।

प्राणकामाःशुश्रूषध्वमिदमुच्यमानममृतमिवापरमदितिसुतहितकरमचिन्त्याद्भुतप्रभावमायुष्यमारोग्यकरंवयसःस्थापनंनिद्रातन्द्राश्रमक्लमालस्यदौर्बल्यापहमनिलकफपित्तसाम्यकरं,स्थैर्यकरमवद्धमांसहरं,अन्तरग्निसन्धुक्षणं, प्रभावर्णोत्तमस्वरोत्तमकरं,रसायनविधानमनेनच्यवनादयोमहर्षयःपुनर्युवत्वमापुःनारीणांचेष्टतमावभूवुः।स्थिरसमसुविभक्तमांसाःसुसंहतस्थिरशरीराःसुप्रसन्नबलवर्णेन्द्रियाःसर्वत्रामतिहतपराक्रमाःक्लेशसहाश्च।

अर्थ—हे प्राणों को चाहनेवाले इसअमृतरूप रसायन कथा का श्रवण करो । यह अदितिसुत देवताओं को भी हितकारी होती है, इसका प्रभाव अचिन्त्य और अद्भुत है, यह आयुको बढानेवाली, आरोग्यता करनेवाली; वयःस्थापनकर्त्ता, निद्रा, तन्द्रा, श्रम, क्लम, आलस्य और दुर्बलता को दूर करनेवाली होती है, वात पित्त कफ इन तीनों दोषों की समानता करती है, शरीर को दृढ करती है, मांस के ढीलापन को दूर करती है, जठराग्निको बढाती है प्रभा, वर्ण और स्वरको उत्कृष्ट करती है, रसादि धातुओंकी उत्कर्षता करती है । इस रसायन के सेवन से च्यवन से आदि लेकर बहुत से ऋषि बुड्ढेसे जवान होगये हैं । नारियों में अधिक हर्षयुक्त हुए हैं । उन के शरीर का मांस दृढ़, समान और सुडौल होगया है । उन के शरीर सुसंहत और दृढ़ होगये हैं, उन के बल, वर्ण और इन्द्रियगण प्रफुल्लित होगये हैं । किसीजगह उन के पराक्रम का पराभव नहींहुआ है और वे परिश्रम के कामों को सहनेवाले भी होगये हैं ।

मात्रांपौर्वाह्निकःप्रयोगः । सात्म्यापेक्षः चाहारविधिनापराह्निकस्तस्यप्रयोगाद्वर्षशतमजरंवयस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वेण ॥

अर्थ—एक सहस्र आंवले और इतनीही पीपल लेकर ढाक के क्षारजलमें ऐसे भिजो देवै कि वे सब डूब जांय, जब वे खार के सब जलको पीलें तब उन्हें छाया में सुखा लेवै, फिर गुठलियां निकालकर पीस ले, इस चूर्ण में चौगुना घी और शहत मिलावे और चौथाई खांड डालदे इन सब को सानकर घी की चिकनी हांडी में भरकर छः महीने तक पृथ्वी में गाडदेवै । तदुपरान्त इसे निकालकर अग्निबल के अनुसार प्रतिदिन प्रातःकाल इसका सेवन करे । अपरान्ह में सात्म्य भोजन करे । इस रसायन के सेवन करने से वृद्धावस्था से रहित सौवर्ष की आयु होजाती है तथा इसके अन्यगुण पूर्वोक्त घृत के समान हैं

आंवले का चूर्ण ।

आमलकचूर्णाढकमेकविंशतिरात्रमामलकसहस्रस्वरसपरिपीतंमधुघृताढकाभ्यां द्वाभ्यामेकीकृतमष्टभागपिप्पलीकंशर्करा चूर्णचतुर्भागसम्प्रयुक्तंघृतभाजनस्थंमात्रपिभस्मराशौनिदध्याद्वर्षान्तेसात्म्यापेक्षिप्रयोजयेदस्यप्रयोगाद्वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वेण ।

अर्थ—आंवले के एक आढक चूर्ण को सहस्र आंवले के रस में इक्कीस दिन तक भिजो रक्खे । फिर इस में एक २ आढक शहत और घृत मिलाकर सानले फिर इस में आठवां भाग पीपल और चौथाई खांड डालकर सबको मिलाले और घी की हांडी में भरकर वर्षाऋतु में राख के ढेर में दाब देवै वर्षा व्यतीत होने पर इसका मात्रा के अनुसार सेवन करे, सात्म्य भोजन करे । इस चूर्ण के सेवन करने से वृद्धावस्था रहित सौ वर्षकी आयु होजाती है, इस के गुण भी पूर्वोक्त रसायन के समान होते हैं ।

विडङ्गावलेह ।

विडंगतण्डुलचूर्णानामाढकम्पिप्पलीतण्डुलानामध्यर्द्धाढकंसितोपलायाः सर्पिस्तैलमध्वर्द्धाढकं षड्भिरेकीकृतघृतभाजनस्थंमाप्रापिभस्मराशावितिसमानंपूर्वेण यावदाशीः ॥

अर्थ—वायविडंग की मिंगी का चूर्ण एक आढक, पीपलकी मिंगी का चूर्ण एक आढक, मिश्री आधाआढक, घृत आधा आढक, तैल आधा आढक, और शहत आधा आधाआढक, इन छःओंको मिलाकर घी की हांडी में भरकर प्रावृट्ऋतु में राख के ढेर में गाडदेवै । इसके गुण भी पूर्वोक्त रसायन के समान हैं ।

आंवलोंका दूसरा अवलेह ।

यथोक्तगुणानामामलकानांसहस्रमार्द्रपलाशद्रोण्यांसपिधानायांबाष्पमनुद्वमन्त्यामारण्यगोमयाग्निभिरुपस्वेदयेत् । तानिसुस्विन्नशीतानिउद्धृतकुलकान्यापोथ्याढकेनपिप्पलीचूर्णानामाढकेनचाविडंगतण्डुलचूर्णानामध्यर्धेनचाढकेनशर्कराचूर्णानां द्वाभ्यांद्वाभ्यामाढकाभ्यांतैलस्यमधुनःस

पिप्पलीकणकसंयोज्यशुचौदृढेघृतभाविते कुम्भेस्थापयेदेकविंशतिरात्रमतऊर्द्ध्वंप्रयोगः तस्यप्रयोगाद्वर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीति समानं पूर्वेण ॥

अर्थ—सुभूमिजातानामित्यादि पूर्वोक्त गुणसम्पन्न एक सहस्र आंवले लेकर पीले पलास की द्रोणी (हांडी संदूक) में बन्द कर के ऐसी तरह से ढकदेवे कि उस मेंसे भाफ न निकल सके, फिर उस द्रोणी के चारोंओर आरने ऊपलों की आग ऐसी रीति से जलावे कि द्रोणी को भवका तौ लगै पर जलै नहीं । इस आगकी तेजी से आंवले सीज जांयगे । उनको निकालकर ठंढा कर के गुठली निकाल डाले और उन्हें पीस लेवै फिर इस में एक आढ़क पीपलका चूर्ण, एक आढक वायविडंग का चूर्ण, डेढ़ आढक शर्करा, तथा दो दो आढ़क तेल, शहत और घी इन सबको मिलाकर एक स्वच्छ दृढ घृत की हांडी में भरकर इक्कीस दिन तक धरा रहने दे फिर प्रयोग करै । इस औषध के प्रयोग करने से सौ वर्ष की आयु होती है शेष गुण पूर्वोक्त रसायन के समान हैं ।

नागवला रसायन ।

धन्वनिकुशास्तीर्णेस्निग्धकृष्णमधुरमृत्तिकेसुवर्णवर्णमृत्तिकेवाव्यपगतविषश्वापदपवनसलिलाग्निदोषेकर्षणवल्मीकश्मशानचैत्योषररसवर्जितेदेशेयथर्तुसुखपवनसलिलादित्यसेवितेजातामनिम्नेऽनुपहतामनध्यारूढामबालामजीर्णामधिगतवीर्यामशीर्णपुराणपर्णामसञ्जातान्यपर्णान्तपासितपस्येवामासेशुचिःप्रयतःकृतदेवार्चनःस्वस्तिवाचयित्वाद्विजातीन्सुमुहूर्तेनागवलांमूलतउद्धरेत् । तेषांसुप्रक्षालितानांत्वक्पिण्डमाम्रमात्रमक्षमात्रंवाश्लक्ष्णपिष्टमालोड्यपयसामातःप्रयोजयेत्चूर्णीकृतानिवापिबेत्पयसामधुसर्पिर्भ्यांवासंयोज्यभक्षयेत् । जीर्णेचक्षीरसर्पिर्भ्यांशालिषष्टिकमश्नीयात् । संवत्सरप्रयोगादस्यवर्षशतमजरमायुस्तिष्ठतीतिसमानंपूर्वेणेतिनागवलारसायनम् ॥

अर्थ—माघ वा फाल्गुन के महीने में स्नानादि से पवित्र होकर देवताओं का पूजन करके ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन करा के शुभ मुहूर्त में ऐसी नागवला को जडसे उखाड लावै जो धन्वन देश के ऐसे स्थान में उत्पन्न हुई हों जहां बहुतसी कुशा उत्पन्न हो, जहां की मिट्टी चिकनी काली, मधुर या पीली हो जहां सेह जानवर न रहता हो, जहां विषदोष वातदोष जल दोष या अग्निका उपद्रव न हो जहां खेती, सांपकी बांबी, श्मशान, चैत्य (वालिभूमि) और ऊपर भूमि न हो, जहां प्रत्येक ऋतु मे सुखदायक हवा जल और धूप आती जातीहो जो निम्न स्थानमें उत्पन्न हुई हो जो अनुपहत हो अर्थात् किसी कीडे ने न खाई हो, जो अनध्यरूढाहो अर्थात् जिस पर और कोई पौदा आदि न उगा हो, जो न नवीन और न पुरानीहो हो, जो पूर्णवीर्य हो जिसके पत्ते पुराने या

गलेहुए न हों, जिसमें अन्यपत्ते न आये हों इस नागबलाकी जडको खूब धोकर पीसडाले इसमें दो या चार तोले दूध मिलाकर प्रातःकाल पान करे अथवा फंकी लेकर ऊपरसे घी और शहत मिलाहुआ दूध पानकरै। इस औषधके पचने पर दूध और घी के साथ शालीचांवल या साठी चांवल का भातखाय एक वरसतक इसका सेवन करने से सौ वर्षकी आयु होजाती है,इसके शेषगुण पूर्वोक्त रसायन के सदृश हैं। यह नागबलारसायन है।

बलातिबलाचन्दनागुरुधवतिनिशखदिरशिंशपासनस्वरसाःपुनर्नवान्ताश्चौषधयो दशयेवयःस्थापनव्याख्यातास्तेषांस्वरसानागबलावत्स्वरसानामलाभेत्वयंस्वरसविधिःचूर्णानामाढकमाढकमुदकस्याहोरात्रस्थितंमृदितपूतंस्वरसवत्प्रयोज्यम्

अर्थ—बला अतिबला, चन्दन, अगर,धौ, तिनिश, खदिर शीशम, असन, तथा पुनर्नवान्त ये दस औषधें वयः स्थापन गणमें वर्णन की गई हैं, इन सबका रस नागबलाके सदृश पान करनेसे नागबला के समान गुण कारक होताहै। जो स्वरस न निकलसके तो एक आढक चूर्णलेकर चतुर्गुण जलमें एक रात दिन भिजोदेवै पीछे उन को हाथसे मलकर छान इनका स्वरस के सदृश प्रयोगकरै

भल्लातकी क्षीररसायन

भल्लातकान्यनुपहतान्यनामयान्यापूर्णरसप्रमाणवीर्याणिपक्वजाम्बवप्रकाशानि शुचौशुक्रेवामासेसंगृह्ययवपल्वेमाषपल्वे वानिधापयेत्। तानिचतुर्मासस्थितानि सहसिसहस्येवामासेप्रयोक्तुमारभेत ॥ शीतस्निग्धमधुरोपस्कृतशरीरःपूर्वन्दशभल्लातकान्यापोथ्याष्टगुणेनाम्भसासाधयेत्। तेषांरसमष्टभागावशिष्टंपूतंसपयस्कम्पिबेत्सर्पिषान्तर्मुखमभ्यज्यतान्येकैकभल्लातकोत्कर्षापकर्षेणदशभल्लातकान्यात्रिंशतःप्रयोज्यानि ॥ नातःपरमुत्कर्षःप्रयोगविधाननसहस्रपरोभल्लातकप्रयोगः। जीर्णेचसर्पिषापयसाशालिषष्टिकाशनमुपचारःप्रयोगान्तेचद्विस्तावत्पयसैवोपचारःतत्प्रयोगाद्वर्षशतमजरंवयस्तिष्ठतीतिसमानपूर्वेणेति भल्लातकीक्षीरम् ॥

अर्थ—अनुपहत, रोग रहित, पूर्णप्रमाण पूर्णवीर्य्य, पकीहुई जामनके सदृश कृष्णवर्ण भिलाये आषाढ मासके शुक्लपक्षमें लाकर जौके ढेर वा उडद के ढेर में गाढदेवै और चार महीने पीछे निकालकर अगहन वा पौष के महीनेमें इनका प्रयोग करनाप्रारम्भ करै। भिलाये सेवन करनेसे पहिले शीतल, स्निग्ध और मधुर द्रव्यों से शरीर का संशोधन करै! प्रथमही दस भिलायों को पीसकर अठगुने जल में सिद्ध करै जब जल जलते २ आठवें भाग रह जाय तब उसे छानकर दूधके साथ पान करै! भिलायों के सेवन करने से पहिले मुख के भीतर घी चुपड लेवै! इन दस भिलायों को एक २ के बढानेसे तीस तक सेवन करे। और

फिर एक २ घटाकर दसतक आजाय। यह एक सहस्र भिलायेका सर्वोत्कृष्ट प्रयोग इस तरह है कि प्रथम एक भिलायेसे एक २ की वृद्धिद्वारा दस पर्य्यन्त सेवन करै फिर एक एक घटाकर एक तक सेवन करै इस नरह सब मिलकर १०० भिलाये हुए, जब ये पच जांय और किसी प्रकारका उपद्रव न करें तव एकसे लेकर तीस तक बढाता जाय, ये सब चारसौ पैंसठ हुए और फिर एक एक घटाने लगै अर्थात् २९ से लेकर एक तक ले आवै ये सब चार सौ पैंतीस हुए इसतरह ९९+४९+४६९×४३९ सब मिलकर पूरे एक सहस्र हुए। जब भिलाया पचजाया करै तब दूध और भातका सेवन करै, इसी तरह सहस्र भिलावेके प्रयोगके पीछे सायंकाल और प्रातःकाल दूध भातही का सेवन करता रहै। इस प्रयोगसे सौ वर्ष पर्य्यन्त बुढापा पास नहीं आता है, इस के दोष गुण पूर्वोक्त रसायनों के समान हैं, यह भल्लातकी क्षीर का प्रयोग है।

भल्लातकमधु।

भल्लातकानाञ्जर्जरीकृतानांपिष्टस्वेदनं पूरयित्वाभूमावाकण्ठन्निखातस्यस्नेहभावितस्यदृढस्योपरिकुम्भस्यारोप्योडुपेना पिधायकृष्णमृत्तिकावलिप्तंगोमयाग्निभिरुपस्वेदयेत्तेपांयःस्वरसःकुम्भंप्रपद्येततम ष्टभागमधुसम्प्रयुक्तंद्विगुणघृतमद्यात्। तत्प्रयोगाद्वर्षशतमजरंवयस्तिष्ठतीतिसमानंपर्वेण ॥

अर्थ—भिलायोंको शुद्ध करकेकूट डालै फिर एक चिकनी हांडीमें भरै जिसके तले मे तीन चार छोटे छोटे छिद्र हों और उस के ऊपर एक सरवा ढक देवै इस हांडी का मुख काली चिकनी मिट्टीसे वन्द कर दे, इस हांडी के नीचे एक और चिकनी हांडी लगाकर नीचेकी हांडी के मुख और ऊपरकी हाडी के पैंदे को भी चिकनी मिट्टीसे वन्द करदे इन हांडियों को कंठ पर्य्यन्त पृथ्वीमें गाढकर उपलों की आग चारों ओर लगा दे जब ऊपर की हांडीमेंसे रस टपक टपककर नीचे की हांडीमें आजाय तब उसे निकाल ले। इस रसका आठवां भाग शहत और दुगुना घृत डालकर सेवन करै। इसभल्लातकमधु के सेवन करनेसे पूर्ववत् सौ वर्ष पर्य्यन्त बुढापा पास नहीं आता है ॥

भल्लातक तैल ॥

भल्लातकतैलपात्रंसपयस्कंमधुकेनकल्केनाक्षमात्रेणशतपाकंकुर्य्यात्समानंपूर्वेण ॥

अर्थ—भिलाये का तेल एक आढक लेकर दूध और मुलहटी के साथ सौवार पाक करके अक्षमात्र प्रतिदिन सेवन करै तो पूर्वोक्त रसायनों के समान गुणप्रद होवै

भिलाये के अन्य प्रयोग।

भल्लातकक्षीरं, भल्लातकक्षौद्रंभल्लातकतैलमेवंगुडभल्लातकंभल्लातकयूपोभल्लातकसर्पिर्भल्लातकपललंभल्लातकसक्तवोभल्लातकलवणम्भल्लातकतर्पणमितिभल्लातकविधानमुक्तंभवतीति ॥

अर्थ—भल्लातकक्षीर, भल्लातकमधु, भल्लातकतैल और इसीतरह गुडभल्लातक, भल्लातकयूप, भल्लातकसर्पि, भल्लातकपलल, भल्ला-

तकसक्तु, भल्लातकलवण, और भल्लातक तर्पण येदस प्रकार की रसायन होती हैं ॥

द्वितीय पादका उपसंहार ।

भवतिचात्र । भल्लातकानितीक्ष्णानि पाकीन्यग्निसमानिच । भवन्त्यमृतकल्पा निप्रयुक्तानियथाविधि ॥ एतेदशविधा स्त्वेषांप्रयोगाःपरिकीर्तिताः ।रोगप्रकृति सात्म्यज्ञस्तान्प्रयोगान्प्रयोजयेत् ॥ कफजोनसरोगोऽस्तिनविबन्धोस्तिकश्चन। यन्नभल्लातकंहन्यात्शीघ्रंमेधाग्निवर्धनम्। प्राणकामाःपुराजीर्णाश्च्यवनाद्यामहर्षयः रसायनैः शिवैरेतैर्बभूवुरमितायुषः ॥ ज्ञानन्तपोब्रह्मचर्यमध्यात्मंध्यानमेवचादीर्घायुषोयथाकामंसंभृत्यत्रिदिवंगताःतस्मादायुःप्रकर्षार्थंप्राणकामैःसुखार्थिभिः। रसायनविधिःसेव्योविधिवत्सुसमाहितैः॥

अर्थ—भिलाये अग्नि के समान तीक्ष्ण और पाचक होते हैं यदि यथारीति से इनका प्रयोग किया जाय तौ ये अमृत के समान गुणदायक हैं ॥ भिलाये के ये दस प्रयोग वर्णन किये गये हैं । रोग प्रकृति और सात्म्य के अनुसार इनका प्रयोग करे । कोई ऐसा कफज और विबन्ध रोग नहीं है जो भिलाये से दूर न होता हो, प्राचीनकाल में जीने की इच्छा करने वाले वृद्ध च्यवनादिक महर्षियों ने इन कल्याणकारक रसायनों का सेवन किया था और दीर्घायु होगये थे । इन महर्षियों ने अमित ज्ञान,तप,ब्रह्मचर्य्य, अध्यात्मज्ञान, ध्यान और दीर्घायु प्राप्त करके अन्तमें स्वर्गलाभ किया था- अतएव जो कोई प्राणकामी और सुखार्थी अपनी आयुको बढाना चाहे उसे उचितहै कि ध्यानपूर्वक विधिवत् रसायनों का सेवन करे ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन

रसायनानांसंयोगाःसिद्धाभूतहितैषिणा निर्दिष्टाः प्राणकामीयेसप्तदशमहर्षिणेति

अर्थ—प्राणियों में हित रखनेवाले भगवान् पुनर्वसु ने रसायनों के ये सत्रह प्रयोग इस प्राणकामीयाध्याय में वर्णन किये हैं ।

प्राणकामीयोनाम द्वितीयः पादः समाप्तः ॥

—=÷):* X *:(÷=—

तृतीयः पादः

अथातःकरप्रचितीयंरसायनपादंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम करप्राचितीय नामक तृतीय पादकी व्याख्या करते हैं ॥

आमलकायसरसायन ॥

करप्रचितानांयथोक्तगुणानामामलकानामुद्धृतास्थ्नांशुष्कचूर्णितानांपुनःमाघेफाल्गुनेवामासौत्रिःसप्तकृत्वःस्वरसपरिपीतानांपुनःशुष्कचूर्णीकृतानामाढकमेकंग्राहयेत् ॥अथजीवनीयानांबृंहणीयानांस्तन्यजननानांशुक्रवर्द्धनानांवयःस्थापनानांषड्विरेचनशताश्रितीयोक्तानामौषधानां चन्दनागुरुधवतिनिशखदिरशिंशपासन साराणाञ्चाणुशश्च्छिन्नानांक्षिप्तानां ... याभिभीतकपिप्पलीवचाचव्यचित्रकवि-

म्भसासाधयेत् । तस्मिन्नाढकावशेषेरसे सुपूतेतान्यामलकचूर्णानिदत्वागोमयाग्नि भिर्वंशविदलशरतेजनाग्निभिर्वासाधयेत् यावदुपनयाद्रसस्यतमनुपदग्धमुपहृत्याय सीषुपात्रेष्वास्तीर्यशोषयेत् । सुशुष्कंकृष्णाजिनस्योपरिदृषदिश्लक्ष्णपिष्टमयः स्थाल्यान्निधापयेत्सम्यक्। तच्चूर्णमयी श्चूर्णाष्टभागसम्प्रयुक्तंमधुसर्पिर्भ्यामाग्नि- वलमभिसमीक्ष्यप्रयोजयेदिति ॥

अर्थ—पूर्वोक्तगुण सम्पन्न आंवलों को माघ या फागुनके महीने में हाथसे तोडकर लावे और उनकी गुठली निकालकर छोटे२ टुकडे करले फिर आंवलों के रस की इक्कीस भावना देकर सुखाकर फिर चूर्ण करके एक आढक तयार कर लेवे । पीछेपड्विरेचनशताश्रितीय अध्याय में कहे हुए जीवनीय, बृंहणीय, स्तन्यजनन, शुक्रवर्द्धन और वयःस्थापनगणोक्त औषधों को लेकर छोटे २ टुकडे करके एक पात्रमें रख ले और उसी में चन्दन, अगर, धौ, खैर, शीशम और असन इनका सार लेवै तथा हरड़, बहेड़ा, पीपल, बच, चव्य, चीता वायविडंग इन सब औषधियों को तोल में एक आढक लेवै और दसगुने जलमें चढा कर सिद्ध करलेवै जब एक आढक रस शेष रहजाय तबउसे छानकर पूर्वोक्त आंवलेका चूर्ण डालकर ऊपले, बांसकी लकडी या सरकंडे की आग से धीरे धीरे पकावे, जब रस न रहै और जलने भी न पावे इसे अग्नि पर से उतार कर एक लोह के पात्र में फैलाकर सुखा लेवै । फिर काले मृग के चर्म पर एक शिला बिछाकर इसे बारीक पीसकर एक लोहेके पात्रमें भरकर रख देवै । इस चूर्णमें अष्टमांश लोह चूर्ण मिलाकर घी और शहत के साथ अग्निवल के अनुसार प्रतिदिन सेवन करै ।

अमलकायसरसायनकेगुण ।

एतद्रसायनंपूर्ववसिष्ठःकश्यपोऽङ्गिराः । जमदग्निर्भरद्वाजोभृगुरन्येचतद्विधाः॥प्रयुज्यप्रयताम्मुक्ताःश्रमव्याधिजरामयात्॥या वदिच्छन्तपस्तेपुःतत्प्रभावान्महाबलाः॥ तपसाब्रह्मचर्येणध्यानेनप्रशमेनच । रसायनविधानेनकालयुक्तेनचायुषा ॥ स्थितामहर्षयःपूर्वनहिकिञ्चिद्रसायनम्॥ग्राम्याणामन्यकार्याणांसिद्धिश्चप्रयतात्मनाम्॥ इदंरसायनश्चक्रेब्रह्मावार्षसहस्रिकम्। जराव्याधिप्रशमनंबुद्धीन्द्रियबलप्रदम्॥

अर्थ—बहुत पुराने समय में इसरसायन को वशिष्ठ, काश्यप, अंगिरा, जमदग्नि, भरद्वाज,भृगु तथा अन्यान्य वैसेही बहुत से ऋषियों ने नियमित रीति से सेवन किया था, इस के सेवन करने से वे, श्रम व्याधि, जरा और अन्य रोगों से मुक्त होकर महाबली होगये थे और इसके प्रभाव से स्वेच्छापूर्वक तप करते रहे । तप, ब्रह्मचर्य्य, ध्यान, शान्ति और रसायन प्रयोगों के द्वारा जो आयुकी वृद्धि होती है उसपर कुछ प्रभुत्व नहीं होता है पहिले महर्षियों ने कोई रसायन सेवन नही कीथी । ग्राम्य, धर्म, अन्यकार्य तथा अजितेन्द्रियतामें भी अनुरक्त

होने से उनकी सिद्धि नहीं होसक्ती है। यह सहस्रवार्षिकी रसायन ब्रह्माने बनाई है इस के सेवन करने से बुढापा और रोग शान्त होजातेहैं तथा बुद्धिबल और इन्द्रियबल बढ़ताहै॥

केवल आमलकरसायन।

संवत्सरंपयोवृत्तिर्गवांमध्येवसेत्सदा। सावित्रीमनसाध्यायन्ब्रह्मचारीजितेन्द्रियः॥
संवत्सरान्तेपौषींवामाघींवाफाल्गुनींतथा। त्र्यहोपवासीशुक्लस्यमविश्यामलकीवनम्॥
बृहत्फलाढ्यमारुह्यद्रुमंशाखागतंफलम्॥ गृहीत्वापाणिनातिष्ठेज्जपन्ब्रह्मामृतंक्षणम्॥
तदाह्यवश्यममृतंवसत्यामलकेक्षणम्। शर्करामधुकल्पानिस्नेहवन्तिमृदूनिच॥
भवन्त्यमृतसंयोगात्तानियावन्तिभक्षयेत्॥ जीवेद्वर्षसहस्राणितावन्त्यागतयौवनः॥
सौहित्यमेषांगत्वातुभवत्यमरसन्निभः॥ स्वयंचास्येपतिष्ठन्तिश्रीर्वेदावाक्यरूपिणी॥

अर्थ—एक वर्ष पर्य्यन्त केवल दूध पीकर गौओंके बीच में रहैं, मनमें सावित्रीका ध्यान करता हुआ ब्रह्मचर्य तथा जितेन्द्रिय व्रत धारण करे। जब इस तरह एक वर्ष व्यतीत होजाय तब एक दिन निराहार रहकर स्नानादि से पवित्र होकर पौष, माघ या फाल्गुनकी पूर्णमासी के दिन आंवले के वन में घुसजाय और एक बडे आंवले के वृक्षपर जो फलों से लदा हो चढ़जाय और डाली से एक फल को हाथ से तोड कर ब्रह्मामृत मंत्र का जाप करे, इस जप के करने से तत्क्षण आंवले के फल में अमृत का संचार होगा और उस आंवले में शर्करायुक्त मधुर स्वाद होजायगा तथा वह स्निग्ध और मृदु भी होगा, उसी समय आंवले को खाले। इस के सेवन करने से युवावस्थाही में सहस्रवर्ष पर्य्यन्त जीवैगा उस समय इन फलों को पेट भरकर खालेने से देवताओं के सदृश कांति होती है और लक्ष्मी तथा सरस्वती स्वयं उस के पास आकर वास करेंगी।

लौह रसायन।

त्रिफलायारसेमूत्रेगवांक्षारेचलावणे। क्रमेणचेङ्गुदीक्षारेकिंशुकक्षारएवच॥ तीक्ष्णायसस्यपत्राणिवन्हिवर्णानिसाधयेत्। चतुरङ्गुलदीर्घाणिसमोत्सेधतनूनिच॥
ज्ञात्वातान्यञ्जनाभानिसूक्ष्मचूर्णानिकारयेत्। तानिचूर्णानिमधुनारसेनामलकस्यच॥
युक्तानिलेहवत्कुम्भेस्थितानिघृतभाविते। संवत्सरंनिधेयानियवपल्लेतदेवच॥
दद्यादालोडनंमासेसर्वत्रालोडयन्बुधः॥ संवत्सरात्ययेतस्यप्रयोगोमधुसर्पिषा॥
प्रातःप्रातर्बलापेक्षीसात्म्यञ्जीर्णेचभोजनम्। एषएवचलोहानांप्रयोगःसम्प्रकीर्तितः
अनेनैवविधानेनहेम्नश्चरजतस्यच॥ आयुःप्रकर्षकृत्सिद्धःप्रयोगःसर्वरोगनुत्। नाभिघातैर्नचातंकैर्जरयानचमृत्युना॥
अधृष्यःस्याद्गजमाणःसदाचातिबलेन्द्रियः धीमान्यशस्वीवाक्सिद्धःश्रुतधारीमहाबलः
भवेत्समांप्रयुञ्जानोनरोलौहरसायनम्।

अर्थ—कांतिसार लोह के चारअंगुल लम्बे चौडे बहुत पतले पत्र बनवाकर अग्नि में सुरखासुरख गरमकर करके क्रम से त्रिफला के क्वाथ, गोमूत्र, नमकक्षार, गोंदीक्षार, पला-

शक्षार में भिजोवै, जब अंजनके समान रंग होजाय तब महीन पिसवा डाले। इस चूर्ण को शहत और आंवले के रस में सानकर लोहवत् करके घी के चिकने घडे में भरकर जौके ढेरमें बरस दिनतक दवा रक्खें, प्रतिमास इस घडे को निकाल कर कुम्भस्थ द्रव्यों को हिलाता रहै, बरस दिनके व्यतीत होने पर शहत और घी के साथ प्रतिदिन प्रातःकाल बल के अनुसार इसकी मात्राका सेवन करे। औषधके पचने पर सात्म्य भोजनकरै।

यह लौहरसायन का प्रयोग वर्णन किया गया है, इसीतरह सुवर्ण रसायन और रूप रसायन की भी विधि हैं। यह प्रयोग आयुवर्द्धक, सिद्ध और रोगनाशक है। इस प्रयोग के सेवन से चोट, रोग, बुढापा और मृत्यु, कुछ असरनहीं करसक्ते हैं। उस के प्राण हाथीके समान दृढ हो जातेहैं। उस की इन्द्रियाँ अत्यन्त बलवान् होजाती हैं वह पुरुष धीमान्, यशस्वी, वाक्सिद्ध, श्रुतधारी और महाबली होजाता है। इस **लौहरसायन** का प्रयोग एक वर्ष पर्य्यन्त करने से फलप्रद होता है ॥

ऐन्द्रीरसायन।

ऐन्द्रीमत्स्याक्षिकोब्राह्मीवचाब्राह्मसुवर्चला
पिप्पल्योलवणंहेमशंखपुष्पीविषद्घृतम्।
एषान्त्रियवकान्भागान्हेमसर्पिर्विषैर्विना॥
द्वौयवौतत्रहेम्नस्तुतिलन्दद्याद्विषस्यच।
सर्पिषश्चपलन्दद्यात्तदैकत्वंप्रयोजयेत्॥
घृतप्रभूतंसक्षौद्रञ्जीर्णेचास्मिन्प्रशस्यते॥
जराव्याधिप्रशमनंस्मृतिमेधाकरम्परम्।
आयुष्यंपौष्टिकंबल्यंस्वरवर्णप्रसादनम्॥
परमोजस्करंचैतत्सिद्धमेतत्रसायनम्।
नैनंप्रसहतेकृत्यानालक्ष्मीर्नविषन्नरुक्॥
श्वित्रंसकुष्ठंजठराणिगुल्माः प्लीहापुराणो
विषमज्वरश्च॥ मेधास्मृतिज्ञानहराश्च
रोगाः शाम्यन्त्यनेनातिबलाश्चवाताः॥

अर्थ...इन्द्रायणकीजड, मछेछी, ब्राह्मी, वच, ब्राह्मसांचोली, पीपल, नमक ये सब दो२ जौ भर लेवे, सुवर्ण दो जौ, विष तिलभर, घृत एक पल, इन सबको एकत्र करके सेवन करै! इस औषध के पचने पर घृतप्लुत मधुमिश्रित भोजन करे! यह रसायन जरानाशक,व्याधिशमनकर्ता,अत्यन्त स्मृतिवर्द्धक, मेधावर्द्धक, आयुवर्द्धक, पुष्टिकर्त्ता, बलकर, स्वरवर्द्धक, वर्णप्रसादक अत्यन्त ओजस्करहै इस सिद्ध रसायन को सेवन करनेवाले के पास न अलक्ष्मी, न विष और रोग जातेहैं। इस रसायन के सेवन से श्वित्रकुष्ठ, जठररोग गुल्मरोग, प्लीहा, विषमज्वर, पुरातनज्वर, मेधा-स्मृति- ज्ञाननाशकरोग, तथा बलवान वातरोग नष्ट होजातेहैं।

मेध्यरसायन।

मण्डूकपर्ण्याःस्वरसःप्रयोज्यःक्षीरेणयष्टी
मधुकस्यचूर्णम्॥ रसोगुडूच्यास्तुसमूल
पुष्प्याःकल्कःप्रयोज्यःखलुशंखपुष्प्याः।
आयुः प्रदान्यामयनाशनानिबलाग्निव
र्णस्वरवर्द्धनानि॥ मेध्यानिचैतानिरसा
यनानि मेध्याविशेषेणचशंखपुष्पी।

अर्थ—दूधके साथ मण्डूकपर्णी का रस या मुलहटीका चूर्ण, या गिलोयका रस

वा शंखपुष्पी की जड़ और पुष्पका कल्क सेवन करने से आयु बढ़ती है, रोग नष्ट होजाते हैं, बल अग्नि, वर्ण और स्वर बढ़ते हैं। ये चारों रसायन मेधावर्द्धक हैं। इनमें से शंखपुष्पी अधिक मेधावर्द्धक है।

पीपलरसायन।

पञ्चषट्सप्तदश वापिप्पलीर्मधुसर्पिषा ॥ रसायनगुणान्वेषीसमामेकांप्रयोजयेत् । तिस्रस्तिस्रस्तुपूर्वाह्णेभुक्त्वाग्रेभोजनस्यच पिप्पल्यःकिंशुकक्षारभाविताघृतभर्जिताः। प्रयोज्यामधुसर्पिभ्यांरसायनगुणैषिणा जेतुङ्कासंक्षयंशोषंश्वासंहिक्कागलामयान्। अर्शांसिग्रहणीदोषंपांडुतांविषमज्वरम् । वैस्वर्यपीनसंशोफंगुल्मवातवलासकम् ॥

अर्थ–जो रसायन के सदृश गुण चाहते हैं उन्हें उचित है कि प्रतिदिन पांच, छः सात, वा दश पीपल घृत और शहतके साथ एक वर्ष पर्य्यन्त सेवन करै। अथवा पीपलोंको ढाकके खारकी भावना देकर घृत में भूनलेवै और भोजन करने से पाहिले प्रतिदिन दुपहरसे पूर्व शहत में मिलाकर तीन पीपल खाय तो खांसी, क्षय, शोष, श्वास, हिचकी, गलेकेरोग, अर्श, ग्रहणीरोग, पाण्डुरोग, विषमज्वर, विस्वरता, पनिस, शोक, गुल्म, वातरोग, कफरोग येसब नष्ट होजातेहै

वर्द्धमानपीपल।

क्रमवृद्ध्यादशाहानिदशपिप्पलिकंदिनम् वर्द्धयेत्पयसासार्द्धंतथाचापनयेत्पुनः।जीर्णेजीर्णेचभुञ्जीतषष्टिकंक्षीरसर्पिषा ॥ पिप्पलीनांसहस्रस्यप्रयोगोऽयंरसायनम् । पिष्टास्तावलिभिःसेव्याःशृतामध्यवलैर्नरैः। शीतीकृताह्रस्ववलैर्योज्यादोषामयान्प्रति दशपैप्पलिकःश्रेष्ठोमध्यमःषट्प्रकीर्त्तिताः। वृंहणंस्वर्यमायुष्यंप्लीहोदरविनाशनम् ॥ प्रयोगोयस्त्रिपर्य्यन्तःसकनीयान्सचावलैः वयसःस्थापनंमध्यंपिप्पलीनांरसायनम्॥

अर्थ—प्रातिदिन दश दश पीपल वढाता हुआ दुग्धके साथ सेवन करै, इसी तरह फिर घटाता हुआ लेजाय यह दश दिनका प्रयोग है औषध के पचनेपर दूध भात का भोजन करै। यह सहस्र पीपलों का प्रयोग रसायन है। वलवान् पुरुष इन सब को पीसकर सेवन करै, मध्यबलवाला पीपलों का क्वाथ पान करै, ह्रस्वबलवाला पीपलों का शीत कषाय सेवन करै, इस तरह दोष और रोग के अनुसार इसका सेवन करै, यह छः की मध्यम और तीनकी निकृष्ट है यह दुर्बल पुरुषोंके लिये अच्छी है। वर्द्धमान् पीपल का सेवन वृंहणकर्त्ता स्वरवर्द्धक, प्लीहानाशक, उदररोगनाशक वयःस्थापनकर्त्ता और मेध्य है।

त्रिफला रसायन

जरणान्तेऽभयामेकांप्राग्भुक्तेद्वेविभीतके भुक्त्वातुमधुसर्पिभ्यांश्चत्वार्यामलकानि-चाप्रयोजयेत्समामेकांत्रिफलायारसायनम् जीवेद्वर्षशतंपूर्णमजरोव्याधिरेवच ॥

अर्थ—प्रथम दिनका आहार पचने पर ही प्रातः काल एक हरड खाले, तदुपरान्त भोजन करने से पहले दो बहेड़े खाले,

भोजन करनेके पश्चात् शहत और घीके साथ चार आंवले खाले, इसतरह एकवर्ष पर्य्यन्त इस त्रिफला रसायनका सेवन करतारहै तौ अजर और व्याधिरहित होकर सौवर्षपर्य्यन्त जीता रहै।

दूसरी त्रिफला रसायन।

त्रैफलेनायसींपत्रींकल्केनालेपयेन्नवाम्॥ तमहोरात्रिकंलेपंपिबेत्क्षौद्रोदकाप्लुतम्
प्रभूतस्नेहमशनंजीर्णेतत्रप्रशस्यते॥ अजरोऽरुक्समाभ्यासाज्जीवेत्तस्यसमाशतम्।

अर्थ—त्रिफला को घोटकर लुगदी बनाकर एक नवीन लोहेके पात्रपर लेप कर दिया करै और एकरातादिनतक उसी पर रहने दे दूसरे दिन उतारकर शहत और जलके साथ सेवन करै। औषधके पचने पर घृतप्लुत आहार करै इसतरह वरसदिन तक इस रसायन के सेवन करनेसे सौ वर्ष पर्य्यन्त अजर और अरोग रहकर जीतारहैगा।

तीसरी त्रिफला रसायन।

मधुकेनतुगाक्षीर्यापिप्पल्याक्षौद्रसर्पिषा॥ त्रिफलासितयाचापियुक्तासिद्धंरसायनम्।

अर्थ—मुलहटी या वंशलोचन या पीपलवा शहत और घृतके साथ भी त्रिफलाका सेवन करना रसायन है अथवा मिश्री के साथ त्रिफला की फंकी लेवै॥

चौथी त्रिफला रसायन

सर्वलौहैःसुवर्णेनवचयामधुसर्पिषा॥ विडङ्गपिप्पलीभ्यांचत्रिफलालवणेनच। संवत्सरप्रयोगेणमेधास्मृतिबलप्रदा॥ भवत्यायुष्यदाधन्याजरारोगनिबर्हणी।

अर्थ—सब प्रकारके लोहोंके साथ बच के साथ, शहत घीके साथ, वायविडंग पीपल के साथ अथवा लवण के साथ एक वर्ष तक त्रिफला का सेवन करना मेधावर्द्धक, स्मृतिकारक, बलप्रद, आयुवर्द्धक धन्य और जरारोगनाशक होता है।

शिलाजतु प्रयोग।

अनम्लश्चकषायश्चकटुपाकःशिलाजतु। नात्युष्णशीतंधातुभ्यःचतुर्भ्यस्तस्यसंभवः। हेम्नश्चरजतात्ताम्राद्वरकृष्णायसादपि॥ रसायनंतद्विधिभिस्तद्वृष्यन्तच्चरोगनुत्। वातपित्तकफघ्नैश्चनिर्यूहैस्तत्सुभावितम्॥ वीर्योत्कर्षपरंयातिसर्वैरेकैकशोऽपिवा। प्रक्षिप्तोद्धृतमप्येनंपुनस्तत्प्रक्षिपेद्रसे॥ कोष्णेसप्ताहमेतेनविधिनातस्यभावना॥ पूर्वोक्तेनविधानेनलोहैश्चूर्णीकृतैःसह॥ तत्पीतंपयसादद्याद्दीर्घमायुःसुखान्वितम्। जराव्याधिप्रशमनंदेहदार्ढ्यकरंपरम्॥ मेधास्मृतिकरंबल्यंक्षीराशीतत्प्रयोजयेत्। प्रयोगःसप्तसप्ताहास्त्रयश्चैकश्चसप्तकः॥

अर्थ—शिलाजीत अनम्ल, कषाय, कटुपाकी और शीतलतारहित होताहै॥ यह सौना रूपा, तांबा और लोहा इन चार धातुओं से उत्पन्न होताहै।इसमें से लौहज शिलाजतु उत्तम होताहै: इसका विधिपूर्वक सेवन करनेसे यह रसायन,वृष्य और रोगनाशकहै। वात पित्तकफनाशक द्रव्यों की इसे भावना देनेसे यह उत्तम वीर्योत्पादक होजाता है। इन तीनों प्रकार के क्वाथोंको मिलकर वा

अलग अलग कुछ २ उष्णक्राथकी शिलाजीतको सात दिवस तक भावना देवे। यह इसको भावना देनेकी विधि है। फिर इसको पीसकर सब प्रकारके लोह चूर्णोंके साथ मिलाकर दूधके साथ पान करे तो दीर्घायु और सुख मिले ! यह शिलाजीत जराव्याधिनाशक देहको अत्यन्त दृढकारक मेधावर्द्धक स्मृतिकारक और धन्य है। इस पर दूधका अनुपान करे। इसके प्रयोगकी अवधि सात सप्ताह तीन सप्ताह, और एक सप्ताह भी है।

शिलाजतुकीमात्रा।

निर्दिष्टस्त्रिविधस्तस्यपरोमध्योवरस्तथा।
पलमर्द्धपलंकर्षोमात्रातस्यत्रिधामता ॥

अर्थ—उत्तम, मध्यम और निकृष्ट ये तीन प्रकार की मात्रा शिलाजीत की हैं यथाएक पलकी उत्तम आधेपलकी मध्यम और एक कर्षकी निकृष्ट।

शिलाजतुके जातिभेद।

जातेर्विशेषंसविधितस्यवक्ष्याम्यतः परम्
हेमाद्याःसूर्यसंतप्ताःस्रवन्तिगिरिधातवः।
जत्वाभंमृदुमृत्स्नाभंयन्मलंतच्छिलाजतु

अर्थ—अब हम शिलाजतुकी भिन्न २जातियों का विधिपूर्वक वर्णन करते हैं। सूर्य के तीव्रतापसे सुवर्णादिक धातु जो पहाड़ों से चुचा निकलती हैं उनमें लाखके सदृश कोमल मृतिकाकी आभा के समान जो मैल होताहै उसे शिलाजतु कहते हैं।

सुवर्णजशिलाजतुके लक्षण।

मधुरश्चसतिक्तश्चजपापुष्पनिभश्चयः।
विपाकेकटुशीतश्चससुवर्णस्यानिस्रवः ॥

अर्थ—स्वादमें मधुर कुछ तीखापन लिये जपापुष्पके समान कान्तियुक्त, कटुपाकी और शीत लक्षणोंसे युक्त सुवर्णजन्यशिलाजतुहोताहै.

रूप्यजशिलाजतु के लक्षण।

रूप्यस्यकटुःश्वेतः शीतःस्वादुर्विपच्यते।

अर्थ—कटु, श्वेतवर्ण, शीतल और पाक में मधुर शिलाजतु रूप्यज होता है !

ताम्रजशिलाजतु के लक्षण।

ताम्रस्यबर्हिकण्ठाभस्तिक्तोष्णःकटुपच्यते

अर्थ—मयूरके कंठके समान, तिक्त, उष्ण और कटुपाकी शिलाजतु ताम्रज होताहै।

लौहज शिलाजतुके गुण।

यस्तुगुग्गुलुकाभासस्तिक्तकोलवणान्वितः।
कटुर्विपाकेशीतश्चसर्वश्रेष्ठःसचायसः ॥
गोमूत्रगन्धयःसर्वेसर्वकर्मसुयौगिकाः।
रसायनप्रयोगेषुपश्चिमस्तुविशिष्यते ॥

अर्थ—गुग्गुलके समान कान्तिवाला, तिक्त लवणरसयुक्त, कटुपाकी शीतल और गोमूत्र की सी गन्धवाला शिलाजतु लौहज होताहै यह सबमें अच्छा होता है ! सब प्रकार के शिलाजीत सब कामोंमें प्रयोग किये जाते हैं परन्तु रसायन प्रयोगमें लौहज सर्वोत्कृष्टहोताहै

शिलाजीत का गुण !

यथाक्रमंवातपित्तश्लेष्मपित्तकफेत्रिषु।
विशेषतःप्रशस्यन्तेमलाहेमादिधातुजाः।

अर्थ—सुवर्णज शिलाजीत वातपित्त को दूर करता है, इसी तरह रूप्यजकफपित्तको ताम्रज कुष्ठको और लौहज सन्निपात कोदूर करताहै।

शिलाजीत पर पथ्यापथ्य।

शिलाजतुप्रयोगेषुविदाहीनिगुरूणिच

पिजेयेत्सर्वकालन्तुकुलत्थान्परिवर्जयेत् ॥ तेह्यत्यन्तविरुद्धत्वादश्मनोभेदनाःपरम् । लोकेदृष्टास्ततस्तेपामयोग मनिषिध्यते ॥ पयांसिशुक्तानिरसाःसयूषाःतोयंसमूत्रम् विविधाःकषायाःआलोडनार्थेगिरिजस्य शस्तास्तेतेप्रयोज्या प्रसमीक्ष्यकार्यम् ॥ नसोऽस्तिरोगोभुविसाध्यरूपःशिलाह्वयंयन्नजयेत्प्रसह्य ॥ तत्कालयोगैर्विधिभिः प्रयुक्तं स्वस्थस्यचोर्जाविपुलांददाति ॥

अर्थ—शिलाजीत सेवन करने वाला विदाही और गुरु पदार्थोंको त्याग कर देवे कुलथी का सर्वथा त्याग कर देवे ये शिलाजीत के अत्यन्त विरुद्धहैं और विशेष करके पत्थरका भेदन करनेवाली है यह बात लौकिक प्रसिद्ध है इसलिये कुलथी का प्रयोग निषेध किया है । दूध शुक्त, मांसरस, मांसयूप, जल, गोमूत्र तथा अन्यकषायोंमेंसे किसी के साथ रोगके अनुसार शिलाजीत का प्रयोग किया जाता है । पृथ्वीमें कोई ऐसा साध्य रोग नहींहै जो शिलाजीतसे अच्छा न हो सक्ताहो । कालानुसार विधिवत् प्रयोग किये जाने से स्वस्थ पुरुष को भी अत्यन्त बलकारक है ।

तृतीयपादका संक्षिप्तवर्णन

करप्रचितिकेपादेदशपञ्चमहर्षिणा । रसायनानांसिद्धानांसंयोगाःसमुदाहृताः

अर्थ—इस करप्रचितिक नाम पाद में महर्षि पुनर्वसुने सिद्ध रसायनोंके सोलह प्रयोग वर्णन किये हैं ।

इति करप्रचितिकोनामरसायनपादस्तृतीयः

चतुर्थःपादः ।

अथातआयुर्वेदसमुत्थानीयंरसायनपादंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम आयुर्वेदीय समुत्थानक नाम चतुर्थ पादकी व्याख्या करते हैं ।

प्राचीन इतिहास ।

ऋषयःखलुकदाचिच्छालीनायायावराश्चग्राम्यौषध्याहाराःसन्तःसाम्पन्निका मन्दचेष्टाश्चनातिकल्याणाश्च प्रायेणबभूवुः तेसर्वासामितिकर्तव्यता नामसमर्थाःसन्तो ग्राम्यवासकृतमात्मदोषंमत्वापूर्वनिवासमपगतग्राम्यदोषंमत्वाशिवंपुण्यमुदारंमेध्यमगम्यमसुकृतिभिर्गङ्गाप्रभवममरगन्धर्वयक्षकिन्नरानुचरितमनेकरत्ननिचयमचिन्त्याद्भुतप्रभावंब्रह्मर्षिसिद्धचारणानुचरितंदिव्यतीर्थौषधिप्रभावमतिशरण्यंहिमवन्तममराधिपतिगुप्तंजग्मुःभृग्वङ्गिरोऽत्रिवशिष्ठकश्यपागस्त्यपुलस्त्यवामदेवासितगौतमप्रभृतयो महर्षयः । तानिन्द्रःसहस्रदृगमरगुरुर्वरोऽब्रवीत् । स्वागतंब्रह्मविदां ज्ञानतपोधनानांब्रह्मर्षीणामस्ति । ननु वोग्लानिरप्रभावत्वंवैस्वर्यंवैवर्ण्यञ्चग्राम्यवासकृतमसुखमसुखानुबन्धञ्चग्राम्योहि वासोमूलमशस्तानान्तत्कृतंपुण्यकृद्भिरनुग्रहःप्रजानांस्वशरीरमरक्षिभिःकालश्चायमायुर्वेदोपदेशस्यब्रह्मर्षीणामात्मनःप्रजानाञ्चानुग्रहार्थमायुर्वेदमश्विनौमह्यं प्रयच्छताम् ॥

अर्थ—किसी समय ऐसा हुआ कि विनीत स्वभाव और यज्ञशील ऋषिगण ग्राम्य औषध और आहारके सेवन से प्रायः मन्दचेष्टित और उपायरहित होगये तथा अपने क-

त्तव्य कामोंके करनेमें भी असमर्थ होगये । तब वे विचार करने लगे कि यह हमारे गांवोंमें वसने के दोपका कारण है और यह निश्चय कर लिया कि पूर्व निवासही ग्राम्य दोपोंसे रहित है इस हेतु से वे कल्याणमय पुण्य, उदार, पवित्र, पापियों से अगम्य, गंगाका उत्पत्तिस्थान देवता, गन्धर्व, यक्ष और किन्नरों से सेवित, नानाप्रकारके रत्नों से युक्त, अचिन्त्य अद्भुत प्रभावशाली, ब्रह्मर्षि सिद्ध चारणोंसे सेवित, दिव्यतीर्थ और औषधोंका प्रभवस्थान, अतिशरण्य (शरण लेने के योग्य) और इन्द्रसे रक्षित हिमालयपर गये । इन ऋपियोंमें भृगु, अंगिरा, अत्रि, वशिष्ट, कश्यप, अगस्त्य, पुलस्त्य, वामदेव, और असित गौतम आदि बहुतसे ऋपिथे। सहस्राक्ष अमरेश्वर उन ऋपियों से कहने लगे कि हे ब्रह्मवित् ! हे ज्ञानधन ! हे तपोधन ! हे ब्रह्मर्पियो ! आपका आगमनशुभहै हे ऋपियों ! गांवके रहनेसे आपलोगों के मुखपर ग्लानि, प्रभावहीनता, मन्दभाग्यता, विवर्णता, सुखहीनता तथा दुःखजनित चिन्ह स्पष्ट दिखाई देते हैं । ग्राम्य वासही सब दुःखों का मूलहै । आपलोगों ने अपने पुण्य स्वभावसे प्रजाके हितके लिये अपने शरीर का कुछ विचार न करके ग्रामोंमें वसना स्वीकार किया . यही आयुर्वेदके उपदेशका समय है, इस आयुर्वेदको ऋपिगण और अपनी प्रजाके अनुग्रहके लिये अश्विनीकुमारोंने मुझे सिखायाथा ।

आयुर्वेदोत्पत्तिक्रम ।

प्रजापतिरश्विभ्यां,प्रजापतयेब्रह्मा,प्रजानामल्पमायुर्जराव्याधिवहुलमसुखमसुखानुवन्धं,अल्पत्वादल्पतपोदमनियमदानाध्ययनसञ्चयंमत्वापुण्यतममायुःप्रकर्पकरंजराव्याधिप्रशमनमूर्जस्करममृतंशिवंशरण्यमुदात्तंभवन्तोमत्तःश्रोतुमर्हत्युपधारयितुंप्रकाशयितुञ्चप्रजानुग्रहार्थमार्पंब्रह्मचमैत्रींकारुण्यमात्मनश्चानुत्तमंपुण्यमुदारं ब्राह्ममक्षयंकर्मेति । तच्छ्रुत्वाविबुधपतेर्वचनमृपयःसर्वएवामरवरमृग्भिस्तुष्टुवुः प्रहृष्टास्तद्वचनमभिननन्दुश्चेति । अथेन्द्रः तदायुर्वेदामृतमृपिभ्यःसंक्रम्योवाचेतत्सर्वमनुष्ठेयमयञ्चशिवकालोरसायनानांदिव्याश्चौपधयोहिमवत्प्रभवाःप्राप्तवीर्याः ॥

अर्थ—इसी आयुर्वेदका उपदेश प्रजापतिने अश्विनीकुमारोंको किया था । इसी आयुर्वेदका उपदेश ब्रह्माने प्रजाओंको जराव्याधिग्रस्त, अल्पायु, असुख, असुखानुवन्धी, अशुभकर्मकर्त्ता देखकर तथा अल्पायु होनेसे अल्पतप, इन्द्रियदमन, नियम, दान, अध्ययनकी ओर निरुत्साहित देखकर प्रजापति दक्षको उपदेश दियाथा कि जिससे ये उपाधियां शान्त होवें । यह आयुर्वेद पुण्यतम, आयुवर्द्धक जराव्याधिनाशक, वलकारक, अमृतोपम, कल्याणकारक, शरण्य और उदात्त है । इस आयुर्वेदको मुझसे सुनिये धारण कीजिये और प्रजा के अनुग्रहके लिये इसका प्रकाश कीजिये क्योंकि ब्रह्मही ऋपियोंका आश्रितस्थान है, वही मैत्रीहै, मैत्रीही कारुण्य है । आत्मा का कारुण्यही उत्कृष्ट और उदार पुण्यहै वही पुण्य ब्राह्म और अक्षय धर्म है इन्द्रके

वचनको सुनकर सम्पूर्ण ऋषि ऋग्वेदोक्त मंत्रोंसे इन्द्रकी प्रशंसाकरने लगे और प्रसन्न होकर उसकी बातको सराहने लगे । तदनन्तर इन्द्रने आयुर्वेदामृतकी व्याख्या ऋषियोंसे की और कहा कि ये सब कर्म अनुष्ठानके योग्य है, रसायन बनानेका यही उत्तम काल है क्योंकि हिमालय पर उत्पन्न होनेवाली दिव्य ओषधियां भी मौजूदहैं जो इस समय पूर्णवीर्य हैं ।

इन्द्रोक्त रसायन

तद्यथाऐन्द्रीब्राह्मीपयस्याक्षीरपुष्पीश्रावणीमहाश्रावणीशतावरीविदारीजीवन्तीपुनर्नवानागबलास्थिरावचाछत्रातिच्छत्रामेदामहामेदाजीवनीयाश्चान्याःपयसाभयुक्ताः। षण्मासात्परमायुर्वयश्चतरुणमनामयत्वंस्वरवर्णसम्पदमुपचयंमेधांस्मृतिमुत्तमबलमिष्टाश्चापरान्भावानाव इन्तिसिद्धाः । इन्द्रोक्तंरसायनम् ॥

अर्थ—इन्द्रायण, ब्राह्मी, काकोली, दुद्धी श्रावणी, महाश्रावणी, सितावर, विदाकरीन्द, जीवन्ती, सांठ, नागबला, शालिपर्णी, बच, छत्रा, अतिछत्रा, मेदा, महामेदा, तथा अन्यान्य जीवनीय औषधोंको छः महीने तक दुग्धके साथ सेवन करै तो दीर्घायु, तरुणावस्था, निरोगता, स्वर और वर्णकी स्वच्छता पुष्टाई, मेधा, स्मृति, उत्तम बल, तथाऔरऔरभी इच्छित फलोंकी प्राप्ति होतीहै। यह इन्द्रोक्त रसायन है ॥

ब्रह्मसुवर्चलादिऔषधियोंकेलक्षण

ब्रह्मसुवर्चलानामौषधिर्याहिरण्यक्षीरापुष्करसदृशपत्राआदित्यपर्णीनामौषधिर्यासूर्यकान्तेतिविज्ञायतेसुवर्णक्षीरासूर्यमण्डलाकारपुष्पीच । नारीनामौषधिरश्वबलेतिविज्ञायतेयापुनरजसदृशपत्रा । काष्ठगोधानामौषधिर्गोधाकारासर्पानामौषधिःसर्पाकारा । सोमनामौषधिराज.पञ्चदशपर्ण.ससोमइवहीयतेवर्धतेच । पद्मानामौषधिपद्माकारजरापद्मरक्तापद्मगन्धा । अजानामौषधिशृङ्गीतिविज्ञायते। नीलानामौषधिस्तुनीलक्षीरानीलपुष्पालतामतानवहुला।

अर्थ—एक **ब्रह्मसुवर्चेला** औषध होती है जिसे हिन्दी में ब्रह्मसार्चाली कहते हैं, इस का दूसरा नाम हिरण्यक्षीरा है, इसके पत्ते कमलके सदृश होतेहै । एक **आदित्यपर्णी** होतीहै उसे सूर्यकान्ता कहतेहैं ! इसका दूध सुवर्णके समान पीला और फूल सूर्यमण्डल के आकार के सदृश होताहै। एक **नारी** नामकी औषध होतीहै इस को अश्वबला कहते हैं, इसके पत्ते बकरे के समान होते हैं । एक **काष्ठगोधा** औषधहोती है इसका आकार गोधाके सदृश होताहै, **सर्पा** नाम की औषधी होती है इसका आकार सर्पका सा होता है । एक **सोमऔषध** होतीहै इसे सोमलता भी कहते हैं यह औषधियोंकी राजाहै, इसमें पन्द्रह पत्ते होतेहैं, यह चन्द्रमा की तरह घटती बढती है अर्थात् शुक्लपक्ष में चन्द्रमाकी कलाके साथ एक एक पत्ता बढता जाता है और कृष्णपक्ष में चन्द्रमाके घटने के साथही एक एक पत्ता घटता चला जाताहै (इसका विशेष वर्णन सुश्रुत संहिता

में लिखा है, एक पद्म नाम की औषधिहै इसका आकार पद्म के समान होताहै यह पद्मके सदृश लाल तथा पद्म के समानहीं गंधयुक्त होतीहै। एक अजा नामकी औषधी होती हैं इसे अजशृंगी कहते है। एक नीला औषधी होती है इसका दूध और फूल नीले होतेहैं इसमें लताप्रतान बहुत होते हैं।

पूर्वोक्तऔषधियोंकीसेवनविधि।

इत्यासामष्टानामौषधीनांयांयामेवोपाधिंल भेततस्यास्तस्याःस्वरसस्यसौहित्यङ्गत्वात् स्नेहभावितायामार्द्रपलाशद्रोण्यांसापिधा नायांदिग्वासाःशयीतातत्रप्रलीयतेषण्मासे नपुनःपुनःसम्भवतितस्याजम्पयःप्रत्यव स्थापनं षण्मासेनदेवतानुकारीभवति। वयोवर्णस्वराकृतिबलप्रभाभिः। स्वयंचा स्यसर्ववाचोगतानिप्रादुर्भवन्ति। दिव्यं चास्यचक्षुः श्रोत्रंभवति। गतियोजनसह स्रंदशवर्षसहस्राण्यायुरनुपद्रवंचेति॥

अर्थ—इन आठ औषधियोंमें से जो मिलस- के उसका पेट भरकर पान करले और तेल से चुपडीहुई ढकनेवाली एक ढाककी द्रोणी में नग्नहोकर सो जाय इसतरह छःमास में उस का पुनर्जन्महोजाताहै। इसको बकरी के दूधका अनुपान करावे। छः महीनेमें वह मनुष्य वय वर्ण, स्वर आकृति, बल और प्रभा इन कर के देवताओं के सदृश होजाता है। भूत बा- तोंके विषय में स्फूर्ति होतीहै, इसके आंख और कान दिव्य होजातेहैं इस की सहस्र योजनकी गति और उपद्रवरहित दस सहस्र वर्षकी आयु होजातीहै।

भवतिचात्र।

दिव्यानामौषधीनांयःप्रभावःसभवाद्विधैः शक्यःसोढुमशक्यस्तुनसोढुमकृतात्मभिः। औषधीनांप्रभावेणतिष्ठतांस्वेचवर्त्मनि। भवतानिखिलंश्रेयःसर्वमेवोपपत्स्यते॥ वानप्रस्थैर्गृहस्थैश्चप्रयतैर्नियतात्मभिः। शक्याऔषधयोह्येताःसेवितुंविषयाभिजाः॥ तास्तुक्षेत्रगुणैस्तेषांमध्यमेनचकर्मणा। मृदुवीर्यतरास्तासांविधिर्ज्ञेयःसएवतु॥ पर्येष्टुन्ता प्रयोक्तुंवायेऽसमर्थाःसुखार्थिनः रसायनविधिस्तेषामयमन्यःप्रशस्यते॥

अर्थ—इन दिव्य औषधियोंका जो प्रभावहै उसको आपसरीकेही सहसक्ते हैं और कोई अजितेन्द्रिय उनको नहीं सहसक्ताहै इन औष- धियोंके प्रभावसे अपने अपने मार्गोंमें स्थित होकर आप सम्पूर्ण कल्याणोंको प्राप्त करसकें गे। प्रयत्नवान् और जितेन्द्रिय वानप्रस्थाश्रमी और गृहस्थी इन रसायन औषधोंको सहन करसकेंगे यदि वे उनके देशकी उत्पन्न होंगी क्योंकि ये सब औषधियां क्षेत्रगुण से मृदुवी- र्य होती हैं, इनकी क्रिया मध्यम होती है, परन्तु सेवनकी विधि एकही है।

जो सुखाभिलाषी इन औषधोंके सेवन करने वा ढूंढनेमें असमर्थ हैं वे नीचे लिखी हुई विधि से सेवन करें।

इन्द्रोक्तब्राह्मरसायन।

बल्यानाञ्जीवनीयानांबृंहणीयाश्चयादश वयसःस्थापनानाञ्चखदरस्यासनस्यच। खर्जूराणांमधूकानांमुस्तानामुत्पलस्यच। मृद्वीकानांविडङ्गानांवचायाःचित्रकस्यच॥

शतावर्याःपयस्यायाःपिप्पल्याजोङ्गकस्य-च । ऋद्धयानागवलायाश्चहरिद्रायाधव स्यच । त्रिफलाकण्टकार्योश्चविदार्याश्च न्दनस्यतु । इक्षूणांशरमूलानांश्रीपर्ण्या स्तिनिशस्यच ॥ रसाःपृथक्पृथग्ग्राह्याः पलाशक्षारएवच।एषांपलोन्मितान्भागा न्पयोगव्यंचतुर्गुणम्॥द्वेपात्रेतिलतैलस्यद्वे चगव्यस्यसर्पिषः । तत्साध्यंसर्वमेकत्रसु सिद्धंस्नेहमुद्धरेत् ॥ तत्रामलकचूर्णाना माढकंशतभावितम् । स्वरसेनैवदातव्यं क्षौद्रस्याभिनवस्यच । शर्कराचूर्णपात्र श्चमस्थमेकंप्रदापयेत् । तुगाक्षीर्याःसापि प्पल्याःस्थाप्यंसमूर्च्छितंचतत् । शुचौक्ष मार्त्तिकेकुम्भेमासार्धंघृतभाविते। मात्राम ग्निसमांतस्यततऊर्ध्वम्प्रयोजयेत् ॥ हेम ताम्रप्रवालानामयसःस्फटिकस्यच । मु क्तावैदूर्यशंखानांचूर्णानांरजतस्यच॥ प क्षिप्यषोडशींमात्रांविहायायासमैथुनम् जीर्णेजीर्णेचभुञ्जीतषष्टिकंक्षीरसर्पिषा ॥ सर्वरोगप्रशमनंवृष्यमायुष्यमुत्तमम् । स त्वस्मृतिशरीराग्निबुद्धीन्द्रियबलप्रदम् । परमूर्जस्करंचैववर्णस्वरकरंतथा । विषा लक्ष्मीप्रशमनंसर्ववाचोगतप्रदम्॥सिद्धार्थ ताञ्चाभिनवंवयश्चप्रजाप्रियत्वञ्चयशश्च लोके ॥ प्रयोज्यमिच्छद्भिरिदंयथावद्र सायनंब्राह्ममुदारवीर्यम् ॥

अर्थ—बल्य, जीवनीय, बृंहणीय, वयः-स्थापन, इन गणोंकी दश दश औषधें त-था खैर, असन, खजूर, महुआ, मोथा, उ-त्पल, दाख, वायविडंग, वच, चीता, सिता-वर, काकोली, पीपल, जींगक, ऋद्धि, ना-गबला, हलदी, धौ, त्रिफला, कटेरी, विदा-रीकंद, चन्दन, इक्षुरस, शरमूलरस, श्रीपर्णी-रस, तिनिश और पलाशक्षार ये सब एक एक पल लेवै इन सब औषधियों से चौगुना गौका दूध दोपात्र (आढ़क) तिलका तेल, दोपात्र गौका घी इन सबको मिलाकर पका-वे जब अच्छी तरह सिद्ध होजाय तब चि-कनाई के भागको अलग निकाल लेवै, इस में आंवलेके रससे सौ बार भावना दियाहुआ आंवलेका चूर्ण एक आढक डाल देवै, न-याशहत एक आढक, शर्करा एक आढक, वंशलोचन और पीपल एक प्रस्थ डालकर सबको मिलालेवै, फिर पन्द्रह दिनतक इसे एक चिकनी घी की हांडीमें भरकर धरदे तदुपरान्त अग्निबलके अनुसार इसकी मात्रा का प्रयोग करै । औषधकी मात्राके सोलहवां हिस्सा सुवर्ण, तांबा, मूंगा, लोहा, स्फटिक मोती, वैदूर्य्य, शंख और रूपे का चूर्ण मि-लावै । औषधके सेवनकालमें परिश्रम और मैथुनका परित्याग करदेवै । औषधके पचने पर दूध घी मिलाकर चावलों का भात खाय । यह रसायन सम्पूर्ण रोगोंकी नाश करनेवाली, वृष्य और उत्तम आयुवर्द्धक है सत्व स्मृति, शरीर, अग्नि,बुद्धि, और इन्द्रि-यों में बलवर्द्धक है, यह अत्यन्त ऊर्जकर, वर्णप्रसादक, स्वरवर्द्धक, विष अलक्ष्मीनाशक तथा वचन को सिद्ध करने वाला है इसरसा-यनके सेवन करनेसे मनोवांछित कार्य्योंकी सिद्धि, नवीन वय, संततिप्रियत्व और लोक

में यश होताहै । जो इन सब बातोंकी इच्छा करनेवालाहै उसे उचित्त है कि वह इस उदारवीर्य ब्राह्मरसायन को सेवन करे ॥

समर्थानामरोगाणान्धीमतान्नियतात्मनां कुटीप्रवेशःक्षमिणांपरिच्छदवतांहितः।अतोऽन्यथातुयेतेषांसौर्यमारुतकोविधिः ॥ ताभ्यांश्रेष्ठतरःपूर्वोविधिःसतुसुदुष्करः । रसायनविधिभ्रंशाज्जायेरन्व्याधयोयदि यथास्वमौषधन्तेषांकार्यमुक्त्वारसायनम् ।

अर्थ—सामर्थ्यवान्, निरोगी, बुद्धिमान् जितेन्द्रिय, क्षमावान् और परिच्छदवान् (जिन के पास ओढने पहरनेका सामान है) पुरुषोंके लिये कुटीप्रावेशिक रसायन बहुत अच्छी होतीहै । और जो ऊपरकहे हुये लक्षणोंसे विपरीत लक्षणवाले हैं उनको सौर्यमारुतिक विधि अच्छीहै, परन्तु इन में पहिली उत्तम और साध्य है । रसायन विधि में गडबड होजानेसे यदि रोग उत्पन्न होजाय तो रसायन सेवनको बन्दकरके प्रथम उनरोगों की विधिपूर्वक चिकित्सा करे ।

विनारसायनरसायनवत्तुफल ॥

सत्यवादिनमक्रोधंनिवृत्तंमद्यमैथुनात् ॥ अहिंसकमनायासम्प्रशान्तंप्रियवादिनम् याज्यशौचपरंधीरंदाननित्यंतपस्विनम्। देवगोब्राह्मणाचार्यगुरुवृद्धार्चनेरतम् । आनृशंस्यपरन्नित्यंनित्यंकरुणवेदिनम्॥ समजागरणंस्वप्ननित्यंक्षीरघृताशिनम् ॥ देशकालप्रमाणज्ञंयुक्तिज्ञमनहङ्कृतम्॥शस्ताचारमसंकीर्णमध्यात्मप्रवणेन्द्रियम् । उपासितारंवृद्धानामास्तिकानांजितात्म नांधर्म्मशास्त्रपरंविद्यान्नरंनित्यरसायनम्।

अर्थ—सत्यवादी, अक्रोधी, मद्य और मैथुनका सेवन न करनेवाला, अहिंसक, अपरिश्रमी, शान्त, प्रियवादी, यजनकर्त्ता, पवित्रतापरायण, धीर, दानकर्त्ता, तपस्वी, गौ, देवता, ब्राह्मण, आचार्य, गुरु, वृद्ध, इनकी सेवामें परायण, निष्ठुरतारहित, दयापरायण, उचित कालमें जगने और सोनेवाला, नित्यप्रति दूध, घी, खाने वाला, देश और कालके प्रमाणका जाननेवाला युक्तिज्ञ, अनहंकारी, सदाचार परायण, एक धर्मावलम्बी, अध्यात्म ज्ञानवेत्ता, वृद्धोंका सेवक, आस्तिक, और जितेन्दियों का उपासक, धर्मशास्त्रपरायण पुरुष यद्यपि रसायन सेवन न करे तौभी नित्यरसायन सेवन का फलप्राप्तकरताहै

गुणैरेतैःसमुदितैःप्रयुङ्क्तेयोरसायनम् । रसायनगुणान्सर्वान्यथोक्तान्ससमश्नुते

अर्थ—जो पूर्वोक्त सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पन्न रसायनका सेवन करताहै, वह यथोक्त रसायन गुणों को प्राप्त करता है ।

रसायन के योग्यायोग्य पुरुष ।

यथास्थूलमनिर्वाह्यदोषान्शारीरमानसा रसायनगुणैर्जन्तुर्युज्यतेनकदाचन ॥ यं गाह्यायुःप्रकर्षार्थाजरारोगनिवर्हणाःमन शरीरशुद्धानांसिध्यन्तिप्रयतात्मनाम् । तदेतन्न भवेद्वाच्यंसर्वमेवहतात्मसु । अर जेभ्योद्विजातिभ्यःशुश्रूषायेपुनास्तिच

अर्थ—शारीर और मानसिक दोषों विना दूरकिये जो पुरुष रसायन सेवन ... है उसको रसायनका कुछ फल नहीं मिल है । आयुवर्द्धक और जरा व्याधिनाशक योग वर्णन किये गये हैं वे मानसिक

पूर्वक अश्विनीकुमारोंका पूजन करतेहैं। तो क्यामृत्यु, व्याधि और जराग्रस्त तथा सदाही दुखी मनुष्योंको अपने सुखके लिये वैद्योंका पूजन अनुचितहै? ॥

वैद्यका गुरुवत् पूजन।

शीलवान्मतिमान्युक्तोद्विजातिःशास्त्रपारगः ॥ प्राणिभिर्गुरुवत्पूज्य प्राणाचार्य्यः सहिस्मृतः।

अर्थ—मनुष्यों को शीलवान्, मतिमान द्विजाति, शास्त्रपारग और प्राणाचार्य वैद्यको गुरुवत्, पूजा करनी चाहिये।

विद्यासमाप्तौभिषजस्तृतीयाजातिरुच्यते अश्नुतेवैद्यशब्दंहिनवैद्यःपूर्वजन्मना। विद्यासमाप्तौब्राह्मंवासत्त्वमार्षमथापिवा॥ ध्रुवमाविशतिज्ञानात्तस्माद्वैद्योत्रिजःस्मृतः॥ नाभिध्यायेन्नचाक्रोशेदहितंनसमाचरेत्॥ प्राणाचार्यंबुधःकश्चिदिच्छन्नायुरनित्वरम्॥

अर्थ—भिषक् द्विजाति होताहै परन्तु वैद्यक विद्याको समाप्तकर लेनेपर त्रिजाति होजाता है, तबही वह वैद्य कहलाता है। पूर्वजन्म द्वारा यह वैद्य नहीं कहलाताहै मनुष्य विद्या की समाप्तिमें ब्राह्म वा आर्षसत्वमें निश्चय प्रवेश करताहै और फिर वैद्यकका ज्ञान प्राप्त करने पर त्रिजकहलाताहै।

जो मनुष्य दीर्घजीवनकी इच्छा करता है उसे उचितहै कि वैद्यको न गाली दे न कोसै न उसके साथ कोई अहित कार्य्य करै।

रोगी और वैद्यका धर्म

चिकित्सितस्तुसंश्रुत्ययोवासंश्रुत्यमानवः नोपाकरोतिवैद्यायनास्तितस्येहनिष्कृतिः भिषगप्यातुरान्सर्वान्स्वसुतानिवयत्नवान् आबाधेभ्योहिसंरक्षेदिच्छन्धर्म्ममनुत्तमम्॥

अर्थ यह प्रतिज्ञा करने पर कि मैं अमुक उपकार करूंगा और आराम होने पर वैद्यके लिये यदि वह उपकार न किया जाय तो उसका कल्याण नहीहै और वैद्यकोभी उचित है कि सम्पूर्ण रोगियोंको अपने पुत्रके समान देखै और उत्तमोत्तम धर्मप्राप्तिकी इच्छा करता हुआ रोगी से उसकी रक्षा करै।

धर्मार्थंचार्थकामार्थमायुर्वेदोमहर्षिभिः॥ प्रकाशितोधर्म्मपरैरिच्छद्भिःस्थानमक्षरम् नात्मार्थंनापिकामार्थमथभूतदयांप्रति॥ वर्ततेयःचिकित्सायांससर्वमतिवर्तते।

अर्थ—महर्षियोंने धर्म अर्थ और कामकी प्राप्तिके लिये आयुर्वेदका प्रकाश किया क्योंकि वे धर्मपरायणथे और उनकी इच्छा मोक्ष धाम प्राप्त करनेकी थी। जो बिना अपनी किसी अर्थकामकी स्वार्थ सिद्धिके केवल प्राणियों पर दयाकर के चिकित्सा में प्रवृत होते हैं वे सर्वोत्कृष्ट होते हैं।

जीविकार्थ चिकित्सा निषेध।

कुर्वतेयेतुवृत्त्यर्थंचिकित्सापण्यविक्रयम्॥ तेहित्वाकाञ्चनंराशिंपांसुराशिमुपासते।

अर्थ—जो जीविकाके लिये चिकित्सा को बेचते है वे सुवर्णके ढेरको छोडकर धूलके ढेरको समेटते हैं।

वैद्यको यशप्राप्तिका उपाय।

दारुणैः [illegible] नांगदेवैव [illegible]
[illegible]
धर्मार्थसदृशस्तस्यदातानेहोपलभ्यते॥

नहिजीवितदानाद्धिदानमन्यद्विशिष्यते।
परोभूतदयाधर्मइतिमत्वाचिकित्सया ॥
वर्ततेयःससिद्धार्थःसुखमत्यन्तमश्नुते ।

अर्थ—मनुष्य दारुण रोगोंसे पीडित होकर यमालयकी ओर आकर्षित होतेहैं । जो यमपाशोंका छेदन करके जीवदान देताहै उसके समान धर्मार्थपरायण और दाता इस संसारमें दूसरा नहींहै । जीवदानके अतिरिक्त और कोई विशेष दान नहींहै । प्राणियोंमें दया करनेसे अतिरिक्त और कोई धर्म नहीं हैं इस बात को जानकर जो चिकित्सामें प्रवृत्त होतेहैं उन्हींका मनोरथ सिद्ध होताहै और वेही सुख भोगते हैं ।

इस पादका संक्षिप्त वर्णन ।

आयुर्वेदसमुत्थानंदिव्यौषधिविधिःशुभः।
अमृतात्पान्तरगुणंसिद्धंरन्नरसायनम् ॥
सिद्धेभ्योब्रह्मचारिभ्योयदुवाचामरेश्वरः
आयुर्वेदसमुत्थानेतत्सर्वंसम्प्रकाशितम् ।

अर्थ—इस आयुर्वेदकी उत्पत्ति, दिव्य रसायनोंके प्रयोग तथा जो कुछ इन्द्रने ऋषि महात्मओंसे कहाहै वह सब इस पाद में वर्णन किया गया है ।

आयुर्वेदसमुत्थानीयोरसायनपादःचतुर्थः।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने रसायने विकल्पनो नाम प्रथमोऽध्यायः १

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथातःसंयोगशरमूलीयंवाजीकरणपादं व्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले रमूलीय वाजीकरणपादकी व्याख्याकरेंगे ।

वाजीकरणके गुण ।

वाजीकरणमन्विच्छेत्पुरुषोनित्यमात्मवान् । तदायत्ताहिधर्मार्थौप्रीतिश्चयशएवच
पुत्रस्यायतनंह्येतद्गुणाश्चैतेसुताश्रयाः ।
वाजीकरणमग्र्यञ्चक्षेत्रंस्त्रीयामहर्षिणी ॥

अर्थ—जितेन्द्रिय पुरुषको नित्यही वाजीकरण करना चाहिये, क्योंकि धर्म, अर्थ, प्रीति और यशये वाजीकरणकेही आश्रित हैं । पुत्र भी वाजीकरण केही आश्रित है और पूर्वोक्त धर्मार्थादि चारों गुण पुत्रके आश्रितहैं और रोम रोममें हर्ष उत्पन्न करनेवाली स्त्री वाजीकरणका सर्वोत्तम क्षेत्र है अर्थात् वाजीकरण सेवनका फल स्त्रीमें प्रकट होताहै

इष्टाह्येकैकशोऽप्यर्थाःपरंप्रीतिकराःस्मृताः
किंपुनःस्त्रीशरीरेयेसंघातेनव्यवस्थिताः।
संघातोहीन्द्रियार्थानांस्त्रीषुनान्यत्रविद्यते।
स्त्र्याश्रयोहीन्द्रियार्थोयःसप्रीतिजननोऽधिकः ॥ स्त्रीषुप्रीतिर्विशेषेणस्त्रीष्वपत्यंप्रतिष्ठितम् । धर्मार्थौस्त्रीषुलक्ष्मीश्चस्त्रीषु लोकाःप्रतिष्ठिताः ॥

अर्थ—रूपरसादि इन्द्रियोंके पांचों विषय अत्यन्त प्रीतिकारक वर्णन कियेगयेहैं, और जब ये पांचों विषय एक स्त्रीमें इकट्ठे हैं तौ स्त्री अत्यन्तप्रीतिकी खानहै।स्त्रियोंके अतिरिक्त ये विषय और किसी जगह एकत्रित नहींहै। जो इन्द्रियार्थ स्त्रीमें आश्रितहै वह अत्यन्त प्रीतिवर्द्धकहै । विशेषकरके स्त्रियों मेंही प्रीति प्रातिष्ठित और स्त्रियोंमेंही सन्तान प्रतिष्ठितहै, धर्म और अर्थ स्त्रियोंमेही प्रतिष्ठितहै, इसी तरह स्वर्ग।

प्रयोजयेत्॥ एषत्वृष्यःपरोयोगोबृंहणोबलवर्द्धनः ॥ अनेनाश्वइवोदीर्णोलिङ्गमर्पयतेस्त्रियाम् ॥

अर्थ—शरमूल, इक्षुमूल, काण्डेक्षु, इक्षुबालिका, सितावर, क्षीरकाकोली, विदारीगंध, कटेरी, जीवन्ती, जीवक, मेदा, वीर (वाराहीकन्द)ऋषभक, खरैटी, ऋद्धि, गोखरू, रास्ना, कैंच, सांठ, इन सबको तीन तीन पल लेवै। एक आढक मापकलाय इन सबको मिलाकर एक द्रोण जलमें चढादे और चौथाई शेष रहने पर उतार लेवै फिर इसमें मुलहटी, दाख, अंजीर, पीपल, कैंच, महुआ, खिजूर, सितावर ये सब पीस कर मिलादेवै फिर विदारीकंदका रस, आंवलेका रस, ईखका रस और घी ये चारों एक. २ आढक और एक द्रोण दूध चढा कर पकावै पकते पकते जब घी बचरहै तब उसे छानले फिर उसमें शर्करा और वंशलोचन एक एक प्रस्थ, पीपल चारपल, काली मिरच एक पल, दालचीनी आधे पल, इलायची आधेपल, केसर आधेपल और शहत दो कुडव डालकर सबको मिला लेवै । इसमें से एक एक पलकी गोली बनाकर-अग्निबलके अनुसार प्रयोग करै । यह योग अत्यन्त वृष्य, बृंहणकर्त्ता और बलवर्द्धक होताहै । इस प्रयोगके सेवन करनेसे अश्ववत् स्त्रीगमन में प्रवृत होवै ।

वाजीकरण घृत ।

मापाणामात्मगुप्तायाबीजानामाढकंनवम् जीवकर्षभकौवीरांमेदामृद्धिंशतावरीम् । मधुकंचाश्वगन्धाञ्चसाधयेत्कुडवोन्मिताम् ॥ रसेतस्मिन्घृतप्रस्थंगव्यंदशगुणंपयः । विदारीणांरसप्रस्थंप्रस्थमिक्षुरसस्यच । दत्वामृद्वग्निनासाध्यंसिद्धंसर्पिर्निधापयेत् । शर्करायास्तुगाक्षीर्याःक्षौद्रस्यचपृथक्पृथक् ॥ भागांश्चतुष्पलांस्तत्र पिप्पल्याश्चावपेत्पलम् । पलंपूर्वमतोलीढ्वाततोन्नमुपयोजयेत् ॥ यइच्छेदक्षयंशुक्रंशेफसश्चोत्तमंबलम् ॥

अर्थ--नये उरद एक आढक, नये कैंच के बीज एक आढक, जीवक, ऋषभक, वाराहीकंद, मेदा, सितावर, मुलहटी और असगंध इनसबको एक एक कुडव लेवै चौगुने जल में चढाकर चौथाई शेष रहने पर उतारकर छानले फिर उस में एक प्रस्थ गौका घी, दसगुना दूध, विदारीकन्दका रस एकप्रस्थ, ईखका रस एक प्रस्थ इन सबको मिलाकर मन्दी मन्दी आग पर पकावै, जब घृत शेष रहजाय तब उसे निकालकर शर्करा, वंशलोचन, शहत प्रत्येक चार चार पल, पीपल एक पल लेकर ऊपर कहेहुए गुटकाकी तरह एक २ पलका सेवन करै, औषध सेवन के पश्चात् भोजन करै । इसके सेवन करनेसे शुक्र अक्षय और पुंजननेन्द्रिय अत्यन्त बलिष्ठ होजाती है ॥

वाजीकारण पिण्डरस ।

शर्करामापविदलास्तुगाक्षीरीपयोघृतम् गोधूमचूर्णषष्ठानिसर्पिष्युत्कारिकांपचेत् तांनातिपक्वांमृदितांकौवक्कुटेमधुरेरसे ॥ सुगन्धेमक्षिपेदुष्णेयथासान्द्रोभवेद्रसः । एषपिण्डरसोवृष्यःपौष्टिकोबलवर्द्धनः अनेनाश्वइवोदीर्णोबलीलिङ्गंसमर्पयेत्

शिखितित्तिरिहंसानामेवंपिण्डरसोमतः॥

अर्थ—शर्करा, उरदकी दाल का चून, वंशलोचन, दूध, घी, और गेहूंका चून इन सबको मिलाकर लपसी बनावे। पकाते समय जब कुछ पकजाय तबही इसमें कुक्कुटमांसरस डालदेवे और गरममेंही सुगंधित द्रव्य इलायची आदि डालकर धीरेधीरे चलाता रहे यहांतक कि वह गाढापडजाय। यह पिण्डरस अत्यन्त वृष्य पुष्टिकर्त्ता और बलवर्द्धक होता है, इसके सेवन से घोडेके समान रति करने में इच्छा होती है। मोर, तीतर और हंसों का पिण्डरस भी इसीतरह बनता है।

बलकारकरस।

घृतमाषान्सबस्ताण्डान्साधयेन्माहिषे-
रसे। भर्जयेत्तंरसंपूतंफलाम्लंनवसर्पिषि॥
ईषत्सलवणंयुक्तंधान्यजीरकनागरैः।
एषवृष्यश्चबल्यश्चबृंहणश्चरसोत्तमः॥

अर्थ—घी, उरद, बकरेके अंडकोष इनको भैंसके मांसरसमें पकाकर रसको निकाल लेवे इस रसमें ताजी घी, फलोंकी खटाई, थोडा सा नमक धनियां, जीरा, सोंठ मिलाकर सेवन करे। यह रस वृष्य, बलकर्त्ता, बृंहणकर्त्ता और बहुत उत्तम होता है।

दूसरा वृष्यरस।

चटकांस्तित्तिरिरसेतित्तिरीन्कौक्कुटेरसे।कुक्कुटान्बार्हिणरसेहांसेबार्हिणमेवच॥नवसर्पिषिसन्तप्तान्फलाम्लान्कारयेद्रसान्। मधुरान्वायथासात्म्यंगन्धाढ्यान्बलवर्द्धनान्॥

अर्थ—चटकमांसको तीतरके मांसरस में, तीतरके मांसको मुर्गेके मांसरसमें, मुर्गमांसको मोरके मांसरसमें, मोरमांस को हंसके मांसरस में सिद्ध करके गरम गरम को ताजी घी में छोंककर अनारदाने की खटाई और इलायची आदि मसाले डालकर मिश्रीसे मीठा कर के सेवन करे तो बलकी वृद्धि होय।

वृष्यमांस।

तृप्तिश्चटकमांसानांगत्वायोऽनुपिबेत्पयः
नतस्यबलशैथिल्यंस्यान्नशुक्रक्षयोनिशि।

अर्थ—जोपेट भरकर चटकका मांस खाकर ऊपरसे दूधपीले रात्रि में उसका बल तथा शुक्र कभी क्षीण न होगा।

वृष्य प्रयोग।

माषयूषेणयोभुक्त्वाघृताढ्यंषाष्टिकौदनम्।
पयःपिबतिरात्रिंसकृत्स्नांजागर्त्तिवेगवान्
ननास्यपितिरात्रीषुनिस्तब्धेनचशेफशा॥
तृप्तःकुक्कुटमांसानांभृष्टानांनक्ररेतसिः निः
स्तावमत्स्यण्डरसंभृष्टंसर्पिषिभक्षयेत्॥
हंसबर्हिणदक्षाणामेवमण्डानिभक्षयेत्।

अर्थ—मांषयूष के साथ घृतप्लुत भात खाकर उपरसे दूध पीवे वह ऐसा वेगवान् होजाय कि रात्रिभर न सोवे। अथवा मगर के वीर्यमें मुर्गेके मांसको भूनकर तृप्ति पर्य्यंत सेवन करे तो शेफकी निस्तब्धतासे रात्रिमें नींद न आवै। अथवा मछली के अंडोंके रसको निकालकर घृतमें भूनकर खाय अथवा हंस, मोर या मुर्गके अंडोंके रसको इसी तरह सेवन करे तो वाजीकरण होता है।

वाजीकरण सेवनविधि।

स्रोतःसुशुद्धेष्वमलेशरीरेवृष्यंयदाद्यं हित-
मत्तिकालेवृषायतेतेनपरंमनुष्यः। तद्-
बृंहणश्चैवबलमदश्च। तस्मात्पुराशोध-
नमेवकार्य्यंबलानुरूपंनहिवृष्ययोगाः।

सिध्यन्तिदेहेमलिनेप्रयुक्ताःक्लिष्टेयथावास सिरागयोगाः ॥

अर्थ—शरीरके शुद्ध होनेपर तथा स्रोतः- समूह के शुद्ध होनेपर यदि वृष्यपदार्थोंका सेवन कियाजाय तो उसके सेवन से मनुष्य वैलके समान वृष्य होजाताहै और उसही समय वह वृष्य पदार्थ बृंहणकर्त्ता औरबलवर्द्धक होता है।इसलिये पदार्थोंके सेवनसे पहिले वमन विरेचनादिसे शरीरको शुद्धकर लेना चाहिये विना देह की शुद्धिके वृष्य योग निष्फल होतेहैं जैसे मैले वस्त्रको रंगनेसे उसपर रंग नहीं चढताहै

प्रथम पादका संक्षिप्त वर्णन ।

वाजीकरणसामर्थ्यंक्षेत्रंस्त्रीयस्यचैवया ॥ येदोषानिरपत्यानांगुणाःपुत्रवताश्चये । उक्तास्तेशरमूलीयेपादेपुष्टिबलप्रदाः ॥ शपञ्चसंयोगावीर्य्यापत्यविवर्द्धनाः ॥

अर्थ—इस शरमूलीय नामक प्रथम पाद में वाजीकरणके योग्य स्त्रीको क्षेत्रत्व, जिसको जो स्त्री वाजीकरण योग्य, निःसन्तानपुरुष के दोष, सन्तानवाले पुरुषके गुण तथा पुष्टाई और वल बढाने वाले,वीर्योत्पादक तथा सन्तानोत्पादक पन्द्रह प्रयोगोंका वर्णन किया गयाहै

चिकित्सितेशरमूलीयो वाजीकरण पादःप्रथमः॥

द्वितीयपादः ।

अथातआसिक्तक्षीरीयंवाजीकरणपादं व्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम आसिक्तक्षीरीय नाम द्वितीय पादकी व्याख्या करेंगे ।

सन्तानोत्पादक गुटिका ।

आसिक्तक्षीरमापूर्णमशुष्कंशुद्धषष्टिकम् । [illegible] वपोड्येत् [illegible] क्षुण्णंविमर्दितंक्षीरेपीडयेत्सुसमाहितः । गृहीत्वातंरसंपूतंगव्येनपयसासह ।वीजानामात्मगुप्तायाधान्यमाषरसेनच ॥बलायाःसूर्पपर्ण्योश्चजीवन्त्याजीवकस्यच। ऋद्ध्यर्षभककाकोलीश्वदंष्ट्रामधुकस्यच॥शतावर्य्याविदार्याश्चद्राक्षाखर्जूरयोरपि । संयुक्तंमात्रयावैद्यःसाधयेत्तत्रचावपेत्॥तुगाक्षीर्य्याःसमापाणांशालीनांषष्टिकस्यच । गोधूमानाञ्चचूर्णानियैःससान्द्रीभवेद्रसः सान्द्रीभूतञ्चतंकुर्य्यात्प्रभूतमधुशर्करम्। गुडिकावदरैस्तुल्यास्ताश्चसर्पिषिसाधयेत्॥तायथाग्निप्रयुञ्जानःक्षीरमांसरसाशनः। पश्यत्यपत्यंविपुलंवृद्धोऽप्यात्मजमक्षयम्॥

अर्थ—पूर्णरस, हरे और शुद्ध साठी चांवलोंको दूधमें भिजोवै जब बहुत भीजजाय तब उन्हे खरल करले और दूधमें घोलकर वस्त्र में छानलेवै । इस रस में गौका दूध मिलावे । फिर इसमें कैंचके वीज, धनिया, माषरस, खरैटी, मुद्गपर्णी माषपर्णी, जीवन्ती, जीवक, ऋद्धि, ऋषभक काकोली, गोखरू, मुलहटी, सितावर, विदारीकन्द, दाख, खिजूर, इन सबका क्वाथ उसमें मिलाकर पकालेवै जब ये पकने पर आजाय तब वंशलोचन, उरदका चून, शाली चांवलका चून, षष्टिक चून, गेहूंका चून इन को घी में भूनकर उसमें डालदे और कलछीसे चलाता रहै जबतक वह गाढा होजाय, गाढा होनेपर शहत और सफेद बूरा बहुतसा डालदे, फिर इसकी बेरकी बराबर गोली वनाकर घी में तल लेवै । अपनी अग्निके बलके अनुसार इनका से-

वनकरे और ऊपर खूब दूध पीवै, खूबमांसरस पीवै। इस वाजीकरणके सेवन करने से बुढापमे भी दीर्घजीवी सन्तान होती है।

द्वितीय प्रयोग।

चटकानांसहंसानांदक्षाणांशिखिनांतथा। शिशुमारस्यनक्रस्यभिषक्शुक्राणिसंहरेत्। गव्यंसर्पिर्वराहस्यकुलिङ्गस्यवसामपि। षष्टिकानाञ्चचूर्णानिचूर्णंगोधूममेवच॥ एभिःपूपलिकाःकार्य्याःशष्कुल्योवर्त्तिकास्तथा॥ पूपाधानाश्चविविधाभक्ष्याश्चान्येपृथग्विधाः। एषांप्रयोगाद्भक्ष्याणांस्तब्धेनापूर्णरेतसा॥ शेफसावाजिवद्यातियावदिच्छंस्त्रियोनरः।

अर्थ—चटक, हंस, मुर्गी, मोर, शिशुमार और मगरका वीर्य लावे तथा गौका घी शूकरकी चर्बी, चटककी चर्बी तथा चांवलों का चून और गेंहूका चून इनसबको मिलाकर पूरी. शष्कुली बाबाटी अथवा और तरह तरहके भक्ष्य पदार्थ बनालेवै। इनका सेवन करनेसे शेफेन्द्रिय स्तब्ध और शुक्रसे भरी हुई रहती हैं अथच पुरुष इच्छानुसार स्त्री गमन करसकता है।

तीसरा प्रयोग।

आत्मगुप्ताफलंमाषःखर्जूरानिशतावरीम् शृङ्गाटकानिमृद्वीकांसाधयेत्प्रसृतोन्मितां क्षीरप्रस्थंजलप्रस्थंएतत्प्रस्थावशेषतम्। शुद्धेनवाससापूतंयोजयेत्प्रसृतैस्त्रिभिः। शर्करायास्तुगाक्षीर्य्याःसर्पिषोऽभिनवस्य च॥ तत्पाययेतसक्षौद्रंषष्टिकान्नश्चभोजयेत्ः जरापरीतोऽप्यबलोयोगेनानेनविन्दति॥ नरोऽपत्यंसुविपुलंयुवेवचसहृष्यति।

अर्थ—कैंचकेबीज,उरद,खिजूर,सितावर-सिंघाडे और दाख इनसब को एक एक प्रसृत (८ तोले)लेवै इनमें एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ [६४ तोले] जल डालकर सिद्ध करै। एक प्रस्थ जल शेष रहने पर उतारकर छान डाले और इस रसमें शर्करा, वंशलोचन और ताजी घी प्रत्येक तीन तीन प्रसृत मिलादेवै इस औषध को शहतमें मिलाकर सेवनकरै चांवलोंका भात खाय, जराग्रस्त और निर्बल मनुष्य भी इसके सेवनसे युवाकी तरह आल्हादित होकर बहुत सन्तानप्राप्तकरेगा

चौथा प्रयोग

खर्जूरीमस्तकंमाषान्पयस्यांसशतावरीम् खर्जूराणिमधूकानिमृद्वीकामजड़ाफलम् पलोन्मितानिमतिमान्साधयेत्सलिलाढके। तेनपादावशेषेणक्षीरप्रस्थंविपाचयेत्। क्षीरशेषेणतेनाद्यात्घृताढ्यंषष्टिकौदनम्॥ सशर्करेणसंयोगएषवृष्यःपरंस्मृतः।

अर्थ—खिजूर, उरद, क्षीरकाकोली, सितावर, खिजूर, महुआ, दाख, कैंचके बीज इन सबको एक एक पल लेकर एक आढक जलमें चढादेवै जब चौथाई रहजाय तब छानकर इस रसमें एक प्रस्थ दूध पकावै जब जल जलजाय और दूध शेष रहजाय तब उसका सेवनकरै। ऊपरसे घृतप्लुत भातका भोजनकरै भातमें सफेद बूराभी मिलालेवै। यह अत्यन्त वृष्य योग है।

पाँचवां प्रयोग।

जीवकर्षभकौमेदांजीवन्तींश्रावणीद्वयम्॥ खर्जूरंमधुकंद्राक्षांपिप्पलींविश्वभेषजम्। शृङ्गाटकांविदारीञ्चनवंसर्पिःपयोजलम्

शहत और खांड मिलाकर पानकरै तौ निश्चय सन्तान होय ।

अन्यप्रयोग ॥

त्रिंशत्सुपिष्टाःपिप्पल्यःप्रकुञ्चेतैलसार्पिषोः भृष्टाःसशर्कराक्षौद्राःक्षीरधाराप्रदोहिताः। पीत्वायथाबलञ्चोर्द्धंषष्टिकंक्षीरसर्पिषा। भुक्त्वानरःत्रिमस्तब्धंलिङ्गंपश्यतिनाक्षरत्।

अर्थ–तीस पीपलों को पीसकर चार तोले घी तेल में भून लेवे, फिर इसमें खांड और घी मिलाकर एक पात्रमें धरले और उसी पात्रमें गौ का दूध दोहकर बलके अनुसार पान करै और ऊपर से दूध, घी और भातका भोजन करै तो रात्रिभर शेफेन्द्रिय शिथिल न होगी और स्तम्भता भी होगी ॥

अन्यप्रयोग ॥

श्वदंष्ट्रायाविदार्य्याश्चरसेक्षीरचतुर्गुणे । घृताढ्यःसाधितोवृष्योमाषषाष्टिकपायसः॥

अर्थ–गोखरूकारस, विदारीकन्दकारस इन दोनोंसें चौगुना दूध लेकर उरद और साठीचांवलकी खीर बनाकर घी डालकर भोजनकरै तो यह भी वृष्य है ॥

अन्यप्रयोग ॥

फलानांजीवनीयानांस्निग्धानांरुचिकारिणाम् ।कुडवश्चूर्णितानांस्यात्स्वयंगुप्ताफलस्यच ॥ कुडवश्चैवमाषाणांद्वौद्वौच तिलमुद्गयोः। गोधूमशालिचूर्णानांकुडव कुडवोभवेत् ॥ सर्पिषःकुडवश्चैकस्तत्सर्वं क्षीरसंयुतम् । पक्त्वापूपलिकाःखादेद्बह्व्यःस्युर्यदियोषितः ॥

अर्थ–स्निग्ध और रुचिकारक जीवनीय गणोक्त द्रव्योंके फलोंका एक कुडवचूर्ण, कैंचके बीजोंका चूर्ण एक कुडव, उरद का चूर्ण दोकुडव, तिलकाचून दोकुडव, मूंगका चून दोकुडव गेहूंकाचून एककुडव, शाली चांवलों का चून एक कुडव घी, दो कुडव इन सबको दूधमें मांडकर घी में उतार लेवै। परन्तु जिसके बहुत स्त्रियां हो वही इसका प्रयोग करै ॥

अन्यप्रयोग ॥

घृतंशतावरीगर्भंक्षीरेदशगुणेपचेत्। शर्करापिप्पलीक्षौद्रयुक्तंतद्वृष्यमुत्तमम् ॥

अर्थ—घी और सितावरकी गुली को दस गुने दूध में पकावे फिर इस में खांड, पीपल और शहत मिलाकर भोजन करै तो वह उत्तम वृष्य प्रयोग होवै ॥

अन्यप्रयोग ॥

कर्षंमधुकचूर्णस्यघृतक्षौद्रसमांशिकम् । प्रयुंक्तेयःपयश्चानुनित्यवेगःसनाभवेत् ॥

अर्थ–मुलहटीका चूर्ण एककर्ष और इसमें बराबरका घी शहत मिलाकर चाटले ऊपर से दूध पीले तौ अत्यन्त वेगकी प्राप्तिहोवै॥

अन्यप्रयोग ।

घृतक्षीराशनोनिर्भीर्निर्व्याधिर्नित्यगोयुवा सङ्कल्पप्रवणोनित्यंनरःस्त्रीषुवृषायते ॥

अर्थ—यदि दूध और घीका सेवन ऐसा पुरुष करै जो निर्भय, व्याधिरहित आन्हिक कर्मका करनेवाला और संकल्प करनेवालाहो तौ विजारकी तरह स्त्रियोंसे रमण करै ।

अन्यप्रयोग ।

कृतैककृत्याःसिद्धार्थायेचान्योऽन्यानुवर्तिनःकलासुवाह्वायेतुल्याःसत्वेनवयसाच ये ॥ कुलमाहात्म्यदाक्षिण्यशीलशौचस-

मन्विताः । येकामनित्यायेहृष्टायेविशोका गतव्यथाः ॥ येतुल्यशीलायेभक्तायेप्रियायेप्रियम्वदाः।तैर्नरः सहविस्रब्धःसुवयस्यैर्वृषायते ।

अर्थ— एकही कर्मके करनेवाले, सिद्ध संकल्प, अन्योन्यानुवर्त्ती, वाह्यकला तथा सत्व और वयमें परस्पर तुल्य, सत्कुलोद्भव, प्रशंसनीय, चतुर,शील सम्पन्न, पवित्रता परायण भोगिया, हृष्ट, शोकरहित, गतव्यथ,समान शीलसम्पन्न,अन्योन्य प्रेमी, प्रियवक्ता ऐसे समान वय वाले पुरुषोंके साथ रहनेसेभी मनुष्य वृष्य होताहै।

अन्यप्रयोग ।

अभ्यङ्गोत्सादनस्नानगन्धमाल्यविभूषणैः गृहशय्यासनसुखैर्वासोभिरहतैःप्रियैः । विहङ्गानांरुतैरिष्टैःस्त्रीणाञ्चाभरणस्वनैः संवाहनैर्वरस्त्रीणामिष्टानाञ्चवृषायते ॥

अर्थ—तैलमर्दन, उवटना, स्नान, अतरलगाना, फूलमाला धारणकरना, आभूपण पहरना, सुखदायक घर, सेज, आसनोंपर सोना बैठना, सुन्दर सावत हलके मनोनुकूल वस्त्र धारणकरना, चित्ताकर्षक पक्षियों के कलरव श्रवणकरना, स्त्रियोंके भूपणोंकी छनाछन श्रवणकरना, सुन्दर मनोनुकूल स्त्रियोंसे पगचम्पी करना इन कार्य्यों से भी मनुष्य वृष्य होताहै ॥

अन्यप्रयोग ।

मत्तद्विरेफाचरिताःसपद्माःसलिलाशयाः। जात्युत्पलसुगन्धीनिशीतगर्भगृहाणिच॥ नद्यःफेनोत्तरीयाश्चगिरयोनीलसानवः । उन्नतिर्नीलमेघानांरम्यचन्द्रोदयानिशाः। वायवःसुखसंस्पर्शाःकुमुदाकारगन्धिनः। रतिभोगक्षमाराज्यःसङ्कोचागुरुवल्लभाः ॥ सुखाःसहायाःपरपुष्टघुष्टाः फुल्लावनान्ता विशदान्नपानाःगान्धर्वशब्दश्चसुगन्धमाल्याःसत्त्वंविशालंनिरुपद्रवञ्च । सिद्धार्थताचाभिनवश्चकामःस्त्रीचायुधंसर्वमिहात्मजस्य। वयोनवंजातमदश्चकालो हर्षस्ययोनिःपरमानराणाम् ॥

अर्थ—ऐसे जलाशयोंपर विहारकरना जहां खिलेहुए कमलोंपर मतवाले भौंरे गुंजार कररहेहों, जहां चमेली और कमलकी सुगन्ध की महक माररही हो, शीतल घरहों, जहां झागदार नदियां वहरहीहों, ऐसे पर्वतों पर विहारकरना जिनके नीलवर्ण के शिखर अत्यन्य शोभायुक्तहों, काली २ घटा सिरके ऊपर घिर आईहो, रात्रिमें जव चन्द्रमाकी शीतलचांदनी छिटक रहीहो,जहां कुमोदनियें के गन्धसे सुगन्धित पवन शरीरको स्पर्श करताहो, रमणके योग्य जाडेकी रात्रियों में, जहां वडे बूढोंका सकोच न हों, जहां सुखोत्पादक सम्पूर्ण सामान उपस्थित हो, खिलेहुए उपवनों में जहां कोकिला कुहुक माररहीहो, विशद अन्नपान का सेवन हो, गाने वजाने की मन्द २ तान कान में प्रवेश कर रहीहो सुगन्धित फूलमाला धारण कर रक्खे हों, विशाल और उपद्रव रहित सत्व सेवन, सिद्ध संकल्पता, नित्य नई अभिलाषाका पूर्ण होना कामदेवकी शस्त्र रूप स्त्रियोंकी उपस्थिति,नवी नवय,वसन्तऋतुये सबवातें मनुष्योंको हर्षित करने वाली हैं ॥

तृतीयपादका संक्षिप्त वर्णन

प्रहर्षयोनयोयोगाव्याख्यातादशपञ्च च ।

लीचांवलकाचून,साठीचांवलकाचून,इनमेंखांड विदारीकन्द और तालमखानाडालकर दूधमें मांढ कर घीमें टिकडी उतार लेवै, इनको खाकर ऊपरसे दुग्ध पानकरै तो बहुत ही शीघ्र अत्यन्त वृषताकी प्राप्तिहोती है ॥

अन्य प्रयोग

शर्करायास्तुलैकास्यादेकागव्यस्यसर्पिषः॥ प्रस्थेविदार्य्याः चूर्णस्यपिप्पल्याःप्रस्थएव च । अर्द्धाढकन्तुगाक्षीर्याःक्षौद्रस्याभिनवस्यच ॥ तत्सर्वंमूर्च्छितंतिष्ठेन्मार्त्तिके घृतभाजने ।मात्रामग्निसमांतस्यप्रातःप्रातः प्रयोजयेत्॥ एषवृष्यःपरंयोगःवल्योवृंहणएवच ।

अर्थ—खांड एकतुला, गौकाघी एक तुला, विदारीकन्द एकप्रस्थ, पीपल एक प्रस्थ, वंशलोचन आधा आढक, नयामधु आधा आढक, इन सबको मिलाकर घी की चिकनी हांडीमें भरदे, अग्निबल के अनुसार प्रतिदिन प्रातः काल इसकी मात्रा सेवन करै । यह योग अत्यन्त वृषताकारक, बलकारक और वृंहणकर्त्ता है ॥

अन्यप्रयोग ।

शतावर्य्याविदार्याश्चतथामाषात्मगुप्तयोः श्वदंष्ट्रायाश्चनिष्क्वाथानञ्जलेपुपृथक्पृथक् साधयित्वाघृतप्रस्थंपयस्यष्टगुणेपुनः ॥ शर्करामधुसंयुक्तमपत्यार्थीप्रयोजयेत् ।

अर्थ—सितावर, विदारीकन्द, उरद, कैंचके बीज, गोखरू इन सबका पृथक् २ एक २ अंजलिक्वाथ लेवै इनमें एक प्रस्थ घी और आठगुना जल डालकर पकावै,फिर खांड और शहत मिलाकर, यह मनुष्य इस को सेवन करै जिसे सन्तान की इच्छा हो॥

अन्यप्रयोग ।

घृतपात्रंशतगुणेविदारीस्वरसेपचेत्॥सिद्धेपुनःशतगुणेगव्येपयसिसाधयेत्॥शर्करायास्तुगाक्षीर्याःक्षौद्रस्येक्षुरसस्यच॥पिप्पल्याःसजडायाश्चभागैःपादांशिकैर्युतम् । गुडिकाःकारयेद्वैद्योयथास्थूलमुदुम्बरम् ॥ तासांप्रयोगात्पुरुषःकुलिङ्गइव हृष्यति ।

अर्थ—एकपात्र घीको सौगुने विदारीकन्द के रसमें पकावै, फिर घृतके शेष रहने पर उसे सौगुने गौके दूधमें पकावै, फिर जब घी शेषरहजाय तब उसकी चौथाई खांड, वंशलोचन, शहत, तालमखाने पीपल और कैंचके बीज डालकर गूलर के बराबर गोली बनालेबै । इनके सेवन करनेसे मनुष्य चिरौंटेकी तरह वृष्य हो जाता है ।

अन्यप्रयोग ।

सितोपलापलशतंतदर्द्धंनवसर्पिषःक्षौद्रपादेनसंयुक्तंसाधयेज्जलपादिकम् ॥ सान्द्रेद्वौधूमचूर्णानांपादंस्तीर्णेशिलातले । शुचौश्लक्ष्णेसमुत्कीर्येमर्दनेनोपपादयेत्॥शुद्धाउत्कारिकाःकार्याश्चन्द्रमण्डलसन्निभ तासांप्रयोगाद्गजवान्नारीःसन्तर्पयेन्नरः॥

अर्थ—खांड सौपल, ताजीघी पचासपल शहत पच्चीसपल, और जल पच्चीसपल इनको अग्निपर चढाकरचलातारहै जब गाढापडनेलगै तब २९ पल गेंहूका, चूनमिलाकर धीरे २ पकाकर उतारले, फिर एक स्वच्छ सिलपर डालकर सबको माड डाले, यह चन्द्रमण्डल के समान उत्कारिका ब-

नतीहै इसके सेवनसे मनुष्य हाथी की तरह स्त्रीको प्रसन्न करनेमें समर्थ होता है ।

अन्यप्रयोग ॥

यत्किञ्चिन्मधुरंस्निग्धंजीवनंबृंहणंगुरुःहर्षणं मनसश्चैवसर्वन्तद्वृष्यमुच्यते ॥द्रव्यैरेवंवि धैस्तस्माद्भावितःप्रमदांव्रजेत् । आत्मवे गेनचोदीर्णःस्त्रीगुणैश्चप्रहर्षितः ॥ गत्वा स्नात्वापयःपीत्वारसंचानुशयीतना । त थासाप्यायतेभूयःशुक्रञ्चबलमेवच ॥

अर्थ—जो २ पदार्थ मीठे, स्निग्ध, जीवनकर्त्ता, बृंहण, भारी, और मनको हर्ष उत्पन्न करनेवालेहैं वे सब वृष्य होतेहैं इस लिये मधुर द्रव्योंका सेवन करके स्त्री गमन में प्रवृत होवै । आत्मवेगसे उदीर्ण होकर वा स्त्रीके गुणोंसे प्रहर्षित होकर स्नान करके दुग्ध वा मांसरस पान करके शयन करै तो पूर्ववत् बल वीर्यकी वृद्धिहोय ॥

शुक्रोपलब्धिकासमय ॥

यथामुकुलपुष्पस्यसुगन्धोनोपलभ्यते । लभ्यतेतद्विकाशात्तुतथाशुक्रंहिदेहिनाम्॥

अर्थ—जैसे फूलकी कली में यद्यपि सुगन्ध होतीहै परवहमालूमनहींहोती वह सुगन्धि फूल केखिलनेपरहीमिलती है इसी तरह वीर्य यद्यपि बालकपन में भी होता है परन्तु विना युवावस्था के प्राप्तहुए उसकी उपलब्धि नहीं होसक्ती है ॥

सम्भोगकाल ।

नर्त्तेवषोड़षाद्वर्षात्सप्तत्याःपरतोनच । आयुष्कामोनर स्त्रीभिःसंयोगंकर्तुमर्हति॥ अतिवालोह्यसम्पूर्णसर्वधातुःस्त्रियांव्रजन् उपतप्येतसहसातडागमिवकाजलम् ॥ शुष्कंरूक्षंयथाकाष्ठंजन्तुजग्धंविजर्जरम् । स्पष्टमाशुविशीर्येततथावृद्धःस्त्रियोव्रजन्॥

अर्थ—जो मनुष्य दीर्घजीवी होना चाहता है उसे उचितहै कि सोलह वर्षकी अवस्था से पहिले और सत्तर वर्षकी अवस्थासे पीछे स्त्री सहवासमें प्रवृत न हो । बालकपनमें सम्पूर्ण धातु अपूर्ण होतीहैं इससे उस अवस्थामें स्त्रीसहवास करनेसे उसका वीर्य ऐसे शुष्क होजाता है जैसे गरमीके कारण थोडे जलका सरोवर सूखजाता है॥जैसे सूखा रूखा कीडों से खाया हुआ और जर्जरीभूतकाष्ठ हाथ लगतेही टूट जाताहै इसी तरह वृद्ध पुरुषभी स्त्रीसह वास करनेसे विशीर्ण होजाता है

शुक्रक्षीण के कारण ।

जरयाचिन्तयाशुक्रंव्याधिभिःकर्मकर्षणात् क्षयंगच्छत्यनशनात्स्त्रीणाञ्चातिनिषेवणात्

अर्थ—बुढापेसे, चिन्ताग्रस्त होनेसे रोगोंसे परिश्रमजनक कार्योंके करने से, भोजन न करनेसे वा स्त्रियोंके अत्यन्त सेवनसे शुक्रक्षीण होजाता है ॥

क्षयाद्भयादविश्रम्भाच्छोकात्स्त्रीदोषदर्श नात्नारीणामरसज्ञत्वादभिचारादसेवना त्॥तृप्तस्यापिस्त्रियोगन्तुंनशक्तिरुपजायते देहसत्वबलापेक्षीहर्षःशक्तिश्चहर्षजा ॥

अर्थ—क्षय, भय, अविश्वास,शोक, स्त्रीदोषदर्शन, स्त्रियोंकी अरसज्ञता, अभिचार-असेवन इन कर्मोंसे तथा जिस का मन स्त्री संग से तृप्त होगयाहो उसको स्त्रीगमन की शक्ति उत्पन्न नहीं होती है । क्योंकि हर्ष तो देह बल और सत्वबलके आधीनहै और शक्ति हर्ष से उत्पन्न होती है ॥

शुक्र का स्थान ।

रसइक्षौयथादध्निसर्पिस्तैलन्तिलेयथा ।
सर्वत्रानुगतंदेहेशुक्रंसंस्पर्शनेतथा ॥ तत्
स्त्रीपुरुषसंयोगचेष्टासंकल्पपीड़नात् ।
शुक्रंप्रच्यवतेस्थानाज्जलमार्द्रात्पटादिव॥

अर्थ—जैसे ईखमें रस, दही में घी और तिलों में तेल सर्वत्र रहताहे उसीतरह वीर्यभी सर्व देहमें तथा त्वचामें रहताहै । वह वीर्य स्त्री पुरुषके संयोग, चेष्टा, संकल्प, पीड़नादिसे ऐसे बाहिर निकल आता है जैसे गीले वस्त्रसे जल टपकताहै ।

वीर्य निकलने के हेतु ।

र्षात्तर्षात्सरत्वाच्चपैच्छिल्याद्गौरवादपि
अनुप्रवत्वात्सौक्ष्म्याच्चद्रुतत्वान्मारुतस्य
च॥ अष्टाभ्यएभ्यहेतुभ्यःशुक्रंदेहात्प्रसि
च्यते। चरतोविश्वरूपस्यरूपद्रव्यंयदुच्यते।

अर्थ—हर्ष, अभिलाषा, सरलता, पिच्छिलता, गुरुता, द्रवता सूक्ष्मता और वायुके वेग इन आठ कारणोंसे शुक्र देहसे वाहर निकलता है । यह शुक्र विश्वरूपमें चरणशील द्रव्यों की मूर्ति है ॥

फलोपयोगीशुक्र ॥

बहुलंमधुरंस्निग्धंअविस्रंगुरुपिच्छलम् ।
शुक्लं बहुचयच्छुक्रंफलवत्तदसंशयम्

अर्थ—जो वीर्य गाढा, मधुर, स्निग्ध, दुर्गन्धरहित, पिच्छिल, गुरु, शुक्लवर्ण और बहुत होताहै वह निश्चयफलवान् होताहै ।

वाजीकरण की निरुक्ति ॥

येननारीषुसामर्थ्यंवाजीवल्लभतेनरः ।
व्रजेच्चाभ्यधिकंयेनवाजीकरणमेवतत् ।

अर्थ—जिससे मनुष्य को स्त्रियों केसाथ सम्भोग करनेकी घोडे की तरह शक्ति होजातीहै और सम्भोग करनेमें अधिक२ प्रवृत्ति होतीहै उसहीको वाजीकरण कहते हैं ।

चतुर्थपादकीसूची ।

हेतुर्योगोपदेशस्ययोगाद्वादशचोत्तमाःयत्
पूर्वंमैथुनात्सेव्यसेव्यंतन्मैथुनादनु॥यदा
नसेव्याःप्रमदाःकृत्स्नः शुक्रविधिश्चयः ।
निरुक्तश्चेहनिर्दिष्टपुमान्जातबलादिकम्।

अर्थ—दूसरे अध्यायके इस पुमान जात बलादि नामक चतुर्थपाद में वाजीकरणोपयोगी प्रयोगों के हेतु, वाजीकरणके उत्तम२ बारह प्रयोग, जो वस्तु मैथुनसे पहिले तथा पीछे सेवन करने कीहैं । स्त्री से सम्भोग न करनेका काल, सम्पूर्ण शुक्रविधि और वाजीकरण शब्द की निरुक्ति वर्णन की गईहै॥

जातबलादिको नाम चतुर्थःपादः

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविर
चितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांचिकित्सि-
तस्थाने वाजीकरणप्रयोगकथनं
नामद्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

—=○)|+|(○=—

अथतृतीयोऽध्यायः

अथातोज्वरचिकित्सितंव्याख्यास्याम
इतिहस्माहभगवानात्रेयः

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम ज्वर चिकित्सित नाम अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

विज्वरंज्वरसन्देहंपर्यपृच्छत्पुनर्वसुम् ।
विविक्तेशान्तमासीनमग्निवेश कृताञ्जलिः
देहेन्द्रियमनस्तापीसर्वरोगाग्रजोबली ॥

ज्वरःप्रधानंरोगाणामुक्तोभगवतापुरा ॥ तस्यमाणिसपत्नस्यध्रुवस्यमलयोदये । प्रकृतिश्चप्रवृत्तिश्चप्रभावंकारणानिच ॥ पूर्वरूपमधिष्ठानंबलकालात्मलक्षणम् । व्यासतोविधिभेदश्चपृथग्भिन्नस्यचाकृतिम् ॥ लिङ्गमामस्यजीर्णस्यसनिपेधंक्रियाक्रमम् । विमुञ्चतःप्रशान्तस्यचिन्हं पञ्चपृथक्पृथक् ॥ ज्वरावशिष्टोरक्ष्यश्च यावत्कालंयतोयतः । प्रशान्तःकारणैर्यैश्चपुनरावर्ततेज्वरः॥याश्चापिपुनरावृत्तिं क्रियाःप्रशमयन्तितम् ।जगद्धितार्थंतत्सर्वंभगवन् ! वक्तुमर्हसि ॥ तदग्निवेशस्य वचोनिशम्यगुरुरब्रवीत् । ज्वराधिकारे यद्वाच्यन्ततत्सौम्य ! निखिलंशृणु ॥

अर्थ—अग्निवेशने हाथ जोडकर एकान्तमें शान्तभावसे बैठे हुए निरोग पुनर्बसुसे ज्वरके विषयमें यह प्रश्नकिया कि हे भगवन्! आपने पहिले यह कहाथाकि"ज्वर रोगोंमें प्रधानहै यह देह इंद्रिय और मनको सन्तप्त करनेवाला और बलीहै यह सम्पूर्ण रोगोंसे प्रथम उत्पन्न हुआ है" इसलिये इस प्राणोंके नाश करने वाले और जन्म समय और मरण समयमें अवश्य होनेवाले ज्वरकी प्रकृति प्रवृत्ति, प्रभाव, कारण, पूर्वरूप, अधिष्ठान, बल, काल, लक्षण, विस्तारपूर्वक विधिभेद, जुदे२ ज्वरकी जुदी २ आकृति, आम और जीर्णज्वर के लक्षण और चिकित्सा का क्रम, ज्वरके छोडनेके तथा शान्त होनेके पृथक् २ लक्षण ज्वरत्यक्त पुरुष की जितने दिन और जिस कारण से रक्षा करनी चाहिये, शान्त हुआ ज्वरभी जिनकारणोंसे फिर उत्पन्न होजाता है, जिस चिकित्सा से फिर उत्पन्न हुआ ज्वर शांत होजाताहै, हे भगवन्! ये सब आप जगतके हितके लिये मुझसे कहिये।

अग्निवेशके इस वचनको सुनकर पुनर्बसु बोलेकि हे सौम्य! ज्वराधिकार में जो कुछ वर्णनके योग्य विषयहै उसे सुन ॥

ज्वरके पर्य्यायवाचीनाम ॥

ज्वरोविकारोरोगश्चव्याधिरातङ्कएवच । एकार्थनामपर्यायैर्विविधैरभिधीयते ॥

अर्थ—ज्वर, विकार, रोग, व्याधि और आंतक ये सब एकार्थवाची शब्द ज्वरके पर्य्यायहैं

ज्वरकाकारण ॥

तस्यप्रकृतिरुद्दिष्टादोषा शारीरमानसाः। देहिनंनहिनिर्दोषंज्वरःसमुपसर्वते ॥ क्षयस्तमोज्वरःपाप्मामृत्युश्चोक्तोऽयमात्मजः पञ्चत्वप्रत्ययान्नृणांवद्धानांस्वेनकर्मणा॥ इत्यस्यप्रकृतिःप्रोक्ताप्रवृत्तिस्तुपरिग्रहः । निदानपूर्वमुद्दिष्टारुद्रकोपाच्चदारुणात् ॥

अर्थ—शारीरिक और मानसिकदोष ज्वरकी उत्पातिके कारण है दोषरहित प्राणी को ज्वर कभी नहीं सताताहै। अपने २ कर्म्मोंसे वद्ध मनुष्योंके मर जानेके निश्चय से यह आत्मजज्वर क्षय तम, पाप्मा और मृत्यु कहलाताहै। यह ज्वरकी प्रकृति वर्णन की गईहै, प्रवृत्ति कोही उत्पत्ति कहतेहैं। यह प्रवृत्ति रुद्र के दारुण कोपसे हुईहै यह बात निदानस्थानमें वर्णन करचुके हैं ॥

ज्वरोत्पत्तिमें विशेषवर्णन ।

द्वितीयेहियुगेसर्वमक्रोधव्रतमास्थितम् । दिव्यंसहस्रंवर्षाणामसुराअभिदुद्रुवुः ॥ तपोविघ्नंशमीकर्त्तुन्तपोविघ्नंमहात्मनाम्।

पश्यन्समर्थश्चोपेक्षाश्चक्रेरुद्रःप्रजापतिः॥ पुनर्माहेश्वरंभागंध्रुवंदक्षःप्रजापतिः। यज्ञे नकल्पयामासमोच्यमानःसुरैरपि । ऋ च:पशुपतेर्याश्चशैव्यआहुतयश्चयाः॥यज्ञ सिद्धिप्रदास्ताभिर्हीनंचैवसइष्टवान्। अ थोत्तीर्णव्रतोदेवोबुद्ध्वादक्षव्यतिक्रमम्॥ रुद्रोरौद्रंपुरस्कृत्यभावमात्मविदात्मनः । सृष्ट्वाललाटेचक्षुर्वैदग्ध्वातानसुरान्प्रभुः वाणंक्रोधाग्निसन्तप्तमसृजच्छत्रुनाशनम्। ततोयज्ञःसविध्वस्तोव्यथिताश्चदिवौकसः दाहव्यथापरीताश्चभ्रान्ताभूतगणादिशः अथेश्वरंदेवगणःसहसप्तर्षिभिर्विभुम् ॥ त मृग्भिरस्तुवन्यावच्छिवेभावेशिवःस्थितः शिवंशिवायभूतानांस्थितंज्ञात्वाकृताञ्ज- लिः ॥ क्रोधाग्निरुक्तवान्देवमहंकिङ्करवा- णिते। तमुवाचेश्वरःक्रोधंज्वरोलोकेभवि- ष्यसि ॥ जन्मादौनिधनेचत्वामपिचा न्तरेषुच ।

अर्थ—सुनते चले आतेहैं कि त्रेतायुग में महादेवने दिव्य सहस्रवर्षका अक्रोध व्रत अवलम्बन कियाथा, इस बीचमें असुरोंने बडा उपद्रव मचाया और महात्माओंके तप में बडा विघ्न हुआ, अपने अक्रोधव्रत में विघ्न पडनेके कारण समर्थ होकर भी महादेवने उनके विघ्नोंको दूर करनेकी उपेक्षाकी। इसीसमयमें दक्षप्रजापतिने यज्ञ कियाथा और यद्यपि देवताओंने उसको सचेतभी किया तथापि यज्ञमें महादेवका भाग न निकाला और यज्ञको सिद्ध करनेवाली जो पशुपति संबंधी ऋचा और शैव्य आहुतिहैं उनके विनाही यज्ञ किया। जब महादेवका अक्रोधव्रत समाप्त होगया तब आत्मवित् रुद्रने दक्षके व्यतिक्रमको जान कर अपना रौद्र भाव प्रकट करके अपने ललाटस्थ तृतीय नेत्रको खोलकर प्रथम उन असुरोंको जलादिया और तदनन्तर शत्रुनाशकर्त्ता क्रोधाग्निसे संतप्तवाण छोडे उनसे यज्ञ विध्वंस होगया सम्पूर्ण देवगण व्यथित होगये। और भूत गण दाह और व्यथासे पीडित होकर दिशा विदिशाओंमें भागने लगे। इस दशा को देखकर सप्तर्षि समेत सम्पूर्ण देवगण विभुरूप महादेवकी ऋग्वाक्योंसे उससमय तक स्तुति करतेरहे जबतक शिव शान्तभावमें स्थित न हुए। प्राणियों के कल्याणके निमित्त शिवको शान्तभावमें स्थित देखकर क्रोधाग्निने हाथ जोडकर महादेवसे कहा कि हे देव! अब मैं क्याकरूं! यह सुनकर महादेवने क्रोधसे कहा कि तू ज्वररूप होकर संसार में विचर जन्मकालमें मरणसमय में और बीचमें भी तू उत्पन्न होता रहेगा॥

ज्वरकेप्रभाव॥

सन्तापःसारुचिस्तृष्णाचाङ्गमर्दोहृदिव्यथा ज्वरप्रभावोजन्मादौनिधनेचमहत्तमः ॥

अर्थ-सन्ताप,अरुचि,तृष्णा,अंगमर्द हृदयमें वेदना,ये ज्वरके प्रभावहैं,तथा जन्म और मरण के समययें अत्यन्त तीव्ररूप से होतेहैं॥

प्रकृतिश्चप्रवृत्तिश्चप्रभावश्चप्रदर्शितः॥निदानेकारणान्यष्टौपूर्वोक्तानिविभागशः।

अर्थ—ज्वरकी प्रकृति प्रवृत्ति और प्रभाव इसतरह वर्णन किया गयाहै। इस ग्रन्थ के निदानस्थानमें ज्वरके आठ कारण भी पृथक् २ कर दिये गयेहैं॥

ज्वरकेपूर्वरूप ।

आलस्यंनयनेसास्रेजृम्भणंगौरवंक्लमः ॥ ज्वलनातपवाय्वम्बुभक्तिद्वेषावनिश्चितौ॥ अविपाकास्यवैरस्यंहानिश्चबलवर्णयोः॥ शीलवैकृतमल्पञ्चज्वरलक्षणमग्रजम् ।

अर्थ—आलस्य, नेत्रोंमें आंसू भर आना, जम्हाई, भारापन, क्लान्ति, कभी अग्नि, धूप वायु और जलका अच्छा लगना और कभी बुरा लगाना, अविपाक, मुखमें बिरसता, बल और वर्णकी हानि तथा स्वभावका कुछ विकृत होजाना ये सब ज्वरके पूर्वरूप हैं॥

ज्वरका अधिष्ठान ।

केवलंसमनस्कश्चज्वराधिष्ठानमुच्यते ॥ शरीरन्बलकालस्तुनिदानेसम्प्रदर्शितः ।

अर्थ—ज्वर का अधिष्ठान मन और शरीर दोनों है । ज्वरग्रस्त होने पर शरीरकी दशा तथा ज्वर के बल और काल ये सब निदानस्थान में दिखाये गये है ।

ज्वर के लक्षण ।

ज्वरप्रत्यात्मिकंलिङ्गंसन्तापोदेहमानसः॥ ज्वरेणाविशताभूतंनहिकिञ्चिन्नतप्यते ।

अर्थ—शारीरिक और मानासिक सन्ताप ज्वरका साधारण लक्षणहै । कोई ऐसा देहधारी नहीहै जिसका देह ज्वरग्रस्त होने पर न तपता हो ॥

ज्वर के भेद ।

द्विविधोविधिभेदेनज्वरःशारीरमानसः॥ पुनश्चद्विविधोदृष्टःसौम्यश्चाग्नेयएववा । अन्तर्वेगोवहिर्वेगोद्विविधःपुनरुच्यते ॥ प्राकृतोवैकृतश्चैवसाध्यश्चासाध्यएवच ॥ पुनःपञ्चविधोदृष्टोदोषकालबलाबलात् ॥ सन्ततःसततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ । पुनराश्रयभेदेनधातूनांसप्तधामतः । भिन्नःकारणभेदेनपुनरष्टविधोज्वरः ॥

अर्थ—विधि भेदसे ज्वर दो प्रकारका होता है शारीरिक और मानसिक । पुनः इसके दो भेद है यथा सौम्य और आग्नेय ज्वरके दो वेग है, एक अन्तर्वेग दूसरा वहिर्वेग । इसी तरह प्राकृत, वैकृत, साध्य असाध्य, फिर दोष और कालके बलाबलसे ज्वर पांचप्रकारका देखने में आताहै यथाः-सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक, इसीतरह सात धातुओंके आश्रय भेदसे सात प्रकारका, और वात कफादि कारण भेदसे आठ प्रकारका होताहै।

शारीरऔरमानस ज्वरोंके उत्पत्तिस्थान

शारीरोजायतेपूर्वन्देहेमनसिमानसः ।

अर्थ—शारीरिक ज्वर प्रथम देह में उत्पन्न होता है और मानासिक ज्वर प्रथम मन में उत्पन्न होताहै ॥

मानसिक सन्ताप के लक्षण ॥

वैचित्यमरतिर्ग्लानिर्मनसस्तापलक्षणम् ॥

अर्थ—मनमें चंचलता, अराति औरग्लानि मानसिकताप के लक्षण हैं ॥

शारीरिकतापलक्षण ॥

इन्द्रियाणाञ्चवैकृत्यंदेहसन्तापलक्षणम् ॥

अर्थ—इन्द्रियों की विकृतता शारीरिक सन्तापके लक्षण है ॥

वातपित्तात्मकःशीतमुष्णंवातकफात्मकः इच्छत्युभयमेतत्तुज्वरोव्यामिश्रलक्षणः ।

अर्थ—वात पित्तात्मक ज्वरमें शीतल वस्तुकी इच्छा होतीहै, वातकफात्मकमें उष्ण, पदार्थकी और व्यामिश्रलक्षण अर्थात् कफपित्त-

त्मक ज्वरमें उष्ण शीत दोनोंकी इच्छा होतीहै

वायुको योगवाहित्व ॥

योगवाहःपरंवायुःसंयोगादुभयार्थकृत् । दाहकृत्तेजसायुक्तःशीतकृत्सोमसंश्रयात्॥

अर्थ—वायु अत्यन्त योगवाहीहै अर्थात् जिसके साथमें मिलती है उसके गुणोंको उत्कर्ष करतीहै। जब तेजसे मिलतीहै तब दाह करतीहै। और सोमसे मिलती है तब शीत करतीहै ॥

अन्तर्वेगज्वर के लक्षण ।

अन्तर्दाहोऽधिकंतृष्णाप्रलापःश्वसनम्भ्रमः सन्ध्यस्थिशूलमस्वेदोदोषोवर्चोविनिग्रहः अन्तर्वेगस्यलिङ्गानिज्वरस्यैतानिलक्षयेत्।

अर्थ—अन्तर्दाहकी अधिकता, प्यास, बकवाद, श्वास, चक्कर, सन्धिशूल, अस्थिशूल, अस्वेद (पसीनों का रुकना), दोष विनिग्रह, ये अन्तर्वेगज्वर के लक्षण हैं ।

बहिर्वेगज्वरकेलक्षण ॥

सन्तापोभ्यधिकोबाह्यस्तृष्णादीनाञ्च मार्दवम् ॥ बहिर्वेगस्यलिङ्गानिसुखसाध्यत्वमेवच ॥

अर्थ—बाह्यसंतापका अधिक होना, तृष्णा आदिका कम होना और सुख साध्यता ये बहिर्वेग के लक्षण हैं ।

प्राकृतादि ज्वरों के लक्षण ।

प्राकृतःसुखसाध्यस्तुवसन्तशरदुद्भवः ॥ कालप्रकृतिमुद्दिश्यप्रोच्यतेप्राकृतोज्वरः।

अर्थ—वसन्त और शरद ऋतुओंमें उत्पन्न हुआ ज्वर प्राकृत और सुखसाध्य होताहै । कालकी प्रकृति के अनुसार जो ज्वर होता है उसेही प्राकृत कहते हैं । माधवाचार्य लिखते हैं कि" वर्षा शरद वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतःक्रमात् । वैकृतोऽन्यःसुदुःसाध्यः प्राकृतश्चानिलोद्भवः „ अर्थात् वर्षा में वातज्वर, शरद में पित्तज्वर, और वसन्तमें कफज्वर प्राकृत होतेहै क्योंकि इन भिन्न भिन्न ऋतुओं में पृथक् २ दोषोंकी प्रबलता होतीहै । इससे भिन्न होने पर वैकृतज्वर होताहै यह ज्वर दुःसाध्य होताहै और वात से उत्पन्न हुआ प्राकृत ज्वरभी दुःसाध्य होताहै

दोषों के प्रकुपित होने का समय ।

उष्णामुष्णेनसंवृद्धंपित्तंशरदिकुप्यति। चितःशीतेकफश्चैववसन्तेसमुदीर्यते ॥

अर्थ—उष्ण प्रकृति वाला पित्त उष्ण द्रव्यों के संयोगसे वृद्धिपाकर शरद ऋतुमें कुपित होता है । और शीतकाल में संचित हुआ कफ वसन्त ऋतु में कुपित होता है ।

कालकृतज्वरोत्पत्तिक्रम ॥

वर्षास्वम्लविपाकाभिरौषधीभिःसवारिभिः सञ्चितंपित्तमुद्रिक्तंशरद्यादित्यतेजसा ॥ ज्वरंसञ्जनयत्याशुतस्यचानुबलःकफः । प्रकृत्यैवविसर्गाच्चतत्रनानशनाद्भयम् । अद्भिरोषधिभिश्चैवमधुराभिश्चितःकफः ॥ हेमन्तेसूर्यसन्तप्तः सवसन्तेप्रकुप्यति ॥ वसन्तेश्लेष्मणातस्माज्ज्वरःसमुपजायते। आदानमध्येतस्यापिवातपित्तंभवेदनु॥ आदावन्तेचमध्येचज्ञात्वा दोषबलाबलम्। शरद्वसन्तयोर्विद्वान्ज्वरस्यप्रतिकारयेत्॥

अर्थ—वर्षाऋतुमें अम्लविपाकवाली औषधी और जलोंके कारण संचित हुआ पित्त शरदऋतु में सूर्यकी तेजसे उदीर्ण होजाताहै और शीघ्रही ज्वरको उत्पन्न करताहै और

कफ उसका अनुबंधी रहताहै । उस ज्वरमें कफ पित्तके स्वभावकरके और विसर्गकालके कारण लंघन करनेमें कुछ भय नहीं होता है क्योंकि शरदऋतु विसर्गकालके अन्तर्गत है । इसीतरह हेमन्तऋतुमें जल और औष, धियां मधुरपाकी होतीहैं उस ऋतुमें संचित हुआ कफ सूर्य्यकी तेजीसे संतप्त होकर वसन्तऋतुमें प्रकुपित होजाताहै । इसहेतुसे वसन्तकालमें ज्वर कफसे उत्पन्न होता है। आदानकालमें होने पर भी वात और पित्त इस ज्वरके अनुवन्धी रहतेहैं अर्थात् कफ से उत्पन्न होताहै और वात पित्त साथमें रहते हैं तौ यह त्रिदोषजन्य होजाताहै । इन हेतुओंसे विद्वान् चिकित्सक को उचितहै कि शरद और वसन्तऋतुके आदि मध्य और अन्तमें दोषोंके वलावलका विचारकरके ज्वरकी चिकित्साकरै ॥

ज्वरोंकासाध्यासाध्यत्व ॥

कालप्रकृतिमुद्दिश्यनिर्दिष्टःप्राकृतोज्वरः। प्रायेणानिलजोदुःखःकालेष्वन्येषुवैकृतः॥ हेतवोविविधास्तस्यनिदानेनसम्प्रदर्शिताः वलवत्स्वल्पदोषेषुज्वरःसाध्योऽनुपद्रवः। हेतुभिर्वहुभिर्जातोवलिभिर्वहुलक्षणः ॥ ज्वरःप्राणान्तकृद्यश्चशीघ्रमिन्द्रियनाशनः

अर्थ—काल और प्रकृतिका लक्षकरके प्राकृत ज्वरका वर्णन कियागयाहै । वात जन्यज्वर तथा अन्यकालमें उत्पन्न हुआ वैकृतज्वर दुःखसाध्य होता है ॥

ज्वरके भिन्न २ हेतु निदानस्थानमें दिखाये गयेहै । वलवान् पुरुषका अल्पदोषों से युक्त ज्वर जो उपद्रव रहित होता है वह सुखसाध्य होताहै । जो ज्वर वहुत वलवान् हेतुओंसे उत्पन्न होकर बहुत से लक्षणों से युक्त होताहै वह ज्वर प्राणोंका नाशकरने वालाहै और उसज्वरसे इन्द्रियज्ञान भी शीघ्रही नष्ट होजाता है ॥

असाध्यज्वर के अन्य लक्षण ॥

सप्ताहाद्वादशाहाद्वाद्वादशाहात्तथैवच । सप्रलापभ्रमश्वासःतीक्ष्णोहन्याज्ज्वरोनरम्॥ ज्वरःक्षीणस्यशूनस्यगम्भीरोदैर्घ्यरात्रिकः । असाध्योवलवान्यश्चकेशसीमन्तकृज्ज्वरः ।

अर्थ—यह तीक्ष्णज्वर जिसमें प्रलाप, भ्रम और श्वास होताहै वह सात, दस वा ग्यारह दिनमें मनुष्यको मार डालताहै । जो मनुष्य क्षीण होगया है, जिसकी देह पर सूजन आगई है, जिसका ज्वर गंभीर है और जो चढकर कई दिवसतक रहता है, जो वलवान् है और जिसमें मनुष्यके सिरपर वालोंकी गुल्झट पडजातीहै ऐसे ज्वर असाध्य होते हैं ॥

सन्ततज्वरकीउत्पत्तिकाकारण ॥

स्रोतोभिर्विसृतादोषागुरवोरसवाहिभिः। सर्वगात्रानुगाःस्तब्धाज्वरंकुर्वन्तिसन्ततम्

अर्थ—रसवाही स्रोतोंके द्वारा सम्पूर्ण गुरु दोष फैलकर सम्पूर्ण देहमें व्याप्तहोकर स्तब्ध होजातेहैं तव **सन्ततज्वरको** उत्पन्न करते हैं ॥

सन्ततज्वरका मोक्षकाल ॥

द्वादशाहंदशाहंवासप्ताहंवाप्युदुःसहः । स शीघ्रंशीघ्रकारित्वात्प्रशमंयातिहन्तिवा॥

अर्थ—सन्ततज्वर वारद, दस वा सात

दिनतक अनवच्छिन्न रहताहै, यह बडा दुःसह होताहै और शीघ्रकारी होनेसे या तो शीघ्रही शान्त होजाता है वा शीघ्रही देहको नाश करदेताहै । दस बारह और सात दिनकी अवधि दोषोंके अनुसार दीगई है तथा वातिक सप्तरात्रेणदशरात्रेणपैत्तिक. । श्लैष्मिकोद्वादशाहेनज्वरःपाकांनियच्छति अर्थात् वातज्वर सात दिनमें, पित्तज दस दिनमें, और कफज बारहदिनमे पाकको प्राप्त होताहै । इससमय में या तो रोगी ज्वरनिर्मुक्त होजाताहै वा मरजाताहै ।

सन्ततज्वरको असाध्यत्व ॥

कालदूष्यप्रकृतिभिर्दोषास्तुल्योहिसन्ततम्।निष्पत्यनीकंकुरुतेतस्मात्ज्ञेयःसुदुःसहः

अर्थ—काल,दोष और प्रकृतिके तुल्य होनेसे दोष दुश्चिकित्स्य सन्तत ज्वरको उत्पन्न करते है अतएव यह ज्वर दुःसाध्य होता है ॥

सन्ततज्वरकेअनुबन्धिपदार्थ ।

यथाधातुंतथामूत्रंपुरीषञ्चानिलादयः । अनुबध्नन्तियुगपदवश्यंसन्ततेज्वरे ॥

अर्थ—सन्तत ज्वर में सातों धातु, मूत्र मल और तीनों दोष अवश्य साथ रहतेहै ।

अनुबन्धीपदार्थोंका फल ॥

सशुद्ध्यावाप्यशुद्ध्यावारसादीनामशेषतः। सप्ताहादिषुकालेषुप्रशमंयातिहन्तिवा ॥

अर्थ—यह ज्वर सम्पूर्ण रसादि धातु और दोषोंकी शुद्धि होनेपर पूर्वोक्त सप्ताहादि काळमें शान्त होजाताहै और शुद्धि न होने पर मनुष्यको मारडालताहै ॥

सन्तत ज्वरका रसादि का आश्रयत्व ॥

यदातुनातिशुध्यन्तिनवाशुध्यन्तिसर्वशः द्वादशैतेसमुद्दिष्टा सन्ततस्याश्रयास्तदा॥

अर्थ—सातों धातु, मल, मूत्र और तीन दोष जबये बारहों पदार्थ सम्यक् शुद्ध नहीं होतेहैं तब सन्ततज्वर इनके आधीन रहताहै।

अन्यप्रकार संतत ज्वर।

विसर्गद्वादशेकृत्वादिवसेऽव्यक्तलक्षण ॥ दुर्लभोपशम कालंदीर्घमप्यनुवर्तते ॥

अर्थ—कोई कोई सन्ततज्वर बारहवें दिन छोडकर बहुत दिन तक ऐसे रहता है कि उसका कोई चिन्ह प्रकट नहीं होता है, यह कठिन साध्य होताहै ।

वैद्यको कर्त्तव्य कर्म ।

इतिबुद्ध्वाज्वरंवैद्यउपक्रामेत्तुसन्ततम् । क्रियाक्रमविधौयुक्तःप्रायःप्रागपतर्पणै ॥

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए लक्षणो को विचारकर वैद्यको सततज्वर की चिकित्सा करना उचितहै, इस ज्वरमें प्रायः लघन द्वारा चिकित्सा करना अभीष्टहैं ।

सतत ज्वर के लक्षणादि ।

रक्तधात्वाश्रयःप्रायोदोषःसततकंज्वरम्। सप्रत्यनीक कुरुतेकालवृद्धिक्षयात्मकः ॥ अहोरात्रेसततकोद्वौकालावनुवर्तते। कालप्रकृतिदूष्याणांप्राप्यैवान्यतमाद्बलम् ॥

अर्थ—प्रायः दोष रक्त धातुका आश्रय लेकर सततक ज्वर उत्पन्न करते हैं । इस ज्वरकी चिकित्सा होसकतीहै यह काल मेंबढताभीहै और घटताभीहै। यह सततक ज्वर काल, प्रकृति और दूष्यमें से किसीका बल प्राप्त करके दिनरात में-दोबार आताहै ।

अन्येद्युष्कज्वर के लक्षणादि ।

दोषोमेदोवहारुद्ध्वानाडीरन्येद्युकंज्वरम् ।
समत्यनीकःकुरुतेएककालमहर्निशम् ॥

अर्थ—मेदोवहा नाडियोंको रोककरदोष अन्येद्युष्कज्वरको उत्पन्न करतेहै यह भी सुचिकित्स्यहै और दिनरात में एकवारआताहै

तृतीयक चातुर्थिक ज्वर का लक्षणादि ।

दोषोऽस्थिमज्जगःकुर्यात्तृतीयकचतुर्थकौ
गतिर्द्व्यकान्तरान्येद्युर्दोषस्योक्तान्यथापरैः

अर्थ—जव दोष हड्डियोंमें पहुंचतेहैं तव तृतीयक ज्वर होताहै और जव दोष मज्जा में पहुंचतेहैं तव चातुर्थिक ज्वर उत्पन्न होताहै । अन्येद्युष्क ज्वरका वेग प्रतिदिन होताहै तृतीयकका एक दिन वीचमें देकर और चातुर्थिकका दोदिन वीचमें देकर वेगहोताहै

अन्येद्युष्कादि ज्वर का कारण ।

रक्तमेवाभिसंसृज्यकुर्यादन्येद्युकंज्वरम् ।
मांसस्रोतांस्यनुसृतोजनयेत्तुतृतीयकम् ।
ज्वरंदोषःसंसृतोहिमेदोमार्गश्चतुर्थकम् ।

अर्थ—दोष जव रक्तसे मिलजातेहैं तव अन्येद्युष्कज्वर उत्पन्न होताहै । जव मांस स्रोतोंसे मिलतेहैं तव तृतीयक ज्वर होताहै और जव मेदाके मार्गमेंसंसृत होतेहैं तव चातुर्थिक ज्वर उत्पन्न होता है ॥

अन्येद्युष्कादि ज्वरों का समय ।

अन्येद्युष्कःप्रतिदिनंदिनंक्षिप्त्वातृतीयकः
दिनद्वयंयोविश्राम्यप्रत्येतिसचतुर्थकः ॥

अर्थ—जो ज्वर नित्यप्रति आताहै उसे अन्येद्युष्क कहते हैं, जो एक दिन वीच में देकर आता हैं उसे तृतीयक कहते हैं, लोकमें इसीको तिजारी एकांतरा भी कहते हैं ॥ जो दोदिन वीचमें देकर आता हैं उसे चातुर्थिक वा चौथैया कहते हैं ॥

कालान्तर में दोषों के कुपित होने का दृष्टान्त

अधिशेतेयथाभूमिंवाजङ्कालेचरोहति ॥
अधिशेतेतथाधातुंदोषंकालेचकुप्यति ॥

अर्थ—पृथ्वीमें वोयाहुआ वीज जैसे कालान्तरमें अंकुरित होताहै इसी तरह धातुओं से मिला दोष कालान्तरमें कुपित होता है ।

ज्वरों में विश्राम का कारण ।

तेवृद्धिम्बलकालञ्चप्राप्यदोषास्तृतीयकं
चतुर्थकञ्चकुर्वंतिप्रत्यनीकबलक्षयात् ।
कृत्वावेगंगतवलाःस्वेस्वेस्थानेव्यवस्थिताः
पुनर्विवृद्धाःस्वेकालेज्वरयन्तिनरंमलाः ।

अर्थ—वेही दोष वृद्धि और वलकाल को प्राप्त करके तृतीयक और चातुर्थिक ज्वरोंको उत्पन्न करते हैं और वलकेक्षीण होने पर सुचिकित्स्य होजाते हैं । वेगके पश्चात् जव उनका वल घटजाताहै तव अपने२स्थान पर स्थित होजातेहैं और अपने कालमें फिर वढकर वेही दोष ज्वरों को उत्पन्न करतेहै

तृतीयक ज्वर के अन्यलक्षण ।

कफपित्तात्त्रिकग्राहीपृष्ठाद्वातकफात्मकः॥
वातपित्ताच्छिरोग्राहीत्रिविधःस्यात्तृतीयकः

अर्थ—कफ पित्तसे उत्पन्नहुआ तृतीयक ज्वर त्रिकस्थान (तीन हड्डियों का समागम एक तो कंधों और ग्रीवा का जोड दूसरा कमर और जांघ की हड्डियोंका जोड) में वेदना करताहै । वात और कफ से उत्पन्न हुआ

पीठ में, इसीतरह वातापित्तसे उत्पन्न हुआ मस्तकमें पीडा करताहै इसतरह तृतीयक ज्वर तीनप्रकार का होताहै।

चातुर्थिक ज्वर के प्रकार।

चतुर्थकोदर्शयतिप्रभावंद्विविधंज्वरः ॥ जंघाभ्यांश्लैष्मिकःपूर्वंशिरस्तोऽनिल-सम्भवः।

अर्थ—चातुर्थिक ज्वर दो प्रकार का प्रभाव दिखाता है यथा जब यह कफ से उत्पन्न होता है तब प्रथमही जंघाओंमें वेदना करता है फिर आप उत्पन्न होताहै और जब वातसे उत्पन्न होताहै तब सिरमें वेदना करता है।

विषम ज्वर का लक्षण।

विषमज्वरएवान्यश्चतुर्थकविपर्य्ययः ॥ त्रिविधोधातुरेकैकोद्विधातुस्थःकरोत्ययम्।

अर्थ—चातुर्थिकज्वरका उलटा एक और ज्वर होता हैं उसे विषमज्वर कहतेहैं। माधव निदानमें लिखाहै कि „समध्ये ज्वर यत्यन्ही आद्यन्तेच विमुंचति। „ विषमज्वर उसे कहते हैं जो बीचके दो दिन आताहै और आदि अन्त के दो दिन नहीं आता। इससे जाना जाता है कि तिजारी और चौथैयाके संयोगका नाम विषम है कि इससे यह ज्वर वातज, पित्तज और कफज होता है तथा अस्थि और मज्जा दो धातुओं में आश्रित होता है क्योंकि पहिले कहचुके हैं कि अस्थिज्वर तृतीयक और मज्जागत चातुर्थिक होता है।

प्रायशःसन्निपातेनदृष्टःपञ्चविधोज्वरः॥ संनिपातेतुयाभूयोन्सदोषःपरिकीर्त्तितः॥

अर्थ—प्रायः सन्निपात से पांच प्रकार का ज्वर देखा गयाहै, यथा संतत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चतुर्थक! इन में जो दोष अधिक होता है उसीके नाम से वह ज्वर बोला जाताहै।

भिन्न२ ज्वरोत्पत्तिका कारण॥

ऋत्वहोरात्रदोषाणांमनसश्चवलावलात् कालमर्थवशाच्चैवज्वरस्तन्तंमपद्यते।

अर्थ—ऋतु, दिन, रात, दोष और मनका बलाबल, कालवश और अर्थवशसे भिन्न २ मनुष्यों को भिन्न २ प्रकार का ज्वर आता है॥

रसस्थज्वर के लक्षण॥

गुरुत्वंदैन्यमुद्वेगःसदनंछर्द्यरोचकौ ॥ रसस्थितेवहिस्ताप साङ्गमर्दोविजृम्भणम्

अर्थ—रसधातु में ज्वर के स्थित होनेपर भारापन, दीनता, उद्वेग, अंगग्लानि वमन, अरुचि, बाह्यताप, अंगमर्द और जंभाई ये उपद्रव होते हैं॥

रक्तस्थज्वरके लक्षण॥

रक्तोत्थाःपिडकास्तृष्णासरक्तंष्ठीवनंमुहुः दाहरागभ्रममदमलापारक्तसंस्थिते॥

अर्थ....रक्तस्थज्वरमें देहपर लालरंगकी गरम फुन्सियां होजातीहैं, कफके साथ बार २ रुधिर आता है, तथा दाह, राग, भ्रम, मद और प्रलाप ये भी होते हैं॥

मांसस्थज्वर के लक्षण॥

अन्तर्दाहःसतृण्मोहग्लानिःसंसृष्टविट्कता॥ दौर्गन्ध्यंगात्रविक्षेपोज्वरेमांसस्थितेभवेत्।

अर्थ—मांसस्थज्वरमें अन्तर्दाह, तृषा मोह, ग्लानि, पुरीषविबन्ध दुर्गंधि और गा-

त्रविक्षेप (हाथ पांवोंका पटकना] होताहै।

मेदस्थज्वर के लक्षण ॥

स्वेदस्तीव्रापिपासाचप्रलापारत्यभीक्ष्णशः। स्वगन्धस्यासहत्वञ्चमेदस्थेग्लान्यरोचकौ ॥

अर्थ— मेदस्थज्वरमें पसीना, तेज प्यास, प्रलाप, निरन्तर अस्थिरता, अपनी गंध अपनेको बुरीलगना, ग्लानि और अरुचि ये लक्षण होतेहैं ॥

आस्थिगतज्वर के लक्षण ॥

विरेकवमनेचोभेसास्थिभेदंप्रकूजनम् ॥ विक्षेपणञ्चगात्राणांश्वासश्चास्थिगेज्वरे।

अर्थ—अस्थिगतज्वरमें वमन और विरेचन दोनों होतेहैं । हडफूटन, अंत्रकूजन गात्रविक्षेप और श्वास ये लक्षण होतेहैं ।

मज्जागतज्वर के लक्षण ॥

हिक्काश्वासःतथाकासःतमसश्चातिदर्शने । मर्म्मच्छेदोवहिःशैत्यंदाहोऽन्तश्चैवमज्जगे।

अर्थ—मजागतज्वरमें हिचकी, श्वास, खांसी,अधिक अन्धकारदीखना, मर्मच्छेद,बाहरठंड और भीतर दाह ये लक्षण होतेहैं ।

शुक्रगतज्वर के लक्षण ॥

शुक्रस्थानगतेशुक्रमोक्षंकृत्वाविनाश्यचा ॥ प्राणवाय्वग्निसोमैश्चसार्धंगच्छत्यसौविभुः ॥

अर्थ—ज्वरके शुक्रमेंपहुंचने पर वीर्य अत्यन्त निकलताहै और आत्मा देह को नष्ट करके प्राण, वात, पित्त और कफ को साथ लेजाती है, अन्यग्रन्थोंमें लिखा है, कि पुरुषेन्द्रिय जकडजातीहै और वीर्य के साथ रक्तभी आता है ॥

धात्वाश्रितज्वरको साध्यासाध्यत्व।

रसरक्ताश्रितःसाध्योमेदोमांसगतश्चयः॥ अस्थिमज्जगतः कृच्छ्रः शुक्रस्थोनैवसिद्ध्यति ॥

अर्थ—रसाश्रित और रक्ताश्रित ज्वर साध्य होता है । मेदोगत, मांसगत, अस्थिगत और मज्जागत कृच्छ्रसाध्य होता है और शुक्रस्थज्वर कभी अच्छा नहीं होता है ॥

हेतुभिर्लक्षणैःसिद्धःपूर्व्वमष्टविधोज्वरः॥ समासेनोपदिष्टस्यव्यासतः शृणुलक्षणम्

अर्थ—हेतु और लक्षणोंद्वारा हम प्रथम ज्वरके आठ भेदोंका संक्षेप से वर्णन कर चुकेहै अब हम विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं उसे सुनो ॥

वातपित्तज्वर के लक्षण ॥

शिरोरुक्पर्वणांभेदोदाहोरोम्णांप्रहर्षणम् कण्ठास्यशोषोवमथुस्तृष्णामूर्च्छाभ्रमोऽरुचिः।स्वप्ननाशोऽतिवाग्जृम्भावातपित्तज्वराकृतिः॥

अर्थ—माथेमें दर्द, हाथपांवके जोडों में दर्द, दाह, रोमाञ्च खडे होना, कण्ठ शोष, मुखशोष, वमन, तृष्णा, मूर्च्छा, अरुचि, स्वप्ननाश, बकवाद, जम्हाई ये सब वातपित्तज्वरके लक्षण हैं ॥

वातकफज्वर के लक्षण ॥

शीतकोगौरवंतन्द्रास्तैमित्यंपर्वणाञ्चरुक् शिरोग्रहःप्रतिश्यायकासःस्वेदाप्रवर्त्तनम् सन्तापोमध्यवेगश्चवातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥

अर्थ—शीत, भारापन, तन्द्रा, स्तिमिता, हडफूटन, माथेका दर्द, प्रतिश्याय, खांसी,

पसीनोंका आना, सन्ताप और ज्वरका मध्यम बेग ये सब वातश्लेष्मिकज्वर के लक्षण हैं ॥

श्लेष्मपित्तज्वरकेलक्षण ॥

मुहुर्दाहोमुहुःशीतंस्वेदस्तम्भौमुहुर्मुहुः ।
मोहःकासोरुचिस्तृष्णाश्लेष्मपित्तप्रवर्त्तनं
लिप्ततिक्तास्यतातन्द्राश्लेष्मपित्तज्वराकृतिः ।

अर्थ—बार बार दाहहोना, बार बार शीतलगना, बार बार पसीने आना, बार बार पसीनोंका रुकना, मोह, खांसी, अरुचि, तृष्णा, कफ और पित्तका निकलना, मुख में कफकी लिहसावट मुखमें कडवापन और तन्द्रा ये कफपित्तज्वरकी आकृति है ॥

सन्निपातज्वरकावर्णन ॥

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वंत्रयोदशविधस्याहि॥
प्राक्सूत्रितस्यवक्ष्यामिलक्षणंवैपृथक्पृथक्

अर्थ—सन्निपातज्वरके जो तेरह भेद प्रथम संक्षिप्त रीति से वर्णन किये गये हैं अब उन्हें विस्तारपूर्वक पृथक् २ कहते हैं।

वातपित्तोल्वणज्वर के लक्षण ॥

भ्रमःपिपासदाहश्चगौरवंशिरसोऽतिरुक्॥
वातपित्तोल्वणेविद्याल्लिङ्गंमन्दकफेज्वरे ।

अर्थ—भ्रम, तृषा, दाह, भारापन और सिरमें अत्यन्त वेदना ये वातपित्तोल्वण और मन्दकफज्वर में होते है ॥

वातश्लेष्मोल्वणहीनकफज्वर ॥

शैत्यंकासोरुचिस्तन्द्रापिपासादाहरुग्व्यथा ॥ वातश्लेष्मोल्वणेविद्याल्लिङ्गंपित्तपरोविदुः ।

अर्थ—शीत, खांसी अरुचि, तन्द्रा, तृषा दाह, वेदना, व्यथा, ये वातश्लेष्मोल्वणमन्द पित्त ज्वर में होते हैं ॥

पित्तकफोल्वणहीनवायु के लक्षण ॥

छर्दिःशैत्यंमुहुर्दाहस्तृष्णामोहोऽस्थिवेदना
मन्दवातेव्यवस्यन्तेलिङ्गंपित्तकफोल्वणे ।

अर्थ—वमन, शीत, वारम्बारदाह, तृष्णा, मोह, अस्थिवेदना, ये पित्तकफोल्वण और मन्द वात के लक्षण हैं ॥

वातोल्वणसन्निपातके लक्षण ॥

सन्ध्यस्थिशिरसःशूलंमलापोगौरवंभ्रमः॥
वातोल्वणेस्याद्द्वन्द्वेतृष्णाकण्ठास्यशोषता

अर्थ—हाथ पांव के जोड, हड्डी और सिरमें वेदना, प्रलाप, भारापन, भ्रम, तृषा, कण्ठशोष और मुख शोष ये सब वातोल्वण और हीन कफपित्त के लक्षण है ॥

पित्तोल्वणसन्निपात के लक्षण ॥

रक्तविण्मूत्रतादाहःस्वेदस्तृड्बलसंक्षयः
मूर्छाचातित्रिदोषेस्याल्लिङ्गंपित्तेगरीयसि

अर्थ—विष्टा और मूत्रका लालहोजाना दाह, पसीना, तृषा, और बलकी क्षीणता तथा मूर्च्छा ये पित्तोल्वण और वात कफ सन्निपात के लक्षण हैं ।

कफोल्वणसन्निपातके लक्षण ।

आलस्यारुचिहृल्लासदाहवम्यरतिभ्रमैः॥
कफोल्वणंसन्निपातंतन्द्राकासेनचादिशेत्

अर्थ—आलस्य, अरुचि, हृल्लास, दाह, वमन, अरति, भ्रम, तन्द्रा और खांसी ये कफोल्वण हीन वात पित्त के लक्षण है ।

हीनवाते पित्तमध्य के लक्षण ।

प्रतिश्याच्छर्दिरालस्यंतन्द्रारुच्यग्निमार्दवम्॥
हीनवातेपित्तमध्येचिन्हंश्लेष्माधिकेमतम् ।

अर्थ—नाक बहना, वमन, आलस्य, तन्द्रा

अरुचि, अग्निमांद्य, ये हीनवात पित्तमध्यऔर श्लेष्माधिकके लक्षण हैं ।

हीनवातमध्यकफकेलक्षण ।

हारिद्रमूत्रनेत्रत्वंदाहस्तृष्णाभ्रमोऽरुचिः॥ हीनवातेमध्यकफेलिङ्गंपित्ताधिकेमतम् ।

अर्थ—हलदी के रंग के मूत्र और आंख होजाना, दाह, तृष्णा, भ्रम और अरुचि ये हनिवात मध्य कफ और पित्ताधिकके लक्षणहैं।

हीनपित्तमध्यकफकेलक्षण ।

शिरोरुक्वेपथुःश्वासःप्रलापोछर्घरोचकाः हीनपित्तेमध्यकफेलिङ्गंवाताधिकेमतम् ।

अर्थ—शिर में वेदना, कम्पन, श्वास, प्रलाप, वमन, अरुचि ये हीन पित्त मध्य कफ और वाताधिक के लक्षण हैं ।

हीनपित्तमध्यवातकेलक्षण ।

शीतकंगौरवंतन्द्रामलापोऽस्थिशिरोऽति रुक् ॥ हीनपित्तेवातमध्येलिङ्गंश्लेष्माधिकेविदुः ।

अर्थ—शीत, भारापन, तन्द्रा, प्रलाप हड्डी और सिरमें अत्यन्त वेदना ये हीन पित्त मध्यवात और श्लेष्माधिक के लक्षण हैं ।

कफहीनपित्तमध्यकेलक्षण ।

श्वासकासप्रतिश्यायामुखशोषोऽतिपार्श्व रुक् ॥ कफहीनेपित्तमध्येलिङ्गंवाताधिके मतम् ।

अर्थ—श्वास, खांसी, प्रतिश्याय, मुख शोष पसलियोंमें अत्यन्त वेदना ये हीन कफ, मध्य पित्त और वाताधिक के लक्षण हैं ।

हीनकफवातमध्यकेलक्षण ।

पर्वभेदोऽग्निदौर्बल्यंतृष्णादाहोऽरुचिभ्रमः कफहीनेवातमध्येलिङ्गंपित्ताधिकेविदुः ।

अर्थ—हडफूटन अग्निमान्द्य, तृष्णा, दाह, अरुचि और भ्रम ये कफहीन, वातमध्य और पित्ताधिक के लक्षण हैं ॥

तेरहवेंसन्निपातकेलक्षण ।

सन्निपातज्वरस्योर्ध्वमतोवक्ष्यामिलक्षणम् क्षणेदाहःक्षणेशीतमस्थिसन्धिशिरोरुजः सास्रावेकलुषेरक्तेनिर्भुग्नेचापिदर्शने। सस्वनौसरुजौकर्णौकण्ठःशूकैरिवावृतः ॥ तन्द्रामोहःप्रलापश्चकासःश्वासोऽरुचिर्भ्रमः परिदग्धाखरस्पर्शाजिह्वास्रस्ताङ्गतापरम् ॥ ष्ठीवनंरक्तपित्तस्यकफेनोन्मिश्रितस्यच । शिरसोलोठनंतृष्णानिद्रानाशोहृदिव्यथा॥ स्वेदमूत्रपुरीषाणांचिरादर्शनमल्पशः कृशत्वंनातिगात्राणांप्रततंकण्ठकूजनम् ॥ कोठानांश्यावरक्तानांमण्डलानांचदर्शनम्। मूकत्वंस्रोतसांपाकोगुरुत्वमुदरस्यच ॥ चिरात्पाकश्चदोषाणांसन्निपातज्वराकृतिः।

अर्थ—अब हम सान्निपातिक ज्वरके लक्षण कहते हैं, यथा क्षणभरमें दाह होना, क्षण भर में शीत लगना, अस्थिशूल, सन्धिशूल, शिरःशूल, आंखोंमें आंसू भरकर नेत्रों का लाल तथा काला होजाना और फटे से होजाना, कानोंमें शब्द और वेदना होना, कण्ठ में कांटे पडजाना, तन्द्रा, मोह, प्रलाप, खांसी श्वास, अरुचि, भ्रम, जिह्वा का काला और खरदरा होजाना, अंगका अत्यन्त शिथिल पडजाना, कफमिलेहुए रक्तपित्तका थूकके साथ निकलना, सिरका इधर उधर पटकना तृष्णा, निद्रानाश, हृदयमें वेदना, पसीना, मूत्र और मलका बहुत देरमें थोडासा होना, देह

से मिलजाने पर व्यामिश्र लक्षण पाये जाते हैं अर्थात् पूर्वोक्त लक्षण और वातादि दोषजनित लक्षण दोनों मिले हुए होते हैं। आगन्तुक ज्वर हेतु और औषधोंके गुणविशिष्ट भी होते हैं॥

कामादि से मन के आक्रान्त होने पर प्रथमही ज्वर बल प्राप्त नहीं करताहै परन्तु जब कामादि से मन दूषित होजाता है तब ज्वर बलवान् होताहै ॥

ज्वर का उत्पत्ति क्रम।

संसृष्टाःसन्निपतिताःपृथक्वाकुपितामलाः रसाख्यंधातुमन्वेत्यपक्तिस्थानान्निरस्यच। स्वेनतेनोष्मणाचैवकृत्वादेहोष्मणोबलम्। स्रोतांसिरुद्ध्वासम्प्राप्ताःकेवलंदेहमुल्वणाः सन्तापमधिकंदेहेजनयन्तिनरास्तदा।भवत्यत्युष्णसर्वाङ्गोज्वरितस्तेनचोच्यते।

अर्थ—दो दो दोष अथवा पृथक् पृथक् दोष कुपित होकर रसनामक धातुका अनुसरण करके जठराग्निको स्थानभ्रष्ट करदेते हैं। उस जठराग्निकी गर्मीसे शरीर की गर्मीका बल बढजाता है और वह गर्मी स्रोतोंको रोककर केवल देहपर अत्यन्त अधिकार जमाती है तब देहमें असन्त सन्ताप उत्पन्न होताहै। तब सम्पूर्ण देह गरम होजाती है और उस मनुष्य को ज्वरग्रस्त कहते हैं।

पसीने न निकलने का कारण।

स्रोतसांसंनिरुद्धत्वात्स्वेदनानाधिगच्छति॥ स्वस्थानात्प्रच्युतेचाग्नौप्रायशस्तरुणेज्वरे॥

अर्थ—तरुणज्वर में ही प्रायः जठराग्नि अपने स्थानसे चालित होजाती है और इस हेतुसे स्रोतोंके रुकजाने के कारण पसीने नहीं निकलने पातेहैं।

आमज्वर के लक्षण।

अरुचिश्चाविपाकश्चगुरुत्वमुदरस्यच। हृदयस्याविशुद्धिश्चतन्द्राचालस्यमेवच॥ ज्वरोऽविसर्गीबलवान्दोषाणामप्रवर्त्तनम् लालाप्रसेकोहृल्लासोक्षुन्नाशोऽविशदंमुखम्॥ स्तब्धसुप्तगुरुत्वञ्चगात्राणांबहुमूत्रता। नविड्जीर्णानचग्लानिर्ज्वरस्यामस्यलक्षणम्।

अर्थ—अरुचि, अविपाक, पेटका भारापन हृदयकी अविशुद्धि [भारी डकार आना] तन्द्रा, आलस्य, अविसर्गी ज्वर [जो बीच में कम न हो] बलवान् ज्वर, दोषों की रुकावट, लालाप्रसेक [लारगिरना] हृल्लास, क्षुधानाश, मुखमें गिलगिलापन, अंगावयवों कास्तब्ध, सुप्त और भारी होजाना, पेशाब बहुतआना, मलका कच्चापन और अग्लानि ये सब आमज्वरके लक्षण हैं।

निरामज्वरलक्षण॥

क्षुत्क्षामतालघुत्वञ्चगात्राणांज्वरमार्दवम् दोषप्रवृत्तिरष्टाहोनिरामज्वरलक्षणम्।

अर्थ—भूखसे दुर्बलता [भूख लगना और देहका कृश होजाना] शरीरका हलकापन, ज्वरका कमहोना, दोषोंकी प्रवृत्ति आठ दिन व्यतीत होना अर्थात् आठ दिन में ज्वरका पचजाना ये लक्षण निरामज्वर के हैं ॥ 'दोषप्रवृतिरष्टाहो, की जगह 'दोषप्रवृत्तिरुत्साहो, ऐसा पाठभी है।

नवज्वरमें वर्जितकर्म ॥

नवज्वरेदिवास्वप्नस्नानाभ्यङ्गान्नमैथुनम्। क्रोधप्रवातव्यायामकषायांश्चविवर्जयेत्॥

अर्थ— नवीनज्वरमें दिनका सोना, स्नान करना, तैलमर्दन, भोजन करना, मैथुनकरना, क्रोधकरना, हवाखाना, क्वाथपान करना ये सब वर्जितहैं ॥

ज्वरमें लंघन विधान ॥

ज्वरेलंघनमेवादावुपादिष्टमृतेज्वरात् ॥ क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात्।

अर्थ—ज्वरकी आदिमें लंघन करना उचित है परंतु जो ज्वर क्षय, वात, क्रोध, काम, शोक और श्रम से उत्पन्न हुआहै उस में लंघन न करै ॥

लंघनकागुण ॥

लंघनेनक्षयंनीतेदोषेसन्धुक्षितेऽनले । विज्वरत्वंलघुत्वंचक्षुच्चैवास्योपजायते॥ प्राणाविरोधिनाचैनंलंघनेनोपपादयेत् । बलाधिष्ठानमारोग्यंयदर्थोऽयंक्रियाक्रमः॥

अर्थ—लंघनसे दोष क्षीण होजाते और जठराग्नि बढजाती है इस से ज्वर का नाश होता हैं, देह हलकी पडजाती है और क्षुधा चैतन्य होजातीहै । ऐसा लंघन देना चाहिये जिससे प्राणोंको वाधा न पहुँचे । बल आरोग्यताके आश्रितहै और आरोग्यता चिकित्सा के आश्रित होतीहै ॥

अविपक्वदोषों के पाचकद्रव्य ॥

लंघनंस्वेदनंकालोयवाग्वस्तिक्तकोरसः। पाचनान्यविपक्वानांदोषाणांतरुणेज्वरे॥

अर्थ—तरुण ज्वर में अविपक्व दोषों के पचाने वाले ये हैं यथाः—लंघन, स्वेदन, काल, यवागू और तिक्तरस ॥

उष्णशीतल जलका विधान ।

तृष्यतेसलिलंचोष्णंदद्याद्वातकफज्वरे । मद्योत्थेपैत्तिकेवाथशीतलंतिक्तकैःशृतम्॥ दीपनंपाचनंचैवज्वरघ्नमुभयंहितत्। स्रोतसांशोधनंबल्यंरुचिस्वेदकरंशिवम् ॥

अर्थ—वातकफ ज्वरमें जो तृषा की प्रबलता होती रोगीको उष्ण जल पीनेको देवे मद्यसे उत्पन्न और पित्तज ज्वर में तिक्त औषधियों को डालकर औटाया हुआ जलठंडा करके देवे । ये दोनों प्रकारके जल दीपन, पाचन, ज्वरनाशक, स्रोत, समूहके शोधनकर्त्ता, बलकारक, रुचिवर्द्धक, स्वेदोत्पादक और कल्याणकारक होते हैं ॥

पिपासानाशकजल ॥

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः । शृतशीतंजलंदद्यात्पिपासाज्वरशान्तये ॥

अर्थ—यदि उक्त ज्वरों में तृषा की अधिकता हो तो मोथा, पितपापडा, उशीर, चन्दन, नेत्रवाला और सोंठ डालकर जल औटावे और ठंडा करके पान करावे तो ज्वर और तृषा दोनों शान्तहों ।

दोषोंमें वमन का विधि निषेध

कफप्रधानानुत्क्लिष्टान्दोषानामाशयस्थितान् । बुद्ध्वाज्वरकरान्कालेवम्यानांवमनैर्हरेत् ॥ अनुपस्थितदोषाणांवमनंतरुणेज्वरे ॥ हृद्रोगश्वासमानाहंमोहश्चजनयेद्भृशम् ।

अर्थ—यदि आमाशयस्थज्वरको उत्पन्न करने वाले दोष कफप्रधान और रोगी

वमन कराने के योग्य होतो उचितकालमें वमन कराके दोषों को निकाले परन्तु यदि दोष उपस्थितहों तौ तरुणज्वर में वमन कराने से हृद्रोग, श्वास, आनाह और मोह की अत्यन्त उत्पत्ति होती है ।

आमदोष में संशोधन निषेध ।

सर्वदेहानुगासामाधातुस्थादुःखनिर्हराः। दोषाःफलेभ्यआमेभ्यस्वरसाइवसात्ययाः

अर्थ—सम्पूर्ण देह में व्याप्त धातुओं में स्थित आमदोषोंका निकालना ऐसा कष्ट साध्य है जैसे कच्चे फल से रसका निकालना फलका नाश करनेवाला होता है ।

वमनलंघन का पश्चात् कर्म

वमितंलंघितंकालेयवागूभिरुपाचरेत् ॥ यथास्वौषधसिद्धाभिमण्डपूर्वाभिरादितः यावत्ज्वरमृदूभावात्षड्हवाविचक्षणः ॥ तस्याग्निर्दीप्यतेताभिःसमिद्भिरिवपावकः

अर्थ—वमन और लंघन कराने के पश्चात् क्षुधा लगने पर यवागू पान करावे यवागू तीन प्रकार की होती है इनमें से दोषानुसार औषधों से सिद्धकी हुई मण्ड प्रथमपान करावे, जब तक ज्वर मृदु न हो अथवा छ. दिवस पर्य्यन्त यवागू पान करता रहे । इस यवागू के पान करनेसे रोगी की जठराग्नि ऐसे वढती चली जायगी जैसे ईंधन डालने से अग्नि वढती है ।

यवागू के गुण ।

ताश्चभेषजसंयोगाल्लघुत्वाच्चाग्निदीपनाः वातमूत्रपुरीषाणांदोषाणाञ्चानुलोमनाः स्वेदनायद्रवौष्ण्यत्वाद्द्रवत्वात्तृट्प्रशान्तये आहारभावात्प्राणायसरत्वाल्लाघवायच ज्वरघ्न्योज्वरसात्म्यत्वात्तस्मात्पेयाभिरादितः । ज्वरानुपाचरेद्धीमानृतेमद्यसमुत्थितान् ॥

अर्थ—औषधियोंके संयोग और लघुता के कारण यवागू अग्निवर्द्धक होती है, अधोवायु, मूत्र, पुरीष और दोषोंको अनुलोमन करनेवाली है । पेया द्रव है और उष्ण होनेसे स्वेदनकर्ता है, द्रव होने से तृषानाशक है, आहार गुणविशिष्ट होने से प्राणधारक है, सर होने से शरीर को हलकी करती है ज्वर के सात्म्य होने से ज्वर को नाश करनेवाली है, अतएव बुद्धिमान् वैद्य को उचितहै कि प्रथमही पेयासे ज्वरों का उपचार करे परन्तु मद्यज ज्वरों में पेया का पान करना उचित नहीं है ॥

यवागू वर्जित ज्वर ॥

मदात्ययेमद्यनित्येग्रीष्मेपित्तकफाधिके । ऊर्ध्वगेरक्तपित्तेचयवागूरहिताज्वरे ॥

अर्थ ... मदात्ययजन्य ज्वर, नित्यमद्यसेवीका ज्वर, ग्रीष्मऋतुका ज्वर, पित्तकफजन्य ज्वर और ऊर्ध्वगरक्त पित्त ज्वर में यवागू पान न करावे ।

तर्पण विधि ।

तत्रतर्पणमेवाग्रेप्रयोज्यंलाजशक्तुभिः ॥ ज्वरापहैःफलरसैर्युक्तंसमधुशर्करम्॥ द्राक्षादाड़िमखर्जूरपियालैःसपरूषकैः । तर्पणार्हेपुकर्त्तव्यंतर्पणंज्वरशान्तये ॥ ततः सात्म्यबलापेक्षीभोजयेज्जीर्णतर्पणम् ॥ तनुनामुद्गयूषेणजाङ्गलानांरसेनवा ॥ अन्नकालेपुचाप्यस्मैविधेयंदन्तधावनम् । योऽस्यत्रक्लरसस्तस्माद्विपरीतांमियश्चयत्

सदस्यसुखवैशद्यंमकांक्षाचान्नपानयोः । धत्तेरसविशेषाणामभिज्ञत्वंकरोतियत् ॥ विशोध्यद्रुमशाखाग्रैरास्यंमक्षाल्यचास कृत् । मास्त्वक्षुरसमद्याद्येयथाहारमवा प्नुयात् ॥

अर्थ–प्रथमही ज्वर नाशक फलों का रस तथा शहत और खांड मिलाकर लाज(खील) के सत्तूका तर्पण देवै । दाख अनार,खिजूर, पियाल, फालसा इनका रस मिलाकर तर्पण के योग्य पुरुषों के लिये ज्वर को शान्त कर नेके निमित्त तर्पण दियाजाता है । जब त- र्पण पचजाय तब सात्म्य और बलकी अपे- क्षा करके मूंगका पतलायूप और जांगल पशुओंका मांसरस भोजनके समय देवै। भो- जन करनेसे पहिले दन्तधावन ऐसे द्रव्यों से करै जो मुखके रसके विपरीत हों औ- र जिन का ज़ायका भी खराब न हो। इसप्र- कार दन्तधावन करने से रोगी के मुख में विशदता (सफाई) होती है और उसकी अन्न पान में रुचिवढती है सब रसोंका स्वा- द आने लगता है और उनका ज्ञान होजाता है वृक्षकी शाखाके अग्रभाग से मुखको शुद्ध करके और अच्छी तरह धोकर मस्तु, इक्षुरस, और मद्यादिका रोग के अनुसार पान करावै ॥

ज्वर में पाचन द्रव्योंका समय

पाचनीयंशमनीयंकषायंपाययेत्ततम् ॥ ज्वरितंषडहेऽतीतेलघ्वन्नंमतिभोजितम्॥ स्तभ्यन्तेनविपच्यन्तेकुर्वन्तिविषमज्वरम् दोषाबद्धाःकषायेणस्तम्भित्वात्तरुणज्वरे

अर्थ—छः दिन व्यतीत होने पर ज्वर रोगी को पाचन कर्ता और शमनकर्ता औ- षधों का क्वाथ पान करावै और लघुअन्नका भोजन करावे । तरुणज्वरमें क्वाथका सेव- न करानेसे दोषवद्ध और स्तम्भित होजाते हैं और पचनेमें नही आते हैं तब वे विषम ज्वरको उत्पन्न करते हैं॥

नतुकल्पनमुद्दिश्यकषायःप्रतिषिध्यते।यः कषायःकषायःस्यात्सवर्ज्यस्तरुणज्वरे ॥

अर्थ—ऊपर जो तरुण ज्वरमें कषाय का निषेध कियागयाहै वह कषायमात्र का नहीं है परन्तुजो कषाय रसवालाहै उसीका निषेधहै।

दसदिन पर्यन्त पथ्यविधि ॥

यूषैरम्लैरनम्लैर्वाजाङ्गलैर्वारसैर्हितैः ॥ दशाहंतावदश्नीयाल्लघ्वन्नंज्वरशान्तये ॥

अर्थ—ज्वरकी शांति के लिये दस दिन तक अम्ल वा अनम्लयूष और हितकारी जां गल पशुओं के मांसरस के साथ लघु अन्न का पथ्य करै ॥

दसदिन पीछे कर्म ॥

अतऊर्द्ध्वंकफेमन्देवातपित्तोत्तरेज्वरे । परिपक्वेषुदोषेषुसर्पिष्पानंयथामृतम् । नि- र्दशाहमपिज्ञात्वाकफोत्तरमलंघितम् । नसर्पिःपाययेत्वैद्यःकषायैस्तमुपाचरेत् ॥ यावल्लघुत्वादशनंदद्यान्मांसरसेनच । परंह्यलंदोषहरंपरन्तच्चबलप्रदम् ॥ दाह तृष्णापरीतस्यवातपित्तोत्तरंज्वरम् । बद्धमच्युतदोषंवानिरामंपयसाजयेत् ॥ क्रियाभिराभिःप्रशमंनप्रयातियदाज्वरः। अक्षीणबलमांसस्यशमयेत्तंविरेचनैः ॥

ज्वरक्षीणस्यनहितंवमननविरेचनम्। का
मन्तुपयसातस्यनिरूहैर्वाहरेन्मलान् ॥

अर्थ—दस दिन पीछे यदि कफ मन्द पडजाय और वात पित्त प्रवल रहैं और दोष सव परिपक्क होजाय तव घृतका पान कराना अमृत के समान गुणकारकहै।

दस दिन पीछे भी यदि कफ वलवान् रहै तौ उसको लंघन ठीक न हुए ऐसे समय में घृतपान न करावे किन्तु कषायों द्वाराही चिकित्सा करै ॥

जवतक देह हल्की न हो तबतक मास रस खाने को दे क्योंकि मासरस अत्यन्त दोषनाशक, परमोत्तम और वलप्रद है।

ऐसा ज्वर जिसमें वात पित्तकी अधिकताहो और तृषा वल्वान् हों और उस में दोष वद्ध हो वा प्रच्युत हों ऐसे निरामज्वर में दुग्धका सेवन करै ॥

यदि ऊपर कही हुई क्रियाओं से ज्वर शान्त न हो और रोगी का वल और मांस क्षीण न हुआहो तो विरेचन द्वारा ज्वर की शान्ति करै और जो रोगी ज्वरसे क्षीण हो गयाहो तौ उसको वमन विरेचन कुछ न देवै। किन्तु तृप्ति पर्यंत दुग्ध पान कराके अथवा निरूहण वस्ति द्वारा दोषों को निकाल देवै।

ज्वर में निरूहणवस्ति ॥

निरूहोवलमग्निश्चविज्वरत्वंमुदंरुचिम्।
परिपक्वेषुदोषेषुप्रयुक्तःशीघ्रमावहेत् ॥

अर्थ—परिपक्व दोषोंमे निरूहण वस्तिका प्रयोग करनेसे वल, अग्नि, ज्वर रहितता, प्रसन्नता और अन्न में रुचि शीघ्रही उत्पन्न होती है ॥

ज्वर में निरूहणवस्ति ॥

पित्तंवाकफपित्तंवापित्ताशयगतंहरेत्।स्रंसनंत्रीन्मलान्वस्तिर्हरेत्पक्वाशयस्थितान्

अर्थ— वस्ति पित्ताशयगत पित्तको निकाल देती है. स्रंसनकर्ता है और पक्वाशयस्थ तीनोंमलों को निकाल देती है ॥

अनुवासनवस्तिविधान ॥

ज्वरेपुराणेसंक्षीणेकफपित्तेदृढाग्नये।
रूक्षवद्धपुरीषाणांप्रदद्यादनुवासनम्॥

अर्थ—ज्वर पुराना पडगया हो, कफ पित्त क्षीण होगये हों, अग्नि मन्दहो, और पुरीषरूक्ष वा वद्ध होगयाहो तव अनुवासन वस्ति देवै।

शिरोविरेचन

गौरवेशिरसःशूलेविवद्धेष्विन्द्रियेषुच ॥
जीर्णज्वरेरुचिकरङ्कुर्यान्मूर्ध्वविरेचनम्

अर्थ—देहमें भारापन, शिरोवेदना, इन्द्रिय विवन्ध इन लक्षणों से युक्त जीर्णज्वर में विरेचन देवै इसके देने से रुचि बढतीहै ॥

जीर्णज्वरके अन्य उपचार ॥

अभ्यङ्गाश्चप्रदेहाश्चसस्नेहाःसावगाहनाः
विभज्यशीतोष्णतयाकुर्याज्जीर्णज्वरेभिषक्। तैराशुप्रशमंयातिवहिर्मार्गगतोज्वरः
लभन्तेसुखमंगानिवलवर्णश्चवर्धते।

अर्थ—भिषक्को उचितहै कि जीर्णज्वर में विवेचना करके शीतोष्ण अभ्यंग स्निग्ध प्रदेह और अवगाहन द्वारा चिकित्साकरै। इन उपचारोंके करने से वाहिर्मार्ग गामी ज्वर शान्त होजाताहै, अंग के अवयव सुखी होजाते हैं तथा वल और वर्णकी वृद्धि होती है ॥

धूपनाञ्जनयोगैश्चयान्तिजीर्णज्वराःशमम्
त्वङ्मात्रशेषायेयाश्चभवन्त्यागन्तुरन्वयः
इतिक्रियाक्रमःसिद्धोज्वरघ्नःसम्प्रकाशितः
येषान्त्वेपक्रमस्तानिद्रव्याण्यूर्ध्वमतःशृणु

अर्थ—ऐसे जीर्णज्वर जिनमें त्वचामात्र शेष रहगईहो और आगन्तुकज्वर धूपन और अञ्जनके योग से शमन होतेहैं यह ज्वर-नाशक चिकित्साका क्रम वर्णन किया गया है, अब हम उन द्रव्योंका वर्णन करतेहैं जो इस चिकित्सा क्रम में उपयोगी होते हैं ॥

ज्वरनाशकप्रयोग ।

रक्तशाल्यादयःशस्ताःपुराणाःषष्टिकैःसह यवाग्वोदनलाजार्थेज्वरितानांज्वरापहाः अम्लाभिलाषीतामेवदाडिमाम्लांसनाग राम् ॥ सृष्टविट्पैत्तिकोवाथशीतांमधुयु तांपिबेत् । लाजपेयांसुखजरांपिप्पली नागरैःशृताम् ॥ पिबेज्ज्वरीज्वरहरांक्षु-द्वानल्पाग्निरादितः । पेयांवारक्तशाली-नांपार्श्ववस्तिशिरोरुजः ॥ श्वदंष्ट्राकण्ट कारिभ्यांसिद्धांज्वरहरांपिबेत् । ज्वराति सारीपेयांवापिबेत्साम्लांशृतांनरः ॥ पृश्नि पर्णीबलाबिल्वनागरोत्पलधान्यकैः ।

अर्थ—ज्वर ग्रस्त रोगीके ज्वर को शान्त करने के निमित्त रक्तशाली चांवलकी यवागू भात और खील बनवाकर देवै ।

जो रोगी की खटाई पर इच्छाहो तो उस यवागू में अनारकी खटाई और सोंठ डालकर पान करावै। जो विष्ठा और पित्त निकलगये होंतो उसको ठंडी करके शहत डालकर पान करावै ॥

मन्दाग्निवाला पुरुष क्षुधालगने पर पीपल और सोंठ डालकर लाजपेया का पान करै यह सुख पूर्वकपचजाती है और ज्वरको भी दूर करदेती है ।

लाल शाली चांवलों की पेया गोखरू और कटेरी डालकर सिद्ध करै और इसको पान करै तो पार्श्व वेदना, वस्तिवेदना, शिरोरोग और ज्वर ये सब नष्ट होजातेहैं ।

ज्वरातिसार रोगवाला पृश्निपर्णी, खरैटी, बेंलगिरी, सोंठ, निलोफर और धनियां डालकर सिद्धकी हुई पेयामें खटाई डालकर पान करै॥

ज्वरनाशक अन्यप्रयोग ॥

शृतांविदारीगन्धाद्यैर्दीपनींस्वेदनींनरः॥ कासीश्वासीचहिक्कीचयवागूंज्वरितःपिबे त् । विबद्धवर्चाःसयवाःपिप्पल्यामलकैः कृताम् ॥ सर्पिष्मतीम्पिबेत्पेयांज्वरीदो-षानुलोमनीम् । कोष्ठेविबद्धेसरुजिपिबेत् पेयांशृतांज्वरी ॥ मृद्वीकापिप्पलीमूलच व्यामलकनागरैः । पिबेत्सबिल्वांपेयां वाज्वरेसपरिकर्तिके ॥ बलावृक्षाम्लको लाम्लकलशीधावनीशृताम् । अस्वेदनि-द्रस्तृष्णार्तःपिबेत्पेयांसशर्कराम् ॥ नाग रामलकैःसिद्धाङ्घृतभृष्टांज्वरापहम् ।

अर्थ—विदारीगंधडालकर सिद्धकीहुई यवागूखांसी, श्वास, हिचकी और ज्वररोगोंमें देवै, यह यवागूदीपनीय और स्वेदनकर्त्ताहै॥

जो विष्टारुकगया हो तो ज्वर रोगी पीपल और आंवला डालकर सिद्ध की हुई जौकी पेयामें घृत डालकर पानकरै, यह पेया दोषोंको अनुलोमन करनेवाली है ॥

कोष्ठबद्ध और शूलहोनेपर ज्वररोगी को किसमिस, पीपलामूल, चव्य, आंवला और सोंठ डालकर सिद्धकीहुईपेया पान करावै.

परिकर्तिका (पेट में मरोडा) रोग में ज्वररोगी बेलगिरी, खरैटी, वृक्षाम्ल, कोलाम्ल, कलशी (पृष्णपर्णी), और धावनी (शालपर्णी) डालकर सिद्धकी हुई पेया पान करावै

जिसको पसीने और नींद नआती हो और तृषा अधिक लगतीहो वह सोंठ और आंवला डालकर सिद्धकी हुई और घृत में भुनीहुई पेयामें चीनी डालकर पानकरै। इससे ज्वर भी जाता रहता है।

ज्वरपरयूप ॥

मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलत्थान्समकुष्ठकान्. यूपार्थेयूपसात्म्यानांज्वरितानाम्प्रकल्पयेत्

अर्थ—वे ज्वररोगी जिनको यूप सात्म्य है वे मूंग,मसूर,चना,कुलथी और मोठका यूप पीवें

ज्वरपरशाक ॥

पटोलपत्रंसफलंकुलकंपापचेलिकाम् ॥ कर्कोटकंकठिल्लंश्चविद्यात्शाकंज्वरेहितम्॥

अर्थ—ज्वरमें परवलके पत्ते, फल और डंठलकासाग, पाठ, ककोंटक और करेले का साग हित है ॥

ज्वरपरमांस ॥

लावान्कापिञ्जलानेणांश्चकोरानुपचक्रकान्॥कुरङ्गान्कालपुच्छांश्चहरिणान्पृषतान्शशान् । प्रदद्यान्मांससात्म्यायज्वरितायज्वरापहान् ॥

अर्थ—लवा, तीतर, हरिण, चकोर, चकवा, कुरग, कालपुच्छ, पृषत और खर्गोश इनकामांस मांससात्म्य रोगियों को देवै, ये ज्वरनाशक होते हैं ॥

ज्वरमेंमांसरसकावर्णन ॥

ईषदम्लाननम्लान्वारसान्कालेविचक्षणः कुक्कुटांश्चमयूरांश्चतित्तिरिक्रौञ्चवर्तकान् । गुरूष्णत्वान्नशंसन्तिज्वरेकेचिच्चिकित्सकाः । लंघनेनानिलबलंज्वरेयद्यधिकंभवेत् ॥ भिषङ्मात्राविकल्पज्ञोदद्यात्तानपिकालवित् ॥

अर्थ—बुद्धिमान् वैद्यको उचितहै कि थोडीसी खटाई डालकर या बिना खटाई के मांसरस उचितकालमें ज्वररोगीको देवै । मुर्गा, मोर, तीतर, कुञ्ज और बतकका मांसरस हित होताहै । कोई २ वैद्य यह कहतेहैं कि मांसरस भारी और उष्ण होताहै इसलिये ज्वर में देना ठीक नहीं है ॥

यदि ज्वरमें लंघन करानेसे बात का बल अधिक होजाय तो वैद्यको उचित है कि मात्रा, विकल्प और कालके अनुसार मांसरसोंका सेवन करावै ॥

ज्वरपर मद्यादि विधि ॥

घर्माम्बुचानुपानार्थंतृषितायप्रदापयेत् ॥ मद्यंवामद्यसात्म्याययथादोषंयथाबलम् गुरूष्णस्निग्धमधुरकषायांश्चनवज्वरे ॥ आहारान्दोषपक्त्यर्थंप्रायश:परिवर्जयेत् अन्नपानक्रमःसिद्धोज्वरघ्नःसम्प्रकाशितः।अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यन्तेकषायाज्वरनाशनाः

अर्थ—भोजनके पश्चात् तृषा लगनेपरज्वररोगीको उष्णजलका पान करावे । जिसको मद्य अनुकूलहै उसे यथादोष और यथाबल

20504

मद्यका अनुपान करावे। नवीन ज्वरमें दोषोंके पचानेके लिये गुरु, उष्ण, मधुर, स्निग्ध और कषायरस वाले आहारोंका सेवन न करावे। यह अनुभूत ज्वरनाशक अनुपानक्रम वर्णन किया गया है ॥

अब हम ज्वरनाशक काथोंका वर्णन करतेहैं

ज्वरनाशककाथ ॥

पाचयंशीतकषायंवामुस्तपर्पटकंपिबेत् ॥ सनागरंपर्पटकंपिबेद्वासदुरालभम् ॥ किराततिक्तकंमुस्तंगुडूचींविश्वभेषजम् ॥ पाठागुशीरंसोदीच्यंपिबेद्वाज्वरशान्तये। ज्वरघ्नादीपनाश्चैतेकषायादोषपाचनाः॥ तृष्णारुचिप्रशमनामुखवैरस्यनाशनाः।

अर्थ—ज्वरके दूर करने के लिये नीचे लिखीहुई औषधियोंके प्रयोगोंका कषाय वा शीतकषाय बनाकर देवे यथा मोथा और पित्तपापड़ा इनका शीतकषाय वा कषाय पानकरे। अथवा सोंठ, पित्तपापडा, और जवासा इनका काथ पीवे। अथवा चिरायता, नागरमोथा, गिलोय सोंठ, पाठा, खस, और नेत्रवाला इनका कषाय ज्वरकी शांति के लिये पानकरे। ये तीनों कषाय जो ऊपर कहेगये हैं ज्वरशान्तकर्त्ता, दीपन दोषपाचन, तृषानाशक, अरुचिनाशक और मुखकी विरसता को नाश करनेवाले हैं ॥

ज्वरनाशकअन्यकाथ।

कलिङ्गकाःपटोलस्यपत्रंकटुकरोहिणी॥ पटोलःशारिवामुस्तंपाठाकटुकरोहिणी। निम्बःपटोलस्त्रिफलामृद्वीकामुस्तवत्सकाः किराततिक्तममृताचन्दनंविश्वभेषजम्। गुडूच्यामलकंमुस्तमर्द्धश्लोकसमापनाः॥ कषायाःशमयन्त्याशुपञ्चपञ्चविधंज्वरम्। संततंसततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकम् ॥

अर्थ— (१) इन्द्रजौ, परवलके पत्ते, कुटकी। २-परवल, शारिवा, मोथा, पाठा, कुटकी। ३-नीम, परवल, त्रिफला, किसमिस, मोथा, इन्द्रजौ। ४-चिरायता, गिलोय रक्तचन्दन और सोंठ। ५-गिलोय आंवला और मोथा। ये आधे २ श्लोक में कहेहुए पांच प्रकार के काथ क्रमसे सन्तत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चतुर्थक इन पांचों प्रकारके ज्वरको नाश करते हैं ॥

ज्वरनाशक अन्यकाथ ॥

वत्सकारग्वधंपाठांषड्ग्रन्थांकटुरोहिणीम् मूर्वांसातिविषांनिम्बंपटोलंधन्वयासकम् वचामुस्तमुशीराणिमधूकंत्रिफलांबलाम्॥ पाचयंशीतकषायंवापिबेज्ज्वरहरंनरः।

अर्थ—इन्द्रजौ, अमलतास, पाठा, वच, कुटकी, मूर्वा, अतीस, नीम, परवल, जवासा वच, मोथा, खस, मुलहटी, त्रिफला, खरैटी इन सबके काथ वा शीतकषायका पान करै। यह ज्वरनाशक काथ है।

अन्यप्रयोग।

मधूकमुस्तमृद्वीकाकाश्मर्यांगिपरूपकम् ॥ त्रायमाणमुशीराणित्रिफलांकटुरोहिणीम् पीत्वानिशिस्थितंजंतुर्ज्वराच्छीघ्रंविमुच्यते

अर्थ—मुलहटी, मोथा, किसमिस, खंभारी फालसा, त्रायमाणा, खस, त्रिफला और कुटकी इनके शीतकषायका पान करनेसे ज्वर शीघ्रही नष्ट होजाताहै ॥

अन्यप्रयोग ।

बृहत्यौवत्सकंमुस्तंदेवदारुमहौषधम् । को रुवल्लीचयोगोऽयंसन्निपातज्वरापहम् ॥

अर्थ—दोनों कटेरी, इन्द्रजौ, मोथा, देव दारु, सोंठ, और गजपपिल इनका क्वाथ सान्निपात ज्वरका नाश करने वाला है ।

विबन्धदोषयुक्त ज्वर परक्वाथ ।

जात्यामलकमुस्तानितद्वद्धन्वयवासकम् । विबद्धदोषोज्वरितःकषायंसगुडंपिबेत् ॥

अर्थ—जायफल, आंवला मोथा, जवासा और गुड़ इनका कषायकरके पीनेसे विबद्ध-दोष युक्त ज्वर नष्ट होजाता है ।

त्रिफलांत्रायमाणाश्चमृद्वीकांकटुरोहिणीम् पित्तश्लेष्महरस्त्वेषकषायोह्यनुलोमिकः॥ त्रिवृत्ताशर्करायुक्तःपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥

अर्थ—त्रिफला, त्रायमाण, किसमिस कुटकी और इनका क्वाथ कफपित्तजन्य ज्वर को नाश करने वाला और अनुलोमन कर्त्ता है । शर्करा मिश्रित निशोथ क्वाथ पान करने से भी ऊपर कहाहुआ गुण होता है ।

सन्निपात पर प्रयोग ॥

शटीपुष्करमूलञ्चव्याघ्रीशृङ्गीदुरालभा॥ गुडूचीनागरंपाठाकिरातंकटुरोहिणी ॥ एषशट्यादिकोवर्गःसान्निपातज्वरापहः। कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासतन्द्रासुशस्यते॥

अर्थ—शटी, पुहकरमूल, कटेरी, काकडा सींगी, जवासा, गिलोय, सोंठ पाठा, चिरा यता, कुटकी, यह शट्यादिकवर्ग ज्वर नाश क है तथा खांसी, हृदग्रह, दर्दपसली, श्वास और तन्द्रा इन सबमें बहुत गुण दायक होताहै

अन्यप्रयोग ।

बृहत्यौपुष्करंभार्गीशठीशृङ्गीदुरालभा । वत्सकस्यचबीजानिपटोलंकटुरोहिणी ॥ बृहत्यादिर्गणःप्रोक्तःसन्निपातज्वरापहः। कासादिषुचसर्वेषुदद्यात्सोपद्रवेषुच ॥

अर्थ—दोनों कटेरी, पोहकरमूल, भारंगी शटी, काकडासींगी, इन्द्रजौ, परवल, कुटकी यह बृहत्यादिगण सन्निपात ज्वर नाशक है; यह कास, हृद्ग्रह आदि सम्पूर्ण उपद्रवों में विशेष गुणदायक है ।

कषायाश्चयवाग्वश्चपिपासाज्वरनाशनाः॥ निर्दिष्टाभेषजाध्यायेभिषक्तानपियोजयेत्

अर्थ—तृषा और ज्वरनाशक कषाय यवागू जो सूत्रस्थान के भेषजाध्याय में वर्णनाकिये गये हैं उनका प्रयोग भी करना चाहिये ॥

ज्वरमेंघृतविधि ।

ज्वराःकषायैर्वमनैःलंघनैर्लघुभोजनैः।रूक्ष स्ययेनशाम्यन्तिसर्पिस्तेषांभिषग्जितम्॥रू- क्षंतेजोज्वरकरंतेजसारूक्षितस्यच॥यःस्या दनुबलोधातुःस्नेहसाध्यःसचानलः । क षायाःसर्वएवतेसर्पिषासहयोजिताः॥ प्र- योज्याज्वरशान्त्यर्थमग्निसन्धुक्षणाःशिवाः

अर्थ—रूक्ष मनुष्यका ज्वर कषाय, व- मन, लंघन और लघुभोजनसे शान्त न हो तो घृत देना श्रेष्ठ है ॥ रूक्ष व्यक्तिका ज्वर तेजोमय होनेसे रूक्ष है और वायु उसका अनुबल है अतएव वायु स्नेहसाध्य है ।

नीचे लिखे हुए कषायोंमें घृत डालकर सिद्ध करनाचाहिये । ये कषायज्वर शान्त- कर्त्ता, अग्निवर्द्धक और कल्याणकारक हैं ॥

घृत सिद्ध करने का कषाय।

पिप्पल्यःचन्दनंमुस्तमुशीरंकटुरोहिणी ॥ कलिङ्गकस्तामलकीशारिवातिविषास्थिरा । द्राक्षामलकबिल्वानित्रायमाणानिदिग्धिका ॥ सिद्धमेतैर्घृतंसद्योजीर्णज्वरमपोहति । क्षयंकासंशिरःशूलंपार्श्वशूलंहलीमकम् ॥ अंसाभितापमग्निञ्चविषमंसनियच्छति ।

अर्थ—पीपल, चन्दन, मोथा, उसीर कुटकी, इन्द्रजौ, भू आंवला, सारिवा, अतीस शालिपर्णी, दाख, आंवला, बेलगिरी, त्रायमाण, कटेरी इनके काथमें सिद्ध किया हुआ घृत जीर्ण ज्वरको शीघ्र नष्ट करदेता है। क्षयी, खांसी, शिरो वेदना, पार्श्वशूल हलीमक, असाभिताप और विषमाग्नि ये भी दूर होजाते है ॥

अन्यप्रयोग।

वासांगुडूचींत्रिफलांत्रायमाणांयवासकम् पक्त्वातेनकषायेणपयसाद्विगुणेनच । पिप्पलीमुस्तमृद्वीकाचन्दनोत्पलनागरैः॥ कल्कीकृतैश्चविपचेत्घृतंजीर्णज्वरापहम्

अर्थ—अडूसा, गिलोय, त्रिफला, त्रायमाण, जवासा, इनके क्वाथमें घृत और घृत सेदूना दूध, तथापीपल, मोथा, किसमिस चन्दन, नीलोफर, सोंठ, ये सब डालकर घृत पकावै यह घृत जीर्णज्वरनाशक होता है ॥

अन्य प्रयोग।

बलांश्वदंष्ट्रांबृहतींकलसींधावनींस्थिराम्॥ निम्बंपर्पटकंमुस्तंत्रायमाणांदुरालभाम् । कृत्वाकषायंपेयार्थंदद्यात्तामलकींशटीम्॥ द्राक्षांपुष्करमूलञ्चमेदामामलकानिच । घृतंपयश्चतत्सिद्धंसर्पिज्र्वरहरंपरम् ॥ क्षयकासशिरःशूलपार्श्वशूलांसतापनुत् ।

अर्थ—खरैटी, गोखरू, कटेरी, प्रश्नपर्णी छोटी कटेरी, शालपर्णी, नीम, पितपापडा, मोथा, त्रायमाण, जवासा, इनका क्वाथ करै। तथा भूआंवला, शटी, दाख, पौहकरमूल, मेदा और आंवला इनको पीस कर लुगदी बनावै और इनमें घृत और दूध डालकर सिद्ध करै तो यह घृत उत्तम ज्वर नाशक होताहै। क्षयी, खांसी, शिरोवेदना, पार्श्वशूल और अंस तापको दूर करता है

ज्वर में शोधन विधि।

ज्वरिभ्योबहुदोषेभ्यऊर्द्ध्वञ्चाधश्चबुद्धिमान् ॥ दद्यात्संशोधनेकालेकल्पेयदुपदेक्ष्यते॥

अर्थ—ऐसे ज्वर रोगीको जो बहुत दोषों से युक्त हो उसे बुद्धिमान् वैद्य कल्पस्थान में कहे हुए वमन विरेचन उचित काल में देवै।

ज्वर में वमन के प्रयोग।

मदनंपिप्पलीभिर्वाकलिङ्गैर्मधुकेनवा ॥ युक्तमुष्णाम्बुनापेयंवमनंज्वरशान्तये । सौद्राम्बुनारसेनेक्षोरथावालवणाम्बुना॥ ज्वरेप्रच्छर्दनंशस्तंमद्यैर्वातर्पणेनवा। मृद्वीकामलकानांवारसंप्रच्छर्दनंपिबेत् ॥रसमामलकानांवाघृतभृष्टंज्वरापहम् ।

अर्थ—पीपल, अथवा इन्द्रजौ अथवा मुलहटी के साथ मैनफल का चूर्ण मिला कर गरम जलके साथ पान करनेसे वमन होती है, यह वमन ज्वरनाशकहै शहत और जल अथवा ईखका रस नमकका जल अथवा म-

अन्य स्नेहनप्रयोग ।

पटोलपिचुमर्दाभ्यांगुडूच्यामधुकेनच । मदनैश्चमृतःस्नेहोज्वरघ्नमनुवासनम् ॥ चन्दनागुरुकाश्मर्यपटोलमधुकोत्पलैः । सिद्धःस्नेहोज्वरहरःस्नेहवस्तिःप्रयुज्यते॥ यदुक्तंभेषजाध्यायेविमानेरोगभेषजे । शिरोविरेचनंकुर्याद्युक्तिज्ञस्तज्ज्वरापहम् यच्चनावनिकंतैलंयाश्चप्राग्धूमवर्तयः । मात्राशितीयेनिर्दिष्टाः प्रयोज्यास्ताज्वरेष्वपि॥ अभ्यङ्गांश्चप्रदेहांश्चपरिषेकांश्चकारयेत् । यथाभिलापंशीतोष्णंविभज्यद्विविधंज्वरम् ॥ सहस्रधौतंसर्पिर्वातैलंवाचन्दनादिकम् । दाहज्वरप्रशमनदद्यादभ्यञ्जनंभिषक् ॥

अर्थ—परवल, नीमकीछाल, गिलोय, मुलहटी, मैनफल इनके साथ घृतको सिद्ध करके ज्वरनाशक अनुवासनवस्ति देवै । अथवा चंदन, अगर, खंभारी, परवल, मुलहटी, नीलोफर इनमें सिद्ध कियेहुए घृतकी स्नेहनवस्ति ज्वरनाशक होती है ।

जो सूत्रस्थानमें और विमानस्थानमें शिरोविरेचन कहे गयेहैं वेभी युक्तिपूर्वक देने चाहिये । उनके प्रयोगसे भी ज्वरनाश होताहै।

सूत्रस्थानके मात्राशितीय अध्यायमें जो नस्य तैल, धूमवर्ति आदि प्रयोग वर्णन कियेगये हैं वेभी ज्वरमें करने चाहियें ॥ शीत और उष्ण दोनों प्रकारके ज्वरों की विवेचना करके ठंडा और गरम अभ्यंग, प्रदेह और परिषेक करै ॥ हजारवार धोया हुआ घी, या चन्दनादि तैलका अभ्यंग करनेसे दाहज्वर नष्ट होजाताहै ॥

चन्दनाद्य तैल ।

अथ चन्दनाद्यंतैलमुपदेक्ष्यामः ! चन्दनशैलेयभद्रश्रियकालानुसार्यकालीयकपद्मापद्मकोशीरशारिवामधुकप्रपौण्डरीकनागपुष्पोदीच्यचव्यपद्मोत्पलनलिनकुमुदसौगन्धिकपुण्डरीकशतपत्रबिसमृणालशालूकशैवालकशेरुकानन्ताकुशकाशेक्षुदर्भशरनलशालिमूलजम्बुवेत्रवेतसवानीरगुन्द्राककुभाशनाश्वकर्णस्यन्दनवातपोथसालतालधवतिनिशखदिरकदरकदम्बकाश्मर्यफलसर्जप्लक्षवटकपीतनोदुम्बराश्वत्थन्यग्रोधलोध्रधातकीदूर्वोत्कण्टकशृङ्गाटकमञ्जिष्ठाज्योतिष्मतीपुष्करबीजक्रौञ्चादनवदरीकोविदारकदलीसंवर्तकारिष्टशतपर्वाशीतकुम्भिकाशतावरीश्रीपर्णीश्रावणीमहाश्रावणी रोहिणी शीतपाक्योदनपाकीकालाबलापयस्याविदारी जीवकर्षभकमेदामहामेदामधुररुष्यप्रोक्तातृणशून्यमोचरसाटरूषकबकुलकुटजपटोलनिम्बशाल्मलीनालिकेरखर्जूरमृद्वीका पियालप्रियंगुधन्वनात्मगुप्तामधूकानामन्येषाञ्चशीतवीर्याणांयथालाभमौषधानांकषायंकारयेत्। तेनकषायेण द्विगुणितपयसातेषामेवचकल्केनकषायार्धमात्रंमृद्वग्निनासाधयेत्तैलम् एतत्तैलमभ्यङ्गार्थंचसद्योनाहंज्वरमपनयत्येतैरेवचौषधैः सुश्लक्ष्णपिष्टैःसुशीतैःप्रदेहङ्कारयेदेतैरेवच शृतशीतंसलिलमवगाहपरिषेकार्थंप्रयुञ्जीतइतिचन्दनाद्यंतैलं ।

अर्थ—रक्तचन्दन, शिलापुष्प, सफेद च-

न्दन, कालानुसार्य्य [शैलेय] पीतचन्दन, पद्मा, पद्माख, उसीर, शारिवा, मुलहटी पुण्डरीक, नागकेसर, नेत्रवाला, चव्य, पद्म, नीलकमल, नलिन, कमोदनी, सौगन्धिक, पुण्डरीक, शतपत्र, बिस (कमलनाल), मृणाल, शालूक, शैवाल, केसरू अनन्तमूल कुशा, कांस, ईख, दाभ, सरकंडे की जड, नरसलकी जड, शालिमूल, जामन, वेत, वेतस, वाणीरि, गुन्द्रा, अर्जुन,असन, साल स्यन्दन (तिनिशवृक्ष), वातपोथ (पलास) साल, ताल, धौ, तिनिश, खैर, दुर्गन्धखैर, कदम्ब, खंभारीफल, सर्ज, पाकड, वट कपीतन, गूलर, पीपल, वड, लोध, धाय, दूध, उत्कण्टक, सिंघांडा, मजीठ, मालकांगनी, पुष्करबीज, क्रौञ्चादन, वेर,लालकनेर कैला, मोथा, नीम, शतपर्वा (एक प्रकार की दूब) शीतकुम्भिका, सितावर, खंभारी श्रावणी, महाश्रावणी, कुटकी, शीतपाकी [खरैटी] ओदनपाकी, काला (नीलिनी) खरैटी, क्षीरकाकोली, विदारीकन्द, जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, मूर्वा, अतिवला, मल्लिका, मोचरस, अडूसा, वकुल, कुडा, की छाल, परवल, नीम, सेमर, नारियल, खिजूर, किसमिस, पियाल, चिरोंजी, धन्वन कैंच, महुआ, । इन सब औषधियोंको तथा अन्य शीतवीर्यवाली औषधोंको जो जो मिल सकें इकठी करके क्वाथ करे फिर इस क्वाथका आधा तेल और दूना दूध तथा इन्हीं औषधोंका कल्क करके मन्दी मन्दी आग पर पकावै ॥ यह तैल दाहज्वर को शीघ्रही दूर करदेताहै । इन्हीं औषधियोंको महीन पीसकर ठंडी ठंडीका लेप करै और इन्हीं औषधोंको डालकर जल औटावै और ठंडा करकें स्नान और परिषेक में देवै ॥ यह चन्दनाद्य तैल है ।

अन्यप्रयोग ॥

मध्वारनालक्षीरदधिघृतसलिलसेकावगाहांश्चसद्योदाहज्वरमपनयन्तिशीतस्पर्शत्वादिति ॥

अर्थ—शहत, कांजी, दूध, दही, घी और जल इनका स्पर्श शीतल है इनका परिषेक और अवगाह मेंप्रयोग करने से तत्काल दाह दूर हो जाता है ।

दाहज्वर में अन्य उपचार ।

पौष्करेषुसुशीतेषुपद्मोत्पलदलेषुच ! कल्हाराणाञ्चपत्रेषुक्षौमेषुविमलेषुच । चन्दनोदकशीतेषुसुप्याद्दाहार्दितःसुखम् ॥
हिमाम्बुसिक्तेसदनेशीतेधारागृहेऽपिवा। हेमशंखप्रवालानांमणीनांमौक्तिकस्यच॥
चन्दनोदकशीतानांसंस्पर्शानुरसान्स्पृशेत् स्रग्भिर्नीलोत्पलैःपद्मैर्व्यजनैर्विविधैरपि ॥
शीतवातावहैर्व्यज्येच्चन्दनोदकवर्षिभिः । नद्यस्तडागाःपद्मिन्योह्रदाश्चविमलोदकाः
अवगाहहितादाहतृष्णाग्लानिज्वरापहाः । प्रियाःप्रदक्षिणाचाराःप्रमदाश्चन्दनोक्षिताः
सान्त्वयेयुःपरैःकामैर्मणिमौक्तिकभूषणाः॥ शीतानिचान्नपानानिशीतान्युपवनानिच वायवःचन्द्रपादाश्चशीतदाहज्वरापहाः॥

अर्थ—दाहज्वरसे पीडित मनुष्यको उचितहै कि ऐसे ठंडे घरमें जहां शीतल जलों

का छिडकावहोरहाहो अथवा जहां फव्वारे चलरहेहों शीतलकमल के पत्तों पर अथवा रक्तकमलमें नीलकमल वा कल्हारके पत्रोंपर वा नरमनरम रेशमीवस्त्रोंपर शयन करै जिनपर शीतल चन्दनोदकभी छिडकरहाहो। सुवर्ण, शंख, मूंगा, मणि, मोती और शीतलचन्दनोदक को अपने देह पर लगाता रहै। नीलकमल और लाल कमल की माला धारणकरै। ऐसे पंखों से हवा करावै जिनपर चन्दनका जल छिडक रहाहो और जिनसे ठंडी २ वायु आतीहो। निर्मलजल के नदी तालाव या ह्रद्में जिनमें कमल खिल रहे हैं स्नान करनेसे दाह तृष्णा, ग्लानि और ज्वर शीघ्र शान्त होते हैं। अत्यन्त प्यारी, चतुर, चन्दन लगी हुई. मणिभूषणादि अलंकारों को धारण करने वाली. नवीन स्त्रियोंसे आलिंगन करने से भी दाह ज्वर शान्त होजाताहै। शीतल अन्नपान. शीतलउपवन. शीतलवायु. शीतल चन्द्रमाकी किरण इनका सेवन करने से भी दाहज्वर शांत होता है।

अथोष्णाभिप्रायिणांज्वरितानांअभ्यङ्गादीनुपक्रमानुपदेक्ष्यामः।

अर्थ—अब हम उन अभ्यंगादि का वर्णन करते हैं जो ऐसे शीतज्वर रोगियों को हितकारी हैं जिनको उष्ण पदार्थ के सेवन की आवश्यकता है।

अगुर्व्यादि तेल ॥

अगुरुकुष्ठतगरपत्रनलदशैलेयकध्यामकहरेणुकास्थौणेयकक्षेमिकैलावराङ्गदलपुरनमालपत्रभूतीकरोहिषसरलसल्लकीदेवदार्वग्निमन्थविल्वस्योनाकनाकाश्मर्यपाटलापुनर्नवावृश्चीरकण्टकारिकाबृहतीशालिपर्णीपृश्निपर्णीमाषपर्णीमुद्गपर्णीगोक्षुरकैरण्डशोभाञ्जनकवरुणार्कचिरिविल्वतिल्वकशटीपुष्करमूलभाण्डीरोरुबूकपत्तुराक्षीवाश्मान्तकशिग्रुमातुलुङ्गमूलकमूलपर्णीपीलुपर्णीतिलपर्णीमेषशृङ्गीहिंस्रादन्तशठैरावतकभल्लातकास्फोतकण्डीरात्मजकैपीकाकरञ्जधान्यकाजमोदपृथ्वीकासुमुखसुरसकुठेरककण्डीरकालमालकपर्णासक्षवकफाणिञ्जकभूस्तृणशृङ्गवेरपिप्पलीसर्षपाश्वगन्धारास्नारुहारोहावचाबलातिबलागुडूचीशतपुष्पाशीतवल्लीनाकुलीगन्धनाकुलीश्वेताज्योतिष्मतीचित्रकाध्यण्डाम्लचाङ्गेरीबदरकुलत्थामाषाणामेवंविधानामन्येषांचोष्णवीर्याणांयथालाभमौषधानांकषायङ्कारयेत्तेनकषायेणतेषामेवचकल्केनसुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकदधिमण्डारनालकट्वरमतिविनीतैर्नतैलपात्रंविपाचयेत् ॥ तेनसुखोष्णेनतैलेनोष्णाभिप्रायिणंज्वरितमभ्यञ्ज्यात्। तथाशीतज्वरःप्रशाम्यतितैरेवचौषधैश्लक्ष्णपिष्टैःसुखोष्णैःप्रदेहंकारयेत् ॥ एतेषामेवचसुखोष्णक्वाथमवगाहनपरिषेकार्थंप्रयुञ्जीतज्वरप्रशमार्थमिति ॥ इति शीतज्वरेअगुर्वादितैलम् ॥

अर्थ—अगर, कूठ, तगर, तेजपात, खस, शैलेय, ध्यामकतृण, हरेणु, थूनेर, हलदी, इलायची, त्रिफला, प्रियंगुके पत्ते, पुर (घूपागर) तमालपत्र, अजवायन,

रोहिषतृण, सरलकाष्ट, शल्लकी, देवदारु, अरनी, बेलगिरीकीछाल, श्योनाक, खम्भारी, पाटला, पुनर्नवा, वृश्चीर, (लालसांठ) छोटीकटेरी, बड़ीकटेरी, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, गोखरू, अरण्ड, सहजना, बरना, आक, चिरविल्व [एक प्रकार का कञ्जा,] लोध, कचूर, पौहकर मूल, भाण्डीर, अरंड, पतूर, सहजना, अश्मंतक शिग्रु, बिजौरा, मूलक, मूलपर्णी पीलुपर्णी, तिलपर्णी, मेंढासिंगी, हिस्रा, दन्तशठा, ऐरावत, भिलाया, आस्फोतक, कण्डीर, आत्मजक, इषीका, कंजा, धनियां, अजमोद, कालाजीरा, सुमुख, सुरस, कुठेरक, कण्डीर, कालमाल, पर्णास, क्षवक, फणिज्झक [ये औठों प्रकारकी तुलसी होती हैं], भूस्तृण, सोंठ, पीपल, सरसों, असगन्ध, रास्ना, दूबकीजड, वच, बला, अतिबला, गिलोय, सोंफ, शतवल्ली, नाकुली, गन्धनाकुली, श्वेत अपराजिता, मालकांगनी, कैंच, अम्लचांगेरी, बेर कुलथी, उरद । इन सबको तथा और भी ऐसेही उष्णवीर्य द्रव्योंको जो मिलसकें इकठे करके इनका क्काथ करै ॥ यह कषाय और इन्हींका कल्क तथा सुरा, सौवीरक, तुषोदक, मैरेय, मेदक, दधिमण्ड, कंजा, और कदूवर, इन सबको इकठे करे, और एकपात्र अर्थात् सोलह सेर तेल इकट्ठा करके सबको पकावै। इस सुहातें २ गरम तेल से शीतज्वर वाले रोगी का अभ्यञ्जन करै ॥ इन्हीं औषधोंको महीन पीसकर गरम२ का लेप करनेसे शीतज्वर शांत होजाताहै । इन्हींका क्काथ करके परिषेक वा अवगाहन करने से ज्वर शान्त होजाता है । यह शीत ज्वरमें अगुर्वादि तैल है ॥

शीतज्वर में अन्य उपचार ।

भवन्तिचात्र ।

त्रयोदशविधःस्वेदःस्वेदाऽध्यायेनिदर्शितः मात्राकलाविदायुक्तःसचशीतज्वरापहः॥ साकुटीतच्चशयनंतच्चावच्छादनंज्वरम् शीतंप्रशमयन्त्याशुधूपाश्चागुरुजाघनाः । पवित्रचारुगात्राश्चतरुण्योयौवनोष्मणा । आश्लेषाच्छमयन्त्याशुप्रमदाःशिशिरज्वरम् ॥ स्वेदनान्यन्नपानानिवातश्लेष्महराणिच । शीतज्वरंजयन्त्याशुसंसर्गबलयोजनात् ॥

अर्थ—स्वेदाध्यायमें जो तेरह प्रकार के स्वेदन वर्णन किये गयेहैं उनकी मात्रा और कालका विचार करके प्रयोग करने से शीतज्वर नष्ट होजाताहै । कुटीप्रावेशिक विधि, शयन तथा आच्छादन भी जो वर्णन किये है तथा अगर और कपूर की धूपका प्रयोग करनेसे शीत ज्वर शान्त होजाता है ॥ सुन्दर मनोहर गात्रवाली तरुणाई में भरपूर प्रमदाओं के गाढ़ आलिंगनकरने पर उनके यौवन की गरमई से शीतज्वर शान्त होजाता है ॥ वातकफनाशक स्वेदन अन्नपान के संसर्गबल के साथ [एकसाथ] प्रयोग करने पर शीतज्वर शान्त होजाता है ॥

वातजेश्रमजेचैवपुराणेक्षतजेज्वरे । लंघनंनहितंविद्याच्छमनैस्तानुपाचरेत् ॥

अर्थ—वातज, श्रमज, जीर्ण और क्षतज

ज्वरों में लंघन हितकारी नही होता हैं, इन की चिकित्सा संशमन औषधियों द्वाराकरै ।

विक्षिप्यामाशयोष्माणंयस्मद्दत्वारसंनृणाम् । ज्वरंकुर्वन्तिदोपास्तुहीयतेऽग्निवलंततः ॥यथाप्रज्वलितोवन्हिःस्थाल्यामिन्धनवानापि । नपचत्योदनंसम्यगनिलेरितोवहिः ॥ पक्तिस्थानात्तदादोपैरूष्मांक्षिप्तोवहिर्नृणाम् । नपचत्यभ्यवहृतंकृच्छात्पचतिवालघु । अतोऽग्निवलरक्षार्थलंघनादिक्रमोहितः । सप्ताहेनहि पच्यन्तेसर्वधातुगतामलाः ॥ निरामश्चाप्यतःमोक्तोज्वरःप्रायोऽष्टमेऽहनि ।

अर्थ—जिस कारण से दोप रसको प्राप्त होकर आमाशयस्थ उष्मा को स्थानसे हटा कर ज्वरको उत्पन्न करतेहैं इसी हेतुसे अग्निवल क्षीण होजाताहे । जैसे जलतीहुई ईंधनयुक्त अग्नि हवाके झोकेसे बाहर निकलकर हांडीके भातको नहीं पका सकतीहै । तैसेही दोषों से प्रेरित होकर आमाशय से निकली हुई ऊष्मा भोजन को नहीं पचा सकती है अथवा लघु अन्नकोभी काठिनतासे पचाती है । इसलिये अग्निके वलकी रक्षा के निमित्त लंघन कराना हित है । सातादिवस तक लंघन करनेसे सर्वधातुगत दोप पच जातेहैं।आठवें दिन ज्वर प्रायःनिरामय होजाताहै

वातज ज्वर में चिकित्साक्रम ।

उदीर्णदोपस्स्वल्पाग्निरश्ननगुरुविशेपतः॥ मुच्यतेसहसाप्राणैर्थिरांक्लिश्यतिवानरः । एतस्मात्कारणाद्विद्वान्वातिकेऽप्यादितो ज्वरे ॥ नातिगुर्वतिवास्निग्धंभोजयेत् सहसानरम् ॥ ज्वरेमारुतजेत्वादावनपेक्ष्यापिहिक्रमम् ॥ कुर्यान्निरनुबन्धानामभ्यङ्गादीनुपक्रमान् । पाययित्वाकषायञ्चभोजयेद्रसभोजनम् ॥ जीर्णज्वरहरंकुर्यात् सर्वशश्चाप्युपक्रमम् ।

अर्थ—उदीर्ण दोप और अल्पाग्निवाला पुरुप यदि विशेप करके भारी भोजन करै तौ शीघ्रही मर जाताहे या बहुत दिन तक क्लेश पाता है । इसकारण से विद्वान् वैद्यको उचित है कि वातिक ज्वर में भी प्रथमही अत्यन्त भारी या स्निग्ध भोजन न करावै ।

वातज ज्वर में जो कफ पित्तादि दोपोंका अनुबन्ध न हो तौ प्रमथही लंघनादि क्रमकी उपेक्षा करके अभ्यंगादि द्वारा चिकित्साकरै। क्वाथ का पान कराके मांसरस का भोजन करावै । और जो जीर्ण ज्वरके नाश करने वाली रीति कही गई है वह सब वातज ज्वरमेंकरै

कफज ज्वर में चिकित्साक्रम ।

श्लेष्मलानामवातानांज्वरोऽनुष्णकफाधिकः ॥ परिपाकंनसप्ताहेनापियातिमृदूष्मणाम् । तंक्रमेणयथोक्तेनलंघनाल्पाशनादिना ॥ आदशाहमुपक्रम्यकपायाद्यैरुपाचरेत् ।

अर्थ—कफ प्रकृति और हीन वात वाले पुरुषों का शरीर ठंढा रहता है और उस को कफाधिक ज्वर होता है उसकी जठराग्निमन्द होतीहै इससे ज्वर सात दिन में नहीं पचता है : इस ज्वर में पूर्वोक्त क्रम से दस दिन तक लंघन या अल्प भोजन द्वारा चिकित्सा करके क्वाथादि से चिकित्सा करै ।

अन्य ज्वरोंमें चिकित्साक्रम ।

सामायेयेचकफजाःकफपित्तज्वराश्चये। लंघनंलंघनीयोक्तंतेषुकार्यंप्रतिमति॥ वमनैश्वविरेकैश्चवस्तिभिश्चयथाक्रमम् ॥ज्वरानुपचरेद्धीमान्कफपित्तानिलोद्भवान्। संसृष्टान्सन्निपतितान्बुद्ध्वातरतमैःसमैः ज्वरान्दोषक्रमापेक्षीयथोक्तैरोषधैर्जयेत्।

अर्थ—आमज्वर, कफज्वर तथा कफ पित्त ज्वरोंमें सम्पूर्ण लंघनीयोक्त लंघनोंका दोषके अनुसार प्रयोग करना उचित्त है । बुद्धिमान् वैद्यको उचित्तहै कि कफज्वरकी वमनसे पित्तजकी विरेचन से और वातज की वस्ति प्रयोगसे चिकित्सा करै । द्वन्द्वज और सन्निपातजज्वर में दोषोंकी न्यूनता, अधिकता और समानता का विचार करके यथोक्त औषधियोंद्वारा चिकित्सा करै ।

सन्निपातज ज्वरमें चिकित्साक्रम ।

वर्द्धनेनैकदोषस्यक्षपणेनोच्छ्रितस्यवा॥ कफस्थानानुपूर्व्यावासन्निपातज्वरंजयेत्

अर्थ—सान्निपातज ज्वरमें हीन दोष को बढाने से और वृद्धदोषको क्षीण करने से चिकित्सा करै, जब दोष समान होजाय तब प्रथम कफकी फिर पित्तकी और फिर वातकी चिकित्सा करै ।

कर्णमूलकाचिकित्साक्रम ॥

सन्निपातज्वरस्यान्तेकर्णमूलेसुदारुणः॥ शोथःसञ्जायतेतेनकश्चिदेवप्रमुच्यते । रक्तावसेचनैःशीघ्रं सर्पिष्पानैश्चतज्जयेत्॥ प्रदेहैःकफपित्तघ्नैर्नावनैःकवलग्रहैः ॥

अर्थ—सान्निपातके अन्तमें कर्णमूल नामक एक दारुण शोथ उत्पन्न होताहै इससे कोई २ ही बचताहै, इस शोथको फस्त खोलकर, घृतपान कराके, कफ पित्तनाशक प्रदेह, नस्य वा कवलग्रह द्वारा शीघ्रही दूर करने का उपाय करैं ॥

शीतोष्णस्निग्धरूक्षाद्यैर्ज्वरोयस्यनशाम्यति ॥ शाखानुसारीरक्तस्यसोऽवसेकात्प्रशाम्यति । विसर्पेणाभिघातेनयश्चविस्फोटकैर्ज्वरः ॥ तत्रादौसर्पिःपानं कफपित्तोचरोनचेत् ।

अर्थ—शीतल, उष्ण, स्निग्ध और रूक्षादि उपचारों द्वारा जिसका ज्वर शांत नहो तौ यह ज्वर शाखानुसारी होताहै यह रक्त मोक्षण से शान्त होताहै । जो ज्वर विसर्प, अभिघात, और विस्फोटक द्वारा उत्पन्न होताहै उसमें प्रथम घृतपान करावै परन्तु इन ज्वरोंमें कफ पित्त की अधिकता न हो तो ऐसाकरै ।

जीर्णज्वरमें चिकित्साक्रम ।

दौर्बल्याद्देहधातूनांज्वरोजीर्णोऽनुवर्त्तते। बल्यैःसबृंहणैस्तस्मादाहारैस्तमुपाचरेत्।

अर्थ—देहकी सम्पूर्ण धातुओं की दुर्बलता से जीर्णज्वर उत्पन्न होताहै, अतएव बलकारक और बृंहणकर्ता आहारों के द्वारा इसकी चिकित्सा करै ॥

विषमज्वरमें चिकित्साक्रम ।

कर्मसाधारणंकुर्यात्तृतीयकचतुर्थके॥ आगन्तुरनुबन्धोहिप्रायशोविषमज्वरे ।

अर्थ—तिजारी और चौथिया ज्वरमें साधारण विधि करै, क्योंकि विषमज्वरमें प्रायः आगन्तु का अनुबन्ध होता है ॥

वातप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ।

वातप्रधानंसर्पिर्भिर्वस्तिभिःसानुवासनैः स्निग्धोष्णैरनुपानैश्चशमयेद्विषमज्वरम् ।

अर्थ—वात प्रधान विषमज्वरको घृत तथा अनुवासनादि वस्तिकर्म द्वारा शमन करै और भोजन करके स्निग्ध और उष्ण अनुपानका सेवन करै ॥

पित्तप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ।

विरेचनेनपयसासर्पिषासंस्कृतेनच ॥ विषमन्तिक्तशीतैश्चज्वरंपित्तोत्तरंजयेत् ।

अर्थ—पित्तप्रधान विषमज्वरकी चिकित्सा विरेचन और दूधसे संस्कार कियेहुए घृत और तिक्त शीतकषायों द्वारा करै ॥

कफप्रधान विषमज्वर की चिकित्सा ॥

वमनंपाचनंरूक्षमनुपानं विलंघनम् ॥ कषायोष्णश्चविषमेज्वरेशस्तंकफोत्तरे ।

अर्थ—कफ प्रधान विषमज्वर में वमन पाचन, रूक्ष अनुपान, लंघन, क्वाथ और उष्णक्रिया द्वारा चिकित्सा करै ॥

विषमज्वरनाशक अन्ययोग ॥

योगाःपराःप्रवक्ष्यन्तेविषमज्वरनाशनाः॥ प्रयोक्तव्यामतिमतादोषादीन्प्रविभज्यये सुरासमण्डपानार्थेभक्ष्यार्थेचरणायुधाः तित्तिरिश्चमयूरश्चप्रयोज्योविषमज्वरे । पिवेद्वाषट्पलंसर्पिरभयांवाप्रयोजयेत् । त्रिफलायाःकषायंवागुडूच्यारसमेववा । नीलिनीमजगन्धाश्चत्रिवृतांकटुरोहिणीम्॥ पिवेज्ज्वरागमेयुक्त्यास्नेहस्वेदोपपादितः॥ सर्पिषोमहतीमात्रांपीत्वावाच्छर्दयेत्पुनः॥ उपयुज्यान्नपानंवाप्रभूतंपुनरुल्लिखेत । मान्नंमद्यंप्रभूतंवापीत्वास्वप्याज्ज्वरागमे॥ आस्थापनंयापनंवाकारयेद्विषमज्वरे । पयसाष्टपदंशस्यशकृद्वातदहःपिवेत् ॥ वृषस्यदधिमण्डेनसुरयावाससैन्धवम्॥पिप्पल्याःत्रिफलायाश्चदध्नस्तक्रस्यसर्पिषः पञ्चगव्यस्यपयसःप्रयोगोविषमज्वरे ।

अर्थ—अब हम विषमज्वरनाशक कुछ उत्कृष्ट प्रयोगों का वर्णन करतेहैं, बुद्धिमान् को उचित है कि इन योगोंका प्रयोग दोषों की विवेचना करके करै ॥

विषमज्वर में पीने के लिये सुरा और सुरामण्ड, खाने के लिये मुर्गा, तीतर और मोरका मांस देवे । **अथवा** षट्पल घृत,हरड त्रिफलाका क्वाथ और गिलोयका रस देवे । **अथवा** रोगीका स्नेहन और स्वेदनकर्म करके ज्वरके आगममें नीलिनी, अजगन्धा, निसोथ और कुटकी इनका पान करावे । **अथवा** घी की बडी मात्रा को पिलाकर वमन करादे । **अथवा** बहुतसा अन्नपान कराके वमन करादे ।**अथवा** ज्वरके आगम में अन्न और बहुतसा मद्यपान कराके शयन करादेवै और जो नींद न आवै तौ आस्थापनादि वस्तिका प्रयोग करै अथवा जिस दिन ज्वर आवै उस दिन दूध के साथ बिल्लीका विष्टा पान करावे ।

अथवा बैलका गोबर सैंधेनमक में मिलाकर दधिमण्ड या मद्य के साथ पान करै । **अथवा** पीपल, त्रिफला दही, मठा, घी पंचगव्य और दूधका प्रयोग करना चाहिये।

विषमज्वर में अन्य प्रयोग ।

लशुनस्यसतैलस्यप्राग्भक्तमुपसेवनम् ॥

मेध्यानामुष्णवीर्य्याणामामिषाणाञ्चभक्षणम्॥हिंगुतुल्यानुवैयाघ्रीवसानस्यंससैन्धवाः॥पुराणसर्पिःसिंहस्यवसातद्वत्ससैन्धवाः॥सैन्धवंपिप्पलीनाञ्चतण्डुलाःसमनःशिला॥नेत्राञ्जनंतैलपिष्टंशस्यतेविषमज्वरे॥पलंकषानिम्बपत्रंवचाकुष्ठंहरीतकी। सर्षपाःसयवाःसर्पिर्धूपनंज्वरनाशनम् ॥ येधूमाधूपनंयच्चनावनञ्चाञ्जनञ्चयत्॥मनोविकारेव्याख्यातंकार्य्यंतद्विषमज्वरे ॥

अर्थ—विषमज्वर में भोजन करने से पाहिले ल्हसनका रस और तेल पीवै पीछे मेध्य और उष्णवीर्य मांसका भक्षण करै। अथवा हींग और व्याघ्रवसा इनको समान भागलेकर थोडासा सेंधानमक मिलाकर नस्य लेवै। अथवा पुराना घी, सिंह की चर्बी और सेंधानमक इनकी नस्य लेवै। अथवा सेंधानमक, पीपलके बीज, मनसिल इनको तेल में पीसकर अंजन लगावै तौ विषम ज्वर जाता रहताहै। अथवा गूगल, नीमके पत्ते, वच, कूठ, हरड, सरसों, जौ और घी इनकी धूप देनेसे ज्वर नष्ट होजाताहै। मनोविकार अर्थात् उन्माद रोग में जो जो धूम, धूप, नस्य और अञ्जन वर्णन कियेहैंवे भी सब विषमज्वरमें करने चाहियें

विषमज्वर में दैवव्यपाश्रय प्रयोग।

मणीनामौषधीनाञ्चमङ्गल्यानांविषस्यच धारणादगदानाञ्चसेवनान्नभवेज्ज्वरः। सोमंसानुचरंदेवंसमातृगणमीश्वरम्। पूजयन्प्रयतःशीघ्रंमुच्यतेविषमज्वरात्॥ विष्णुंसहस्रमूर्द्धानंचराचरपतिंविभुम्॥ स्तुवन्नामसहस्रेणज्वरान्सर्वानपोहति॥ ब्रह्माणमश्विनाविन्द्रंहुतभक्षंहिमाचलम्। गङ्गामरुद्गणांश्चेष्टापूजयन्जयतिज्वरान्। भक्त्यामातापितॄणाञ्चगुरूणांपूजनेनच ब्रह्मचर्य्येणतपसासत्येननियमेनच ॥ जपहोमप्रदानेनवेदानांश्रवणेनच ॥ ज्वराद्विमुच्यतेशीघ्रंसाधूनांदर्शनेनच ॥

अर्थ—मणि, औषध, मंगलद्रव्य, विष और अगदके धारण करनेसे ज्वर नहीं आताहै। शान्तभावमें स्थित अनुचर और मातृगणोंसे युक्त शिवका पूजन करनेसे विषमज्वर शीघ्र दूर होजाताहै। सहस्र मूर्द्धा, चराचरके स्वामी, सर्वव्यापक विष्णु के सहस्रनामका पाठ करनेसे सबप्रकार के ज्वर दूर होजाते है। ब्रह्मा, अश्विनीकुमार, इन्द्र, अग्नि, हिमाचल, गंगा, मरुद्गण तथा अन्य इष्ट देवताओंका पूजन करनेसे सब प्रकार के ज्वर दूर होजाते हैं॥ माता पितामें भक्ति करने से, गुरुजनोंका पूजन करनेसे, ब्रह्मचर्यव्रत धारणसे, तपस्या से, सत्यसे, नियमसे, जप होम दानसे, वेदों के श्रवणसे और साधु महात्माओं के दर्शनों से ज्वर शीघ्रही जाता रहता है।

भिन्न२धातुस्थज्वरोंकीचिकित्सा।

ज्वरेरसस्थेवमनंउपवासञ्चकारयेत्॥ सेकप्रदेहौरक्तस्थेतथासंशमनानिच॥ विरेचनंसोपवासंमांसमेदःस्थितेहितम्। आस्थिमज्जगतेदेयानिरूहाःसानुवासनाः॥

अर्थ—जो ज्वर रस में स्थित हो तौ वमन और उपवास करावे। रक्तस्थ हो तौ

परिषेक, प्रदेह और संशमन चिकित्सा करे, ज्वर के मांस और मेदा में स्थित होने पर विरेचन और उपवास हित है । ज्वर के अस्थि और मज्जा में स्थित होने पर निरूहण और अनुवासन वस्ति देवे ।

अभिचारादिजन्यज्वरमें चिकित्सा ।

शापाभिचाराद्भूतानामभिषङ्गाच्चयोज्वर॥दैवव्यपाश्रयंतत्रसर्वमौषधमिष्यते॥अभिघातज्वरोनश्येत्पानाभ्यङ्गेनसर्पिषः। रक्तावसेकैर्मद्यैश्चसात्म्यैर्मांसरसोदनैः ॥ सानाहोमद्यसात्म्यानांमदिरारसभोजनैः क्षतानांव्रणितानाञ्चक्षतव्रणाचिकित्सया।

अर्थ-शाप, अभिचार और भूताभिषंग से जो ज्वर उत्पन्न होता है वह दैवयुक्त व्यपाश्रय औषधियोंसे दूर होजाता है । अभिघातजज्वर घृतपान और घृताभ्यंग, रक्तावसेक [फस्त,] मद्य और सात्म्य मांसरस और चांवलका भोजन इनसे शान्त होता है मद्यसात्म्य वालोंका आनाहयुक्त ज्वर मद्यपान और मांसरस के भोजनसे दूर होता है ॥ क्षतरोगी और व्रणरोगियोंकाज्वर उन औषधोंसे शान्तहोता है जो क्षत और व्रणकी चिकित्सा में वर्णन की गई हैं ।

कामादि ज्वर चिकित्सा ।

आश्वासेनेष्टलाभेनवायोःप्रशमनेनच ॥ हर्षणेश्चशमंयान्तिकामशोकभयज्वराः ॥

अर्थ—कामज, शोकज और भयजज्वर आश्वासन (संतोषदायक वचन), इष्टलाभ, वायुशमन और हर्षोत्पादक कर्मोंसे दूर होजाते हैं ।

क्रोधजज्वरकी चिकित्सा ॥

काम्यैरर्थैर्मनोज्ञैश्चपित्तघ्नैश्चाप्युपक्रमैः। सद्वाक्यैःशाम्यतिक्षिप्रंज्वरःक्रोधसमुत्थितः

अर्थ—क्रोधजन्यज्वर काम्य और मनोज्ञ विषयों तथा पित्तघ्न चिकित्सा और सद्वाक्यों से शान्त होता है ॥

क्रोधादि ज्वरमें अन्योन्यक्रम ॥

कामात्क्रोधज्वरोनाशंक्रोधात्कामसमुद्भवः यातिताभ्यामुभाभ्याञ्चभयशोकसमुत्थितः

अर्थ—कामसे क्रोधज्वर और क्रोध से कामज्वर दूर होजाता है, एवं काम और क्रोध दोनों की उत्पत्तिसे भय और शोकसे उत्पन्न हुआ ज्वर जाता रहता है ।

स्मृतिज्वरकी चिकित्सा ॥

ज्वरकालञ्चवेगञ्चचिन्तयन्ज्वर्य्यतेतुयः तस्येष्टैस्तुविचित्रैश्चविषयैर्नाशयेत्स्मृतिम्

अर्थ—जिसको ज्वरके आनेके समय ज्वर के वेगका ध्यान बंधा रहताहै उसको ज्वर आजाता है उसका उपाय यही है कि अनेक प्रकारके अद्भुत २ विषयोंमें उसका चित्त खींचकर ज्वरकी ओरसे हटादेवे ॥

कुसमयज्वरमुक्ति के लक्षण ।

ज्वरप्रमोक्षेपुरुषःकूजनवमतिचेष्टते।श्वसन्विवर्णःस्विन्नाङ्गोवेपतेलीयतेमुहुः॥ प्रलपत्युष्णसर्वाङ्गःशीतांगश्चभवत्यपि।विसंज्ञोज्वरवेगार्त्तःसक्रोधइववीक्ष्यते॥ सदोषशब्दञ्चशकृद्द्रवंस्रवतिवेगवत्।लिङ्गान्येतानिजानीयाज्ज्वरमोक्षेविचक्षणः ॥

अर्थ—ज्वरके दूर होनेके समय पुरुषके कण्ठमें गूंजने कासा शब्द होताहै वमनसी

होती है तथा हाथ पांव चलने लगते हैं। श्वास वेगसे आताहै, देहकारंग बदलजाता है, पसीने आते हैं, देहमें कम्पन तथा सुस्ती होतीहै, वक २ करने लगताहै, सम्पूर्ण देह गरम रहताहै कभी कभी ठंडाभी होजाताहै, बेचेत रहताहै, ज्वरके वेगसे क्रोधी की तरह देखने लगता है। कभी अत्यन्त वेगसे दोष और शब्दसे युक्त पतला दस्त निकलजाता है, ये सब लक्षण ज्वरके हटनेके समय होतेहैं

बहुदोषस्यबलवान्प्रायेणाभिनवोज्वरः। सक्रियादोषपक्त्वाचेद्धिमुश्चतिसुदारुणम् ॥ कृत्वादोषवशाद्वेगंक्रमाद्युपरमन्तिये तेषामदारुणोमोक्षोज्वरिणांचिरकारिणाम्।

अर्थ—बहुत दोषयुक्त मनुष्यका प्रायः बलवान और नवीन ज्वर शीघ्रकारी चिकित्सा से कुसमय दोषोंके पचने के कारण से ऊपर कहेहुए दारुण लक्षणोंके साथ हटता है। दोषों के कारण वेग को प्राप्त होकर भी जो ज्वर धीरेधीरे हटते हैं उन चिरकारी ज्वरों के हटनेके समय ऐसे दारुण लक्षण नहींहोते हैं

ज्वरमुक्तव्यक्ति के लक्षण

विगतक्लमसन्तापमव्यथंविमलेन्द्रियम्। युक्तंप्रकृतिसत्त्वेनविद्यात्पुरुषमज्वरम् ॥

अर्थ—जिसका ज्वर शान्त होजाता है उसकी क्लान्ति, सन्ताप और व्यथा सब दूर होजाती हैं इन्द्रियां निर्मल होजाती हैं और उसका सत्वभी पूर्ववत् होजाता है।

ज्वर में अकर्तव्यकर्म ॥

सज्वरोज्वरमुक्तश्चविदाहीनिगुरूणिच। असात्मधान्यन्नपानानिविरुद्धानिविवर्जयेत् ॥ व्यवायमतिचेष्टाश्चस्थानशय्यासनानिच। तथाज्वरःशमंयातिप्रशान्तोजायतेनच ॥

अर्थ—चाहे ज्वर चलागया हो चाहे न गयाहो मनुष्य को उचितहै कि विदाही भारी असात्म्य और विरुद्ध अनुपानका सेवन त्याग देवै, मैथुन, अत्यन्त डोलना फिरना, अत्यन्त बैठे रहना, खडे रहना इत्यादि को भी त्याग दे। ऐसा करने से ज्वर शान्त होजाता है और शान्त होने पर फिर उत्पन्न नहीं होताहै.

ज्वर के हटने पर अकर्त्तव्यकर्म ॥

व्यायामश्चव्यवायश्चस्नानंचंक्रमणानिच। ज्वरमुक्तोनसेवेतयावन्नबलवान्भवेत् ॥ असञ्जातबलोयस्तुज्वरमुक्तोनिषेवते। वर्ज्यमेतन्नवस्तस्यपुनरावर्त्ततेज्वरः ॥ दुर्हृतेषुचदोषेषुयस्यवाविनिवर्त्तते। स्वल्पेनाप्यपचारेणतस्यव्यावर्त्ततेपुनः ॥

अर्थ—ज्वरके दूर होजाने पर जबतक देह में बल न आवै जबतक व्यायाम, व्यवाय स्नान चंक्रमण न करै! ज्वरमुक्त पुरुष बिना बल उत्पन्न हुए जो इन वर्जितकर्मों को करताहै, उसको ज्वर फिर आजाताहै! जो ज्वर दोषों के बुरी रीतिसे निकाले जाने पर शान्त होजाताहै वह थोडे से व्यतिक्रम सेही फिर आजाता है।

पुनरागतज्वर के कर्म ॥

चिरकालपरिक्लिष्टंदुर्बलंदीनचेतसम्। अचिरेणैवकालेनसहन्तिपुनरागतः ॥ अथवापिपरीपाकंधातुष्वेवक्रमान्मलाः। यान्तिज्वरमकुर्वन्तःतेतथाप्यपकुर्वते ॥

अर्थ—गाढा, कुछ २ पाण्डुता लिये चिकना और गिलगिला कफ मिश्रित रक्त पित्त होता है।

वातिक रक्त पित्तके लक्षण।

श्यावारुणंसफेनञ्चतनुरूक्षञ्चवातिकम्।

अर्थ—कुछकाला, कुछलाल, झागदार, पतला और रूखा वातमिश्रित रक्तपित्तहोताहै

पैत्तिक रक्तपित्तके लक्षण।

रक्तपित्तंकषायाभंकृष्णंगोमूत्रसन्निभम्। मेचकागारधूमाभमञ्जनाभञ्चपैत्तिकम् ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त काथके रंगके सदृश कृष्ण वर्ण, और गौके मूत्रके समान होता है अथवा मोरकी चन्द्रिका के समान नील वर्ण, घरके धूएके से रंगका अथवा सुरमे के सदृश है उसे पैत्तिक रक्तपित्त समझो

संसृष्टरक्त पित्तके लक्षण।

संसृष्टलिङ्गंसंसर्गात्त्रिलिङ्गंसान्निपातिकम्

अर्थ—दो दो दोषों से युक्त रक्तपित्त में दो दो दोषोंके मिश्रित लक्षण होतेहैं और जिसमें तीनों दोषोंके चिन्ह पाये जाते हैं उसे सान्निपातिक कहते हैं।

दोषभेद से साध्यासाध्यलक्षण ॥

एकदोषानुगंसाध्यंद्विदोषंयाप्यमुच्यते ॥ त्रिदोषजमसाध्यंतन्मन्दाग्नेरतिवेगवत्। व्याधिभिः क्षीणदेहस्यवृद्धस्यानश्नतश्च यत् ॥

अर्थ—जो रक्तपित्त एक दोषसे उत्पन्न होताहै वह साध्यहै, दो दोषसे होनेवाला याप्यहै, जो तीनों दोषसे उत्पन्न होता है वह असाध्यहै। इसी तरह जिनकी अग्नि अत्यन्त मन्दी पडगई हो जिनकी देह रोगों से क्षीण होगईहो, जो वृद्धाहो और जिसका आहार थकगयाहो ऐसे मनुष्योंका रक्त पित्त भी असाध्य होता है ॥

ऊर्ध्वाधःमार्गद्वारा साध्यासाध्य विचार ॥

गतिरूर्ध्वमधश्चैवरक्तपित्तस्यदर्शिता ॥ ऊर्ध्वासप्तविधाद्वाराद्विद्वारात्त्वधरागतिः॥ सप्तच्छिद्राणिशिरसिद्वेचाधःसाध्यमूर्ध्वगम्। याप्यन्त्वधोगमंमार्गौद्वावसाध्यंप्रपद्यते ॥

अर्थ—रक्त पित्तकी ऊर्ध्व और अधोगति ये दो पहिले वर्णन करचुकेहैं ॥ रक्त पित्त के सातद्वारहैं, यथा दो आंख, दो नाक, दो कान और एक मुख। नीचे के दो द्वार है। मलद्वार और मूत्रद्वार। ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त साध्यहै, अधोगामी याप्यहै और उभयमार्गगामी असाध्य होताहै।

यदातुसर्वेच्छिद्रेभ्योरोमकूपेभ्यएवच। वर्ततेतामसंख्येयांगतिंतस्याहुरान्तिकीम्।

अर्थ—जब रक्त सम्पूर्णछिद्रों और रोम कूपों द्वारा निकलताहै तब रक्त पित्तकी असंख्येयगति को अन्तिकी कहते हैं ॥

असाध्य रक्तपित्तके लक्षण।

यच्चोभयाभ्यांमार्गाभ्यामतिमात्रंप्रवर्तते तुल्यंकुणपगन्धेनरक्तंकृष्णमतीवच॥संसृष्टंकफवाताभ्यांकण्ठेसज्जातिचापियत्। यच्चाप्युपद्रवैःसर्वैर्यथोक्तैःसमभिद्रुतम् ॥ क्षीणस्यकासमानस्ययच्चयच्चनसिध्यति

अर्थ--जो रक्त ऊर्ध्व और अधः दोनों मार्गोंसे अतिशय करके निकलता है, जिस में सडीहुई गन्ध आतीहो, अत्यन्त काला रुधिर निकलताहो, जो कफ वात दोनों दोषोंसे युक्तहो, और जो कण्ठमें अत्यन्त रुकताहो, जो सम्पूर्ण ऊपर कहेहुए उपद्रवों से युक्तहो, जो हलदीके सदृश पीला, नीला, हरित और ताम्रवर्ण से उपद्रुत हो वह असाध्य होताहै। कासयुक्त क्षीणरोगीका रक्त पित्तभी असाध्य होता है ॥

याप्यरक्तपित्तकेलक्षण ।

यद्द्विदोषानुगंयद्वाशान्तंशान्तंप्रकुप्यति॥
मार्गमार्गन्चरेद्यद्वायाप्यंपित्तंअसृक्चतत्॥

अर्थ–जो द्विदोषाश्रित रक्तपित्त रुकरुककर कुपित होता है अथवा एक मार्गको छोडकर दूसरे मार्गसे निकलने लगता है उसे याप्य कहते हैं।

साध्य होनेके कारण ।

एकमार्गंबलवतोनातिवेगंनवोत्थितम् ।
रक्तपित्तंसुखेकालेसाध्यंस्यान्निरुपद्रवम्॥

अर्थ–जो रक्तपित्त बलवान् पुरुष के एक मार्गगामी होताहै, जो अत्यन्त वेगवान् नहीं होताहै और जो हालमें ही उत्पन्न हुआहै और जो हेमन्तादि सुखदायक समयमें उत्पन्न हुआहै वह साध्य होताहै।

रक्तपित्त के कारण ॥

स्निग्धोष्णमुष्णरूक्षञ्चरक्तपित्तस्यकारणम्। अधोगस्योत्तरंप्रायःपूर्वंस्यादूर्ध्वगस्य तु॥ ऊर्ध्वगंकफसंसृष्टमधोगंमारुतानुगम् द्विमार्गंकफवाताभ्यांउभाभ्यामनुबध्यते॥

अर्थ—स्निग्धोष्ण और उष्णरूक्ष ये रक्तपित्तके कारण हैं, प्रायः अधोगामी रक्त पित्तका का कारण उष्णरूक्ष है और ऊर्ध्वगामीका स्निग्धोष्ण है ॥ ऊर्ध्वगरक्त पित्त कफ संसृष्ट होताहै, अधोगामी वायुसंसृष्ट और उभयमार्गगामी कफवात संसृष्ट होताहै। यहां यह बात जाननी चाहिये कि जब ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त कफ संसृष्ट होता है तो पित्त उष्ण है कफ स्निग्ध है अतएव ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त कफवात कारक अर्थात् स्निग्ध और उष्ण द्रव्यों के सेवन से अत्यन्त बढता है इसीतरह वायुरूक्ष होताहै और पित्त उष्ण होताहै इसलिये अधोगामी रक्त पित्त वातपित्त गुणविशिष्ट रूक्षोष्ण द्रव्यों के सेवन से कुपित होताहै।

स्तम्भन के अयोग्यरक्तपित्त ॥

अक्षीणबलमांसस्यरक्तपित्तंयदश्नतः।
तद्दोषदुष्टमुत्क्लिष्टंनादौस्तम्भनमर्हति ॥

अर्थ—जिस पुरुषका बल और मांस क्षीण न हुआहो और आहार भी न थकाहो उसको दोष से दूषित और उदीर्ण रक्त पित्तको प्रथमही रोकना उचित नहींहै ॥

रक्त पित्तको स्तम्भितकरनेके उपद्रव ॥

गलग्रहंपूतिनस्यंमूर्च्छायमरुचिंज्वरम् ।
गुल्मंप्लीहानमानाहंकिलासंकृच्छ्रमूत्रताम्॥
कुष्ठान्यर्शांसिवीसर्पंवर्णनाशंभगन्दरम् ।
बुद्धीन्द्रियोपरोधश्चकुर्यात्स्तम्भितमादितः ॥

अर्थ—रक्त पित्त को यदि प्रथमही से

रोका जायगा तो इतने उपद्रव उत्पन्न होंगे, यथा– गलग्रह पूतिनस्य, मूर्च्छा, अरुचि, ज्वर, गुल्म, प्लीहा, आनाह, किलास, मूत्रकृच्छ्र, कुष्ठ, अर्श, विसर्प, वर्णनाश भगन्दर, बुद्धिनाश और इन्द्रियोपरोध ॥

तस्मादुपेक्ष्यंबलिनंबलदोषविचारिणा ।
रक्तपित्तंप्रथमतःप्रवृद्धंसिद्धिमिच्छता ॥

अर्थ—ऊपर कहेहुए हेतुओं से उस बुद्धिमान् वैद्य को उचित है जोकि रक्त पित्त को अच्छा किया चाहताहै कि बल और दोष का विचार करके बलवान् मनुष्य के बढेहुए रक्तपित्तकी भी प्रथम उपेक्षा करै ॥

रक्तपित्त मे प्रथम कर्त्तव्य कर्म ॥

प्रायेणहिसमुत्क्लिष्टमामदोषाच्छरीरिणाम् । वृद्धिंप्रयातिपित्तासृक्तस्माल्लंघनमादितः ॥ मार्गंदोषानुबद्धञ्चनिदानं प्रसमीक्ष्यच । लंघनंरक्तपित्तादौतर्पणं वाप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—प्रायःमनुष्यों को उदीर्ण रक्त पित्त आम दोष से बढता है अतएव प्रथम लंघन कराना आवश्यकीय है। रक्त पित्तका मार्ग, दोषानुबन्ध (कौनसा दोष उसके साथ है) और निदान को देखकर रक्त पित्त में प्रथम लंघन वा तर्पण देवै ॥

रक्तपित्त में तृषानाशक औषध ॥

ह्रीवेरंचन्दनोशीरमुस्तपर्पटकैः शृतम् ।
केवलंशृतशीतंवादद्यात्तोयंपिपासवे ॥

अर्थ—रक्तपित्त में जो तृषाकी अधिकताहो तो नेत्रबाला, चन्दन, खस, मोथा, पित्तपापडा, इनको डालकर जल औटावे और फिर ठण्डा करके थोडा २ रोगी को पान कराता रहै ।

तर्पण और पेया की विधि

ऊर्ध्वगेतर्पणंपूर्वंपेयांपूर्वमधोगतम् ।काल
सात्म्यानुबन्धज्ञोदद्यात्प्रकृतिकल्पवित्॥

अर्थ—काल, सात्म्य, अनुबन्ध, प्रकृति और कल्पना का जाननेवाला वैद्य ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें प्रथम तर्पण देवै और अधोगामी रक्तपित्तमें प्रथम पेया पानकरावै ।

तर्पण प्रयोग

जलंखर्जूरमृद्वीकामधूकैः सपरूपकैः ।
शृतशीतंप्रयोक्तव्यंतर्पणार्थेसशर्करम् ॥
तर्पणंसघृतक्षौद्रंलाजाचूर्णैः प्रयोजयेत् ।

अर्थ....खिजूर, दाख महुआ और फालसे इनको जलके साथ औटाकर छानले और ठण्डा होनेपर मिश्री डालकर पान करावै । अथवा घी और शहत मिलाकर खीलों के चूर्ण का तर्पण देवै ।

उक्ततर्पणोंकेगुण ।

ऊर्ध्वगंरक्तपित्तंतत्शीतंकालेव्यपोहति॥
मन्दाग्ने रम्लसात्म्याययत्साम्लमपिकल्पयेत् ॥ दाडिमामलकैर्विद्यादम्लार्था नुदापयेत् ॥

अर्थ....ऊपर कहेहुए दोनो प्रयोग उचितकालमें पान करानेसे ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त को दूर कर देतेहैं मन्दाग्निवाले तथा जिसको खटाई की मारुकतहै उसे नीचे लिखी हुई खटाई मिलाकर देवै । अनारकी खटाई वा आमलेकी खटाई इसमें हितकारी होतीहै

अन्यप्रयोग॥

शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रशांतिकाः॥ श्यामाकश्चप्रियंगुश्च भोजनंरक्तपित्ति---नाम् ॥

अर्थ—शालीचांवल, साठीचांवल, नीवार कोदों, प्रशांतिका, सामखिया, और प्रियंगु इन सबका भात रक्तपित्त रोगियों को हितकारक है ॥

रक्तपित्त रोगियों को अन्यद्रव्य ॥

मुद्रामसूराश्चणकाः समकुष्ठाढकीफलाः॥ प्रशस्ताःसूपयूपार्थेकल्पितारक्तपित्तिनाम्। पटोलनिम्बवेत्राग्रप्लक्षवेतसपल्लवाः ॥ किराततिक्तकंशाकंगण्डीरःसकठिल्लकः कोविदारस्यपुष्पाणिकाश्मर्यस्याथशालम लेः॥ अन्नपानविधौशाकंयच्चान्यद्रक्त पित्तनुत्।शाकार्थंशाकसात्म्यानांतच्छ स्तंरक्तपित्तिनाम् ॥ स्विन्नंवासर्पिषाभृ ष्टंयूपवद्वाविपाचितम्।

अर्थ—मूंग, मसूर, चना, मोंठ और अडहर इनकी दाल और यूप रक्तपित्त वालों के लिये अच्छे हैं । परवल, नीम के पत्ते, वेतकी कोंपल, पाकड, वेतके पत्ते चिरायता, गण्डीर और करेला इनका साग तथा कचनारके फूल, खंभारीके फूल सेमर के फूल, तथा अन्यशाक जो अन्न पान विधि में रक्तपित के नाश करनेवाले वर्णन किये गये हैं । ये सब शाक सिजा कर घृत में भून ले अथवा यूप की तरह सिद्ध कर ऐसे रक्तपित्तवाले रोगी को देवे जिसको शाक अनुकूल हों ।

रक्तपित्तपर मांसरस ॥

पारावतान्कपोतांश्चलावान्रक्ताक्षवर्त कान् ॥ शशान्कपिञ्जलानेणान्हरि णान्कालपुच्छकान् । रक्तपित्तेहितान् विद्याद्रसांस्तेषांप्रयोजयेत् ॥ ईषदम्ला-ननम्लान्वाघृतभृष्टान्सशर्करान्॥

अर्थ—पारावत, कपोत, लवा, चकोर वटेर, शसा, तीतर, एण, हरिण, कालपुच्छ इन का मांसरस रक्तपित्त रोगमें हितहै । इसमें थोडीसी खटाई डालकर वा बिना डालेंही घी में भूनकर और चीनी मिलाकर सेवन करे ।

अन्यदोषाश्रितरक्तपित्तमेंचिकित्सा ।

कफानुगेयूपशाकंदद्याद्वातानुगेरसम् ॥ रक्तपित्तेयवागूनामतःकल्पःप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—कफयुक्त रक्तपित्तमें यूष और शाक तथा वातयुक्त रक्तपित्त में रक्तपित्तनाशक मांसरस का प्रयोग करना चाहिये । अब यहांसे उन यवागुओंका वर्णन करते हैं जो रक्तपित में हितकारी हैं ॥

रक्तपित्तनाशक यवागू ।

पद्मोत्पलानांकिञ्जल्कःपृश्निपर्णीप्रियंगु काः॥ जलेसाध्यंरसेतस्मिन्पेयास्याद्र क्तपित्तिनाम्। चन्दनोशीररोध्राणांरसे तद्वत्सनागरे ॥ किराततिक्तकोशीरमु स्तानांतद्वदेवच । धातकीधन्वयासाम्बु बिल्वानांवारसेसृताः॥ मसूरपृश्निपर्ण्यो वास्थिरामुद्गरसेनवा । रसेहरेणुकानांवा सघृतेसबलारसे । सिद्धाःपारावतादीनां रसेवास्युःपृथक्पृथक् । इत्युक्तारक्तपित्त घ्न्यःशीताःसमधुशर्कराः॥ यवाग्वःकल्प नाचैषांकार्यामांसरसेष्वपि ॥

अर्थ—लाल कमलकी केसर, नीलकमल की केसर पृश्निपर्णी, प्रियंगु इनको डाल कर जलको औटाले और उस जलमें पेया तयार करके रक्तपित वाले रोगी को देवै। अथवा चन्दन, उसीर, लोध और सौंठ के रसमें पूर्ववत् पेया सिद्ध करै। अथवा चिरायता, उसीर, मोथा इनके रसमें पूर्ववत् पेया सिद्ध करै। अथवा धायके फूल जवासा, नेत्रवाला और वेलगिरीके रसमें पेया सिद्ध करै। अथवा मसूर और पृष्णिपर्णी के रस में, अथवा शालिपर्णी और मूंग के रस अथवा हरेणुका के जल में अथवा घृतयुक्त खरैटीके रसमें पेया सिद्ध करै। अथवा पूर्वोक्त पारावतादिक के मांस रसमें पृथक् पृथक् पेया सिद्ध करै। सम्पूर्ण प्रकार की पेया शीतल होती है इससे इनमें शहत और शर्करा मिलाकर सेवन करै ॥ मांसरस वाली पेयामें भी शहत और शर्करा मिलालेवै ॥ इस तरह इन सब रक्तपित्तनाशिनी पेयाओंका वर्णन किया गयाहै ॥

सोपद्रव रक्तपित्तमें चिकित्सा।

शशःसवास्तुकःशस्तोविबन्धेरक्तपित्तिनाम्॥ वातोल्वणेतित्तिरिःस्यादुदुम्बररसेभृतः। मयूरःप्लक्षनिर्यूहेन्यग्रोधस्यचकुक्कुटः ॥ रसेबिल्वोत्पलादीनांवर्तकक्रकरौहितौ।

अर्थ—विबन्धयुक्तरक्तपित्तमें ससेके मांसरसमें सिद्ध किया हुआ बथुएका शाग हितकरहै वातोल्वणरक्तपित्तमें गूलरके रसमें सिद्ध कियाहुआ तीतरका मांस, पाकड़के रसमे सिद्ध किया हुआ मोरका मांस, बड़के रसमें सिद्ध किया हुआ मुर्गेका मांस, विल्वके रसमें बटेर और उत्पलके रसमें क्रकरका मांस हितकारी होता है।

तृषायुक्तरक्तपित्तकी चिकित्सा।

तृष्यतेतिक्तकैःसिद्धंतृणाम्रंवाफलोदकम् ॥ सिद्धंविदारिगन्धाद्यैरथवाश्रृतशीतलम्। ज्ञात्वदोषावनुबलौबलमाहारमेवच। जलंपिपासवेदद्याद्विसर्गादल्पशोऽपिवा।

अर्थ—तृषायुक्त रक्तपित में तिक्त ओषधियों से सिद्ध कियाहुआ जल अथवा तृषानाशक अनार आदि फल डालकर सिद्ध किया हुआ जल अथवा विदारी गंधादि डालकर सिद्ध किए हुआ जल ठंडा करके पान करावे। तृषायुक्त रक्तपित्त रोगीके दोषोंका अनुबल और आहारका बलदेखकर थोडा वा अधिक जल देवै।

रक्तपित्त में वर्जित द्रव्य।

निदानंरक्तपित्तस्यशकिञ्चित्संप्रकाशितम्। जीवितारोग्यकामैस्तन्नसेव्यंरक्तपित्तिभिः

अर्थ ...जो जीने की और आरोग्य लाभ करने की इच्छाहो तो निदान स्थानमें रक्त पित्त के उत्पन्न होने के जो २ कारण कहे गयेहैं उनका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये

इत्यन्नपानंनिर्दिष्टंक्रमशोरक्तपित्तिषु वक्ष्यतेबहुदोषाणांकार्यंबलवताश्रयत्।

अर्थ—इस तरह क्रम से रक्त पित्त में उपयोगी अन्नपानका वर्णन किया गया है। अब बहुत दोषों से युक्त और बलवान् रक्त

पित्त रोगियोंके कर्तव्याकर्तव्यका वर्णन कियाजाता हैं॥

अक्षीणवलमांसस्ययस्यसन्तर्पणोत्थितम्
वहुदोषम्वलवतोरक्तपित्तंशरीरिणः ।
कालेसंशोधनर्हस्यतद्धरेन्निरुपद्रवम् ॥
विरेचनेनोर्ध्वभागमधोगंवमनेनच ॥

अर्थ—जिस रक्तपित्त रोगीका वल और मांस क्षीण नहीं हुआ हैं, जिसके रक्तपित्त सन्तर्पण से उत्पन्न हुआ है । और जिस मनुष्य का शरीर वलवान् है अथच वह संशोधन के योग्य है ऐसे मनुष्य के बहुत दोषयुक्त निरुपद्रव पित्त को संशोधन के द्वारा संशमन करैं । ऊर्ध्व भागगामी रक्तपित्त में विरेचन देवै और अधोभाग गामी रक्तपित्त में वमन देवै ॥

रक्तपित्त में वैरेचनिकप्रयोग ॥

लिट्ताभयांमाञ्जःफलान्यारग्वधस्यवा।
त्रायमाणागवाक्ष्योर्वामूलमामलकानिवा
विरेचनंमयुञ्जीतप्रभूतमधुशर्करम् ॥
रसःप्रशस्यतेतेपांरक्तपित्तेविशेषतः ।

अर्थ....निसोथ और हरडकाक्वाथ, अथवा अमलतासका गूदा, अथवा त्रायमाण और इन्द्रायणकी जड अथवा आंवलेका क्वाथ इन प्रयोगों में वहुत सा शहत और शर्करा डालकर विरेचन देवै ।इनका रस रक्तपित्त में विशेष उपयोगी है.।

रक्तपित्त में वामनिक प्रयोग ॥

वमनंमदनोन्मिश्रोमन्थःसक्षौद्रशर्करः ॥
सशर्करंवासलिलमिक्षूणांरसएववा । वत्सकस्पफलमुस्तंमदनमधुकंमधु ॥अधोवहेरक्तपित्तेवमनंपरमुच्यते ॥

अर्थ—शहत, शर्करा और मेनफल मिलाहुआ मन्थ, अथवा मेनफल, शर्करा और जल अथवा मैनफल और ईखका रस अथवा इन्द्रजौ, मोथा मैनफल मुलहटी और शहत ये सब प्रयोग अधोगामी रक्तपित्तमें वमन करानेके लिये अत्यन्त उत्तम है ॥

ऊर्ध्वगेशुद्धकोष्ठस्यतर्पणादिःक्रमोहितः॥
अधोवहेयवाग्वादिर्नचेत्स्यान्मारुतोवली।

अर्थ—ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें यदि रोगी का कोष्ठ शुद्ध होगया हो तौ तर्पणादि क्रियाका अवलम्वन करैं ॥ इसीतरह अधोगामी रक्तपित्तमें यवागू देवै॥ ऐसा न करने से वायु कुपित होजाती है ।

संशमनीयरक्तपित्तलक्षण ॥

वलमांसपरिक्षीणंशोकभाराध्वकर्पितम्॥
ज्वलनादित्यसन्तप्तमन्यैर्वाक्षीणमामयैः।
गर्भिणींस्थविरंवालंरूक्षाल्पप्रमिताशनम्।
अवम्यमविरेच्यंवायंपश्येद्रक्तपित्तिनाम् ।
शोपणसानुवन्धंवायस्य संशमनीक्रिया॥
शस्यतेरक्तपित्तस्यपुरोयातुप्रवक्ष्यते।

अर्थ—जिसका वल और मांस क्षीण हो गयाहै, जो शोक, भारवहन और मार्ग चलने से कृश होगयाहैं, जो अग्नि वा सूर्य्यसे सन्तप्त होगयाहै, जो अन्य रोगों से क्षीण होगयाहै, गर्भिणीस्त्री, वृद्ध, वालक, रूक्षभोजी, अल्पभोजी, मित भोजीहै, जो वमन विरेचनके योग्य नहीं है, अथवा वह रोगी जिसको शोष का अनुवन्ध है । इन लक्षणोंसे युक्त रक्तपित्त रोगियों की संशमन क्रिया करैं । अब उस क्रियाका वर्णन करते हैं ॥

रक्तपित्त में संशमनीयक्रिया।

आटरूपकमृद्वीकापथ्याकाथःसशर्करः।
मधुमिश्रःश्वासकासरक्तपित्तनिवर्हणः॥

अर्थ--अडूसा, किसमिस, हरड, इनका क्वाथ करके शहत और शर्करा मिलाकर पान करै तौ श्वास और खांसीसे युक्त ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त शान्त होजाता है॥

रक्तपित्त में अन्यप्रयोग॥

आटरूपकनिर्यूहेप्रियंगुमृत्तिकाञ्जने॥
विनीयलोध्रंक्षौद्रञ्चरक्तपित्तनुदंपिवेत्।

अर्थ—अडूसाका क्वाथ, प्रियंगु, गेरू, अंजन, लोध और शहत मिलाकर पान करनेसे रक्तपित्त शांत होजाता है॥

अन्यप्रयोग।

पद्मकंपद्मकिंजल्कंदूर्वावास्तुकमेवच।
नागपुष्पञ्चलोध्रञ्चतेनवविधिनापिवेत्॥

अर्थ—पद्माख, लालकमल की केशर, दूब, बथुआ, नागकेसर, लोध इन सबको शहतमें मिलाकर सेवन करै तो रक्तपित्त शान्त होवे॥

अन्यप्रयोग॥

प्रपुण्डरीकंमधुकंमधुचाश्वशकृद्रसे॥ यवासभृङ्गरजसोर्मूलंवागोशकृद्रसे॥ विनीय रक्तपित्तघ्नंपेयस्यात्तण्डुलाम्बुना॥ युक्तंवामधुसर्पिर्भ्यांलिह्याद्गोऽश्वशकृद्रसम्॥ खादिरस्यप्रियंगूनांकोविदारस्यशाल्मलेः॥ पुष्पचूर्णानिमधुनालिह्यान्नारक्तपित्तिकः। शृङ्गाटकानांलाजानांमुस्तखर्जूरयोरपि॥लिह्याच्चूर्णानिमधुनापद्मानांकेशरस्यच। धन्वजानामसृग्लिह्यान्मधुनामृगपक्षिणाम्॥ सक्षौद्रंग्रथितेरक्ते लिह्यात्पारावतंशकृत्॥

अर्थ—पुण्डरीक, मुलहटी, शहत इनको घोडे की लीद के रसमें अथवा जवासा भांगरेकी जड, इनको गौके गोवरके रसमें मिलाकर चांवल के साथ पान करै अथवा घी और शहत मिलाकर गौ और घोडेकी लीदका रस पान करै। अथवा खैर, प्रियंगु, कचनार और सेमर के फूलोंका चूर्ण शहतमें मिलाकर चाटै। अथवा सिंघाडे, खील, मोथा खिजूर और कमलकेशर इनके चूर्णको शहतके संग चाटै। अथवा धन्वज पशुपक्षियोंका रुधिर शहत मिलाकर पान करै। अथवा जो रक्तमें गांठ पडगईहो तो कबूतर की बीट को शहतमें मिलाकर चाटै॥

दाहादियुक्तरक्तपित्तपर प्रयोग॥

उशीरकालीयकलोध्रपद्मकप्रियंगुकाकट्फलशंखगैरिकाः। पृथक्पृथक्चन्दनतुल्यभागिकाः सशर्करास्तण्डुलधावनाप्लुताः। रक्तंसपित्तन्तमकंपिपासां दाहञ्चपीताःशमयन्तिसद्यः।

अर्थ—खस, कालीयक [पीतचन्दन] लोध, पद्माख, प्रियंगु, कायफल, शंख इन सबमे पृथक् २ समान भाग रक्त चन्दन मिलावै और इसको फांककर शर्करायुक्त तण्डुल जलका पान करै तौ रक्तपित्त, तमकश्वास पिपासा, दाह ये तत्काल शान्त होजाते हैं॥

अन्यप्रयोग॥

किराततिक्तंप्रमुकंसमुस्तं प्रपुण्डरीकं

कमलोत्पलेच ॥ ह्रीवेरमूलानिपटोलपत्र न्दुरालभापर्पटकामृणालम् । धनञ्जयो दुम्बरवेतसत्वग् न्यग्रोधजम्बूद्वयमारक त्वक् ॥ तुगालतावेतसतण्डुलीयं स- शारिवम्मोचरसःसमङ्गा । पृथक्पृथक् चन्दनयोजितानितैनैवकल्पेनहितानितत्र।

अर्थ—चिरायता, सुपारी, मोथा, पुण्ड- रिया, कमल, उत्पल, नेत्रबाला, पांचों पं- चमूल, परवलके पत्ते, जवासा, पितपापडा कमलनाल, अर्जुन, गूलर, बेत, बड, जा- मन, कनेर, [इन छःओं की छाल], बं- शलोचन, लतावेत [कोई २ लता से शा- रिवा और वेतस से वेतका ग्रहण करते है] चौलाई, शारिवा, मोचरस, मजीठ, इनसब में पृथक् २ समानभाग चन्दन मिलाकर शर्करा और तण्डुल जलके साथ लेवै ॥

उक्तप्रयोगोंकी विधि ॥

निशिस्थितावासररसीकृतावा कल्की कृतावामृदिताशृतावा । एतेसमस्तागण- शःपृथग्वा रक्तंसपित्तंशमयन्तियोगाः ॥

अर्थ—ऊपर कहेहुए दोनों गणोंमें जो द्रव्य वर्णन कियेगयेहैं इन सबको वा पृ- थक् २ लेकर रात्रिमें भिगोदेवै, वा इन का रस निकाललै, वा पीसकर लुगदी बना लेवै, वा मीडकररस निकाल लेवै वा क्वाथ कर लेवै । ये सब योग रक्तपित्त को शमन करते हैं ।

रक्तपित्त पर अन्य प्रयोग ॥

मुद्राःसलाजाःसयवाःसकृष्णाःसोशीरमु स्ताःसहचन्दनेन । बलामलेपर्युषितः कषायो रक्तंसपित्तंशमयन्त्युदीर्णम् ॥

अर्थ—मूंग, खील, जौ, पीपल, खस, मोथा, रक्तचन्दन इनको खरैटीके क्वाथ में रात्रिमें भिगोदेवै और दूसरेदिन प्रातःकाल इसका पान करै तो बढाहुआ रक्तपित्त शां- त होजाता है ।

अन्यप्रयोग ॥

वैदूर्यमुक्तामणिगैरिकाणां मृच्छंखहे- मामलकोदकानाम् । मधूदकस्येक्षुरस स्यचैव पानाच्छमङ्गच्छतिरक्तपित्तम् ॥

अर्थ—वैदूर्य (एकप्रकार की मणि), मोती, मणि, गेरू, शंख, सुवर्ण इनको आं- वलेके क्वाथके साथ वा मधुमिश्रितजल वा ईखके साथ पानकरै तो रक्तपित शान्त होवै

अन्यप्रयोग ॥

उशीरपद्मोत्पलचन्दनानांपक्वस्यलोध्रस्य चयःप्रसादः॥सशर्करःक्षौद्रयुतःसुशीतोर क्तातियोगप्रशमायदेयः ॥

अर्थ—खस, पद्म, उत्पल, रक्तचन्दन, और पक्व लोध इनके ठंडे क्वाथको छान कर शहत और मिश्री मिलाकर पान करै तो रक्तातियोगी पित्त शान्त होजाय ।

अन्यप्रयोग ॥

प्रियंगुकाचन्दनलोध्रशारिवामधूकमुस्ता भयधातकीजलम् । समृत्प्रसादंसहषष्टि काम्बुनासशर्करंरक्तनिबर्हणंपरम् ॥

अर्थ—प्रियंगु, रक्तचन्दन, लोध, शारिवा मुलहटी, मोथा, खस और धाय इनके क्वाथको मिट्टीके ऊपर का पानी और सांठी चावल के जलके साथ मिश्रीडालकर पान करै तो रक्तरोग जाता रहता है ।

वाय्वनुबन्धोरक्तपित्तकीचिकित्सा ॥

कषाययोगैर्विविधैर्यथोक्तैर्दीप्तेऽनलेश्लेष्मणिनिर्जितेच । यद्रक्तपित्तंप्रशमंनयाति तत्रानिलःस्यादनुतत्रकार्यम् । छागम्पयःस्यात्प्रथमंप्रयोगेगव्यंशृतपञ्चगुणेजलेवा । सशर्करंमाक्षिकमम्प्रयुक्तंविदारिगन्धादिगणैःशृतंवा ॥ द्राक्षाशृतंनागरकैशृतंवाबलाशृतंगोक्षुरकैः शृतंवा । सजीरकंसर्षपकंससर्पि पयःप्रयोज्यंसितयाशृतंवा ॥ शतावरीगोक्षुरकैःशृतंवा शृतम्पयोवाप्यथपर्णिनीभिः। रक्तंहिनस्त्याशु विशेषतस्तुयन्मूत्रमार्गात्सरुजम्प्रयाति

अर्थ--पूर्वोक्त विविध प्रकार के कषाय योगों से अग्नि प्रदीप्त होजाय और कफ दूर होजाय और तब भी रक्तपित्त शांत न हो तो वहां वायुका अनुबन्ध होता है, उसमें निम्न लिखित चिकित्सा करनी चाहिये यथा प्रथमही बकरी वा गौ के दूध को पचगुने जल में औटाकर मिश्री और शहत मिलाकर पान करावे। अथवा विदारीगन्धादिगणोक्त द्रव्य डालकर औटायाहुआ अथवा दाख वा सोंठ, वा खरैटी, वा गोखरू डालकर अथवा जीरा, ऋषभक, घी और मिश्री डालकर औटायाहुआ दूध देवे। अथवा सितावर और गोखरू डालकर औटाहुआ दूध वा चारों प्रकारकी पर्णी, (मुद्गपर्णी मापपर्णी, पृष्टपर्णी, शालपर्णी) डालकर औटायाहुआ दूध देवे। इसरीति से सिद्ध कियाहुआ दूध रक्त को नष्ट करता है और विशेष करके उस रक्त पित्त के लिये हितहै जो मूत्रमार्गमें होकर वेदनायुक्त निकलताहै

रक्तपित्तपर अन्ययोग ॥

विशेषतोविट्प्रथमंप्रवृत्तेपयोमतम्मोचरसेनसिद्धम् । वटावरोहैर्वटशुङ्गकैर्वाहीवेरनीलोत्पलनागरैर्वा ॥ कषाययोगात्पयसापुरावा पीत्वानुदद्यात्पयसानुशालीन् । कषाययोगैरथवापिपक्वमेतैःपिबेत्सर्पिरतिस्रवेच्च ॥

अर्थ—रक्तके मलमार्गमें होकर बाहर निकलने पर दूधके साथ मोचरस औटाकर पान करावे। अथवा वडकी डाढी, वा वडकी कोंपल, अथवा नेत्रवाला, नीलोफर और सोंठ डालकर दूध को औटाकर पान करावे। अथवा उक्त कषायोंके साथ पान कराने से पहिले जलके साथ औटाकर पान करावे और क्षुधा लगने पर शालीचांवलोंका भात खाने को देवे। और जो रक्त अत्यन्त स्रवताहो तो उक्त कषायों के साथ घृत सिद्ध करके पान करावे ॥

अन्यप्रयोग ॥

वासांसशाखांसपलाशमूलांकृत्वाकषायंकुसुमानिचास्य । प्रदायकल्कंविपचेद्घृतंतत्सक्षौद्रमाश्वेवनिहन्तिरक्तम् ।

अर्थ---अडूसा की शाखा, पत्ते, जड और फूल सबको एकत्र करके क्वाथमें उक्त द्रव्यों का कल्क और घृत डालकर सिद्ध करे फिर शहत के साथ चाटे तो रक्त बहुत शीघ्र बन्द होजाता है ॥

अन्यप्रयोगाणि ॥

पलाशवृन्तस्वरसेनसिद्धंतस्यैवकल्केनमधुद्रवेण । लिह्याद्घृतंवत्सकफल्कसिद्धन्त

द्रुतसमङ्गोत्पलरोध्रसिद्धम्। स्यात्त्राय माणाविधिरेपएवसोदुम्बरैश्चैवपटोलपत्रै

अर्थ—ढाक के डंठलों का रस निकालै और फिर उन्हीं का कल्क करके उसमें घृत पकावै, इस घृत को शहत मिलाकर चाटै तो रक्तपित नष्ट होय। इसी तरह इंद्रजौ का प्रयोग भी होताहै। इसी तरह लज्जालु, नीलोफर और लोध से सिद्ध किया हुआ घृत रक्तपित्त पर देवै। त्रायमाण अथवा गूलर और परवल के पत्तों को घृत के साथ सिद्ध करके पूर्वोक्त विधि से सेवन करै॥

अन्यप्रयोग।

सर्पींपिपित्तज्वरनाशनानिसर्वाणिशस्ता निचरक्तपित्ते॥ अभ्यङ्गयोगाःपरिषेच नानिसेकावगाहाःशयनानिवेश्म। शी तोविधिर्वस्तिविधानमग्र्यंपित्तज्वरेयत् प्रशमायदृष्टम्॥ तद्रक्तपित्तेनिखिलेनका र्यकालश्चमात्राञ्चपुरासमीक्ष्य॥

अर्थ—पित्तज्वरके नाश करने वाले जो जो घृत वर्णन किये गयेहैं वे सब रक्तपित्त में हितकर हैं। तथा पितज्वरमें जो जो अभ्यंग, परिषेचन प्रसेक, अवगाहन शयन, घर, शीतविधि तथा वस्तिविधान वर्णन किये गयेहैं उन सबका काल और मात्राका विचार कर रक्तपित्त में प्रयोग करै॥

अन्यप्रयोग।

सर्पिर्गुडायेचहिताःक्षतेभ्यः तेरक्तपित्तं शमयन्तिसद्यः॥

अर्थ—घृत और गुड जो जो क्षतरोग में हितहैं वे सब रक्तपित्त को भी तत्काल नष्ट कर देते हैं॥

कफानुबन्धीरक्तपित्तकीचिकित्सा।

कफानुबन्धेरुधिरेसपित्तेकण्ठागमेस्याद्ग्र थितेप्रयोगः। युक्तस्ययुक्त्यामधुसर्पिपो श्चक्षारस्यचैवोत्पलनालजस्य॥ मृणाल पद्मोत्पलकेशराणांतथापलाशस्यतथाप्रि यङ्गोः। तथामधूकस्यतथासनस्यक्षाराः प्रयोज्याविधिनैवतेन॥

अर्थ—जो रक्तपित कफानुबन्धी होता है वह कण्ठमें आकर गांठदार होजाता है। इसमें शहत और घृत मिलाकर चाटै अथवा नीलकमलकी डंडीका खार शहत घृतके साथ चाटै। अथवा कमलनाल, पद्मकेशर, उत्पल, केसर की भस्म अथवा ढाक का क्षार, अथवा प्रियंगुका क्षार अथवा महुआ का क्षार अथवा असनका क्षार पूर्वोक्त विधि से शहत और घृत के साथ चाटै।

शतावर्यादि घृत॥

शतावरीदाडिमतिन्तिडीककाकोलिमे दामधुकंविदारीम्। पिष्ट्वाचमूलम्फल पूरकस्य घृतंपचेत्क्षीरचतुर्गुणेन॥ कासज्वरानाहविबन्धशूलंतद्रक्तपित्त श्चघृतन्निहन्यात्। यत्पञ्चमूलैरथपञ्च भिर्वा सिद्धंघृतंतच्चतदर्थकारि॥

अर्थ—सितावर, अनार, इमली, काकोली, मेदा, मुलहटी, विदारीकन्द और बिजौरे की जड इन को पीसकर इनके साथ घृत पकावै उसी में घृत से चौगुना दूध डालै। इसके सेवन करने से खांसी, ज्वर, आनाह, विबन्ध, शूल और रक्तपित्त शान्त होजातेहैं॥

पांचों पंचमूल से सिद्ध कियाहुआ घृत भी ऊपर कहेहुए रोगों में हितकारी होताहै।

नकसीर की चिकित्सा ॥

कषाययोगाश्चइहोपादिष्टास्तेचावपीडेभिषजाप्रयोज्याः । घ्राणात्प्रवृत्तंरुधिरंसपित्तं । यदाभवेन्निःसृतदुष्टदोषम् ॥

अर्थ—रक्तपित्त के नाश करनेवाले जो जो कषाय इस जगह वर्णन कियेगये हैं उनका रस निकालकर सूंघनेसे वह रक्तपित्त बन्द होजाताहै जो नासिकाके द्वारा निकलताहै॥

दुष्टरक्तके बन्द होनेके उपद्रव ।

रक्तेप्रदुष्टेह्यवपीड़बन्धे दुष्टप्रतिश्यायाशिरोविकाराः । रक्तंसपूयंकुणपश्चगन्धः स्याद्घ्राणनाशःक्रमयश्चदुष्टाः ॥

अर्थ—जो दूषित रक्तबन्द करदिया जायग तौ दुष्ट प्रतिश्याय, शिरोविकार, पीवदार सड़ाहुआ रक्तस्राव घ्राणशक्ति का नाश ये उपद्रव होंगे तथा नासिकामें दुष्ट क्रिमिरोग उत्पन्न होजायगा ।

रक्तपित्त मेंअन्यनस्य ॥

नीलोत्पलंगैरिकशंखयुक्तं । सचन्दनं स्यात्तुसिताजलेन ॥ नस्यन्तथाम्रास्थिरसः समङ्गासधातकीमोचरसःसलोध्रः ॥ द्राक्षारसस्येक्षुरसस्यनस्यं । क्षीरस्यदूर्वास्वरसस्यचैव ॥ यवासमूलानिपलाण्डुमूलं नस्यंतथादाड़िमपुष्पतोयम् ॥

अर्थ—नीलकमल, गेरू, शंख, रक्तचन्दन और मिश्री इनको भिजोकर रसनिकालकर सूंघनेसे रुधिरबन्द होजायगा । अथवा आमकी गुठलीका रस अथवा लज्जालु, धायके फूल, मोचरस, लोध इनका रस निकाल कर सूंघनेसे भी नकसीर बन्द होजातीहै। अथवा दाखका रस, वा दूध, दूब का रस, वा जवासे की जडका रस, वा, प्याजकी जडका रस, वा अनारके फूलका रस सूंघनेसे भी नकसीर बन्द होजातीहै ।

नस्यपर अन्य प्रयोग ।

पियालतैलंमधुकम्पयश्चसिद्धंघृतंमाहिषमाजकंवा ॥आम्रास्थिपूर्वैःपयसाचनस्यं । सशारिवैःस्यात्कमलोत्पलैश्च ॥

अर्थ—पियाल का तेल, मुलहटी और दूध इन सबको पकाकर सूंघै, अथवा भैंस, या बकरी का घी, [आम्रास्थिपूर्व अर्थात् पहिले श्लोकों में कहीहुई) लज्जालु धाय के फूल, मोचरस, लोध, शारिवा, कमल और नलोफर इनको सिद्ध करके नस्य लेवै तो रुधिर बन्द होय ।

रक्तपित्तपर परिषेकादि प्रयोग ॥

भद्रश्रियंलोहितचन्दनञ्चप्रपुण्डरीकंकमलोत्पलञ्च । उशीरवानीरजलंमृणालं । सहस्रवीर्यंत्रणशूल्यमृद्धिः ॥ मूलानिपुष्पाणिचवारिजानांप्रलेपनंपुष्करिणीमृदश्च। उदुम्बराश्वत्थमधूकरोध्राकषायवृक्षाःशिशिराश्चसर्वे प्रदेहकल्कैपरिषेचने चतथावगाहेघृततैलसिद्धौ। रक्तस्यापित्तस्यचशान्तिमिच्छन् । भद्रश्रियादीनि भिषक्प्रयुञ्ज्यात्॥

अर्थ—सफेद चन्दन, रक्तचन्दन, पुण्डरीक,लालकमल, नीलकमल, उशीर, वानीर, नेत्रवाला, मृणाल, सहस्रवीर्य [दूब] मल्लिका ऋद्धि, कमलकी जड़ और फूल तलावकी मिट्टी, गूलर, पीपल, महुआ,

लोध तथा अन्य कषाय वृक्ष जो शीतवीर्य हैं इन सबको लेप, परिषेचन तथा अवगाहनमें प्रयुक्त करे॥ और सफेद चन्दनसे आदि लेकर द्रव्यों में घृत वा तेलको सिद्ध करके रक्तपित्तकी शान्तिके लिये प्रयुक्त करै

रक्तपित्तपरअन्याविधि ॥

धारागृहंभूमिगृहश्चशीतंवनञ्चरम्यञ्जलवातशीतम् । वैदूर्यमुक्तामणिभाजनानां स्पर्शाश्चदाहेशिशिराम्बुशीताः ॥ पत्राणिशीतानिचवारिजानां । क्षौमञ्चशीतंकदलीदलाश्च । प्रच्छादनार्थंशयनासनानां । पद्मोत्पलानाञ्चदलाःप्रशस्ताःप्रियंगुकाचन्दनरूपितानांस्पर्शाःप्रियाणाञ्चवराङ्गनानाम् ॥ दाहेप्रशस्ताः सजलाःसुशीताः । पद्मोत्पलानाञ्चकलापवाताःसरिद्ह्रदानांहिमवद्दरीणाञ्चन्द्रोदयानांकमलाकराणाम् । मनोऽनुकूलाःशिशिराश्चसर्वाःकथाःसरक्तंशमयन्तिपित्तम् ॥

अर्थ—जलके किनारेके या फव्वारेदार तथा ठंडे तलघरे, रमणीकवन, ठंडे हवा और जल, तथा वैदूर्य और मुक्तामणियों के पात्रों का देहसे लगाना रक्तपित्त के दाहमें हितकरहै। शीतल जल, शीतल कमल के पत्ते, शीतल रेशामी वस्त्र शीतल केलेके पत्ते भी हितकर हैं तथा पलंग वा आसन पर बिछाने के लिये लाल कमल और नीलकमल के पत्ते हितकारी होते हैं। प्रियंगु तथा चन्दन लिप्तांगी प्रियतमा वरांगनाओंका स्पर्श, जलाई शीतल कमलों और मोरछल की हवा, नदी सरोवर, हिमालयकी कन्दरा, चन्द्रमाकी चांदनी, कमलों का झुंड तथा मनोनुकूल संतोष दायिनी वातोंका श्रवण रक्तपित्त को शमन करता है।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

हेतुंवृद्धिंसंख्यांस्थानंलिङ्गंपृथक्पृथग्दुष्टस्य। मार्गौसाध्यमसाध्यंयाप्यंकार्यंक्रमञ्चैव॥ पानान्नपानमेवचवर्ज्यंसंशोधनञ्चशमनञ्च। गुरुरुक्तवान्यथावत्चिकित्सिते रक्तपित्तस्य ॥

अर्थ—भगवान् पुनर्वसुने इस अध्याय में रक्तपित्त के हेतु, वृद्धि, संख्या, समुत्थान लक्षण तथा दूपित रक्तपित्त के मार्ग, रक्तपित्त के साध्य असाध्य और याप्यके लक्षण चिकित्साक्रम, पथ्य, अनुपान, वर्जित अन्न संशोधन तथा संशमन ये सब वातें यथावत् वर्णन की हैं।

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने रक्तपित्तचिकित्सितंनाम चतुर्थोऽध्यायः। ४ ॥

पंचमोऽध्यायः

अथातोगुल्मचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम गुल्मचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

सर्वप्रजानांपितृवच्छरण्यःपुनर्वसुर्भूतभविष्यदीशः। चिकित्सितंगुल्मनिबर्हणार्थं प्रोवाचसिद्धंवदतांवरिष्ठः ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रजा को पिता की समान शरण देनेवाले, भूत-भविष्यत्के जानने वाले वक्ताओंमें श्रेष्ठ पुनर्वसुजी गुल्मरोग के निवारणार्थ सिद्ध चिकित्साका वर्णन करने लगे ॥

गुल्मोत्पत्ति का हेतु ।

विट्श्लेष्मपित्तादिपरिक्षयाद्वा तैरेववृद्धैः परिपीडितोवा ॥ वेगैरुदीर्णैर्विहितैरधोवा बाह्याभिघातैरतिपूरणैर्वा । रूक्षान्नपानैरतिसेवनैर्वाशोकेनामिथ्यामातिकर्मणावा विचेष्टितैर्वाविषमातिमात्रैः । कोष्ठेमकोपं समुपैतिवायुः कफञ्चपित्तञ्चसदूषयित्वा॥ प्रोद्धूयमार्गान्विनिबध्यताभ्याम् । हृत्प्लीहपार्श्वोदरवस्तिशूलं करोत्यधोया-तिनबद्धमार्गः॥ पक्वाशयेपित्तकफाशयेवा॥ स्थितःस्वतन्त्रःपरसंश्रयोवा॥ स्पर्शोपलभ्यःपरिपिण्डितत्वात् गुल्मोयथादो-षमुपैतिनाम ॥

अर्थ—विष्टा, कफ और पित्तादि की अत्यन्त क्षीणता वा इनहीं की वृद्धि से वायुकी अत्यन्त पीडा से, उपस्थित अधोवेगों के रोकनेसे, बाह्य अभिघात से, अत्यन्त सन्तर्पण से, रूक्ष अन्नपान के अत्यन्त सेवन से, शोक से, वा चिकित्सा के मिथ्यायोग, अयोग वा अतियोगसे, शरीर की विषम वा अतिमात्र चेष्टाओंसे वायु कोष्ठ में अत्यन्त कुपित होजाती है और फिर कफ और पित्तको दूषित करके उनसे मार्गोंको रुकवालेतीहै और तब उत्तेजित होकर हृदय, प्लीहा, पार्श्व, उदर और वस्तिमें शूल उत्पन्न करती है और मार्गके बन्द होजाने के कारण नीचे होकर भी नहीं निकलने पाती है। तब वह पक्वाशय वा पित्तकफाशय में अकेली वा कफपित्त के संसर्ग में स्थित होजाती है और उस स्थान में हाथ लगाने से गोलासा दिखाई देने लगता है तब यथादोष इस का नाम गुल्म होजाता है, यथा वातिक पैत्तिक, और श्लैष्मिक । इस कहने से यह न समझ लेना चाहिये कि केवल पैत्तिक या श्लेष्मिक होता है । इसमें वायु तो प्रधान होती है इसी से वायुगोला कहते हैं ।

गुल्मके स्थानभेद ।

वस्तौहिनाभ्यांहृदिपार्श्वयोर्वा । स्थाना निगुल्मस्यभवन्तिपञ्च । पञ्चात्मकस्य प्रभवन्तुतस्य । वक्ष्यामिलिङ्गानिचिकित्सितञ्च ॥

अर्थ—वस्ति, नाभि, हृदय, और दोनों पार्श्वभाग ये गुल्म के पांच स्थान हैं । इस की उत्पत्तिभी पांचही प्रकारसे हैं, अब हम इसकी चिकित्सा और लक्षणों का वर्णन करते हैं ।

वातिक गुल्मका हेतु ।

रूक्षान्नपानंविषमातिमात्रं । विचेष्टितंवेगविनिग्रहश्च । शोकोऽभिघातोऽतिवलक्षयश्च निरन्नताचानिलगुल्महेतुः ॥

अर्थ—रूक्ष अन्नपानके सेवन, शरीर की विषम और अतिमात्र चेष्टा, मलमूत्रादि वेगों का अवरोध, शोक, अभिघात, बलकी अत्यन्त क्षीणता, भोजन न करना ये सब वातिक गुल्मकी उत्पत्ति के हेतु हैं ।

वातिक गुल्म के लक्षण ।

यःस्थानसंस्थानरुजांविकल्पं । विड्वात सङ्गंगलवक्त्रशोषम् । श्यावारुणत्वंशिशिरज्वरश्च । हृत्कुक्षिपार्श्वांसशिरोरुजश्च। करोतिजीर्णेऽभ्यधिकंप्रकोपं । भुक्तेमृदुत्वंसमुपैतियश्च । वातात्सगुल्मोनचतत्र-रूक्षःकषायतिक्तकटुचोपशेते ॥

अर्थ—जिस गुल्म के स्थान, स्वरूपऔर बेदनामें थोडी थोडी देरमें अन्तर पडजाय, जिस में मलत्याग और अधोवायु का अवरोध हो, जिस के होने से गले और मुख में खुशकी हो, जिसका रंग कुछ काला कुछ लालहो जिसमें शीतज्वर का वेग हो, जिसके होनेसे हृदय, कुक्षि, पार्श्व और सिरमें वेदनाहो, अन्नके पचनेपर जो अत्यन्त कुपित हो, जो भोजन करने पर नरम पड़जाय उसे वातजगुल्म कहतेहैं इसमें रूक्ष, कटु, तिक्त और कषाय द्रव्योंके सेवन का निषेध है ।

पैत्तिक गुल्मका हेतु ।

कट्वम्लतीक्ष्णोष्णविदाहिरूक्षक्रोधातिंमद्यार्कहुताशसेवा ॥ आमाभिघातोरुधिरंचदुष्टंपैत्तस्यगुल्मस्यनिमित्तमुक्तम् ॥

अर्थ—कटु, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण, विदाही और रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे, क्रोध, अर्ति, मद्य, धूप और अग्निमें तापनेसे, अविदग्ध अन्नसे और रुधिरके दूषित होनेसे पैत्तिक गुल्म उत्पन्न होता है ।

पैत्तिक गुल्मके लक्षण ।

ज्वरःपिपासावदनाङ्गरागःशूलंमहज्जीर्यतिभोजनेच । स्वेदोविदाहोव्रणवच्चगुल्मस्पर्शासहःपैत्तिकगुल्मरूपम् ॥

अर्थ—ज्वर, तृषा, मुख तथा देहमें ललाई, अन्नके पचने के समय अत्यन्त शूल का होना, पसीना, विदाह, तथा घाव की तरह गुल्ममें हाथका लगाना बुरा मालूम होना, ये सब पैत्तिकगुल्म के लक्षण हैं ।

श्लैष्मिकगुल्म के हेतु ।

शीतंगुरुस्निग्धमचेष्टनञ्चसम्पूरणंप्रस्वपनंदिवाच । गुल्मस्यहेतुःकफसम्भवस्य । सर्वस्तुदृष्टोनिचयात्मकस्य ।

अर्थ—शीतल, भारी और स्निग्ध पदार्थों के सेवनसे किसी प्रकार की चेष्टा न करनेसे, संतर्पणसे, दिनमें नींद लेनेसे कफज गुल्म होताहै; तथा सान्निपातिक गुल्ममें तीनों दोषोंके मिलेहुए कारण होते हैं ॥

श्लैष्मिक गुल्मके लक्षण ।

स्तैमित्यशीतज्वरगात्रसाद हृल्लासकासारुचिगौरवाणि । शैत्यंरुगल्पाकाठिनोन्नतत्वं गुल्मस्यरूपाणिकफात्मकस्य ॥

अर्थ—स्तिमिता, शीतज्वर, अंगग्लानि, हृल्लास, खांसी, अरुचि, भारापन, शैत्य, वेदनाकी सूक्ष्मता, कडापन, ऊंचापन, ये सब कफजगुल्म के रूप हैं ॥

द्वन्द्वजगुल्म के लक्षण ॥

निमित्तलिङ्गान्युपलभ्यगुल्मे द्विदोषजेदोषबलाबलञ्च । व्यामिश्रदोषानपरांस्तु गुल्मांस्त्रीनादिशेदौषधकल्पनार्थम् ॥

अर्थ—उत्पत्तिके हेतु, लक्षण, दोषोंका बलाबल, तथा दो२ दोषोंके मिले हुए लक्ष

णोंसे तीन प्रकारके द्विदोषजगुल्म भी होते हैं ॥ औषधों के प्रयोग के निमित्त इनकें तीन भेद दिखाये गये हैं ।

त्रिदोषजगुल्म के लक्षण ॥

महारुजंदाहपरीतमश्मवद् घनोन्नतंशीघ्र विदाहिदारुणम् । मनः शरीराग्निवलाप हारिणं त्रिदोषजंगुल्ममसाध्यमादिशेत् ॥

अर्थ—त्रिदोषजगुल्ममें अत्यन्त घोर वेदना. दाह, पत्थरके समान कडापन और ऊंचाई होताहै यह शीघ्रही दाह उत्पन्न करनेवाला भयंकर रोग होताहै' यह मन शरीर और अग्निके वलको दूर कर देताहै यह गुल्म असाध्य होता है ॥

रक्तगुल्मकाकारण

ऋतावनाहारतयाभयेन विरूक्षणैर्वेगवि-निग्रहैश्च ॥ संस्तम्भनोल्लिखनयोनिदोषै र्गुल्मःस्त्रियंरक्तभवोऽभ्युपैति ॥ यःस्पन्द-तेपिण्डितएवनाङ्गैः चिरात्सशूलःसमग र्भलिङ्गैः । सरौधिरःस्त्रीभवएवगुल्मो मासेऽव्यतीतेदशमेचिकित्स्यः

अर्थ ...ऋतुधर्म होनेमें सर्वथा भोजन न करना, भय, रूक्ष पदार्थोंका सेवन, वातादिरोगविनिग्रह , स्तम्भनक्रिया , वमन और योनिदोषसे स्त्रियोंके रक्तगुल्म होताहै.। जब रक्तगुल्म पेटमें उछलता है तब इसमें अत्यन्त वेदना होती है और लक्षण इसमें गर्भ के समान होते हैं इसकी उत्पत्ति रक्तसे है और यह केवल स्त्रियोंहीके होताहै । दस महीने व्यतीत होनेपर इसकी चिकित्सा करना उचितहै ।

क्रियाक्रममतःसिद्धंगुल्मिनांगुल्मनाशनम् प्रवक्ष्याम्यतऊर्ध्वञ्चयोगानगुल्मनिवर्ह-णान् ॥

अर्थ—अब हम यहांसे गुल्मरोगियोंके गुल्मको दूर करने के लिये चिकित्साक्रम और अनुभूत प्रयोगोंका वर्णन करते हैं ॥

वातजगुल्ममें चिकित्साक्रम ॥

रूक्षव्यायामजंगुल्मंवातिकंतीव्रवेदनम् । वद्धविट्मारुतंस्नेहैरादितःसमुपाचरेत् ॥ भोजनाभ्यञ्जनैःपानैर्निरूहैः सानुवासनैः स्निग्धस्यभिषजास्वेद कर्त्तव्योगुल्मशान्त ये ॥ स्रोतसांमार्दवंकृत्वाजित्वामारुतमु-ल्वणम् । भित्वाविवन्धंस्निग्धस्यस्वेदोगु ल्ममपोहति ॥ स्नेहपानमतंगुल्मेविशेषे णोर्ध्वनाभिजे । पक्वाशयगतेवस्तिरुभयं जठराश्रये ॥

अर्थ—जो वातिकगुल्म रूक्ष भोजन तथा परिश्रमसे उत्पन्न हुआहै, जिसमें तीव्र वेदना होतीहै और जिसमें अधोवायु और विष्ठा रुकगयाहो उसमें प्रथम स्नेहन क्रिया करे ॥ भोजन अभ्यञ्जन, पान, निरूहण और अनुवासन वस्ति द्वारा रोगीको स्निग्ध करके स्वेदनकर्म करे तो गुल्मरोग की शान्ति होतीहै

रोगीको स्निग्ध करने के पश्चात् स्वेदन से शरीरके स्रोत मृदु होजातेहैं, वायु की प्रवलता घटजातीहै, विवन्धता दूर होजाती है और तव गुल्म भी शान्त होजाता है । विशेष करके नाभिसे ऊपर होनेवाले गुल्ममें स्नेहपान श्रेष्ठ है ॥ पक्वाशयगत गुल्ममें वस्तिकर्म तथा जठराश्रय गुल्ममें स्नेहपान और वस्तिकर्म दोनों हित हैं ॥

अन्यविधि ॥

दीप्ताग्नौवातिकेगुल्मेविवन्धेऽनिलवर्च सां॥ बृंहणान्यन्नपानानिस्निग्धोष्णानि प्रयोजयेत् ॥ पुनःपुनःस्नेहपानंनिरूहाः सानुवासनाः । प्रयोज्यावातगुल्मेपुकफ पित्तानुरक्षिणा ॥ कफेवातेजितप्रायेपि त्तेशोणितएववा । यदिकुप्यतिवातस्य क्रियमाणेचिकित्सितैः ॥ यथोल्वणस्य दोषस्यतत्रकार्य्यंभिषग्जितम् । आदाव न्तेचमध्येचमारुतंपरिरक्षता ॥ वातगुल्मे कफोवृद्धोहत्वाग्निमरुचिंयदि । हृल्ला संगौरवंतन्द्रांजनयेदुल्लिखेत्तुतम् ॥

अर्थ—यदि वातिक गुल्ममें अग्नि तीव्र हो, तथा अधोवायु और विष्टाका विवन्ध हो तो बृंहणकर्त्ता, स्निग्ध और उष्ण अन्न पानका प्रयोग करे । तथा कफपित्तानुबन्धी वातजगुल्मरोगमें वारवार स्नेहपान तथा निरूहण, अनुवासनवस्ति देवै । कफ और वातके प्रायः दूर होने के समय अथवा वातगुल्मकी चिकित्सा करने के समय यदि पित्त और रक्त कुपित होजांय तब उस समय जिस दोषकी अधिकताहो उसी की चिकित्साका उपाय करे । परन्तु चिकित्सा के आदि मध्य वा अवसानमें वायुकी रक्षा करता रहै । वात गुल्ममें यदि कफ उत्ते-जित होकर जठराग्नि को मन्द करके अ-रुचि, हृल्लास, गौरव तन्द्रा उत्पन्न करे तब उस रोगी को वमन करावे ॥

अन्यविधि ॥

शूलानाहविवन्धेषुगुल्मेवातकफोल्वणे । वर्त्तयोगुलिकाःचूर्णंकफवातहरम्मतम् ॥ पित्तंवायदिसंवृद्धंसन्तापंवातगुल्मिनः । कुर्याद्विरेच्यःसभवेत्स्नेहनैरानुलोमिकैः। गुल्मंपथ्यनिलादीनांकृतेसम्यग्भिषग्जिते नप्रशाम्यतिरक्तेनसगुल्मेनोपशाम्यति ॥

अर्थ—वातकफाधिक्य गुल्ममें यदि शूल आनाह और विबन्ध हो तो कफवातनाशक वर्तिका, गोली, चूर्णका प्रयोग करे । वात गुल्मरोगीके यदि पित्त बढकर सन्ताप उत्पन्न करै तो वायुके अनुलोमन करने वाले स्नेहनद्रव्यों से विरेचन देवै । यदि वातादिक को शमन करनेवाली औषधोंके प्रयोग से जो गुल्म शांत नहीं वे फस्त खो-लने से शान्त होजाते हैं ।

पैत्तिकगुल्ममें चिकित्साक्रम ॥

स्निग्धोष्णेनोदितेगुल्मेपैत्तिकेस्रंसनंमतम् रूक्षोष्णेनतुसम्भूतेसर्पिःप्रशमनंपरम् ॥ पित्तंवापित्तगुल्मंवाज्ञात्वापक्वाशयस्थित म् ॥ कालंवन्निर्हरेत्सद्यःसतिक्तैःक्षीरव स्तिभिः॥ पयसावासुखोष्णेनसतिक्तेन विरेचयेत् । भिषगग्निवलापेक्षीसर्पिषा तैलकेनवा ॥

अर्थ—जो पैत्तिकगुल्म स्निग्ध और उष्ण पदार्थों के सेवन से उत्पन्न हुआ है उस-में दस्तावर औषध हितहै । और जो रूक्षो-ष्णपदार्थों के सेवनसे हुआहै उसमें घृतपान बहुत उत्तमहै । पित्त वा पित्तज गुल्म जो पक्वाशयमें स्थितहो उसे उचितकाल में तिक्त औषधियों से संस्कार की हुई क्षीर-वास्तिद्वारा तत्काल निकाल देवै, अथवा तिक्त औषधियोंसे संस्कार कियेहुए सुखोष्ण दुग्धको पान कराके विरेचन देवै अथवा

रोगीके अग्निबल का विचार करके तेल मिला हुआ घी देकर विरेचन देवै ॥

गुल्ममें रक्तमोक्षणविधि ॥

तृष्णाज्वरपरीदाहशूलस्वेदाग्निमार्दवे । गुल्मिनामरुचौचापिरक्तमेवावसेचयेत् ॥ छिन्नमूलाविदह्यन्तेनगुल्मायान्तिचक्षयम् रक्तंहित्व्यम्लतांयातितचनास्तिनचास्ति रुक् । हृतदोपम्परिम्लानंजाङ्गलैस्सार्प-तंरसैः ॥ समाश्वस्तंचशेपार्तिसर्पिपापुन-राचरेत् । रक्तपित्तातिवृद्धत्वात्क्रियाम-नुपलभ्यवा ॥ यदिगुल्मोविदह्येतशस्त्रंत-त्रभिषग्जितम् ।

अर्थ—यदि पित्तज्वरमें तृष्णा, ज्वरदाह शूल, पसीना, मंदाग्नि और अरुचि हो तो फस्त खुलवावै । इसतरह गुल्मकी जड काट लेनेसे वे पकने नहीं पातेहैं किन्तु नष्ट हो जातेहैं, रक्तकी अम्लता जाती रहती है और रक्तके न रहने से वेदनाभी नहीं रहती

फस्त खोलनेसे दोपों के दूर होजाने पर रोगी अत्यन्त थकित होजाताहै तब उसे जांगल पशुओंके मांसरस से तर्पित करै जब यह सावधान होजाय तब बचे-हुए रोगको घृतपान कराके दूर करै ।

रक्तपित्तके अत्यन्त बढजाने से या चि-कित्साकी सम्यक् अनुपलब्धि से जो गुल्म पकजाय तो उसमें शस्त्र द्वारा रक्त मोक्ष-णही चिकित्सा है ॥

अपक्व गुल्म के लक्षण ।

गुरुःकठिनसंस्थानोगूढमांसोत्तराश्रयः॥ अविवर्णःस्थिरश्चैवह्यपक्वोगुल्मउच्यते ।

अर्थ—भारी, कठोराकृति, घने मांस में स्थित, जिसका रंग न बिगडा हो जो अच-ल हो वह गुल्मअपक्व होताहै ॥

विदह्यमानगुल्म के लक्षण ॥

दाहशूलाग्निसंक्षोभस्वप्ननाशारतिज्वरैः विदह्यमानंजानीयाद्गुल्मंतमुपनाहयेत् ।

अर्थ—जिस गुल्ममें दाह, शूल, अग्नि-संक्षोभ, निद्रानाश, प्रलाप और ज्वर हो उस गुल्मको विदह्यमान अर्थात् पकनेवाला कहतेहैं । इसपर लेपकरना चाहिये ॥

संपक्व गुल्मके लक्षण ।

विदाहलक्षणाल्पत्वेबहिस्तुङ्गेसमुन्नते ॥ श्यावेसरक्तपर्यन्तेसंस्पर्शेबस्तिसन्निभे । निपीडितोन्नतेस्तब्धेसुप्तेतरपार्श्वपीडनात् तत्रैवपिण्डितेशूलेसंपक्वंगुल्ममादिशेत् । त-त्रधान्वन्तरीयाणामधिकारः क्रियाविधौ वैद्यानांकृतयोग्यानांव्यधशोधनरोपणे । अन्तर्भागस्यचाप्येतत्पच्यमानस्यलक्ष-णम् ॥

अर्थ—विदाह लक्षणोंके अल्प होनेपर जब गुल्म बाहरकी ओर अत्यन्त तुंग और ऊंचा होताहै, रंग काला पडजाता है और इसके चारों ओरके किनारे कुछ कुछ लाल होजाते है, छूने में परवालसा माळूमहो हाथ से दबाने पर फिर ऊंचा होजाय, ओरपास से दाबनेपर स्तब्ध और सुस्त माळूमहो, एकही स्थानपर गोलासा रहा आवै और वेदना होती हो तब इसे संपक्व समझना चाहिये ॥

ऐसे गुल्म रोग की व्यधन, शोधन, और

रोपण द्वारा चिकित्सा करनेका अधिकार सम्पूर्ण अस्त्र शस्त्रोंसे सम्पन्न धान्वन्तरीय चिकित्सकों को है अर्थात् उनको है जिन्हों ने धन्वन्तरिके मतके अनुसार व्रणों का चीरना फाडना आदि सीखा है। भीतर की ओरको पकनेवाले गुल्म के भी यही लक्षण होतेहैं ॥ यह अन्तर्विद्रधि के समानहींहै क्योंकि अन्तर्विद्रधि पकती है और गुल्म नहीं पकताहै ॥

हृत्क्रोडशूनतान्तःस्थेवहिःस्थेपार्श्वनिर्गतिः पक्वःस्रोतांसिसंक्लिद्यव्रजत्यूर्ध्वमधोऽपिवा स्वयंप्रवृत्तन्तंदोषमुपेक्षेताहिताशनैः। दशाहंद्वादशाहंवारक्षन्भिषगुपद्रवान् ॥ अत ऊर्ध्वंभतपानंसर्पिषःसविशोधनम्। शुद्धं सतिक्तंसक्षौद्रंप्रयोगेसर्पिरिष्यते ॥

अर्थ—अन्तःस्थगुल्म अर्थात् अन्तर्विद्रधिमें हृदय और क्रोड़में सूजन होती है और वहिस्थगुल्में अर्थात् वाह्यविद्रधि में पसवाडोंसे निर्गमन होताहै। गुल्म पक्व होकर स्रोतोंको गीला करके ऊपर की ओर वा नीचेकी ओर जाताहै। जो दोष अपने आप निकलने लगें तो हितकारी पथ्य वताकर वैद्य को उचित है कि उपद्रवों की रक्षाकरता हुआ इसकी दस बारह दिवस तक उपेक्षा करै ॥ तदुपरान्त संशोधनघृत का व्यवहार करै।इसतरह जव रोगी शुद्ध हो जाय तव तिक्त औषधियोंके साथ संस्कार किया हुआ घृत शहत मिलाकर देवै।

कफजगुल्मका चिकित्सादि वर्णन।

शीतलैर्गुरुभिःस्निग्धैर्गुल्मेजातेकफात्मके॥ अवम्यस्याल्पकायाग्नेःकुर्याल्लंघनमादितः

अर्थ—शीतल, भारी और स्निग्ध पदार्थों के अत्यन्त सेवन से जो कफात्मक गुल्म उत्पन्न होता है उस में रोगी वमन के अयोग्य और मन्दाग्नियुक्त होजाता है इसलिये इस में प्रथम लंघन कराना उचित है।

वमनोपगरोगी।

मन्दोऽग्निर्वेदनामन्दोगुरुस्तिमितकोष्ठता सोत्क्लेशाश्चारुचिर्यस्यसगुल्मीवमनोपगः॥

अर्थ—जिस गुल्मरोगी की अग्नि मन्दहो वेदना भी मन्द हो जिसके कोष्ठमें भारापन और गीलापन होवै, जिसको उत्क्लेश और अरुचि होवै वह रोगी वमन के योग्य होताहै

उष्णैरेवोपचार्यस्यकृतेवमनलंघने। यो ज्याचाहारससर्गीभेषजैः कटुतिक्तकैः॥ सानाहसविवन्धंचगुल्मंकठिनमुन्नतम्। दृष्ट्वादौस्वेदयद्युक्त्यास्विन्नञ्चविनयेद्भिषक् ॥ लंघनोल्लेखनेस्वेदेकृतेऽग्नौसंप्रधुक्षिते। कफगुल्मेपिवेत्कालेसक्षारकटुकंघृतम् ॥ स्थानादपसृतंज्ञात्वाकफगुल्मं विरेचनैः। सस्नेहैर्वस्तिभिर्वाथशोधयेद्दशमूलकैः॥

अर्थ—वमन और लंघन करानेके पश्चात् उष्ण, कटु और तिक्त औषधियों को आहारमें मिलकर देवै ॥ आनाह और विवन्ध युक्त गुल्म जो कठोर और उंचाहो उसमें युक्तिपूर्वक स्वेदनदेवै, स्वेदन कर्मकेपीछे यह नीचा होजाताहै। लंघन,वमन और स्वेदनके पश्चात् जब अग्नि प्रदीप्त होजाय तव कफजगुल्म में क्षार और कटु

द्रव्यों से संस्कार कियाहुआ घृतपान करावे ऊपर कहेहुए लंघनादि उपचारों से जो कफ गुल्म अपने स्थान से चालित होजाय तो दश-मूल के क्वाथ में सिद्ध किया स्निग्ध विरेचन अथवा स्नहनवस्ति देकर उसका संशोधन करै

कफजगुल्म में अन्यप्रयोग ॥

मन्दाग्नावनिलेमूढेश्लावासस्नेहमाशयम् गुलिकाःचूर्णनिर्यूहाःप्रयोज्याःकफगुल्मिनाम् ॥ कृतमूलंमहावास्तुकठिनंस्तिमितं गुरुम् । जयेत्कफकृतंगुल्मंक्षारारिष्टाग्निकर्मभिः॥

अर्थ....कफ गुल्मरोगी की जो अग्नि मन्द पडगई हो, अधोवायु रुकगई हो और आमाशय स्निग्धहो तो उसे गोली, चूर्ण और क्वाथादिक देवै ॥ ऐसा कफगुल्म जो बहुत बीचमें फैलगयाहो, कडाहो, गीला हो, भाराहो उसको क्षार, अरिष्ट और अग्निकर्म द्वारा शान्त करै ।

गुल्ममें क्षारविधि ॥

दोषप्रकृतिगुल्मन्तुयोगंबुध्वाकफोल्वणे । वलदोषप्रमाणज्ञःक्षारंगुल्मेप्रयोजयेत् ॥ एकान्तरंद्वयन्तरंवात्र्यहंवाविश्रम्यवापुनः । शरीरवलदोषाणांवृद्धिक्षपणकोविदः ॥ श्लेष्माणंमधुरांस्निग्धंतांसक्षीरघृताशिनः भित्वाभित्वाशयान्क्षारःक्षरत्वात्क्षारयत्यधः ॥

अर्थ....कफाधिक्य गुल्ममें दोष, प्रकृति, गुल्म और योग को देखकर क्षार का प्रयोग करै फिर एकादिन दोदिन अथवा तीनदिन ठहरकर देखे कि शरीर के वल और दोषों में क्या अन्तर हुआ तब उसी के अनुसार फिर प्रयोग करै । क्षार अपनी क्षरणशक्ति से मांस, दूध, और घी खाने वाले मनुष्यके आशय को भेदकर मधुर स्निग्ध कफको अधोमार्ग द्वारा निकाल देताहै ।

गुल्म में अरिष्ट ॥

मन्दांग्नावरुचीसात्म्येमद्येसस्नेहमश्नताम् । प्रयोज्यामार्गशुद्धयर्थमरिष्टाःकफगुल्मिनाम् ॥

अर्थ—स्निग्ध भोजन करनेवाले कफ गुल्मरोगीकी यदि अग्निमन्द पड़गईहो अरुचिहो वा मदिरापान सात्म्यहो तो मार्गकी शुद्धिके निमित्त अरिष्टका प्रयोग करै।

लङ्घनोल्लेखनैःस्वेदैः सर्पिष्पानैर्विरेचनैः ॥ वस्तिभिर्गुलिकाचूर्णक्षारारिष्टगणैरपि ॥ श्लैष्मिकःकृतमूलत्वाद्यस्यगुल्मो नशाम्यति ॥ तस्यदाहोहृतेरक्तेशरलोहादिभिर्मतः।औष्ण्यात्तैक्ष्ण्याच्चशमयेदग्निर्गुल्मेकफानिलौ।तयोःशमाच्चसंघातोगुल्मस्यविनिवर्तते ॥

अर्थ—लंघन, वमन, स्वेदन, घृतपान, विरेचन, वस्तिकर्म, गोली, चूर्ण, क्षार और अरिष्ट इनमें किसीका प्रयोग करने से भी वह श्लैष्मिक गुल्म शान्त न हो जो जड़ पकड़ गया है तो प्रथम फस्त खोलकर फिर शर वा लोह से दग्ध करना उचित है । अग्नि अपनी उष्णता और तीक्ष्णता से गुल्मरोग में कफ और वादी को शान्त करदेती है और इन दोनों के शमन होने से गुल्म का गोला नष्ट होजाता है ।

दाहेधन्वन्तरीयाणामत्रापिभिषजांवल म्। क्षारप्रयोगेभिषजांक्षारतन्त्रविदांव लम् ॥ व्यामिश्रदोषेव्यामिश्रएषएवक्रियाक्रम। सिद्धानतःप्रवक्ष्यामियोगान् गुल्मनिवर्हणान् ॥

अर्थ—धन्वन्तरि के मत के अनुसार जो अग्नि कर्मादि जानते हैं वेही दाह कर सकते हैं और क्षारकर्मको जाननेवाले क्षारका प्रयोग कर सकतेहै। जो गुल्म दो दो दोषों से उत्पन्न हैं उनमें मिलीहुई क्रिया करना चाहिये।

अब हम गुल्मनाशक अनुभूत प्रयोगों का वर्णन करते हैं।

त्र्यूषणादि घृत।

त्र्यूषणंत्रिफलाधान्यंविडङ्गचव्यचित्रकैः कल्कीकृतैःघृतंसिद्धंसक्षीरंवातगुल्मनुत् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, धनियां, वायविडंग, चव्य, चीता इन सब को पीसकर लुगदी बनावे उसको दूध में मिलाकर घृत डालकर पकावे यह घृत वातगुल्म को दूर करता है।

त्र्यूषणादि घृत की अन्यविधि।

एतएवचकल्काःस्युःकषायःपञ्चमूलिकः। द्विपञ्चमूलिकोवाथतद्घृतंगुल्मनुत्परम्॥

अर्थ—ऊपर कही औषधियोंका कल्क और पंचमूल वा दशमूलके क्वाथमें घृत को सिद्ध करके देवे यह घृत भी गुल्मनाशक है।

अन्यप्रयोग ॥

षट्पलंवापिबेत्सर्पिर्यदुक्तंराजयक्ष्माणि। प्रसन्नयावाक्षीरार्थःसुरयादाडिमेनवा। दध्नःसरेणवाकार्य्यंघृतंमारुतगुल्मिनाम् ॥

अर्थ—राजयक्ष्मामें जो षट्पल घृत कहा है उसे दूध के बदले में प्रसन्ना, सुरा, दाडिमरस या दही की मलाई के साथ देवे तो वातगुल्म शान्त होता है ॥

हिंग्वादि घृत।

हिंगुसौवर्चलाजाजीविड्दाडिमदीप्यकौ। पुष्करव्योषधान्याम्लवेतसक्षारचित्रकैः शठीवचाजगन्धैलासुरसैश्चाविपाचितम्। शूलानाहहरंसर्पिर्दध्नाचानिलगुल्मिनाम्

अर्थ—हींग, सहचलनमक, जीरा, विट्लवण, अनार, अजवायन, कूठ, त्रिकुटा, धनियां, अमलवेत, जवाखार, चीता, कचूर, वच, अजगन्ध, इलायची, सुरसातुलसी इन को पीसकर घी डालकर दहीके साथ पकावे यह घृत वातरोगियों के शूल और आनाह को दूर करता है ॥

हवुषादि घृत।

हवुषाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः। साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैर्विपचेद्घृतम्॥मातुलुङ्गदधिक्षीरकोलमूलकदाडिमैः रसैस्तद्वातगुल्मघ्नंशूलानाहविमोक्षणम् ॥ योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासारुचिज्वरान्। वातहृत्पार्श्वशूलञ्चघृतमेतद्व्यपोहति।

अर्थ—हाऊबेर, त्रिकुटा, छोटा जीरा, चव्य, चीता, सेंधानमक, कालाजीरा, पीपलामूल, अजवायन इन सब को पीस लेवे और बिजौरे का रस, दही, दूध, बेरकारस, मूली का रस, अनारका रस इन सब को मिलाकर

घृत पकावे यह घृत वातगुल्म, शूल, आनाह, योन्यर्श, ग्रहणी दोष, श्वास, खांसी, अरुचि, ज्वर, वातरोग और पार्श्वशूल सबको नष्ट कर देता है।

पिप्पल्यादि घृत।

पिप्पल्याःपिचुरध्यर्धोदाडिमाद्विपलंप-लम्। धान्यात्पञ्चघृताच्छुण्ठ्याकर्षःक्षी-रंचतुर्गुणम्॥ सिद्धमेतैर्घृतंसद्योवातगु-ल्मंचिकित्सति॥योनिशूलंशिरःशूलम-र्शांसिविषमज्वरम्॥

अर्थ—पीपल तीन तोला, अनार आठ तोला, धनियां चार तोला, घृत बीस तोला सौंठ दो तोला और दूध अस्सी तोला इन सब को सिद्ध करने से जो घृत तयार होता है वह वातगुल्म को तत्काल नष्ट कर देता है। इसी घृत के सेवनसे योनिशूल, शिरःशूल, अर्श, विषमज्वर दूर होजाते हैं।

घृतानामौषधगुणायएतेपरिकीर्तिताः। तेचूर्णयोगावर्त्यस्ताःकषायास्तेचगुल्मि-नाम्॥

अर्थ—घृत सिद्ध करने के निमित्त जो औषधों के गुण ऊपर वर्णन किये गये हैं, ये ही औषधें चूर्ण, वर्त्ति और क्वाथ द्वारा गुल्म रोगियों को दीजाती हैं।

वर्त्तिप्रयोग।

कोलदाडिमघर्माम्बुसुरामण्डाम्लकाञ्जि-कैः।शूलानाहनुदःपेयाबीजपूररसेनवा॥ चूर्णानिमातुलुंगस्यभावितस्यरसेनवा। कुर्याद्वर्त्तीःसगुडिकागुल्मानाहार्तिशान्तये॥

अर्थ—बेरका रस, अनारका रस, इन को गरमजल, सुरामण्ड, अम्लकांजी वा बिजौरेके रसके साथ पान करने से आनाह दूर होता है। अथवा बिजौरेके चूर्ण में बिजौरे के रसकी भावना देकर वर्ती या गोली बनाकर सेवन करै तो गुल्म, आनाह और आर्त्ति ये रोग शान्त होजातेहैं॥

हिङ्ग्वादि चूर्ण विधि।

हिंगुत्रिकटुकांपाठांहवुषामभयांशटीम्। अजमोदाजगन्धेचतिन्तिडीकाम्लवेतसौ दाडिमंपुष्करंधान्यमजाजींचित्रकंवचाम् द्वौक्षारौलवणेद्वेचचव्यंचैकत्रयोजयेत्॥ चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमनुपानेष्वनत्ययम्। प्राग्भक्तमथवापेयंमद्येनोष्णोदकेनवा॥ पार्श्वहृद्वस्तिशूलेषुगुल्मेवातकफात्मके॥ आनाहेमूत्रकृच्छ्रेवाशूलेचगुदयोनिजे॥ ग्रहण्यर्शोविकारेषुप्लीन्हिपाण्डवामयेऽरु-चौ। उरोविबन्धेकासेचहिक्काश्वासेगल ग्रहे॥भावितंमातुलुङ्गस्यचूर्णमेतद्रसेनवा॥ बहुशोगुलिकाःकार्याःकार्मुकाःस्युस्ततोऽ-धिकम्॥

अर्थ—हींग, त्रिकुटा, पाठा, हाऊबेर, हरड, शटी, अजमोद, अजगन्ध, इमली, अमलवेत, अनार, कूठ, धनिया, कालाजीरा चीता, वच, दोनों क्षार, दोनों नमक, और चव्य इन सबका चूर्ण कूट लेवै। इस चूर्ण को अनुपानके साथ सेवन करै अथवा भोजन करनेसे पहिले मद्य या उष्णजलके साथ लेवे इस चूर्णके सेवन करनेसे पार्श्वशूल, हृतशूल, वस्तिशूल, वातकफात्मक गुल्म, आनाह, मूत्रकृच्छ्र गुदशूल, योनिशूल, ग्रह-

णी विकार, अर्शोविकार, प्लीहा, पाण्डुरोग, अरुचि उरोविबन्ध, खांसी, हिचकी, श्वास, गलग्रह दूर होजातेहैं । इसी चूर्णको बिजौरे के रसमें घोटकर गोलियां बनालेवे ये गोलियां चूर्णकी अपेक्षा भी अधिक गुणकारीहैं।

वातगुल्म में अन्य प्रयोग ।

मातुलुङ्गरसोहिंगुदाडिमंबिड्सैन्धवे ।
सुरामण्डेनपातव्यंवातगुल्मरुजापहम् ॥

अर्थ—बिजौरेका रस, हींग, अनार, बिडनमक, सेंधानमक इनको सुरामण्डके साथ पान करनेसे वातगुल्म नष्ट होजाताहै ॥

शठ्यादिचूर्ण ॥

शटीपुष्करहिंग्वम्लवेतसक्षारचित्रकान्॥ धान्यकञ्चयमानीञ्चविडङ्गंसैन्धवंवचाम् ॥ सचव्यपिप्पलीमूलमजगन्धःसदाडिमम् ॥ अजाजीचाजमोदाञ्चचूर्णकृत्वाप्रयोजयेत् ॥ रसेनमातुलुङ्गस्यमधुयुक्तेनवापुनः ॥ भावितंगुडिकांकृत्वासुपिण्डांकोलसम्मिताम् । गुल्मंप्लीहानमानाहंश्वासंकासमरोचकम् । हिक्कांहृद्रोगमर्शांसिविविधान्शिरसोरुजान् ॥ पांडुघामयंकफोत्क्लेशसर्वजाश्चप्रवाहिकाम् पार्श्वहृद्वस्तिशूलश्चगुडिकेपाव्यपोहति ॥

अर्थ—शटी, पुष्कर, हींग, अमलवेत जवाखार, चीता, धनियां, अजवायन, वायविडंग, सेंधानमक, वच, चव्य, पीपलामूल, अजगंध, अनार, कालाजीरा अजमोद, इनका चूर्ण बनाकर सेवनकरै । अथवा बिजौरे के रसकी भावना देकर शहत मिलावै और छोटे बेर की बराबर गोली बनावै यह गोली गुल्म, प्लीहा, आनाह, श्वास, खांसी, अरुचि, हिचकी, हृद्रोग, अर्शरोग, शिरोवेदना, पाण्डुरोग, कफोत्क्लेश, सब प्रकार के प्रवाहिका, पार्श्वशूल, हृद्शूल, वस्तिशूल रोगों को दूर करती है ।

अन्यप्रयोग ।

नागराद्धपलंपिष्ट्वाद्वेपलेलुञ्चितस्यच ।
तिलस्यैकंगुडपलंक्षीरेणोष्णेनवापिबेत्॥
वातगुल्ममुदावर्तयोनिशूलञ्चनाशयेत् ।

अर्थ—सोंठ दो तोले, बिना छिलके के तिल आठतोले, गुड चार तोले इनको गरम दूधके साथ पानकरै तौ वातगुल्म, उदावर्त्त और योनिशूल दूर होजातेहैं ।

अन्यप्रयोग ।

पिबेदेरण्डकंतैलंवारुणीमण्डमिश्रितम् ॥
तदेवतैलंपयसावातगुल्मी पिबेन्नरः ।
श्लेष्मण्यनुबलेपूर्वमतंपित्तानुगेपरम् ॥

अर्थ—श्लेष्मानुबंधी वातगुल्म में वारुणी मण्डमिश्रित अरंडका तेल पान करै और जो पित्तानुबन्ध होवै तौ दूधके साथ एरंड का तेल पान करै ।

ल्हसनका दूध ।

साधयेत्सिद्धशुष्कस्यलशुनस्यचतुष्पलम्
क्षीरेजलाष्टगुणितेक्षीरशेषश्चनापिबेत् ॥
वातगुल्ममुदावर्तंगृध्रसींविषमज्वरम् ।
हृद्रोगंविद्रधींशोफंसाधयत्याशुतत्पयः ॥

अर्थ—सिद्ध करके सुखाये हुए ल्हसन चार पललेकर दूध और उससे अठगुनाजल मिलाकर पकावै जब पानी जलजाय और दूध शेष रहजाय तब इसको छानकर पीवै तौ वातगुल्म, उदावर्त्त, गृध्रसी, विषम

ज्वर, हृद्रोग, विद्रधी, शोप, ये सब रोग दूर होजाते हैं।

तैलंप्रसन्नागोमूत्रमारनालंयवाग्रजः ।
गुल्मंजठरमानाहपीतमेकत्रसाधयेत् ॥

अर्थ—तेल, वारुणीमण्ड, गोमूत्र, कांजी जवाखार इनको सिद्ध करके पीवे तौ गुल्म रोग, जठररोग और आनाह दूर होजाते हैं,

शिलाजीत का प्रयोग ॥

पञ्चमूलकपायेणसक्षीरेणशिलाजतु ।
पिबेत्तस्यप्रयोगेणवातगुल्मात्प्रमुच्यते ॥

अर्थ—पञ्चमूल के क्वाथ और दूध के साथ शिलाजीत का सेवन करै तौ इस प्रयोग से वातगुल्म नष्ट होजाते हैं।

अन्यप्रयोग

वाट्यंयूषेणपिप्पल्यामूलकानांरसेनवा ।
भुक्त्वास्निग्धमुदावर्ताद्वातगुल्माद्विमुच्यते

अर्थ—पीपल के क्वाथ वा मूली के रसके साथ खरैटी का सेवन करै तो उदावर्त और वात गुल्मादि रोग दूर होजाते हैं ॥

गुल्ममें वस्तिविधान ॥

शूलानाहविबन्धार्तंस्वेदयेद्वातगुल्मिनम् ॥
स्वेदैःस्वेदविधायुक्तैर्नाडीप्रस्तरशङ्करैः ॥
वस्तिकर्मपरंविद्याद्गुल्मघ्नंतद्धिमारुतम् ।
स्वेस्थानेप्रथमंजित्वासद्योगुल्ममपोहति।
तस्मादभीक्ष्णशोगुल्मानिरूहैःसानुवास-
नैः । प्रयुज्यमानैःशाम्यन्तिवातपित्तक
फात्मकाः॥गुल्मघ्नाविविधादृष्टाःसिद्धाः
सिद्धिपुवस्तयः ॥

अर्थ—वातगुल्मरोगी यदि शूल, आनाह और विबन्ध से पीडित होतो उसे स्वेदाध्याय में कहीहुई नाडी, प्रस्तर और शंकर, स्वेद द्वारा स्वेदन करै । वस्तिकर्म इस वातजगुल्म में बहुत श्रेष्ठहै, यह वायु को उसके निजस्थानमें जीतकर गुल्म को दूर कर देताहै । इसलिये वारवार निरूहण और अनुवासन वस्तियोंका प्रयोग करने से वातज, पित्तज और कफजगुल्म शान्त होजातेहैं सिद्धिस्थानमें अनेक प्रकार की गुल्मनाशक अनुभूत वस्तियां वर्णनकीगईहैं.

गुल्मपर तैलविधान ॥

गुल्मघ्नानिचतैलानिवक्ष्यन्तेवातरोगिके॥
तानिमारुतगुल्मेपुपानाभ्यङ्गानुवासनैः।
प्रयुक्तान्याशुसिद्धन्तितैलंह्यनिलजित्व-
रम् ॥

अर्थ—वातरोगाध्याय में सब प्रकार के गुल्मनाशकतैल वर्णन किये गये हैं । वातगुल्म में पान, अभ्यंग और अनुवासन द्वारा इन तैलों का प्रयोग करने से वातगुल्म बहुत शीघ्र नष्ट होजाता है । ये तेल विशेष करके वातनाशक होते हैं ॥

गुल्मपर घृतविधान ॥

नीलिनीचूर्णसंयुक्तंपूर्वोक्तंघृतमेववा ।
समलायप्रदेयंस्यात्छोधनंवातगुल्मिने
नीलिनीत्रिवृतादन्तीपथ्याकाम्पिल्यकैः
सहाशोधनार्थंघृतंदेयंसविडक्षारनागरम्

अर्थ....उस वातगुल्मरोगी को जो मलयुक्त होताहै नीलिनीका चूर्ण मिलाहुआ वृत अथवा पूर्वोक्तघृत शोधन के निमित्त देना चाहिये ॥

नीलिनी, निसोथ, दन्ती, हरड, कबीला,

बिडनमक, जवाखार और सोंठ इनकेसाथ सिद्ध कियाहुआ घृत संशोधनके निमित्तदेवै॥

नीलिन्यादि घृत ॥

नीलिनीत्रिवृतांरास्नांवलाकटुकरोहिणीम् पचेद्विडङ्गव्याघ्रीञ्चपलिकानिजलाढके ॥ तेनपादावशेषेणघृतमस्थंविपाचयेत् । दध्नःमस्थेनसंयोज्यसुधाक्षीरपलेन च ॥ ततोघृतपलंदद्याद्यवागूमण्डमिश्रितम् । जीर्णेसम्यग्विरिक्तञ्चभोजयेद्रसभोजनम् ॥ गुल्मकुष्ठोदरव्यङ्गशोफपाण्ड्वामयज्वरान् । श्वित्रंप्लीहानमुन्मादं घृतमेतद्व्यपोहति ॥

अर्थ—नीलिनी, निसोथ, रास्ना, खरैटी, कुटकी, वायविडंग, कटेरी, इन सबको एकएक पललेवे और एक आढक जल में इन्हे पकावै जब चौथाई जलरहजाय तब इसमें एकप्रस्थ दही और चार तोले सेहुंड का दूध मिलाकर एकप्रस्थ घी पकावै ॥ इस घृतमें से एकपल घृत यवागूमण्डमें मिलाकर रोगीको देवै । जब औषध पचजाय और रोगीको अच्छीतरह विरेचन होजाय तब मांसरसका भोजन करावै । यह घृत गुल्म, कोढ, उदररोग, व्यंग, शोफ, पाण्डुरोग, ज्वर, श्वित्रकुष्ट, प्लीहा, और उन्माद रोगोंको शान्त करता है ।

वातगुल्ममें पथ्यादि विधि ॥

कुक्कुटाश्चमयूराश्चतित्तिरिक्रौञ्चवर्त्तकाः । शालयोमदिरासर्पिर्वातगुल्मभिषग्जितम् हितमुष्णंद्रवंस्निग्धभोजनंवातगुल्मिनाम्। समण्डवारुणीपानंपक्वंवाधान्यकैर्जलम् ॥ मन्देऽग्नौवर्द्धतेगुल्मोदीप्तेचाग्नौप्रशाम्यति । तस्मान्नातिसौहित्यंकुर्यान्नातिविलंघनम् ॥ सर्वत्रगुल्मेप्रथमंस्नेहस्वेदोपपादिते । याक्रियाक्रियतेसिद्धिंसायाति नविरूक्षते ॥

अर्थ—मुर्गा, मोर, तीतर, क्रौंच, वटेर, शालीचांवल, शराव, और घृत ये सब वातगुल्ममें हितहै । इसरोगमें उष्ण, पतला और स्निग्ध भोजन हितहैं । मण्डयुक्त मदिरा वा धनियां डालकर औटाया हुआ जलभी हितहै । अग्निके मन्द होनेपर गुल्म वढताहै और प्रदीप्त होनेपर शान्त होताहै, इसलिये न पेटभरकर खानाही चाहिये न लंघनही करना चाहिये । गुल्मरोगों में प्रथम ही स्नेहन-स्वेदन कर्म करके जो क्रियाकी जाती है उससे रोग जाताहै और जो क्रिया रूक्ष व्यक्तिकी कीजाताहै वह निष्फलहोती हैं

पित्तगुल्मकी चिकित्सा ॥

भिषगात्ययिकम्बुद्ध्वापित्तगुल्ममुपाचरेत् । वैरेचानिकसिद्धेनपयसासर्पिषापिवा

अर्थ—पित्त गुल्मको आत्ययिक समझकर चिकित्सा करना चाहिये इस रोगमें विरेचन कर्त्ता द्रव्यों के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत वा दूध वहुत हितकारी है ॥

रोहिण्यादि घृत ।

रोहिणीकटुकानिम्बंमधुकंत्रिफलात्वचः। कार्पिकात्रायमाणाचपटोलात्रिवृतापले॥ द्विपलञ्चमसूराणांसाध्यमष्टगुणेऽम्भसि घृताच्छेषंघृतसमंसर्पिषश्चचतुष्पलम् ॥ पिवेत्संमूर्च्छितंतेनगुल्मःशाम्यतिपैत्तिक ज्वरस्तृष्णाचशूलंचभ्रमसूर्च्छारुचिस्तथा

अर्थ—कुटकी, नीमकी छाल, महुआ, त्रिफलाका छिलका, और त्रायमाणा ये सब एक एक पललेवे, परवल और निशोथ दो दो पल ले दो पल मसूर इन सबको अठगुने जल में औटावे, जब घृत के समान शेष रहजाय तब छानकर इसमें चारपल घृतको पकावे इस घृतको सेवन करने से पैत्तिक गुल्म, ज्वर तृष्णा, शूल, भ्रम, मूर्च्छा और अरुचि ये सब शान्त होजाते हैं।

त्रायमाणाद्यघृत।

जलेदशगुणेसाध्यन्त्रायामाणाचतुष्पलम्। पञ्चभागस्थितंपूतंकल्कैः संयोज्य कार्षिकैः॥ रोहिणीकटुकामुस्तेत्रायमाणादुरालभा। कल्कैस्तामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः॥ रसस्यामलकानाञ्चक्षीरस्यचघृतस्यच। पलानिपृथगष्टाष्टौदत्त्वासम्यग्विपाचयेत्॥ पित्तरक्तभवंगुल्मंवीसर्पंपैत्तिकज्वरम्। हृद्रोगंकामलांकुष्ठंहन्यादेतद्घृतोत्तमम्॥

अर्थ—चारपल त्रायमाणको दसगुने जलमें औटावे, जब पांचवांभाग जलका रहजाय तब उसे उतारकर छानले फिर इसमें कुटकी, मोथा, त्रायमाणा, जवासा, भूयआंवला, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, चन्दन, उत्पल, इनको पीसकर उसमें डालदे और आंवले का रस आठ पल, मिलाकर अच्छी तरहसे पकावे। इस घृतके सेवन करने से पैत्तिक गुल्म, रक्तजगुल्म विसर्प, पैत्तिक ज्वर हृद्रोग कामला, कोढ ये सब रोग दूर होजाते हैं।

आंवलकादि घृत।

रसेनामलकेक्षूणांघृतपादंविपाचयेत्। पथ्यापादम्पिबेत्सर्पिस्तत्सिद्धंपित्तगुल्मनुत्॥

अर्थ—ईख और आंवलेके रससे चौथाई घी और घी से चौथाई हरडका चूर्ण इनको मिलाकर औटावे। इस घृतका सेवन करनेसे पैत्तिकगुल्म जाता रहता है।

द्राक्षादि घृत

द्राक्षांमधुकंखर्जूरंविदारींसशतावरीम्। परूपकाणित्रिफलांसाधयेत्पलसंमिताम्॥ जलाढकेपादशेषेरसमामलकस्यच। घृतमिक्षुरसंक्षीरमभयाकल्कपादिकम्॥ साधयेत्तद्घृतंसिद्धंशर्कराक्षौद्रपादिकम्॥ प्रयोगात्पित्तगुल्मघ्नंसर्वपित्तविकारनुत्॥

अर्थ—दाख, महुआ, खिजूर, विदारीकन्द, सितावर, फालसे और त्रिफला ये सब एक एक पल लेवे और एक आढक जलमें भरकर अग्निपर रखदे जब चौथाई शेष रह जाय तब उतार कर छानले। फिर इस में आंवले का रस, घी, ईखकारस, दूध और घृत से चौथाई हरडका कल्क डालकर सबका पाक करले। जब घी तयार होजाय तब उस में चौथाई चीनी और शहत डालकर सेवन करै तौ पित्तगुल्म तथा पित्तसे उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण विकार नष्ट होजातेहैं।

वासाघृत।

वृषंसमूलमापोथ्यपचेदष्टगुणेजले। शेषेऽष्टभागेतस्यैवपुष्पकल्कंप्रदापयेत्॥ तेन सिद्धंघृतंशीतंसक्षौद्रंपित्तगुल्मनुत्। रक्तपित्तज्वरश्वासकासहृद्रोगनाशनम्॥

अर्थ—अडूसाको जड समेत कूटकर अठगुने जलमें क्वाथ करै जब आठवां भाग जल का रहजाय तब उसमें उसीके फूलों का कल्क डाले और इसमें घी डालकर पकावे । फिर ठंडा होने पर शहत मिलाकर इसका सेवन करे तो पित्तगुल्म, रक्तपित्त, ज्वर, श्वास, खांसी और हृदयरोग सब शान्त होजातेहैं ।

दूसरा त्रायमाण घृत ।

द्विपलन्त्रायमाणायाजलद्विप्रस्थसाधितम् अष्टभागस्थितंपूतंकोष्णंक्षीरसमंपिवेत् ॥ पिवेदुपरितस्योष्णंक्षीरमेवयथावलम् । तेननिर्हृतदोषस्यगुल्मःशाम्यतिपैत्तिकः॥

अर्थ—दो पल त्रायमाण को दो प्रस्थ जलमें औटावे, जब अष्टमभाग शेष रह जाय तब छानकर वरावरका दूध मिला कर कुछ गरम गरम का पान करे । फिर यथाशक्ति ऊपरसे गरम दूध पीवे, ऐसा करने से दोष दूर होकर पित्तज गुल्म शान्त होजाता है ।

पैत्तिक गुल्ममें अन्य उपचार ।

द्राक्षाभयारसंगुल्मेपैत्तिकेसगुडंपिवेत् । लिह्यात्कम्पिल्यकंवापिविरेकार्थंमधुद्रवम्॥शूलमशमनोऽभ्यङ्गःसर्पिषापित्तगुल्मिनाम्। चन्दनाद्येनतैलेनतैलेनमधुकस्यवा । ये चपित्तज्वरार्तानांसतिक्ताःक्षीरवस्तयः हितास्तेपित्तगुल्मिभ्योवक्ष्यन्तेयेचसिद्धिषु ॥ शालयोजाङ्गलंमांसक्षीरमाजंपयसीघृतम् । खर्जूरामलकंद्राक्षादाडिमंपरूपकम् ॥ आहारार्थमयोक्तव्यंपानार्थेसलिलंश्रृतम् ॥ बलाविदारीगन्धाद्यैः पित्तगुल्मचिकित्सितम् ॥ आमान्वये पित्तगुल्मेसामेवाकफवातिके । यवागूभिःखडैर्यूषैःसन्धुक्ष्योऽग्निर्विलङ्घिते । शममकोपौदोषाणांसर्वेषामग्निसंश्रितौ । तस्मादग्निसदारक्ष्येन्निदानानिचवर्जयेत्॥

अर्थ—पैत्तिकगुल्ममें विरेचनके लिये किसमिस, हरड और गुडका क्वाथ पीवे, अथवा कर्वालेमें शहत डालकर चाटे । पित्तगुल्म रोगियोंके शूलनाश करनेको घृतका अभ्यंग, तथा चन्दनाद्य तैल वा मुलहटीके तैलका अभ्यंग करे । पित्तज्वरार्त रोगियोंके लिये जो तिक्त द्रव्योंकी क्षीर वस्ति, तथा वे वस्तियांजो सिद्धस्थान में वर्णन की जांयगी ये सब पित्तगुल्ममें हितकारी होती हैं । शालीचांवल, जांगल पशुओंका मांस, गौबकरी का दूध, घी, खिजूर, आंवला, दाख, अनार, फालसा, इनका पथ्य देवे और पीनेके लिये औटायाहुआ जलदेवै । खरैटी और विदारीगन्धादि गणोक्त औषधियों द्वारा पित्त गुल्मकी चिकित्सा कीजाती है । आमान्वित पित्तगुल्म में और आमान्वित कफवात गुल्ममें लंघन कराके यवागू और यवयूषों का सेवन करा के अग्निको प्रदीप्त करै । सम्पूर्ण दोषों की शान्ति या प्रकोप अग्नि के आश्रित है इसलिये अग्निकी समानताके लिये सदा प्रयत्न करना चाहिये और जिन कारणों से रोग उत्पन्न हुआहै उनको सदा त्यागदेना चाहिये।

कफगुल्मकी चिकित्सामाह ॥

वमनाद्यवमनंमदूणाल्कफगुल्मिनां॥स्नं

ग्धस्विन्नशरीरायगुल्मेशैथिल्यमागते। परिवेष्ट्यप्रदीप्तास्तुवल्वजानथवाकुशान्। भिषक्कुम्भेसमावाप्यगुल्मंघटमुखंक्षिपेत्॥ सङ्गृहीतोयदागुल्मस्तदाघटमथोद्धरेत्। वस्त्रान्तरंततःकृत्वाभिन्द्याद्गुल्मममाणवित्॥ विमार्गाजपदादर्शैर्यथालाभमपीडयेत्। मृद्गीयाद्गुल्ममेवैकंनत्वन्त्रहृदयं स्पृशेत्॥

अर्थ—वमनोपयोगी कफगुल्मरोगी को वमन देवैं ॥ स्नेहन और स्वेदन देने से जब गुल्म शिथिल पडजाय तब गुल्म स्थानपर यस्त्र लपेट देवै, फिर एक घडे में वल्वजतृण या कुशाकी आग जलाकर गुल्म स्थान में उस घडेका मुख लगादेवै, जब गुल्म इकट्ठा होजाय तब घडे को उठाले और वस्त्र को हटाकर गुल्मका फैलाव या विस्तार देखकर उसका भेदन करे, तथा विमार्ग, अजपद और आदर्श इनमें से किसी एक शस्त्र से केवल गुल्मही का प्रपीडन करे, परन्तु आंतों या हृदय पर किसी प्रकार का आघात न होने पावै ।

कफगुल्म में स्वेदन विधि ।

तिलैरण्डातसीवीजसर्षपैःपरिलिप्यच । श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैःसुखोष्णैःस्वेदयेद्भिषक् ॥

अर्थ—तिल, अरण्ड, अलसी और सरसों का लेप करके ऊपर से सुहाताहुआ गरम लोहे का पात्र फेर कर स्वेदन करे ॥

दशमूली घृत ।

सव्योषक्षारलवणंदशमूलीभृतंघृतम् । कफगुल्मञ्जयत्याशुसहिंगुविडदाडिमम्॥

अर्थ—त्रिकुटा, जवाखार, सेंधानमक, और दशमूल इनके क्वाथमें घृतको पकावे इस घृतको हींग, विडनमक और अनारके रस के साथ सेवन करे तो कफगुल्म शीघ्रही जाता रहताहै ।

भल्लातकादि घृत ।

भल्लातकानांद्विपलंपञ्चमूलंपलोन्मितम्। साध्यंविदारीगन्धाद्यमापोथ्यसलिलाढकैः ॥ पादशेषेरसेतस्मिन्पिप्पलीनागरं वचाम् । विडङ्गंसैन्धवंहिंगुयावशूकंविडं शटीम् ॥ चित्रकंमधुकंरास्नाम्पिष्ट्वाकर्षसमंभिषक् । प्रस्थञ्चपयसःकृत्वाघृतप्रस्थंविपाचयेत्॥ एतत्भल्लातकघृतंकफगुल्महरंपरम् । प्लीहपाण्ड्वामयश्वासग्रहणीरोगकासनुत् ॥

अर्थ—शुद्ध कियेहुए भिलाये दो पल, पञ्चमूलका प्रत्येक द्रव्य एक एक पल, और विदारीगन्धादिद्रव्य इनको कूटकर एक आढक जलमें औटावै, जब चौथाई शेषरहजाय तब उसमें पीपल, सोंठ, यच, वायविडंग, सेंधानमक, हींग, जवाखार, बिड्नमक, शटी, चीता, मुलहटी, रास्ना, प्रत्येक एक एक कर्ष, एक प्रस्थ दूध, एक प्रस्थ घी इन सबको मिलाकर पकावे । यह भल्लातकघृत कफगुल्मके दूर करने में अत्यन्त उत्तमहै तथा प्लीहा, पाण्डु रोग श्वास और ग्रहणी रोगोंको भी दूर करताहै

पञ्चकोल घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः।

पालिकैःसयवक्षारैःघृतप्रस्थंविपाचयेत्॥
क्षीरप्रस्थश्चतत्सर्पिर्हन्तिगुल्मंकफात्मकम्।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंप्लीहकासज्वरापहम् ॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार एक एक पल लेवै और इसमें एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ घी डालकर पकावे, यह घृत कफगुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, खांसी और ज्वर इनको दूर करता है।

मिश्रकस्नेह।

त्रिवृतांत्रिफलांदन्तींदशमूलंपलोन्मितम्
जलेचतुर्गुणेपक्त्वाचतुर्भागस्थितंरसम्॥
सर्पिरेरण्डजंतैलंक्षीरञ्चैकत्रसाधयेत् ।
ससिद्धोमिश्रकस्नेहःसक्षौद्रःकफगुल्मनुत्
कफवातविबन्धेषुकुष्ठप्लीहोदरेषुच। प्रयो
ज्योमिश्रकःस्नेहोयोनिशूलेषुचाधिकम्॥

अर्थ--निसोथ, त्रिफला, दन्ती और दशमूल इनको एक एक पल लेकर चौगुने जलमें पकावै जब चौथाई रहजाय तब इसको छानकर इसमें घी, अंडीका तेल और दूध मिलाकर पकावे। इस तरह यह मिश्रक स्नेह तयार होताहै, इसको शहत मिलाकर सेवन करनेसे कफगुल्म, कफ, वात, बिबन्ध, कुष्ठ, प्लीहा और उदररोग जाते रहते हैं॥

कफगुल्ममें वैरेचनिक औषध।

यदुक्तंवातगुल्मघ्नंस्रंसननीलिनीघृतम् ।
द्विगुणंतद्विरेकार्थम्प्रयोज्यंकफगुल्मिनाम्
सुधाक्षीरद्रवेचूर्णंत्रिवृतायाःसुभावितम्।
कार्षिकंमधुसर्पिर्भ्यांलीढ्वासाधुविरिच्यते ॥

अर्थ—वातगुल्ममें जो रेचनिक नीलिनी घृत वर्णन किया गयाहै उसकी दूनीमात्रा कफगुल्ममें विरेचनके लिये देवै। अथवा त्रिवृताके चूर्णमें सेंहुडके दूधकी भावना देकर घी और शहत मिलाकर एक कर्ष चाटे सो उससे अच्छीतरह विरेचन होजाताहै॥

हरीतक्यादि प्रयोग।

जलद्रोणेविपक्तव्याविंशतिःपञ्चचाभयाः
दन्त्याःपलानितावन्तिचित्रकस्यतथैवच॥
अष्टभागस्थितंतश्चरसंपूतमधिक्षिपेत्॥
दन्तीसमंगुडंपूतंक्षिपेत्तत्राभयाश्चताः ॥
तैलार्धकुडवञ्चैवत्रिवृतायाश्चतुष्पलम् ।
चूर्णितंपलमेकञ्चापिप्पलीविश्वभेषजम्।
तत्साध्यंलेहवच्छीतेतस्मिंस्तैलसमंमधु ।
क्षिपेच्चूर्णपलञ्चैकन्त्वगेलापत्रकेशरान्॥
ततोलेहपलंलीढ्वाजग्ध्वाचैकांहरीतकीम्। सुखंविरिच्यतेस्निग्धोदोषप्रस्थमनामयः॥गुल्मंश्वयथुमर्शांसिपाण्डुरोगमरोचकम्॥ हृद्रोगंग्रहणीदोषंकामलांविषमज्वरम् ।कुष्ठंप्लीहानमानाहमेतान्घ्नन्त्युपसेविताः। निरत्ययःक्रमश्चास्याद्रवोमांसरसोदनः॥

अर्थ...,पच्चीसहरड़, दन्ती पच्चीसपल, चीता पच्चीस पल इनको एक द्रोण जलमें पकावै, आठवां भाग शेष रहनेपर उसे छान लेवै, तदनन्तर गुड पच्चीसपल और बेसब हरड कूटकर उसमें डालदे और आधा कुडव तेल उसमें गेर देवै तथा निसोथ चार पल, पीपल और सोंठ एक एक पल डालकर धीरे धीरे पकावे जब पककर लेहईसी

ग्धस्विन्नशरीरायगुल्मेशैथिल्यमागते। परिवेष्ट्यप्रदीप्तास्तुवल्वजानथवाकुशान्। भिषक्कुम्भेसमावाप्यगुल्मंघटमुखंक्षिपेत् ॥ सङ्गृहीतोयदागुल्मस्तदाघटमथोद्धरेत्। वस्त्रान्तरंततःकृत्वाभिन्द्याद्गुल्मप्रमाणवित् ॥ विमार्गाजपदादर्शैर्यथालाभंप्रपीडयेत्। मृद्नीयाद्गुल्ममेवैकंनत्वन्त्रहृदयं स्पृशेत् ॥

अर्थ—वमनोपयोगी कफगुल्मरोगी को वमन देवैं ॥ स्नेहन और स्वेदन देने से जब गुल्म शिथिल पडजाय तब गुल्म स्थानपर वस्त्र लपेट देवै, फिर एक घडे में बल्वजतृण वा कुशाकी आग जलाकर गुल्म स्थान में उस घडेका मुख लगादेवै, जब गुल्म इकट्ठा होजाय तब घडे को उठाले और वस्त्र को हटाकर गुल्मका फैलाव वा विस्तार देखकर उसका भेदन करै, तथा विमार्ग, अजपद और आदर्श इनमें से किसी एक शस्त्र से केवल गुल्मही का प्रपीडन करै, परन्तु आंतों वा हृदय पर किसी प्रकार का आघात न होने पावै ।

कफगुल्म में स्वेदन विधि ।

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपैःपरिलिप्यच । श्लेष्मगुल्ममयःपात्रैःसुखोष्णैःस्वेदयेद्भिषक् ॥

अर्थ—तिल, अरण्ड, अलसी और सरसों का लेप करके ऊपर से सुहाताहुआ गरम लोहे का पात्र फेर कर स्वेदन करै ॥

दशमूली घृत ।

सव्योषक्षारलवणंदशमूलीमृतंघृतम् । कफगुल्मञ्जयत्याशुसहिंगुविडदाडिमम् ॥

अर्थ—त्रिकुटा, जवाखार, सेंधानमक, और दशमूल इनके काथमें घृतको पकावै इस घृतको हींग, विडनमक और अनारके रस के साथ सेवन करै तौ कफगुल्म शीघ्रही जाता रहताहै ।

भल्लातकादि घृत ।

भल्लातकानांद्विपलंपञ्चमूलंपलोन्मितम्। साध्यंविदारीगन्धाद्यमापोथ्यसलिलाढकैः ॥ पादशेषेरसेतस्मिन्पिप्पलीनागरंवचाम् । विडङ्गंसैन्धवंहिंगुयावशूकांविडंशटीम् ॥ चित्रकंमधुकंरास्नाम्पिष्ट्वाकर्षसमंभिषक् । प्रस्थञ्चपयसःकृत्वाघृतप्रस्थंविपाचयेत् ॥ एतत्भल्लातकघृतंकफगुल्महरंपरम् । प्लीहपाण्डवामयश्वासग्रहणीरोगकासनुत् ॥

अर्थ—शुद्ध कियेहुए भिलाये दो पल, पञ्चमूलका प्रत्येक द्रव्य एक एक पल, और विदारीगन्धादिद्रव्य इनको कूटकर एक आढक जलमें औटावै, जब चौथाई शेषरहजाय तब उसमें पीपल, सोंठ, बच, वायविडंग, सेंधानमक, हींग, जवाखार, बिड्नमक, शटी, चीता, मुलहटी, रास्ना, प्रत्येक एक एक कर्ष, एक प्रस्थ दूध, एक प्रस्थ घी इन सबको मिलाकर पकावै । यह भल्लातकघृत कफगुल्मके दूर करने में अत्यन्त उत्तमहै तथा प्लीहा, पाण्डु रोग श्वास और ग्रहणी रोगोंको भी दूर करताहै

पञ्चकोल घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः।

पालिकैःसयवक्षारैःघृतप्रस्थंविपाचयेत्॥ क्षीरप्रस्थश्चतत्सर्पिर्हन्तिगुल्मंकफात्मकम्। ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंप्लीहकासज्वरापहम्॥

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार एक एक पल लेवै और इसमें एक प्रस्थ दूध और एक प्रस्थ घी डालकर पकावै, यह घृत कफगुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग,प्लीहा, खांसी और ज्वर इनको दूर करता है।

मिश्रकस्नेह।

त्रिवृतांत्रिफलांदन्तींदशमूलंपलोन्मितम् जलेचतुर्गुणेपक्त्वाचतुर्भागस्थितंरसम्॥ सर्पिरेरण्डजंतैलंक्षीरश्चैकत्रसाधयेत्। ससिद्धोमिश्रकस्नेहःसक्षौद्रःकफगुल्मनुत् कफवातविबन्धेषुकुष्ठप्लीहोदरेषुच। मयो ज्योमिश्रकःस्नेहोयोनिशूलेषुचाधिकम्॥

अर्थ—निसोथ, त्रिफला, दन्ती और दशमूल इनको एक एक पल लेकर चौगुने जलमें पकावै जब चौथाई रहजाय तब इसको छानकर इसमें घी, अंडीका तेल और दूध मिलाकर पकावै। इस तरह यह मिश्रक स्नेह तयार होताहै, इसको शहत मिलाकर सेवन करनेसे कफगुल्म, कफ, वात, विबन्ध, कुष्ठ, प्लीहा और उदररोग जाते रहते हैं॥

कफगुल्ममें वैरेचनिक औषध।

यदुक्तंवातगुल्मघ्नंस्रंसनंनीलिनीघृतम्। द्विगुणंतद्विरेकार्थम्प्रयोज्यंकफगुल्मिनाम् सुधाक्षीरद्रवेचूर्णंत्रिवृतायाःसुभावितम्। कार्षिकंमधुसर्पिर्भ्यांलीढ्वासाधुविरिच्यते॥

अर्थ—वातगुल्ममें जो रेचनिक नीलिनी घृत वर्णन किया गयाहै उसकी दूनीमात्रा कफगुल्ममें विरेचनके लिये देवै। अथवा त्रिवृताके चूर्णमें सेंहुडके दूधकी भावना देकर घी और शहत मिलाकर एक कर्ष चाटै तो उससे अच्छीतरह विरेचन होजाताहै॥

हरीतक्यादि प्रयोग।

जलद्रोणेविपक्तव्याविंशतिःपञ्चचाभयाः दन्त्याःपलानितावन्तिचित्रकस्यतथैवच॥ अष्टभागस्थितंतञ्चरसंपूतमधिक्षिपेत्॥ दन्तीसमंगुडंपूतंक्षिपेत्तत्राभयाश्चताः॥ तैलार्धकुडवञ्चैवत्रिवृतायाश्चतुष्पलम्। चूर्णितंपलमेकञ्चापिप्पलीविश्वभेषजम्। तत्साध्यंलेहवच्छीतेतस्मिंस्तैलसमंमधु। क्षिपेच्चूर्णपलञ्चैकन्त्वगेलापत्रकेशरान्॥ ततोलेहपलंलीढ्वाजग्ध्वाचैकांहरीतकीम्। सुखंविरिच्यतेस्निग्धोदोषप्रस्थमनामयः।गुल्मंश्वयथुमर्शांसिपाण्डुरोगमरोचकम्॥ हृद्रोगंग्रहणीदोषंकामलांविषमज्वरम्।कुष्ठंप्लीहानमानाहमेतान्घ्नन्त्युपसेविताः। निरत्ययःक्रमश्चास्याद्रवोमांसरसोदनः॥

अर्थ....पच्चीसहरड़, दन्ती पच्चीसपल, चीता पच्चीस पल इनको एक द्रोण जलमें पकावै, आठवां भाग शेष रहनेपर उसे छान लेवै, तदनन्तर गुड पच्चीसपल और बेसब हरड कूटकर उसमें डालदे और आधा कुडव तेल उसमें गेर देवै तथा निसोथ चार पल, पीपल और सोंठ एक एक पल डालकर धीरे धीरे पकावै जब पककर ल्हेईसी

होजाय तव ठंढी होनेपर आधाकुडव शहत, दालचीनी एक पल, इलायची एक पल, तेजपात एक पल और केसर एक पल इनको मिला देवै ॥ प्रतिदिन एक पल इस चटनी को चाटकर ऊपरसे एक हरड़ खाले तौ सुखपूर्वक एक प्रस्थ मल निकल जावेगा तथा गुल्म, शोथ, अर्श, पाण्डुरोग, अरुचि, हृद्रोग, ग्रहणी दोष, कामला, विषम ज्वर, कुष्ट प्लीहा, आनाह ये सब रोग इसके सेवन से दूर होजातेहैं । इसके सेवनमें मांसरस और भातका भोजन करे ।

कफगुल्म में वस्तिप्रयोग ।

सिद्धाःसिद्धिषुवक्ष्यन्तेनिरूहाःकफगुल्मिनाम् ।

अर्थ—कफगुल्म रोगियोंके लिये सिद्ध स्थानमें अनुभव की हुई निरूहण वस्तियां लिखी गईहैं ।

कफगुल्ममें चूर्णादि प्रयोग ।

अरिष्टयोगाःसिद्धाश्चग्रहण्यर्शचिकित्सिते।पच्चूर्णगुटिकायाश्चविहितावातगुल्मिनाम् । द्विगुणक्षारहिंग्वम्लवेतसास्ताः कफेमताः॥ यएवग्रहणीदोषेक्षारास्तेकफ गुल्मिनाम् । सिद्धानिरत्ययाःशस्तादाह स्त्वन्तेप्रशस्यते ॥

अर्थ—ग्रहणी चिकित्सित अध्यायमें जो अनुभव कियेहुए अरिष्ट तथा वात गुल्मनाशक जो चूर्ण और गोलियां वर्णनकी गई हैं वे सब कफगुल्ममें हितहैं परन्तु उन चूर्णादिमें जितना क्षार, हींग और अमलवेत डाला जाताहै उससे दूना कफगुल्ममें डालना उचितहै । जो क्षार ग्रहणी दोषमें वर्णन किये गये हैं वे कफगुल्ममें भी हितहैं । अन्तमें कफगुल्म को दग्ध करना भी हितहै ।

पथ्यादि वर्णन ।

प्रपुराणानिधान्यानिजाङ्गलामृगपक्षिणः कौलत्थोमुद्गयूषश्चपिप्पल्यानागरस्यच॥ शुष्कमूलकयूषश्चाविल्वस्यवरुणस्यच । चिरिविल्वांकुराणाञ्चयवान्याः चित्रकस्यच ॥ बीजपूरकहिंग्वम्लवेतसक्षारदाडिमैः । तक्रेणतैलसर्पिर्भ्यांव्यञ्जनान्युपकल्पयेत् ॥

अर्थ—बहुत पुराना धान्य, जांगल पशुपक्षियों का मांस, कुलथीका यूष, मूंगका यूष, पीपल, सोंठ और सूखीमूलीका यूष, वेल, वरना, कंजा, अजवायन, चीता, इनको डाल कर तयार किया हुआ यूष, अथवा बिजौरा, हींग, अमलवेत, जवाखार, अनार मठा, तेल, घी इनके साथ अनेक प्रकार के पदार्थ बनाकर सेवन करे ॥

कफगुल्मपर अन्य उपचार ।

पञ्चमूलीश्रितंतोयंपुराणंवारुणीरसम् । कफगुल्मीपिवेत्कालेजीर्णमाध्वीकमेववा यवानीचूर्णितंतक्रंविडेनलवणीकृतम् । पिवेत्सन्दीपनंवातकफमूत्रानुलोमनम् ॥

अर्थ—पञ्चमूलका काथ, पुराना वारुणी मद वा माध्वीकमदका कफगुल्ममें पान करना चाहिये । अजवायन और नमकको पीस कर मठेमें मिलाकर पीनेसे अग्निसंदीपन होताहै, वात, कफ और मूत्रका अनुलोमन होताहै ॥

असाध्य गुल्मके लक्षण ।

सञ्चितःक्रमशोगुल्मोमहावास्तुपरिग्रहः॥

कृतमूलःशिरानद्धोयदाकूर्मइवोन्नतः ।
दौर्बल्यारुचिहृल्लासकासवम्यरतिज्वरैः।
तृष्णातन्द्राप्रतिश्यायैर्युज्यतेनससिद्ध्यति
गृहीत्वासज्वरश्वासवम्यतीसारपीडितम्।
हृन्नाभिहस्तपादेषुशोफःकर्षतिगुल्मिनम्॥

अर्थ—जो गुल्म धीरे धीरे बढकर बहुत बीचमें फैल जाताहै जो जड पकडकर नसों में स्थित होकर कछुएकी पीठ की तरह ऊंचा होजाताहै तथा जिसमें दुर्बलता, अरुचि, हृल्लास, खांसी, उबकाई अरति, ज्वर, तृष्णा, तन्द्रा और प्रतिश्याय ये साथ होतेहैं वह अच्छा नहीं होताहै ॥

जिस गुल्म रोगमें ज्वर, श्वास, वमन और अतीसारके होनेसे हृदय, नाभि, हाथ और पांवमें शोफ होताहै वह रोगी मरजाताहै ।

रक्तगुल्मकी चिकित्साका क्रम ।

रौधिरस्यतुगुल्मस्यगर्भकालव्यतिक्रमे ।
स्निग्धस्विन्नशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम्
पलाशक्षारपात्रेद्वेद्वेपात्रेतैलसर्पिषो ।गुल्म
शैथिल्यजननींपक्त्वामात्रांप्रयोजयेत् ।
अभिद्येतनयद्येवंदद्याद्योनिविरेचनम् ॥
क्षारेणयुक्तंपललंसुधाक्षीरेणवापुनः। ता-
भ्यांवाभावितान्दद्याद्योनौकटुकमत्स्य-
कान् । वराहमत्स्यपित्ताभ्यांनक्तकान्वा
सुभावितान् ॥ अधोहरैर्थोर्ध्वहरैर्भावि-
तान्वासमाक्षिकान् । किण्वंवासगुडक्षारं
दद्याद्योनिविशोधनम् ॥

अर्थ—रक्तगुल्ममें जब गर्भका समय अर्थात् दसवां महीना व्यतीत होजाय तब स्नेहन स्वेदनकर्म करने के पश्चात् स्नेह विरेचन देवै । ढाकके खारके दोपात्र, और एक एक पात्र घी और तेल इन सबको मिलाकर पाककरै फिर ऐसी मात्रा रोगीको देवै कि जिससे गुल्म शिथिलपडजाय । यदि ऐसा करनेपरभी गुल्म भेदको प्राप्त न हो तो योनिविरेचनकर्त्ता द्रव्य योनिके मार्गसे देवै । क्षार और तिलकल्क, अथवा सेहुंडके दूधकी भावना दियाहुआ तिलक-ल्क, योनिके मार्गमें रक्खै । अथवा क्षार और सेहुंडके दूधकी भावना दीहुई कटुरस-युक्त मछली योनिमें प्रवेश करै अथवा सूअरके और मछली के पित्तकी भावना नक्तमांसको देकर अथवा विरेचनकारक और वमनकारक द्रव्योंकी भावना दियाहुआ नक्तमांस शहत मिलाकर अथवा किण्व, गुड और क्षार मिलाकर योनिके भीतर रक्खै, इन के रखनेसे स्राव होता है ॥

रक्तगुल्मकेअन्यउपचार ॥

रक्तपित्तहरंक्षारंलेहयेन्मधुसर्पिषा । लशु
नंमदिरांतीक्ष्णंमत्स्यांश्चास्यैप्रदापयेत्॥

अर्थ—रक्तपित्त के नाश करने वाले क्षारको शहत और घीके साथ चाटे । अथवा ल्हसन, तीक्ष्णमदिरा और मछली खाने को देवै ॥

अदृश्यमान रुधिरमें वस्ति ॥

वस्तिंसक्षारगोमूत्रंसक्षारन्दाशमूलिकम्।
अदृश्यमानेरुधिरेदद्याद्गुल्मप्रभेदनम् ॥

अर्थ—जो रुधिर न निकलता होतो उसके भेदनके लिये क्षार और गोमूत्र की अथवा क्षार और दशमूलके क्वाथकी वस्ति देवै।

प्रवर्त्तमान रुधिरमें उपचार।

प्रवर्त्तमानेरुधिरेदद्यान्मांसरसौदनम् । घृततैलेनचाभ्यङ्गंपानार्थतरुणींसुराम् ॥ रुधिरेऽतिप्रवृत्तेतुरक्तपित्तहराःक्रियाः । कार्यावातरुगार्तायाःसर्वावातहराःपुनः। घृततैलास्रसेकांश्चतित्तिरिंश्चरणायुधान्। सुरासमण्डापूर्वञ्चपानमम्लस्यसर्पिषः॥ प्रयोजयेदुत्तरंवाजीवनीयेससर्पिषा ।

अर्थ—जो रुधिर जारी होतो मांसरस और भात खानेको देवे, घी तेलकी मालिश करावे और नवीन मद्यपानेको देवे । रक्तके अत्यन्त प्रवृत होनेपर रक्तपित्तनाशक चिकित्साकरै और जो वातिक वेदना उत्पन्न हो तो वायुनाशिनी क्रिया करे । इन रोगों में घृत, तेल, रक्तावसेचन, तीतर और मुर्गेकामांस, मण्डयुक्तसुरा,अम्लयुक्त घृतपान हितकारी होतेहैं । इसमें जीवनीय गणोक्त द्रव्योंके साथ सिद्धाकियेहुये घृत की उत्तर वस्ति भी दीजाती है ।

स्नेहः स्वेदः सर्पिर्वस्तिश्चूर्णानि बृंहणं गुडिकाः। वमनविरेचकौमोक्षःकफजस्य-चवातगुल्मवताम् ॥

अर्थ—कफज और वातज गुल्म रोगोंमें स्नेहन, स्वेदन, घृत, वस्ति, चूर्ण, बृंहण, गोली, वमन, विरेचन, रक्तमोक्षण आदि प्रयोग करे ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

भवन्तिचात्र ॥

सर्पिःसरिक्तसिद्धंक्षीरंमस्रंसनन्निरूहाश्च रक्तस्यचावसेचनमाश्वासनसंशमनयोगाः उपनाहनंसशस्त्रंपक्वस्याभ्यन्तरप्रभिन्नस्य संशोधनसंशमनेपित्तप्रभवस्यगुल्मस्य । स्नेहःस्वेदोभेदोलंघनमुल्लेखनविरेकाश्च सर्पिर्वस्तिगुडिकाःचूर्णमरिष्टाश्चसक्षाराः गुल्मस्यान्तेदाहःकफजस्याग्रेपनीतरक्तस्य ॥ गुल्मस्यरौधिरस्यक्रियाक्रमः स्त्री भवस्योक्तः । पथ्यान्नपानसेवाहेतूनांवर्जनयथास्वञ्च ॥ नित्यश्चाग्निसमाधिः स्निग्धस्यचसर्वकर्माणि ।हेतुर्लिङ्गंसिद्धिः क्रियाक्रमःसाध्यतानुयोगाश्च ॥ गुल्मचिकित्सितसंग्रहएतावानग्निवेशस्य ॥

अर्थ—अग्निवेशके संग्रहीत इस गुल्मचिकित्सिताध्यायमें गुल्मनाशकघृत, तिक्त औषधियोंसे सिद्ध कियेहुए दूध, विरेचन, निरूहण रक्तावसेचन, आश्वासन, संशमनयोग, तथा पित्तगुल्मके उपनाहन, पक्वगुल्मका शस्त्रसे भेदन, अन्तःभिन्न की चिकित्सा संशोधन और संशमन कफगुल्मके स्नेहन, स्वेदन, लंघन, वमन, विरेचन, घृत, वस्ति, गोली चूर्ण, अरिष्ट, क्षार तथा रक्त निकालकर दाह ये वर्णन किये गयेहैं । तदनन्तर स्त्रियोंके होनेवाले रक्तगुल्मकी चिकित्साका क्रम, पथ्य, अन्नपानविधि, निदानवर्जन(जिनकारणोंसे रोग होताहै उनका त्याग) जठराग्निकी रक्षा, स्नेहनकर्म, सब प्रकारकी चिकित्सा, हेतु, लक्षण, सिद्धि, चिकित्सा, क्रम साध्यता और अनुयोग ये सब बातें भी वर्णन की गई हैं ॥

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकि-

त्सितस्थाने गुल्मचिकित्सितंनाम पञ्चमोऽध्यायः ॥

—०(०)०—

षष्ठोऽध्यायः ।

अथातःप्रमेहचिकित्सितंव्याख्यास्यामः॥ इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवानात्रेय बोले कि अब हम प्रमेहरोगकी चिकित्साका वर्णन करेंगे ॥

निर्मोहमानानुशयोनिराशःपुनर्वसुर्ज्ञानतपोविशालः । कालेऽग्निवेशायसहेतुलिङ्गान्नुवाचमेहान्शमनञ्चतेषाम् ॥

अर्थ—मोह, मान, रागद्वेष और आशा से रहित, ज्ञाननिष्ठ और महातपस्वी पुनर्वसुने उचितकालमें प्रमेहका निदान, लक्षण और उसकी शान्तिके उपाय अग्निवेशसे कहे ॥

प्रमेहका निदान ॥

आस्यासुखंस्वप्नसुखन्दधीनिग्राम्योदकानूपरसाःपयांसि । नवान्नपानंगुडवैकृतञ्चप्रमेहहेतुःकफकृच्चसर्वम् ॥

अर्थ....आस्यासुख (जो बहुत बैठा रहता है), स्वप्नसुख (जिसको बहुत सोनेमें सुख होताहै), जो दही, तथा ग्राम्य, आनूप और औदक पशुपक्षियोंका मांस बहुत खाताहै, जो दूध बहुत पीता है जो नये अन्न पानका सेवन करताहै, जो गुडके बनेहुए पदार्थोंको खाताहै तथा जो और सब प्रकार के कफकारी पदार्थोंको सेवन करता रहताहै उसके प्रमेहरोग होताहै ।

कफादिमेहकीसम्प्राप्ति ॥ मेदश्चमांसञ्चशरीरजञ्चक्लेदंकफोवस्तिगतंप्रदूष्य।करोतिमेहान्समुदीर्णमुष्णैस्तान्येवपित्तंपरिदूष्यभूयः ॥ क्षीणेषुदोषेष्ववकृष्यवस्तौधातून्प्रमेहाननिलःकरोति॥ दोषोहिवस्तौसमुपेत्यमूत्रंसन्दूष्यमेहान् जनयेद्यथास्वम् ॥

अर्थ—वस्ति अर्थात् मूत्रस्थानमें प्राप्त हुए मेद, मांस और शरीरके क्लेदको कफ दूषित करके प्रमेहोंको उत्पन्न करताहै । तात्पर्य्य यहहै कि जब कफ उक्त तीनों को दूषित करताहुआ वस्तिस्थानमें पहुंचताहै तब **कफज प्रमेह** होतेहैं, इसी तरह उष्णपदार्थों के सेवनसे कुपित हुआ पित्त मेद मांसादि को दूषित करके जब वस्ति स्थानमें ले जाताहै तब **पित्तज प्रमेह** होतेहैं । और लंघनादि द्वारा कफ पित्त मलमूत्रादि दोषोंके क्षीण होनेपर वायु प्रकुपित होकर धातुओंको वस्तिस्थानमें खींच लेजाताहै इससे **वातजप्रमेह** उत्पन्न होतेहैं॥ दोषही वस्तिमें पहुंचकर मूत्र को दूषित करके प्रमेहोंको उत्पन्न करताहै ।

प्रमेहों की संख्या ।

साध्याःकफोत्थादशपित्तजाःषड्याप्यानसाध्याःपवनाश्चतुष्काः। समक्रियत्वाद्विषमक्रियत्वान्महात्ययत्वाच्चयथाक्रमन्ते ।

अर्थ—समक्रियत्व होनेसे दसप्रकार के कफज प्रमेह साध्य होते हैं विषम क्रियत्व होने से छः प्रकार के पित्तज प्रमेह याप्य हैं इसी तरह महात्ययत्व होने से

चार प्रकारके वातज प्रमेह असाध्य होतेहैं । समक्रियत्वका यह प्रयोजनहै कि कफ दोष और मेदा प्रभृति दूष्य ये समानहैं इस लिये कफनाशक औषधियोंके सेवन करने हीसे प्रमेह शान्त होजातेहैं । विषमक्रियत्वमें यह बातहै कि पित्तदोष मेददूष्य ये विषमहै क्योंकि पित्तनाशक मधुर शीतादि द्रव्य मेदवर्द्धकहै और मेदाके नाशककरने वाले उष्णकटुकादि द्रव्य पित्तवर्द्धकहैं तो यहां क्रियाकी विषमताहै इससे पित्तज प्रमेह याप्य है । वातज प्रमेह इसलिये असाध्यहै कि वह सम्पूर्ण धातुओंको दूषित करके खींच लेताहै और विषम क्रियावाला भीहै ।

दोषदूष्यों की संख्या ।

कफः सपित्तः पवनश्चदोषामेदोऽस्रशुक्राम्बुवसालसीकाः । मज्जारसौजःपिशितञ्चदूष्यप्रमेहिणांविंशतिरेवमेहाः ॥

अर्थ—कफ पित्त वात ये तीन दोषहैं, तथा मेदा, रुधिर, शुक्र, जल, चर्बी, लसीका, मज्जा रस ओज और मांस ये दूष्यहैं, इन सब के संयोग से बीसप्रकार के प्रमेह उत्पन्न होतेहैं ।

बीस प्रकारके प्रमेहकी पहिचान ।

जलोपमंचेक्षुरसोपमंवाघनंघनंचोपरिविप्रसन्नम् । शुक्लंसशुक्रंशिशिरंशनैर्वालालेवावालुकयायुतंवा॥विद्यात्प्रमेहान्कफजान्दशैतान्क्षारोपमंकालमथापिनीलम् । हारिद्रमाञ्जिष्ठमथापिरक्तमेतान्प्रमेहान्षट्पित्तजास्तु ॥ मज्जौजसावावसयान्वितंवालसीकयावासततंविबद्धम् । चतुर्विधंमूत्रयतीववाताच्छेषेषुधातुष्वपकर्षितेषु॥

अर्थ—कफज प्रमेह दस प्रकारका होताहै यथा-जलके समान वर्णवाला उदकमेहहै । ईखके रसके समानवर्णवाला इक्षुमेह है, गाढे मूत्रको सान्द्रमेह कहते है। जो नीचे गाढा और ऊपर मदके समान हो उसे सुरामेह कहते हैं। जो मूत्रवीर्य मिला होताहै उसे शुक्रमेह कहते हैं । जिसमें मूत्रके बिन्दु धीरे धीरे टपकते हैं उसे शनैःमेह कहते हैं । जिसमें मुखकी लारके समान तार निकलताहै उसे लालामेह कहतेहैं ॥ जिसमें बालूके कणसे होते हैं वह सिकतामेह है, जिसमें सफेदरंग होताहै वह शुक्लमेह है । जिसमें ठंडा मूत्र बहुत उतरताहै वह शीतमेह है इस तरह कफसे होनेवाले ये दस प्रकार के प्रमेह हैं ।

पित्तज प्रमेह छः प्रकारके हैं । यथा-क्षार के समान को क्षारमेह, काले रंगके मूत्र को कालमेह, नीले रंगके मूत्रको नीलमेह हल्दीके समान रंगवालेको हारिद्रमेह, मंजीठके समान वर्ण और दुर्गन्धवाले को माञ्जिष्ठमेह और रुधिरके समान लाल वर्ण वाले को रक्तमेह कहते हैं ॥ ये छः पित्तप्रमेह हैं ॥

वातजप्रमेह चार प्रकार के हैं, यथामज्जा के समान वर्ण वाला मज्जामेह, वसा के से समान रंग वाला मूत्र वसामेह, ओजमिश्रित मूत्र को ओज प्रमेह और लसीका युक्त को लसीकाप्रमेह कहते हैं । यह रुका भी रहता है । जब और सब धातु-

क्षीण होजाती है तब वात कोप के कारण इन चार प्रकार का मूत्र निकलताहै ।

दोषानुसार प्रमेह के वर्णादि ।

वर्णरसंस्पर्शमथापिगन्धंयथास्वदोषम्भजतेप्रमेहः ।

अर्थ—प्रमेह का वर्ण, रस स्पर्श और गंध उसी दोष के अनुसार होजाताहै जिस से वह उत्पन्न होता है

वातज प्रमेह को असाध्यत्व

श्यावारुणोवातकृतः सशूलोमज्जादिपाड्गुण्यमुपेत्यसाध्यः ॥

अर्थ—वातज असाध्य प्रमेह का वर्ण कुछ काला और लाल होता है इसमेंवेदना होती है तथा इसमें छःओं धातुओं के गुण होजाते हैं ॥

प्रमेह के पूर्व रूप

स्वेदोऽङ्गगन्धःशिथिलाङ्गताचशय्यासनस्वप्नसुखेरतिश्च । हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदेहो घनाङ्गताकेशनखातिवृद्धिः ॥ शीतप्रियत्वङ्गलतालुशोषो माधुर्यमास्येकरपाददाहःभविष्यतोमेहगदस्यरूपं मूत्रेऽभिधावन्तिपिपीलिकाश्च ॥

अर्थ—पसीनों का आना, देहमें से दुर्गन्ध निकलना, देहका शिथल पडजाना, पलंग पर पडे रहने, आसन पर बैठे रहने वा निद्रा लेने में इच्छा बनी रहनी,हृदयनेत्र, जिह्वा और कर्ण मलकी लिहसावट, देह का कडा होना, केश और नखों का अत्यन्त बढना, ठंडीवस्तु का प्रिय लगना, और मूत्रपर चींटियों का आना ये प्रमेह के पूर्वरूप हैं ।

स्थूल कृशप्रमेही की चिकित्सा ॥

स्थूलःप्रमेहीबलवानिहैकःकृशस्तथैकःपरिदुर्बलश्च । संबृंहणंतत्रकृशस्यकार्यंसंशोधनंदोषबलाधिकस्य ॥

अर्थ—कोई प्रमेहरोगी स्थूल और बलवान होता है, तथा कोई कृश और दुर्बल होता है, इनमें से कृशको बृंहण चिकित्सा करना चाहिये और बलवान् को संशोधन देकर उसके दोषों को दूर करे ॥

प्रमेही के अन्यउपचार ॥

स्निग्धस्ययोगाविविधाप्रयोज्याः कल्पोपदिष्टामलशोधनाय । ऊर्ध्वंतथाधश्चमलेऽपनीतेमेहेषुसन्तर्पणमेवकार्यम् ॥ गुल्मःक्षयोमेहनबस्तिशूलं मूत्रग्रहश्चाप्यपतर्पणेन । प्रमेहिणःस्युःपरितर्पणानिकार्याणितस्मात्प्रसमीक्ष्यवन्हिम् ॥ संशोधनार्हेतियःप्रमेही तस्यक्रियाशमनीप्रयोज्या ।

अर्थ....रोगीको स्नेहन देकर कल्पस्थान में वर्णन किये हुए प्रयोगों को दोनों के शोधन के निमित्त देवे । जब वमन विरेचन करानेसे दोष निकलजांय तब सन्तर्पणविधि करना चाहिये ।

जो प्रमेहरोगी संशोधनके योग्य न हो उसकी संशमन चिकित्सा करे ॥

प्रमेही को पथ्य ॥

मन्थाः कषायाःयवचूर्णलेहाःप्रमेहशान्तैर्लघवश्चभक्ष्याः ॥ येविष्किराये प्रतुदा विहंगास्तेषांरसैर्जाङ्गलजैर्मनोज्ञैः । यवौदनंरूक्षमथापिवाद्यान्मद्यान्सशक्तूनपि

चाप्यपूपान् ॥ मुद्गादियूषैरथतिक्तशाकैः पुराणशाल्योदनमाददीत । दन्तीगुदींतैलयुतंप्रमेहीतथातसीसर्षपतैलयुक्तम् ॥सपष्टिकंस्यात्तृणधान्यमन्नंयवप्रधानस्तुभवेत्प्रमेही॥

अर्थ—प्रमेहकी शान्तिके निमित्त मन्थ कषाय, जौ के चूनका लेह तथा हलका भोजन खानेको देवै। विष्किर और प्रतुद प्रकारके जांगल पक्षियोंके मांसरसके साथ रूक्ष यवोदन या सत्तूके साथ मद्य वा अपूप भक्षण करै । मूंग आदिके यूषके साथ अथवा चरपरे सागोंके संग पुराने शालीचांवलोंका भात खाय ॥

दंती और गोंदीका तेल मिलाकर अथवा अलसी और सरसों का तेल मिलाकर साठी चांवल तृणधान्यके अन्नका सेवन करै ॥ विशेषकरके प्रमेह रोगी जौके पदार्थों का सेवन करता रहै ।

कफप्रमेहमें अन्यविधि ॥

यवस्यभक्ष्यान्विविधांस्तथाद्यात्कफप्रमेहीमधुसम्प्रयुक्तान् ॥ निशिस्थितानां त्रिफलाकषायैः स्युस्तर्पणाःक्षौद्रयुतायवानाम् । तान्शीधुयुक्तान्प्रपिबेत्प्रमेही प्रायोगिकान्मेहवधार्थमेव ॥

अर्थ—कफ प्रमेही जौ के अनेक प्रकार के पदार्थ शहत के संग सेवन करता रहे। रात्रिमें जौओंको त्रिफलाके क्वाथ में भिगो देवै, दूसरेदिन इनका शहतके साथ सेवन करै तो तर्पण होवै । इन्हीं जौओं को शीधु के साथ पान करै तो प्रमेह नष्ट होजाताहै॥

येश्लेष्ममेहेविहिताःकषायास्तैर्भाविताना ञ्चपृथग्यवानाम् । शक्तूनपूपान्सगुडान् सधानान् भक्ष्यांस्तथान्यान्विविधांश्च खादेत् ॥ खराश्वगोधेनुकसम्भृतानां तथायवानांविविधाश्चभक्ष्याः ॥ देयास्तथावेणुयवायवानां कल्पेनगोधूममयाश्च भक्ष्याः ॥ संशोधनोल्लेखनलंघनानि कालेप्रयुक्तानिकफप्रमेहान् । जयन्तिपित्तप्रभवान्विरेकाः सन्तर्पणःसंशमनो-विधिश्च ॥

अर्थ—कफ प्रमेहमें जो कषाय वर्णन कियेगयेहैं उनकी जौओंको पृथक् पृथक् भावना देकर उनके सत्तू अपूप, गुडमिश्रित धानी तथा और अनेक प्रकार के पदार्थ बनवाकर सेवन करता रहै ॥

गधा, घोडा, बैल वा गौ की गुदामें हो कर जो विना टूटे जौ निकल आतेहैं उनके तथा वेणुयव और गेहूंके अनेक प्रकारके पदार्थ बनाकर सेवन करै । इसी तरह ठीक समय पर दियेहुये संशोधन, वमन, लंघन करानेसे भी कफ प्रमेह दूर होजाते हैं ॥

तथा ठीक समयपर वमन, विरेचन, लंघन, संतर्पण और संशमन देने से पित्तज प्रमेह भी शान्त होजाते हैं ।

प्रमेहोंपर सामान्यप्रयोग ॥

दार्वीसुराह्वंत्रिफलांसमुस्तां कषायमुत्क्वाथ्यपिबेत्प्रमेही । क्षौद्रेणयुक्तामथवाहरिद्रां पिबेद्रसेनामलकीफलानाम् ॥

अर्थ—दारुहल्दी, देवदारु, त्रिफला और

मोथा इनके काथको शहत मिलाकर पीवै अथवा आंवलेके रसके साथ हल्दीका पानकरै

कफप्रमेहपर कषाय ॥

हरीतकीकट्फलमुस्तरोध्रंपाठाविडङ्गार्जुनधन्वनश्च । उभेहरिद्रेतगरंविडङ्गं कदम्बशालार्जुनदीप्यकाश्च ॥ दार्वीविडङ्गं खदिरोधवश्च सुराह्वकुष्ठागुरुचन्दनानि । चव्याग्निमन्थौत्रिफलासपाठा पाठाश्वदंष्ट्रसहमूर्वयाच ॥ यवान्युशीराण्यभया गुडूची जंघाभयाचित्रकसप्तपर्णाः। पादैः कषायाःकफमेहिनान्ते दशोपदिष्टामधुसम्प्रयुक्ताः ।

अर्थ—(१) हरड, कायफल, मोथा, लोध, (२) पाठ, वायविडंग, अर्जुन, धन्वन [३] दोनों हल्दी, तगर और वायविडंग, [४] कदम्ब, शाल, अर्जुन और अजवायन, [५] दारुहल्दी, वायविडंग, खैर और धव [६] देवदारु कूठ, अगर और चन्दन [७] चव्य, अरनी, त्रिफला और पाठा [८] पाठा, गोखरू और मूर्वा [९] अजवायन, उशीर, हरड और गिलोय [१०] काकजंघा, हरीतकी, चीता और सप्तपर्ण प्रत्येक श्लोकके एक एक पादमें कहेहुए ये दस काथ शहत डालकर पीनेसे कफ प्रमेह को दूर करते हैं ॥

पित्तप्रमेहपर कषाय ॥

उशीरलोध्राञ्जनचन्दनानामुशीरमुस्तामलकाभयानाम् । पटोलनिम्बामलकामृतानांमुस्ताभयापद्मकवृक्षकाणाम् ॥ रोध्राम्बुकालीयकधातकीनांनिम्बार्जुनानान्तिनिशोत्पलानाम् ॥ शिरीषसर्जार्जुनकेसराणां प्रियंगुपद्मोत्पलकिंशुकानाम्॥ अश्वत्थपाठासनवेतसानां कटङ्कटेर्युत्पलमुस्तकानाम् । पैत्तेपुमेहेपुदशैवदृष्टाः पादैःकषायामधुसम्प्रयुक्ताः ॥

अर्थ—[१] उशीर, लोध, रसौत, और चन्दन [२] उशीर, आंवला, मोथा और हरड [३] परवल, नीम, आंवला और गिलोय [४] मोथा, हरड, पद्माख और इन्द्रजौ (५) लोध, नेत्रवाला, पीतचन्दन और धायके फूल [६] नीमकी छाल, अर्जुन, तिनिश और उत्पल [७] सिरस, राल, अर्जुन और नागकेशर, [८] प्रियंगु, लालकमल, नीलकमल और ढाक के फूल [९] पीपल, पाठ, असन और वेत [१०] दारुहल्दी, उत्पल और मोथा । प्रत्येक श्लोक के एक २ पादमें कहेहुए ये दस काथ शहत डालकर पीनेसे प्रमेहको दूर करतेहै ॥

सर्वेपुमेहेपुमतौतुपूर्वौ कषाययोगौविहितास्तुसर्वे ॥ मन्थस्यपानेयवभावनायां स्युर्भोजनेपानविधौपृथक्च । सिद्धानि तैलानिघृतानिचैव देयानिमेहेष्वनिलात्मकेषु॥ मेदःकफश्चैवकषाययोगैः स्नेहैश्चवायुःशममेतितेषाम् ।

अर्थ—सबसे पहिले जो दो कषायके प्रयोग वर्णन किये गयेहैं वे सब प्रकार के प्रमेहोंमें उपयोगीहैं ॥ इन कषायों का प्रयोग मन्थपान, जौओं को भावना देने

अथवा सब प्रकारके भोजन पानमें पृथक् २ देना चाहिये ॥ वातज प्रमेहोंमें औषधों से सिद्ध किया हुआ घृत और तेल देवै । कषायोंसे मेद और कफ तथा स्नेहन योगों से वायु शान्तहोतीहै ।

कफपित्तप्रमेहपरप्रयोग ॥

कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि वैभीतरौहीतककौटजानि ॥ कपित्थपुष्पाणिचचूर्णितानि क्षौद्रेणलिह्यात्कफपित्तमेही । पिवेद्रसेनामलकस्यवापि कल्कीकृतान्यक्षसमानिकाले ॥ जीर्णेचभुञ्जीतपुराणमन्नं मेहीरसैर्जाङ्गलजैर्मनोज्ञैः । दृष्ट्वानुबन्धंपवनंकफस्यपित्तस्यवास्नेहविधिर्विकल्प्यः ॥ तैलंकफेस्यात्सकषायसिद्धं पित्तेघृतंपित्तहरैः कषायैः ।

अर्थ—कबीला, सप्तपर्ण, सर्जरस, बहेडा रोहीतक [रोहेडा], इन्द्रजौ, कैथकेफूल इन सबका चूर्ण पीसकर शहतमें मिलाकर चाटनेसे कफपित्त प्रमेह दूर होजाता है । अथवा इसी पूर्वोक्त चूर्ण का दो तोले कल्क आंवलेके रसके साथ पान करै और औषध के पचने पर पुराने चांवलों का भात जांगलजीवोंके मांसरसके साथ सेवनकरै इस रोगमें वायुके कफानुबन्धी वा पित्तानुबन्धी होनेपर स्नेहविधिकी विकल्पना करनी चाहिये । यदि कफका अनुबन्ध हो तो कफनाशक द्रव्योंके क्वाथमें सिद्ध किये हुए तेलका प्रयोग करै और जो पित्त का अनुबंधहो तो पित्तनाशक कषायोंमें सिद्ध कियाहुआ घृत देवे ॥

अन्यप्रयोग ।

त्रिकण्टकाश्मन्तकसोमवल्कैर्भल्लातकैः सातिविषैःसरोध्रैः ॥ वचापटोलार्जुननिम्बमुस्तैर्हरिद्रयापद्मकदीप्यकैश्च । मञ्जिष्ठयावागुरुचन्दनैश्च सर्वैःसमस्तैःकफवातजेषु ॥ मेहेषुतैलंविपचेद्घृतंतुपित्तेषुमिश्रं त्रिपुलक्षणेषु ।

अर्थ—गोखरू, कचनार, खैर, भिलाया, अतीस, लोध, वच, परवल, अर्जुन, नीमकी छाल, मोथा, हलदी, पद्माख, अजवायन, मजीठ, अगर, चन्दन, इनसबके क्वाथमें सिद्ध किया हुआ तेल सेवन करनेसे कफवात जन्य प्रमेह दूर होताहै । उन्हींमें सिद्ध किया हुआ घृत वातपित्तजन्य प्रमेहको तथा घृत और तेल दोनों त्रिदोषजन्य प्रमेह को दूर करते हैं ।

सवप्रकार के प्रमेह पर क्वाथ ।

फलत्रिकंदारुनिशाविशालामुस्ताचानिःक्वाथ्यनिशासकल्का । पिवेत्कषायंमधुसम्प्रयुक्तं सर्वप्रमेहेपुसमुद्धतेपु ॥

अर्थ—त्रिफला, देवदारु, हलदी, इन्द्रायण, और मोथा इनका क्वाथकरके उसमें हल्दी पीसकर डालदेवे और इस कषायमें शहत मिलाकर पीनसे सवप्रकारके उद्धत प्रमेह दूर होजातेहैं ।

मध्वासव ।

लोध्रंशठीपुष्करमूलमेलां मूर्वाविडङ्गंत्रिफलांयवानीम् ॥ चव्यंप्रियंगुंक्रमुकंविशालां किराततिक्तंकटुरोहिणीश्च । भार्गीनतंचित्रकपिप्पलीनां मूलंसकुष्ठाति-

विपंसपाठम् ॥ कलिङ्गकान्केशरमिन्द्र साह्वं नखंसपत्रंमरिचंप्लवञ्च । द्रोणोऽम्भसःकर्षसमानिपक्त्वापूतेचतुर्भागज लावशेषे ॥ रसेऽर्धभागेमधुनःप्रदाय पक्षान्निधेयोघृतभाजनस्थः । मध्वासवोऽयंकफपित्तमेहान् क्षिप्रंविहन्याद्द्विपलप्रयोगात् ॥ पाण्ड्वामयार्शांस्यरुचिंग्रहण्या- दोषंकिलासंविविधञ्चकुष्ठम् ॥

अर्थ—लोध्र, शठी, पोहकर मूल, इलायची, मूर्वा, वायविडंग, त्रिफला, अजवायन चव्य, प्रियंगु, सुपारी, इन्द्रायण की जड चिरायता, कुटकी, भाडंगी, तगर, चीता, पीपलामूल, कूठ, अतीस, पाठा, इन्द्रजौ, नागकेशर, इन्द्रायणकी जड, । नखी, तेजपात कालीमिरच. केवटी, मोथा । इन सवको एक एक कर्ष लेकर एक द्रोण जलमें पकावै जब चौथाई शेष रहजाय तव इसे छानले, फिर इस रसका आधा शहत मिलाकर घीके चिकने पात्रमें भरकर पन्द्रह दिवस तक धरा रहने देवे । यह मध्वासव है, इसमें सेप्रतिदिन दोपलका सेवनकरनेसे कफपित्तजनित प्रमेह , पाण्डुरोग, अर्शरोग, अरुचि, ग्रहणीदोष. किलास और सव प्रकारके कुष्ठ दूर होजातेहैं ।

अन्य आसव ।

क्वाथःसएवाष्टपलेचदन्त्याभल्लातकानाञ्चचतुष्पलंस्यात् ॥ सितापलास्त्वष्टपला विशेषःक्षौद्रञ्चतावत्पृथगासवौतौ ।

अर्थ—उसी पूर्वोक्त लोध्रादि क्वाथसे दो आसव और वनाये जातेहैं यथा (१) पूर्वोक्त क्वाथमें दंती आठपल, शहत और मिश्री आठ आठ पल डाले और (२) पूर्वोक्त उसी क्वाथमें मिलाया चार पल, मिश्री आठ पल और शहत आठ पल डालै इन दोनोंके गुणभी मध्वासवके समानहैं ।

प्रमेह पर अन्य चिकित्सा ।

सारोदकश्चाथकुशोदकंवा मधूदकंवात्रिफलारसंवा ॥ शीधुंपिवेद्वानिगदंप्रमेही माध्वीकमग्र्यञ्चिरसंस्थितंवा । मांसानिशूल्यानिमृगद्विजानां खादेद्यवानांचविधांश्चभक्ष्यान् ॥ संशोधनारिष्टकषायलेहैःसन्तर्पणघ्नःशमयेत्प्रमेहान् । भृष्टान्यवान्भक्षयतः प्रयोगात् शुष्कांश्च शक्तून्नभवन्तिमेहा ॥ श्वित्रञ्चकुष्ठञ्च कफश्चकृच्छ्रं तथैवमुद्गामलकप्रयोगात् ।

अर्थ—सारोदक वा कुशोदक, वा मधूदक वा त्रिफला क्वाथ, वा शीधु वा पुराना माध्वींक सेवन करनेसे प्रमेह दूर होजाता है पशुपक्षियोंका शूलपर भुना हुआ मांस, तथा जौके अनेक पदार्थोंका भक्षण करे । संशोधन, अरिष्ट, कषाय, लेह और संतर्पण द्वारा प्रमेहको शमन करै । भुने हुए जौ, इनका सत्तू तथा मूंग और आंवला इन के प्रयोगसे श्वित्रकुष्ठ, कुष्ठ, कफ और मूत्रकृच्छ्र दूर होजाते हैं ।

सन्तर्पणोत्थेषुगदेषुयोगा मेदस्विनांयेच मयोपदिष्टाः ॥ विरूक्षणार्थंकफपित्तजेषुसिद्धाःप्रमेहेष्वपितेप्रयोज्याः । व्यायामयोगैर्विविधैः प्रगाढैरुद्वर्तनैःस्नानजलावसेकैः ॥ सेव्यंत्वगेलागुरुचन्दनाद्यै

विलेपनैश्चाशुनसन्तिमेहाः । क्लेदश्चमेदश्चकफश्चवृद्धःनाशंप्रयातिमसमीक्ष्यतस्मात्वैद्येनपूर्वंकफपित्तजेषु मेहेषुकार्याण्यपतर्पणानि ॥

अर्थ–सन्तर्पणजन्य रोगोंमें तथा जिनका मेदा बढ गयाहै उनके लिये जो रूक्षणकर्त्ता प्रयोग वर्णन किये गये हैं इन का कफपित्तोत्थ प्रमेहमें प्रयोग किया जाय तो तत्काल फलप्रद है ।

अत्यंन्त परिश्रम [दंडकसरत आदि] अनेक प्रकारके उवटने, स्नान, जलावसेक तथा खस, दालचीनी, अगर और चन्दन का लेप करने से प्रमेह शीघ्र नष्ट होजाताहै

अपतर्पणसे क्लेद, मेद और कफ ये नष्ट होजाते हैं इसलिये कफपित्त प्रमेहोंमें प्रथम अपतर्पण देना चाहिये ॥

यावातमेहान्प्रतिपूर्वमुक्ता वातोल्वणानां विहिताक्रियासा । वायुर्हिमेहेष्वतिकर्पितानां कुप्यत्यसाध्यान्प्रतिनास्तिचिन्ता

अर्थ—जहां तीनों दोषोंमें से वातकी अधिकता हो वहां प्रथम वातज मेहकी चिकित्साके अनुसार उपाय करै क्योंकि वातप्रमेह मनुष्यको बहुत शीघ्र कृशकरके रोगको असाध्य करदेताहै, तब फिर कोई चिकित्सा काम नहीं देताहै ॥

प्रमेहमें निदानपरिवर्जन ॥

यैर्हेतुभिर्येप्रभवन्तिमेहास्तेपुप्रमेहेषुनतेनिषेव्याः ॥ हेतोरसेवाविहितायथैवजातस्यरोगस्यभवेच्चिकित्सा ।

अर्थ—जिन २ हेतुओंसे जो २ प्रमेह उत्पन्न होतेहैं उनमें उन हेतुओंका कदापि सेवन न करना चाहिये क्योंकि हेतुका परित्याग करदेना भी रोगकी एक प्रकार की चिकित्सा है ॥

हारिद्रवर्णंरुधिरश्चमूत्रं विनाप्रमेहस्यहि पूर्वरूपैः ॥ योमूत्रयेत्तन्नवदेत्प्रमेहंरक्तस्यापित्तस्यहिसप्रकोपः ।

अर्थ—जो मूत्रका रंग हलदीसा लाल हो और उसमें प्रमेहका कोई पूर्वरूप न हो तो उस रोगीके प्रमेह नहीं होती है वह उसके रक्तपित्तके प्रकोप का कारण है ॥

मधुप्रमेहकालक्षण ॥

दृष्ट्वाप्रमेहंमधुरंसपिच्छंमधूपमंस्याद्द्विविधोपचारः ॥

अर्थ—जो प्रमेह मधुर हो वा शहत के समान गिलगिली हो उसमें अनेक प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिये ।

प्रमेहको साध्यासाध्यत्व ॥

क्षीणेषुदोषेष्वनिलात्मकःस्यात् सन्तर्पणाद्वाकफसम्भवःस्यात् । सपूर्वरूपाःकफपित्तमेहाः क्रमेणयेवातकृताश्चमेहाः ॥ साध्यानतेपित्तकृतास्तुयाप्याःसाध्यास्तुमेदोयदिनप्रदुष्टम् । जातप्रमेहोमधुमेहिनोंवा नसाध्यरोगःसहिबीजदोषात् ॥ येचापिकेचित्कुलजाविकारा भवन्तितांश्चप्रवदन्त्यसाध्यान् ॥

अर्थ—दोषोंके क्षीण होनेपर वातात्मक प्रमेह होताहै और सन्तर्पणसे कफज प्रमेह उत्पन्न होताहै ये कफज तथा पित्तज प्रमेह जो पूर्वरूपसे युक्त होतेहैं अथवा जो वात-

कृजेहैं वे असाध्य होतेहैं पित्तजप्रमेह याप्य है और कफजप्रमेह जिनमें मेदा दूषित नहीं होताहै वे साध्य होतेहैं। मधुमेही की सन्तान बीजदोष के कारण असाध्य होती है। तथा जो रोग कुलपरम्परासे चलेआते हैं वे भी असाध्य होते हैं ॥

पिडकाओंकी चिकित्सा ॥

प्रमेहिणांया पिडकामयोक्ता रोगाधिकारेपृथगेवसप्त। ताःशल्यहृद्भिःकुशलैश्चिकित्स्याः शस्त्रेणसंशोधनरोपणैश्चेति ॥

अर्थ—रोगाधिकारमें जो प्रमेह रोगकी सात पिडका पृथक् वर्णन कीगई हैं उनकी चिकित्सा शल्यशास्त्र में कुशल वैद्य शस्त्रसे संशोधन और रोपण द्वारा करै।

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

भवन्तिचात्र ॥

हेतुर्दोषादूष्यमेहानांसाध्यतानुरूपञ्च। मेहीत्रिविधस्त्रिविधंभिषग्जितंलक्षणंतस्य आद्यायवान्नविकृतिर्मन्थामेहापहाःकषायाश्च। तैलघृतलेहयोगाभक्ष्याःप्रवरासवासिद्धाः ॥ व्यायामविधिर्विविधः स्नानान्युद्वर्तनानिगन्धाश्च। मेहानां प्रशमार्थंचिकित्सितेदृष्टमेतावदिति ॥

अर्थ—इस प्रमेह चिकित्सितनामक अध्यायमें प्रमेहोंके हेतु, दोष, दूष्य, साध्यता अनुरूप, तीनप्रकारके रोग, उनकी तीन प्रकारकी चिकित्सा, लक्षण, भक्षणीय जौके पदार्थ, मन्थ, प्रमेहनाशक कषाय, तैल, घृत, लेह, भक्ष्ययोग, अनुभूत आसव, व्यायामविधि, अनेक प्रकारके स्नान, उद्वर्तन, सुगंधित द्रव्यादि प्रमेह नाशक विधि वर्णन की गई हैं।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सितस्थाने प्रमेहचिकित्सितंनाम षष्ठोऽध्यायः ॥

—+×※×÷—

सप्तमोऽध्यायः।

अथातःकुष्ठचिकित्सितंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम कुष्ठचिकित्सितनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

कुष्ठोत्पत्तिका हेतु ॥

हेतुंलिङ्गंविविधंकुष्ठानामाश्रयंप्रशमनञ्च। शृण्वग्निवेश! सम्यग्विशेषतःस्पर्शनघ्नानाम् ॥ विरोधीन्यन्नपानानिद्रवस्निग्धगुरूणिच। भजतामागतांछर्दिंवेगांश्चान्यान्प्रतिघ्नताम् ॥ व्यायाममतिसन्तापमतिभुक्त्वानिषेविणाम्। शीतोष्णलंघनाहारन्क्रममुक्त्वानिषेविणाम् ॥ घर्मश्रमभयार्तानांद्रुतंशीताम्बुसेविनाम्। अजीर्णाध्यशिनाञ्चैवपञ्चकर्मापचारिणाम् ॥ नवान्नदधिमत्स्यातिलवणाम्लनिषेविणाम्। माषमूलकपिष्टान्नगुडक्षीरतिलाशिनाम् ॥ व्यवायंचाप्यजीर्णेऽन्नेनिद्रांवाभजतांदिवा। विप्रान्गुरून् धर्षयतांपापंवाकर्मकुर्वताम् ॥ वातादयस्त्रयोदुष्टास्त्वग्रक्तंमांसमम्बुच। दूषयन्तिसकुष्ठानांसप्तकोद्रव्यसंग्रहः ॥ अतः

कुष्ठानिजायन्तेसप्तचैकादशैवच। नचैक दोषजंकिश्चित्कुष्ठंसमुपलभ्यते ।

अर्थ—हे अग्निवेश ! अवमें तुम्हारे साम्हने कोढके अनेकप्रकारके हेतु, लक्षण आशयस्थान और उनके शान्तिके उपायोंको वर्णन करताहूं तुम सावधानहो कर सुनो । वे ये हैं यथाः—

विरुद्ध अन्नपान; पतले, चिकने और भारी पदार्थोंका अत्यन्त सेवन; उपस्थित वमनके वेग तथा अत्यन्त मलमूत्रादि वेगोंका रोकना; अत्यन्त भोजन करके अत्यन्त शारीरिक परिश्रम और अत्यन्त सन्ताप का सेवन, क्रमको छोडकर शीत, उष्ण, लंघन और आहारका सेवन, पसीनोंमें, परिश्रम करके वा भयजन्य कर्ममें शीतल जलका सेवन; अजीर्णमें अध्यशन, वमनविरेचनादि पांच कर्मोका अपचार; नयाअन्न, दही, मछली, नमक और खटाईका अत्यन्त सेवन उदर, मूली, पिष्टान्न, गुड, दूध और तिलका अत्यन्त सेवन, अन्नके विना पचे मैथुन करना; दिनमें नींद भरना, विप्र और गुरुजनोंका तिरस्कार; पापकर्मका करना; इन सब वातोंसे कुपितहुए वातादिक तीनों दोष तथा इनसे दूषित कियेहुए त्वचा, रक्त मांस और लसीका, ये सातों सब प्रकारकी कुष्ठोंके कारणहैं । इस तरह सब मिलाकर अठारह प्रकारके कुष्ठ उत्पन्न होतेहैं । एक दोषके कुपित होनेसे कोई कुष्ठ नहीं होताहै

कुष्ठके पूर्वरूप ।

स्पर्शान्यत्वमतिस्वेदोनवावैवर्ण्यमुन्नतिः कोठानांलोमहर्षश्चकण्डूस्तोदःश्रमःक्लमः व्रणानामधिकंशूलंशीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः दाहः सुप्ताङ्गताचेतिकुष्ठलक्षणमग्रजः ।

अर्थ—त्वचाका अन्यथा होना, पसीनों का अत्यन्त आना वा सर्वथा न आना, विवर्णता, पित्तीका उछलना, रोमाञ्च खडे होना, खुजली तोद, श्रम, क्लान्ति, शरीर में घाव होकर उनमें अत्यन्त वेदना होना घावोंका शीघ्र होना और बहुत दिवस तक रहना, दाह और सुप्तांगता, ये सब कोढ के पूर्वरूपहैं ।

कुष्ठोंकेनाम ।

अतऊर्ध्वमष्टादशानांकुष्ठानांकपालोदुम्बरमण्डलर्ष्यजिह्वापुण्डरीकसिध्मकाकणकैककुष्टचर्माकिटिमविपादिकालसकदद्रुचर्मदलपामाविस्फोटकशतारुर्विचर्चिकानां लक्षणान्युपदेक्ष्यामः ।

अर्थ—अव हम यहां से कपाल, उदुम्बर मण्डल, ऋष्यजिह्व, पुण्डरीक, सिध्म, काकणक, एककुष्ठ, चर्म, किटिम, विपादिका, अलसक, दद्रु, चर्मदल, पामा, विस्फोटक, शतारु और विचार्चिका, इन अठारह प्रकारकी कोढों के लक्षण वर्णन करेंगे । इनमें से पहिली सातको महाकुष्ठ और पिछली ग्यारहको क्षुद्रकुष्ठ कहते हैं ।

कपाल कुष्ठके लक्षण ।

कृष्णारुणकपालाभंयद्रूक्षंपरुषन्तनु । कापालन्तोदबहुलंतंकुष्ठंविषमंस्मृतम् ॥

अर्थ—जो कुष्ठ कालापन लिए कुछ लाल होता है, जो खीपड़े के सदृश रूक्ष खरखरा

तथा पतला हो और जिसमें सुईके छिदने की सी अत्यन्त वेदना होती हो उसे कपाल कुष्ठ कहते हैं यह दुश्चिकित्स्य होता है ।

औदुम्वर कुष्ठके लक्षण ।

कण्डूविदाहरुग्रागपरीतंलोमपिञ्जरम् । उदुम्वरफलाभासंकुष्ठमौदुम्बरंविदुः ॥

अर्थ--जिस में खुजली, जलन, वेदना और ललाई होती है, रोमोंमें पीलापन होता है और जिसका आकार गूलरके सदृश होता है उसे औदुम्वरकुष्ठ कहते हैं ।

मंडलकुष्ठकेलक्षण ।

श्वेतंरक्तंस्थिरंस्त्यानंस्निग्धमुत्सन्नमण्डलम् । कृच्छ्रमन्योन्यसंसक्तंकुष्ठंमण्डलमुच्यते ॥

अर्थ--जिसका वर्ण सफेद और लाल हो, जो कठोर गीला, चिकना, ऊंचा उठा हुआ, मंडलाकार हो, जिसमें चकत्ते एक दूसरेसे मिले हुए हों, यह मंडलकुष्ठ कृच्छ्र साध्य होता है ॥

ऋष्यजिह्वाकुष्ठकेलक्षण ॥

कर्कशंरक्तपर्य्यन्तमन्तःश्यावःसवेदनं । यदृष्यजिह्वासंस्थानंऋष्यजिह्वतदुच्यत ॥

अर्थ--जो कुष्ठ खरस्पर्श होता है जिसके किनारे ललाई लिये होते हैं, जो बीच में कृष्णवर्ण तथा वेदनायुक्त होता है। जिसका आकार रीछकी जिह्वाके सदृश होता है उसे ऋष्यजिह्वा कहते हैं ॥

पुण्डरीककुष्ठकेलक्षण ॥

सश्वेतंरक्तपर्य्यन्तंपुण्डरीकदलोपमम् ॥ सोत्सेधञ्चसदाहञ्चपुण्डरीकंतदुच्यते ॥

अर्थ--जिसका श्वेत वर्ण और लाल किनारे हों, जो कमलके पत्तों के सदृश होता है, जो ऊंचा तथा दाहयुक्त होता है उसे पुण्डरीक कुष्ठ कहते हैं ।

सिध्मकुष्ठकेलक्षण ।

श्वेतंताम्रंतनुचयद्रजोघृष्टंविमुञ्चति । अलाबुपुष्पवर्णंतत्सिध्मंप्रायेणचोरसि॥

अर्थ--जिसका वर्ण सफेद और तांबे के समान होता है, जो पतला होता है, जिसको खुजाने से भुसीसी [धूल के सदृश] उडती है जिसका आकार घीयाके पुष्पके समान होताहै उसे सिध्मकुष्ठ कहतेहैं, यह हृदयमें होताहै ।

काकणक कुष्ठके लक्षण ।

यत्काकणन्तिकवर्णंसपाकंतीव्रवेदनम् । त्रिदोषलिङ्गंतत्कुष्ठंकाकणंनैवसिद्ध्यति ॥

अर्थ---जिसका आकार चिरमिठीके सदृश होताहै अर्थात् बीचमें काला और किनारों पर लाल अथवा बीचमें लाल और किनारों पर काला, जो किञ्चित् पाकयुक्तऔर तीव्र वेदनायुक्त होताहै उसे काकणककुष्ठ कहतेहैं, यह त्रिदोषाश्रित होने से असाध्य होताहै । यह सात प्रकारके महाकुष्ठ वर्णन किये गयेहैं ॥

अब क्षुद्रकुष्ठों का वर्णन करते हैं ॥

एककुष्ठ और चर्मकुष्ठके लक्षण ।

अस्वेदनंमहावास्तुयन्मत्स्यशकलोपमम्। तदेककुष्ठंचर्माख्यंवहलंहस्तिचर्मवत् ॥

अर्थ---जिसमें पसीने न आवें, जो बहुत जगह में व्याप्त हो जो मछलीके टुकडों के

समानहो उसे एककुष्ट कहते हैं इसके विषयमें सुश्रुत लिखता है कि " कृष्णारुणं येन भवेच्छरीरं तदेक कुष्ठं प्रवदन्त्यसाध्यम् अर्थात् जिससे देह काला वा लाल पडजाता है उसे एककुष्ठ कहते हैं और यह असाध्य होताहै।

जिसमें देहकी त्वचा हाथीके चमडेके समान मोटी होतीहै उसे चर्मकुष्ठ कहते हैं।

किटिम कुष्ठ के लक्षण।

श्यावंकिणखरस्पर्षपरुषंकिटिमंस्मृतम्

अर्थ जो काला, किण के सदृश खरस्पर्श और खरदरी होती है उसे किटिम कहतेहैं सुश्रुत कहता है कि जिसमें कड़े गोल चकत्ते से होते हैं और जो अत्यन्त खुजली चलने के पीछे झरने लगता है उसे किटिम कहते हैं।

वैपादिका के लक्षण।

वैपादिकंकरेपादेस्फोटनंतीव्रवेदनम्॥

अर्थ—हाथ पांवके फटनेसे जो तीव्र वेदना युक्त होता है उसे **विपादिका** कहते हैं, यहां सुश्रुत लिखता है कि " कण्डूमती दाहरुजोपपन्ना विपादिका पादगतेयमेव,,। अर्थात् खुजली दाहादियुक्त का नाम विपादिका है और यह पांवही में होती है,, 'इयमेव, ये दोनों शब्द 'पादगता' के पास ऐसे ढंगसे डालेगये हैं कि इससे जाना जाता है कि यह पांवही में होती हैं इससे भाषामें इसका बिवाई कहा जाना संभवहो सकता है और विपादिका, इस शब्द के अर्थ से भी ' पांवका फटनाही, प्रतीत होता है, परन्तु यहां इन दोनों आचार्यों का मत भिन्न है, यदि यह ' बिवाई, न भी होतो भी बिवाई कोढ से कम नहीं होती क्योंकि इसकी वेदनाको वेही जानते हैं जिनके यह होती है।

अलसकके लक्षण।

सकण्डूकैःसरावैश्चगण्डैरलसकंस्मृतम्।

अर्थ—जिसमें खुजली चलतीहो, जो लालरंगकी हो तथा जिसमें बडे २ फोडे हो गये हों उसे अलसक कहते हैं॥

दद्रुमण्डलके लक्षण॥

सकण्डूरागपिडकंदद्रुमण्डलमुद्गतम्॥

अर्थ—जो खुजली युक्त और लालवर्ण की फुन्सियों से युक्तहो जिसमें ऊंचे २ चकत्ते होजांय उसे दद्रुमण्डल कहते हैं॥

चर्मदलके लक्षण॥

रक्तंसकण्डूसस्फोटंसरुग्दलतिचापियत्।
तच्चर्मदलमाख्यातंसंस्पर्शासहमुच्यते॥

अर्थ—जिसका वर्ण लालहो जिसमें खुजली चलती हो, जो फोडे और वेदनाओं से युक्त हो, जो फटगयी हो, जिसमें हाथ का लगाना सहा न जाय उसे **चर्मदल** कहते है॥

पामाके लक्षण।

पामाःश्वेतारुणाःश्यावाःपिडकाःकण्डूला भृशम्॥

अर्थ—जिसमें सफेद, लाल, काली बहुत खुजलीयुक्त फुन्सियांहों उसे **पामा** कहतेहै।

विस्फोटकके लक्षण।

श्वेताःश्यावारुणाभासाविस्फोटाःस्युस्तनुत्वचः।

अर्थ....जिनमें सफेद, काले और लाल रंगकी झलक मारतीहो और जिनकी त्वचा पतलीहो ऐसे फोडोंको विस्फोटक कहते हैं

शतारुके लक्षण ।

रक्तंश्यावंसदाहार्तिशतारुः स्याद्बहुव्रणम्

अर्थ....जिसमें लाल काले दाहयुक्त बहुत से व्रणहोजांय उसे शतारु कहते हैं ॥

विचर्चिकाके लक्षण ॥

सकण्डूःपिडकाः श्यावाबहुस्रावाविचर्चिकाः ।

अर्थ....खुजलीयुक्त काले रंगकी ऐसी फुन्सियां जिनमें बहुत स्राव होताहो उन्हें विचर्चिका कहते हैं ॥

कुष्ठोंको दोषपरत्व ।

वातेऽधिकतरेकुष्ठंकापालमण्डलंकफे ॥ पित्तेत्वौदुम्बरंविद्यात्काकणन्तुत्रिदोषजम् । वातपित्तेश्लेष्मपित्तेवातश्लेष्मणिचाधिके ॥ ऋष्यजिह्वंपुण्डरीकंसिध्मकुष्ठंचजायते । चर्माख्यमेककुष्ठञ्चकिटिमंसविपादिकम् ॥ कुष्ठञ्चालसकंज्ञेयंप्रायोवातकफाधिकम् । दद्रूश्चर्मदलंपामाविस्फोटाश्चशतारुपः ॥ पित्तश्लेष्माधिकाःप्रायकफप्रायाविचर्चिका ।

अर्थ....कापालकुष्ठमें वात अधिक होती है । मण्डलकुष्ठमें कफकी अधिकताहै । औदुम्बरकुष्ठमें पित्तकी अधिकता है । और काकणक कुष्ठमें तीनों दोषोंकी अधिकता है । ऋष्यजिह्व में वातपित्तकी अधिकता है । पुण्डरीकमें कफपित्तकी और सिध्म कुष्ठ में वातकफकी अधिकता होती है ।

चर्मकुष्ट, एककुष्ठ, किटिम, विपादिका और अलसक इन कुष्ठों में प्रायः वातकफ की अधिकता होती है - दद्रु, चर्मदल, पामा, विस्फोटक और शतारु इनमें प्रायः कफपित्तकी अधिकता होती है, इसीतरह विचर्चिका में कफकी अधिकताहोती है ॥

कुष्ठों में चिकित्साक्रम ।

सर्वंत्रिदोषजंकुष्ठंदोषाणाञ्चबलाबलम् ॥ यथास्वैर्लक्षणैर्बुद्ध्वाकुष्ठानांक्रियतेक्रिया दोषस्ययस्यपश्येत्कुष्ठेषुविशेषलिङ्गमुद्रिक्तम् । तस्यैवशमंकुर्यात्ततःपरञ्चानुबन्धस्य ॥

अर्थ—सम्पूर्ण कुष्ट त्रिदोषसे उत्पन्न होते हैं, इनमें लक्षणों द्वारा दोषों का बलाबल देखकर तदनुसार चिकित्सा करना उचित है । जिसकुष्ठमें जिस दोषके बढेहुए लक्षण दिखाई दें प्रथम उसीकी चिकित्सा करै । तत्पश्चात् अनुबन्धी दोषोंकी चिकित्सा करना चाहिये ।

कुष्ठकी पहचान ।

कुष्ठविशेषैर्दोषादोषविशेषैःपुनःकुष्ठानि । ज्ञायन्तेतैर्हेतुर्हेतुस्तांश्चप्रकाशयति ॥

अर्थ—कुष्ठ के भिन्न २ भेदों से दोष और भिन्न दोषों के लक्षणों से कुष्ठ पहचानी जाती है, इसीतरह कुष्ठसे हेतु और हेतुओं से कुष्ट जाननेमें आती है, जैसे कपालकुष्ट के लक्षणों से वाताधिक्य और वातकी अधिकता से कपालकुष्ठ की संभावना होती है ।

वातजादि कुष्ठों के लक्षण ।

रौक्ष्यंशोषस्तोदःशूलंसङ्कोचनंतथायासः

पारुष्यंखरभावोहर्षःश्यावारुणत्वंच ॥ कुष्ठेषुवातलिङ्गंदाहोरागःपरिस्रावःपाकः विस्रोगन्धःक्लेदःयथांगपतनश्चापित्तकृतम् ॥ श्वैत्यंशैत्यंकण्डूःस्थैर्यमुत्सेधगौरवस्नेहाः ।कुष्ठेषुतुकफलिङ्गंजन्तुभिरभिभक्षणंक्लेदः ॥ सर्वैरेतैर्लिङ्गैर्युक्तमतिमान्विवर्जयेदबलम् ॥

अर्थ—जिस कुष्ठ में रूक्षता, शोष,तोद शूल, संकोच, आयास, कर्कशता, खरखरापन, रोमोद्गम, कालापन, और ललाई,हों उसे वातजन्यकुष्ठ समझो ।

दाद, रक्तवर्ण, स्राव, पाक, विस्रगंध, क्लेद और किसी अवयव का गिर पडना ये पित्तकृत् कुष्ठ के लक्षण हैं ! सफेदाई, शीतलता, खुजली,स्थिरता,ऊंचापन,भारापन, चिकनाई ये कफकृत् कुष्ठके लक्षण हैं। जिस कुष्ठ में कीडे पडगये हों, क्लेद हो, तथा पूर्वोक्त तीनों दोषों के लक्षण हों और रोगी दुर्वलहो तो वह कुष्ठ दुश्चिकित्स्य होताहै ।

कुष्ठ को असाध्यत्व ।

तृष्णादाहपरीतंशान्ताग्निंजन्तुभिर्जग्धम् वातकफप्रबलंयच्चैकदोषोल्बणंनतत्कृच्छ्रम् । कफपित्तवातपित्तप्रबलानिनतु कृच्छ्रकुणानि ॥

अर्थ—जिसकुष्ठ में तृष्णा, दाह,मन्दाग्नि वा कीडे पडगये हों वह असाध्य है । वात कफाधिक या एक दोषाधिक कुष्ठ कृच्छ्रसाध्य नहीं होता है और जिन कुष्ठों में कफपित्त प्रबल होते हैं वे अत्यन्तकृच्छ्रसाध्य हैं

दोषानुसार चिकित्साक्रम ।

वातोत्तरेषुसर्पिर्वमनंश्लेष्मोत्तरेषुकुष्ठेषु ॥ पित्तोत्तरेषुमोक्षोरक्तस्यविरेचनंचाग्र्ये॥वमनविरेचनयोगाःकल्पोक्ताःकुष्ठिनांप्रयोक्तव्याः ॥ प्रच्छनमल्पेकुष्ठेमहतिशिराव्यधनंमहतिचशस्तं ॥ बहुदोषःसंशोध्यःकुष्ठी बहुशोनुरक्षताप्राणान् । दोषेह्यतिमात्रहृतेवायुर्हन्यादबलमाशु ॥ स्नेहस्यपानमिष्टंशुद्धेकोष्ठेप्रवाहितेरुधिरे। वायुर्हिशुद्धकोष्ठंकुष्ठिनमबलंविशतिशीघ्रम् ॥

अर्थ—वातप्रधान कुष्ठमें प्रथमही घृतपान, कफप्रधान में वमन और पित्तप्रधान में रक्तमोक्षण और विरेचन देना चाहिये ॥

कुष्ठरोगियोंके लिये जो वमन विरेचन के प्रयोग हैं वे कल्पस्थानमें वर्णन किये गये हैं अल्पकुष्ठमें पछना लगाना और महाकुष्ठमें सिरावेधन हित है ।

बहुत दोषोंसे युक्त कोढमें बहुतवार संशोधन करना चाहिये परन्तु प्राणोंकी रक्षा करता रहै ऐसा न हो कि संशोधन देते देते रोगी मरजाय । क्योंकि दोषों के अत्यन्त निकल जानेसे दुर्वल हुए रोगी को वायु शीघ्रही मारडालती है ।

संशोधन द्वारा कोष्ठके शुद्ध होने पर और फस्त खोलनेके पश्चात् रोगीको घृतपान कराना हितहै क्योंकि कोष्ठके शुद्ध होनेसे जब रोगी निर्बल होजाता है तब वायु उसमें बहुतही शीघ्र प्रवेश करती है ।

कुष्ठनाशक प्रयोग ॥

दोषोत्क्लिष्टेहृदयेवम्यःकुष्ठेषुचोर्द्ध्वभागेषु कुटजफलमदनमधुकैःसपटोलैर्निम्बरसयुक्तैः ॥ शीतरसःपक्वरसोमधूनिमधु-

कश्चवमनानि । कुष्टेषुत्रिवृतादन्तीत्रिफलाचविरेचनेशस्ताः ॥ सौवीरकंतुपोदकमालेडनमासवांस्तुशीध्वादीन् । शसन्त्यधोहराणांयथाविरेकःक्रमश्चेष्टः ॥

अर्थ—हृदयके दोषोंसे उत्क्लिष्ट होने पर और कुष्ठरोगके शरीरके ऊपरले भाग में होनेपर इन्द्रजौ, मेनफल, मुलहठी, परवल और नीमके रसको पान कराके वमन करावै

कुष्ठरोगोंमें वमन कराने के लिये मेनफल के शीतकषाय वा कषायमें शहत और मुलहटी का चूर्ण डालै । तथा निसोथ दन्ती और त्रिफला ये विरेचन में हितकारी हैं

विरेचनकर्त्ता द्रव्यों में सौवीरक, तुषोदक आसव वा शीधु लैना चाहिये तत्पश्चात् विरेचन में जो जो क्रम वर्णन किया गयाहै वह भी करना चाहिये ।

कुष्ठमें स्थापन प्रयोग ।

दार्वीबृहतीभिर्व्यैःपटोलपिचुमर्दमदनकृतमालैः । सस्नेहैरास्थाप्यःकुष्ठीसकलिङ्गयवमुस्तैः ॥

अर्थ—दारुहल्दी, बडी कटेरी, खस,परवल, नीम, मेनफल, कंजा, इन्द्रजौ और मोथा इनके क्वाथ में सिद्ध किये हुये स्नेहसे कोढी को आस्थापनवस्ति देवै ॥

कुष्ठ में अनुवासन प्रयोग ।

वातोल्वणंविरिक्तंनिरूढमनुवासनार्हमालक्ष्य । फलमधूकनिम्बकुटजैःसपटोलैः॥ साधयेत्स्नेहम् ॥

अर्थ—विरेचन और निरूहण देने के पश्चात् यदि रोग वाताधिक्य हो तो रोगी को मेनफल, मुलहटी, नीम, कुडाकी छाल और परवल इनके साथ सिद्ध किये हुए स्नेहकी अनुवासन वस्ति देवै यदि यह अनुवासन के योग्य हो ।

कुष्ठमें नस्य प्रयोग ।

दन्तीमधूकसैन्धवफणिज्झकाःपिप्पलीकरञ्जफलम् । नस्यंस्यात्सविडङ्गंक्रिमिकुष्ठकफमदोपघ्नम् ॥

अर्थ - दन्ती, मुलहटी, सेंधानमक, फाणिज्झक, पीपल, कंजा और वायविडंग इनकी नस्य देने से क्रिमिरोग कुष्ठ और कफदोष नष्ट होजाते हैं ।

अन्य क्रम ।

वैरेचनिकैर्धूमैःश्लोकस्थानेरितैश्चशाम्यन्ति । क्रिमयःकुष्ठकिलासमयोजितैरुत्तमाङ्गस्थाः ॥ स्थिरकठिनमण्डलानांस्विन्नानांप्रस्तरप्रणालीभिः । कूर्चैर्विघट्टितानांरक्तोत्क्लेशोपनेतव्यः ॥

अर्थ—सूत्रस्थान में जो विरेचनकर्त्ता धूम वर्णन किये गये हैं उन के लैनेसे शिरःस्थ क्रिमिरोग, कुष्ठ और किलास शीघ्र नष्ट होजाते हैं ।

स्थिर और कठोर चकत्तों को जो प्रस्तर स्वेदनकी रीति से स्वेदित किये गये हैं अथवा कूर्चा से विघट्टित किये गयेहैं उनके उत्क्लेशित रक्तको निकाल देना चाहिये ।

रक्तमोक्षणविधि ।

आनूपवारिजानांमांसानांपोट्टलैःसुखोष्णैश्च ॥ स्विन्नोत्स्विन्नंविलिखेत्कुष्ठंतीक्ष्णेनशस्त्रेण ॥ रुधिरागमार्थमथवाशृङ्गः

लाबूभिराहरेद्रक्तम् । प्रच्छितमल्पकुष्टं विरेचयेद्वाजलौकाभिः ॥ येलेपाःकुष्ठा नांयुज्यन्तेनिर्हृताश्रदोषाणाम् । संशोधिताशयानांसद्यःसिद्धिर्भवेत्तेषाम् ॥

अर्थ—आनूप और औदक पशु पक्षियों के मांसकी सुखोष्ण पोटलियोंसे स्विन्न और उत्स्विन्न कुष्ठको तीक्ष्ण शस्त्रसे रुधिर निकालनेके लिये लेखन करै अथवा सींगीऔर अलाबूसे रक्तको निकाले तथा क्षुद्र कुष्ठ में पछनालगाकर जोकोंसे रुधिरको निकाले

कोष्ठके शुद्ध होने पर और रुधिर तथा दोषोंके निकालनेपर जो लेप किये जाते हैं वे तत्काल फलप्रद होतेहैं ।

येपुनशस्त्रंक्रमतेस्पर्शेन्द्रियनाशनानियानि स्युः । तेषुनिपात्यक्षाररक्तंचदोषचनिःस्राव्य ॥ पाषाणकठिनपरुषेसुप्तेकुष्ठे स्थिरेपुराणेच ॥ पीतागदस्यकार्योविषैः प्रदेहोऽगदैश्चानु ॥ स्तब्धानिसुप्तसुप्ता न्यस्वेदनकण्डूलानिकुष्ठानि । कूर्चैर्दन्ती त्रिफलाकरवीरकरञ्जनिम्बकुटजानाम् ॥ जात्यर्कनिम्बकुटजैर्वापत्रैःशस्त्रैःसमुद्रफेनैर्वा । घृष्टानिगोमयैर्वाततःप्रलेपैःप्रदेह्यानि ॥

अर्थ—जिन कुष्ठोंमें शस्त्र काम नहीं देता है और जिनमें केवल त्वचा का नाश होताहै उनमें क्षार लगाकर रक्त और दोषोंको निकाल डाले ।

जो कुष्ठ पत्थरके समान कठोर, परुष सुप्त; स्थिर और पुराना होता है उसमें रोगीको विषनाशक औषधों का पान करावे। तत्पश्चात् विष औषधिओंका लेपन करै ।

जो स्तब्ध, अत्यन्त शून्यता से फैली हुई पसीनारहित और खुजलीयुक्त होती हैं उनको दन्ती; त्रिफला; कनेर; कंजा; नीम कीछाल; कुडाकी छाल इनकी कूर्चोसे अथवा चमेली; आक; नींम और कुडाके पत्तों से; अथवा शस्त्रोंसे; अथवा समुद्रफेनसे अथवा गोवरसे रिगड़कर प्रलेप करै ॥

पित्तकुष्ठकी चिकित्सा ।

मारुतकफकुष्ठघ्नंकर्मोक्तंपित्तकुष्ठानांकार्यम् । कफपित्तरक्तहरणंतिक्तकषायैःप्रशमनञ्चसर्पींषि ॥ तिक्तकानिचयच्चान्यद्रक्तपित्तनुत्कर्म । बाह्याभ्यन्तरमग्र्यंतत्कार्यंपित्तकुष्ठघ्नम् ॥

अर्थ—वातकुष्ठ और कफकुष्ठकी चिकित्सा कही गई है और पित्तकुष्ठमें कफपित्त तथा रक्तनाशककर्म करना चाहिये । तिक्तकषाय; तिक्तघृत तथा अन्य रक्तपित्तनाशक कर्म एवं पित्तकुष्ठ के नाशकरने वाले उत्तम २ बाह्य और आभ्यन्तरकर्म करने चाहियें ।

दोषाधिक्यविभागादित्येतत्कर्मकुष्ठनुन्नोक्तम् । वक्ष्यामिशमनमायसःत्वग्दोषसामान्यात् ॥

अर्थ—वातपित्तादि दोषोंकी अधिकताके अनुसार कुष्ठनाशक कर्मोंका वर्णन किया गया है अब त्वग्दोषकी समानता से कुष्ठनाशक कर्मोंका वर्णन करेंगे । सब प्रकार के कोढ त्वचाको बिगाडतेहैं इस लिये सबप्रकार की कोढोंमें त्वग्दोष साधारण धर्म है ॥

कुष्टनाशक प्रयोग ।

दार्वीरसाञ्जनंवागोमूत्रेणप्रबाधतेकुष्ठम् । अभयाप्रयोजितावामांसव्योषगुडतैलाः ॥

अर्थ ....दारुहल्दी वा रसौत वा हरडका गोमूत्र के साथ प्रयोग करने से कुष्ठ नष्ट होजाताहै; इसमें मांस, सोंठ, मिरच, पपिल, गुड तेलका त्याग करदे ।

कुष्टनाशक दूसरा प्रयोग ।

मूलंपटोलस्यतथागवाक्ष्याःपृथक्पलांशं त्रिफलात्वचश्च । स्यात्त्रायमाणाकटुरोहिणीच भागार्द्धिकानागरपादयुक्ता ॥ पलंत्वथैकंसहचूर्णितानांजलेश्रृतंदोषहरं पिबेन्ना । जीर्णेरसेधन्वमृगद्विजानांपुराणशाल्योदनमाददीत ॥ कुष्ठानिशोफंग्रहणीप्रदोषं अर्शांसिकृच्छ्राणिहलीमकञ्च षड्रात्रयोगेननिहन्तिचैव हृद्वस्तिशूलंविषमज्वरञ्च ॥

अर्थ—परवलकी जड; इन्द्रायणकीजड; त्रिफला की त्वचा [गुठली निकालकर] त्रायमाणा; कुटकी ये आधे २ पल लेवै और सोंठ तोले भर लेकर सवका चूर्णकर लेवै; इस चूर्ण मेंसे प्रतिदिन एकपल लेकर जल के साथ औटाकर पान करै । औषध के पचनेपर धन्वदेशस्थ पशुओंके मांसरसके साथ पुराने शालीचांवलोंका भात छः दिवस तक सेवन करनेसे शोक, कोढ ग्रहणीदोष, कृच्छ्रसाध्यअर्श;हलीमक;हृद्शूल; वस्तिशूल, और विषमज्वर ये नष्टहोजाते हैं

कुष्टनाशक अन्ययोग ।

मुस्तंव्योषंत्रिफलामञ्जिष्ठादारुपञ्चमूलेद्वे । सप्तच्छदनिम्बत्वक्सविशालश्चित्रकोमूर्वा ॥ चूर्णंतर्पणभागैर्नवभिःसंयोजितंसमध्वाज्यम् । श्रेष्ठंकुष्ठनिवर्हणमेतत्प्रायोगिकंभक्ष्यम् ॥ श्वयथुंसपाण्डुरोगं श्वित्रंग्रहणीप्रदोषमर्शांसि । ब्रध्नभगन्दरपिडकाकण्डूकोठांश्चविनिहन्ति ॥

अर्थ— मोथा, त्रिकुटा, त्रिफला मजीठ दारुहल्दी, लघुपंचमूल, वृहत्पंचमूल सप्तपर्ण नीमकी छाल, इन्द्रायण की जड, चीता, मरोडफली, ये सब समान भागलेकर नौगुना जौ का सतू मिलाकर शहत और घृतके साथ सेवन करै। यह प्रयोग कुष्ठ के नाश करने में अत्यन्त उत्तम है । यह शोथ, पाण्डुरोग श्वित्रकुष्ठ, ग्रहणीदोष, अर्श, ब्रध्न, भगन्दर, पिडका कण्डू, और कोढ इन सब रोगोंको दूर करता है ।

सुप्तकुष्ठनाशक प्रयोग ।

त्रिफलातिविषाकटुकानिम्बकलिंगकावचापटोलानाम् । मागधिकारजनीद्वयपद्मकमूर्वाविशालानाम् ॥ भूनिम्बपलाशानामद्याद्विपलंततस्त्रिवृद्द्विगुणा । तस्याश्चपुनर्ब्राह्मीतच्चूर्णंसुप्तिनुत्परमम् ॥

अर्थ—त्रिफला अतीस, कुटकी नीमकी छाल, इन्द्रजौ, वच, परवल, हल्दी, दारुहल्दी, पद्माख, मरोडफली, इन्द्रायणकीजड, चिरायता, ढाककीछाल इनमें से प्रत्येक दो दो पल लेवै, निसोथ चारपल और बारहपल, ब्राह्मी इन सबका चूर्ण बनाकर सेवन करने से सुप्तकुष्ठ नष्टहोता है ।

मध्वासवका प्रयोग ।

खदिरसुरदारुसारंश्रपयित्वाद्वसेनतो .

यार्थः॥ क्षौद्रप्रस्थेकार्यःकार्येतेचाष्टपलिकेच ॥ ततश्चायश्चूर्णानामष्टपलंप्रक्षिपेत्तथामूनि । त्रिफलात्वक्मरिचम्पत्रङ्कनकञ्चकर्षांशम् ॥ मत्स्याण्डिकामधुनमा तन्मासमायसेभाण्डे । मध्वासवमाचरतः कुष्ठकिलासेशममयाताः ॥

अर्थ–खैरकी लकडी और देवदारु का गूदा इनको इनही के रस में पकावै जब पकजाय तव उस में दोप्रस्थ क्षौद्र, आठ२ पल उक्त दोनों चूर्ण, आठ पल लोहचूर्ण और एक २ कर्ष त्रिफला की त्वचा, कालीमिरच, तेजपात और धतूरा, शहतके बरावर मिश्री इन सबको मिलाकर एक महीने पर्य्यंत लोहे के पात्रमें भरकर रखदे, इस तरह मध्वासव तयार होता है, इसके सेवन करनेसे कुष्ठ और किलासरोग नष्ट होजाते हैं ।

कनकविन्दु अरिष्ठ ।

खदिरकषायद्रोणंकुम्भेघृतभावितेसमाधाप्य । द्रव्याणिचूर्णितानिदेयानित्वष्टपलकानि । त्रिफलाव्योषविडङ्गरजनीमुस्ताटरूषकेन्द्रयवा । सौवर्णत्वक्छिन्नामासंनिदधीतधान्यराशौच । प्रातःप्रातः पिवतःपुरुस्यामासेनकुष्ठहृद्भवति । पक्षेणार्शःश्वासभगन्दरंकासकिलासदुष्टम् । पाण्डुसवातरक्तंहन्यात्सप्रमेहशोषाश्च । नाभवतिकनकवर्णः पीत्वारिष्टं कनकविन्दुम् ॥

अर्थ—खैरसारका एक द्रोण क्वाथ घीसे चिकने कियेहुए वर्त्तनमें भरकर उसमें नीचे लिखेहुए द्रव्य प्रत्येक आठ आठ पल डाल देवै, जैसे- त्रिफला, सोंठ, मिरच, पीपल, वायविडंग, हल्दी, नागरमोथा, अडूसा, इन्द्रजौ, गिलोय और धतूरे की जडकी छाल इन्है डालकर उस घडे को धानके ढेरमें एक महिने तक गडा रहने दे फिर इसका प्रतिदिन प्रातःकाल सेवन करनेसे एक महिनेमे कुष्ठ जाता रहता है और पन्द्रह दिन सेवन करने से ववासीर, श्वास, भगंदर, खांसी, किलास, पांडुरोग, वातरक्त प्रमेह और शोष दूर होजाते हैं. इस कनकविन्दुनामक अरिष्ट के सेवनसे मनुष्य सुवर्ण के रंग के सदृश होजाताहै.

कुष्ठेष्वनिलकफकृतेष्वेवंपेयस्तथैवपित्तेषु । कृतमालकाथश्चाप्येषविशेषात्कफकृतेषु ॥

अर्थ—वातकफसे उत्पन्न हुए कुष्ठमें तथा पित्तज कोढमें अमलतास का काथ पीना चाहिये और कफज कोढमें तो यह क्वाथ विशेष उपयोगी होता है ।

श्वित्रकुष्टनाशक प्रयोग ।

त्रिफलासवश्चगौडःसचित्रकः श्वित्ररोमकुष्टघ्नः । क्रमुकदशमूलदन्तीवराङ्गमधुयोगसंयुक्तः ॥

अर्थ—त्रिफला का आसव और गौड (गुडकी शराव) इनको चीतेके साथ पान करनेसे श्वित्रकुष्ठ नष्ट होजाता है अथवा सुपारी, दशमूल, दन्ती, दालचीनी इन के काथ में शहत मिलाकर गुडके मद्य के साथ पीने से श्वित्रकुष्ठ नष्ट होताहै ॥

कुष्ठपर पथ्यापथ्या ।

लघूनिचान्नानिहितानिविद्यात् कुष्ठेषुशाकानिचतिक्तकानि । भल्लातकैश्चत्रिफलैः सनिम्बैर्युक्तानिचान्नानिघृतानिचैव ॥ पुराणधान्यान्यथजाङ्गलानिमांसानिमुद्राश्चपटोलयुक्ताः । शस्तानगुर्वम्लपयोदधीनिनानूपमत्स्यानगुडास्तिलांश्च ॥

अर्थ—हलकाअन्न, तिक्तशाक, भिलावा त्रिफला और नीमके साथ सिद्ध किया हुआ अन्न और घृत, पुराने चांवल, जांगलपशुओंका मांस, मूंग, परवल ये सब कुष्ठरोग पर हितकारीहैं । भारी, खट्टा अन्न, दूध,दही, आनूपजीवोंका मांस, मछली, गुड और तिल ये सब अहित हैं ।

कुष्ठपर लेप ।

एलाकुष्ठन्दार्वीशतपुष्पाचित्रकंविडङ्गश्च । कुष्ठेलेपनमिष्टंरसाञ्जनश्चाभयाचैव ॥

अर्थ----इलायची, कूठ, दारुहलदी, सोंफ चीता, वायविडंग, रसौत और हरड इनका लेप कुष्ठ रोग पर करना चाहिये ।

दूसरा लेप

चित्रकमेलाविम्बींवृषकात्रिवृदर्कनागरकम् । चूर्णीकृतमष्टाहंभावयितव्यम्पलाशस्य ॥ क्षारेणगवांमूत्रस्रुतेनतेनास्यमण्डलान्याशु । भिद्यन्तेचविशन्तिचलिप्तान्यर्काभितप्तानि ॥

अर्थ....चीता, इलायची, कंदूरी,अडूसा, निसोथ, आक और सोंठ इनका चूर्ण करके फिर गौके मूत्रमें ढाकका क्षार मिला कर उसे छानले इस छनेहुए मूत्रकी पूर्वोक्त चूर्णको आठ दिन तक भावना देवे, फिर इस लेपको लगाकर सूर्यकी धूप से उस स्थानको तपावे, इस लेपसे मण्डल कुष्ठ बहुत शीघ्र भिन्न होकर विलीन हो जाताहै ।

कुष्ठपर अन्य लेप ।

मांसीमरिचंलवणंरजनीतगरंसुधागृहोद्भूमःमूत्रंपित्तंक्षारःपालाशःकुष्ठनुल्लेपः ॥ त्रपुसीसमयश्चूर्णमण्डलनुत्फल्गुचित्रकंबृहती । गोधारसःसलवणंदारुचमूत्रञ्चमण्डलनुत् ॥ कदलीपलाशपाटलिनिचुलक्षाराम्भसामसन्नेन । मांसेपुतोयकार्यकार्यम्पिष्टेचकिण्वेच॥तैर्मोदकःसुजातःकिण्वैर्मनितमलेपनंशस्तम् । मण्डलकुष्ठविनाशनमातपसंस्थेक्रिमिघ्नञ्च ॥

अर्थ....जटामासी,कालीमिरच, सेंधा नमक, हलदी, तगर, गृहधूम, मूत्र पित्त और ढाकका खार इनका लेप करनेसे कुष्ठरोग जाता रहताहै । अथवा रांग, सीसा, लोहचूर्ण, चीता और बडी कटेरी इनका लेप करने से मण्डल कुष्ठरोग जाता रहताहै अथवा गोधारस (लताविशेष) सैंधानमक, दारुहलदी और गोमूत्र इनका लेप करने से मण्डलकुष्ठ दूर होजाताहै अथवा केला,ढाक, पाटला, हिज्जल इन के क्षारके शुद्ध जल में मांसका पाक करे फिर उसी जलमें चांवलों को पीसकर उसमें सुराकिण्व मिला दे। यह सब मिलकर मोदक के समान गोलासा बन जायगा फिर, इसमें से सुराकिण्व निकालकर लेप करनेसे मण्डल कुष्ठ जाता रहताहै और लेपित भागको धूप में तपानेसे क्रिमिरोग नष्ट होजाताहै ।

कुष्ठपर अन्य प्रयोग ।

मुस्तंमदनंत्रिफलाकरञ्जआरग्वधंकलिङ्गयवाः । दार्वीससप्तपर्णास्नानंसिद्धार्थकंनाम ॥ एषकषायोवमनंविरेचनंवर्णकस्तथोद्धर्षः । त्वग्दोषकुष्ठशोफप्रवाहनः पाण्डुरोगघ्नः॥कुष्ठकरञ्जबीजान्येडगजः कुष्ठसूदनोलेपः । प्रपुन्नाडबीजसैन्धवरसाञ्जनकपित्थरोध्राश्च ॥ करवीरमूलफल्कःकुटजकरञ्जयोःफलत्वचन्दार्व्याः सुमनःप्रवालयुक्तोलेपःकुष्ठापहःसिद्धः ॥ रोध्रस्यधातकीनांवत्सकबीजस्यनक्तमालस्यकल्कश्चमालतीनांकुष्ठेषुप्रदर्षनालेपः शैरीषीत्वक्पुष्पंकार्पास्याराजवृक्षपत्राणि । पिष्ट्वाचकाकमाचीचतुर्विधःकुष्ठनुल्लेपः॥

अर्थ—मोथा, मेनफल, त्रिफला, कंजा अमलतास, इन्द्रजौ, दारुहलदी, सप्तपर्ण और सफेद सरसों इनको डालकर गरम किये हुए जलसे स्नान करे । तथा इसी कषायके पान करानेसे वमन और विरेचन होकर कुष्ठ नष्ट होजाता है तथा इन्ही द्रव्योंके कल्कसे उबटना करने पर त्वचा के दोष, कुष्ठ, सूजन, प्रवाहन और पाण्डुरोग जाते रहते हैं अथवा कूठ, कंजाके बीज, चकवंड, इन का लेप करनेसे कुष्ठरोग शान्त होता है । अथवा चकवडके बीज, सैंधानमक, और, रसौत, कैथ, लोध, कनेर की जड, कुडाकी छाल,कंजा, दारुहलदीकी छाल और फल, चमेली की कोंपल इनका लेप करनेसे कुष्ठ दूर होता है ।

लोध, धायके फूल, इन्द्रजौ, कंजा और मालती इनको पीसकर देह पर मले और लेप करे तो कुष्ठ दूर होताहै । सिरसकी छाल, कपासके फूल, अमलतासके पत्ते और मकोय इन चार प्रकारका लेप करने से कुष्ट रोग दूर होजाता है ॥

सातप्रकार के कषायादि योग ॥

दार्व्याःरसाञ्जनस्यचानिम्बपटोलस्यखदिरसारस्य । आरग्वधवृक्षकयोस्त्रिफलायाः सप्तपर्णस्य । इतिषट्कषाययोगानिर्दिष्टाः सप्तमश्चतिनिशस्य । स्नानेपानेचमतास्तथाप्रदेहश्चास्यसारस्य ॥ आलेपनंप्रघर्षणमवचूर्णनमेतएवचकषायाः । तैलघृतपाकयोगेचेष्यन्तेकुष्ठशान्त्यर्थम् ॥

अर्थ—दारुहलदी और रसौतका क्काथ नीमकी छाल और परवलका क्काथ, खैर सारका क्काथ, अमलतास और इन्द्रजौ का क्काथ, त्रिफलका क्काथ, सप्तपर्णका क्काथ और सातवां तिनिशका क्वाथ इन क्काथों का स्नान और पानमें प्रयोग करने से कुष्ठ जाता रहता है तथा तिनिशके सारका लेप, प्रघर्षण और अवचूर्णन [बुर्की] भी हितहैं, इसीतरह उक्त कषायों में सिद्ध किया हुआ तेल और घीभी कुष्टनाशक होताहै

कुष्टपर अन्य प्रयोग ।

त्रिफलानिम्बपटोलमञ्जिष्ठारोहिणीवचारजनी । एषकषायोऽभ्यस्तोहिनास्तिककफपित्तजंकुष्ठम् ॥ एतैरेवचसर्पिःसिद्धवातोल्वणंजयतिकुष्ठम्। एषचकल्पोदृष्टःखदिरासनदारुनिम्बानाम् ॥

अर्थ—त्रिफला, नीम, परवल, मजीठ, कुटकी, वच, हल्दी इनके कषायके पीनेका अभ्यास करनेसे कफपित्त से उत्पन्न हुआ कुष्ठ जाता रहताहै। इसी कषाय में सिद्ध कियाहुआ घृत वाताधिक कुष्ठ को जिय करताहै। और यही विधि खैर, असन, दारुहल्दी और नीम के क्वाथ की है।

अन्यप्रयोग ॥

कुष्ठार्कतुत्थकट्फलमूलकबीजानिरोहिणी कटुका । कुटजफलोत्पलमुस्तंबृहतीकरवीरकाशीशम् ॥ एडगजनिम्बपाठादुरालभाचित्रकोविडंगश्च । तिक्तेक्ष्वाकुबीजंकम्पिल्यकसर्षपवचादार्वी ॥ एतैस्तैलंसिद्धंकुष्ठघ्नंयोगएषचालेपः । तन्मर्दनंप्रघर्षणमवचूर्णनमेषएवेष्टः ॥

अर्थ—कूठ, आक, नीलाथोथा, कायफल, मूलीकेबीज, कुटकी, इन्द्रजौ, नीलोफर, मोथा, वडीकटेरी, कनेर, कसीस, चकवड, नीमकीछाल, पाठा, जवासा, चीता, वायविडंग, कडवीतूंबी के बीज, कबीला, सरसों, वच, दारुहल्दी, इनके कषायमें सिद्धकियाहुआ तेल कुष्ठनाशक है, तथा इन्हीं द्रव्योंके कल्कका लेप, मालिश, प्रघर्षण और अवचूर्णनभी हितकारक है ॥

कनेर का तैल ॥

श्वेतकरवीररसोगोमूत्रंचित्रकोविडंगश्च कुष्ठेषुतैलयोगाःसिद्धोयंसम्मतोभिषजाम्

अर्थ—सफेद कनेरकारस, गोमूत्र, चीता, और वायविडंग इनमें सिद्ध कियाहुआ तेल कुष्ठनाशकहै इसपर सब वैद्योंकी सम्मतिहै

अन्यप्रयोग ॥

श्वेतकरवीरपल्लवमूलत्वग्वत्सकविडंगश्च कुष्ठार्कमूलसर्षपशिग्रुत्वग्रोहिणीकटुका ॥ एतैस्तैलंसाध्यंकल्कैःपादांशिकैर्गवांमूत्रम् दत्वातैलचतुर्गुणमभ्यंगःकुष्ठकंडूघ्नः ॥

अर्थ—सफेद कनेरके पत्ते, जड, छाल, इन्द्रजौ, वायविडंग, कूठ, आककीजड़, सरसों, सहजनेकीछाल, कूठकी छाल, कुटकी इनके कल्कमें चौगुना तेल और तेल से चौगुना गोमूत्र डालकर पकावै फिर इसकी मालिश करै तौ कोढ और खुजली दूर होती है ॥

अन्यतैल ॥

तिक्तेक्ष्वाकुबीजंद्वेतुत्थेरोचनाहरिद्रेद्वे । बृहतीफलमेरण्डःसविशालःचित्रकोमूर्वा ॥ काशीशहिंगुशिग्रुत्र्यूषणसुरदारुतुम्बरुविडङ्गम् । लांगलकंकुटजत्वक्कटुकाख्यारोहिणीचैव ॥ सर्षपकल्कैरेतैर्मूत्रैचतुर्गुणे साध्यम् । कण्डूकुष्ठविनाशनमभ्यङ्गान्मारुतकफघ्नम् ॥

अर्थ—कडवीतूंबीके बीज, दो प्रकार का थोथा, गोरोचन, दोनों हलदी, कटेरीकाफल, अण्डीकीजड, इन्द्रायणकीजड, चीता, मरोडफली, कसीस, हींग, सहजना, त्रिकुटा, देवदारु, धनियां, वायविडंग, लांगली, कुडाकीछाल, कुटकी, और सरसों इनके कल्कमें तेल और तेल से चौगुना गोमूत्र डालकर तेलको पकाले इस तेलका मर्दन करनेसे खुजली, कोढ, वात और कफ नष्ट होजाते हैं ॥

कनकक्षीरतैल ॥

कनकक्षीरीशिलाभार्गीदन्तीफलानिमूलं च । जातीफलानिम्बवालसर्षपलशुनविडङ्गकरञ्जत्वक् ॥ सप्तच्छदार्कपल्लवमूलत्वङ्निम्बाचित्रकास्फोताः । गुञ्जैरण्डबृहतीमूलकसुरसार्जकफलानि ॥ कुष्ठंपाठामुस्तंतुम्बुरुमूर्वावचासपड्ग्रन्था ॥ एडगजकुटजशिग्रुत्र्यूषणभल्लातकक्षवकाः ॥ हरितालमवाक्पुष्पीतुत्थंकम्पिल्लकोमृतासंगः ॥ सौराष्ट्रीकासीसंदार्वीत्वक्सर्जिकालवणम् ॥ कल्कैरेतैस्तैलंकरवीरकमूलपल्लवकषाये । सार्षपमथवातैलं गोमूत्रेचतुर्गुणेसाध्यम् ॥ स्थाप्यंकटुकालाबुनिसिद्धंतेनास्यमण्डलान्याशु । भिन्द्याद्विपगभ्यंगात्क्रिमींश्चकण्डूंविनिहन्यात्कुष्ठम् ॥

अर्थ—स्वर्णक्षीरी, मनासिल, भाडंगी, दन्तीफल, दन्तीमूल, जायफल, चमेली के पत्ते, सफेदसरसों, ल्हसन, वायविडंग, कंजाकीछाल, सप्तपर्णी, आकके पत्ते, जड और छाल, नीमकीछाल, चीता, कोयल, चिरमठी, अरण्ड, बडीकटेरी, मूलक, सुरसातुलसी, अर्जकतुलसी, मैनफल, कूठ, पाठा, मोथा, धनियां, मूर्वा पट्ग्रन्था, वच, चकवड, कुडा, सहजना, त्रिकुटा, भिलाया, क्षवक, (तुलसीभेद), हरताल, सौंफ, नीलाथोथा, कबीला, अमृतासंग (मुर्दासिंग), सौराष्ट्रदेशकी मिट्टी, सीसा, दारुहलदीकीछाल, सज्जीखार, सेंधानमक, इनकेकल्क तथा कनेरकीजड और पत्तों के कषायमें सरसोंकातैल और उससे चौगुना गोमूत्र डालकर तैल सिद्धकरै, इस तैलको तूंबीमें भरकर रखदेवे इस तेलके लगानेसे मण्डलकुष्ठ, क्रिमिरोग कंडू तथा सब प्रकारके कुष्ठ दूर होजातेहैं।

सिध्मलेप ॥

कुष्ठंतमालपत्रंमरिचंसमनःशिलंसकासीशम् । तैलेनयुक्तमुचितंसप्ताहंभाजनेताम्रे॥ तेनालिप्तंसिध्मंसप्ताहाद्व्येतितिष्ठतोघर्मे। मासान्नरं किलासस्नानंमुक्त्वा विशुद्धतनोः ॥

अर्थ—कूठ, तमाखूकापत्ता, कालीमिरच, मनसिल, कसीस इन सबका चूर्णबनाकर तेलमें सानकर सात दिवसतक तांबेके पात्रमें रखदेवै, फिर इसको लगाकर धूपमें बैठजाया करै,ऐसा करनेसे सिध्मकुष्ठ जातारहताहै । तथा शुद्धदेहवाला मनुष्य इसको एक महीनेतक लगावै तो किलास कुष्ठ जातारहताहै परन्तु इसमें स्नानका निषेधहै ॥

अन्य तैल ।

सर्षपकरञ्जकोशातकीनांतैलान्यथेंगुदीनां च॥ कुष्ठेषुहितान्याहुस्तैलंयच्चापिखदिरस्यतैलानि ।

अर्थ—सरसों, कंजा, तोरईके बीज, गोंदी और खैर इन सबके जुदे जुदे तेल कुष्ठनाशक होतेहैं ।

विपादिकी का चिकित्सा ।

जीवन्तीमञ्जिष्ठादार्वीकाम्पिल्लकस्तथातुत्थम् ॥ एषघृततैलपाकःसिद्धःसिद्धेचसर्जरसःक्षेप्यः । समधूच्छिष्टोविपादिकांतेनशाम्यतीत्युक्तम् । चर्मैककुष्ठ किटिभंकुष्ठंशाम्यत्यलसकञ्च ।

अर्थ—जीवन्ती, मजीठ, दारुहलदी, कबीला, नीलाथोथा, इनमें घृत और तेलको एक साथ पकावे फिर पकतेसमय राल और मोम डालदे इसको बिवाईमे भरदेनेसे बिवाई जाती रहतीहै, तथा चर्मकुष्ठ एक कुष्ठ किटिभ, कुष्ठ, और अलसक ये नष्ट होजातेहैं।

मण्डल कुष्ठपरलेप।

किण्वंवराहरुधिरंपृथ्वीकासैंधवञ्चलेपः स्यात् ॥ लेपोऽयंकुस्तुम्बुरूणिकुष्ठश्चमण्डलनुत्। पूतीकादारुजटिलापद्मव सुराक्षौद्रमुद्गपर्ण्योंच ॥ लेपःसकाकणासोमण्डलकुष्ठापहःसिद्धः ॥

अर्थ—सुराबीज, सूअरका रुधिर, काला जीरा, सेंधानमक इनका लेप तथा इसीमें धनियां और कूठ मिलाकर लेप करनेसे मण्डल कुष्ठ दूर होजाताहै। अथवा कंजा देवदारु, जटामांसी पद्मक, शहत, मुद्गपर्णी और काकनासा इनका लेप करने से भी मण्डल कुष्ठ नष्ट होताहै।

छःप्रकार के लेप

चित्रकशोभाञ्जनकौगुडूच्यपामार्गदेवदारूणि ॥ खदिरोधवश्चलेपःश्यामादन्तीद्रवन्तीच। लाक्षारसाञ्जनैलापुनर्नवाचेतिकुष्ठिनोलेपाः ॥ दधिमण्डयुताःसर्वेदेयाःषण्मारुतकफघ्नाः।

अर्थ—चीता और सहजना। गिलोय, ओंगा, देवदारु। खैर और धवखैर। श्यामा-दन्ती और द्रवन्ती। लाख, रसौत और इलायची। तथा पुनर्नवा। इन छः ओंको पृथक् पृथक् दधिमण्डमें मिलाकर लेप करनेसे कुष्ठ तथा वातकफ दूर होतेहैं।

एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरकसर्षपैःक्रिमिघ्नैश्च क्रिमिकुष्ठमण्डलाख्यंदद्रूकुष्ठश्चशममुपैति। एडगजःसर्जरसोमूलकबीजश्चसिध्मकुष्ठानाम् ॥ काञ्जिकयुक्तन्तुपृथङ्मतमिदमुद्वर्त्तनंक्रमशोलेपाः ॥

अर्थ....चकवड, कूठ, सेंधानमक, सौवीरक, सरसों और वायविडंग इनका लेप करनेसे क्रिमि, कुष्ठ, मण्डलकुष्ठ और दाद जाते रहतेहैं। अथवा चकवड, राल, मूली के बीज इनको पृथक् पृथक् कांजीमें पीस कर उबटना और लेप करनेसे सिध्मकुष्ट जाता रहताहै।

अन्यप्रयोग।

वासात्रिफलापानेस्नानेचोद्वर्त्तनेप्रलेपेच वृहतीसेव्यपटोलाःसशारिवारोहिणीचैव खदिरावघातककुभारोहीतककुटजधव निम्बाः ॥ सप्तच्छदकरवीराःशस्यन्ते स्नानेपानेषु ॥

अर्थ....अडूसा और त्रिफला इनको पीने स्नान करने, उबटने और लेपमें प्रयुक्त करना चाहिये अथवा वडी कटेरी, खस, परवल, सारिवा, कुटकी, खैरसार, अर्जुन, रोहेडा, कुडा, धौ, नीम, सतवर्ण, कनेर इनका स्नान या पीनेमें प्रयोग करना चाहिये।

अभ्यंग प्रयोग।

जलवाप्यलोहकेशरपत्रप्लवचन्दनमृणालानि ॥ भागोत्तराणिसिद्धंमलेपर्नपित्तकफकुष्ठे। यष्ट्याह्वरोध्रपद्मकपटोल

पिचुमर्दचन्दनरसाश्च ॥ स्नानेपानेच हिताःसुशीतलाःपित्तकुष्ठेभ्यः । आलेपनंभियंगुईरेणुकावत्सकस्यचफलानि ॥ सातिविपाचसेव्यासचन्दनारोहिणीकटुका । तिक्तघृतैर्धौतघृतैरभ्यंगोदह्यमान कुष्ठेषु ॥ तैलैश्चन्दनमधुकप्रपुण्डरीकोत्पलयुतैश्चाभ्यङ्गः ।

अर्थ—नेत्रवाला, कुडा, लोहचूर्ण, केसर तेजपात, केवटी मोथा, रक्तचन्दन, कमल नाल, इनका उत्तरोत्तर एक एक भाग अधिक लेकर पित्तकफ कुष्ठमें लेप करना चाहिये (नेत्रवाला एक भाग,कुडा दोभाग, लोहचूर्ण तीन भाग, इसी तरह और भी)। अथवा मुलहटी, लोध, पद्माख, परवल, नीम और रक्तचन्दन इनका ठंडा क्वाथ स्नान और पीनेमें देनेसे पित्तकुष्ठियोंको हित है । अथवा प्रियंगु, हरेणु, इन्द्रजौ, अतीस,खस, रक्तचन्दन, कुटकी इन द्रव्योंका लेप अथवा तिक्त औषधियों से सिद्ध कियाहुआ घी अथवा शतधौत वा सहस्रधौत घृत का लेप करनेसे दाहयुक्त कुष्ठ शान्त होताहै । इसी तरह रक्तचन्दन, मुलहटी पुण्डरिया और नीलोफर इनसे सिद्ध किये हुए तैलका मर्दनभी दाहयुक्त कुष्ठ में हितहै ॥

घृतप्रयोग ॥

क्लेदेमयतितिचांगदाहे विस्फोटकेसचर्मदले ॥ शीताःप्रदेहसेकाव्यधनविरेचकौ घृतंतिक्तम् । खदिरघृतंनिम्बघृतंदार्वी घृतमुत्तमंपटोलघृतम् ॥ कुष्ठेपुरक्तपित्त प्रबलेषुभिपग्जिजतांसिद्धम् ।

अर्थ—कुष्ठमें क्लेद होनेसे, अथवा किसी अंगके गिरपड़नेसे, विस्फोटक वा चर्मदल में शीतल लेप, सेक तथा शिराव्यधन, विरेचन, तिक्तघृत, खादिरघृत, निम्बघृत, दार्वीघृत और पटोलघृत उत्तम होते हैं । येही प्रयोग उस कुष्ठमें हितकर हैं जिनमें रक्तपित्त प्रबल होते हैं ॥

अन्यप्रयोग ।

त्रिफलात्वचोऽर्द्धपलिकाः पटोलपत्रञ्च कार्पिकाःशेषाः ॥ कटुरोहिणीसनिम्बा यष्ट्याह्वात्रायमाणाच । एषकषायःसाध्योदत्त्वाद्विपलमसूराणाम् ॥ सलिलाढकेऽष्टभागेशेषेपूतोरसोग्राह्यः।तेचकषाया ष्टपलेचतुष्पलसर्पिषश्चपक्तव्यम्॥ यावत्स्यादष्टपलंशेषेपेयंततःकोष्णम्। तद्वात पित्तकुष्ठंवीसर्पवातशोणितंप्रबलम् ॥ज्वरदाहगुल्मविद्रधिविभ्रमाविस्फोटकान् हन्ति ॥

अर्थ—त्रिफला की त्वचा आधेपल, पटोलपत्र आधेपल और शेष कुटकी, नीम मुलहटी, त्रायमाणा ये एक २ कर्ष लेवै तथा दो पल मसूर मिलाकर एक आढक जल में इनका क्वाथ करे जब आठवांभाग शेष रहजाय तब छानलेवै । इस क्वाथमेंसे आठ पल लेकर चारपल घृत के साथ पकावै जब आठपल शेष रहजाय तब गुनगुना गरम पीले इसके पान करनेसे वातपितजन्य कुष्ठ, विसर्प, प्रबल वातरक्त, ज्वर, दाह, गुल्म, विद्रधि, विभ्रम और विस्फोटक सब दूर होजाते है ॥

षट्पलघृत ॥

निम्बपटोलेदार्वीन्दुरालभांतिक्तरोहिणीं त्रिफलम् ॥ कुर्यादर्द्धपलांशंपर्पटकंत्राय माणाश्च । सलिलाढकसिद्धानांरसेऽष्ट-भागस्थितेक्षिपेत्पूते ॥ चन्दनकिरा-ततिक्तकमागधिकात्रायमाणाश्च । मुस्तंवत्सकबीजंकल्कीकृत्वार्द्धकार्षिकान् भागान् ॥ नवसर्पिपश्चषट्पलमेतत्सि-द्धंघृतंपेयम् । कुष्ठज्वरगुल्मार्शोग्रहणीपा ण्ड्वामयश्वयथुहारि ॥ वीसर्पपिण्डक पामाकण्डूमदगण्डनुचित्तम् ।

अर्थ—नीम, परवल, दारुहल्दी, जवा-सा, कुटकी, त्रिफला, पितपापड़ा और त्राय-माणा इनको आधे २ पल लेकर एक आ-ढक जलमें चढादे जब आठवांभाग शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवै । फिर इस में रक्तचन्दन, चिरायता, पीपल,त्रायमाणा, मोथा, इन्द्रजौ इनको आधे २ कर्ष लेकर घोटडाले और ताजी घी छःपल मिलाकर सिद्धकरके इस घृतको पानकरै तौ कुष्ट, ज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी, पाण्डुरोग, सूजन, विसर्प, पिडका, पामा, कण्डू, मद तथा ग-लगण्ड दूरहोजाते हैं ॥

महातिक्तघृत ॥

सप्तच्छदंप्रतिविषंशम्पाकंतिक्तरोहिणींपा-ठाम् ॥ मुस्तमुशीरंत्रिफलांपटोलपिचुमर्द पर्पटकम् । धन्वयवासंचन्दनमुपकुल्यांप द्मकंरजन्यौच ॥ षड्ग्रन्थांसविशालांश-तावरींशारिवेचोभे । वत्सकबीजंयासां मूर्वाममृतंकिराततिक्तञ्च ॥ कल्कान् कुर्य्यान्मतिमान् यष्ट्याह्वांत्रायमाणा श्च । कल्कस्यचतुर्भागेजलमष्टगुणंरसोऽ मृतफलानाम् ॥ द्विगुणोघृतात्प्रदेयस्त त्सर्पिःपाययेत्सिद्धम् ।कुष्ठानिरक्तपित्त प्रबलान्यर्शांसिरक्तवाहीनि॥ वीसर्परक्त पित्तंवातासृक्पाण्डुरोगञ्च । विस्फोट कान्सपामान्उन्मादंकामलांज्वरंकण्डूम्॥ हृद्रोगंगुल्मपिडकाअसृग्दरगण्डमालाञ्च हन्यादेतत्सर्पिःपीतंकालेयथाबलंसद्यः। योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्महाति-क्तम् ।

अर्थ—सप्तपर्ण, अतीस, अमलतास, कु-टकी, पाठा, मोथा, खस, त्रिफला, परवल, नीम, पित्तपापड़ा, जवासा, रक्तचन्दन,पी-पल, पद्माख, दोनोंहल्दी, बच, इन्द्रायण की जड, सितावर, दोनों प्रकारके सारिवा, इन्द्रजौ, अडूसा, मरोडफली, गिलोय, चि-रायता, मुलहटी और त्रायमाणा इनका कल्क करै, इसका चौथाईघृत, घृत से अठ-गुना जल, घृत से दूना आंवलेका रस इन में सिद्ध कियाहुआ घृतपान करावै । इस घृतके पान करने से रक्तपित्ताधिक्य कुष्ट, खूनीबवासीर, विसर्प, रक्तपित्त, वातरक्त, पा-ण्डुरोग, विस्फोटक, पामा, उन्माद, का मला, ज्वर, कण्डू, हृद्रोग, गुल्म, पिडका, रक्तप्रदर और गण्डमालारोग शीघ्रही दूर होजाते हैं, यदि यह बलके अनुसार उचि-तकालमें पान कियाजाय तौ जो रोग सैं-कडों योगों से भी अच्छे नहीं हुएहैं वे इस महातिक्तघृत से शीघ्र जाते रहते हैं ॥

दोषेहृतेपनीतेरक्तेवाह्यान्तरेकृतेशमने। स्नेहेचकालयुक्तेनकुष्ठमनुवर्ततेसाध्यम् ॥

अर्थ—दोषोंके दूर होनेपर, फस्त से विगडेहुएरक्तके निकलने पर, वाह्य और आन्तरिक शमन होने से, तथा उचितकालमें स्नेह प्रयोगसे जो साध्यकुष्ठ शान्त होजाता है वह फिर उत्पन्न नहीं होताहै।

महाखदिरघृत।

खदिरस्यतुलाःपञ्चशिंशपाशणयोस्तुले। तुलार्द्धासर्वएवैतेकरञ्जारिष्टवेतसाः। पर्पटःकुटजश्चैववृषःक्रिमिहरस्तथा। हारिद्रोकृतमालश्चगुडूचीत्रिफलात्रिवृत्। सप्तपर्णश्चसङ्क्षुण्णादशद्रोणेपुवारिणः। धात्रीरसंचतुल्यांशंसार्पिषश्चाढकंपचेत् ॥ अष्टभागावशेषंतुकषायमवतारयेत्। महातिक्तककल्कैस्तुयथोक्तैःपलसम्मितैः॥ निहन्तिसर्वकुष्ठानिपानाभ्यङ्गनिसेवना त्।महाखदिरमित्येतत्परंकुष्ठविकारनुत्॥

अर्थ—खेरकीलकड़ी पांच तुला, शीशम और असन एक एक तुला; कंजा, नीम की छाल, वेत, पितपापडा, कुडा, अडूसा, वाय विडंग, दोनों हल्दी अलतास, गिलोय, त्रिफला, निसोथ, सतपर्णी ये सब कुटीहुई आधे तुला दशद्रोण जलमें चढ़ा देवै, जब अष्टमांश शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवै फिर इसमें इसकेवरावर आंवले का रस और एक आढक घृत तथा महातिक्त घृतमें कहे हुए एक एक पल सब द्रव्य लेकर उसमें डालकर पाक करै। इस घृतका पान और अभ्यंगमें सेवन करनेसे सब प्रकारके कुष्ठ दूर होजातेहैं, यह महा खदिर घृत अत्यन्त कुष्ठनाशक होताहै।

क्रिमिनाशकप्रयोग।

प्रपतत्सुलसीकाप्रस्रुतेषुगात्रेषुजन्तुदग्धेषु॥ मूत्रंनिम्बविडङ्गेस्नानंपानंप्रदेहश्च। वृषकुटजसप्तपर्णाःकरवीरकरञ्जनिम्बाश्च॥ स्नानेपानेलेपेक्रिमिकुष्ठनुदःसगोमूत्राः॥ पानाहारविधानेप्रसेचनेधूपनेप्रदेहेच॥ क्रिमिनाशनंविडंगंविशिष्यतेकुष्ठहृत्खदिरः

अर्थ—जो कोई अंगादरव गलकर गिर पडा हो, शरीरमें से लसीका निकलती हो वा कीडे पड़ गयेहों तो गोमूत्र, वायविडंग और नीम इनको पृथक् २ वा मिलाकर काथ करके पीने वा स्नान करने में प्रयुक्त करै अथवा लेपकरै। अथवा अडूसा कुडा, सतपर्ण, कनेर, कंजा, नीम, इन को गोमूत्र में सिद्ध करके स्नान, पान और लेपमें प्रयुक्त करनेसे क्रिमिकुष्ठ जाना रहताहै

खाने, पीने प्रसेक, धूपन और प्रदेह में प्रयोग किये जानेसे वायविडंग और खेर विशेष करके कुष्ठनाशक होते हैं

अन्य प्रयोग।

एडगजःसविडंगोमूलान्यारग्वधस्यकुष्ठानाम्। उद्दालनंश्वदन्तागोऽश्ववराहोष्ट्रदन्ताश्च॥ एडगजःसविडंगोरजनीद्वयराजवृक्षमूलञ्च। कुष्ठोद्दालनमग्र्यस्पिप्पली पाकलंयोज्यम् ॥

अर्थ—चकवड, वायविडंग, अमलतासकी जड तथा कुत्ता, गौ, घोडा, सूअर और ऊंट इन के दांतों को घिसकर कुष्ठपर उवटना करै। अथवा चकवडके वीज, वायविडंग, हल्दी, दारुहल्दी, अमलतास की जड़, पीपल और पाटला इनका भी उवटना करै॥

श्वित्रकुष्ठपर प्रयोग।

श्वित्राणांप्रशमार्थंप्रयोक्तव्यंसर्वतोविशुद्धानाम् । श्वित्रेस्रंसनमग्र्यंमलपूरसइप्यतेसगुडः ॥ तंपीत्वासुस्निग्धोयथावलंसूर्य्यपादसन्तापम् । सेवेतविरिक्तश्चत्र्यहंपिपासुःपिवेत्पेयाम् ॥ श्वित्रेऽङ्गेयेस्फोटाजायन्तेकण्टकेनताभिन्द्यात् । स्फोटेषुविस्रुतेषुप्रातःप्रातःपिवेत्पक्वम् ॥ मलपूमशनंप्रियंगुशतपुष्पांचाम्भसासमुत्क्वाथ्य । पालाशंवाक्षारंयथावलंफाणितोपेतम् ॥ यच्चान्यत्कुष्ठघ्नंश्वित्राणांसर्वमेवतच्छस्तम् । खदिरोदकसंयुक्तंखदिरोदकपानमग्र्यंवा ॥ समनःशिलंविडंगकासीसंरोचनांकनकपुष्पीम् । श्वित्राणांप्रशमार्थंससैन्धवंलेपनंदद्यात् ॥

अर्थ---श्वित्रकुष्ठियोंके लिये संशोधनादिसे शुद्धकरके औषधदेवै ॥ श्वित्रकुष्ठमें कठूमरका रस और गुड मिलाकर विरेचन दैना अत्यन्त हितकारी है । इस रसको पीकर देहपर कुष्ठनाशक तैलका मर्दन करावे और फिर जितना सहसकै उतनी देर धूप में वैठे । विरेचन के पीछे प्यास लगने पर तीन दिनतक केवल पेयाका पान करै ।

श्वित्रकुष्ठ में जो फुन्सियां होजाती हैं उन्हें कांटोंसे वेध डालै, जब उनमें से सब पीव निकलजाय तब प्रतिदिन प्रातःकाल कठूमर, अशन, प्रियंगु और सोंफका क्वाथ पीवे ॥ अथवा ढाकके क्षारको वलके अनुसार गुडकी राव के साथ पान करावे ॥ अथवा जो और २ कुष्ठनाशकप्रयोग वर्णन किये गयेहैं वे भी सब श्वित्रकुष्ठ में उपयोगी होतेहैं विशेष करके खैर के जल के साथ लेप वा खैर के क्वाथादिक का पान करना इस रोग में अत्यन्त हितकारक है । इस रोग में मनसिल, वायाविडंग, कसीस, गोरोचन, अमलतास और सैंधानमक इनका लेप करने से श्वित्रकुष्ठ जाता रहता है ॥

कुष्ठपर अन्यलेप ॥

कदलीक्षारयुतंवाखदिरास्थिदग्धंगवांरुधिरयुक्तम् । हस्तिमदाध्युषितंवामालत्याःक्षारकक्षारम् ॥ नीलोत्पलंसकुष्ठंससैन्धवंहस्तिमूत्रपिष्टंवा । मूलकवीजोवल्गुजलेपःपिष्टोगवांमूत्रे ॥ काकोदुम्बरिकावासवल्गुजचित्रकौगवांमूत्रे । पिष्टामनःशिलावासंयुक्तावर्हिपित्तेन ॥ किलासहन्तामूलान्यावल्गुजानिलाक्षाच । गोपित्तमञ्जनेद्वेपिप्पल्यःकाललोहरजः ॥

अर्थ---केलाकाखार वा खैरकी लकडी काखार गौ के रुधिरमें मिलाकर लगावै अथवा मालतीके खारको हाथीके मदके जल में मिलाकर लगावै, अथवा नीलोफर, कूठ, सेंधानमक इनको हाथीके मूत्रमें पीसकर अथवा मूलीकेवीज और वल्गुजा के वीजका गोमूत्रमें पीसकर लेप करने से श्वित्रकुष्ठ दूर होता है । अथवा कठूमर, अडूसा, वल्गुजा, चीता इनको गौके मूत्रमें पीसकर लेप करै अथवा मनसिलको मोर के पित्ते में पीसकर लेपकरै ॥

वल्गुजाकीजड, लाख, गौकापित्ता, अञ्जन रसौत, पीपल और कान्तिलोहका चू-

र्ण इनका लेप किलासको दूर करता है ।

शुद्धयाशोणितमोक्षैःविरूक्षणैर्भक्षणैश्चशक्तूनाम् ॥ श्वित्रंकस्यचिदेवमशाम्यतिक्षीणपापस्य ॥

अर्थ— किसी किसी मनुष्य का जिसके पाप क्षीण होगयेहैं श्वित्रकुष्ठ,संशोधन, रक्तमोक्षण, विरूक्षण, तथा सत्तूके सेवन से ही जाता रहताहै ।

श्वित्रकुष्ठके भेद ।

दारुणंवारुणंश्वित्रंकिलासंनामभिस्त्रिभिः। विज्ञेयंत्रिविधंतच्चत्रिदोषंप्रायशश्चतत् ॥ दोषेरक्ताश्रितेरक्तंताम्रंमांससमाश्रिते । श्वेतंमेदःश्रितेश्वित्रंगुरुतच्चोत्तरोत्तरम् ॥

अर्थ—श्वित्रकुष्ठ प्रायःदारुण,अरुण,और किलास इन तीन प्रकार का होजाताहै तथा यह कुष्ठ त्रिदोषाश्रित होताहै दोष जब रक्ताश्रित होतेहैं तब श्वित्रका वर्ण लाल होताहै,मांसाश्रित होने पर उसका बर्ण सफेद होताहै, तीनों प्रकारके श्वित्रोंमें लालसे ताम्रवर्ण और ताम्रवर्णसे श्वेतवर्ण कठिन साध्य होताहै ।

श्वित्रको असाध्यत्व ।

यत्परस्परतोभिन्नंबहुयद्रक्तलोमवत्। यच्चवर्षगणोत्पन्नंतच्छ्वित्रंनैवसिद्ध्यति ॥

अर्थ—जो दूसरीसे मिलीहुई नहीं होती, है, जिसका रंग अधिक लाल होताहै जिसमें बहुत रोम होतेहैं और जो बहुत पुरानी होजातीहै वह श्वित्रकुष्ठ असाध्य होतीहै ।

श्वित्रकुष्ठकी उत्पत्तिका हेतु ।

वचांस्यतथ्यानिकृतघ्नभावो निंदागुरूणांगुरुधर्षणञ्च । पापक्रियापूर्वकृतञ्चकर्म हेतुःकिलासस्यविरोधिचान्नम् ॥

अर्थ—मिथ्याभाषण, कृतघ्नता, देवताओं की निन्दा, गुरुजनोंका अपमान, इस जन्म के पाप, पूर्व जन्मके कर्म, तथा विरुद्ध भोजनका सेवन, इन सब कारणोंसे किलास कुष्ठ उत्पन्न होताहै ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

भवन्ति चात्र ।

हेतुर्द्रव्योलिङ्गंसमासतोदोषनिर्देशात् । साध्यासाध्यंकृच्छ्रंकुष्ठापहाश्चयेयोगाः ॥ सिद्धाःकिलासहेतुर्लिंगंगुरुलाघवंशांतिः। इतिसंग्रहःप्रणीतोमहर्षिणाकुष्ठनाशनेऽध्याये ॥स्मृतिबुद्धिवर्द्धनार्थंशिष्यायहुताशवेशाय ।

अर्थ—इस कुष्ठ चिकित्सत नामक अध्यायमें महर्षि पुनर्वसुने कुष्ट रोगोंके हेतु, द्रव्य लक्षण,दोषोंका संक्षिप्त वर्णन, साध्य असाध्य और कृच्छ्रसाध्यके लक्षण,कुष्ठनाशक अनुभव किये हुए प्रयोग, किलासके हेतु, लक्षण, भारापन, हलकापन शमनोपाय,अपने शिष्य अग्निवेशकी स्मरणशक्ति और बुद्धि बढानेके निमित्त वर्णन कियेहै ।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने कुष्टचिकित्सितंनाम सप्तमोऽध्यायः । ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातोराजयक्ष्मचिकित्सितंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम 'राजयक्ष्मचिकित्सितनामक, अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

राजयक्ष्मा के विषयमें प्राचीन इतिहास

दिवौकसांकथयतामृषिभिर्विश्रुताकथा । कामव्यसनसंयुक्तापौराणीशशिनंप्रति ॥ रोहिण्यामतिसक्तस्यशरीरंनानुरक्षतः । आजगामाल्पतामिन्दोर्देहःस्नेहपरिक्षयात् ॥ दुहितॄणामसम्भोगाच्छेषाणाञ्च प्रजापतेः । क्रोधोनिःश्वासरूपेणमूर्तिमान्निःसृतोमुखात् ॥ प्रजापतेर्हिदुहितुरष्टाविंशतिरंशुमान् । भार्यार्थंप्रतिजग्राहनचसर्वास्ववर्तत ॥ गुरुणातमवध्यातंभार्यास्वसमवर्तिनम् । रजोऽन्धमबलंदीनंयक्ष्मा शशिनमाविशत् ॥

अर्थ—चन्द्रमा के विषयमें कामव्यसनसे भरीहुई एक पौराणिककथा ऋषियोंने देवताओंसे सुनी कि चन्द्रमा रोहिणी पर अत्यन्त आसक्तथा अतएव उसने अपने शरीरके स्वास्थ्यपर कुछ ध्यान नहीं दिया इससे स्निग्धताके अत्यन्त क्षीणहोनेपर उसका देह अत्यन्त कृश होगयाथा, चन्द्रमाका रोहिणी पर अत्यन्त प्यारथा इससे दक्षप्रजापति की शेष कन्या चन्द्रमाके सम्भोगसुख से वञ्चितथीं, यह व्यवस्था सुनकर दक्षके मुखसे श्वासद्वारा क्रोध मूर्तिमान प्रकटहुआ दक्षकी अट्ठाईस कन्या चन्द्रमाको व्याही-गईथी परन्तु उसका वर्त्ताव सबके साथ एकसा नथा और रोहिणी के अतिरिक्त किसी अन्य के पास नहीं जाताथा ॥

चन्द्रमा रजोगुणसे अन्धा होकर अपनी भार्य्याओं में असम व्यवहार रखता था इससे दक्षके शापके कारण यक्ष्माने उसमें प्रवेश किया और इस रोगसे वह अत्यन्त दीन हीन होगयाथा ।

चन्द्रमाकी क्षमाप्रार्थना ।

सोऽभिभूतोऽतिगुरुणागुरुक्रोधेननिष्प्रभः देवर्षिसहितोजगामशरणंगुरुम्॥ अथ चन्द्रमसःशुद्धांमतिंबुध्वाप्रजापतिः। प्रसादंकृतवान्सोमस्ततोऽश्विभ्यांचिकित्सितः सविमुक्तग्रहश्चन्द्रोविरराजविशेषतः ॥ तेजसावर्द्धितोऽश्विभ्यांशुद्धंसत्त्वमवापच।

अर्थ....वह अपने श्वशुरके भारी क्रोधसे अभिशप्त होकर कान्तिहीन होगयाथा तब देवता और देवर्षियोंको साथ लेकर अपने श्वशुरकी शरण गया, तदनन्तर जब प्रजापतिने देखा कि चन्द्रमाकी बुद्धि शुद्ध होगई है तब वह प्रसन्न हुआ और अपने शिष्य अश्विनीकुमारको आज्ञादी तब उन्होंने चन्द्रमा की चिकित्साकी । चन्द्रमा ग्रहमुक्त होकर पहिलेसे भी अत्यन्त कान्तियुक्त होगया और अश्विनीकुमारके द्वारा तेजके बढ़जानेसे अत्यन्त शुद्ध सत्वको प्राप्तहुआ ।

यक्ष्माके पर्य्यायवाचीशब्द ।

क्रोधोयक्ष्माज्वरोरोगएकोऽर्थोदुःखसंज्ञितः । यस्मात्सराज्ञःप्रागासीद्राजयक्ष्मा ततोमतः ॥

भेद। त्रिदोपजन्य यक्ष्मामें क्रमसे ये उपद्रव होते हैं॥

इसतरह व्याधियों के समूहोंसे युक्त रोगों के राजा राजयक्ष्माके उत्पन्न होनेके चार हेतु और प्रत्येक हेतुके ग्यारह ग्यारह उपद्रव वर्णन कियेगये हैं॥

राजयक्ष्मा के पूर्वरूप।

पूर्वरूपंमतिश्यायोदौर्वल्यंदोपदर्शनम्। अदोपेष्वपिभावेषुकायेवीभत्सदर्शनम्॥ घृणित्वमश्नतश्चापिवलमांसपरिक्षयः। स्त्रीमद्यमांसप्रियताप्रियताचावगुण्ठनं॥ मक्षिकाघुणकेशानांतृणानांपतनानिच। प्रायोन्नपानेकेशानांनखानाञ्चाभिवर्द्धनम्। पतत्रिभिः पतंगैश्चश्वापदैश्चाभिधर्षणम्॥ स्वप्नेकेशास्थिराशीनांभस्मनश्चाधिरोहणम्। जलाशयानांशैलानांवनानांज्योतिपामपि॥ शुष्यतांक्षीयमाणानांपततांयच्चदर्शनम्। प्राग्रूपं बहुरूपस्यतज्ज्ञेयंराजयक्ष्मणः॥ रूपंत्वस्ययथोद्देशंपरंशृणुसभेपजम्।

अर्थ—इस रोगमें सबसे पहिले प्रतिश्याय होताहै, तत्पश्चात् क्रम से दुर्बलता, अदोप भावों में दोपदर्शन, शरीर में भयानकपन, घृणोत्पत्ति, भोजन करते करते भी बल और मांसकी क्षीणता, स्त्रीप्रियता, (स्त्रियोंका अच्छा लगना) मद्यमांसमें स्पृहा, एकान्तवासकी इच्छा, प्रायःअन्नपान में मक्खी, घुन केश और तृणों का गिरना; केश और नखोंका बहुत बढना; स्वप्नमें पक्षी पतंग और गोहादिसे अभिधर्षण, स्वप्नमें केश, हड्डी और भस्म के ढेरपर चढना; सूखेहुए जलाशय, क्षीण होते हुए पर्वत और वन, तथा गिरते हुए तारागणोंका देखना; ये सब बहुरूपिया राजयक्ष्मामें पूर्वरूपहैं।

अब राजयक्ष्माके लक्षणानुसार औषधों के वर्णनको सुनो॥

राजयक्ष्मा में पुरीपरक्षा।

यथास्वेनोष्मणापाकंशरीरायान्तिधातवः॥ स्रोतसाचयथास्वेनधातुःपुष्यतिधातुना। स्रोतसांसन्निरोधाच्चरक्तादीनाञ्चसंक्षयात्॥ धातूष्मणांचापचयाद्राजयक्ष्मामवर्त्तते। तस्मिन्कालेपचत्यग्नियदन्नंकोष्ठमाश्रितम्॥ मलीभवति तत्प्रायः कल्पतेकिञ्चिदोजसे। तस्मात्पुरीपंसंरक्ष्यंविशेपाद्राजयक्ष्मिणः॥ सर्वधातुक्षयार्त्तस्यवलंतस्याहिविड्वलम्॥

अर्थ—जैसे अपनी २ ऊष्मासे शरीरकी सम्पूर्ण धातु पाकको प्राप्त होती है, इसी तरह अपने अपने स्रोतोंके योग से धातु धातुद्वारा पुष्ट होतेहैं। इसलिये स्रोतोंके रुकने से, रक्तादिक धातुओंके क्षीण होनेसे तथा धातुओंकी ऊष्माके नष्ट होनेसे राजयक्ष्माकी उत्पत्ति होतीहै उससमय अग्नि कोष्ठस्थ जिस अन्नको पचाती है वह प्रायः मल बन जाताहै और उसका बहुत थोडा भाग ओजमें परिवर्त्तित होताहै इसी हेतुसे राजयक्ष्मा रोगीके मलकी विशेप करके रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि सम्पूर्ण

धातुओंके क्षीणहोजानेसे रोगी बहुत निर्बल होजाताहै और केवल विष्ठाके बलसेही वह बल प्राप्त करताहै, इससे जहां तक बनै ऐसा उपाय करता रहै कि विष्ठामें परिवर्तित हुआ सब आहार बाहर न निकलजाय।

रुद्ध स्रोतोंसे राजयक्ष्माकी उत्पत्ति।

रसःस्रोतःसुरुद्धेषुस्वस्थानस्थोविदह्यते॥ सऊर्द्धंकासवेगेनबहुरूपःप्रवर्तते। जायन्ते व्याधयश्चात् पडेकादशधापुनः। येषांसंघातयोगेनराजयक्ष्मेतिकल्प्यते॥

अर्थ....स्रोतोंके रुकजानेसे आहारका रस सम्पूर्ण देहमें तौ फैलने नहीं पाताहै और अपने स्थान आमाशयहीमें स्थितरहकर विदग्ध होता रहताहै, वही रस खांसीके वेग के साथ ऊपरको जाकर अनेक रूप धारण करके निकलने लगताहै, तब छः वा ग्यारह प्रकारकी व्याधियां उत्पन्न होतीहैं इन सब व्याधियोंके समुदायका नाम राजयक्ष्माहै।

उक्त ग्यारह वा छः व्याधियोंके नाम।

कासोऽसतापोवैस्वर्यंज्वरःपार्श्वशिरोरुजौ॥ शोणितश्लेष्मणोश्छर्दिःश्वासःकोष्ठामयोऽरुचिः॥ रूपाण्येकादशैतानियक्ष्मिणः षडिमानिवा॥ कासोज्वरःपार्श्वशूलंस्वरवर्चोगदोऽरुचिः॥

अर्थ....खांसी, स्कंधताप, स्वरभंग, ज्वर, पार्श्व शूल, शिरःशूल, रुधिरकी वमन, कफकी वमन, श्वास, कोष्ठामय, अरुचि ये यक्ष्माके ग्यारह रूप हैं। खांसी, ज्वर, पार्श्वशूल, स्वरभेद, मलभेद,अरुचि, ये यक्ष्मा के छः उपद्रव हैं।

यक्ष्माका साध्यासाध्य विचार।

सर्वैरर्द्धैस्त्रिभिर्वापिलिंगैर्मांसबलक्षये॥ युक्तोवर्ज्यश्चिकित्स्यस्तुसर्वरूपोऽप्यतोऽन्यथा॥

अर्थ—ऊपर कहेहुए ग्यारह वा छः लक्षणों से युक्त अथवा आगे आनेवाले तीनलक्षणों से युक्त राजयक्ष्मामें यदि रोगीका मांस और बल क्षीण होजाय तौ वह असाध्य होती है ऊपर कहेहुए सर्व लक्षणों से युक्त होनेपर भी यदि मांस और बल क्षीण न हुआ हो तौ वह साध्य होती है।

प्रतिश्यायके लक्षण।

घ्राणमूलेस्थितःश्लेष्मारुधिरंपित्तमेववा॥ मारुतःध्मातशिरसोमरुतंश्यायतेप्रति। प्रतिश्यायस्ततोघोरोजायतेदेहकर्षणः॥ तस्यरूपंशिरःशूलंगौरवंघ्राणविप्लवः। ज्वरःकासःकफोत्क्लेशःस्वरभेदोऽरुचिः क्लमः॥ इन्द्रियाणामसामर्थ्यंयक्ष्माचातःप्रवर्तते। पिच्छिलंबहुलंपित्तंहरितंश्वेतपीतकम्॥ कासमानोरसंयक्ष्मानिष्ठीवतिकफानुगम्॥

अर्थ—जिस मनुष्य का सिर वायुसे आघातित होताहै उसकी नासिका के मूल में स्थित कफ वा पित्त वायुके साम्हने अर्थात् सिरकी ओर दौडतेहैं तब देहको कर्षण करने वाला भयंकररूप प्रतिश्याय होताहै इसीको जुकाम वा सर्दी कहतेहैं, इस के होनेपर शिरमें दर्द, भारापन, नासिकासे स्राव होना, ज्वर, खांसी कफ निकलना, स्वरभंग, अरुचि, क्लान्ति, इन्द्रियोंमें असम-

मर्थता ये उपद्रव होतेहैं इनसे पीछे राजयक्ष्माकी उत्पत्ति होती है ॥ यक्ष्मरोगीके खांसते २ गिलगिला गाढा, दुर्गन्धयुक्त हरे या सफेद या पीले रंगका रस कफके साथ निकलताहै ॥

राजयक्ष्माके विशेष लक्षण ।

अंसपार्श्वाभितापश्चतापःपादकरस्यच ॥ ज्वरःसर्वांगगश्चेतिलक्षणंराजयक्ष्मणः ।

अर्थ—कंधे और पसलियोंमें संताप, हाथ और पांवमें संताप, सर्वांगगामीज्वर येराजयक्ष्माके प्रधानलक्षणहैं ।

राजयक्ष्मा में स्वरभंग ।

वातात्पित्तात्कफाद्रक्तात्कासवेगात्सपीनसात्॥स्वरभेदोभवेद्वाताद्रूक्षःक्षामश्चलःस्वरः । तालुकण्ठपरिप्लोषःपित्ताद्वक्तुमसूयते ॥ कफान्मन्दोविबद्धश्चस्वरःखुरुखुरायते । सन्नोरक्तविबन्धत्वात्स्वरःकृच्छ्रात्प्रवर्तते । कासातिवेगात्करुणःपीनसात्कफवातिकः॥

अर्थ—वात से, पित्त से, कफ से, रक्त से, खांसी के वेगसे, पीनस से इसरोग में स्वरभंग होता है । जो स्वर वात से भंग होता है उस में स्वर रूक्ष, क्षीण और चलायमान होता है । पित्त से कण्ठ और तालुमें दाह और रक्तकी असूयता होती है । कफसे स्वरमें मन्दापन और विबद्धता होतीहै तथा खुर खुर शब्द होता है ॥ रक्तकी विबन्धता से स्वर अवसन्न होजाताहै तथा बाहर कठिनतासे निकलता है । खांसी के वेगसे स्वरमें खरखराट होताहै तथा पीनससे कफ वातके लक्षण होते हैं ॥

यक्ष्मा के अन्य उपद्रव ॥

पार्श्वशूलंत्वनियतंसंकोचायामलक्षणम्। शिरःशूलंससन्तापंयक्ष्मिणः स्याद्सगौरवम् ॥ अतिखिन्नेशरीरेतुयक्ष्मिणोविषमाशनात्॥ कण्ठात्प्रवर्ततेरक्तंश्लेष्मचोत्क्लिष्टसञ्चितः ॥ रक्तंविबद्धमार्गत्वान्मांसादीन्नानुपद्यते ॥ आमाशयस्थमुत्क्लिष्ट वहुत्वात्कण्ठमेतिवा । वातश्लेष्माविबन्धत्वादुरसःश्वासमृच्छति ॥ दोषैरुपहतेचाग्नौसपिच्छमभिसार्यते । पृथग्दोषैःसमस्तैर्वाजिह्वाहृदयसंश्रिते ॥ जायतेऽरुचिराहारैर्दुष्टैरर्थैश्चमानसैः ।

अर्थ—यक्ष्मामें जो पार्श्वशूल होता है वह अनियत होता है और उस में संकोच या आयामके लक्षण होतेहैं ॥ शिरोवेदना में सन्ताप और भारापन होता है ॥ अत्यन्त खिन्न देहवाले यक्ष्मारोगी के विषम भोजन के करनेसे कण्ठकी नलीमें होकर रक्त तथा उत्क्लिष्ट और संचित कफ निकलता है ॥

रक्तमार्गों के रुकजानेसे रुधिर मांसादि धातुओं से मिलकर उनका पोषण नहीं करसकता है यह अधिक बढकर आमाशयमें स्थित होजाताहै या कण्ठमें आजाता है इस तरह वात और कफके रुकजानेसे हृदयस्थ श्वासमें पहुंचताहै और दोषोंके द्वारा अग्निके नाश होनेपर पिच्छिलता युक्त मल निकलताहै।

पृथक् २ दोष या सब मिलकर जब जिह्वा और हृदयका आश्रय करलेते हैं तब अरुचि उत्पन्न होतीहै । दुष्ट आहार तथा मानसिक अर्थोंसे भी अरुचि होती है ।

अरुचिकी परीक्षा ।

कषायतिक्तमधुरैर्विद्यात्मुखरसैःक्रमात् ॥ वाताद्यैररुचिंजातांमानसींदोषदर्शनात् । अरोचकान्कासवेगाद्दोषोत्क्लेशाद्भयादपि। छर्दिर्यासाविकाराणांअन्येषामप्युपद्रव। सर्वेस्त्रिदोषजेयक्ष्मादोषाणान्तुबलाबलम् ॥ परीक्ष्यावस्थितंवैद्यःशोषिणंसमुपाचरेत् । प्रतिश्यायेशिरःशूलेकासेश्वासे स्वरक्षये ॥ पार्श्वशूलेचाविविध क्रियाः साधारणीःशृणु॥

अर्थ—यदि मुखका रस कषायहो तौ वातज अरुचि, तिक्तहों तौ पित्तज और मिष्ट हो तौ कफज अरुचि होतीहै इसी तरह मानसी अरुचि दोषोंके देखने से जानी जातीहै । अरुचि, आमवेग, दोषोत्क्लेश और भय इनसेही अन्यविकारोंमें भी वमन होतीहै

तीनों दोषोंसे उत्पन्न हुई यक्ष्मामें दोषों का बलाबल देखकर वैद्यको शोष रोगी की चिकित्सा करना उचित है । प्रतिश्याय शिरःशूल, खांसी, श्वास, स्वरक्षय और पार्श्वशूल रोगोंकी अनेक प्रकारकी साधारण चिकित्साओंको श्रवण करो ।

प्रतिश्यायादिछ रोगोंकीचिकित्सा ।

पीनसेस्वेदमभ्यङ्गंधूममालेपनानिच । परिषेकावगाहांश्चयावकंवात्स्यमेवच । लवणाम्लकटूष्णांश्चरसान्स्नेहोपसंहितान् लावतित्तिरिदक्षाणांवर्तकानाञ्चकल्पयेत् । सपिप्पलीकंसयवंसकुलत्थंसनागरम् ॥ दाडिमामलकोपेतंस्निग्धमाजंरसं पिबेत् । तेनषड्विनिवर्तन्तेविकाराःपीनसादयः ॥ मूलकानांकुलत्थानांयूषैर्वासुपकल्पितैः ॥ यवगोधूमशाल्यन्नैर्यथासात्म्यमुपाचरेत् ॥

अर्थ—पीनस वा प्रतिश्याय में अभ्यंग, धूमपान, आलेपन, परिषेक, अवगाहन करावै तथा जौ की रोटियां, नमक, अम्ल, कटु और उष्णरसों तथा घृत में संस्कृत लवा, तीतर, मुर्गा और वतक के मांसरस का पानकरै ॥ अथवा पीपल, जौ, कुलथी, सोंठ, अनार, और आंवला में डालकर घी से संस्कार किया हुआ बकरे का मांसरस पानकरै । इस के सेवन करने से प्रतिश्याय से पार्श्वशूल पर्य्यन्त छः ओं उपद्रव नष्ट होजाते है । अथवा मूलक और कुलथी के यूष में सिद्ध कर के जौ गेंहू और शाली चांवलों को सात्म्यके अनुसार सेवन करै ।

पिबेत्प्रसादंवारुण्याजलंवापाञ्चमूलिकम् । धान्यनागरसिद्धंवातागलक्याथवा शृतम् ॥ पर्णिनीभिश्चतसृभिस्तेनचान्नानिकल्पयेत् ॥ कृशरोत्कारिकामाषकुलत्थयवपायसैः ॥ सङ्करस्वेदविधिनाकण्ठं पार्श्वमुरःशिरः ॥ स्वेदयेत्पत्रभङ्गेनशिरश्चपरिषेचयेत् ॥ बलागुडूचीमधुकशृतैर्वा वारिभिःसुखैः । वस्तमत्स्यशिरोभिर्वा नाडीस्वेदंप्रयोजयेत् ॥ कण्ठेशिरसिपार्श्वेचपयोभिर्वासवातिकैः ॥

अर्थ—सुरामण्ड, अथवा, पंचमूलसे सिद्धकियाहुआ जल, अथवा धनियां और सोंठ डालकर सिद्ध कियाहुआ जल, भूय आंवला डालकर सिद्धकियाहुआ जल अथवा शालि-

पर्णी आदि चारोंपर्णी डालकर सिद्धकियाहुआ जल पान करावे अथवा इन्हीं जलोंमें सिद्ध कियाहुआ अन्न देवे ।

कृशरा, उत्कारिका, माष, कुलथी, जौ, पायस इन से संकरस्वेदकी रीतिसे कण्ठ पसली, हृदय और सिरमें स्वेददेवे अथवा वातनाशक पत्तोंसे स्वेदन करे, अथवा खरैटी, गिलोय, मुलहटी इनसे सिद्ध किये सुखोष्ण जलसे परिषेचन करे ।

अथवा बकरेका शिर, मछलीका शिर इनमें सिद्ध करके जल द्वारा या वातघ्न औषधियोंके क्राथसे नाड़ीस्वेद द्वारा कण्ठ, सिर और पसलियोंमें स्वेदनदेवे ।

औदकानूपमांसानिसलिलंपाश्चमूलिकम्॥ सस्नेहंसारनालंवानाडीस्वेदंप्रयोजयेत्।

अर्थ=औदक और आनूप पशुओंका मांस पंचमूलसे सिद्धकिया हुआ जल अथवा स्नेह युक्त कांजीसे नाडीस्वेद द्वारा स्वेदनकरे ॥

जीवन्त्याःशतपुष्पायाबलायामधुकस्यच। वचायवेशवारस्यविदार्यामलकस्यच । औदकानूपमांसानामुपनाहाश्चसंस्कृताः॥ शस्यन्तेचचतुःस्नेहाःशिरःपार्श्वांसशूलिनाम् ।

अर्थ—जीवन्ती, सौंफ, बला, मुलहटी, वच, वेशवार, विदारीकन्द, आंवला, औदक और आनूप पशुओंका मांस चारों प्रकाके स्नेह डालकर सिद्ध कियाहुआ लेपसिर पसली तथा कंधेके दर्दमें हितकारक होताहै ॥

शतपुष्पासमधुकंकुष्टंतगरचन्दनम् ॥ आलेपनंस्यात्सघृतंशिरःपार्श्वांसशूलनुत् ।

अर्थ—सौंफ, मुलहटी, कूठ, तगर और चन्दन इनको घृतमें मिलाकर लेप करनेसे, शिर, पसली और कंधे का शूल नष्ट होजाताहै।

अन्य प्रयोग ।

बलारास्नातिलाःसर्पिर्मधुकंनीलमुत्पलम् पलंकषादेवदारुचन्दनंकेशरंघृतम् । वीराबलाविदारीचकृष्णगन्धापुनर्नवा ॥ शतावरीपयस्याचकतृणंमधुकंघृतम् । चत्वारएतेश्लोकार्धैःप्रदेहाः परिकीर्तिताः॥ शस्ताःसंवृद्धदोषाणांशिरःपार्श्वांसशूलिनाम् ॥

अर्थ—(१) खरैटी, रास्ना, तिल, घी, मुलहठी, नीलकमल । (२) गूगल, देवदारु, चन्दन, केसर, घी, । (३) क्षीरकाकोली, खरैटी, विदारीकन्द, सहजना और पुनर्नवा । (४) शितावर, क्षीरकाकोली, कतृण, मुलहठी और घी । ये चारों लेप जो आधे २ श्लोक में वर्णन किये गये हैं बढेहुए दोषवाले शिरःशूल पार्श्वशूल और असशूलमें हितकारीहै ।

अन्यसंशमनक्रिया ।

नावनंधूमपानानिस्नेहाश्चोत्तरभक्तिकाः तैलान्यभ्यङ्गयोगानिबस्तिकर्मतथापरम्॥ जलौकालाबुशृङ्गैर्वाप्रदुष्टंव्यधनेनवा ॥ शिरःपार्श्वांसशूलेषुरुधिरंतस्यनिर्हरेत् । प्रदेहःसघृतश्रेष्टःपद्मकोशीरचन्दनैः ॥ दूर्वामधुकमञ्जिष्ठाकेशरैर्वाघृताप्लुतैः।प्रपुण्डरीकनिर्गुण्डीपद्मकेशरमुत्पलम् ॥ कशेरुकापयस्याचससर्पिष्कंप्रलेपनम् । चन्दनाद्येनतैलेनशतधौतेनसर्पिषा॥ अभ्यङ्गःपयसासेकःशस्तश्चमधुकाम्बुना ।

माहेन्द्रेणसुशीतेनचन्दनादिशृतेक्रिया ।
परिषेकःप्रयोक्तव्यइतिसंशमनीक्रिया ॥

अर्थ—नस्य, धूमपान, उत्तरभाक्तिकाघृत, अभ्यंगोपयोगी तैल और वस्तिकर्म ये सब उत्कृष्ट हैं। जोक, अलाबू सींगी और फस्त द्वारा दुष्टरुधिरको निकालनेसे शिरःशूल, पार्श्वशूल और अंसशूल अच्छे होजाते हैं। पद्माग्व, चन्दन और खस को पीस कर घृतमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा दूब, मुलहटी, मजीठ और केसर को घीमें सानकर लेप करने अथवा पुण्डरिया काष्ट निर्गुण्डी, कमल, केसर, नीलोफर, कसेरू और क्षारिकाकोली को घृतमें सानकर लेप करने से शिरःशूलादि दूर होजातेहैं।

चन्दनादि तैल, वा शतधौत घृत का अभ्यंग, घृत तथा मुलहटी के जलका परिषेक, अथवा माहेन्द्रशीतल जल, वा चन्दनादिके क्काथका जल इनसे परिषेककरै। इस तरह यह संशमनी क्रिया वर्णन कीगई है।

दोषाधिक्यमें संशोधन विधि ॥

दोषाधिकानांवमनंशस्यतेसविरेचनम् ॥
स्नेहस्वेदोपपन्नानांसस्नेहंयन्नकर्पणम् ॥

अर्थ—दोषोंकी अधिकतामें स्नेहन और स्वेदन देकर स्निग्ध वमन विरेचन देवै जिससे रोगी कृश न होने पावै।

शोषीमुश्चतिगात्राणिपुरीषस्रंसनादपि॥
अवलापेक्षिणींमात्रांकिंपुनर्योविरिच्यते।
योगान्संशुद्धकोष्ठानांकासेश्वासेस्वरक्षये॥
शिरःपार्श्वांसशूलेषुसिद्धानेतान्प्रयोजयेत्
बलाविदारिगन्धाद्यैर्विदार्यामधुकेनवा॥
सिद्धंसलवणंसर्पिर्नस्यंस्यात्स्वर्यमुत्तमम्
प्रपुण्डरीकंमधुकंपिप्पल्योबृहतीबला ॥
क्षीरंसर्पिश्चतत्सिद्धंस्वर्यस्यान्नावनंपरम्।
शिरःपार्श्वांसशूलघ्नंकासश्वासनिवर्हणम्
प्रयुज्यमानंबहुशोघृतंचोत्तरभक्तिकम् ।
दशमूलेनपयसासिद्धंमांसरसेनच ॥ बलागर्भघृतंसद्योरोगानेतान्प्रबाधते । भक्तस्योपरिमध्येवायथाग्निप्रविचारितम्॥
रास्नाघृतंवासक्षीरंसक्षीरंवाबलाघृतम् ।

अर्थ—मलके निकलजाने से शोषरोगी मनुष्यका देह पतन होजाता है, इससे रोगी के बलके अनुसारही विरेचन मात्राका प्रयोग करना चाहिये ॥

जब रोगीका कोष्ठ शुद्ध होजाय तथा खांसी, श्वास, स्वरभंग, शिरःशूल, पार्श्वशूल, अंसशूल ये शेष रहजांय तब नीचे लिखेहुए प्रयोगोंको देवै।

खरैटी, विदारीगंधादिगण, विदारीकन्द और मुलहटी, सब से सिद्ध कियेहुए नमक सहित घृतकी नस्य देनेसे स्वरभंग दूर हो जाताहै। प्रपुण्डरीक, मुलहटी, पीपल, बडीकटेरी, खरैटी और दूध इनके साथ सिद्धकियेहुए घृतकी नस्य देनेसे स्वरभंग दूर होताहै। अथवा भोजन के पश्चात् अनेक रीतिसे घृतपान करनेसे सिर, पसली और कन्धोंकादर्द तथा खांसी और श्वास जाते रहतेहैं। अथवा दशमूल, दूध, मांसरस और खरैटी का गूदा इनसे सिद्ध किया हुआ घृत तत्काल ऊपर कहे हुए रोगों को दूर कर देताहै। भोजन करने के पीछे वा बीच

में जठराग्नि के अनुसार दूध और रास्नाका घी अथवा दूध और वलाकाघी सेवन करने से पूर्वोक्त उपद्रव शान्त होजातेहै ॥

स्नेहवर्णन ॥

लेहान्कासापहान्स्वर्यान्श्वासहिकानिवर्हणान्॥।शिरःपार्श्वासशूलघ्नान्स्नेहांश्चातःपरंशृणु।घृतंखर्जूरमृद्वीकाशर्कराक्षौद्रसंयुतम् ॥ सपिप्पलीकंवैस्वर्यकासश्वासनिवर्हणम् । दशमूलशृतात्क्षीरात्सर्पिर्यदुदियान्नवम् ॥सपिप्पलीकंसक्षौद्रन्तत्परंस्वरबोधनम् । शिरःपार्श्वांसशूलघ्नंकासश्वासज्वरापहम् ॥पञ्चभिःपञ्चमूलैर्वाशृतायदुदियाद्घृतम् । पञ्चानां पञ्चमूलानांरसेक्षीरचतुर्गुणे ॥ सिद्धंसर्पिर्जयत्येतद्यक्ष्मणःसप्तकंवलम् ।

अर्थ—अब हम यहां से कासनाशक, स्वरवर्द्धक, श्वास और हिचकी के दूर करनेवाले, शिरःपार्श्वांसशूलनाशक लेह और स्नेहों का वर्णन करेंगे । यथा-

घी, खिजूर, दाख शर्करा और शहत तथा पीपल इनको चाटने से स्वरभंग, खांसी और श्वास नष्ट हो जाते हैं अथवा दशमूल डालकर औटाये हुऐ दूधसे जो ताजी घी निकालाजाताहै उसमें पीपल और शहत डालकर सेवन करै तो स्वरभंग दूर होजाताहै, इसीसे शिरःशूल, पार्श्वशूल और अंसशूल तथा खांसी, और श्वास और ज्वर ये भी दूर होजातेहैं ॥

पांचों पंचमूलके साथ औटायेहुये दूध का घी भी पूर्वोक्त व्याधिनाशकहै अथवा पांचों पंचमूलके क्वाथ तथा चौगुने दूध में सिद्ध कियाहुआ घी यक्ष्मरोगी के पूर्वोक्त सातों विकारोंको दूर करताहै ।

लेह के चार प्रयोग ।

खर्जूरंपिप्पलीद्राक्षापथ्याशृङ्गीदुरालभा ॥ त्रिफलापिप्पलीमुस्तंशृंगाटीगुडशर्करा । वीराशठीपुष्कराख्यंसुरसःशर्करागुडः नागरंचित्रकोलाजाः पिप्पल्यामलकंगुडः श्लोकार्द्धविहितानेतानलिह्यात्रामधुसर्पिषा ॥ कासश्वासापहान्स्वर्यान्पार्श्वशूलापहांस्तथा

अर्थ—१–खिजूर, पीपल, दाख, हरड, काकडासींगी और जवासा २–त्रिफला, पीपल, मोथा, सिंघाडा और गुड शर्करा ३–क्षीरकाकोली, शटी, पुष्कराख्य (कूठ), तुलसी, शर्करा, गुड । ४–सोंठ, चीता, खील, पीपल, आंवला, गुड । आधे २श्लोक में कहेहुये इन चार प्रयोगोंको घी और शहतके साथ चाटै तो खांसी, श्वास,स्वरभेद और पार्श्वशूल दूर होजातेहैं ॥

अन्य प्रयोग

सितोपलातुगाक्षीरींपिप्पलींबहुलांत्वचम् ॥ अन्त्यादूर्ध्वंद्विगुणितंलेहयेन्मधुसर्पिषा।चूर्णितंमाशयेद्वातत्श्वासकासकफातुरम् ॥ सुप्तजिह्वारोचकिनमल्पाग्निपार्श्वशूलिनम् । हस्तपादांगदाहेषुज्वरेरक्तेतथोर्ध्वगे॥ वासासर्पिःशतावर्या सिद्धंवापरमंहितम् ।

अर्थ—मिश्री, वंशलोचन, पीपल, इलायची और दालचीनी । इनको पीछे से ऊपर-

को दूना२ ले अर्थात् दालचीनीसे दूनी इलायची,इलायची से दूनी पीपल आदि घी और शहत में सानकर चाटै । अथवा इसी चूर्णको श्वास, खांसी,कफ, जिह्वासुत्त, अरुचि,मन्दाग्नि और पार्श्वशूल में देवै ।

हाथ, पांव और शरीरके दाहमें, ज्वरमें ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तमें वासाघृत वा शतावरी घृतका सेवन अत्यन्त हितकारीहै ।

दुरालभाद्यघृत ।

दुरालभाश्वदंष्ट्राश्चचतस्रःपर्णिनीर्वलाम्। भागान्पलोन्मितानकृत्वापलंपर्पटकस्य-च । पचेद्दशगुणेतोयेदशभागावशेपिते ॥ रसेसुपूतेद्रव्याणामेषांकल्कान्समावपेत्। शठ्याःपुष्करमूलस्यपिप्पलीत्रायमाणयोः तामलक्याःकिराततानांतिक्तस्यकुटजस्य च । फलानांशारिवायाश्चसुपिष्टान्कर्प सम्मितान् ॥ ततस्तेनघृतमस्थक्षीराद्विगु-णितंपचेत्।ज्वरंदाहंभ्रमंकासमंसपार्श्वशि रोरुजम् ॥ तृष्णाञ्छर्दिरतिसारमेतान्स र्पिरपोहति ॥

अर्थ—जयासा, गोखरू, चारोंपर्णी, खरैटी और पितपापडा ये आठों एक एक पल लेकर दसगुने जलमें पकावै जब दसवां भाग शेष रहजाय तब उसे छानकर नीचे लिखेहुए द्रव्य एक२ कर्ष नाल देवै। शठी, पोहकरमूल, पीपल, त्रायमाण, भूम्यामलक, चिरायता, कुटकी, इन्द्रजौ और शारिवा इनको बारीक पीसकर डाल देवै । फिर इसमें एक प्रस्थ घी और दो प्रस्थ दूध डालकर पकावै । इस घृतके सेवन करनेसे ज्वर, दाह, भ्रम, खांसी, अंसशूल, पार्श्वशूल शिरःशूल, तृष्णा, वमन और अतीसार दूर होजाते हैं ।

जीवन्त्यादि घृत ॥

जीवन्तींमधुकंद्राक्षांफलानिकुटजस्यच ॥ शटींपुष्करमूलंचव्याघ्रींगोक्षुरकम्वलाम् नीलोत्पलंतामलकींत्रायमाणांदुरालभाम् पिप्पलीञ्चसमांपष्ट्वाघृतंवैद्योविपाचयेत्। एतद्व्याधिसमूहस्यसमुत्थंराजयक्ष्मणः रूपमेकादशविधंसर्पिरंव्यपोहति ॥

अर्थ—जीवन्ती, मुलहटी, किसमिस,इन्द्रजौ, शटी, पौहकरमूल, कटेरी, गोखरू,खरैटी,नीलकमल, भू आंवला, त्रायमाणा, जवासा, और पीपल इनको समानभाग लेकर पीस डाले और इसमें घृतको पकावै। इसी एक घृतके सेवन करनेसे राजयक्ष्माके ग्यारह प्रकारके उपद्रव शान्त होजाते हैं ।

बलाद्यघृत ।

वलांस्थिरांपृश्निपर्णीवृहतींसनिदिग्धि-काम् । साधयित्वारसेतस्मिन्पयोगव्यं सनागरम् ॥ द्राक्षाखर्जूरसर्पिर्भिःपिप्प-ल्याचशृतंसह । सक्षौद्रंज्वरकासघ्नंस्व-र्यश्चैतत्प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—खरैटी,शालिपर्णी, प्रश्निपर्णी,वडी कटेरी,छोटी कटेरी इनका क्वाथ करले,इसमें गौ का दूध, सोंठ, दाख, खिजूर, घृत और पीपल डालकर घृत पाककरै । इस घृतको शहत के साथ सेवन करे । तो ज्वर खांसी और स्वरभंग दूर होजाताहै ।

यक्ष्मामें अन्य प्रयोग ।

आजस्यपयसश्चैवप्रयोगोजांगलारसाः

यूपार्थेचणकामुद्गामकुष्ठाश्चोपकल्पिता ज्वराणांशमनेयोगःपूर्वमुक्तः क्रियाविधिः यक्ष्मिणांज्वरदाहेषुससर्पिष्कःप्रशस्यते॥ कफप्रसेकेबलवान्श्लैष्मिकःछर्दयेन्नरः । पयसाफलयुक्तेनमधुरेणरसेनवा ॥ सर्पिष्मत्यायवाग्वावावमनीयोपसिद्धया । वमितोयाश्चलघ्वन्नमन्नकालेसदीपनम्॥ यवगोधूममाध्वीकशीध्वरिष्टसुरासवान्॥ जांगलानिचशूल्यानिसेवमानःकफञ्जयेत् ॥

अर्थ--इस रोगमें बकरीका दूध और जांगल जीवोंका मांसरस प्रशस्त है। यूषके निमित्त चना, मूंग और मोठका प्रयोग करै। ज्वरनाशक प्रयोग तथा चिकित्साविधि जो पहिले वर्णनकी गईहैं, वही विधि यक्ष्मारोगियोंके ज्वर और दाहमें घृत सहित देवै।

कफ दोषयुक्त और बलवान् रोगीको कफ के गिरनेमें मैनफलके साथ दूध वा मैनफल से युक्त मधुररस वा वमनीय द्रव्यों से संस्कार की हुई घृतयुक्त यवागू पान कराके वमन करावै।

वमन होनेके पश्चात् क्षुधा लगनेपर लघु अन्न खानेको देवै ॥ जो गेंहू माध्वीक, शीधु, अरिष्ट, सुरा, आसव, और शूलपर भुनाहुआ जांगल पशुओंका मांस सेवन करनेसे कफ दूर होजाताहै।

अन्य प्रयोग।

श्लेष्मणोऽतिप्रसेकेतुवायुःश्लेष्माणमस्यति कफप्रसेकन्तंविद्वान्स्निग्धोष्णेनैवनिर्जयेत् ॥ क्रियाकफप्रसेकेयावम्यांसैवप्रशस्यते । हृद्यानिचान्नपानानिवातघ्नानि लघूनिच ॥

अर्थ--जब कफ अत्यन्त पडताहो तब वायुही कफको उदीर्ण करतीहै, उस समय स्निग्धोष्ण क्रिया द्वारा उस कफके पडनेको दूर करै। कफप्रसेक में जो चिकित्साकी जाती है वही वमनके रोकने में हितकारी होतीहै, इसमें हृद्य, वातनाशक और लघु अन्नपान हितहै।

मन्दाग्निमें कर्त्तव्य।

प्रायेणोपहताग्नित्वात्सपिच्छमतिसार्यते। प्राप्नोत्यास्यस्यवैरस्यंनचान्नमभिनन्दति॥ तस्याग्निदीपनायोगानतीसारनिवर्हणान् वक्त्रशुद्धिकरान्कुर्यादरुचिप्रतिबाधकान्॥

अर्थ--प्रायः मन्दाग्निसेही पिच्छिल अतीसार होताहै, इसीसे मुखका जायका बिगड जाताहै और अन्नमें अरुचि होजातीहै उस मनुष्यको अग्निसंदीपनकर्त्ता अतिसारनाशक, मुखशुद्धकारक और अरुचिनाशक योगोंका सेवन करावै।

अतिसार नाशक योग।

सनागरामिन्द्रियवान्पिवेद्वातण्डुलाम्बुना। सिद्धांयवागूञ्जीर्णेचचांगेरीतक्रदाडिमैः॥ पाठाम्बिल्वंयवानींचपातव्यंतक्रसंयुतम् दुरालभांशृंगवेरंपाठाञ्चसुरयासह । जाम्ब्वाम्रबिल्वमध्यञ्चसकपित्थंसनागरम्॥ पेयामण्डेनपातव्यमतीसारनिवृत्तये। एतानेवचयोगांस्त्रीन्पाठादीन्कारयेत्खडान् सस्रूपधान्यान्सस्नेहाम्लान्संग्रहणान्परान्

अर्थ--यक्ष्मारोगी अतिसारमें सोंठ और

इन्द्रजौको चांवलोंके जलके साथ पान करै, तथा औषधके पचजानेपर चांगेरी, मठा और अनारके रसके साथ सिद्ध कीहुई यवागू पानकरै। अथवा पाठा, बेलगिरी, अजवायन इनके क्वाथको मठाके साथ पीवै, अथवा जवासा, सोंठ, पाठा, इनके क्वाथको मद्यके साथ पीवै। अथवा जामन और आमकी गुठली, बेलगिरी, कैथ, सोंठ इनके क्वाथ को पेयामण्डके साथ पानकरै। इन्हीं अतीसारनाशक तीन योगोंका दालके साथ खडयूप बनाकर घी और खटाई डालकर सेवनकरै यह अत्यन्त संग्राहक होताहै।

अन्यप्रयोग।

वेतसार्जुनजम्बूनांमृणालीकृष्णगन्धयोः॥ श्रीपर्ण्यांमदयन्त्याश्चयूथिकायाश्चपल्लवान्। मातुलुंगस्यधातक्यादाडिमस्यच कारयेत्॥ स्नेहाम्ललवणोपेतान्ससपिष्कान्सदाडिमान्॥

अर्थ—वेत, अर्जुन, जामन, कमल, सहजना, खंभारी, मल्लिका, विजौरा, आंवला, अनार इनके पत्तोंमें खटाई, नमक, घी और अनार डालकर यूप बनावै [किसी २ में में ऐसा पाठभी है (" चांगेर्य्याश्चुक्रकाया श्च दुग्धिकायाश्चकारयेत्। खडान्दधिससोपेतान् सर्सपिष्कान् सदाडिमान् „)

मांसानांलघुपाकानांरसाःसांग्राहिकैर्युताः व्यञ्जनार्थंप्रशस्यन्तेभोज्यार्थेरक्तशालयः॥ स्थिरादिपंचमूलेनपानेशस्तंशृतञ्जलम्॥ तक्रसुरांसचुक्रीकादाडिमस्याथवारसः दीपनंग्राहिनिर्दिष्टंभेषजंभिन्नवर्चसे॥

अर्थ—व्यंजनके लिये सांग्राहिक द्रव्यों के साथ सिद्ध कियाहुआ लघुपाकी मांसों का रस और भोजनके लिये लालशालिचांवलदेवै। शालिपर्ण्यादि पंचमूलसे सिद्ध कियाहुआ जल पीनेको देवै। मठा, मदिरा, चूका और अनारका रस अतीसार में अग्निसंदीपन और संग्राही होता है।

वैरस्यनाशक प्रयोग।

परंमुखस्यवैरस्यनाशनंरोचनंशृणु। द्वौकालौदन्तपवनंभक्षयेन्मुखधावनैः॥ तद्वत्प्रक्षालयेदास्यंधारयेत्कवलग्रहान्। पिबेद्धूमन्ततोमृष्टमद्याद्दीपनपाचनम्॥ भेषजंपानमन्नञ्चहितमिष्टोपकल्पितम्।

अर्थ—अब हम मुखकी विरसता को दूर करनेवाले प्रयोगोंका वर्णन करते हैं प्रातःकाल और सायंकाल दोनों समय दातुनकरना, मुखमें जलभर २ कर कुल्ले करना और कवलग्रह करना चाहिये, तदनन्तर धूमपान, फिर दीपनकर्त्ता और रुचिवर्द्धक द्रव्योंका सेवन करे। इच्छाके अनुसार बनाहुआ अन्नपानभी मुखकी विरसता दूर करने में हित हैं।

मुखधावनपांचप्रयोग।

त्वङ्मुस्तमेलाधान्यानिमुस्तंसामलकन्त्वचम्॥ त्वचोदार्वीयवानींचपिप्पल्यस्तेजवत्यपि। यवानींतिन्तिडीकञ्चपञ्चैतेमुखधावनाः॥श्लोकपादेषुविहिताशोधनामुखरोचनाः। गुलिकाधारयेदास्येचूर्णैर्वाशोधयेन्मुखम्। एपामालोडितानांवाधारयेत्कवलग्रहान्॥

अर्थ—दालचीनी, मोथा, इलायची और धनियां अथवा, दोनों मोथा, आंवला, दालचीनी, दारुहल्दी और अजवायन, पीपल और तेजवती, अथवा अजवायन और इमली, इनमें चौथाई२ श्लोकमें वर्णन किये हुये चूर्णोंकी दातुन करना मुखको शुद्धकर्ता और रुचिवर्द्धक होताहै । अथवा इन की गोली बनाकर मुखमें रक्खै अथवा इन का चूर्ण बनाकर मुखका शोधन करै अथवा जलमें मिलाकर कुल्ले करै ।

सुरामाध्वीकशीधूनांतैलस्यमधुसर्पिषोः
कवलान्धारयेदिष्टान्क्षीरस्येक्षुरसस्यच

अर्थ—सुरा, माध्वीक, शीधु, तैल, मधु, घृत, दूध और ईखके रसके कवल धारणकरै

यवानीषाडव ।

यवानींतिन्तिडीकञ्चनागरंसाम्लवेतसम् । दाडिमम्बदरंचाम्लंकार्षिकानुपकल्पयेत् धान्यसौवर्चलाजाजीवराङ्गञ्चार्द्धकार्षिकम् । पिप्पलीनांशतञ्चैकंद्वेशतेमरिचस्यच ॥ शर्करायाश्चचत्वारिपलान्येकत्र चूर्णयेत् । जिह्वाविशोधनंहृद्यंतच्चूर्णं भक्तरोचनम् ॥ हृत्प्लीहपार्श्वशूलघ्नंविबन्धानाहनाशनम् । कासश्वासहरंग्राहि ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ।

अर्थ—अजवायन, इमली, सोंठ, अम्लबेत, अनार, बेर इनको एक २ कर्ष लेवै ॥ धनियां, संचरनमक, जीरा, दालचीनी ये चारों आधे २ कर्ष लेवे, एकसौ पीपल, दो सौ कालीमिरच और शर्करा चार पल इन सबका चूर्ण बनालेवे । यह चूर्ण जिह्वा को शुद्ध करनेवाला, हृदयप्रिय, भोजन में रुचि बढानेवाला, हृद्रोग, प्लीहा और पार्श्व शूलको नष्टकरनेवाला तथा विबन्ध और आनाह नाशक है । खांसी, श्वास,ग्रहणी, और अर्शविकारों को दूरकरता है, संग्राहीहै

तालीशपत्रादि वटिका ।

तालीशपत्रंमरिचंनागरंपिप्पलीशुभा । यथोत्तरंभागवृद्ध्यात्वगेलेचार्धभागिके॥ पिप्पल्यष्टगुणाचात्रप्रदेयासितशर्करा । कासश्वासरुचिहरंतच्चूर्णंदीपनंपरम् ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीदोषशोषप्लीहज्वरापहम् । वम्यतीसारशूलघ्नमूर्द्ध्ववातानुलोमनम्। कल्पयेद्गुडिकाश्चैव चूर्णपक्वासितोपलैः । गुडिकाह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतराःस्मृताः॥

अर्थ—तालीशपत्र, कालीमिरच, सोंठ, पीपल और बंशलोचन, इन सबको उत्तरोत्तर एक २ भाग अधिक लेवै । दालचीनी और इलायची आधे २ भाग लेवै । और पीपल से अठगुनी सफेदचीनी डालकर चूर्ण बनावै । यह चूर्ण खांसी, श्वास और अरुचि को दूर करताहै, अत्यन्त अग्निसंदीपन है हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष, शोष, प्लीहा, और ज्वरको दूर करनेवाला है । वमन, अतिसार और शूलको दूर करताहै ऊर्ध्ववातानुलोमी है ।

मिश्रीकी चासनी में पूर्वोक्त चूर्ण को डालकर गोली बनालेवै, अग्निके संस्कार से ये गोलियां चूर्णकी अपेक्षा हलकी होती हैं ।

यक्ष्मारोगमें मांसव्यवस्था।

शुष्यतःक्षीणमांसायकल्पितानिविधानवित्। दद्यान्मांसादमांसानिबृंहणानिविशेषतः॥ शोषिणेवर्हिणंदद्याद्बर्हिशब्देन चापरान्। गृध्रानुलूकाश्चाषांश्चविधिवत्सूपकल्पितान्॥ काकांस्तित्तिरिशब्देनमत्स्यशब्देनचोरगान्। भृष्टान्मत्स्यान्त्रशब्देनदद्याद्गण्डूपदानपि॥ लोमशान्स्थूलनकुलान्विडालांश्चोपकल्पितान्। शृगालशावांश्चभिषक्शशशब्देन दापयेत्॥ सिंहानृक्षांस्तरक्षूंश्चव्याघ्रानेवंविधांस्तथा। मांसादान्मृगशब्देन दद्यान्मांसाभिवृद्धये॥ गजखड्गितुरङ्गाणांवेशवारकृतान्भिषक्। दद्यान्माहिषशब्देनमांसंमांसाभिवृद्धये।

अर्थ—जिस यक्ष्मारोगीका मांस क्षीण होगयाहै उसे मांसाहारी जीवों का मांस देना चाहिये क्योंकि यह अत्यंत बृंहण होता है। इसरोगीको मोरकामांस खवावै अथवा मोरके शब्द से अन्य गिद्ध घुग्घू और चीलकामांस अनेक तरहसे सागभाजी की तरह बनाकर सेवन करावे। ततिरके नामसे कौएकामांस, मछली के नामसे सर्पकामांस, मछली के अंत्रके नामसे गिडोये,खर्गोश के मांसके नामसे रोमयुक्त मोटे नकुलकामांस, बिल्ली या शृगाल के बच्चेका मांस सागभाजीकी रीति से प्रस्तुत करके देवे। हिरनमांसके नामसे सिंह, रीछ, रोझ वगैरे तथा ऐसेही अन्य मांसाहारी पशुओंका मांस मांसकी वृद्धि के लिये देवे। भैंसाके मांसके नामसे हाथी घोडे वा गेंडे के मांसका वेशवार बनाकर देवे। इन मांसों से मांसकी वृद्धि होती है।

मांसेनोपचिताङ्गानांमांसंमांसकरंपरम्। तीक्ष्णोष्णलाघवाच्छस्तं विशेषान्मृगपक्षिणाम्॥ मांसानियान्यनभ्यासादनिष्टानिप्रयोजयेत्। तेपूपधासुखंभोक्तुंतथाशक्यानितानिहि॥ जानन्जुगुप्सन्नैवाद्याज्जग्धंवापुनरुल्लिखेत्। तस्माच्छद्मोपसिद्धानिमांसान्येतानिदापयेत्॥

अर्थ—मांसाहारी जीवोंका मांस अत्यन्त मांसवर्द्धक होताहै इनमें से मृग और पक्षियों का मांस तीक्ष्ण, उष्ण और लघु होने से अत्यन्त हितकारी होताहै। अनभ्यास के कारण जो अनिष्ट मांसोंका प्रयोग किया जाता है उनमें भी रुचिको उत्पन्न करके सुखपूर्वक भोजन करै। जो रोगी जानकर भी घृणा प्रकट करता हुआ खालेता है वह वमन करदेताहै, इससे इन मांसों को छल से सिद्ध करके देवे।

दोषपरत्वसे यक्ष्मामें मांसविधान।

बर्हितित्तिरिदक्षाणांहंसानांशूकरोष्ट्रयोः। खरगोमहिषाणाश्चमांसंमांसकरंपरम्॥ योनिरष्टविधाचोक्तामांसानामन्नपानिके। तान्परीक्ष्यभिषग्विद्वान्दद्यान्मांसानिशोषिणे॥ प्रसहाभूशयानूपवारिजावारिचारिणः। आहारार्थंप्रदातव्यामात्रयावातशोषिणे। प्रतुदाविष्किराश्चैव धन्विजाश्चमृगद्विजाः। कफपित्तपरीतानांप्रयोज्याःशोषरोगिणाम्॥ त्रिविध-

त्सूपसिद्धानिमनोज्ञानिमृदूनिच । रसवन्तिसुगन्धीनिमांसान्येतानिभक्षयेत् ॥

अर्थ—मोर तीतर, मुर्गा, हंस, सूअर, ऊंट, गधा, गौ, भैंसा इनका मांस अत्यन्त मांसवर्द्धक होताहै । अन्नपानाध्यायमें जो आठ प्रकारके मांस वर्णन कियेगये हैं उन्हीं मांसों में से यक्ष्माके अनुसार रोगी को मांसका सेवन कराना चाहिये, यथा वातशोषी रोगीको प्रसह, भूशय, आनूप देशज जलजें और जलचर पशुपाक्षियों का मांस खाने के लिये देवै । कफ पित्त शोप रोगियोंको प्रतुद, विष्किर और धन्वज पशुपक्षियोंका मांस देवै ॥

इन सम्पूर्ण मांसों को साग भाजी की तरह सिद्ध कराके मनोज्ञ मृदु रसीले और सुगंधित द्रव्य डालकर देवै ॥

मांसमेवाश्नतःशोषेमाध्वींकंपिवतोऽपिच नियतस्याल्पचित्तस्याचिरकायेनतिष्ठति वारुणीमण्डभक्तस्यवहिर्मार्जनसेविनः । अविधारितवेगस्ययक्ष्मानलभतेऽन्तरम्॥ प्रसन्नांवारुणींशीधुमरिष्टानासवान्मधु । यथेष्टमनुपानार्थंपिबेन्मांसानिभक्षयेत् ॥

अर्थ—उस नियमसे चलनेवाले और शान्तात्मा मनुष्यके शरीरमें यह रोग बहुत दिवस तक नहीं रहने पाताहै जो मांस खाता है और माध्वीक पीताहै । जो सुरा मण्डलको पीताहै और स्नानादि वहिर्मार्जन करताहै तथा मलमूत्रादिके उपस्थित वेगों को नहीं रोकता है उसके यक्ष्मा भीतर प्रवेश नहीं करसकता । यक्ष्मारोग में प्रसन्ना वारुणी, शीधु अरिष्ट, आसव और मधु इन का यथेष्ट पानकरै और यथेष्ट मांसभक्षणकरै

यक्ष्मा में मद्यके गुण ।

मद्यंतीक्ष्णोष्णवैशद्यसूक्ष्मत्वात्स्रोतसांमुखम् । प्रमथ्यविवृणोत्याशुतन्मोक्षात्सप्तधातवः । पुष्यन्तिधातुपोषाच्चशीघ्रंशोषप्रशाम्यति ॥

अर्थ—मद्य तीक्ष्ण, उष्ण, विशद और सूक्ष्महोने के कारण स्रोतों के मुखका प्रमथन करके उन्हें खोलदेताहै और उनके खुलनेसे सातों धातु पुष्ट होनेलगतीहै और धातुओं के पुष्ट होने से शोष शीघ्र शान्त होजाता है ।

अन्य प्रयोग ।

मांसादमांसस्वरसैसिद्धंसर्पिःप्रयोजयेत्। सक्षौद्रंपयसासिद्धंसर्पिर्दशगुणेनवा ॥ सिद्धंमधुरकैर्द्रव्यैर्दशमूलकषायिकैः। क्षीरमांसरसोपेतंघृतंशोषहरंपरम् ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः । सयावशूकैःसक्षीरैःस्रोतसांशोधनंघृतम् ॥ रास्नाबलागोक्षुरकंस्थिरावर्षाभूसाधितम् । जीवन्तीपिप्पलीभार्गीसक्षीरंशोषनुद्घृतम् ॥ यवाग्वावापिवेन्मात्रांलिह्याद्वामधुनासह । सिद्धानांसर्पिषामेषामद्याद्दशेनवासह ॥ श्रूयतामेषनिर्दिष्टोविधिराभ्यवहारिकः । वहिःस्पर्शनमाश्रित्यवक्ष्यतेऽयःपरंविधिः ॥

अर्थ....यक्ष्मामें मांसाहारी जीवोंके मांस रसमें सिद्ध कियाहुआ घृत देवै । अथवा दसगुने दूध में घृत पकाकर शहत के साथ

सेवन करे । अथवा मधुरगणोक्त द्रव्य, और दशमूलके क्वाथमें दूध और मांसरस मिलाकर उसमें घृत को पकाकर देवैं यह अत्यन्त शोषनाशक प्रयोगहै । अथवा पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ जवाखार और दूध इन में सिद्ध किये हुए घृतका सेवन कराने से स्रोतोंका मुख खुलताहै । अथवा रास्ना, खरैटी, गोखरू शालिपर्णी और सांठ इनके क्वाथमें जीवन्ती, पीपल, भाडंगी और दूध डालकर घृत पकावे यह घृत शोषको दूर करताहै । ऊपर कहेहुये घृतोंको यवागू में मिलाकर पीवे अथवा शहतमें मिलाकर चाटै । अथवा आहारके साथ सेवन करै ।

शोषरोगीके लिये यह आहारविधि वर्णन की गई है अब यहांसे बहिःस्पर्शनविधिका वर्णन करेंगे ।

अवगाहनविधि ।

स्नेहक्षीराऽम्बुकोष्ठेतंस्वभ्यक्तमवगाहयेत्। स्रोतोविबन्धमोक्षार्थंबलपुष्ट्यर्थमेववा ॥ उत्तीर्णमिश्रकैःस्नेहैःपुनरुक्तैःसुखाकरैः। मृद्नीयात्सुखमासीनंसुखंचाच्छादयेन्नरम्॥

अर्थ—रोगीके देहपर तैलमर्दन करके घी दूध या जलकी कोठीमें विठलाकर स्नान करावे, ऐसा करनेसे स्रोतोंके मुख खुलजातेहैं तथा बल और पुष्टाई बढतीहै स्नानके पीछे रोगी को आराम से विठाकर पूर्वोक्त मिश्रकस्नेहका रोगीकी देहपर धीरे २ मालिश करके उसको अच्छी तरहसे वस्त्र उढादेवे ॥

उद्वर्त्तनविधि ।

जीवन्तींशतवीर्य्यांश्चविकसांसपुनर्नवाम्। अश्वगन्धामपामार्गंतर्कारींमधुकंबलाम् ॥ विदारींसर्षपंकुष्ठंतण्डुलानतसीफलम् । माषांस्तिलांश्चकिण्वञ्चसर्वमेकत्रचूर्णयेत्॥ त्रिगुणंयवचूर्णेनदध्नायुक्तंसमाक्षिकम् । एतदुत्सादनंकार्य्यंपुष्टिवर्णबलप्रदम् ।

अर्थ....जीवन्ती, शतवीर्य्या (दूब भेद) मजीठ, सोंठ, असगंध, ओंगा, अरनी, मुलहठी, खरैटी, विदारीकन्द, सरसों, कूठ, तण्डुल, अलसी, उरद, तिल और सुराबीज इन सबको पीसलेवे इसमें तिगुना जौ का चून, तथा दही और शहत मिलाकर के उवटना करै । इससे पुष्टाई, बल और वर्ण बढताहै ।

गौरसर्षपकल्केनगन्धैश्चापिसुगन्धिभिः । स्नायादृतुसुखैस्तोयैर्जीवनीयौषधैःशृतैः॥ गन्धैःसमाल्यैर्वासोभिर्भूषणैश्चविभूषितः॥ स्पृश्यान्संस्पृश्यसंपूज्यदेवताःसभिषग्द्विजान् ॥ इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धवत्पानभोजनम् ॥ इष्टमिष्टैरुपहितंसुखमद्यात्सुखप्रदम् ॥

अर्थ—सफेद सरसोंका कल्क, और सुसुगंधित द्रव्योंको जीवनीयगणोक्त औषधिओं में क्वाथ करके ऋतुके अनुसार सुखदायक जलोंसे स्नान करै जैसें गरमीमें शीतल जल से सरदीमें गरम जलसे स्नान करै फिर अतर फुलेल लगाकर फूलमाला और स्वच्छ वस्त्र धारण करै, आभूषण पहरे । मंगल द्रव्यों का स्पर्श कर देवता, वैद्य और ब्राह्मणोंका पूजन करै फिर अपने इष्टमित्रोंके साथ इच्छानुसार रस, वर्ण स्पर्श और गंध से युक्त सुखपूर्वक अन्नपानका सेवन करै ।

पथ्यतम भोजन ।

समातीतानिधान्यानिकल्पनीयानिशुष्य-ताम् । लघूनिहीनवीर्य्याणितानिपथ्यतमानिहि ॥

अर्थ—शोषरोगियोंके लिये एक वरसके रक्खे हुए पुराने चांवलोंका सेवन करावें ये लघु और हीनवीर्य होनेके कारण अत्यन्त पथ्यतम होते हैं ।

यक्ष्मामें अन्यपथ्य ॥

यच्चोपदेक्ष्यतेपथ्यंक्षतक्षीणचिकित्सिते । यक्ष्मिणस्तत्प्रयोक्तव्यंबलमांसाभिवृद्धये॥

अर्थ....क्षतक्षीण चिकित्सामें जो जो प्रयोग वर्णन कियेगयेहैं वे सब बल और मांस बढानेके लिये यक्ष्मामें देने चाहिये ।

यक्ष्मामें अन्यउपचार ।

अभ्यङ्गोत्सादनैःस्नानैरवगाहैर्विमार्जनैः। वस्तिभिःक्षीरसर्पिर्भिर्मांसैर्मांसरसौदनैः॥ इष्टैर्मद्यैर्मनोज्ञानांगन्धानामुपसेवनैः।यथ-र्तुविहितैःस्नानैर्वासोभिरहतैःप्रियैः॥ सुहृदांरमणीयानांप्रमदानांचदर्शनैः । गीतवादित्रशब्दैश्चाभियश्रुतिभिरेवच॥ हर्षणाश्वासनैर्नित्यंगुरूणांसमुपासनैः । ब्रह्मचर्येणदानेनतपसादेवतार्चनैः ॥सत्येनाचारयोगेनमङ्गलैरविहिंसया । वैद्यविप्रार्चनाच्चैवरोगराजोनिवर्त्तते ॥

अर्थ....तेलकी मालिश करने से, उवटना करनेसे,स्नान, अवगाहन और मार्जन करने से; वस्तिकर्म से, घृत, दुग्ध, मांसके सेवन से, मांसरस के साथ भात खाने से, इष्ट मद्यपान से, मनोहारी गंधों के सूंघने से, ऋतु २ के अनुसार जलों से स्नान करनेसे, अखण्ड और प्यारे वस्त्रोंको धारण करनेसे इष्टमित्रोंके दर्शनसे, और कमनीय स्त्रियोंके देखनेसे गीत बाजोंके शब्दोंसे, प्यारी वार्तों के सुनने से, हर्ष और आश्वासनसे, गुरुजनोंकी नित्यप्रति सेवा करनेसे, ब्रह्मचर्य्य, दान तप और देवतार्चन नियमोंके पालनसे सत्यव्रतपालन, मंगलाचरण और अहिंसा से, वैद्य और विप्रोंके पूजनसे यह रोगराज राजयक्ष्मा दूर होजातीहै ॥

यथाप्रयुक्तयाचेष्ट्याराजयक्ष्मापुराजितः। तांवेदविहितामिष्टिमारोग्यार्थीप्रयोजयेत्

अर्थ—जिस प्रयोग और कामसे प्राचीन कालमें यह रोग दूर किया गयाथा उस वेदोक्तकार्य को आरोग्य प्राप्त करनेके लिये करें

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ॥

प्रागुत्पत्तिनिमित्तानिप्राग्रूपंरूपसंग्रहः ॥ समासव्यासतश्चोक्तंभेषजंराजयक्ष्मणः॥ नामहेतुरसाध्यत्वंसाध्यत्वंकृच्छ्रसाध्यता इत्यर्थसंग्रहःप्रोक्तोराजयक्ष्मचिकित्सिते॥

अर्थ....इस राजयक्ष्माके चिकित्साध्यायमें राजयक्ष्माकी प्रागुत्पत्ति, निदान, पूर्वरूप रूप और चिकित्सा विस्तारपूर्वक तथा संक्षेप से वर्णन किये गये हैं । इस रोगके अन्यनाम, हेतु, असाध्यता, साध्यता, और कृच्छ्रसाध्यताका वर्णन किया गया है ॥

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने राजयक्ष्मचिकित्सितं नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः

अथातोऽर्शसांचिकित्सितंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम 'अर्शचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

आसीनंमुनिमव्यग्रंकृतजप्यंकृतक्षणम्। पृष्टवानर्शसांयुक्तिमग्निवेशःपुनर्वसुम्॥ प्रकोपहेतुःसंस्थानंस्थानंलिंगंचिकित्सितम्। साध्यासाध्यविभागश्चतस्मैतन्मुनिरब्रवीदिति॥

अर्थ—जब महात्मा पुनर्वसु जपादि नित्यकर्मसे निश्चिन्त होकर स्वस्थचित्तसे बैठे हुएथे इस अवकाशको देखकर अग्निवेशने उनसे अर्शरोग की युक्ति, प्रकोप हेतु, आकृति, उत्पत्तिस्थान, लक्षण चिकित्सा, साध्यासाध्य लक्षण पूछे और मुनीश्वरने इन सब प्रश्नोंका यथावत् उत्तर दिया।

अर्श के भेद।

इहखल्वग्निवेश! द्विविधान्यर्शांसिसहजानिकानिचित्॥ कानिचिज्जातस्योत्तरकालजानि। तत्रबीजंगुदवलिबीजोपतप्तमायतनमर्शसांसहजानां॥ तत्राद्विविधौबीजौउपतप्तौ, हेतुःमातापित्रोरपचारःपूर्वकृतञ्चकर्मतथान्यपामपिसहजानांविकाराणाम्॥ तत्रसहजातानीतिशरीरेणार्शांसीत्यधिमांसविकाराः।

अर्थ–हे अग्निवेश! अर्श [बवासीर] दो प्रकारके होते हैं एक सहज [जन्म सेही होनेवाला] दूसरा उत्तरकालज (जन्म लेनेसे पीछे होनेवाला) इनमें सहज अर्शोंका आयतन गुदवलि बीजोपतप्त है, इनमें से माता पिताके अपचार से बीजके उपतप्त होनेके कारण तथा पूर्वजन्म के किये हुए कर्मसे सहज अर्श होताहै, तथा अन्य सहज विकारों के भी ये ही दोनों हेतुहैं॥ जो अर्श शरीरके साथही होते हैं ये एक प्रकार के अधिमांस विकार हैं।

अर्श का स्थान।

सर्वेषाञ्चार्शसांक्षेत्रंगुदस्यार्द्धपञ्चमांगुलेऽवकाशेत्रिभागान्तरास्तिस्रोगुदवलयः क्षेत्रमितिदेशः। केचित्तुभूयांसमेवदेशमुपदिशन्त्यर्शसांशिश्नमपत्यपथंगलमुखनासिकाकर्णाक्षिवर्त्मानित्वक्च।तदस्त्यधिकमांसदेशएषःगुदवलिजानांत्वर्शांसीति संज्ञातत्रअस्मिन्सर्वेषांचार्शसांअधिष्ठानं मेदोमांसंत्वक्च॥

अर्थ—गुदाके द्वारसे भीतरको साडे पांच अंगुलके बीचमें प्रवाहिणी, विसर्जनी और संवरणी, ये तीन आंटी होती हैं इनमें ही सब प्रकारके अर्शरोग उत्पन्न होतेहैं और अर्शरोगकी उत्पत्तिका यही स्थान अर्थात् क्षेत्र है॥ कोई २ यह कहतेहैं कि केवल गुदाही अर्श का स्थान नहींहै किन्तु और भी हैं, यथा मेढ्र, योनिमार्ग, गला, मुख, नासिका, कान, आंख के कोए और त्वचा परन्तु इन स्थानों में जो मांस बढता है वह अर्श नहीं कहलाताहै वह तो अधिमांसहै और गुदाकी आंटियोंमें जो मांसकी वृद्धि होतीहै उसेही' अर्श, कहतेहैं। यहां सम्पूर्ण

प्रकारकी अर्शोका अधिष्ठान मेदा, मांस और त्वचा हैं ॥

सहज अर्श की आकृति ।

तत्रसहजान्यर्शांसिकानिचिदणूनि, कानिचिन्महान्ति, कानिचिद्दीर्घाणि, कानिचिद्ह्रस्वानि, कानिचिद्वृत्तानि, कानिचिद्विषमविसृतानि, कानिचिदन्तःकुटिलानि, कानिचिद्बहिः कुटिलानि कानिचिज्जटिलानि, कानिचित्तनुमुखानि, यथास्वंदोषानुबद्धवर्णानि

अर्थ---इन सहज अर्शो में कोई सूक्ष्म कोई बड़ी, कोई दीर्घ, कोई छोटी, कोई गोल, कोई विषमरीतिसे फैलीहुई, कोई भीतरको टेढी, कोई बाहरको टेढी, जटिल, कोई भीतर की ओर मुखवाली होतीहै और जिसदोषकी अधिकता होतीहै उसीके अनुसार अर्शका रंग होता है ॥

सहज अर्शरोगीके लक्षण ।

तैरुपहतोजन्मप्रभृतिभवतिकृशोविवर्णः क्षामोदीनःप्रचुरविबद्धवातमूत्रपुरीषःशार्करीचाश्मरीवातथानियताविबद्धमुक्तपक्वामशुष्कभिन्नवर्चाःअन्तरान्तरामश्वेतपाण्डुहरितपीतरक्तारुणतनुसान्द्रापिच्छिलकुणपगन्धामवर्च्चउपवेशीनाभिवस्तिवंक्षणोद्देशेप्रचुरपरिकर्त्तिकान्वितः सशूलगुदप्रवाहिकापरिहर्षप्रमेहप्रसक्त विष्टम्भान्त्रकूजोदावर्त्तहृदयेन्द्रियोपलेपः प्रचुरविबन्धतिक्ताम्लोद्गारः । सुदुर्वलो दुर्बलाग्निरल्पशुक्रःक्रोधनोदुःखोपचारशीलःकासश्वासतमकतृष्णाहृल्लासच्छर्दिररोचकाविपाकपीनसक्षवथुपरीतस्तैमिरिकःशिरःशूलीक्षामाभिन्नसन्नसक्तजर्जरस्वरःकर्णरोगीसशूनपाणिपादवदनाक्षिकूटःसज्वरःसांगमर्दःसर्वपर्वास्थिशूलीचान्तरान्तरापार्श्वकुक्षिवस्तिहृदयपृष्ठत्रिकग्रहोपतप्तःप्रध्यानपरःपरमलसश्चेति

अर्थ---जिस मनुष्यके सहजअर्श होता है वह जन्मसेही कृश, विवर्ण, क्षीण और दीन होता है, उस के अधोवायु और मल मूत्र का विबन्ध नित्यप्रति रहाकरता है, उस के शर्करारोग पथरी का रोग भी रहता है । उस का दस्त सदाही विबन्धयुक्त, पक्व, आम, शुष्क और फटाहुआ होता है और बीच २ में सफेद, पीला, हरा, पाण्डु वर्ण, रक्त, अरुण, पतला, गाढा, गिलगिला, सड़ीहुई दुर्गन्धियुक्त और कच्चापन लियेहुए निकलता है । बैठे रहने से इस रोगीके नाभि, वस्ति और वंक्षणोंमें ऐंठा होतारहताहै । इस रोगके शूल, प्रवाहिका रोमोद्गम; प्रमेह, प्रसक्त विष्टम्भता, अंत्रकूजन, उदावर्त्त, हृदय तथा इन्द्रिय समूहोंमें लिहसावट, अत्यन्त विबन्धतायुक्त तिक्त और खट्टी डकार, दुर्बलता, मन्दाग्नि, अल्पवीर्य, क्रोध, दुःखोपभोग, खांसी, श्वास, तमकश्वास, हल्लास, वमन, अरुचि, पीनस, छींक तिमिररोग जैसे रतोंध, शिरदर्द, स्वरक्षीणता, स्वरभिन्नता, स्वरसन्नता, स्वरसक्तता; स्वरजर्जरता, कर्णरोग, हाथ पांव मुख -- अक्षिकूटमें सूजन, ज्वर, अंगमर्द, देहके सब पर्व्वोंमें दर्द, पीठ, गर्दनके बीच२

में पसली, कूख, वस्ति, हृदय, पीठ, गर्दन के जोते इनमें वेदना, और ताप, चिन्ताग्रस्तता अत्यन्त आलस्य के विकार रहा करतेहैं

उक्तउपद्रवोंका कारण ।

जन्मप्रभृतिअस्यगुदजैराहतोमार्गोपरोधाद्वायुरपानःप्रत्यारोहन्समानव्यानप्राणोदानान्पित्तश्लेष्माणौचप्रकोपयति । तेप्रकुपिताःपञ्चवाताःपित्तश्लेष्माणौ चार्शसामभिद्रवन्तेएतान्विकारानुपजनयन्तीत्युक्तानिसहजन्यर्शांसि ॥

अर्थ—जन्मसेही गुदामें उत्पन्नहुई अर्श से रुककर ऊपरको बढतीहुई अपानवायु समान व्यान, प्राण, और उदान इन चारों वायुको तथा पित्त और कफ को प्रकुपित करदेती है । इसतरह प्रकुपित हुए पांचों वायु तथा पित्त और कफ अर्श को उपद्रुत करके पूर्वोक्त विकारोंको उत्पन्न करतेहैं ।

यह सहज अर्शोका वर्णन कियागयाहै ।

उत्तरकालजअर्शके लक्षण ।

अतऊर्ध्वंजातस्योत्तरकालजानिव्याख्यास्यामः । गुरुमधुरशीताभिष्यन्दिविदाहिविरुद्धाजीर्णप्रमिताशनासात्म्यभोजनाद्गव्यमत्स्यवाराहमाहिषाजाविकपिशितभक्षणात्कृशशुष्कपूतिमांसपैष्टिकपरमान्नक्षीरमोदकदधितिलगुडविकृतिसेवनान्माषयूषेक्षुरसपिण्याकपिण्डालुकशुष्कशाकशुक्तलशुनकिलाटपिण्डकाबिसमृणालशालूककौञ्चादनकशेरुकाशृङ्गाटकतरुणविरूढनवधान्याममूलकोपयोगाद्गुरुफलशाकरागहरितवसाशिरस्पदपर्युषितपूतिशीतसङ्कीर्णान्नाभ्यवहरणान्मन्दकातिक्रान्तमद्यपानाद्व्यापन्नगुरुसलिलपानादतिस्नेहपानादसंशोधनाद्बस्तिकर्मविभ्रमादव्यवायाद्दिवास्वप्नात्सुखशयनासनोपसेवनाच्चोपहताग्नेर्मलोपचयोभवत्यतिमात्रम् अथोत्कटुकविषमकठिनासनसेवनादुद्भ्रान्तयानोष्ट्रयाणादतिव्यवायाद्बस्तिनेत्रासम्यक्प्रणिधानात्गुदक्षणनादभीक्ष्णं शीताम्बुसंस्पर्शाच्चेललोष्टतृणादिघर्षणात्प्रततातिनिवर्हणाद्वातमूत्रपुरीषवेगोदीरणात्समुदीर्णवेगविनिग्रहात् स्त्रीणाञ्चामगर्भभ्रंशाद्गर्भोत्पीडनाद्बहु विषमप्रसूतिभिश्चप्रकुपितोवायुरपानोमलमुपचितमधोगममासाद्यगुदवलिष्वाधत्तेततस्तास्वर्शांसिप्रादुर्भवन्ति ।

अर्थ—अब जन्मके पीछे होनेवाले अर्शरोगका वर्णन करेंगे-यथा भारी, मिष्ट, शीतल अभिष्यन्दी, विदाही, विरुद्ध, अजीर्णकर्त्ता भोजन, प्रमितभोजन और असात्म्य भोजन से, गौ, मछली, सूअर, भैंसा, बकरी, भेड़ इनका मांस खानेसे, कृश शुष्क और सडेहुये मांसके सेवन करनेसे, पिष्टक, परमान्न, दूध, मोदक, दही, तिल, गुड इनके बनेहुये पदार्थोंके सेवनसे, उरद का यूष ईखका रस, पिण्याक, पिण्डालू, सूखासाग, सिरका, लहसन, कीला, पिण्डक, कमलनाल, मृणाल, शालूक, क्रौञ्चादन, कसेरू, सिंघाडोंके सेवनसे, तरुण, उगेहुये, नवीन धान्योंके खानेसे, कच्ची मूली के सेवनसे, भारीफल, शाक, रागखाडव, हरितक, चर्बी, पक्षियोंके सिर, पांव तथा, वासी, सडाहुआ, ठंडा, संकीर्ण भोजन करने

से, मन्दक दधि और अत्यन्त मद्यपान करनेसे, दूषित और भारीजलके पीनेसे, अत्यन्त स्नेह पानकरनेसे, असंशोधनसे वस्तिकर्ममें उलट पुलट होनेसे, अव्यवायसे, दिन में सोनेसे, सुखासन, शय्या वा आसन पर अत्यन्त बैठे रहनेसे अग्निमन्द पडजातीहै और अग्निके मन्द पडजानेसे मलकी अत्यन्त वृद्धि होतीहै। इसीतरह उकडूं बैठनेसे, विषम वा कठोर आसनपर बैठेरहनेसे, ऐसी सवारीपर चढनेसे जिसमें झटके बहुत लगते हों, ऊंटपर चढनेसे, अत्यन्त मैथुन करनेसे वस्तिनेत्रके ठीक २ न लगनेसे, गुदामें घाव होजानेसे, अथवा बार २ बहुत ठंडे वा गरम जलसे धोनेके कारण अथवा कपडा, लोहा, मिट्टीका ढेला वा तिनुकेसे अत्यन्त घर्षण करनेसे, अत्यन्त किंचनेसे अधोवायु मूत्र और पुरीषके अनुपस्थितवेग को निकालनेसे तथा उपस्थित वेगका निग्रह करनेसे, स्त्रियों के आमगर्भके गिरपडनेसे, गर्भके उत्पीडन से, बहुत संतान होने से वा विषम रीतिसे होनेपर अपानवायु प्रकुपित होकर पूर्व संचित मलसे उस समय मिलजातीहै जब वह नीचे को जाने लगताहै, वह अपानवायु गुदाकी आंटोंमें स्थित होजाताहै और वहां विकार उत्पन्न करके अर्श रोगको उत्पन्न करता है ॥

दोषपरत्वसे अर्शका आकार ।

सर्षपमसूरमाषमुद्गमकुष्ठकयवकलायपिण्डिटिकेरखर्जूरकर्कन्दुकाकणन्तिकाबिम्बीबदरकरीरोदुम्बरजाम्बवगोस्तनाङ्गुष्ठकशेरुकाशृङ्गाटकशृङ्गीदक्षशिखिशुकतुण्डजिह्वामुकुलकर्णिकासंस्थानानिसामान्याद्वातपित्तकफप्रबलानितेषामयंविशेषः ।

अर्थ—सरसों, मसूर, उडद, मूंग, मोंठ, जौ, कलाय, टिण्टिकेर (टेंटी) खिजूर, बेर, चिरमिठी, कंदूरी, बेर, करील, गूलर, जामन, किसमिस, अंगूठा, कसेरु, सिंघाडा, काकडासींगी, मुर्गा, मोर, तोता, इनकी चोंच और जिह्वा तथा फूलकी कर्णिकाके समान आकार उन अर्शोंका होताहै जो वात, पित्त तथा कफकी प्रबलतासे हुई है । इनके विशेष लक्षण नीचे लिखे जाते हैं ।

वातप्रबल अर्शके लक्षण ।

शुष्कम्लानकठिनपरुषरूक्षश्यावानितीक्ष्णाग्राणिवक्राणिस्फुटितमुखानिविषमविस्तृतानिशूलाक्षेपतोदस्फुरणचिमिचिमासंहर्षणपरीतानिस्निग्धोष्णोपशयानिप्रवाहिकाध्मानशिश्नवृषणवस्तिवंक्षणहृद्ग्रहाङ्गमर्दहृदयद्रवप्रबलानिभृशतविबद्धवातमूत्रवर्चांसिकठिनवर्चास्यूरुकटीपृष्ठत्रिकपार्श्वकुक्षिवस्तिशूलशिरोऽभितापिक्षवथूद्गारप्रतिश्यायकासायासशोषशोथमूर्च्छारोचकमुखवैरस्यतैमिर्यकण्डूनासाकर्णशंखशूलस्वरोपघातकराणिश्यावारुणपरुषनखनयनवदनत्वङ्मूत्रपुरीषस्य वातोल्वणान्यर्शांसीतिविद्यात् ।

अर्थ—ये अर्श जो शुष्क, कुम्हलाईहुई कठोर, खरखरी, रूक्ष, श्यामवर्ण, तीक्ष्ण अग्रभागवाली, टेढी, फटेहुए मुखकी विषम रीतिसे फैली हुई होती है तथा जिनमें

शूल, आक्षेप, तोद (सुई चुभने कीसी वेदना), स्फुरण (फुरफुरी) चिमचिम और रोमोद्गम होताहै, जिनमें स्निग्ध और उष्णद्रव्योंके व्यवहारसे शान्ति होती है जिनमें प्रवाहिका अध्मान होताहै तथा मेद, अण्डकोप, वस्ति, वंक्षण और हृदयमें वेदना होती है जिसमें अंगमर्द और हृदय द्रवकी प्रबलता होती है, जिसमें अधोवायु, मल और मूत्र रुकजाताहै, मल कडा पडजाता है, ऊरू, कमर, पीठ, त्रिक, पसली, कूख और वस्तिमें शूल होताहै, शिरोवेदना, छींक, डकार, जुकाम, खांसी, आयास, शोप, सूजन, मूर्च्छा, अरुचि और मुखमें विरसता, तिमिर, खुजली, नाककान कनपटीमें वेदना, स्वरभंग, तथा जिसमें नख, नेत्र, मुँख, त्वचा, मूत्र और विष्टा काले, लाल और परुप होजातेहै, उसे वातज अर्श कहते हैं।

भवतिचात्र ।

कषायकटुतिक्तानिरूक्षशीतलघूनिच ।
प्रमिताल्पाशनन्तीक्ष्णमद्यमैथुनसेवनम्॥
लंघनंदेशकालौचशीतौव्यायामकर्म्मच॥
तीक्ष्णोवातातपस्यशोहेतुर्वातार्शसामिति॥

अर्थ—कषाय, कटु, तिक्त, रूक्ष, शीतल और लघु पदार्थोंका अत्यन्त सेवन, मितभोजन, अल्पभोजन, तीक्ष्णमद्यपान, अत्यन्त मैथुन, लंघन, शीतदेश, शीतकाल, व्यायाम प्रचंड पवन, तेज धूप, ये सब वातज अर्श के प्रधान हेतु हैं।

पित्तज अर्श के लक्षण ।

मृदुशिथिलसुकुमाराण्यस्पर्शसहानिरक्तपीतनीलकृष्णानि स्वेदोपक्लेदबहुलानिविस्रगन्धीनितनुपीतरक्तस्रावीणिरुधिरवाहीनिदाहकण्डूशूलनिस्तोदपाकवन्तिशिशिरोपशयानिसंभिन्नपीतहरितवर्चांसिपीतविस्रगन्धप्रचुरविण्मूत्राणिपिपासाज्वरतमकसंमोहभोजनद्वेपकराणिपीतनखनयनवदनत्वङ्मूत्रपुरीषस्यपित्तोल्वणान्यर्शांसीति.विद्यात् ।

अर्थ....पित्तज अर्श उसे कहतेहैं जो मृदु, शिथल और सुकुमारहो, जिसमें हाथ लगानेसे तकलीफ होताहो, जिस का वर्ण लाल, पीला, नीला वा काला हो जिस में पसीने और क्लेदकी अधिकता हो, जिसमें दुर्गन्ध आतीहो, पतला और पीला रक्त झरताहो, रुधिर वहताहो, जो दाह, खुजली शूल, तोद और पाकयुक्तहो, जो शीतल पदार्थों के सेवनसे शान्त होजावे, जिसमें फटाफटा पीला वा हरामल निकले, जिसमें पीला दुर्गन्धयुक्त और अधिक मल मूत्र निकले, जिसमें तृषा, ज्वर तमक, मोह, भोजनमें अरुचि ये उपद्रवहों, जिस में नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टा पीले पडगये हों।

भवतिचात्र ॥

कट्वम्ललवणक्षारव्यायामाग्न्यातपप्रभाः
देशकालावशिशिरौक्रोधोमद्यमसूयनम् ॥
विदाहितीक्ष्णमुष्णञ्चसर्वपानान्नभेपजम्
पित्तोल्वणानांविज्ञेयःप्रकोपेहेतुरर्शसामिति

अर्थ—पित्तोल्वण अर्शके कोपके प्रधान कारण ये है, यथा-कटु, अम्ल, नमकीन और खारे पदार्थों का अत्यन्त सेवन, व्याया

म, अग्नि तथा धूपका अत्यन्त सेवन, उष्ण, देश कालका सेवन, क्रोध, मदिरापान, निन्दा तथा विदाही, तीक्ष्ण, उष्ण अन्नपान और औषधी का सेवन ।

कफजअर्श के लक्षण ॥

तत्रयानिप्रमाणवन्त्युपचितानिश्लक्ष्णानिस्पर्शसहानिश्वेतपाण्डुपिच्छिलानिस्तब्धानिगुरूणीस्तिमितानिसुप्तसुप्तानिस्थिरश्वयथूनिपततपिञ्जरश्वेतरक्तपिच्छस्रावीणिकण्डूबहुलानिगुरुपिच्छिलश्वेतमूत्रपुरीषाणिरूक्षोष्णोपशयानिप्रवाहिकातिमात्रोत्थानिवंक्षणानाहपरिकर्त्तिकाहृल्लासनिष्ठीविकाकासारोचकप्रतिश्यायगौरवच्छर्दिमूत्रकृच्छ्रशोषशोथपाण्डुरोगशीतज्वराश्मरीशर्कराहृदयेन्द्रियास्योपलेपास्यमाधुर्यप्रमेहकराणिदीर्घकालानुपशयान्यतिमात्रमग्निमार्दवक्लैब्यकराण्यामविकारप्रबलानिगुरूणिचशुक्लनखनयनवदनत्वङ्मूत्रपुरीषस्यश्लेष्मोल्वणान्यर्शांसीतिविद्यात् ॥

अर्थ—कफजअर्श उन्हें कहतेहैं जो बडे, मोटे, चिकने, स्पर्शके अयोग्य, सफेद, पीले पिच्छिल, स्तब्ध, भारी, स्तिमित, फैलेहुये, स्थिर सूजनयुक्त हों, जिसमेंसे पीला, सफेद, लाल और पिच्छल स्राव होताहै, जिसमें अत्यन्त खुजली चलतीहै, भारी, पिच्छिल और स्वेत वर्णका मलमूत्र निकलता है, जो रूक्ष और उष्ण पदार्थोंके सेवनसे शान्त होजाता है, जिसमें अत्यन्त प्रवाहिका, वंक्षणानाह, परिकर्त्तिका, हल्लास, निष्ठीवका, खांसी, अरुचि, प्रतिश्याय, भारापन, मूत्रकृच्छ्र, वमन, शोष, शोथ, पाण्डु रोग, शीतज्वर, अश्मरी, शर्करा, हृदयोपलेप, इन्द्रियोपलेप, आस्योपलेप, मुखमें मीठापन और प्रमेहरोग ये उपद्रव होतेहैं यह अर्श बहुत दिवस तक रहताहै और अग्निको अत्यन्त मन्द तथा क्लीवता करता है, इसमें आमविकार उत्पन्न होजाताहै, यह रोग बडाभारी है इसके होने से नख, नेत्र, मुख, त्वचा मूत्र पुरीष सफेद पडजाते हैं ।

भवतिचात्र ।

मधुरस्निग्धशीतानिलवणानिगुरूणिच।
अव्यायातदिवास्वप्नशय्यासनसुखेरतिः।
प्राग्वातसेवाशीतौचदेशकालावचिन्तनम्।
श्लैष्मिकाणांसमुद्दिष्टमेतत्कारणमर्शसाम्॥

अर्थ—कफजअर्शके प्रधानहेतु ये हैं यथा मीठे, चिकने, शीतल, नमकीन और भारी पदार्थोंका सेवन, कसरत कुश्ती न करना, दिनमें सोना, पलंग या आसनपर सुखपूर्वक बैठेरहना, पुरवैयाहवाका खाना, शीतल देशकालमें रहना और बेफिकरी ।

द्वन्द्वजादिअर्श केलक्षण ।

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वोल्वणानिच।
सर्वोहेतुस्त्रिदोषाणांसहजैर्लक्षणैःसह ।

अर्थ....जिनमें दो दो दोषोंके हेतु और लक्षण मिलेहों उन्हें द्वन्द्वजअर्श कहतेहैं । जिनमें तीनों दोषों के मिलेहुए लक्षणहों तथा जो सहजअर्श के लक्षणों से युक्त हो उसे त्रिदोषजअर्श कहतेहैं ।

अर्शकेपूर्वरूप ।

विष्टम्भोऽन्नस्यदौर्बल्यंकुक्षेराटोपएवच ।

कार्श्यमुद्गारबाहुल्यंसक्थिसादोऽल्पवि- ट्कता ॥ ग्रहणीदोपपाण्ड्वार्तिरशङ्काचो दरस्यच। पूर्वरूपाणिनिर्दिष्टान्यर्शसाम तिवृद्धये ॥

अर्थ....पेटमें गुड़गुड़ होना, दुर्बलता, कूखका फूलना, कृशता, डकारोंका अधिक आना, साक्थिसाद, दस्तका कमहोना,ग्रहणी दोष, पाण्डुरोग आर्त्ति, उदररोगकी आशंका ये सब अर्शरोगोंके पूर्वरूप हैं।

अर्शकेनाम विशेषका कारण ।

अर्शांसिखलुजायन्तेनासन्निपतितैः त्रिभिः । दोषैर्दोषविशेषात्तुविशेषःकल्प्यतेऽर्शसाम् ॥

अर्थ—विना तीनों दोषोंके मिलनेके अर्शरोग नहीं होताहै परन्तु जिस दोषकी प्रबलता होतीहै उसी के नामसे वह पुकाराजाताहै ॥

अर्शको कष्टसाध्यत्व ।

पञ्चात्मामारुतःपित्तंकफोगुदवलित्रयम्। सर्वाण्येतानिकुप्यन्तिगुदजानांसमुद्भवे। तस्मादर्शांसिदुःखानिबहुव्याधिकराणि च । सर्वदेहोपतापीनिप्रायःकृच्छ्रतमानिच ॥

अर्थ—प्राणादिक पांच प्रकारकी वायु पित्त, कफ और गुदाकी तीनों अंटी अर्शके उत्पन्न होनेसे एक साथ कुपित होजातीहैं, इस हेतुसे अर्श अत्यन्त दुःखदायक,बहुत व्याधियों को करनेवाली सम्पूर्ण देहको उत्तप्त करनेवाली प्रायःकष्टसाध्य होतीहै ।

असाध्य अर्शके लक्षण ।

हस्तेपादेगुदेनाभ्यांमुखेवृषणयोस्तथा।शोथोहृत्पार्श्वशूलीचयोऽर्शःसनसिद्ध्यति। हृद्वस्तिशूलंसंमोहश्छर्दिरङ्गस्यरुग्ज्वरः । तृष्णागुदास्यपाकश्चनिहन्युर्गुदजातुरम्॥ सहजानित्रिदोषाणियानिचाभ्यन्तरावलिम् । जायन्तेऽर्शांसिसंश्रित्यतान्यसाध्यानिनिर्दिशेत् ॥ शेषत्वादायुपस्तानि चतुष्पादसमन्विते । याप्यन्तेदीप्तकायाग्नेःमत्याख्येयोऽन्यतोऽन्यथा ॥ द्वन्द्वजानिद्वितीयायांवलौयान्याश्रितानिच । कृच्छ्रसाध्यानितान्याहुः परिसम्वत्सराणिच ॥

अर्थ—जिस अर्शरोगीके हाथ, पांव गुदा, नाभि, मुख, अण्डकोष, इनमें शोथ होताहै तथा हृदय और पसलीमें शूल होताहै वह अर्शरोग असाध्य होताहै ॥ जिस रोगीके हृदय और वस्तिमें शूलहो तथा वमन, संमोह अंगवेदना , ज्वर , तृषा गुदाके अग्रभागका पाक इन रोगोंके होनेसे अर्श रोगी मरजाताहै । जो सहज अर्श त्रिदोषसे कुपित होकर गुदाकी भीतरली आंटीका आश्रय करलेती हैं वे असाध्य होती हैं; यदि आयु शेष हो, चिकित्साके चारों पाद युक्तहों और जठराग्नि प्रदीप्तहो तो यह रोग याप्य होजाताहै, नहीं तो असाध्य होताहै। जो सहज अर्श गुदाकी दूसरी आंटीमें आश्रित रहतेहैं वा जो एक बरसके पुराने होगयेहै वे कृच्छ्र साध्य होते हैं ।

साध्यके लक्षण ।

बाह्यायान्तुवलौजातान्येकदोषोल्वणानिच । अर्शांसिसुखसाध्यानिनचिरोत्प-

तितानिच ॥ तेषांमशमनेयत्नमाशुकुर्य्याद्विचक्षणः । तान्याशुहिगुदंवद्धांकुर्य्याद्वद्धगुदोदरम् ॥

अर्थ—जो अर्श गुदाकी बाह्यवाली आंटी में एक दोषसे उत्पन्न होताहै तथा जो बहुत पुराना नहीं होताहै वह सुखसाध्य होताहै। उसके शान्त करनेके लिये बुद्धिमान् वैद्य को शीघ्रही यत्न करना चाहिये, क्योंकि चिकित्सामें विलंब होनेसे अर्श गुदाके मार्गको रोककर वद्ध गुदोदर रोगको उत्पन्न करती है।

साध्यअर्श में कर्त्तव्य कर्म।

तत्राहुरेकेशस्त्रेणकर्त्तनंहितमर्शसाम् ॥ दाहंक्षारेणचाप्येकेदाहमेकेतथाग्निना । अस्त्येतद्भूरितन्त्रेणधीमतादृष्टकर्म्मणा। क्रियतेत्रिविधंकर्म्मभ्रंशस्तस्यसुदारुणः।

अर्थ—कोई २ यह कहतेहैं कि मस्सोंका शस्त्रसे काट डालना हितहै कोई यह कहते हैं कि क्षार या अग्निसे दग्ध करदेना चाहिये ये तीन उपाय शास्त्रज्ञ बुद्धिमान् और क्रिया कुशल वैद्यके करनेके हैं इन कर्मोंमें विघ्न पडनेसे भयंकर उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

कर्मभ्रंशके उपद्रव।

पुंस्त्वोपघातःश्वयथुर्गुदेवेगपरिग्रहः॥ आध्मानंदारुणंशूलंव्यथारक्तातिवर्त्तनम् । पुनर्विरोहोरूढानांक्लेदोभ्रंशोगुदस्यच । मरणंवाभवेच्छीघ्रंशस्त्रक्षाराग्निविभ्रमात्।

अर्थ—शस्त्रकर्म, क्षारकर्म या अग्निकर्ममें किसी प्रकारसे विभ्रम पडनेसे क्लीवता, गुदा में सूजन, मल मूत्रादि वेगका विनिग्रह, अफरा, दारुणशूल, व्यथा, रुधिरका बहना, मस्सोंका फिर उत्पन्न होना, क्लेद, गुदाकी भ्रंशता अथवा मृत्यु ये उपद्रव शीघ्रही होतेहैं।

यत्तुकर्म्मसुखोपायमल्पभ्रंशमदारुणम् ॥ तदर्शसांप्रवक्ष्यामिसमूलानांनिवृत्तये ।

अर्थ—अब हम अर्शसंबंधी उन उपायों का वर्णन करतेहैं जो बहुत सुखसाध्यहैं, जिन में भ्रंश होनेका बहुत कम डरहै और जो बहुत कठिन नहीं हैं। ऐसे ऐसे उपायों को जड समेत अर्श को खो देने के निमित्त वर्णन करते हैं।

वातश्लेष्मोल्वणान्याहुःशुष्काण्यर्शांसितद्विदः ॥ प्रस्रावीणितथार्द्राणिरक्तपित्तोल्वणानिच । तत्रशुष्कार्शसांपूर्वंप्रवक्ष्यामिचिकित्सितम् ॥

अर्शके पहचाननेवाले वात कफोद्भव अर्श को सूखी ववासीर कहतेहै। औरजो रक्तपित्त जन्यहै, उसे स्रावी या गीली कहतेहैं। अब हम प्रथम शुष्क अर्श की चिकित्सा का वर्णन करतेहैं।

शुष्क अर्शकी चिकित्सा।

स्तब्धानिस्वेदयेत्तानिशोफशूलान्वितानिच । चित्रकक्षारविल्वानांतैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान् ॥ यवमाषपुलाकानांकुलत्थानांचपोटलैः । गोखराश्वशकृत्पिण्डैस्तिलकल्कैस्तुषैरपि ॥ वचाशताह्वापिण्डैर्वासुखोष्णैःस्नेहसंयुतैः । सक्तूनांपिण्डिकाभिर्वास्निग्धानांतैलसर्पिषा ॥ शुष्कमूलकपिण्डैर्वापिण्डैर्वाकार्ष्णगन्धिकैः रास्नापिण्डैःसुखोष्णैर्वासस्नेहैर्हपुषैरपि॥इष्टकस्यखराश्वाया शाकैर्गुञ्जनकस्यच। अभ्य

ज्यकुष्ठतैलेनस्वेदयेत्पोटलीकृतैः ॥

अर्थ—जो अर्श स्तब्ध, शोकयुक्त और शूलयुक्तहैं उनमें चीता, जवाखार और बेलफलके तेलकी मालिश करके स्वेदन कर्म में नीचे लिखेहुये प्रयोगों को युक्तकरे, यथा जौ, उरद, पुलाक और कुलथी इनको उबालकर पोटली में बांधे और इस पोटली से धीरे २ सेकने पर स्वेदन होताहै । अथवा गौ, गधा, और घोडे की लीदकी पोटली बनाकर सेकै । अथवा तिलका कल्क और तुष, प्रयुक्त करे । अथवा वच और सोंठको पीसकर घी डालकर पकावै और गरम २ से सेकै । अथवा घी तेल डालकर सत्तूका गोला बनाकर सेकै । अथवा सूखी मूलीका गोला या सहजनेका गोला बनाकर सेकै । रास्ना के गरम २ लुगद वा स्नेहयुक्त हाऊबेरके लुगदसे सेकै अथवा कूठका तेल लगाकर ईंट, गधेकी लीद, और गाजर के सागकी पोटली बनाकर सेकै ।

वृषार्करेरण्डबिल्वानांपत्रोत्क्वाथैश्चसेचयेत् । मूलकत्रिफलार्काणांवेणूनांवारणस्यच ॥ अग्निमन्थस्यशिग्रोश्चपत्राण्यश्मन्तकस्यच जलेनोत्क्वाथ्यशूलार्तस्वभ्यक्तमवगाहयेत् ॥ कोलोत्क्वाथेऽथवाकोष्णेसौवीरकतुषोदके । किण्वोत्क्वाथेऽथवातक्रेदधिमण्डाम्लकाञ्जिके ॥ गोमूत्रेवासुखोष्णेतु शूलार्तमुपवेशयेत्

अर्थ—अडूसा, आक, अंडी और बेल इनके पत्तोंका क्वाथ कर के सेचन करै । शूलयुक्त अर्शरोगीको अच्छीतरह अभ्यक्त करके मूली, त्रिफला, आक, बांस, वरना, अरनी, सहजना और अश्मन्तक इनके पत्तों काक्वाथ करके स्नान करावै । अथवा बेरके क्वाथम सौवीर या तुषोदक में, अथवा किण्वके क्वाथ में अथवा तक्र, दधिमण्ड वा अम्लकांजीमें अथवा गरम २ गोमूत्रमें शूलयुक्त अर्शरोगी को विठादेवै ।

अर्श में अन्यप्रयोग ।

कृष्णसर्पवराहोष्ट्रजतूकावृषदंशजम् ॥ वसामभ्यंजनंकुर्य्याद्धूपनंचार्शसांहितम् । नृकेशाःसर्पनिर्मोकोवृषदंशस्यचर्मच ॥ अर्कमूलंशमीपत्रंअर्शोभ्योधूपनंहितम् । तुम्बुरूणिविडंगानिदेवदार्वक्षताघृतम् । बृहतीचाश्वगन्धाचपिप्पल्यःसुरसोघृतम् । वराहवृषविट्चैवधूपनंशक्तवोघृतम् ॥

अर्थ—कालेसांप, सूअर, ऊंट, जतूका [चमगदड] वा बिल्ली की चर्वीका अर्श पर मर्दनकरै ॥ मनुष्यके केश, सर्पकी की कांचली, बिल्लीका चर्म, आककी जड, शमीपत्र इन सबकी धूप मस्सों को देवै । अथवा धनियां, बायविडंग, देवदारु, अक्षत और घृत । अथवा कटेरी, असगंध, पीपल, सुरसा तुलसी और घी ॥ अथवा सूअर और बैलकी विष्टा, सत्तू और घी इन प्रयोगोंको धूप देनेके लिये काममें लावै ॥

अर्शपरलेप ।

कुञ्जरस्यपुरीषन्तुघृतंसर्ज्जरसोरसःहरिद्राचूर्णसंयुक्तंसुधाक्षीरंप्रलेपनम् ॥ गोपित्तपिष्टाःपिप्पल्यःसहरिद्राःप्रलेपनम् ।शिरीषबीजंकुष्टञ्चपिप्पल्यःसैन्धवंगुडः । अ-

कक्षीरंसुधाक्षीरंत्रिफलाचमलेपनम्॥पिप्पल्यःचित्रकाःश्यामाःकिण्वंमदनतण्डुलाः॥ मलेप कुक्कुटशकृद्धरिद्रागुडसंयुतः निकुम्भःसामृतासंगःपारावतशकृद्गुडः। मलेपःस्याद्गजास्थीनिनिम्बोभल्लातकानि च ॥ मलेपःस्यादलर्केणवसन्तजवसायुतः। शूलश्वयथुहृद्रोगेचुलकीवसयाथवा॥ आर्कपयःसुधाकाण्डंकटुकालाबुपल्लवाः। करञ्जोवस्तमूत्रंचलेपनंश्रेष्ठमर्शसाम्॥ अभ्यंगाद्याःप्रदेहान्तायएतेपरिकीर्तिताः॥ स्तम्भश्वयथुकण्डवर्त्तिशमनास्तेऽर्शसांमताः

अर्थ—हाथीकी लीद, घी, राल, पारा, हल्दी और सेंहुडदूध इनको सानकर अर्श पर लेप करे। अथवा पीपल और हल्दी को गौके पित्तमें पीसकर लेप करे अथवा सिरसके बीज, कूठ, पीपल, सेंधानमक गुड, आकका दूध, सेंहुडकादूध, त्रिफला इनका लेप करे॥ अथवा पीपल, चीता, श्यामा, सुराबीज, मेनफल, चांवल, मुर्गेकी बीठ, हलदी और गुड इन सबका मिलाकर लेप करे॥ अथवा दन्ती, मुर्दासंग, कबूतरकी बीट, गुड, हाथीदांत, नीम और भिलाया इनका लेप करे। अथवा शूल, सूजन और हृद्रोग से युक्त अर्श में ऊंटकी चर्बी या चुल्लकी की चर्बी के साथ सफेद आकका लेप करे। अथवा आकका दूध, सेंहुडके डंठल, कडवी तूंबी के पत्ते, कंजा, बकरेका मूत्र इनका लेप भी अर्शमें हितकारक है।

अभ्यंगसे लेकर प्रदेहतक जो प्रयोग वर्णन कियेगये हैं वेस्तम्भता, सूजन, खुजली और आर्तियुक्त अर्शमें हितकारीहैं।

प्रदेहान्तैरुपक्रान्तान्यर्शांसिप्रस्रवन्तिहि संश्रितंदुष्टरुधिरंततःसम्पद्यतेसुखम्। शीतोष्णस्निग्धरूक्षैर्हिनव्याधिरुपशाम्यति रक्तेदुष्टेभिषक्तस्माद्रक्तमेवावसेचयेत्। जलौकाभिस्तथाशस्त्रैःसूचीभिर्वापुनःपुनः अवर्त्तमानंरुधिरंरक्तार्शोभ्यःप्रवाहयेत्॥

अर्थ—प्रदेह पर्य्यन्त उपचारोंके करने से बिगडाहुआ संचित रुधिर निकलजाता है इसके निकलजानेसे सुखहोता है। दुष्ट रुधिरके विद्यमान होनेपर शीतल, उष्ण, स्निग्ध और रूक्ष उपचारोंके करने से व्याधि शान्त नहीं होतीहै इसमें रुधिरका निकाल देना आवश्यकीय बातहै खूनीबवासीर में जो रुधिरका निकलना बन्द होगया हो तौ जोक, शस्त्र वा सूची द्वारा रुधिर को निकालता रहै॥

अर्श में पेय औषध ॥

गुदश्वयथुशूलार्त्तंमन्दाग्निंपाययेच्चतम्। त्र्यूषणंपिप्पलीमूलंपाठांहिंगुसचित्रकम्॥ सौवर्च्चलंपुष्कराख्यमजाजींबिल्वपेपिकाम्॥ बिडंयवानींहपुषांविडङ्गंसैन्धवं वचाम्। तिन्तिडीकञ्चमण्डेनमद्येनोष्णोदकेनच। तथार्शोग्रहणीदोषशूलानाद्विमुच्यते॥

अर्थ—गुदाके सूजन, शूल और मन्दाग्नि युक्त अर्शमें निम्नलिखित द्रव्योंका पान करावै, यथा त्रिकुटा, पीपलामूल, पाठा, हींग, चीता, संचलनमक, कुडा, कालाजीरा,

वेलगिरी, विडनमक, अजवायन, हाऊवेर, वायविडंग, सेंधानमक, वच इमली, इनको सुरामण्ड, और उष्णजल क साथ पानकरै तौ अर्शरोग, ग्रहणीदोष शूल और आनाह दूर होजातेहैं ।

अन्यप्रयोग ।

कुर्याद्वापाचनंतस्ययदुक्तंह्यातिसारिके । सगुडामभयांवाथप्राशयेत्पौर्वभक्तिकीम् पाययेत्त्रिवृच्चूर्णंत्रिफलायारसेनवा । हृतेगुदाश्रयेदोषेगच्छन्त्यर्शांसिसंक्षयम्

अर्थ—अतिसारकी चिकित्सामें जो पाचन द्रव्य वर्णन कियेगयेहैं उनका प्रयोग भी इस जगह हितहै । यथा भोजन करने से पहिले हरड और गुड मिलाकर सेवन करै। अथवा त्रिफलाके रसके साथ निसोथका चूर्ण पान करै । इन प्रयोगोंके द्वारा गुदाश्रित दोषोंके दूर होनेपर अर्श नष्ट होजाताहै ।

अन्यप्रयोग ।

गोमूत्राध्युषितांदद्यात्सगुडांवाहरीतकीम् हरीतकींतक्रयुतांत्रिफलांवाप्रयोजयेत् ॥ सनागरंचित्रकंवाशीधुयुक्तंप्रयोजयेत् ॥ चव्यंवाशीधुसंयुक्तमजाजीदीप्यकांपिवेत् सुरांवाहपुषांपाठांयुक्तांसौवर्चलायुताम्॥ दधित्थविल्वयुक्तंवातथावाचव्यचित्रकौ भल्लातकयुतांवाथप्रदद्यात्तत्रतर्पणम् ॥ विल्वनागरयुक्तंवायवान्या चित्रकेणवा चित्रकंहपुषांहिंगुंदद्याद्वातक्रसंयुतम् ॥ पञ्चकोलयुतंवापितक्रमस्मैप्रदापयेत् ।

अर्थ—गोमूत्रमें हरडको भिजोकर गुड के साथ देवै । अथवा मठेके साथ हरड वा त्रिफलाका प्रयोग करै अथवा सोंठ और चीते को शीधुमें मिलाकर देवै अथवा शीधुके साथ चव्य वा कालाजीरा और अजवायन पीवै अथवा हाऊवेर, पाठा,संचलनमक इनको सुराके साथ पान करै । अथवा कैथ और वेलगिरी, अथवा चव्य और चीता अथवा मिलायेके साथ तर्पणका प्रयोग करै अथवा वेलगिरी और सोंठ, अथवा अजवायन और चीता अथवा चीता, हाऊवेर और हींग इनको मठेके साथमें देवै । अथवा मठाके साथ पंचकोलका चूर्ण देवै ।

तक्रारिष्ट ।

हपुषांकुञ्चिकांधान्यमजाजींकारवींशटीम् पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पली म्यवानींचाजमोदांचचूर्णितंतक्रसंयुतम् मन्दाम्लकटुकंविद्वान्स्थापयेद्घृतभाजने व्यक्ताम्लकटुकंजातंतक्रारिष्टंमुखप्रियम् प्रपिवेन्मात्रयाकालेष्वन्नस्यतृपितस्त्रिषु । दीपनंरोचनंवर्ण्यंकफवातानुलोमनम् ॥ गुदश्वयथुकण्डूर्तिनाशनंवलवर्द्धनम् ॥

अर्थ....हाऊवेर,छोटाजीरा,धानियां, काला जीरा,कारवी,कचूर पीपल पीपलामूल,चीता गजपीपल,अजवायन,अजमोद इनको समान भाग लेकर चूर्ण वनावै और मठेमें मिलावै इसमें कुछ खट्टा और कटु रस होगा, तदन्तर इसे घृत के पात्रमें भरकर रखदे जब इसमें अम्ल और कटुरस तेज होजाय तब जानना चाहियेकि तक्रारिष्ट तयारहुआ, यह मुखको अत्यन्त प्रिय लगताहै । भोजन के तीनों कालोंमें तृषा लगने पर इसीका मात्रा

के अनुसार पान करे । यह तक्रारिष्ट अग्नि संदीपन, रोचन, वर्णकारक, कफवातानुलोमनकर्त्ता, गुदाकी सूजन, कण्डू और अर्ति का नाश करने वाला तथा बलवर्द्धक होताहै

अर्श में तक्र प्रयोग ।

त्वचंचित्रकमूलस्यपिष्ट्वाकुम्भंप्रलेपयेत्॥ तक्रंवादधिवातत्रजातमर्शोहरंपिवेत् । वा तश्लेष्मार्शसांतक्रात्परंनास्तीहभेषजम् ॥ तत्प्रयोज्यंयथादोषंसस्नेहंरूक्षमेववा । स प्ताहंवादशाहंवापक्षंमासमथापिवा । बल कालविशेषज्ञोभिषक्तक्रंप्रयोजयेत् ।

अर्थ—चीतेकी जडकी छालको पीसकर घडेके भीतर लेप कर दिया जाय तदनन्तर उसमें तयार कियाहुआ मठा या दही अर्शरोगमें अत्यन्त हितकारकहै । वात और कफसे उत्पन्न अर्शमें तक्रसे उत्तम और कोई औषध नहींहै, दोषके अनुसार स्निग्ध या रूक्ष तक्रका प्रयोग करे । बल और काल को जाननेवाला वैद्य सात दिन दसदिन, पन्द्रह दिन या महीने भरतक तक्रका प्रयोग कर सकताहै ।

अत्यर्थमृदुपाकाग्नेस्तक्रमेवावचारयेत् । सायंवालाजशक्तूनांदद्यात्तक्रावलेहिका म् । जीर्णेतक्रेप्रदद्याद्वातक्रपेयांससैन्धवाम् तक्रानुपानंसस्नेहंतक्रौदनमथोत्तरम् । यू षैर्मांसरसैर्वापिभोजयेत्तक्रसाधितम् ॥

अर्थ—जठराग्निके अत्यन्त मन्द होजाने पर तक्रहीके द्वारा चिकित्सा करे, अथवा सायंकालके समय खीलोंके सत्तूका तक्रके साथ अवलेह बनाकर देवे । तक्रके पचने पर तक्रके साथ सेंधानमक की पेया देवे । तक्रका अनुपान करावे । तक्रके साथ घृत युक्त चांवलोंका भात देवे । अथवा तक्रके साथ सिद्ध कियाहुआ यूष या मांसरस देवे।

तक्रसेवनका क्रम ।

कालक्रमज्ञःसहसानचतक्रंनिवारयेत् । तक्रप्रयोगान्मासान्तेक्रमेणोपरमोमतः॥ अपकर्षोयथोत्कर्षोनत्वन्नादपकृष्यते । मत्यागमनरक्षार्थंदार्ढ्यार्थमनलस्यच ॥ बलोपचयवर्णार्थंक्रमएषोपवर्ण्यते ।

अर्थ....कालके क्रमको जाननेवाला वैद्य तक्रके सेवनका सहसा परित्याग न करादेवे । जो तक्र एक महीने तक सेवन किया गयाहै उसका त्याग एक महीनेमें क्रम २से करावै । अन्नके सेवनसे तक्र सेवनमें कमी नहीं होतीहै इस क्रमके अवलंबन करने से अर्शरोग फिर उत्पन्न नहींहोसक्ताहै अग्निदृढ होजातीहै, बल, पुष्टाई और वर्ण बढताहै ।

रूक्षमर्द्धोद्धृतस्नेहंयतश्चानुद्धृतंघृतम् । तक्रंदोषाग्निबलवित्त्रिविधंतत्प्रयोजयेत्। हतानिनविरोहन्तितक्रेणगुदजानितु ॥ भूमावपिनिषिक्तंतद्दहेत्तक्रंतृणोलुपम् । किंपुनर्दीप्तकायाग्नेः शुष्काण्यर्शांसिदेहि नः ॥ स्रोतःसुतक्रशुद्धेषुरसःसम्यगुपैति यः । तेनपुष्टिर्बलंवर्णःप्रहर्षश्चोपजायते ॥ वातश्लेष्मविकाराणांशतंचापिनिवर्त्तते।

अर्थ—दोष, अग्नि और बलका जानने वाला वैद्य रूक्षतक्र, अर्द्धोद्धृत स्नेह और अनुद्धृतघृत इन तीन प्रकारसे तक्रका प्रयोग करे । इनमेंसे पहिली विधि कफाधिक्य

दद्यान्मत्स्यण्डिकांपूर्वभक्तामित्वासनागराम् । गुडंसनागरंपाठांफलाम्लंपाययेचतम् । गुडंघृतयवक्षारंयुक्तंवापिमयोजयेत् । यमानीनागरंपाठांदाडिमस्यरसंगुडम् ॥ सतक्रंलवणंदद्याद्वातवर्चोऽनु-लोमनम् ।

अर्थ—पहिले सोंठके चूर्ण और मिश्रीको फांककर घृतयुक्त सत्तू और नमक मिलीहुई प्रसन्ना अर्थात् मुरामण्डका पान करै । अथवा गुड, सोंठ और पाठा वा अनारका रस पान करावै । अथवा गुड घृत और जवाखार का प्रयोग करै । अथवा अजवायन, सोंठ, अनारकारस गुड तक्र और सेंधानमक ये सब मिलाकरदेवै । इस प्रयोगका सेवन करनेसे अधोवायु तथा विष्ठाका अनुलोमन होताहै ।

दुःस्पर्शकेनविल्वेनयवान्यानागरेणवा ॥ एकैकेनापिसंयुक्तापाठाहन्त्यर्शसांरुजम् ॥ प्रागुक्तयमकेभृष्टान्शक्तुभिश्चावचूर्णिताम् करञ्जपल्लवान्दद्याद्वातवर्चोऽनुलोमनात् । मदिरांवासलवणांशीधुंसौवीरकंतथा । गुडनागरसंयुक्तांपिवेद्वापाविभक्तिकम् ॥

अर्थ....जवासा, वेलगिरी, अजवायन, और सोंठ इन चारोंमें से एक २ के साथ पाठाका क्वाथ करके पीनेसे अर्शरोग दूर होजाताहै । पूर्वोक्त घृत और तेल में कंजों के पत्तोंको भूनकर सत्तू के साथ सेवन करै तो अधोवायु और मलका अनुलोमन होय है । अथवा भोजन करनेसे पहिले सेंधानमक मिलाकर मदिरा, अथवा गुड और सोंठ मिलाकर सीधु और सौवीरकका पान करै॥

अर्शपरघृतके प्रयोग ॥

पिप्पलीनागरक्षारकारवीधान्यजीरकैः । फाणितेनचसंयोज्यफलाम्लंदापयेद्घृतम्। पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली । शृंगवेरंयवक्षारंतैःसिद्धंवापिबेद्घृतम् चव्यचित्रकसिद्धंवागुडक्षारसमन्वितम् । पिप्पलीमूलसिद्धंवासगुडक्षारनागरम्॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलदधिदाडिमधान्यकैः सिद्धंसर्पिर्विधातव्यंवातवर्चोविबन्धनुत्

अर्थ—पीपल, सोंठ, जवाखार, कालाजीरा, धनियां, जीरा और गुडकीराब इन सब में अनारदानेकी खटाई और घृत डालकर सेवन करै । अथवा पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, अदरख और जवाखार इनमें सिद्ध कियाहुआ घृत पानकरै। अथवा चव्य और चीतेके साथ सिद्ध कियाहुआ, वा गुड और जवाखारमें मिलाकर, वा पीपलामूलके साथ सिद्ध किया हुआ जिसमें गुड, जवाखार और सोंठ मिलाकर अथवा पीपल, पीपलामूल, दही, अनार, धनियां इनके साथ सिद्ध किया हुआ घृतपान करावै, अधोवायु और दस्तकी रुकावट दूर होजायगी ॥

चव्यादिघृत ।

चव्यंत्रिकटुकंपाठांक्षारंकुस्तुम्बुरूणिच । यवानींपिप्पलीमूलमुभेचविडसैंधवे । चित्रकंबिल्वमभयांपिष्ट्वासर्पिर्विपाचयेत् । शकृद्वातानुलोम्यार्थजातेदध्निचतुर्गुणे ॥ प्रवाहिकांगुदभ्रंशंमूत्रकृच्छ्रंपरिस्रवम् । गुदवंक्षणशूलञ्चघृतमेतद्व्यपोहति ॥

अर्थ—चव्य, त्रिकुटा, पाठा, जवाखार, धनियां, अजवायन पीपलामूल, बिडनमक, सेंधानमक, चीता, बेलफल, हरड इनको पीसकर चौगुने दहीके साथ घृतको पकावै। इस घृतके सेवनसे विष्टा और अधोवायुका अनुलोमन होता है। तथा प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, परिस्राव, गुदशूल और वंक्षणशूलको भी दूरकरता है।

नागरादिघृत

नागरंपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली श्वदंष्ट्रापिप्पलीधान्यं विल्वपाठायमानिकाः। चाङ्गेरीस्वरसेसर्पिःकल्कैरेतैर्विपाचयेत्। चतुर्गुणेनदध्नाचतद्घृतंकफवातनुत्। अर्शांसिग्रहणीदोपंमूत्रकृच्छ्रंप्रवाहिकाम्। गुदभ्रंशार्तिमानाहंघृतमेतद्व्यपोहति।

अर्थ—सोंठ, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, गोखरू, पीपल, धनियां, बेलगिरी, पाठा, अजवायन, इन सबको पीसकर चांगेरीके रस तथा चौगुने दहीके साथ घृत को पकाकर सेवन करै तौ कफवात दूर होताहै इस घृतसे अर्शरोग, ग्रहणीदोष, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, अर्ति और आनाह ये सब रोग दूरहोजातेहैं।

पिप्पल्यादिघृत।

पिप्पलीनागरंपाठांश्वदंष्ट्राश्चपृथक्पृथक् भागांस्त्रिपलिकान्कृत्वाकषायमुपकल्पयेत्॥ कण्डीरंपिप्पलीमूलंव्योषंचव्यश्च चित्रकम्। पिष्ट्वाकषायेविनयेत्पूतेद्विपलिकंभिषक्॥ पलानिसर्पिषस्तासंमिश्र त्वारिंशत्प्रदापयेत्। चाङ्गेरीस्वरसंतुल्यं सर्पिषादधिषड्गुणम्॥ मृद्वग्निनाततःसाध्यंसिद्धंसर्पिर्निधापयेत्। तदाहारेविधातव्यंपानेप्रायोगिकेविधौ॥ ग्रहण्यर्शोविकारघ्नंगुल्महृद्रोगनाशनम्। शोथप्लीहोदरानाहमूत्रकृच्छ्रज्वरापहम्॥ कासहिकारुचिश्वासमर्दनंपार्श्वशूलनुत्। बलपुष्टिकरंवर्ण्यमग्निसन्दीपनंपरम्॥

अर्थ....पीपल, सोंठ, पाठा और गोखरू इन चारोंको तीन २ पल लेकर सबका काथ करलेवै। इस काथको छानकर इसमें कण्डीर [एक प्रकारकी तुलसी होती है], पीपलामूल, त्रिकुटा, चव्य और चीता दो २ पल पीसकर मिलादेवै, तथा घृत चालीस पल, इतनाही चांगेरीका रस और घीसे छः गुना दही डालकर मंदी २ आग पर पकावै इस घृतका विधिपूर्वक खानेपीनेमें प्रयोग करनेसे ग्रहणी, अर्श, गुल्म, हृदरोग, शोथ, प्लीहा, उदररोग, आनाह, मूत्रकृच्छ, ज्वर, खांसी, हिचकी, अरुचि, श्वास और पार्श्वशूल दूर होजाते हैं॥

हरीतकी प्रयोग।

सगुडांपिप्पलीयुक्तांघृतभृष्टांहरीतकीम्। त्रिवृद्दन्तीयुतांवापिभक्षयेदानुलोमिकीम् विड्वातकफपित्तानामानुलोम्येननिर्मले। गुदेऽर्शांसिप्रशाम्यन्तिपावकश्चाभिवर्द्धते

अर्थ—हरडको घीमें भूनकर पीपल और गुड मिलाकर सेवन करै अथवा निसोथ और दंती मिलाकर भक्षण करै तौ विष्टाका अनुलोमन होताहै। इसके सेवनसे विष्टा,

अधोवायु, कफ और पित्तका अनुलोमन होताहै, गुदा निर्मल होजातीहै अर्शजाता रहता है और जठराग्नि प्रदीप्त होजातीहै ॥

अर्श पर पथ्य ।

वर्हितित्तिरिलावानांरसान्म्लान्सुसंस्कृतान्॥दक्षाणांवर्त्तकानाञ्चदद्याद्विड्वातसंग्रहे॥त्रिवृद्दन्तीपलाशानांचाङ्गेर्य्याश्चित्रकस्यच॥सुभृष्टंयमकेदद्याच्छाकंदधिसरायुतम् उपोदिकातण्डुलीयंवीरांवस्तुकपल्लवान् सुवर्चलांसलोणिकांयवशाकमवल्गुजम्। काकमाचींरुहापत्रंमहापत्रंतथाम्लिकाम् जीवन्तींशटिशाकञ्चशाकंगृञ्जनकस्यच। दधिदाडिमसिद्धानिभृष्टानियमके ऽपिच धान्यनागरयुक्तानिशाकान्येतानिदापयेत् । गोधाश्वावित्सलोपाकमार्जारोष्ट्रगवामपि ॥ कूर्मशल्लकयोश्चैवसाधयेच्छाकवद्रसान् । रक्तशाल्योदनंदद्याद्रसैरतैर्वातशान्तये ॥

अर्थ....विष्टा और अधोवायुका अवरोध होने पर मोर तीतर मुर्गा, वतक और लवाके मांसरसमें खटाई डालकर सेवन करै। अथवा निसोथ, दन्ती, ढाक, चांगेरी और चीता इनके शाकको घी तेलमें भूनकर दही की मलाईके साथ सेवन करै अथवा पोई, चौलाई, काकोली, वथुआ, सांचोली, नौनिया, यवशाक, वावची, मकोय गिलोयके पत्ते, महापत्र, अम्लिका, जीवन्ती, शटी, गाजर इनके शाकको घीतेलमें भूनकर दही और अनारकी खटाई डालकर तथा धनियां और सोंठ मिलाकरदेवै ॥ गोह, सेह, लोपाक, बिल्ली, ऊंट, गौ, कछुआ और शल्लकी इनके मांसरसको ऊपर कहे हुए शाकोंकी तरह सिद्धकरै और इन मांसरसोंके साथ वातकी शान्तिके निमित्त लाल शालीचावलोंका भातदेवै ॥

अर्श पर मद्यविधि ।

ज्ञात्वावातोल्वणंरूक्षंदीप्ताग्निगुदजातुरम्॥ मदिरांशार्करंजातंशीधुंतक्रंतुषोदकम्॥अरिष्टंदधिमण्डंवा शृतंवाशिशिरंजलम् । कण्टकार्य्याशृतंवापिशृतंनागरधान्यकैः ॥ अनुपानंभिषग्दद्यात्वातवर्चोऽनुलोमनम्

अर्थ....वाताधिक्य अर्शमें यदि रोगी के रूक्षता तथा अग्निसंदीपनहो तौ शर्करा से वनीहुई मदिरा, शीधु, तक्र,तुषोदक अरिष्ट दधिमण्ड, वा औटाकर ठंडा किया हुआ जल वा कटेरी डालकर औटायाहुआ जल, वा सोंठ और धनियां डालकर औटायाहुआ जल अनुपानमें देवै तौ अधोवायु और विष्टा का अनुलोमन होता है ।

अनुवासनके योग्य मनुष्य ।

उदावर्त्तपरीतायेयेचात्यर्थविरूक्षिताः ॥ विलोमवाताःशूलार्त्तास्तेष्विष्टमनुवासनम्

अर्थ....जो उदावर्त्त रोगीहैं, अत्यन्त रूक्ष हैं जिनकी वायु विलोम होगई है तथा जो शूलार्त्तहैं उनको अनुवासन हित है ।

आनुवासनिक तैल ।

पिप्पलींमदनंविल्वंशताहांमधुकंवचाम् ॥ कुष्ठंशटींपुष्कराख्यंचित्रकंदेवदारुच । पिष्ट्वातैलंविपक्तव्यंपयसाद्विगुणेनच ॥ अर्शसांमूढवातानांतच्छ्रेष्ठमनुवासनम्॥गु-

दनिःसरणंशूलंमूत्रकृच्छ्रंप्रवाहिकाम्। कट्यूरुपृष्ठदौर्बल्यमानाहंवंक्षणाश्रयम्। पिच्छास्रावंगुदेशोफंवातवर्चोविनिग्रहम् ॥ उत्थानंबहुशोयच्चजयेत्तच्चानुवासनम्।

अर्थ....पीपल, मेनफल, वेलगिरी, सोंफ, मुलहटी, वच, कूट, शठी, पुष्कर, चीता, देवदारु, इन सबको पीसकर दूना दूध डालकर तेलमें पकावै। यह अनुवासन अर्श रोग तथा मूढवातमें हितकारी होता है। इससे गुदाका निकलना, शूल, मूत्रकृच्छ्र प्रवाहिका, कमर, ऊरू और पीठकी दुर्बलता, वंक्षणका आनाह, पिच्छास्राव, गुदाकी सूजन तथा अधोवायु और विष्टाका विबंध, बारबार रोगका उठना ये सब दूर होजातेहैं।

आनुवासनिकैःपिष्टैःसुखोष्णैःस्नेहसंयुतैः। दाहवन्तैःस्तब्धशूलानिगुदजानिप्रलेपयेत् दिग्धाःतैःस्रवन्त्याशुश्लेष्मपिच्छांसशोणिताम्॥कण्डूस्तम्भसरुक्शोफःस्नुतानां विनिवर्त्तये।

अर्थ—पीपलसे लेकर देदावारु पर्य्यन्त सब आनुवासनिक द्रव्योंको पीसकर स्नेह मिलाकर कुछ गरम करले और इसका लेप करै तो अर्शसे उत्पन्न हुआ शूल और स्तब्धता दूर होजाती है। इस लेपके करनेसे रक्तसहित पिच्छिल कफ तत्काल निकलजाता है और खुजली, स्तम्भता, वेदना और सूजन रक्तके निकलनेसे दूर होजाती है।

निरूहण प्रयोग

निरूहंवाप्रयुञ्जीतसक्षीरंदाशमूलिकम् ॥ समूत्रस्नेहलवणंकल्कैर्युक्तंफलादिभिः ॥

अर्थ—दूध, दशमूल, गोमूत्र, स्नेह, सेंधा नमक और मेनफल इनका काथ करके निरूहणवस्तिका प्रयोग करै ॥

हरीतक्यारिष्ट।

हरीतकीनांप्रस्थार्द्धंप्रस्थमामलकस्यच ॥ स्यात्कपित्थाद्दशपलंततोऽर्द्धाचेन्द्रवारुणी। विडङ्गंपिप्पलीरोध्रंमरिचंसैलवालुकम्। द्विपलांशंजलस्यैतच्चतुर्द्रोणेविपाचयेत्। द्रोणशेषेरसेतस्मिन्पूतेशीतेसमावपेत्॥ गुडस्यद्विशतंतिष्ठेत्तत्सर्वंघृतभाजने। पक्षादूर्ध्वभवेत्पेयाततोमात्रांयथाबलम्॥ अस्याभ्यासादरिष्टस्यनश्यन्ति गुदजानपि। ग्रहणीपाण्डुहृद्रोगप्लीहागुल्मोदरापहाः॥ कुष्ठशोफारुचिहरोबलवर्णाग्निवर्द्धनः। सिद्धोऽयमभयारिष्टःकामलाश्वित्रनाशनः॥ क्रिमिग्रन्थ्यर्बुदव्यङ्ग राजयक्ष्मज्वरान्तकृत्।

अर्थ....हरड़ आधाप्रस्थ, आंवला एक प्रस्थ, कैथ दशपल, इन्द्रायण पांचपल, वायविडंग दो पल, लोध दोपल, कालीमिरच दोपल, एलुआ दोपल इन सबको चार द्रोण जलमें पकावै जब चौथाई शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवै, जब यह ठंढा होजाय तब इसमें दो सौ पल गुड डालकर घीके पात्रमें भरदेवै और एकपक्ष पीछे बलके अनुसार इसकी मात्राका सेवन करै। इस अरिष्टके सेवनका अभ्यास करनेसे अर्शरोग ग्रहणीदोष, पाण्डुरोग, हृद्रोग, प्लीहा, गुल्म रोग, उदररोग, कुष्ठ, शोफ, अरुचि, इन को नाश करता है, बल वर्ण और अग्निको

बढाता है, यह अरिष्ट अनुभव कियाहुआ है, इस से कामला और श्वित्र दूर होजाते हैं। तथा क्रिमिरोग, ग्रन्थिरोग, अर्बुद, व्यंग राजयक्ष्मा और ज्वर नष्ट होजाते हैं ॥

दन्त्यारिष्ट।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोःपञ्चमूलयोः॥ भागान्पलांशानापोथ्यजलद्रोणेविपाचयेत्। त्रिफलायादलानांचप्रक्षिप्यत्रिपलं ततः॥ रसेचतुर्थशेषेतुपूतशीतेसमावपेत् तुलांगुडस्यतत्तिष्ठेत्मासार्द्धंघृतभाजने। तन्मात्रयापिबेन्नित्यमर्शोभ्योऽपिमुच्यते। ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंवातवर्चोऽनुलोमनम्॥ दीपनश्चारुचिघ्नञ्चदन्त्यारिष्टमिदंविदुः।

अर्थ....दन्ती, चीतेकी जड, दोनों पंचमूल इन सबको एक एक पल लेकर [सब बारह पल] तथा त्रिफलाके छिलके तीन पल कूटकर एक द्रोण जलमें पकावे, जब चौथाई शेष रहजाय तब उतारकर छानले और ठंडा होनेपर एक तुला गुड डालकर घीके चिकनेपात्रमें भरकर पन्द्रह दिवस तक धरा रहनेदेवे। तदनन्तर बलके अनुसार नित्यप्रति सेवन करने से अर्श, ग्रहणीरोग पाण्डुरोग दूर होजातेहै। अधोवायु और विष्ठाका अनुलोमन होता है, यह दन्त्यारिष्ट अग्निसंदीपन और अरुचिनाशक होताहै।

फलारिष्ट।

हरीतकीफलंप्रस्थंप्रस्थमामलकस्यच। विशालायादधित्थस्यपाठाचित्रकमूलयोः॥ द्वेद्वेपलेसमापोथ्यद्विद्रोणेसाधयेदपाम्॥ पादावशेषेपूतेचरसेतस्मिन्प्रदापयेत्॥ गुडस्यैकांतुलांवैद्यःसंस्थाप्यघृतभाजने॥ पक्षास्थितंपिबेदेनंग्रहण्यर्शोविकारवान्॥ हृत्पाण्डुरोगंप्लीहानंकामलांविषमज्वरम्॥ वर्चोमूत्रानिलकृतान्विबन्धानग्निमार्दवम्। कासंगुल्ममुदावर्त्तंफलारिष्टोव्यपोहति।

अर्थ—हरड एक प्रस्थ, आंवलाएक प्रस्थ, इन्द्रायणकी जड दोपल, कैथ दोपल पाठा दोपल, चीतेकी जड दोपल, इनसब को कूटकर दोद्रोण जलमें पकावै। चौथाई शेष रहनेपर उताकर छानले और जब यह ठंढा होजाय तब उसमें एक तुला गुड डालकर घीके पात्रमें भरकर पंद्रह दिन तक धरा रहनेदे। फिर मात्रा के अनुसार ग्रहणी और अर्श विकारवाला रोगी इसका सेवन करे। इस फलारिष्टके सेवन करनेसे हृद्रोग पाण्डुरोग, प्लीहा, कामला, विषमज्वर, मल-विबन्ध, मूत्रविबंध, अधोवायुविबंध, मन्दाग्नि, कास, गुल्म और उदावर्त्त येसब रोग नष्ट होजातेहैं।

दुरालभारिष्ट।

दुरालभायाःप्रस्थःस्याच्चित्रकस्यवृषस्य च॥पथ्यामलकयोश्चैवपाठायानागरस्यच दन्त्याश्चद्विपलान्भागाञ्जलद्रोणेविपाचयेत्॥ पादावशेषपूतेचसुशीतेशर्करांशतम्। प्रक्षिप्यस्थापयेत्कुम्भेमासार्द्धंघृतभाजने॥ प्रलिप्तेपिप्पलीचव्यप्रियंगुक्षौद्रसर्पिषा॥ तस्यमात्रांपिबेत्कालेशार्करस्ययथाबलम्। अर्शांसिग्रहणीदोषमुदावर्त्तमरोचकम्॥ शकृन्मूत्रानिलोद्गारविबन्धानाग्निमार्दवम्॥

हृद्रोगंपाण्डुरोगञ्चसर्वमेतेनसाधयेत् ।

अर्थ—दुरालभा एक प्रस्थ, चीता, अडूसा, हरड़, आंवला, पाठा, सोंठ, दन्ती, इन के दोदो पल लेकर एक द्रोण जलमें पकावै। फिर चौथाई शेष रहनेपर छानकर ठंडा होनेपर सौ पल शर्करा मिलाकर पन्द्रहदिन तक घीके पात्रमें भरारक्खै। इस घडेके भीतर पीपल, चव्य, प्रियंगु,शहत और घी इनका लेप करदेवै। बल के अनुसार इसकी मात्रा का सेवन करै। इसके सेवन करनेसे अर्शरोग, ग्रहणी दोष, उदावर्त्त, अरुचि, विष्टा, मूत्र, अधोवायु, उद्गार, विबन्ध, मन्दाग्नि, हृद्रोग, पाण्डुरोग दूर होजातेहैं।

कनकारिष्ट॥

नवस्यामलकस्यैकांकुर्य्याज्जर्ज्जरितांतुलाम्। कुडवांशंविडङ्गानिपिप्पलीमरिचानिच पाठामूलंचपिप्पल्याःक्रमुकंचव्यचित्रकौ॥ मञ्जिष्टैलवालुकंरोध्रंपालिकान्युपकल्पयेत् कुष्टंदारुहरिद्रांचसुराह्वंशारिवाद्वयम् ॥ इन्द्राह्वांभद्रमुस्तंचकुर्य्यादर्द्धपलोन्मितम् चत्वारिनागपुष्पस्यपलान्यभिनवस्यच द्रोणाभ्यामभ्भसोद्वाभ्यांसाधयित्वावतारयेत् ॥ पादावशेषेपूतेचरसेतस्मिन्समावपेत् ॥ मृद्वीकाद्व्याढकरसंशीतांनिर्यूहसंमितम् ॥ शर्करायाश्चशुक्लायांदद्याद्द्विगुणितांतुलाम्॥ कुसुमस्वरस्यैकमर्द्धप्रस्थं नवस्यच ॥ त्वगेलाप्लवपत्राम्बुसेव्यक्रमुककेसरम् ॥ चूर्णयित्वातुमतिमान्कार्षिकानत्रदापयेत् । तत्सर्वंस्थापयेत्पक्षंशुचौचघृतभाजने । प्रलिप्तेसर्पिषाकिञ्चिच्छर्करागुरुधूपिते। पक्षादूर्ध्वमरिष्टोऽयंकनकोनामविश्रुतः॥ मायःस्वादुरसोहृद्यःप्रयोगाद्भक्तरोचनः। अर्शांसि ग्रहणीदोषमानाहमुदरंज्वरम् । हृद्रोगं पाण्डुतांशोषंगुल्मवर्चोविनिग्रहम् : कासंश्लेष्मामयांश्चोग्रान्सर्वानेवापकर्षति॥ बलीपलितखालित्यंदोषजंचव्यपोहति।

अर्थ—नये आंवले एक तुला; वायविडंग, पीपल और कालीमिरच ये तीनों एक एक कुडव। पाठा पीपलामूल, सुपारी,चव्य,चीता, मजीठ, एलुआ, लोध इनको एक एक पल लेवै; कूठ, दारुहलदी, देवदार, दोनों सारिवा, कुटज, भद्रमोथा ये आधे आधे पल लेवै तथा नई नागकेसर चारपल इन सबको जौकुट करके दो द्रोण जलमें पकावै जब चोथाई शेष रहजाय तब उतार कर छानले, और उसमें उस क्काथके समान दो आढक दाखकारस, दो तुला सफेद चीनी, नया शहत आधा प्रस्थ; दालचीनी, इलायची, तेजपात, मोथा, नेत्रवाला, सुपारी, केसर, इन सबको एक एक कर्ष लेकर चूर्ण करके उस में मिलादेवै। फिर एक शुद्ध घीके वर्तनमें भरकर पन्द्रह दिन तक धरा रक्खै। पूर्वोक्त द्रव्योंको घडेमें भरनेसे पहिले घीमें चीनी डालकर उसके भीतर लेप करदेवै और अगरकी धूनी देवै। एक पक्ष पीछे यहकनकारिष्ट तयार होजाताहै। यह स्वादमें मिष्ट, हृदयप्रिय और भोजनमें रुचि बढाने वाला होताहै। इसके सेवन करनेसे अर्श, ग्रहणीदोष, आनाह, उदररोग, ज्वर, हृद्रोग,

पाण्डुरोग, शोष, गुल्म, पुरीषविबन्ध, खांसी तथा सब प्रकारके उग्र कफरोग दूर होजाते हैं और वली, पलित और खालित्य रोगभी नष्ट होजातेहैं ।

पत्रभङ्गोदकैःशौचंकुर्यादुष्णेनचाम्भसा इतिशुष्कार्शसांपूर्वमुक्तमेतच्चिकित्सितम्

अर्थ—वायुनाशक पत्तोंका क्वाथ करके गरम २ से गुदाप्रक्षालन करता रहै। ये सब शुष्क अर्शकी अनुभवकी हुई चिकित्सा वर्णन कीगई हैं।

रक्तार्शकी चिकित्सा ।

चिकित्सितमिदंसिद्धंस्राविणांशृण्वतःपरम्॥ तत्रानुबन्धोद्विविधः श्लेष्मणोमारुतस्यच ।

अर्थ—अब खूनी बवासीरके अनुभव कियेहुए प्रयोगोंका वर्णन करतेहैं। इस में दो दोषों का अनुबन्ध होताहै एक कफका, दूसरा वायुका ॥

वातकफानुबन्धी रक्तार्श के लक्षण ।

विट्श्यावंकठिनंरूक्षंचाधोवायुर्नवर्त्तते॥ तनुचारुणवर्णंचफेनिलंचासृगर्शसाम् । कट्यूरुगुदशूलंचदौर्बल्यंयदिचाधिकम्॥ तत्रानुबन्धोवातस्यहेतुर्यदिचरूक्षणम् । शिथिलंश्वेतपीतंचविट्स्निग्धगुरुपिच्छिलं ॥ यद्यर्शसांघनंचासृक्तन्तुमत्पाण्डुपिच्छिलम्॥ गुदःसपिच्छःस्तिमितोगुरुस्निग्धश्चकारणम्॥ श्लेष्मानुबन्धोविज्ञेयःसतत्ररक्तार्शसांबुधैः ।

अर्थ....जो रोगीका दस्त काला, कडा और रूक्षहो और अधोवायुकी प्रवृति न होती हो, और अर्शका रक्त पतला लाल रंगका और झागदारहो, रोगीकी कमर, ऊरु और गुदामें शूल होताहो, दुर्बलता अधिक हो, तथा जो रूक्ष पदार्थोंके सेवनसे उत्पन्न हुई हो उसे वातानुबन्धीअर्श कहते हैं ।

जिसरोगीका विष्ठा ढीला, सफेद, पीला, स्निग्ध, भारी और पिच्छिलहो, जिस अर्श का रक्त गाढा, तन्तुदार, पाण्डु वर्ण और पिच्छिलहो, गुदा पिच्छिल और स्तिमित हो, जो गुरु और स्निग्ध पदार्थोंके सेवन से उत्पन्न हुआ हो उसे कफानुबन्धी रक्तार्श कहतेहैं ॥

रक्तार्श में चिकित्सा क्रम

स्निग्धशीतंहितंवातेरूक्षशीतंकफेऽनुगे॥ चिकित्सितमिदंतस्मात्सम्प्रधार्यप्रयोजयेत् । पित्तश्लेष्माधिकंमत्वाशोधनेनोपपादयेत्॥ स्रवणंचाप्युपेक्षेतलंघनैर्वासमाचरेत् । प्रवृत्तमादावर्शोभ्योयोनिगृह्णात्यबुद्धिमान्॥ शोणितंदोषमनिलंतद्रोगाञ्जनयेद्बहून् । रक्त पित्त ज्वर तृष्णाग्निनाशमरोचकम्॥ कामलांश्वयथुंशूलंगुदवङ्क्षणसंश्रयम् । कण्डूरुःकोठपिडकाकुष्ठपाण्ड्वामयंगदम्॥ वातमूत्रपुरीषाणांविबन्धंशिरसोरुजम् । स्तैमित्यंगुरुगात्रत्वंतथान्यान्रक्तजान्गदान्॥तस्मात्स्रुतेदुष्टरक्तेरक्तसंग्रहणंमतम् । हेतुलक्षणकालज्ञोबलशोणितवर्णवित् ॥

अर्थ—वातानुबंधी रक्तार्शमें स्निग्ध और शीतल, तथा कफानुबंधी रक्तार्शमें रूक्ष और शीतल चिकित्सा करना आवश्यकीयहै।जो

रक्तार्शमें कफ पित्तकी अधिकताहो तो संशोधनद्वारा चिकित्सा करै अथवा स्रावकी उपेक्षा करके लंघनद्वारा चिकित्सा करै ॥

जो मूर्ख वैद्य प्रथमही अर्शके बहतेहुए रुधिरको रोकदेताहै; तब रक्त वातज दोषों से दूषित होजाताहै और वायुकर्तृक अनेक प्रकारके उपद्रव खडे होजातेहैं, यथा—रक्तपित्त, ज्वर, तृष्णा, मन्दाग्नि, अरुचि, कामला रोग, सूजन, गुदशूल, वंक्षणशूल, खुजली, फुन्सी, पित्ती, पिडका, कोढ, पाण्डुरोग, अधोवायु और मलमूत्रका विवन्ध, शिरोवेदना, स्तिमिता, देहमें भारापन, तथा और भी बहुतसे रक्तजरोग उत्पन्न होजातेहैं। इस हेतुसे दूषित रक्तके स्रावके हेतु, लक्षण, काल, बल और रुधिरको रंग देखकर रुधिर को बन्द करना चाहिये।

कालंतावदुपेक्षेतयावन्नात्ययमाप्नुयात्। अग्निसन्दीपनार्थंचरक्तसंग्रहणायच ॥ दोषाणांपाचनार्थंश्चपरंतिक्तैरुपाचरेत्। यत्तुप्रक्षीणदोषस्यरक्तंवातोल्वणस्यच। वर्त्ततेस्नेहसाध्यंतत्पानाभ्यङ्गानुवासनैः यत्तुपित्तोल्वणंरक्तंघर्मकालेप्रवर्त्तते ॥ स्तम्भनीयंतदेकान्तान्नचेद्वातकफानुगम्।

अर्थ—रक्तस्रावकी उस समयतक उपेक्षा करनी चाहिये जबतक किसी उपद्रवके होने की सम्भावना नहो। तदनन्तर अग्निको बढाने, रक्तको रोकने और दोषोंको पचानेके लिये तिक्त औषधियों का प्रयोग करै॥

क्षीणदोषवाले वाताधिक्य अर्शरोगीका रक्त जो स्नेहसाध्य होता है वह स्नेहपान, अभ्यंग और अनुवासन द्वारा शान्त होजाता है जो पित्ताधिक्य रक्त ग्रीष्मकालमें प्रवृत होताहै, यदि उसमें वातकफका अनुबंध न हो, तो उसे सर्वथा रोकदेना चाहिये।

रक्तसंग्राही औषध।

कुटजत्वङ्निर्यूहःसनागरःस्निग्धरक्तसंग्रहणः॥ त्वग्दाडिमस्यतद्वत्सनागरश्चन्दनरसश्च। चन्दनकिराततिक्तकधन्वयवासाःसनागराःकथितः॥ रक्तार्शसांप्रशमनादार्वीत्वगुशीरनिम्बाश्च। सातिविषा कुटजतत्वक्फलंचसरसाञ्जनम्॥ मधुयुतंहिरक्तापहंप्रदद्यात्पिपासवेतण्डुलजलेन।

अर्थ—कुडाकी छालके क्वाथमें सोंठ डालकर पीनेसे स्निग्ध रक्त बन्द होजाताहै। इसीतरह अनार के छिलके के क्वाथमें सोंठ डालकर सेवन करने से, अथवा चन्दन के क्वाथ में सोंठ डालकर सेवन करने से रक्त बन्द हो जाता है। अथवा चन्दन, चिरायता, जवासा, और सोंठ इनका क्वाथ कर के सेवन करने से रक्तार्श बन्द होता है। अथवा दारुहल्दी, दालचीनी, उसीरऔर नीम के क्वाथ का सेवन करै। अथवा अतीस, कुडाकी छाल, इन्द्रजौ और रसौत इनकेचूर्ण को शहत और तण्डुल जलके साथ जब प्यास लगै तबही पान करावैतौ रक्तार्श दूरहोवै।

कुटजादिक्वाथ।

कुटजशकलस्यसाध्यंपलशतमार्द्रस्यमेघसलिलेन॥ यावत्स्याद्गतरसंतद्द्रव्यंपूतोरसस्ततोग्राह्यः। मोचरसःससमङ्गःफलीनीचसमांशिकैस्त्रिभिस्तैश्च। वत्सक

वीजंतुल्यंचूर्णितमत्रप्रदातव्यम् ॥ पूतः क्वथितःसरसोदार्वीलेपोततःसमवतार्यः। मात्राकालोपहितारसक्रियैषाजयतिरक्तम् ॥ छागलीपयसापीतापेयामण्डेनवाय थाग्निवलम् । जीर्णौपधश्चशालीन्पयसा छागेनभञ्जीतः ॥

अर्थ....हरी कुडाकी छालके छोटे २ टुकडे सौ पल लेकर आन्तरीक्ष जलमें पकावै, जब पकते २ उनका रस निकलआवै तब उसे उतारकर छान लेवै । इस क्वाथ में मोचरस वाराहक्रान्ता और प्रियंगु का चूर्ण समान भाग लेकर मिलादेवै, फिर इन तीनोंके वराबर इन्द्रजौ पीसकर मिलादेवै इन सबको अग्निपर चढादें और चलाते २ जब यह ऐसा गाढा पडजाय कि करछी से लगने लगे तब उतारकर मात्रा और कालके अनुसार इसका सेवन करे तौ यह रक्तार्श को दूर करदेताहै । इसको बकरीके दूध साथ अथवा पेया वा मण्डके साथ सेवन करना चाहिये औषधके पचनेपर बकरीके दूधके साथ शालीचांवलोंके भातका सेवन करै ॥

अन्यप्रयोग ।

नीलोत्पलंसमङ्गामोचरसस्चन्दनंतिला-लोध्रम् । पीत्वाछागलीपयसाभोज्यंपयसैवशाल्यन्नं ॥ छगलीपयःप्रयुक्तंनिहन्तिरक्तंसवास्तुकरसश्च । धन्वविहंगमृगाणांरसोनिरम्लःकदम्लोवा ॥ पाठावत्सकवीजंरसाञ्जनंनागरंयवानीवा ।: विल्वमितिचगुदजान्तार्विचूर्णपेयानिशूलेषु ॥ दार्वीकिराततिक्तंमुस्तदुःस्पर्शकश्चरक्तघ्नम् । रक्तेऽतिवर्त्तमानेशूलेचघृतंविधातव्यम् ॥

अर्थ—नीलकमल, समंगा, मोचरस, रक्तचन्दन, तिल और लोध इनको बकरीके दूध के साथ पानकरै और बकरीके दूधके साथ ही शालीचांवलोंका भात भोजनकरै। अथवा बकरीका दूध और वथुयेका रस इनको मिलाकर पीनेसे रक्तार्श दूर होजाती है । अथवा धन्वदेशज पशुपक्षियोंका मांसरस विना खटाईका अथवा थोडी खटाई डालकर सेवन करै । अथवा पाठा, इन्द्रजौ, रसौत सोंठ, अजवायन और बेलगिरी इनके चूर्णका सेवन करनेसे शूलयुक्त अर्श दूर होजाताहै । अथवा दारुहल्दी, चिरायता, मोथा और जवासा इनका चूर्ण सेवन करनेसे भी रक्त बन्द होजाताहै । तथा जो शूल होताहो और रक्त अत्यन्त बहताहो तौ इन्हीं दार्व्यादि चारों द्रव्योंके साथ सिद्ध कियाहुआ घृत सेवनकरै।

अर्शपरघृतप्रयोग ।

कुटजफलवल्ककेसरनीलोत्पललोध्रधातकीकल्कैः । सिद्धंघृतविधेयंशूलेरक्तार्शसांभिपजा । सर्पिःसदाडिमरसंसयावशूकंजयन्त्याशु । रक्तंसशूलमथवानिदिग्धिकादुग्धिकासिद्धम् ॥

अर्थ—कुडाकी छाल, इन्द्रजौ, केसर, नीलकमल, लोध और धायके फूल इनके कल्क के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत शूलयुक्त अर्श में देवै । अथवा अनारके रस और जवाखार के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत अथवा कटेरी और दुद्धी के साथ सिद्ध कियाहुआ घृत शू-

ले युक्त रक्तार्शमें सेवन करै ।

रक्तार्शपरपेया ।

लाजैःपेयापीताचुक्रिकाकेसरोत्पलैः सिद्धाहन्त्याशुरक्तरागंतथाबलापृश्निपर्णीभ्याम् । ह्रीवेरबिल्वनागरनिर्यूहेसाधितांसनवनीताम् ॥ वृक्षाम्लादाडिमाम्लामम्लीकाम्लासकोलाम्लाम् । गृञ्जनकसुरासिद्धांभृष्टांयमकेनवापिबेत्पेयाम् । रक्तातिसारशूलप्रवाहिकाशोथनिग्रहणीम्

अर्थ—चुक्रिका, केसर, नीलकमल, तथा बला और पृष्णिपर्णी सहित सिद्ध की हुई खीलोंकी पेया रक्तार्शको दूर करतीहै; अथवा नेत्रवाला, बेलगिरी, सोंठ इनके क्वाथमें सिद्ध की हुई पेयामें माखन डालकर पान करै अथवा ल्हसन और मद्यके साथमें सिद्धकी हुई अथवा घी तेलमें भुनीहुई पेयामें वृक्षाम्ल, अनार, इमली या बेरकी खटाई डालकर पान करै । इस पेयाके पान करनेसे रक्तातिसार, शूल प्रवाहिका और शोथ दूर होजातेहैं ।

अन्यप्रयोग ।

काश्मर्यामलकानांसकर्बुदारफलाम्लानाम् ॥ गृञ्जनकशाल्मलीनांक्षीरिण्याःचुक्रिकायाश्च । न्यग्रोधशुङ्गकानांखण्डास्तथाकोविदारपुष्पाणाम् ॥ दध्नःशरेणसिद्धांदद्याद्रक्तेप्रवृत्तेऽति ।

अर्थ—खंभारी, आंवला, सफेदकचनार,

सिद्धंपलाण्डुशाकंचतक्रेणोपदिकांसबदरांच ॥ रुधिरस्रवेप्रदद्यान्मसूरपश्चतक्राम्लम् । पयसाभृतेनयूपैर्मसूरमुद्गाढकीमकुष्ठानाम् ॥ भोजनमद्यादम्लैःशालिश्यामाककोद्रवजम् । शशहरिणलावमांसैःकपिञ्जलैणेयैःसुसिद्धैश्च ॥ भोजनमद्यादम्लैर्मधुरैरीषत्समरिचैर्वा । दक्षशिखितित्तिरिरसैर्द्विककुल्लोपाकजैश्चमधुराम्लैः अद्यादर्सैरतिवहेष्वर्शः स्वनिलोल्बणशरीरः । रसखडयूषयवागूसंयुक्तःकेवलोऽथवाजयति । रक्तमतिवर्त्तमानंवातंचपलाण्डुरुपयुक्तः । छागान्तरोधितरुणंसरुधिरमुपसाधितंवहुपलाण्डु । व्यत्यासान्मधुराम्लंविट्शोणितसंक्षयेदेयम् ॥

अर्थ—जो अर्शमेंसे रुधिर बहता हो तो प्याजका शाक, पोईका शाक, वा बेरका शाक तक्रके साथ सिद्धकरके देवै, अथवा मसूरकी दालमें मठा डालकर देवै । मसूर, मूंग अडहर और मौठ इनके यूषको दूधके साथ सिद्धकरके देवै । अथवा शाली चांवल, सौंखिया और कोंदों इनको मद्य और खटाईके साथमें देवै । अथवा ससा, हिरन, लवा, सफेद तीतर और एणमृगका मांस मदिरा, खटाई, मीठा और थोडीसी कालीमिरच डालकर देवै ।

प्याजका खाना या केवल प्याजही का सेवन करना अत्यन्त वहतेहुए रक्त और वातको दूरकर देताहै।
इस रोगमें विष्ठा और रुधिरके अत्यन्त क्षीण होनेपर बकरेकी देहके बीचका ताजी मांस रुधिरसहित बहुतसी प्याज डालकर सिद्ध करै और विपरीत क्रमसे खटाई मिठाई डालकर सेवन करै ॥

नवनीतघृताभ्यासात्केसरनवनीतशर्करा भ्यासात्। दधिसरमथिताभ्यासादर्शां स्यपयान्तिरक्तानि ॥ नवनीतंघृतंछागं मांसंसषष्ठिकःशालिः। तरुणश्चसुरामण्डः तरुणाचसुरानिहन्त्यजस्रम् ॥ प्रायेण वातबहुलान्यर्शांसिभवन्त्यतिस्रुतेरक्ते॥ तस्माद्रक्तेदुष्टेऽप्यनिलःसविशेषतोज्ञेयः दृष्ट्वातुरक्तपित्तंप्रवलंकफवातलिङ्गमल्प ञ्च। शीताःक्रियाःप्रयोज्याःयथेरिताव क्ष्यतेचान्याः॥

अर्थ—मक्खन घीके सेवन करने से, केसर, मक्खन और शर्कराके अभ्यास से, तथा दहीको मलाई समेत रईसे मथकर सेवन करनेसे रक्तार्श दूर होजाताहै। मक्खन, घृत, बकरे का मांस, साठी चांवल, शाली-चांवल, नवीन सुरामण्ड, नवीन मदिरा इनके सेवनसे भी अर्श शीघ्र शान्त होजाताहै रक्त के अत्यन्त निकल जानेपर अर्शमें प्रायःवातकी अधिकता होजातीहै। इस लिये रक्तके दूषित होनेपर भी विशेष करके वायुको शान्त करने का उपाय करै। अर्श में रक्तपित्तकी प्रबलता तथा कफवात की अल्पताको देखकर पहिले कही हुई वा आगे आनेवाली शीतल क्रियाओं का प्रयोग करै।

परिषेकादि प्रयोग।

...वद...

टोलम्। ... वापनिम्बाश्र॥

अर्थ—मुलहटी, पंचवल्क [गूलर, पीपल, वड, पाकड और वेतकी छाल] बेरकी छाल उदुम्बर, धौकी छाल, परवल, अडूसा, अर्जुन, जवासा, और नीम इनका क्वाथ करके रक्तार्शमें परिषेचन करै॥

अवगाहन प्रयोग।

रक्तेऽतिवर्त्तमानेदाहेक्लेदेचगाहयेच्चापि मधुकमृणालपद्मकचन्दनकुशकाशनिक्वाथे॥ इक्षुरसमधुकवेतसनिर्यूहेशीतलेपय सिवातम्। अवगाहयेत्प्रदिग्धंपूर्वंशिशि रेणतैलेन॥

अर्थ—रक्तके अत्यन्त वहनेपर तथा दाह और क्लेदके उत्पन्न होनेपर शरीर में शीतल तेलकी मालिश करके मुलहटी, कमलनाल, पदमाख, रक्तचन्दन, कुशा, कांस इनके क्वाथमें स्नान करावै अथवा ईखका रस, मुलहटी और वेतके क्वाथ से या ठंडे दूधसे रोगीको स्नान करावै।

दत्त्वाघृतंसशर्करमुपस्थदेशेगुदेत्रिकदेशे। शिशिरजलस्पर्शसुखाधाराःप्रस्तम्भनी र्मृज्याः॥ कदलीदलैरभिनवैः... श्रशीतजलसिक्तैः। प्रच्छादनंमुहुर्मुहुरि ष्टंपद्मोत्पलदलैश्च॥ दूर्वाघृतप्रदेहःशत धौतसहस्रधौतमपिसर्पिः। व्यजनपवन श्चरक्तोरक्तस्रावंजयत्याशु।

अर्थ—उपस्थेन्द्रिय, गुदा और त्रिकस्थान में घी और शर्करा सानकर लेप करै, फिर धीरे २ ठंडे जलकी धार डाले तो रक्तका बहना बन्द होजाता है। नवीन केलेके पत्ते अथवा शीतल जलसे छिडके हुये कमल के पत्ते वा नीलकमलके पत्तों से बार २ अर्श को ढकना भी हितहै ॥ दूब और घीका लेप अथवा सौवार वा हजारवार धुलाहुआघी इनका लेप, या पंखेकी हवा इनसे भी बहताहुआ रक्त शीघ्रबन्द होजाता है ॥

अर्शपर घृत।

समङ्गामधुकाभ्यांतिलमधुकाभ्यांरसाञ्जनघृताभ्यां। सर्जरसघृताभ्यांवानिम्बघृताभ्यांमधुघृताभ्याम् ॥ दार्वीत्वक्सर्पिभ्यांसचन्दनाभ्यामथोत्पलघृताभ्याम्। दाहक्लेदभ्रंशेगुदजाःप्रतिसारणीयाःस्युः।

अर्थ—समंगा और मुलहटी; तिल और मुलहटी; रसौत और घी; राल और घी; नीम और घी; दारुहल्दी कीछाल और घी; अथवा रक्तचन्दन, नीलकमल और घृत इनका लेप करनेसे दाह, क्लेद, गुदभ्रंश और अर्श शान्त होजातेहैं ॥

आभिःक्रियाभिरथवाशीताभिर्यस्यातिष्ठतिनरक्तम्। तंकालेस्निग्धोष्णैर्मांसैस्तर्पयेन्मतिमान्। अवपीडकसर्पिर्भिः कोष्णैर्घृततैलिकैस्तथाभ्यंगैः॥ क्षीरघृततोयसेकैःकोष्णैःसमुपाचरेदाशु। कोष्णेनवातप्रबलंघृतमण्डेनानुवासयेत्तूर्णम्। पिच्छाबस्तिंदद्यात्बस्तिकालेतस्याथवा सिद्धम्॥

अर्थ—इन ऊपर कहीहुई क्रियाओंसे अथवा शीतल क्रियाओंसे जिसका रुधिरबन्द न हो उसको ठीक समयमें स्निग्धोष्ण मांस द्वारा तर्पण देवै, अथवा शिरोविरेचनकर्ता घृत देवै, अथवा ईषदुष्ण घृत तेलकी मालिश करावै अथवा ईषदुष्ण दूध घी वा जलसे परिषेक करै ॥ ऐसे वातप्रबल रोगीको ईषदुष्ण घृतमण्ड से शीघ्र अनुवासन देवै। अथवा यथा समय पिच्छावस्ति वा सिद्धवस्ति देवै ॥

पिच्छावस्ति सिद्धावस्ति।

यवासकुशकाशानांमूलंपुष्पञ्चशाल्मलम्। न्यग्रोधोडुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्चद्विपलोन्मिताः त्रिप्रस्थेसलिलस्यैतत्क्षीरप्रस्थेचसाधयेत् क्षीरशेषंकषायंचपूतंकल्कैर्विमिश्रयेत्।कल्काःशाल्मलिनिर्य्यासस्समंगाचन्दनोत्पलं वत्सकस्यचबीजानिप्रियंगुपद्मकेसरम्। पिच्छाबस्तिरयंसिद्धःसघृतक्षौद्रशर्करः॥ प्रवाहिकागुदभ्रंशरक्तस्रावज्वरापहः ॥

अर्थ—जवासा, कुशा और कांसकीजड सेमरका फूल, बड, गूलर और पीपल की कोंपल ये सब दो २ पल लेवै ॥ तथा तीन प्रस्थ जल और एक प्रस्थ घृत में मिलाकर पकावै जब दूध शेष रहजाय तब इसको छान लेवै फिर इसमें सेमरका गोंद, बराहक्रान्ता, चन्दन, नीलकमल,इन्द्रजौ,प्रियंगु, नाग केसर इनको पीस कर मिलादेवे,इसका नाम पिच्छावस्ति है यदि इसमें घी, सहत, और चीनीभी मिलाई जाय तो यह सिद्धावस्ति होजाती है। इन बस्तियोंसे

प्रयोग करनेसे प्रवाहिका, गुदभ्रंश,रक्तस्राव तथा ज्वर शान्त होजाताहै ।

अनुवासन वस्ति प्रयोग ।

प्रपौण्डरीकंमधुकंपिच्छावस्तौयथेरितम् ॥ पिष्ट्वानुवासनंस्नेहंक्षीरद्विगुणितंपचेत्।

अर्थ—पुण्डरिया, मुलहटी तथा पिच्छावस्तिमें कहेहुए द्रव्योंको पीसकर स्नेह तथा दुगुना दूध डालकर सिद्ध करके अनुवासन वस्ति देवै ।

ह्रीवेरादि घृत ।

ह्रीवेरमुत्पलंरोध्रंसमंगाचव्यचन्दनम् ॥ पाठासातिविषाविल्वंधातकीदेवदारुच । दार्वीत्वक्नागरंमांसींमुस्तंक्षारोयवाग्रजः॥ चित्रकश्चेतिपिष्ट्वाणिचांगेरीस्वरसेघृतम् ऐकध्यंसाधयेत्सर्वंतत्सर्पिःपरमौषधम् ॥ अर्शोऽतिसारग्रहणीपाण्डुरोगज्वरारुचौ । मूत्रकृच्छ्रेगुदभ्रंशेवस्त्यानाहेप्रवाहने॥ पिच्छास्रावेऽर्शसांशूलेयोज्यमेतत्त्रिदोषनुत्।

अर्थ—नेत्रवाला,नीलकमल, लोध, लज्जालू, चव्य, चन्दन, पाठा, अतीस, बेलगिरी धायके फूल, देवदारु, दारुहल्दीकी छाल,सोंठ, जटामांसी, मोथा, जवाखार, चीता, इन सबको पीसकर चांगेरीके रसके साथ घृत मिलाकर सबको सानकर पकावै, यह घृत अत्यन्त गुणकारी होताहै । इसका सेवन अर्श, अतिसार, ग्रहणदोष, पाण्डुरोग, ज्वर, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र, गुदभ्रंश, बस्तिका आनाह, प्रवाहन, पिच्छास्राव, अर्शशूल और त्रिदोषजन्य अर्श को दूर करनेवाला है ॥

अवाक्पुष्प्यादि घृत ।

अवाक्पुष्पीबलादार्वीपृश्निपर्णी

कषायएषपेष्यास्तुजीवन्तीकटुरोहिणी॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंनागरंसुरदारुच । कलिंगाःशाल्मलंपुष्पंवीराचन्दनमुत्पलम् । कट्फलंचित्रकंमुस्तंप्रियंग्वतिविषास्थिराः ॥ पद्मोत्पलानांकिञ्जल्कंसमंगासनिदिग्धिका ॥ बिल्वंमोचरसः पाठाभागाःकर्षसमन्विताः । चतुःप्रस्थे श्रितंप्रस्थंकषायस्यावतारयेत् ॥ त्रिंशत्पलानिप्रस्थोऽत्रविज्ञेयोद्विपलाधिकः । सुनिषण्णकचांगेर्योःप्रस्थौद्वौस्वरसस्यच सर्वैरेतैर्यथोद्दिष्टैर्घृतप्रस्थंविपाचयेत् । एतदर्शस्स्वतीसारेरक्तस्रावेत्रिदोषजे ॥ प्रवाहनेगुदभ्रंशेपिच्छासुविविधासुच । उत्थानेचातिबहुशःशोथशूलेगुदाश्रये ॥ मूत्रग्रहेमूढवातेमन्देऽग्नावरुचावपि ॥ प्रयोज्यंविधिवत्सर्पिर्बलवर्णाग्निवर्द्धनम् ॥ विविधेष्वन्नपानेषुकेवलंवानिरत्ययम् ।

अर्थ—सोंफ, खरैटी, दारुहल्दी, पृश्निपर्णी, गोखरू, बड़की कोंपल, गूलरकी कोंपल, पीपलकी कोंपल इनमेंसे प्रत्येक दो दोपल लेकर चार प्रस्थ जलमें चढादे जब चौथाई शेष रहै तब उतारकर छानलेवे । फिर जेती, कुटकी, पीपल, पीपलामूल, सोंठ, देवदारु, इन्द्रजौ, सेमरका फूल काकोली रक्तचन्दन, नील कमल, कायफल, चीता, मोथा, प्रियंगु, अतीस, शालिपर्णी,लालकमलकी केसर, नीलकमलकी केसर, व जालू,

कटेरी, बेलगिरी, मोचरस, पाठा इन सबको एक एक कर्ष लेकर पीसकर उसमें मिलादेवै (यहां ३२ पलका प्रस्थ समझना चाहिये) फिर इसमें चौपतियाका रस एक प्रस्थ, चांगेरीका रस एक प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ इन सबको मिलाकर पाक करै। यह घृत अर्शरोग, अतीसार, त्रिदोषज रक्तस्राव, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, अनेक प्रकारके पिच्छास्राव, अनेक प्रकारसे बार बार मलका निकलना, गुदशोथ, गुदशूल, मूत्रग्रह, मूढवात, मन्दाग्नि, अरुचि. इन रोगोंको दूर करताहै। बल, वर्ण और अग्निको वढाताहै। यह घृत अकेलाही वा अनेक प्रकारके अन्नपान के साथ दिया जाताहै।

भवन्ति चात्र।

व्यत्यासान्मधुराम्लानिशीतोष्णानिच योजयेत् ॥ नित्यमग्निवलापेक्षीजयत्यर्शःकृतान्गदान ॥ त्रयोविकाराःप्रायेण येपरस्परहेतवः । अर्शांसिचातिसारश्च ग्रहणीदोपएवच ॥ एपामग्निवलेहीने वृद्धिर्वृद्धेपरिक्षयः । तस्मादग्निवलंरक्ष्य मेपुत्रिपुविशेपतः ॥

अर्थ—अर्शरोगमें विपरीत क्रमसे मधुर और अम्ल, तथा शीत और उष्ण द्रव्यों का व्यवहार करना चाहिये। अग्निवलकी अपेक्षा करनेवाला अर्शसे उत्पन्न हुए रोगों को जीत लेताहै। अर्श, अतिसार और ग्रहणीदोष ये तीन रोग ऐसे हैं कि इनमें से परस्पर एक दूसरेका हेतु होताहै। अग्निके क्षीण होने से इन रोगों की वृद्धि होती है और अग्निके वढने से इन रोगोंकी क्षीणता होतीहै। इस लिये इन तीनों रोगोंमें विशेष करके अग्निवलकी रक्षा कर्तव्यहै।

सेव्यासेव्यका संक्षिप्तवर्णन।

भृष्टैःशाकैर्यवागूभिर्यूपैर्मांसरसैःखडैः। क्षीरतक्रप्रयोगैश्चविचित्रैर्गुदजान्जयेत् ॥ यद्वायोरानुलोम्यायदग्निवलवृद्धये । अन्नपानौपधंद्रव्यंतत्सेव्यंनित्यमर्शसैः॥ यदतोविपरीतंस्यान्निदानेयत्प्रदर्शितम्॥ गुदजैस्तत्परीतेननैवसेव्यंकथंचन ॥

अर्थ—अनेक प्रकार के भुनेहुए सांग यवागू, यूप, मांसरस, खड्डयूप, दूध और मठेके प्रयोगोंसे अर्शरोगका दमन करना चाहिये। जो द्रव्य वायुका अनुलोमन करते है, जो अग्निवलको वढाते है वह अन्नपान और औषध नित्यही अर्श रोगियोंको सेवनीयहै। जो इनसे विपरीतहै तथा अर्शके उत्पन्न होनेके हेतुओं में जो द्रव्य वर्णन किये गयेहै वे अर्शरोगियोंको कदापि सेवनीय नहीं हैं।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

अर्शांसिद्विविधंजन्मपृथगायतनानिच। स्थानसंस्थानलिंगानिसाध्यासाध्यविनिश्चयः॥ अभ्यंगाःस्वेदनंधूमाःसावगाहाःप्रलेपनाः ॥ शोणितस्यावसेकश्चयोगादीपनपाचनाः ॥ तक्रयोगाश्चपानानि वातवर्चोऽनुलोमनः।योगाःसंशोधनाश्चैव सार्पिर्विविधानिच ॥ अन्नपानमधोभागं वस्त्यरिष्टाःसशर्कराः । शुष्काणामर्शसां शस्ता स्राविणांलक्षणानिच ॥ द्विविधंसा

नुवन्धानांतेषांचेष्टंयथौषधम् ॥ रक्तसंशमनायोगाश्चेष्टाश्चविविधात्मिकाः ॥ स्नेहपानविधिश्चाग्रयोविधिःपानान्नयोश्च यः॥परिषेकावगाहश्चप्रदेहाःप्रतिसारणम्॥ अतिप्रवृत्तस्यरक्तस्यविघातव्यंयदुत्तरम् । तत्सर्वमिहनिर्दिष्टंगुदजानांचिकित्सितम्

अर्थ—इस अर्श चिकित्सित अध्याय में निम्नलिखित बातें वर्णन कीगई हैं, यथा अर्शकी दो प्रकारकी उत्पत्ति; अर्शके भिन्न भिन्न कारण, स्थान, आकृति, लक्षण, साध्यासाध्य विचार, अभ्यंग, स्वेदन, धूम, अवगाह, प्रलेप, फस्त खोलना, दीपनयोग पाचनयोग, तक्रयोग, अधोवायु और पुरीष के अनुलोमन करनेवाले अन्नपान, संशोधन योग, अनेक प्रकारके घृत, वस्तिप्रयोग, शर्करा मिलेहुए अरिष्ट, सूखीबवासीर की औषध, स्रावीअर्श के लक्षण, दो प्रकारके अनुबन्ध, अभीष्ट औषध, रक्तसंशमनकर्त्ता अनेक प्रकारके उत्तम २ प्रयोग स्नेहपान, विधि, अन्नपानविधि, तथा रक्तके अत्यन्त बहने में परिषेक, अवगाह, प्रदेह और प्रतिसारण । ये सब इस अध्यायमें वर्णन कियेगये हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांचिकित्सितस्थाने अर्शचिकित्सितं नामनवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

—:-*-:—

दशमोऽध्यायः ॥

अथातोऽतीसारचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान आत्रेय बोलेकि अब हम अतीसार चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

भगवन्तंखल्वात्रेयंकृतान्हिकंकृताग्निहोत्रमासीनमृषिगणपरिवृतमुत्तरेहिमवतःपार्श्वे विनयादुपेत्याभिवाद्याग्निवेशउवाचभगवन्नतीसारस्यप्रागुत्पत्तिनिमित्तलक्षणोपशमनानिमजानुग्रहार्थमाख्यातुमर्हसीति ।

अर्थ—एक समय हिमालयके उत्तर की ओर जब भगवान् आत्रेय आन्हिक तथा अग्निहोत्रादिकर्म से निश्चित होकर बैठे हुएथे तथा बहुतसे ऋषि मुनि भी उस समय उपस्थित थे, उससमय अग्निवेश ने बहुत नम्रतापूर्वक अभिवादन करके पूछा कि हे भगवन् ! प्रजाके अनुग्रहके लिये आप अतीसारकी प्रथम उत्पत्तिका वर्णन, हेतु, लक्षण तथा उसके शमनोपायोंका वर्णन करने योग्य हैं ॥

अतीसारकी प्रागुत्पत्ति ॥

अथभगवानात्रेयःतदग्निवेशवचनमनुनिशम्योवाच । श्रूयतामग्निवेश ! सर्वमेतदखिलेनव्याख्यायमानमादिकाले । खलुयज्ञेषुपशवःसमालम्भनीयाबभूवुर्नारम्भायप्रक्रियन्तेस्म ततोदक्षयज्ञप्रत्यवरकालंमनोःपुत्राणांमरिष्यन्नाभागेक्ष्वाकुनृगशर्यात्यादीनांक्रतुषुपशूनामेवा

भ्यनुज्ञानात्पशवःप्रोक्षणमवापुः। अतश्चमत्यवरकालंपृषध्रेदीर्घसत्रेणयजमानेन पशूनामलाभाद्गवामालम्भःप्रावर्त्तितः। तंदृष्ट्वाप्रव्यथिताभूतगणाःतेषाञ्चोपयोगादुपकृतानांगवांगौरवादौष्ण्यादसात्म्यत्वादशस्तोपयोगाच्चोपहताग्नीनामुपहतमनसांअतीसारःपूर्वमुत्पन्नःपृषध्रयज्ञे।

अर्थ—अग्निवेशके इस वचनको सुनकर भगवान् आत्रेय बोलेकि हे अग्निवेश! यह सम्पूर्ण वृत्तान्त मैं तेरे साम्हने कहताहूं तू सावधान होकर श्रवणकर। प्राचीनकाल में यह प्रथा थी कि यज्ञमें पशुओंका वध नहीं कियाजाता था, परन्तु यज्ञभूमि में लाये जाते थे, तदनन्तर दक्षके यज्ञके पीछे मरिष्यन्, नाभाग, इक्ष्वाकु, कुविडचर्या आदि मनुके पुत्रोंके यज्ञों में पशुओंकी अनुमति से पशु छोड दियेजाते थे। इससे पीछे राजा पृषध्रने जो यज्ञ कियेथे। उनमें पशुओं के न मिलनेसे गोवधकी प्रथा प्रचलित करदी थी। इस वातको देखकर गौओं के अत्यन्त उपयोगी होने के कारण सम्पूर्ण प्राणी बहुत दुःखित हुये उसी पृषध्रके यज्ञमें गोमांस के भारी, उष्ण असात्म्य होनेसे तथा उसके अशस्त उपयोगसे खानेवालोंकी जठराग्नि मन्द पडगई और मनभी उत्साहहीन होगया तव ऐसे मनुष्यों के प्रथम अतीसार उत्पन्न हुआ॥

वातातिसार के हेतु।

अथापरंकालंवातलस्यवातातपव्यायामातिमात्रनिषेविणोरूक्षाल्पप्रमिताशिनः॥ तीक्ष्णमद्यव्यवायनित्यस्यउदावर्त्तयतश्च वेगाद्वायुःप्रकोपमापद्यतेपक्ताचोपहन्यते- सवायुःकुपितोऽग्नावुपहतेमूत्रस्वेदौपुरीषाशयमुपहृत्यताभ्यांपुरीषंद्रवीकृत्यातीसारायप्रकल्पते।

अर्थ....वातप्रकृतिवाले मनुष्य के हवा धूप और शारीरिक परिश्रमके अत्यन्त सेवन से, रूक्ष, थोडा और प्रमित भोजन करने से, नित्यप्रति तीक्ष्ण मदिरापान और स्त्रीसम्भोग से वा मल मूत्रादिके उपस्थित वेगों के रोकने से वायु प्रकुपित होजाती है तथा जठराग्नि क्षीण पडजाती है। इसतरह अग्नि के क्षीण होजानेपर वह प्रकुपित वायु मूत्र और स्वेदको पुरीषाशयमें लेजाकर उनके द्वारा मलको पतला करदेती है तव अतीसार उत्पन्न होता है।

वातातिसारकेरूप।

तस्यरूपाणिविडजलभामाविप्लुतमवसादितंरूक्षंद्रवंसशब्दमशब्दंवा विवद्धमूत्रवातमतिसार्य्यतेपुरीषंवायुश्चान्तः कोष्ठस्य सशब्दशूलःतिर्य्यक्चरतीतिविवद्धइत्यामातिसारः।

अर्थ—जिसका विष्टा जलके समान पतला पडजाताहै और वह विष्टा अपक्वमल से मिश्रित होताहै, तथा अवसादी, रूक्ष पतला होवे, दस्त होनेमें शब्दहो या सर्वथा शब्दहीनहो, मूत्र और अधोवायु की विवन्धता के साथ दस्तहो, तथा जिसमें वायु कोष्ठ के भीतरही विवन्धके साथ और शूलयुक्त होकर तिरछेपन से विचरती है। यह आमातिसार है॥

वातात्पक्वंविबद्धमल्पाल्पंसशब्दंसशूलफेनपिच्छापरिकर्त्तिकंहृष्टरोमाविनिश्वसन् शुष्कमुखःकट्यूरुत्रिकजानुशूलपृष्ठशूली भ्रष्टगुदोमुहुर्मुहुर्विग्रथितमुपवेश्यतेपुरीपं वाताच्चमाहुरनुग्रन्थमित्येकेवातानुग्रन्थि तवर्चस्त्वात् ॥

अर्थ....वातसे पक्व होकर विष्ठा विबद्ध युक्त शूलयुक्त, झागदार, गिलगिला, परिकर्त्तिका (ऐंठा) युक्त निकलताहै, उस, समय रोमाञ्च खडे होजातेहैं, श्वास चलने लगताहैं, मुख शुष्क होजाताहैं, कमर, उरू, त्रिक, जानु और पीठमें शूल होने लगताहै, गुदास्थि बाहर निकल आतीहै तथा वार वार गांठदार मल निकलने लगताहै । वात के कारण मलमें गांठ पड जाने से कोई कोई इसे वातानुग्रन्थ कहतेहैं ।

पित्तातिसार के हेतु रूपादि ।

पित्तलस्यापुनरम्ललवणकटुकक्षारोष्णतीक्ष्णातिमात्रनिषेविणःप्रततताग्निसूर्य्यसन्तापोपहमरुतोपहतगात्रस्यक्रोधेर्ष्याबहुलस्यपित्तंप्रकोपमापद्यतेतत्प्रकुपितंद्रवत्वादूष्माणमुपहत्यपुरीपाशयविस्तृतमौष्ण्याद्द्रवत्वात्सरत्वाच्चभित्वापुरीपमतिसाराय प्रकल्पते । तस्यरूपाणिहंद्रिहरितनील कृष्णापित्तोपहितमतिदुर्गन्धमतिसार्य्यते पुरीपंतृष्णादाहस्वेदमूर्च्छाशूलब्रध्नसन्तापपाकपरीतइतिपित्तातिसारः ।

अर्थ—पित्त प्रकृति वाले पुरुषका खट्टे नमकीन, कडवे, खारी, तीक्ष्ण और उष्ण पदार्थोंके असन्त सेवनसे, अथवा अग्नि और सूर्य्यके सन्ताप द्वारा निरन्तर उपहत होनेके कारण या वायुद्वारा उपहत होने के कारण या अत्यन्त क्रोधी ईर्ष्यायुक्त पुरुष का पित्त प्रकुपित होजाता है । वह प्रकुपित पित्त पतला होनेके कारण अग्निको मन्द करके पुरीपाशय में स्थित होजाताहै और वहां अपने पतले पन, गरमी तथा सरताके कारण मलको भेदन करके अतीसारको उत्पन्न करता है इस अतिसार का रूप हलदीके समान पीला, हरा, नीला, काला, पित संसृष्ट होता है तथा विष्ठामें अत्यन्त दुर्गन्ध आती है । इस अतिसार में तृष्णा, दाह, स्वेद, मूर्च्छा, शूल, ब्रध्नसंताप और गुदपाक ये उपद्रव भी होते हैं ।

कफातिसार के हेतु रूपादि ।

श्लेष्मलस्यतुगुरुमधुरशीतास्निग्धोपसेविनःसम्पूरकस्याचिन्तयतोदिवास्वप्नपरस्यालस्याश्लेष्माकोपमापद्यते । सस्वभावाद्गुरुमधुरशीतास्निग्धःस्रस्तोऽग्निमुपहत्यसौम्यस्वभावात्पुरीपाशयमुपहत्योपक्लेद्यपुरीपमतिसारायकल्पते । तस्यरूपाणिस्निग्धंश्वेतंपिच्छिलंतन्तुमदामंगुरुदुर्गन्धश्लेष्मोपहितमनुबद्धशूलमल्पाल्पमभीक्ष्णमतिसार्य्यतेसप्रवाहिकंगुरूदरगुदवस्तिवंक्षणोदेशःकृतोऽप्यकृतसंज्ञोभवतिसलोमहर्षःसोत्क्लेशःनिद्रालस्यपरीतःसादनोऽन्नद्वेषीचेतिश्लेष्मातिसारः ।

अर्थ—कफ प्रकृति वाले पुरुष का कफ भारी, मीठे, शीतल और चिकने पदार्थों के अत्यन्त सेवनसे, पेटभर कर खालेनेसे

या वेफिकरीसे दिनमें सोने का अभ्यास या आलस्य ग्रस्त होनेसे कुपित होजाता है। यह श्लेष्मा स्वभावहीसे गुरु, मधुर, शीत, स्निग्ध और स्रस्त होता है इसलिये अग्निको क्षीण करके अपने सौम्य स्वभावके कारण पुरीषाशय में पहुंचकर पुरीषको क्लेदित करके अतिसार में चिकना, सफेद, गिलगिला, तन्तुयुक्त, अपक्व, भारी, दुर्गन्धित, कफ मिश्रित, शूलयुक्त थोडा२ वार वार दस्त होताहै। प्रवाहिकाभी होती है, उदर, गुदा, वस्ति और वंक्षण इनमें भारापन होता है रोम हर्ष, उत्क्लेश, निद्रा, आलस्य ये भी होते हैं तथा अंग ग्लानि और अन्नमें अरुचि ये उपद्रव भी होते हैं।

त्रिदोषज अतिसार के हेत्वादि।

अतिशीतस्निग्धरूक्षोष्णगुरुखरकठिनविषमविरुद्धासात्म्यभोजनादभोजनात्कालातीतभोजनाद्यत्किञ्चिदभ्यवहरणाद्दुष्टमद्यपानीयपानादतिमद्यपानादसंशोधनात् प्रतिकर्म्मणांविपमगमनादनुपचाराज्ज्वलनादित्यपवनसलिलातिसेवनादस्वप्नादतिस्वप्नोद्वेगविधारणादृतुविपर्य्ययादयथावलमारम्भाद्भयशोकचित्तोद्वेगातियोगात्क्रिमिशोपज्वरार्शोविकारातिकर्पणाद्वाविपन्नाग्नेस्त्रयोदोषाःप्रकुपिताभूयएवाग्निमुपहत्यामपकाशयमनुप्रविश्यातीसारंसर्वदोपलिङ्गंजनयन्ति।

अर्थ—अत्यन्त शीतल,स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, भारी, खर,कठिन भोजन, विषम भोजन विरुद्ध पदार्थोंका भोजन असात्म्य भोजन, निराहार,कालातीत भोजन, अल्पभोजन, दूषित मदिरा और जलका पीना, अत्यन्त मद्यपान,असंशोधन;विरेचनआदिकों विषम गमन अनुपचार, अग्नि, धूप, हवा जलका अत्यन्त सेवन, सर्वथा न सौना, अत्यन्त सौना, मलमूत्रादि वेगोंका रोकना ऋतुविपर्य्यय (ग्रीष्ममें कम गर्मी या अधिक गर्मी पड़ना) वलसे अधिक कार्य्य करना भय, शोक और चित्तोद्वेगका अतियोग, क्रिमिरोग शोषरोग, ज्वर, अर्श विकार। इन सब कर्मोंसे जो व्यक्ति अत्यन्त कृश होजाता है उसके तीनों दोष कुपित होकर प्रथमही दोषको प्राप्त हुई अग्निको अधिकतर मन्द करके आमपक्वाशय में प्रविष्ट होकर तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त अतिसार को उत्पन्न करतेहैं।

कृच्छ्रसाध्य के लक्षण।

अपिचशोणितादीन्धातूनतिप्रदुष्टान्दूषयन्तोधातुदोषस्वभावकृतानतीसारवर्णानुपदर्शयन्ति। तत्रशोणितादिषुधातुषु अतिप्रदुष्टेषुहारिद्रहरितनीलमाञ्जिष्ठमांसधावनसन्निकाशंरक्तंकृष्णंश्वेतंवराहमेदःसदृशमनुवद्धवेदनमवेदनंवासमासव्यत्यासादुपवेश्यतेशकृद्ग्रथितमामंसकृत्सकृदपिपक्वमनतिक्षीणमांसशोणितवलोमन्दाग्निर्विहतमुखरसस्तादृशमातुरं कृच्छ्रसाध्यंविद्यात्।

अर्थ—अत्यन्त दूषित हुई रक्तादि धातु जब तीनों दोषोंके प्रकोपसे अत्यन्त दूषित हो जातीहैं तव धातुओंके दोषके स्वाभावके

वातात्पक्वंविबद्धमल्पाल्पंसशब्दंसशूलफेनपिच्छापरिकर्त्तिकंहृष्टरोमाविनिश्वसन् शुष्कमुखःकट्यूरुत्रिकजानुशूलपृष्ठशूली भ्रष्टगुदोमुहुर्मुहुर्विग्रथितमुपवेश्यतेपुरीषं वातात्तमाहुरनुग्रन्थमित्येकेवातानुग्रन्थितवर्चस्त्वात् ॥

अर्थ....वातसे पक्व होकर विष्ठा विवद्ध युक्त शूलयुक्त, झागदार, गिलगिला, परिकर्तिका (ऐंठा) युक्त निकलताहै, उस, समय रोमाञ्च खडे होजातेहैं,श्वास चलने लगताहै, मुख शुष्क होजाताहैं, कमर, उरू, त्रिक, जानु और पीठमें शूल होने लगताहै, गुदास्थि बाहर निकल आतीहै तथा वार वार गांठदार मल निकलने लगताहै । वात के कारण मलमें गांठ पड जाने से कोई कोई इसे वातनुग्रन्थ कहतेहैं ।

पित्तातिसार के हेतु रूपादि ।

पित्तलस्यापुनरम्ललवणकटुकक्षारोष्णतीक्ष्णातिमात्रनिषेविणःप्रततागिनसूर्य्यसन्तापोपहमरुतोपहतगात्रस्यक्रोधेर्ष्याबहुलस्यपित्तंप्रकोपमापद्यते।तत्प्रकुपितंद्रवत्वादूष्माणमुपहत्यपुरीपाशयविस्तृतमौष्ण्याद्द्रवत्वात्सरत्वाच्चभित्वापुरीषमतिसाराय प्रकल्पते । तस्यरूपाणिहंरिद्रहरितनीलकृष्णपित्तोपहितमतिदुर्गन्धमतिसार्य्यते पुरीषंतृष्णादाहस्वेदमूर्च्छाशूलब्रध्मसन्तापपाकपरीतइतिपित्तातिसारः ।

अर्थ—पित्त प्रकृति वाले पुरुषका खट्टे नमकीन, कडवे, खारी, तीक्ष्ण और उष्ण पदार्थोंके अत्यन्त सेवनसे, अथवा अग्नि और सूर्य्यके सन्ताप द्वारा निरन्तर उपहत होनेके कारण या वायुद्वारा उपहत होने के कारण वा अत्यन्त क्रोधी ईर्ष्यायुक्त पुरुष का पित्त प्रकुपित होजाता है । यह प्रकुपित पित्त पतला होनेके कारण अग्निको मन्द करके पुरीषाशय में स्थित होजाताहै और वहां अपने पतले पन, गरमी तथा सरताके कारण मलको भेदन करके अतीसारको उत्पन्न करता है इस आतिसार का रूप हलदीके समान पीला, हरा, नीला, काला, पित संसृष्ट होता है तथा विष्टामें अत्यन्त दुर्गन्ध आती है । इस आतिसार में तृष्णा, दाह, स्वेद, मूर्च्छा, शूल, ब्रध्मसंताप और गुदपाक ये उपद्रव भी होते हैं ।

कफातिसार के हेतु रूपादि ।

श्लेष्मलस्यतुगुरुमधुरशीतस्निग्धोपसेविनःसम्पूरकस्याचिन्तयतोदिवास्वप्नपरस्यालस्यश्लेष्माकोपमापद्यते । सस्वभावाद्गुरुमधुरशीतस्निग्धःस्रस्तोऽग्निमुपहत्यसौम्यस्वभावात्पुरीपाशयमुपहत्योपक्लेद्यपुरीषमतिसारायकल्पते । तस्यरूपाणिस्निग्धंश्वेतंपिच्छिलंतन्तुमदामंगुरुदुर्गन्धश्लेष्मोपहितमनुबद्धशूलमल्पाल्पमभीक्ष्णमतिसार्य्यतेसप्रवाहिकंगुरूदरगुदबस्तिवंक्षणोदेशःकृतोऽप्यकृतसंज्ञोभवतिसलोमहर्षःसोत्क्लेशःनिद्रालस्यपरीतः सादनोऽन्नद्वेषीचेतिश्लेष्मातिसारः ।

अर्थ—कफ प्रकृति वाले पुरुष का कफ भारी, मीठे, शीतल और चिकने पदार्थों के अत्यन्त सेवनसे, पेटभर कर खालेनेसे

या वेफिकरीसे दिनमें सौने का अभ्यास वा आलस्य ग्रस्त होनेसे कुपित होजाता है । यह श्लेष्मा स्वभावहीसे गुरु, मधुर, शीत, स्निग्ध और स्नस्त होता है इसलिये अग्निको क्षीण करके अपने सौम्य स्वभावके कारण पुरीषाशय में पहुंचकर पुरीषको क्लेदित कर के अतिसार में चिकना, सफेद, गिलगिला, तन्तुयुक्त, अपक्व, भारी, दुर्गन्धित, कफ मिश्रित, शूलयुक्त थोडा२ वार वार दस्त होतेहै। प्रवाहिकाभी होती है, उदर, गुदा, वस्ति और वंक्षण इनमें भारापन होता है रोम हर्ष, उत्क्लेश, निद्रा, आलस्य ये भी होते हैं तथा अंग ग्लानि और अन्नमें अरुचि ये उपद्रव भी होते हैं।

त्रिदोपज अतिसार के हेत्वादि ।

अतिशीतस्निग्धरूक्षोष्णगुरुखरकठिनविषमविरुद्धासात्म्यभोजनादभोजनात्कालातीतभोजनाद्यत्किञ्चिदभ्यवहरणाद्दुष्टमद्यपानीयपानादतिमद्यपानादसंशोधनात् प्रतिकर्मणांविषमगमनादनुपचाराज्ज्वलनादित्यपवनसलिलातिसेवनादस्वप्नादतिस्वप्नोद्वेगविधारणादृतुविपर्य्ययादयथावलमारम्भाद्भयशोकचित्तोद्वेगातियोगात्क्रिमिशोषज्वरार्शोविकारातिकर्षणाद्वाविपन्नाग्नेस्त्रयोदोषाःप्रकुपिताभूयएवाग्निमुपहत्यामपक्वाशयमनुप्रविश्यातीसारंसर्वदोषलिङ्गंजनयन्ति ।

अर्थ—अत्यन्त शीतल, स्निग्ध, रूक्ष, उष्ण, भारी, खर, कठिन भोजन, विषम भोजन विरुद्ध पदार्थोंका भोजन असात्म्य भोजन, निराहार, कालातीत भोजन, अल्पभोजन, दूषित मदिरा और जलका पीना, अत्यन्त मद्यपान, असंशोधन; विरेचनआदिका विषम गमन अनुपचार, अग्नि, धूप, हवा जलका अत्यन्त सेवन, सर्वथा न सौना, अत्यन्त सौना, मलमूत्रादि वेगोंका रोकना ऋतुविपर्य्यय (ग्रीष्ममें कम गर्मी या अधिक गर्मी पड़ना) बलसे अधिक कार्य्य करना भय, शोक और चित्तोद्वेगका अतियोग, क्रिमिरोग शोषरोग, ज्वर, अर्श विकार। इन सब कर्मोंसे जो व्यक्ति अत्यन्त कृश होजाता है उसके तीनों दोष कुपित होकर प्रथमही दोषको प्राप्त हुई अग्निको अधिकतर मन्द करके आमपक्वाशय में प्रविष्ट होकर तीनों दोषोंके लक्षणोंसे युक्त अतिसार को उत्पन्न करतेहैं ।

कृच्छ्रसाध्य के लक्षण ।

अपिचशोणितादीन्धातूनतिप्रदुष्टान्दूषयन्तोधातुदोषस्वभावकृतानतीसारवर्णानुपदर्शयन्ति । तत्रशोणितादिषुधातुषु अतिप्रदुष्टेषुहारिद्रहरितनीलमाञ्जिष्ठमांसधावनसन्निकाशंरक्तंकृष्णंश्वेतंवराहमेदःसदृशमनुबद्धवेदनमवेदनंवासमासव्यत्यासादुपवेश्यतेशकृद्ग्रथितमामंसकृत्सकृदपिपक्वमनतिक्षीणमांसशोणितबलोमन्दाग्निर्विहतमुखरसस्तादृशमातुरं कृच्छ्रसाध्यंविद्यात् ।

अर्थ—अत्यन्त दूषित हुई रक्तादि धातु जब तीनों दोषोंके प्रकोपसे अत्यन्त दूषित हो जातीहैं तब धातुओंके दोषके स्वाभावक

अनुसार अतीसारके वर्ण में भेद होजाताहै। यहां अत्यन्त दूषित हुई रक्तादि धातु ओंमें हलदी का सा पीला हरा,नीला,मजठि के सदृश, मांसके धुले हुए जल के समान लाल, काला सफेद, सूअर की मेदा के सदृश, शूलयुक्त वा शूल रहित विष्टा थोड़ा थोड़ा वा विपरीत क्रम से निकलता है,कभी २ गांठदार कच्चा मल निकलता है, और कभीं पक्का मल आने लगता है । इसमें रोगी का मांस रुधिर और बल अत्यन्त क्षीण नही होता, अग्निमन्द पड़जातीहै और मुखका स्वाद विगड़ता चलाजाता है । इन लक्षणोंसेयुक्त रोगी कृच्छ्रसाध्य होता है।

असाध्य के लक्षण ।

एभिर्वर्णैरतिसार्य्यमाणसोपद्रवमातुरम साध्योऽयमितिमत्याचक्षीवतद्यथाक्काथ शोणितावंयकृत्पिण्डोपममांसोदकसन्नि काशंदधिघृतमज्जतैलवसाक्षीरवेशवारा भमतिनीलमतिरक्तमतिकृष्णमुदकमिवा च्छंपुनर्मेचकाभंअतिस्निग्धंहरितनीलक पायवर्णकर्बुरमाविलंतन्तुमदामंचन्द्रकोप हितमतिकुणपपूतिपूयगन्धमामत्स्यगन्धं मक्षिकाक्रान्तंकथितवहुधातुद्रवमल्पपुरीप मपुरीपंवातिसार्य्यमाणंतृष्णादाहज्वरभ्र मतमकहिक्काश्वासानुवद्धमतिवेदनमवेदनं वास्त्रस्तपक्वगुदंपतितगुदवलिमुक्तनालम तिक्षीणवलमांसशोणितवलंसर्वपार्श्वास्थि शूलिनमरोचकातिप्रलापसंमोहपरीतंस हसोपरतविकारमतिसारिणमचिकित्स्यं वियादितिसान्निपातातिसारः॥

अर्थ—यदि विष्टाका रंग नीचे लिखेहुए वर्णोंके समान हो और उक्तरोगमें उपद्रव भीहों तौ यह असाध्य और दुश्चिकित्स्य होताहै; यथा—यदि विष्टाका रंग क्काथ, रुधिर, यकृत्पिण्ड, मांसधौत जल के सदृश,दही,घी, मज्जा, तेल, चर्वी, दूध, वेशवारके समान हो, अत्यन्त नीला, अत्यन्त लाल, अत्यन्त काला वा अत्यन्त स्वच्छ जलके सदृश हो; मेचक (सुरमा वा मोर की चान्द्रिका) के समानहो, अत्यन्त चिकना, हरा, नीला, कषायवर्ण, कर्बुर (विचित्र वर्ण) आविल (अस्वच्छ) तन्तुयुक्त, आम चन्द्रिकायुक्त मुर्दे की गंधके समान, सडीहुई तथा पीवकी गंध के समान, आममत्स्यगंधयुक्त, जिसपर वहुत सी मक्खियां आचिपटैं, क्काथ की हुई द्रवधातुके सदृश, अल्पपुरीप (थोडा विष्टा और वहुत सा जल) अपुरीप (केवल पतला दस्त) इन सब लक्षणोंसे युक्त मलहो तथा तृष्णा, दाह ज्वर, भ्रम,तमकश्वास, हिचकी, श्वास अति, शूल, शूलरहित हो, गुदाढीली वा पकगई हो, गुदावलि नष्ट हो गई हो काचनिकलती हो; वल मांस और रुधिर का वल अतिक्षीण होगया हो, सब पसली और हड्डियोंमें शूल होता हो, अरुचि, अतिप्रलाप और मोहहो, और यदि ये सम्पूर्ण उपद्रव एक साथ विलुप्त होगये हों, तौ ऐसा अतीसार रोगी असाध्य होता है । ये सान्निपातातिसार के लक्षणहैं ।

साध्यातिसारकाचिकित्साक्रम ।

तमसाध्यतामसमासीचिकित्सेयथाप्रधानो पक्रमेणहेतूपशयदोषविशेषपरीक्षयाचेति

अर्थ....जो अतिसार असाध्य नहीं हुआ है उसकी चिकित्सा प्रधान दोष के उपचार, हेतु, उपशय और दोष विशेष की परीक्षा द्वारा कर्त्तव्यहैं।

आगन्तु अतीसारके लक्षण।

आगन्तूद्वावतीसारौमानसौभयशोकजौ। तत्तयोर्लक्षणंवायोर्यदतीसारलक्षणम् ॥

अर्थ....आगन्तु अतिसार दो प्रकार के होते हैं यथा--भयातिसार और शोकातिसार। इन दोनोंके लक्षण वातज अतिसारके सदृश होतेहैं।

आगन्तुअतिसारमें चिकित्साक्रम।

मारुतोभयशोकाभ्यांशीघ्रंहिपरिकुप्यति। तयोःक्रियावातहराहर्षणाश्वासनानिच॥

अर्थ—भय और शोकसे वायु एक साथ कुपित होजाताहै। इसमें वातनाशक चिकित्सा कर्त्तव्यहै, तथा हर्षोत्पादककर्म और आश्वासनभी विधेयहै।

इत्युक्ताःषडतीसाराःअतःपरंसाध्यानांसाधनमनुव्याख्यास्यामः

अर्थ....इस तरह छः अतीसारों का वर्णन किया गयाहै. अब यहांसे साध्यअतीसारोंकी चिकित्सा वर्णन करेंगे।

दोषाःसन्निचितायस्यविदग्धाहारमूर्च्छिताःअतीसारायकल्पन्तेभूयस्तान्संप्रवर्त्तयेत् ॥ नतुसंग्रहणंदेयंपूर्वमामातिसारिणे विबध्यमानाःप्राग्दोषाजनयन्त्यामयान्बहून् ॥ शोथपाण्डवामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान्।दण्डकालसकाध्मानग्रहण्यर्शोगदांस्तथा।तस्मादुपेक्षेतोत्क्लिष्टान्वर्त्तमानान्स्वयं मलान्।कृच्छ्रंवावहतान्दद्यादभयांसंप्रवर्त्तिनीम् ॥ तयाप्रवाहितेदोषेप्रशाम्यत्युदरामयः। जायतेदेहलघुताजठराग्निश्च वर्द्धते ॥

अर्थ....जिस मनुष्यकेअपक्व आहार के कारण दोष संमूर्च्छित होकर इकट्ठे होजातेहैं और अतीसार को उत्पन्न करतेहैं उसके दोषों को फिर प्रवृत्त करावै। आमातिसार में प्रथमही संग्राही औषधोंका देना अयोग्यहै। क्योंकि प्रथमही से रोकेहुये दोष अनेकप्रकार के रोगोंको उत्पन्न करदेतेहैं;यथा-शोक, पाण्डुरोग, प्लीहा, कोढ, गुल्मरोग,उदररोग ज्वर. दण्डक. अलसक. आध्मान. ग्रहणी. और अर्शरोग इसलिये अपने आप प्रवृत्त हुए उत्क्लिष्ट मलोंकी प्रथम उपेक्षाकरै। जो मल कष्टसे निकलता हो तौ हरड का सेवन करावै। हरडकेद्वारा दोषोंके निकलने पर उदररोग शान्त होजातेहैं, देहमें हलकापन उत्पन्न होताहै और जठराग्नि भी बढतीहै ॥

प्रमथ्यांमध्यदोषाणांदद्याद्दीपनपाचनीम् लंघनंचाल्पदोषाणांप्रशस्तमतिसारिणाम्

अर्थ—मध्यबलवाले अतिसारों में दीपन और पाचन प्रमथ्या (औषध) देवै, इसी तरह अल्प दोषवालों में लंघन हितहै।

प्रमथ्या के प्रयोग।

पिप्पलीनागरंधान्यंभूतीकमभयावचा।ह्रीबेरंभद्रमुस्तानिबिल्वंनागरधान्यकम्॥पृश्निपर्णीश्वदंष्ट्राचसमंगा[1]कण्टकारिकातिस्रःप्रमथ्याविहिताःश्लोकार्द्धेष्वतिसारिणाम्॥

[1] =समंगाकण्टकारिकेतिगंगाधरः।

अर्थ....पीपल, सोंठ, धनियां, अजवायन हरड और वच । नेत्रवाला, भद्रमोथा, बेलगिरी, सोंठ और धनियां । प्रश्णिपर्णी, गोखरू, और समानभाग कटेरी । आधे २ श्लोकमें कहेहुए ये तीन प्रमथ्याप्रयोग अतिसारमें हित हैं ।

अतिसार में अन्नपानादिप्रयोग ।

वचामतिविषाभ्यांवामुस्तपर्पटकेनवा । ह्रीवेरशृङ्गवेराभ्यांपक्ववांपाययेज्जलम् ॥ युक्तेऽन्नकालेक्षुत्क्षामंलघून्यन्नानिभोजयेत् । तथासशीघ्रमाप्नोतिरुचिमग्निबलं बलम् ॥ तक्रेणावन्तिसोमेनयवाग्वातर्पणेनवा।सुरयामधुनाचादौयथासात्म्यमुपाचरेत् ॥ यवागूभिर्विलेपीभिःखडैर्यूषैर सौदनैः । दीपनग्राहिसंयुक्तैःक्रमश्चस्यादतःपरम् ॥

अर्थ—वच और अतीस, अथवा मोथा और पित्तपापडा; अथवा नेत्रवाला और अदरख इनको डालकर औटायाहुआ जल पान-करावै । अतीसार में क्षुधा के लगने पर हलके अन्नका भोजन करावै, ऐसा करने से रोगी की रुचि, अग्निबल, शारीरिक बल शीघ्र बढजांयगे। अतिसारमें यथा सात्म्य तक्र, कांजी, यवागू, तर्पण, मदिरा और मधु इन में से कभी किसीका और कभी किसीका सेवन कराता रहै । तत्पश्चात् दीपन और संग्राही औषधोंसे सिद्ध करके क्रमसे यवागू, विलेपी, खडयूष, मांसरस और ओदन देतारहै।

सालपर्णीपृश्निपर्णीबृहतींकण्टकारिकाम्। बलांश्वदंष्ट्राबिल्वानिपाठांनागरधान्यकम्। शुंठीपलाशंहपुषांवचाजीरकपिप्पलीम् यवानींपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पलीम् वृक्षाम्लंदाडिमाम्लञ्चसहिंगुविडसैन्धवम् प्रयोजयेदन्नपानेविधिनासूपकल्पितम् ॥ वातश्लेष्महरोह्येषगणोदीपनपाचनः ॥ ग्राहिबल्योरोचनश्चतस्मात्शस्तोऽतिसारिणाम् ॥

अर्थ....शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, बडीकटेरी छोटी कटेरी, खरैटी, गोखरू, बेलगिरी, पाठा, सोंठ, धनियां, कचूर, ढाक, हाऊबेर, वच, जीरा, पीपल, अजवायन, पीपलामूल, चीता, गजपीपल, वृक्षाम्ल, अनार, हींग, विडनमक, सेंधानमक, इन सबको व्यंजन की तरह सिद्ध करके अन्नपान में प्रयुक्त करे । यह गण वात कफनाशक, दीपन, पाचन, संग्राही, बलकर्त्ता और रुचिवर्द्धक है, इसलिये अतिसार में हित है ।

आमेपरिणतेयस्तुविबद्धमतिसार्य्यते । सशूलपिच्छमल्पाल्पंबहुशःसप्रवाहिकम् तंमूलकानांयूषेणबदराणामथापिवा।उपोदकायाःक्षीरिण्यातवान्यावास्तुकस्य वा।सुवर्चलायाश्चञ्चोर्वाशाकेनाबल्गुजस्यवा।शट्याःकर्कारुकाणांवाजीवन्त्याश्चिर्भटस्यवा ॥ लोणीकायाःसपाठायाः शुष्कशाकेनवापुनः ।दधिदाडिमसिद्धेन बहुस्नेहेनभोजयेत् ॥

अर्थ आमके परिपक्व होजानेपर जादस्त रुक२ कर शूलयुक्त, गिलगिला थोडा२, वार २ और प्रवाहिका युक्तहोवे तो उस

अर्थ—चांगेरी, बेर, दही, अनार, सोंठ, जवाखार इनको मिलाकर पकाया हुआ घी गुदभ्रंश और शूलको नष्ट करताहै ।

चव्यादि घृत ।

सचव्यपिप्पलीमूलंसव्योषविडदाडिमम् । पेयमम्लंघृतंयुक्तयासधान्याजाजिचित्रकम् ॥

अर्थ—चव्य, पीपलामूल, त्रिकुटा, बिड नमक, अनार, धनियां, जीरा, चीता इनसे सिद्ध कियाहुआ घृत पूर्वोक्त गुणकर्ता है ।

दशमूलोपसिद्धंवासविल्वमनुवासनम् । शताह्वाशटिविल्वैर्वावचयाचित्रकेणवा॥ स्तब्धभ्रष्टेगुदेपूर्वंस्नेहस्वेदौप्रयोजयेत् । सुस्विन्नम्मृदुभूतंपिचुनासंप्रवेशयेत् ॥

अर्थ—दशमूल और कच्ची बेलगिरीको सिद्ध करके अनुवासनवस्ति देवै । अथवा सौंफ, कचूर, बेलगिरी, अथवा वच, और चीता इनको सिद्ध करके अनुवासन वस्ति देवै । इससे गुदस्तब्ध, गुदभ्रंश दूर होजाते हैं, परन्तु प्रथम स्नेहन और स्वेदनकर्मकरै । पसीने देने पर जब गुदा मृदु होजाय तब रुई के फोए से प्रवेश करै ॥

विबद्धवातवर्चास्तुबहुशूलप्रवाहिकः । सरक्तपिच्छस्तृष्णार्तःक्षीरसौहित्यमर्हति ॥ यमकस्योपरिक्षीरंधारोष्णंवापिबेन्नरः। शृतमेरण्डमूलेनबालविल्वेनवा पयः ॥ एवंक्षीरप्रयोगेणरक्तंपिच्छावशाम्यति । शूलंप्रवाहिकाचैवविबन्धश्चोपशाम्यति ॥

अर्थ—अधोवायु और मलके बद्ध होनेपर शूल और प्रवाहिकाके अत्यन्त बढजाने पर; रुधिर सहित पिच्छिल मलके निकलने पर और तृषाके अधिक होने पर दूधको पेटभर कर पान करावे । यमक स्नेह (घी तेल) के ऊपर धारोष्ण दुग्ध पान करावे। अथवा अंडीकी जड वा कच्ची बेलगिरी डालकर दूध को औटाकर पान करावे । दूधके इन प्रयोगोंसे रक्त और पिच्छा शान्त होजाते हैं तथा शूल प्रवाहिका और विबन्ध भी नष्ट होजाते हैं ।

पित्तातिसारकी चिकित्सा ।

पित्तातिसारंपुनर्निदानोपशयाकृतिभिरामान्वयमुपलभ्ययथाबलं लंघनपाचनाभ्यामुपाचरेत् तृष्यतस्तुमुस्तपर्पटकोशीरशारिवाचन्दनकिराततिक्तकोदीच्यवारिभिरुपचारोलंघितस्यचाहारकालेबलातिबलासूर्प्यशालपर्णीपृश्निपर्णीबृहतीकण्टकारिकाशतावरीश्वदंष्ट्रानिर्यूहसंयुक्तेन यथासात्म्यंयवागू मण्डादिनातर्पणादिनावाक्रमेणोपचारःमुद्गमसूरहरेणुमकुष्टकयूषैःलावकपिञ्जलशशहरिणैणयकालपुच्छकरसैरीषदम्लैरनम्लैर्वाक्रमशोऽग्निसन्धुक्षतेदनुबन्धत्वेत्वस्यदीपनीयपाचनीयोपशमनीयसंग्रहणीयान्योगान्प्रयोजयेदिति

अर्थ—पित्तातिसारमें निदान, उपशय और आकृति द्वारा यदि यह जाना जाय कि रोग आमाचितहै तो बलके अनुसार लंघन पाचन देवै । यदि तृषा प्रबलहो तो मोथा, पित्तपापडा, खस, शारिवा रक्त चन्दन, चिरायता और नेत्रवाला इनके साथ सिद्ध किया

हुआ जल देवै। लंघन करानेके पीछे भोजन के समय बला, अतिबला, मुद्गपर्णी, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, दोनों कटेरी, सितावर, गोखरू, इनके काथके साथ यवागूमण्ड और तर्पणादिको भोजनमें देवै। मूंग, मसूर, हरेणु, मोंठ इनका यूष अथवा लवा, कपिंजल खर्गोश, हरिण, एण, कालपुच्छ, इनके मांस रस में खटाई डालकर वा विना खटाई देकर धीरे २ जठराग्निको उत्तेजित करै। इन उपायों के करने परभी यदि कुछ शेष रहजाय तो दीपन, पाचन, संशमनीय और संग्राही औषधोंका प्रयोग करै।

भवति चात्र।

सक्षौद्रातिविषंपिष्ट्वावत्सकस्यफलत्वचम्। पिबेत्पित्तातिसारघ्नंतण्डुलोदकसंयुतम्॥

अर्थ—अतीस, इन्द्रजौ, कुडाकी छाल इनको जलमें पीसकर तंडुलजल और शहत के साथ सेवन करै तौ पित्तातिसार नष्ट होजाताहै।

पित्तातिसार पर छः प्रयोग।

किराततिक्तकंमुस्तंवत्सकःसरसाञ्जनः। विल्वं दारुहरिद्राश्वत्वक्ह्रीवेरंदुरालभम्। चन्दनश्चमृणालश्चनागरंरोध्रमुत्पलम्॥ तिला मोचरसोरोध्रंसमङ्गाकमलोत्पलम्। कट्फलंनागरंपाठा जम्ब्वाम्रास्थिदुरालभाः॥ योगाःषडेते सक्षौद्रास्तण्डुलोदकसंयुताः। पेयाःपित्तातिसारघ्नाःश्लोकार्द्धेननिदर्शिताः॥

अर्थ—(१) चिरायता, मोथा, इन्द्रजौ, रसौत। (२) वेलगिरी, दारुहल्दी, दालचीनी, नेत्रवाला, जवासा। (३) चन्दन, कमलनाल, सोंठ, लोध, नीलकमल, (४) तिल, मोचरस, लोध, लजालु, नीलकमल, लालकमल। (५) नीलकमल, धाय के फूल, अनारकी छाल और सोंठ। (६) कायफल, सोंठ, पाठा, जामनकी गुठली, आमकी गुठली जवासा। आधे आधे श्लोक में कहेहुए इन छः प्रयोगों को शहत और तण्डुल जलके साथ सेवन करने से पित्तातिसार दूर होजाताहै।

जीर्णौषधानांश्रस्यन्तेयथायोगंप्रकल्पितैः रसैःसांग्राहिकैर्युक्ताःपुराणारक्तशालयः॥

अर्थ—औषध के जीर्ण होनेपर उसी उसी योगकी औषधों से सिद्ध किये हुए संग्राही मांसरसों के साथ लाल शालीचांवलों का सेवन करै।

पित्तातिसारोदीप्ताग्नेःक्षिप्रंसमुपशाम्यति आजक्षीरप्रयोगेनबलंवर्णश्चवर्द्धते॥ बहुदोषस्यदीप्ताग्नेःसमाणस्यनतिष्ठति। पैत्तिकोयद्यतीसारःपयसातंविरेचयेत्॥ पलाशफलनिर्यूहंपयसापाययेत्ततम्। ततोऽनुपाययेत्कोष्णंक्षीरमेवयथाबलम्॥ प्रवाहितेतेनमलेप्रशाम्यत्युदरामयः। पलाशवत्प्रयोज्यावात्रायमाणाविशोधिनी

अर्थ—दीप्ताग्निवाले पुरुषका पित्तातिसार शीघ्रही शान्त होजाताहै। इससमय बकरी का दूध सेवन कराने से बल और वर्ण बढजाते हैं। बहुत दोषों से युक्त दीप्ताग्नि वाले और बलवान् पित्तातिसारीको दूध के साथ विरेचन देनेसे फिर पित्तातिसार नहीं

रहताहै । इस रोगीको दूधके साथ ढाक के फलोंका काथ पान करावे । फिर यथाशक्ति कुछ २ गरम दूधका अनुपान करावे । इस रीतिसे मलके निकलजानेपर उदररोग शान्त होजाते हैं । अथवा मलके शोधनके निमित्त पलाशफलके सदृश त्रायमाणा का प्रयोगकरै।

संसर्गांक्रियमाणायांशूलंयद्यनुवर्त्तते । स्रुतदोषस्यतंशीघ्रंयथावदनुवासयेत् ॥ शतपुष्पावरीभ्याञ्चपयसामधुकेनवा । तैलपादंघृतंसिद्धंसबिल्वमनुवासनम् । कृतानुवासनस्यापिकृतसंसर्जनस्यच ॥ यद्यतेयद्यतीसारःपिच्छावस्तिरतःपरम् ।

अर्थ—विरेचनके पीछेवाली सम्पूर्ण क्रियाओं के करनेपर भी यदि उदरशूल रहजावै तौ दोषोंके निकलनेके पश्चात् अनुवासन कर्म करे ॥ सौंफ, सितावर, दूध, मुलहटी, घी से चौथाई तेल, बेलगिरी इन सबको सिद्ध करके इनके द्वारा अनुवासनवस्ति देवै अनुवासनवस्ति देनेपरभी तथा तत्पश्चात् पेयादि क्रमके अवलंबन करने परभी जो अतीसार दूर नहो तौ नीचेलिखी हुई रीति से पिच्छावस्ति देवै ॥

पिच्छावस्ति विधान ।

परिवेष्ट्यकुशैरार्द्रैरार्द्रवृन्तानिशाल्मलेः ॥ कृष्णमृत्तिकयालिप्यस्वेदयेद्गोमयाग्निना सुशुष्कांमृत्तिकांज्ञात्वातानिवृन्तानिशाल्मलेः ॥ क्षिते पयसिमृद्नीयादापोथ्योलूखलेततः । पिण्डंमुष्टिसमंमस्थेतत्प्लुतंतैलसर्पिषा ॥ योजितंमात्रयायुक्तंकल्केनमधुकस्यच । वस्तिमभ्यक्तगात्रायदद्यात्मत्यागतेततः ॥ स्नात्वाभुञ्जीतपयसाजाङ्गलानांरसेनवा । पित्तातिसारज्वरशोथगुल्मा । जीर्णातिसारग्रहणीप्रदोषान् ॥ जयत्ययंशीघ्रमतिप्रवृद्धान् । विरेचनास्थापनयोश्चवस्तिः

अर्थ—सेमरके हरे डंठलोंको हरी कुशा से लपेटकर ऊपरसे कालीमिट्टी लपेट कर मन्दी २ आगमें पकावै, जब मृत्तिका अच्छी तरह सूखजाय तब सेमर के डंठलोंको उखलमें कूटकर चार तोले लेकर एक प्रस्थ दूधमें औटावै, फिर मात्राके अनुसार तेल, सरसों और मुलहटीमें सानकर वस्तिसे देवै, परन्तु प्रथम रोगीके देहपर तेल की मालिश करलेवै । वस्तिके प्रत्यागमन होनेपर स्नान करके दूध अथवा जांगल पशुओंके मांसरस के साथ भोजन करावै।इस वस्ति से पित्तातिसार, ज्वर, शोथ, गुल्म, अजीर्ण, अतिसार ग्रहणीदोष, तथा विरेचन जन्य और आस्थापन जन्यरोग शीघ्रही शान्त होजाते हैं ।

रक्तातिसारकावर्णन ।

पित्तातिसारीयस्त्वेतांक्रियामुक्त्वानिषेवते॥पित्तलान्यन्नपानानितस्य पित्तंमहाबलम् । कुर्य्याद्रक्तातिसारन्तुरक्तमाशुप्रदूषयेत् ॥ तृष्णांशूलंविदाहञ्चगुदपाकञ्चदारुणम् । छागंतत्रपयःशस्तंशीतंसमधुशर्करम् ॥ पानार्थेव्यञ्जनार्थेचगुदप्रक्षालनं तथा। भोजनंरक्तशालीनांपयसातेनभोजयेत् ॥

अर्थ—पित्तातिसारी मनुष्य इन ऊपर कहीहुई क्रियाओंको छोड़कर पित्तको अ-

स्कस्तिलानांकृष्णानांशर्करापञ्चभागिकः
आजेनपयसापीतःसद्योरक्तंनियच्छति ॥
पलंवत्सकबीजस्यश्रपयित्वारसंपिवेत् ।
योरसाशीजयेच्छीघ्रंसपैत्तंजठरामयम् । पी-
त्वासशर्करासौद्रंचन्दनंतण्डुलाम्भसा ।
दाहतृष्णाप्रमेहेभ्योरक्तस्रावाद्विमुच्यते ॥

अर्थ....दारुहल्दीकी छाल, इन्द्रजौ, पीपल अदरख, दाख और कुटकी इन छः औष-धियोंसे सिद्ध कियाहुआ घी तथा ऊपरसे पेया और मण्डका अनुपान करे तो त्रिदोषजनित दारुण अतीसारभी दूर होजाताहै ।

कालीमिट्टी, शंख की भस्म, कुंकुम और तंडुलजल इनसबको शहतमें मिलाकर सेवन करे तो रक्त बन्द होजाताहै, प्रियंगुका कल्क, शहत, और तण्डुल जल इनको सेवन करने से रक्त बन्द होजाताहै, इसके साथही जां-गल पशुओंके मांस रसका भी सेवन करता रहे ॥ एकभाग चीनी और पांचभाग काले तिल इन सबको बकरी के दूधके साथ पान करे तो शीघ्रही रक्तातिसार दूर होजाताहै । इन्द्रजौ एकपल के क्वाथ को पीकर मांसरस का सेवन करे तो पित्तजनित उदररोग शीघ्र ही नष्ट होजाताहै ॥ रक्तचन्दन, तण्डुलजल, शहत, शर्करा, इनको मिलाकर पीनेसे दाह, तृष्णा, प्रमेह और रक्तातिसार दूर होजातेहैं।

गुदपाककीचिकित्सा

गुदोबहुभिरुत्थानैर्यस्यपित्तेनपच्यते ।
सेचयेत्तंसुशीतेनपटोलमधुकाम्बुना ॥ पं
चवल्कमधूकानांरसैरिक्षुरसैर्घृतैः । छाग
गव्यैःपयोभिर्वाशर्कराक्षौद्रसंयुतैः॥ प्रक्षा
लनानांकल्कैर्वासससर्पिष्कैःप्रलेपयेत् ।
एषांवासुकृतैश्चूर्णैस्तंगुदंप्रतिसारयेत् ॥
धातकीरोध्रचूर्णैर्वासमांशैःप्रतिसारयेत् ।
तथातत्रस्रवत्यस्रंगुदस्तैःप्रतिसारितम् ॥
यथोक्तसेचनैःशीतैःशोणितेनिःस्रवत्यपि ।
गुदवंक्षणकट्यूरुसेचयेद्घृतभावितम् ॥
चन्दनाद्येनतैलेनशतधौतेनसर्पिषा । का-
र्पाससहयोगिनसेचयेद्गुदवंक्षणौ ॥

अर्थ—जिस पित्तातिसारी मनुष्यकी गुदा बहुत दस्तोंके होनेसे पकजातीहै उसकी गुदाको परवल और मुलहटीके शीतल क्वाथसे प्रक्षा लन करे । अथवा पंचवल्क और महुआके क्वाथसे, अथवा ईखके रस और घी से अ-थवा शहत और चीनी मिलेहुए गौ बकरीके दूधसे गुदा को प्रक्षालनकरे, अथवा इन प्र-क्षालनकर्त्ता द्रव्योंके कल्कको घीमें सानकर गुदापर लेपकरे । अथवा इन द्रव्योंका चूर्ण करके गुदापर प्रतिसारण करे अथवा धायके फूल और लोध समान भाग लेकर इनसे प्रतिसारण करे । इन द्रव्योंसे प्रतिसारित किये जानेपर गुदासे रक्तस्राव होताहै । रक्त के निकलने पर गुदा, वंक्षण, कमर और ऊरू इन पर घृत लगाकर पूर्वोक्त शीतल क्वाथोंसे सेचन करे । अथवा चन्दनाद्य तैल या सौवार के धुलेहुए घी को कपासके जल में डालकर गुदा और वंक्षणको सेचनकरे ।

अल्पाल्पंबहुशोरक्तंसशूलमुपवेश्यते ।
यदावायुर्विबद्धश्चकृच्छ्रंचरतिवानवा ॥
पिच्छावस्तिंतदातस्ययथोक्तमुपकल्पयेत्
प्रपुण्डरीकसिद्धेनसर्पिषाचानुवासयेत् ।

प्रायशोदुर्बलगुदाःचिरकालातिसारिणः। तस्माद्भीक्ष्णशस्तेषांगुदस्नेहंमयोजयेत्॥ पवनोऽतिप्रवृत्तोहिस्वेस्थानेलभतेऽधिकम् बलंतस्यसपित्तस्यजयार्थेवस्तिरुत्तमः ॥

अर्थ—जब बारबार थोडा थोडा रक्त शूल समेत निकले और वायु रुककर कोष्टमें कठिनतासे विचरै अथवा न विचरै तो उस समय पूर्वोक्त रीतिसे पिच्छावस्तिका प्रयोगकरै तथा पुण्डरिया डालकर सिद्धकियेहुए घृतसे अनुवासनवस्ति देवे ।

बहुत दिवस तक अतिसार रहनेसे गुदा प्रायःदुर्बल पडजातीहै इसलिये उन मनुष्यों की गुदा पर स्नेह लगाना चाहिये ।

अतिसार की अत्यन्त प्रवृत्तिमें वायु अपने स्थानमें अत्यन्त कुपित होकर पित्त से मिलजातीहै अतएव वातपित्तके मिलेहुए बलकी शान्तिके निमित्त वस्तिक्रिया उत्तम होतीहै।

रक्तमिश्रित मलमें चिकित्सा ।

रक्तंविट्सहितंपूर्वंपश्चाद्वायोऽतिसार्य्यते। शतावरीघृतंतस्यलेहार्थमुपकल्पयेत् ॥ शर्करार्द्धांशिकंलीढ्वानवनीतंनवोद्धृतम्॥ क्षौद्रपादंजयेच्छीघ्रंतंविकारंहिताशिनः । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गानापोथ्यवासयेत् ॥ अहोरात्रंजलेतस्मिघृतंतेनाम्भसापचेत् । तदर्द्धशर्करायुक्तंलिह्यात्सक्षौद्रपादिकम् ॥ अधोवायदिवाप्यूर्द्ध्वंयस्यरक्तंमवर्त्तते । यस्त्वेवंदुर्बलोमोहात्पित्तलान्येवसेवते ॥ शीघ्रंविपद्यतेप्राप्यवलीपाकंसुदारुणम् ॥

अर्थ—जिसके प्रथमही दस्तके साथ रुधिर निकले और फिर अधोवायुकी प्रवृति के साथ पतला दस्तहो उसको सितावर का सिद्ध कियाहुआ घृत चटावै अथवा ताजी माखन घी, उससे आधी चीनी और चौथाई शहत मिलाकर सेवन करनेसे वह रोग शान्त होजाताहै परन्तु हित आहार का सेवन करै ॥

बड़, गूलर और पीपल इनकी कोंपलों को लेकर कूटकर गरम जलमें एक दिन रात भिजो रक्खै, उस जलसे घृत पाक करै इसमें आधी चीनी और चौथाई शहत मिलाकर चाटै ।

जिस मनुष्यके दस्त अथवा वमन द्वारा रुधिर निकलै और वह दुर्बल यदि मोहसे पित्तकर्त्ता द्रव्योंका सेवन करै तो उस के दारुण वलीपाक होजाताहै और वह शीघ्र ही मरजाता है ।

कफातिसारकी चिकित्सा ।

श्लेष्मातिसारेप्रथमंहितंलंघनपाचनम् ॥ योज्यश्चामातिसारघ्नोयथोक्तोदीपनोगणः । लंघितस्यानुपूर्व्याश्चकृतायान्ननिवर्त्तते ॥ कफजोयद्यतीसारःकफघ्नैस्तमुपाचरेत् ।

अर्थ—कफातिसारमें प्रथमही लंघन और पाचन हितहैं तथा इसमें पहिले कहाहुआ आमातिसारनाशक दीपनीय गणका प्रयोग करना चाहिये । लंघन कराने और तत्पश्चात् पेयादि आनुपूर्वी क्रम के करनेपर भी यदि कफातिसार शान्त नहो तो कफनाशक औषधियों द्वारा चिकित्सा करनी चाहिये ॥

कफातिसारपर चारयोग ।

बिल्वकर्कटिकामुस्तमभयाविश्वभेषजम् ॥ वचाविडङ्गभूतीकंधान्यकंदेवदारुच । कुष्ठंसातिविषापाठाचव्यंकटुकरोहिणी ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पली योगान्श्लोकार्द्धविहितांश्चतुरस्तान्प्रयोजयेत् ॥ भूतान्श्लेष्मातिसारेषुकायाग्नि बलवर्द्धनान् ।

अर्थ—बेलगिरी, काकडासींगी, मोथा, हरड, सोंठ, (२) वच, बायविडंग, अजवायन, धनियां और देवदारु, (३) कूठ-अतीस, पाठा, चव्य कुटकी, (४) पीपल, पीपलामूल, चीता, गजपीपल । इन आधे आधे श्लोकमें कहे हुए चारों प्रयोगों का क्वाथ पान करनेसे कफातिसार दूर होजाता है तथा कायाग्नि और बल बढताहै ।

अजाजींससितांपाठांनागरंमरिचानिच। धातकी द्विगुणंदद्यान्मातुलुंगरसाप्लुतम् रसाञ्जनंसातिविषंकुटजस्यफलानिच ॥ धातकीद्विगुणं दद्यात्पातुं सक्षौद्रनागरम्

अर्थ—जीरा, मिश्री, पाठा, सोंठ काली मिरच इन सबसे दूने धायके फूल का चूर्ण बनाकर बिजौरेके रसमें घोटकर देवे अथवा रसौत, अतीस, इन्द्रजौ, इनसे दूने धायके फूल शहत और सोंठ में मिलाकर सेवन करै ।

धातकीनागरंबिल्वंलोध्रंपद्मस्यकेशरम् । जम्बूत्वङ्नागरंधान्यंपाठामोचरसंबला। समङ्गाधातकीबिल्वमध्यंजम्ब्वाम्रयोस्त्वचा । कपित्थानिविडङ्गानिनागरंमरिचानिच ॥ चाङ्गेरीकोलतक्राम्लांश्चतुरस्तान् कफातुरे । श्लोकार्द्धविहितानदद्यात्स स्नेहलवणान्खडान् ।

अर्थ—[१] धायके फूल, सोंठ, बेलगिरी, लोध, नागकेसर, [२] जामनकी छाल, सोंठ, धनियां, पाठा, मोचरस, खरैटी [३] लज्जालु, धायके फूल, बेलगिरी, जामनकी छाल, आमकी छाल, [४] कैथ बायविडंग, सोंठ काली मिरच, । इनआधे आधे श्लोकमें कहेहुए चार प्रयोगों को चांगेरी, बेर और मठाकी खटाई देकर तथा स्नेह लवण डालकर खडयूप बनाकर कफरोगमें सेवन करै ।

कपित्थमध्यंलीढ्वातुसव्योषक्षौद्रशर्करम् ॥ कट्फलंमधुयुक्तंवामुच्यतेजठरामयात् ।

अर्थ—कैथकीगिरी, त्रिकुटा, शहत औ शर्कराको चाटनेसे अथवा कायफलमें शहत मिलाकर चाटने से उदररोग दूर होजाते हैं

कणांमधुयुतांपीत्वातक्रंपीत्वासचित्रकं। जग्ध्वावाबालबिल्वानिमुच्यतेजठरामयात् ॥

अर्थ—शहत और पीपल चाटने से अथवा मठामें चीता डालकर पीनेसे अथवा कच्ची बेलगिरी खानेसे उदररोग दूर होजातेहैं

बालबिल्वंगुडंतैलंपिप्पलींविश्वभेषजम् । लिह्याद्वातेप्रतिहतेसशूलः सप्रवाहिकः ॥ भोज्यंमूलकयूषेणवातघ्नैश्चोपसेवनैः । वातातिसारविहितैर्यूषैर्मांसरसैः खडैः ॥ पूर्वोक्तमम्लसर्पिर्वापद्पलंवायथाबलम् ।

पैर्विविधैःस्निग्धैर्नित्यंकुसुमसम्पदः ॥ वम द्भिर्मधुरान्गन्धान्सर्वतः स्वभ्यलंकृते। विह रन्तंजितात्मानमात्रेयमृषिवन्दितम्।महर्षि भिःपरिवृतंविभुंभूतहितेरतम् । अग्निवेशो गुरुकालेविनयादिदमुक्तवान् ।भगवन् ! दारुणंरोगमाशीविषविषोपमम्।विसर्पन्तं शरीरेषुदेहिनामुपलक्षये ॥ सहसैवनरा स्तेनपरीताःशीघ्रकारिणः। विनश्यन्त्य नुपक्रान्तास्तत्रनःसंशयोमहान्।सनाम्नाके नविज्ञेयःसंज्ञितःकेनहेतुना । कतिभेदः कियद्धातुःकिंनिदानःकिमाश्रयः ॥सुख साध्यःकृच्छ्रसाध्योज्ञेयोयश्चानुपक्रमः । कथंकैर्लक्षणैःकिंश्च भगवंस्तस्यभेषजम् ॥

अर्थ—एक समय कैलाश पर्वतपर जहां वहुतसे किन्नर निवास करतेहैं जहां अनेक झरने, अनेक प्रकार की औषधी और अनेक प्रकारके वृक्ष सदैव फलफूलसे लदे रहते हैं इन पुष्पोंमें से अनेक प्रकारकी सुगन्ध चली आतीथीं, ऋषिगणपूज्य जितेंद्रिय आत्रेय ऋषि विचार रहेथे, वहुतसे ऋषि, मुनि, उनके साथ थे और प्राणियोंके हितमें दत्तचित्त थे । इस समय को उचित समझकर अग्निवेशने अत्यन्त मृदुभाव से पूंछा कि हे भगवन् ! एक भयंकर रोगप्राणियों के शरीरमें फैलताहुआ देखने में आता है यह रोग सर्पके विषसे भी तीक्ष्णहै । इस रोगसे मनुष्य ग्रस्त होकर शीघ्रही नष्ट होजातेहैं उनकी चिकित्साका समय भी हाथ नहीं लगता । इसका हमको वडा संशयहै। इस रोग का नाम क्याहै ? इस नाम पडने का कारण क्याहै ? इस के कितने भेदहैं ? कौनसी धातुहै ? हेतु क्याहै ? आश्रय क्या है ? यह सुखसाध्य, कृच्छ्रसाध्य या असाध्य है? इसके लक्षण क्या हैं? और औषधी क्या है?

तदग्निवेशस्यवचःश्रुत्वात्रेयःसुदुर्वचम् । यथावदखिलंसर्वमोवाचमुनिसत्तमः ॥

अर्थ—अग्निवेश के इस प्रश्नको सुनकर मुनिसत्तम आत्रेय इस सम्पूर्ण महाकठिन विषयका पूर्ण रीतिसे वर्णन करने लगे ।

विसर्प की निरुक्ति ।

विविधंसर्पतियतोविसर्पस्तेनसस्मृतः ॥ परिसर्पोऽथवानाम्नासर्वतःपरिसर्पणात्॥

अर्थ....यह रोग शरीरमें अनेक प्रकारसे फैलता हैं अतएव विसर्प कहलाता है । अथवा चारोंओर परिसर्पण करनेसे **परिसर्प** भी कहलाता है ॥

विसर्प के भेद ।

सचसप्तविधोदोषैर्विज्ञेयःसप्तधातुकः । पृथक्त्रयस्त्रिभिश्चैकोविसर्पोद्वन्द्वजास्त्रयः॥ वातिकःपैत्तिकश्चैवकफजःसान्निपातिकः। चत्वारएतेवीसर्पावीक्ष्यन्तेद्वन्द्वजास्त्रयः॥ आग्नेयोवातपित्ताभ्यांग्रन्थाख्यंकफवातजः । यस्तुकर्दमकोघोरःसपित्तकफसम्भवः ॥

अर्थ ...दोषोंके अनुसार विसर्प सात प्रकारका होता है, यह सप्त धातुओंका आश्रयभूत है । पृथक् पृथक् तीनों दोषोंसे तीन, सब दोषोंसे एक प्रकार का, दो दो दोषोंसे तीन प्रकार का । इसतरह सब मिलकर सात प्र-

विपरीत द्रव्योंके सेवन से दूर होता है। यह सब वातजविसर्प का वर्णन है।

पित्तविसर्पके लक्षणादि।

पित्तमुष्णोपचारादिविदाह्यम्लाशनैश्चितम्। दूष्यंसंदूष्यमार्गांश्चपूरयन्वैविसर्पति॥ तस्यरूपाणिज्वरस्तृष्णामूर्च्छामोहश्छर्दिररोचकोऽङ्गभेदः स्वेदोऽतिमात्रमन्तर्दाहः प्रलापः शिरोरुक्चक्षुषोराकुलत्वमरतिभ्रमः शीतवातवारितर्षोऽतिमात्रंहरितनेत्रमूत्रवर्चस्त्वंतेपांहरितहारिद्ररूपदर्शनंयस्मिंश्चावकाशेविसर्पोऽनुसर्पतिसोऽवकाशस्ताम्रहरितहारिद्रनीलकृष्णरक्तानांवर्णानामन्यतमंपुष्यति। स्रोतसैश्चातिमात्रंदाहसस्वेदनपरीतैः स्फोटकैरुपचीयतेतुल्यवर्णास्रावैरचिरपाकैर्निदानोक्तानिनोपशेरतेविपरीतानिचोपशेरतइतिपित्तविसर्पः॥

अर्थ—उष्णक्रियाके अवलंबनसे तथा विदाही और खट्टे पदार्थों के सेवनसे संचित हुआ पित्त दूष्य धातुओं को दूषित करके स्रोतोंके मार्गोंको रोकदेताहै। तब पित्तजनित विसर्प फैलने लगता है। इस विसर्प के रूप ये हैं यथा—ज्वर, तृष्णा, मूर्च्छा, मोह, वमन अरुचि, अंगभेद, स्वेद, अत्यन्त अन्तर्दाह, प्रलाप, शिरोवेदना, नेत्रों में विकलता, अरति, भ्रम, शीतलवायु और शीतलजल की अत्यन्त तृषा, नेत्र, मूत्र, विष्ठाका हरावर्ण, नेत्रोंसे प्रत्येक वस्तुका हरा वा हल्दीके समान दीखना। जिस स्थानमें विसर्प फैलताहो उसका ताम्रवर्ण, हरा, हल्दीके समान, नीलवर्ण, रक्तवर्ण इनमें से किसी एक रंगका होजाताहै। यह विसर्प अत्यन्त ऊंचा तथा दाह और स्वेदयुक्त फोडोंसे आच्छादित होताहै, इन फोडों में से इनकेही रंगके सदृश स्राव होताहै और ये फोडे थोडेही कालमें पकभी जातेहैं। निदानोक्त द्रव्योंके सेवन से ये बढतेहैं और इन से विपरीत द्रव्योंके सेवन से घटते हैं। ये सब पित्तज विसर्प का वर्णन है।

कफ विसर्पके लक्षणादि।

स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुर्वन्नस्वप्नसंचितः कफःसंदूषयन्दूष्यंकृच्छ्रमङ्गेविसर्पति॥ तस्यरूपाणि शीतकःशीतकज्वरोगौरवंनिद्रातन्द्रारोचकोमधुरास्यत्वमास्योपलेपोनिष्ठीविकाच्छर्दिरालस्यस्तैमित्यमग्निनाशोदौर्बल्यंयस्मिंश्चावकाशेविसर्पति सोऽवकाशःश्वयथुमान्पाण्डुर्मात्रातिरक्तस्नेहःसुप्तिस्तम्भगौरवैरन्वितोऽल्पवेदनः कृच्छ्रपाकैश्चिरकारिभिःबहुलत्वगुपलेपैः स्फोटैः श्वेतपाण्डुभिरनुबध्यतेप्रभिन्नस्तु श्वेतंपिच्छिलतन्तुमद्घनमनुबद्धस्निग्धमास्रावंस्रवत्यूर्ध्वंचगुरुभिःस्निग्धैर्जलावततैः स्निग्धैर्बहुलत्वगुपलेपैर्व्रणैरनुबध्यतेऽनुसक्तश्वेतनखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चस्त्वानिनिदानोक्तानि नोपशेरतेविपरीतानिचोपशेरतइतिश्लेष्मविसर्पः॥

अर्थ—मधुर, अम्ल, लवण, स्निग्ध और भारी अन्न और अधिक निद्रा इनके सेवन करनेसे संचित हुआ कफ दूष्य धातुओं को दूषित करके कृच्छ्रसाध्य विसर्पको उत्पन्न

करताहै। इसके रूप ये हैं यथा--शीत, शीतज्वर, भारापन, निद्रा, तन्द्रा, अरुचि मुखमें मीठापन, मुखमें लिहसावट, मुंहका भरना, वमन, आलस्य, स्तिमिता, अग्निनाश और दुर्बलता, जिस स्थानमें यह विसर्प फैलताहै वह स्थान सूजन, पाण्डुता, अतिस्राव, अतिस्नेह, सुप्ति, स्तम्भता, भारापन, और अल्पवेदना इनसे युक्त होता है इसमें कठिनतासे तथा देरमें पकनेवाले बहुत्वगुपलेपी स्वेत वा पाण्डुवर्ण के फोडे हो जाते हैं इन फोडोंके फूटनेपर सफेद गिलगिला तन्तुयुक्त, गाढा, लगातार तथा स्निग्धस्राव होता रहताहै। इसका ऊपरला भाग भारी, स्निग्ध, जलयुक्त, स्निग्धगाढे, त्वगुपलेपी व्रणोंसे आच्छादित होजाता है। अनुषंगी नख, नेत्र, वदन, त्वचा, मूत्र, विष्टाका वर्ण सफेद होजाताहै। यह रोग निदानोक्त द्रव्योंके सेवनसे बढताहै और तद्विपरीत द्रव्योंके सेवन से घटताहै। यह कफजविसर्प का वर्णन है।

वातपित्तजविसर्पके लक्षणादि।

वातपित्तंप्रकुपितमतिमात्रंस्वहेतुभिः। परस्परंलब्धबलंदहद्गात्रंविसर्पति ॥ तदुपतापादातुरः सर्वशरीरमंगारैरिवाकीर्य्यमाणमन्यते। छर्द्यतीसारमूर्च्छादाहमोहज्वरतमकारोचकास्थिसन्धिभेदतृष्णाविपाकांगभेदादिभिश्चाभिभूयते। यंयंचावकाशं विसर्पोऽनुसर्पतिसोऽवकाशःशान्तांगारप्रकाशोऽतिरिक्तोवाभवत्यग्निदग्धप्रकारैश्चस्फोटैरुपचीयतेसशीघ्रगत्वादाशुचप्रमर्मानुसारीभवतिमर्म्माणिचोपतप्तपवनोऽतिबलोभिनत्यंगान्यतिमात्रंप्रमोहयतिसंज्ञांहिकाश्वासौजनयतिनाशयतिनिद्रां। सनष्टनिद्रःप्रमूढसंज्ञोव्यथितचेतानक्वचिद्रचनसुखमुपलभेअरतिपरीतः स्थानादासनात्शय्यांक्रान्तुमिच्छतिक्लिष्टभूयिष्टश्चाशुनिद्रांभजत्यवलोदुःखप्रबोधश्चतमेवंविधमग्निविसर्पपरीतमचिकित्स्यंविद्यात् ॥

अर्थ—अपने २ हेतुओं से अत्यन्त कुपितहुए वात पित्त एक दूसरे के संगसे अत्यन्त बलवान् होकर शरीरको दग्ध करते हुये विसर्पको उत्पन्न करते हैं। इन कफ वातके उपतापसे रोगीको अपना सब शरीर जलतेहुए अंगारोंके सदृश मालूम होने लगताहै। वमन, अतीसार, मूर्च्छा, दाह मोह, ज्वर, तमक, अरुचि, अस्थिभेद, सन्धिभेद, तृष्णा, अविपाक, अंगभेद आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। शरीरके जिस २ विभाग में विसर्प फैलता है। उस २ स्थान में बुझाए हुए अंगारों के सदृश कृष्णवर्ण, तथा उस से भी अधिक कालापन होता है। इसमें आग से जलेहुए फफोले के सदृश फोडे होजाते हैं यह अत्यन्त शीघ्र गामी होनेसे मर्मोंमें गमन करताहै मर्म्मोंमें वायु की उत्तप्तता से अत्यन्त वेग से अंगों का भेदन और चैतन्यता का नाश होता है। हिचकी और श्वास, उत्पन्न होतेहैं, निद्रा का नाश होताहै, रोगी इस तरह निद्रानाश, और संज्ञानाश, और व्यथितचित्तताके

किसी तरह सुख प्राप्त नहीं करता है । अत्यन्त दुःख के कारण यह स्थान, आसन वा शय्या पर आडा तिरछा होना चाहताहै इसतरह अत्यन्त क्लिष्ट होकर शीघ्र सोजाता है, यह रोगी अत्यन्त दुर्बलता के कारण जगाने से भी नहीं जगता है । इस अग्निविसर्प का रोगी दुश्चिकित्स्य होताहै ॥

कफपित्तजविसर्पकेलक्षणादि ॥

कफपित्तंप्रकुपितंवलवत्स्वेनहेतुना । विसर्पत्येकदेशंतुप्रक्लेदयतिदेहिनः ॥ तद्विकाराःशीतज्वरःशिरोगुरुत्वंदाहःस्तैमित्यमंगावसादनंनिद्रातन्द्रामोहोऽन्नद्वेषः प्रलापोऽग्निनाशोदौर्बल्यमस्थिभेदोमूर्च्छा पिपासास्रोतसांप्रलेपोजाड्यमिन्द्रियाणां आमोपवेशनमंगविक्षेपोऽगमर्दोऽरतिरौत्सुक्यंचोपजायतेप्रायश्चामाशयेविसर्पत्यलसकएकदेशग्राहीयस्मिंश्चास्यकाशोविसर्पतिसोऽस्यकाशोरक्तपीतपाण्डुपिडकापकीर्णइवमेचकाभःकालोमलिनःस्निग्धो वहूष्मागुरुस्तिमितवेदनःश्वयथुमान्गम्भीरपाकःनिरास्रावःशीघ्रक्लेदःस्विन्नक्लिन्नपूतिमांसत्वक्क्रमेणाल्परुक्परमृष्टोऽवदीर्य्यते । कर्दमइवापीडितोऽनन्तरंप्रयच्छत्युपक्लिन्नपूतंमांसत्यागीशिरास्नायुसंदर्शीकुणपगन्धीसंज्ञास्मृतिहर्त्ताचंकर्दमवीसर्पमितिमचिकित्स्यविद्यात् ।

अर्थ....अपने अपने हेतुओंसे कफपित्त प्रकुपित होकर तथा एक दूसरेकी सहायता से अत्यन्त बलिष्ट होकर देह को क्लेदित करके शरीरके एक भाग में विचरताहै। उस के विकार ये हैं यथा-शीत ज्वर, सिरका भारापन, दाह, स्तिमिता, अंगग्लानि, निद्रा, तन्द्रा, मोह, अन्नमें द्वेष, प्रलाप अग्निनाश, दुर्बलता, अस्थिभेद, मूर्च्छा,तृषा, स्रोतःसमूहमें लिहसावट, इन्द्रियोंमें जडता, आमका निकलना, हाथ पांवका पटकना, अंगमर्द, अरति, उत्सुकता ये उपद्रव होते हैं। यह प्रायः आमाशयमें उत्पन्न होकर शरीरके किसी एक भागमें फैलता चला जाता है । जिस स्थाम में यह फैलताहै उस स्थानमें लाल पीले तथा पाण्डु वर्ण के फोडे होजाते हैं । तथा सुरमाके सदृश काला, मलीन,स्निग्ध अत्यन्त गरम, भारी, स्तिमित, वेदनायुक्त सूजनयुक्त, गंभीरपाकी, निरास्रावी और शीघ्रक्लेदी होता है । उस स्थानका मांस स्विन्न, क्लिन्न और सडा हुआ सा होजाता है । इसमें थोडा २ दर्द होता है और हाथसे रगडने पर फटजाता है। अधिक रगडने पर इसमें कीचकी तरह उंगली गढजाती है । धीरे धीरे इसमें से सडा हुआ दुर्गन्धित मांस निकलने लगता है और भीतर की नस, स्नायु आदि दिखाई देने लगतीहैं, इसमें मुर्देकी सी गंध आने लगतीहै, इससे संज्ञा और स्मरण शक्ति का नाश होजाता है ॥ यह कर्दमवीसर्प कहलाताहै , यह रोग असाध्य होता है ॥

ग्रन्थिविसर्पकेलक्षणादि ।

स्थिरगुरुकठिनमधुरशीतस्निग्धान्नपानाभिष्यन्दिसेविनामव्यायामासेविनामप्रतिकर्म्मशालिनांश्लेष्मावायुश्चप्रकोपमापद्येतेतावुभौदुष्टप्रवृद्धौअतिबलामदूष्यद

ष्यंविसर्पायकल्पते। तत्रवायुःश्लेष्माणा विवद्धमार्गस्तमेवश्लेष्माणमनेकधाभिन्द न्क्रमेणग्रन्थिमालांकृच्छ्रपाकसाध्यांक फाशयेसंजनयत्युत्सन्नरक्तस्यवाप्रदूष्यर क्तंसिरास्नायुमांसत्वगाश्रितंग्रन्थिवीस- र्पंकुरुतेतीव्ररुजाग्रन्थीनांस्थूलानामणू नांदीर्घवृत्तरक्तानांतदुपतापाज्ज्वराती सारकासहिकाश्वासशोषप्रमेहवैवर्ण्यारो चकाविपाकच्छर्दिमूर्च्छांगभंगानिद्रारति संसदनाद्याःप्रादुर्भवन्त्युपद्रवास्तैरुपद्रवै रुपद्रुतःसर्वकर्म्मणांविषयमतिपतितोऽवि वर्ज्जनीयोभवतीतिग्रन्थिवीसर्पः ॥

अर्थ—स्थिर, भारी, कठोर, मधुर, शीतल और स्निग्ध, अन्नपान के सेवनसे अभिष्यन्दी द्रव्योंके सेवनसे, शारीरिक परिश्रम न करनेसे, संचित दोषोंको वमन विरेचनादि द्वारा दूर न करनेसे कफ और वायु प्रकुपित होजाते हैं, ये दोनों दूषित होकर बृद्धि पाकर अत्यन्त बलवान् होजाते हैं तब रक्तादि दूष्य धातुओं को दूषित करके विसर्परोग को उत्पन्न करते हैं। उससमय वायु का मार्ग कफके द्वारा रुक जाने पर यह वायु उसी कफके अनेक भाग करदेताहै और कफाशय में कृच्छ्रपाक और कृच्छ्रसाध्य ग्रन्थमाला को उत्पन्न करदेती है अथवा कफ और वायु ये दोनों ही उत्सन्न रक्तवाले मनुष्य के रक्तको दूषित करके सिरा, स्नायु, मांस और त्वचामें गांठदार विसर्पको उत्पन्न करतेहैं। इन गाठोंमें बड़ी तीव्र वेदना होतीहै, ये गांठें मोटी, छोटी, दीर्घ, गोल होतीहै, इनमें उपताप होनेसे ज्वर, अतीसार, खांसी, हिचकी, श्वास, शोष, प्रमेह, विवर्णता, अरुचि, अविपाक, वमन मूर्च्छा, अंगभंग, निद्रा, अरति, ग्लानि आदि उपद्रव उत्पन्न होतेहैं, उन उपद्रवोंसे अभिभूत होकर रोगी सम्पूर्ण कर्म्मोंके करने के अयोग्य होजाताहै, इस कारणसे ग्रन्थिवीसर्पकी *चिकित्सा करना वर्जनीय है।*

रोग और उपद्रव में अन्तर।

उपद्रवस्तुखलुरोगान्तरकालजोरागाश्र योरोगएवस्थूलोऽणुर्वारोगात्पश्चाज्जा यतेत्युपद्रवसंज्ञः ॥ तत्रप्रधानोव्याधि र्व्याधेर्गुणीभूतउपद्रवस्तस्यप्रायःप्रधान- प्रशमेप्रशमोभवति । सतुपीडाकरतरोभ वति। पश्चादुत्पद्यमानोव्याधिःपरिक्लि ष्टशरीरत्वात्तस्मादुपद्रवंत्वरमाणोऽभिवा धेत ॥

अर्थ—उपद्रव रोग के उत्पन्न होने से पीछे उसी रोगका आश्रय लेकर उत्पन्न होता है। यह रोग स्थूल वा सूक्ष्मरूप में रोग से पीछे उत्पन्न होता है इसीसे इसे उपद्रव कहते हैं। यहां पहली व्याधि प्रधान होती है और उपद्रव व्याधि का गुणीभूत होता है अर्थात् व्याधिके अनुसार ही उपद्रव में गुण होते हैं। इस उपद्रव की शान्ति प्रधान रोग की शान्ति के साथ होजाती है। शरीर में अत्यन्त क्लेश होने से यह व्याधि पीछे उत्पन्न होती हैं,परन्तु प्रधान व्याधिसे भी अधिक क्लेशकारक होतीहै अतएवअत्यन्त शीघ्रता से उपद्रवोंके शान्ति का उपायकरे।

सान्निपातिकविसर्प ।

सर्वायतनसमुत्थंसर्वलिङ्गव्यापिनंसर्वधात्वनुसारिणमाशुकारिणंमहात्ययिकमिति सन्निपातवीसर्पमचिकित्स्यंविद्यात् ।

अर्थ—सम्पूर्ण कारणों से उत्पन्नहुआ सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त, संम्पूर्ण धातुओं का अनुसरणकर्ता, शीघ्रकारी, महाउपद्रवों का करनेवाला संनिपातिक विसर्प दुश्चिकित्स्य होताहै ॥

विसर्पोंका साध्यासाध्यवर्णन ।

तत्रवातपित्तश्लेष्मनिमित्तावीसर्पास्त्रयःसाध्याभवन्त्यग्निकर्दमाख्यौपुनरनुपसृष्टमर्म्मणिअनुपहतेवासिरास्नायुमांसक्लेदेसावधारणाक्रियाभिरुपायैःतावेवाभ्यस्यमानौप्रशान्तिमापद्येयातामनादरोपक्रान्तंपुनस्तयोरन्यतरोहन्याद्देहमाश्वेवाशीविषवत् । तथाग्रन्थिवीसर्पमजातोपद्रवमारभेताचिकित्सितुमुपद्रवोपद्रुतन्त्वेनंपरिहरेत् । सन्निपातजसर्वधात्वनुसारित्वादाशुकारित्वाद्विरुद्धोपक्रमत्वाच्चासाध्यंविद्यात् । तत्रसाध्यानांसाधनमनुव्याख्यास्यामः ॥

अर्थ -- इन सब विसर्पों में से बातज, पित्तज और कफज ये तीन विसर्प साध्यहोते हैं, अग्नि विसर्प और कर्दम विसर्प मर्मस्थान से विना मिले होने पर और सिरा स्नायु, मांस और क्लेद के अनुपहत होने पर साधारण क्रियाओं के द्वारा चिकित्सा किये जाने पर शान्त होजातेहैं, तथा प्रयत्नपूर्वक चिकित्सा न किये जाने पर आशीविषकी तरह देह को शीघ्रही नष्टकर देतेहै । ग्रन्थिवीसर्प की चिकित्सा करने का प्रारम्भ उस समय करै जो उस में उपद्रव उत्पन्न न हुए हों। उपद्रवोंके उत्पन्न होनेपर चिकित्सा करना छोड देवै सन्निपातज विसर्प भी असाध्य होताहै क्योंकि वह सर्वधात्वानुसारी, आशुकारी होताहै और इसकी चिकित्सा भी विरुद्ध उपायों से करनी पडती है ॥ अब हम साध्य वीसर्पों की चिकित्साका वर्णन करेंगे ।

विसर्प की साधारण चिकित्सा ।

लंघनोल्लेखनेशस्तौतिक्तकानांचसेवनम् । कफस्थानगतेसामेरूक्षशीतैःप्रलेपयेत् ॥ पित्तस्थानगतेऽप्येतत्सामेकुर्य्याच्चिकित्सितम् । शोणितस्यावसेकञ्चविरेकंच विशेषतः ॥ मारुताशयसम्भूतेऽप्यादितःस्याद्विरूक्षणम् । रक्तपित्तान्वयेऽप्यादौस्नेहनंनहितंमतम् ॥ वातोल्वणेतिक्तघृतंपैत्तिकेचप्रशस्यते । लघुदोषेमहादोषेपैत्तिकेस्याद्विरेचनम्॥ नघृतंवहुदोषायदेयंयन्नविरेचयेत् । तेनदोषोह्युपस्तब्धःत्वङ्मांसरुधिरंपचेत् ॥ तस्माद्विरेकमेवादौशस्तंविद्याद्विसर्पिणः । रुधिरस्यावसेकंचतद्ध्यस्याश्रयसंज्ञितम्॥ इतिवीसर्पानुत्पोक्तंसमासेनचिकित्सितम् । एतदेवपुनःसर्वंव्यासतःसंप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—आमयुक्त दोषके कफस्थानमें जाने पर लंघन, वमन और तिक्त द्रव्योंका सेवन हितहै तथा जिस स्थानपर विसर्प हुआहो वहां रूक्ष और शीतल द्रव्योंका लेप करै । उसी आमसंयुक्त दोषके पित्ताशयमें जाने

पर पूर्वोक्त क्रमका अवलम्बन उचितहै, इस रोगमें फस्त खोलना और दस्त कराना ये दो बातें अधिक कर्त्तव्य हैं। वाताशय सम्भूत रोगोंमें तथा रक्तपित्तान्वय में उत्पन्न होनेवाले रोगों में प्रथमही से रूक्षण क्रिया करना उचितहै, इसमे स्नेहन क्रिया अहित होती है वाताधिक्य विसर्पमें तथा अल्पदोष वाले पित्तज विसर्प में तिक्त घृत हित हैं, एवं महादोषों से युक्त पैत्तिक विसर्प में विरेचन उत्तम होताहै। जो घृत विरेचनकर्त्ता न हो वह बहुत दोषोंसे युक्त विसर्प रोगी को देना उचित नहीं हैं क्योंकि इस घृत के देने से दोष रुककर त्वचा, मास और रुधिर में पकावट पैदा करदेते हैं, अतएव विसर्प रोगीको सबसे प्रथम विरेचन देना चाहिये। पीछे रक्तमोक्षणभी करातारहै क्यों कि रक्तही विसर्पका प्रधान स्थानहै। यह सक्षेपमे विसर्प की चिकित्सा वर्णन कीगई है। अब हम यहां से विसर्परोगों की चिकित्साका विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे।

कफपित्तविसर्प की चिकित्सा।

मदनंमधुकंनिम्बवत्सकफस्यफलानिच। वमनंसंप्रदातव्यंवीसर्पेकफपित्तजे॥ पटोलपिचुमर्दाभ्यांपिप्पल्यामदनेनच। वीसर्पेवमनशस्ततथाचेन्द्रयवैःसह॥ यांश्च योगान्प्रवक्ष्यामिकल्पेषुकफपित्तिनाम्। विसर्पिणांप्रयोज्यास्तेदोपनिर्हरणाःपरम्॥ मुस्तनिम्बपटोलानाञ्चन्दनोत्पलयोरपि। शारिवामलकोशीरंमुस्तानांवाविचक्षण॥ पाययेत्कषायान्हिसिद्धान्वीसर्पनाशनान्। किराततिक्तंरोध्रंदुरालभांसचन्दनम्॥ नागरंपद्मकिञ्जल्कमुत्पलसबिभीतकम्॥ मधुकंनागपुष्पंचदद्याद्वीसर्पशान्तये॥ प्रपुण्डरीकंमधुकपद्मकिञ्जल्कमुत्पलम्॥ नागपुष्पचरोध्रचतेनैवविधिनापिबेत्॥ द्राक्षांपर्पटकंशुण्ठींगुडूचींधन्वयासकम्। निशापर्युषितंदद्यात्तृष्णावीसर्पशान्तये॥ पटोलंपिचुमर्दञ्चदार्वींकटुरोहिणीम्। यष्ट्याह्वात्रायमाणाञ्च दद्याद्वीसर्पशान्तये॥पटोलादिकषायं वा पिबेत्त्रिफलयासह। मसूरविदलैर्युक्तंघृतमिश्रमदापयेत्॥ पटोलपत्रमुद्गानांरसमामलकस्यच। पाययेत्घृतोन्मिश्रंनरंवीसर्पपीडितम्॥

अर्थ—कफ पित्तसे उत्पन्न हुए विसर्पमें मैनफल, मुलहटी, नीम, इन्द्रजौ इनका क्काथ पान कराके वमन करावै। अथवा परवल, नीम, पीपल, मैनफल, और इन्द्रजौ इनका क्काथ पान कराके वमन करावै कल्पस्थानमें कफपित्त रोगियोंके लिये जो जो प्रयोग वर्णन किये जायगे वे सब विसर्प रोगमें प्रयोजनीय होते हैं, ये प्रयोग असन्य दोषनिःसारकहैं। मोथा, नीम और परवल अथवा रक्तचन्दन और नीलकमल अथवा शारिवा, आंवला, उसीर और मोथा। इन तीन योगोंके क्काथ का पान करानेसे विसर्प दूर होजाताहै, ये अनुभूत प्रयोगहै।

अथवा चिरायता, लोध, जवासा, रक्तचन्दन, सोंठ, नागकेशर, नीलकमल, बहेड़ा मुलहटी, नागपुष्प इन का क्काथ विसर्पनाशक होताहै।

पुण्डरियाकाठ, मुलहटी, पद्मकेशर, नील कमल, नागपुष्प और लोध इनके क्वाथ को पूर्वोक्त विधिसे विसर्प रोगी को देवै। अथवा दाख, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय, जवासा इनको रात्रि में भिजोकर प्रातःकाल पान करै तो तृषा और विसर्प दूर होवें। अथवा परवल, नीम, दारुहलदी कुटकी मुलहटी त्रायमाणा, इनका क्वाथ विसर्प की शान्ति के निमित्त देवै

अथवा पटोलादि क्वाथ का त्रिफला के साथ पान कराने से विसर्प की शान्ति होती है। अथवा घी मिलाकर मसूरकी दाल देवै अथवा परवल, मूंग और आंवले के रसमें घृत मिलाकर उस मनुष्यको पान करावै जो विसर्प रोग से पीडित हो।

विसर्पनाशकअन्यप्रयोग ।

यच्चसर्पिर्महातिक्तंपित्तकुष्ठनिबर्हणम् । निर्दिष्टंतदपिमाज्ञोदद्याद्वीसर्पशान्तये ॥ त्रायमाणाघृतंसिद्धंगौल्मिकेयदुदाहृतम्। वीसर्पाणांप्रशान्त्यर्थंदद्यात्तदपिबुद्धिमान् त्रिवृच्चूर्णंसमालोड्यसर्पिषापयसातथा घर्माम्बुनावासंयोज्यामृद्वीकानांरसेन वा । विरेकार्थंप्रयोक्तव्यंसिद्धंवीसर्पनाशनम् ॥ त्रायमाणाश्रृतंवापिपयोदद्याद्विरेचनम् ॥ त्रिफलारससंयुक्तंसर्पिस्त्रिवृतयासह । प्रयोक्तव्यंविरेकार्थंवीसर्पज्वरनाशनम् ॥ रसमामलकानांवाघृतमिश्रंप्रदापयेत्। सएवगुरुकोष्ठायत्रिवृच्चूर्णयुतोहितः ॥ दोषेकोष्ठगतेभूयएतत्कुर्याच्चिकित्सितम् । शाखादुष्टेतुरुधिररक्तमेवादितोहरेत्॥ भिषग्वातान्वितंरक्तं विषाणेनाभिनिर्हरेत् । पित्तान्वितंजलौकाभिःकफान्वितमलाबुभिः ॥

अर्थ....पित्त कुष्ठनाशक जो महातिक्तक घृत वर्णन कियागयाहै वह घृत विसर्प के नष्ट करनेमें भी अत्यन्त उपयोगीहै . गुल्मरोग में जो त्रायमाणादि घृत वर्णन कियागयाहै वह भी विसर्पकी शान्तिके निमित्त उत्तमहै। निसोथके चूर्ण को घीके साथ, दूधके साथ, उष्णजलके साथ अथवा दाखके रसके साथ विसर्पको दूर करनेके लिये पान करावै। अथवा त्रायमाणा डालकर औटाया हुआ दूध विरेचनके लियेदेवै । त्रिफलाके क्वाथके साथ अथवा निसोथके साथ घृत का प्रयोग करने से विरेचनके द्वारा विसर्प जनित ज्वर जाता रहताहै । अथवा आंवले के क्वाथमें घृत मिलाकर देवै और जो रोगीका कोठा कडाहो तो उसीमें निसोथका चूर्ण और मिलादेवै। दोषोंके कोष्ठगत होनेपर यही चिकित्सा फिर करै जो रुधिर शाखामें दूषित हुआहो उसे प्रथमही फस्त लगाकर निकाल देवै। वैद्य को उचितहै कि वात संसृष्ट रुधिरको सीगी लगाकर निकाले, पित्तसंसृष्ट को जोकों से और कफसंसृष्टको अलाबू द्वारा निकालै ॥

यथासन्नंविकारस्यव्यधयेदाशुवासिनाम् त्वङ्मांसस्नायुसंक्लेदोरक्तक्लेदाद्धिजायते ॥ अन्तःशरीरेसंशुद्धेदोषत्वङ्मांससंश्रिते । आदितःस्वल्पदोषाणांक्रियावाह्याप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—विसर्पके पासवाली नसमें नश्तर

लगाकर फस्त खोलें जिससे रुधिरमें क्लेद-ता न होनेपावे क्योंकि रक्तमें क्लेदताके होने ही से त्वचा, मांस और स्नायुमें क्लेदता उत्पन्न होती है। इन उपायोंके करने से जब शरीर भीतरसे शुद्ध होजाताहै और दोष केवल त्वचा और मांस में रहजातेहैं तब दोष बहुत सूक्ष्म रहजाते हैं उस समय बाह्यक्रिया की जाती है, अब उन बाह्य उपायोंको वर्णन करते हैं।

वातपित्तजविसर्पपरमलेप

उदुम्बरत्वङ्मधुकंपद्मकिञ्जल्कमुत्पलम्। नागपुष्पंप्रियंगुश्चप्रदेहःसघृतोहितः॥ न्यग्रोधपादास्तरुणाःकदलीगर्भसंयुताः। विसग्रन्थिःसलेपःस्यात्शतधौतघृताप्लुतः॥ कालीयंमधुकंहेमवल्यंचन्दनपद्मकम्। एलामृणालंफलिनीप्रलेपःस्याद्घृताप्लुतः। शाद्वलश्चमृणालश्चशंखचन्दनमुत्पलम्। वेतसस्यचमूलानिप्रदेहःस्यात्सतण्डुलम्। शारिवापद्मकिञ्जल्कमुशीरंपद्मकोत्पलम् मञ्जिष्ठाचन्दनंरोध्रमभयाचप्रलेपनम्॥ नलदश्चहरेणुश्चरोध्रंमधुकपद्मकौ। दूर्वा सर्जरसश्चैवसघृतंस्यात्प्रलेपनम्॥ यावकाःशक्तवश्चैवसर्पिषासहयोजिताः। प्रदेहोमधुकंवीरासघृतायवशक्तवः॥ बलामुत्पलशालूकंवीरामगुरुचन्दनम्। कुर्य्यादालेपनंवैद्योमृणालञ्चविसान्वितम्॥ यवचूर्णंसमधुकंसघृतञ्चप्रलेपनम्॥ हरेणवोमसूराश्चसमुद्गाःश्वेतशालयः। पृथक्पृथक्प्रदेहास्युःसर्वेयासर्पिषासह॥ पद्मिनीकर्दमःशीतोमौक्तिकं पिष्टमेववा। शंखःप्रवालःशुक्तिर्वागैरिकोवाघृताप्लुतः॥ प्रपुण्डरीकंमधुकंबलाशालूकमुत्पलम्। न्यग्रोधपत्रंदुग्धीकासघृतंस्यात्प्रलेपनम्॥ विसानिचमृणालाश्चसघृताचकशेरुका। शतावर्य्योविदार्य्याश्चकन्दौधौतघृताप्लुतौ॥ शवालंनलमूलानिगोजिह्वावृषकर्णिका। इन्द्राणीशाकंसघृतंशिरीषत्वग्बलाघृतम् न्यग्रोधोदुम्बरप्लक्षवेतसाश्वत्थपल्लवैः। त्वक्कल्कैर्बहुसर्पिष्कैःशीतैरालेपनंहितम्॥ प्रदेहाःसर्वएवैतेवातापित्तोल्वणेशुभाः। सकफेतुमवक्ष्यामिप्रलेपनपरान्शुभान्॥

अर्थ—गूलरकी छाल, मुलहटी, पद्मकेशर नीलकमल, नागपुष्प, प्रियंगु इनको, पीसकर घी में सानकर लेप करे। बडकी नवीन डाढीं, केलेका गूदा, कमलनालकीजड इनको सौवार धुलेहुए घी में मिलाकर लेप करे। अथवा कालीय (पीतचन्दन) मुलहटी, धतूरा, वल्या, चन्दन, पद्माख, इलायची कमलनाल और प्रियंगु इनको घृतमें सानकर लेप करे। अथवा दूब, कमलनाल शंखकीभस्म, रक्तचन्दन, नीलकमल, वेत कीजड और वायविडंग इनको पीसकर लेप करे अथवा शारिवा, पद्मकेशर, खस, पद्माख नीलकमल, मजीठ, रक्तचन्दन, लोध, हरड इनको पीसकर लेप करे। अथवा खस, हरेणु, लोध, मुलहटी, पद्माख, दूब, राल, और घी इनका लेप करे, अथवा जौ के सत्तूको घीमें सानकर लेप करे। अथवा मुलहटी, क्षीरकाकोली, घी और जौका सत्तू इनका

लेप करे अथवा खरैटी, नीलकमल, शालूक (कुमुदादिकी जड), क्षीरकाकोली, अगर, लालचन्दन, अथवा खस और लालचन्दन, इनका लेप करे, अथवा जौका चून, मुलहटी और घी का लेप करे। अथवा हरेणु, मसूर, मूंग, सफेदचाँवल इनको पृथक २ वा सबको मिलाकर घी में सानकर लेपकरै अथवा कमलकीजड की ठंडीकाँच, अथवा मोतियोंको जलमें पीसकर अथवा शंख,मूंगा सीपी वा गेरूको घीमें सानकर लेप करै। अथवा पुण्डरिया काठ, मुलहटी, खरैटी, शालूक, उत्पल, बडके पत्ते और दुद्धी इन को घीमें सानकर लेप करै। अथवा विस, मृणाल और कसेरूको घीमें सानकर लेप करै अथवा शतावरी और विदारीकंद इनको धुलेहुए घृतमें सानकर लेप करै। सिवार (तलाव के जलकी ऊपरवाली काई), सरकंडेकी जड, गोजिह्वा, वृषकर्णी और इन्द्राणीके पत्ते इनको घीमें सानकर लेप करै अथवा सिरसकी छाल और खरैटी को घीमें सानकर लेपकरै। अथवा वड, गूलर, पाकड, वेत, और पीपलके पत्ते और छाल इनको पीसकर बहुतसे घीमें सानलेवे और ठंडे २ का लेप करै तो विसर्परोग दूर हो जाते हैं।....ये जो ऊपर सम्पूर्ण लेप वर्णन किये गये हैं वे वातपित्तकी अधिकता वाले विसर्प में हितकारी होते हैं। अब हम वात कफ में उपयोगी लेपोंका वर्णन करेंगे॥

वातकफविसर्पमें लेप।

त्रिफलापद्मकोशीरंसमङ्गांकरवीरकम्। नलमूलान्यनन्तंचमदेहमुकल्पयेत्॥ खदिरंसप्तपर्णञ्चमुस्तमारग्वधंधवम्। कुरण्टकंदेवदारुदद्यादालेपनंभिषक्॥ आरग्वधस्यपत्राणित्वचंश्लेष्मान्तकस्यच-इन्द्राणीशाकंकाकाह्वाशिरीषकुसुमानि च। प्रपुण्डरीकंह्रीवेरंदार्वीत्वङ्मधुकंबलाम्॥ पृथगालेपनंकुर्य्याद् द्वन्द्वशःसर्वशोऽपिवा। प्रदेहाःसर्वएवैतेदेयाःस्वल्पघृतायुताः। वातपित्तोल्वणेयेतुप्रदेहास्तेघृताधिकाः॥ घृतेनशतधौतेनप्रदिह्यात्केवलेनच॥

अर्थ—त्रिफला, पद्माख, उशीर, लज्जालु कनेरकी जड, सरकंडे की जड, अनन्तमूल इनका लेप बनाकर लगावै। अथवा खैरसार, सप्तपर्णी, मोथा, अमलतास, धौं की छाल, कुरण्टक और देवदारु इनका लेप करे। अथवा अमलतासके पत्ते, बहेडे की छाल, इन्द्राणी शाक, मकोय, सिरस के फूल पुण्डरियाकाठ, हाऊबेर, दारुहल्दी की छाल मुलहटी, खरैटी, इनमेंसे एक २ का वा दो २ का वा सबका मिलाकर लेप करै इन लेपोंमें घी बहुत थोडा मिलाया जाता है, वातापित्त के विसर्प में जो लेप कियेजाते हैं उनमें घी अधिक होता है। केवल सौ वार धुलेहुये घीका लेपकरै।

विसर्पकीअन्याचिकित्सा।

घृतमण्डेनशीतेनपयसामधुकाम्बुना। पंचवल्ककषायेणसेचयेच्छीतलेनवा॥ वातासृक्पित्तबहुलं विसर्पंबहुशोभिषक्। सेचनास्तेप्रदेहा येतएवघृतसाधनाः॥

तेचूर्णयोगाविसर्पचूर्णानामवचूर्णनाः ।
दूर्वास्वरसासिद्धंचघृतंस्याद्व्रणरोपणम्॥
दार्वीत्वङ्मधुकंरोध्रंकेसरञ्चावचूर्णनम्।
पटोलःपिचुमर्दस्तुत्रिफलामधुकोत्पले ॥
एतत्प्रक्षालनंसर्पिर्व्रणचूर्णप्रलेपनम् ।

अर्थ....जो विसर्प पित्त बहुल और वात रक्तसे उपद्रुतहै उसपर घृतमण्ड, शीतल दूध, जल मिलाहुआ शहत अथवा पंचवल्क के ठंडे क्वाथ द्वारा सेचन करें। जिन प्रयोगोंका घीमें लेप कियाजाता है, उन्हीं द्रव्योंका क्वाथ सेचनमें कामआता है। उन्हीं द्रव्योंको पीसकर विसर्पपर बुर्की दीजाती है दूबके रसमें सिद्ध कियाहुआ घी लगाने से व्रण पुरजाताहै। अथवा दारुहल्दी की छाल मुलहटी, लोध, और केसर इनको पीसकर विसर्पपर बुरकें अथवा परवल, नीम, त्रिफला, मुलहटी नीलकमल, इनका क्वाथ बनाकर विसर्पको धोवैं। इन्हीं द्रव्यों के घृत चूर्ण प्रलेपादि नियमों को काममें लावैं

लेपलगाने की विधि।

प्रदेहाःसर्वएवैतेकर्त्तव्याःसंप्रसादनाः ॥
क्षणेक्षणेप्रयोक्तव्याःपूर्वमुद्धृत्यलेपनम्।
नचैनेघृतेपूर्वंप्रदेहाबहुशोधनाः ॥ देयाःप्रदेहाःकफजेपर्योधानोद्धृतेघनाः ।
त्रिभागांगुष्ठमानःस्यात्प्रलेपःकल्कपेषितः
नातिस्निग्धोनरूक्षश्चनपिण्डोनद्रवःसमः।
नचपर्युषितंलेपंकदाचिदवचारयेत् ॥ न चतेनैवलेपनपुनर्जातुप्रलेपयेत् । क्लेदंची सर्पशूलानिसोष्णभावात्प्रवर्त्तयेत् ॥
लेपोह्युपरिपट्टस्यकृतःस्वेदयतिव्रणम् ।
स्वेदजाःपिडकास्तस्यकण्डूश्चैवोपजायते॥
उपर्युपरिलेपस्यलेपोयश्चावचार्य्यते ।
तानेवदोपान्जनयेत्पट्टस्योपरियान्कृतः॥
अतिस्निग्धोऽतिद्रवश्चलेपोयश्चावचार्य्यते।
त्वचिनश्लिष्यतेसम्यङ्नदोषंशमयत्यपि
तन्वालिप्तंनकुर्वीतसंशुष्कोह्यपुटायते ॥
नचौषधिरसोव्याधिंप्राप्नोत्यपिचशुष्य
ति।तन्वालिप्तेनयेदोषास्तानेवजनयेद्भृश
म् । संशुष्कःपीडयेद्व्याधिंनिस्नेहोह्यव
चारितः ॥

अर्थ—ये सव लेप चित के प्रसन्नकर नेवाले हैं, पाहिले लेपको छुडा छुडाकर थोडी २ देरमें फिर नये करने चाहियें ॥ पुराने घी में मिलाहुआ लेप वहुत शोधक होताहै ॥ कफज विसर्प में पहिले लेपको छुडाकर गाढ़ा २ लेपकरें, । औषधों को पीसकर जौभर मोटा लेपकरै ॥ लेप अत्यन्त चिकना, रूखा, पिण्डित और द्रव नहो सव जगह समान हो, वासी लेप को कभी न लगावै ॥ जिसका एकवार लेप किया है उसका फिर लेप न करें क्योंकि वह उष्ण भाव से क्लेद, विसर्प और शूलरोगों को उत्पन्न करताहै,व्रणके ऊपर पट्टी धरकर लेप करनेसे व्रण में स्वेदन होता है । उन पसीनोंसे फुन्सियां और खुजली उत्पन्न होजाती हैं ॥ लेप के ऊपर लेप करनेसे भी वही दोष उत्पन्न होते हैं जो वस्त्रके ऊपर लेप करने से होते हैं ॥ जो लेप वहुत चिकना और वहुत पतला किया जाता है वह त्वचा में अच्छी तरह नहीं लगता है और न उससे दोष शान्त होते हैं ॥

पतला लेप कभी न करना चाहिये क्योंकि वह सूखकर पपडा जाता है ॥ इस लेप की औषध का रस व्याधि के पास भी नहीं पंहुंचने पाता और पहिलेही सूखजाता है । पतले लेपके करनेसे पूर्वोक्त दोष बहुत वढ जाते हैं । विना चिकनाईका लेप सूखकर व्याधिको अत्यन्त पीड़ित करता है ॥

विसर्पमें पथ्यापथ्य ॥

अन्नपानानिवक्ष्यामिवीसर्पाणांनिवृत्तये लंघितेभ्योहितोमन्थोरूक्षःसक्षौद्रशर्करः मधुरःकिञ्चिदम्लोवादाडिमामलकान्वितः॥सपरूपकमृद्वीकःसखर्जूरःश्रृताम्बुना। तर्पणंयवशालीनांसस्नेहावावलेहिका ॥ जीर्णेपुराणशालानांयूपैर्भुञ्जीतभोजनम् मुद्गान्मसूरांश्चणकान्यूपार्थमुपकल्पयेत् । अनम्लान्दाडिमाम्लान्वापटोलामलकैः सह ॥ जाङ्गलानाञ्चमांसानांरसांस्तस्योपकल्पयेत् । रूक्षान्परुपकद्राक्षादाडिमामलकान्वितान् ॥ रक्ताःश्वेतामहाह्वाश्चशालयःपष्टिकैःसह ॥ भोजनार्थे प्रशस्यन्तेपुराणाःसुपरिस्नुताः ।पयोगोधूमसात्म्यानांसात्म्यान्येवमदापयेत् । येपांनात्युचितःशालिर्नरायेचकफाधिकाः

अर्थ—अब हम विसर्पकी शान्तिके निमित्त अन्नपानकी विधि वर्णन करते हैं विसर्प रोगीको लंघन करानेके पश्चात् शहत और चीनीके साथ रूक्ष मन्थ देवै । अथवा उसी मन्थ में अनार और आंवले की खटाई देकर वा कुछ मिष्ट करके देवै । फालसा किसमिस, खजूर इनके साथ में औटाये हुये जलके साथ तर्पण देवै । अथवा जौ और शाली चांवलों का अवलेह घृत मिला कर देवै । इनके पचनेपर पुराने चांवलोंका भात यूपके साथ भोजनमें देवै, मूंग, मसूर चना इनका यूप विना खटाईका अथवा अनारकी खटाई डालकर परवल और आंवलेके साथ देवै । जांगल पशुओंका मांस रस विना चिकनाई डाले फालसे, दाख, अनार और आंवले डालकर सेवन करावै, भोजनके लिये लाल चांवल, सफेद चांवल,महाशालि, साठी चांवल, इनको उवालकर अच्छीतरह मांढ निकाल कर देवै परन्तु ये पुराने होने चाहियें । जिस रोगीको दूध और गेंहूं सात्म्यहों उनको ये ही देवै, जिनको शालीचांवल सात्म्य नहीं है और जिनको कफकी आधिकताहै उनको दूध और गेहूंदेवै

विदाहीन्यन्नपानानिविरुद्धानिचवर्जयेत् । क्रोधव्यायामसूर्य्याग्निप्रवातस्वपनं दिवा ॥ कुर्य्याचिकित्सतान्यस्मात्शीतमायाणिपैत्तिके ॥ रूक्षमायाणिकफजे स्नैहिकान्यनिलात्मके । वातपित्तप्रशमनमग्निवीसर्पणेहितम् ॥ कफपित्तप्रशमनं प्रायःकर्दमसंज्ञिते ।

अर्थ—विदाही और विरुद्ध अन्नपान का परित्याग करदेना उचितहै, क्रोध भी त्याग कर देवै । पैत्तिक विसर्पमें शीत प्राय चिकित्सा करै, कफज विसर्पमें रूक्षप्राय और वातज विसर्पमें स्निग्धप्राय चिकित्सा करै । अग्निविसर्पमें वातपित्त को शमन करनेवाली औषधी देवै । कर्दम विसर्प में प्रायः कफ पित्तनाशक औषधियोंका प्रयोग करै ॥

ग्रन्थिविसर्प में चिकित्सा ।

रक्तपित्तोत्तरंदृष्ट्वाग्रन्थिवीसर्पमादितः ॥ रूक्षैर्लंघनैःसेकैःप्रदेहैःपाञ्चवाल्किकैः । शिरामोक्षैर्जलौकाभिर्वमनैःसविरेचनैः ॥ घृतैःकषायतिक्तैश्चकालज्ञैःसमुपाचरेत् । ऊर्ध्वञ्चाधश्चशुद्धायरक्तेचाप्यवसेचिते॥ वातश्लेष्महरंकर्मग्रन्थिवीसर्पिणेहितम् ॥ उत्कारिकाभिरुष्णाभिरुपनाहःप्रशस्यते॥ स्निग्धाभिर्वेशवारैर्वाग्रन्थिवीसर्पशूलिनः दशमूलोपसिद्धेनतैलेनोष्णेनसेचयेत् ॥ सुखोष्णयाप्रदिह्याद्वापिष्टयाकृष्णगन्धया । शुष्कमूलककल्केननक्तमालत्वचापि वा ॥ विभीतकस्यवाग्रन्थिकल्केनोष्णेनवापिवेत् । बलांनागबलांपथ्यांभूर्जग्रन्थिविभीतकम् । वंशपत्राण्यग्निमन्थंकुर्य्यात्ग्रन्थिप्रलेपनम् ॥ दन्तीचित्रकमूलत्वक्सौधार्कपयसीगुडः ॥ भल्लातकास्थिकासीसंलेपोभिन्द्याच्छिलामपि । वहिर्मार्गस्थितंग्रन्थिंकिंपुनःकफसम्भवम् ॥

अर्थ—ग्रन्थिवीसर्पमें जो रक्तपित्तकी अधिकता होवे तौ प्रथमही से रूक्षक्रिया लंघन, पंचवल्कल के काथका परिषेक, प्रदेह, फस्तखोलना, जोंक लगाना, वमन, विरेचन, कषाय और तिक्त औषधियों से सिद्ध कियाहुआ घी देवै । तथा इस रोग में वमन विरेचन और फस्त खोलकर शुद्ध करने के पश्चात् बातकफ नाशक क्रियाका अवलम्बन करना हितहै । गरम २ लुपडी और उपनाह भी हितकारी होतेहैं । जो यह रोग शूलयुक्त हो तौ स्निग्ध वेशवार का प्रयोग करै और दशमूलसे सिद्ध कियेहुए तेलद्वारा परिषेचन करै ॥ अथवा सहजने की छालको पीसकर सुहाते हुए गरम गरम का लेप करै, अथवा सूखी मूली या कंजा की छाल को पीसकर लेप करै अथवा बहेडेके कल्कको कुछ गुनगुना करके लेप करै अथवा खरैटी, नागवला, हरड, भोजपत्रकी गांठ, बहेडा, बांसके पत्ते, अरनी इन का ग्रन्थि विसर्प पर लेप करै। अथवा दन्ती चीते की छाल, सेंहुड और आक का दूध गुड, भिलावे की गुठली, कसीस इनका लेप करनेसे शिला भी टूट जातीहै तब बाहरवाली कफकी गांठ के भिन्न होजानेमें क्या संदेह है ।

चिरकलीन ग्रन्थिकी चिकित्सा

दीर्घकालस्थितंग्रन्थिंभिन्द्याद्भेषजैरिमैः मूलकानांकुलत्थानांयूषैः सक्षारदाडिमैः। गोधूमान्नैर्यवान्नैर्वासशीधुमधुशर्करैः । सक्षौद्रैर्वारुणीमण्डैर्मातुलुङ्गरसान्वितैः ॥ त्रिफलायाःप्रयोगैश्चपिप्पलीक्षौद्रसंयुतैः। मुस्तभल्लातशक्तूनांप्रयोगैर्माक्षिकस्यच ॥ देवदारुगुडूच्याश्चप्रयोगैर्गिरिजस्यच

अर्थ—नीचे लिखीहुई औषधियोंसे बहुत दिनकी उत्पन्न हुई गांठके तोडनेका उपाय करै । यथा जवाखार और अनार डालकर कुलथी या मूलीका यूष; शीधु, शहत और चीनी मिलाकर गेंहू वा जौके पदार्थ, बिजौरे का रस डालकर शहत मिलाहुआ सुरामण्ड, पीपल और शहत डालकर त्रिफलाका प्रयोग, मोथा, भिलाया और शहत ये डाल-

कर सत्तुओंके प्रयोग, देवदारु और गिलोय के प्रयोग तथा गेरूके प्रयोग। इन प्रयोगों से पुरानी गांठ टूट जाती है।

ग्रन्थिनाशक अन्य विधि।

धूमैर्विरेकैःशिरसःपूर्वोक्तैर्गुल्मभेदनैः ॥ अयोलवणपाषाणहेमताम्रप्रपीडनैः। आभिःक्रियाभिःसिद्धाभिर्विविधाभिर्बलीस्थिरः ॥ ग्रन्थिःपाषाणकठिनोयदा नैवोपशाम्यति। अथास्यदाहःक्षारेण शरैर्लोहेनवाहितः ॥ पाकिभिःपाचयित्वावापाटयित्वासमुद्धरेत्। मोक्षयेत्बहुशश्चास्यरक्तमुत्क्लेशमागतम् ॥ पुनश्चापहृतेरक्तेवातश्लेष्मजिदौषधम्। धूमोविरेकःशिरसःस्वेदनंपरिमर्दनम् ॥ अपशाम्यतिदाहेनपाटवंवाप्रशस्यते। प्रक्लिन्ने दाहपाकाभ्यांभिषक्शोधनरोपणैः। बाह्यैश्चाभ्यन्तरैश्चैवव्रणवत्समुपाचरेत्।

अर्थ—गुल्मके दूर करनेके लिये जो धूमपान, शिरोविरेचन, लोह, लवण, पाषाण सोना, तांबा और प्रपीडन पहिले वर्णनकिये गयेहैं उनका प्रयोग इस गांठके दूर करने के लिये करै। और यदि इन अनेक प्रयोगोंके करने परभी इस बलवान, स्थिर और पत्थरके समान कठोर गांठका शमन न हो तो क्षार, शर और लोहसे दग्ध करना हित है। अथवा पकाने वाली औषधों से पकाकर चीर डाले तथा इसके उत्क्लेशित हुए रक्तको वार वार निकालदेवे रुधिरके निकलनेके पीछे वातकफनाशक औषध, धूमपान, शिरोविरेचन, स्वेदन, परिमर्दन आदिका प्रयोग करै। जो गांठ दाहसे शान्त न होतो उसका चीरना हितहै। इस ग्रन्थिके दाह और पाकसे क्लिन्न होनेपर व्रण की रीतिसे बाह्य और आभ्यान्तरिक शोधन रोपणद्वारा चिकित्सा करै।

ग्रन्थिव्रणकीचिकित्सा।

कम्पिल्यकंविडङ्गानिदार्वीकारञ्जकंफलम्॥पिष्ट्वातैलंविपक्तव्यंग्रन्थिव्रणचिकित्सितम्। द्विव्रणीयोपदिष्टेनकर्म्मणा चाप्युपाचरेत् ॥ देशकालप्रमाणज्ञोव्रणग्रन्थिविसर्पवित्

अर्थ—कबीला, बायविडंग, दारुहल्दी, कंजेके फल, इनको पीसकर तैलमें पकाकर ग्रन्थिव्रण पर लगावै। तथा देशकाल और प्रमाणको जाननेवाला वैद्यद्विव्रणीय चिकित्सित प्रकरणमें कहेहुये प्रयोगों को भी इस जगह प्रयुक्त करै।

गलगण्डकीचिकित्साकाक्रम।

यएवविधिरुद्दिष्टोग्रन्थीनांविनिवृत्तये ॥ सएवगलगण्डानांकफजानांनिवृत्तये। सर्वेचगलगण्डास्तुयेकफानुगतानृणाम्॥ घृतक्षारकषायाणामभ्यासान्नभवन्तिते

अर्थ—ग्रन्थियोंके दूर करनेके लिये जो२ विधि यहां वर्णन की गईहैं, वेही कफज गलगण्ड के दूर करने में उपयोगी होती हैं। कफसे उत्पन्न हुए सब प्रकार के गलगण्ड घी, क्षार और कषाय का अभ्यास करनेसे नहीं होने पाते।

रक्तमोक्षणकी उत्कृष्टता।

यानीहोक्तानिकर्माणिवीसर्पाणांनिवृत्त

ये ॥ एकतस्तानिसर्वाणिरक्तमोक्षणमे कतः । विसर्पोनह्यसंसृष्टोरक्तपित्तेनजायते ॥ तस्मात्साधारणंसर्वमुक्तमेतच्चिकित्सितम् । विशेषोदोषवैषम्यान्नचनोक्तःसमासतः ॥ समासव्यासनिर्दिष्टांक्रियांविद्वानुपाचरेत् ॥

अर्थ....विसर्पोकी शान्तिके निमित्त जो कर्म वर्णन किये गयेहैं वे सब एक ओर हैं और रक्तमोक्षण एक ओर हैं, क्योंकि रक्त पित्तकी संसृष्टताके विना विसर्प होना ही नहींहै । इसतरह सम्पूर्ण विसर्पोंकी साधारण चिकित्सा वर्णन कीगई है । तथा दोषों की भिन्नताके कारण यह वर्णन सर्वथा संक्षिप्त भी नहीं है । इस संक्षिप्त और विस्तृत वर्णन के अनुसारही चिकित्सा करना योग्यहै ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

निरुक्तंनामभेदाश्चदोषादूष्याणिहेतवः । आश्रयोमार्गतश्चैवबीसर्पगुरुलाघवम् ॥ लिङ्गान्युपद्रवायेचयल्लक्षणउपद्रवाः । साध्यत्वंनचसाध्यानांसाधनश्चयथाक्रमम् । इतिप्रश्नयेसिद्धिमग्निवेशायधीमते ॥ उक्तंभगवताह्येतद्वीसर्पाणांचिकित्सिते ।

अर्थ....इस विसर्प चिकित्सिताध्यायमें भगवान् आत्रेयने चतुरशिरोमणि और जिज्ञासु अग्निवेश को विसर्प की निरुक्ति नामभेद, दोष, दूष्य, हेतु, आश्रय, विसर्प के मार्ग, गुरुता, लघुता, लिंग, उपद्रव, उपद्रवों के लक्षण, साध्यासाध्य वर्णन, साध्य विसर्पो की यथा क्रम चिकित्सा का वर्णन सुनाया ।

इति श्री भाषाटीकान्वितायांअग्निवेश विरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने वीसर्प चिकित्सितं नामैकादशोऽध्यायः ॥११॥

—!-*-!—

द्वादशोऽध्यायः ॥

अथातोमदात्ययचिकित्सितंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले-कि अब हम मदात्ययचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

सुरैःसुरेशसहितैर्यापुराप्रतिपूजिता । सौत्रामण्यांहूयतेयाकर्म्मभिर्याप्रतिष्ठिता ॥ यज्ञेहितायाशक्रस्यसोमानिपिबतोभृशम् नीरुजस्तमसाविष्टस्तस्माद्दुर्गात्ससुद्धृतः विधिभिर्वेदविहितैर्यायजद्भिर्महात्मभिः । दृश्यास्पृश्यामकल्प्याचयज्ञियायज्ञसिद्धये ॥ योनिसंस्कारनामाद्यैर्विशेषैर्बहुधाचया । भूत्वाभवत्येकविधासामान्यान्मदलक्षणात् ॥ यादेवानमृतंभूत्वास्वधाभूत्वापितॄंश्रया । सोमोभूत्वाद्विजातीन्यायुङ्क्तेश्रेयोभिरुत्तमैः ॥ आश्विनंयामहत्तेजोवीर्य्यसारस्वतञ्चया । वलमैन्द्रञ्चयासोमः सौत्रामण्याञ्चयामता ॥ शोकारतिभयोद्वेगनाशनीयामहावला । यामीतिर्यारतिर्यावाग्यापुष्टिर्याचानिर्वृतिः ॥ यासुरासुरगन्धर्वयक्षराक्षसमानुषैः । रतिःसुरेत्यभिहितातांसुरांविधिनापिबेत् ॥

अर्थ—जिस मदिराका अमरेश्वर इन्द्रने पूर्वकालमें पूजन कियाहै, जिसकी सूत्रामणि

हवन में आहुति दीजाती है जो वेद विहित कर्मों से प्रतिष्ठित होती है, जो सोमपान करनेवाले इन्द्रके यज्ञमें हितहै तमसाविष्ट इन्द्र जिसके पानसे निरोग तथा क्लेशसे उद्धत होगया। यज्ञमें उपयोगी यह सुरा यज्ञ की सिद्धिके लिये वेदविहित कर्मोंके द्वारा यज्ञकरनेवाले महात्माओंसे दर्शन के योग्य, छूने के योग्य, और कल्पना करने के योग्य कीजाती है। यह सुरा अनेक द्रव्यों से बनाये जाने के कारण वा अनेक नाम भेद से अनेक प्रकारकी होती है परन्तु 'नशा होना, यह एक साधारण धर्म सबमें है इस से अनेक प्रकारके मद्य भी एकही प्रकारके माने जाते हैं। यह सुरा अमृतरूप होकर देवताओंकी, स्वधा होकर पित्रीश्वरों की और सोम होकर द्विजन्माओंकी शोभा और कान्ति को बढाती है। यह सुरा स्वर्ग वैद्य अश्विनीकुमार का महत्तेज है, सरस्वतीका वीर्य है, इन्द्रका बलहै और सूत्रामणि यज्ञ में सोमके सदृशहै। यह सुरा शोक, अरति भय, उद्वेगका नाश करनेवाली है, अत्यन्त बलको बढाने वाली है, यही सुरा, प्रीति, रति, वाणी, पुष्टि और निवृत्ति की साक्षात् मूर्तिहै। जिस सुराको देवता असुर, गन्धर्व यक्ष, राक्षस, मनुष्य रति नामसे पुकारते है उस सुराको विधि पूर्वक पानकरे। (विधि पूर्वक कहने का यही तात्पर्य्य है कि इसके पानमें व्यतिक्रम होनेसे यह पूर्वोक्त गुणों से विपरीत फल देती है)।

सुरापानकी विधि ॥

शरीरकृतसंस्कारःशुचिरुत्तमगन्धवान् ।
प्राप्तोनिर्मलैर्वस्त्रैर्यथर्तूद्दामगन्धिभिः ॥
विचित्रविविधस्रग्वीरत्नाभरणभूषितः ।
देवाद्विजातीन्संपूज्यस्पृष्ट्वामङ्गलमुत्तमम्
देशेयथर्तुकेस्पष्टेकुसुमप्रकरीकृते ॥ संबा
ससंमतेमुख्येधूपसंमोदवोधिते । सोपधा
नेसुसंस्तीर्णेविहितेशयनासने ॥ उप
विष्टोऽथवातिर्यक्स्वशरीरसुखेस्थितः ।
सौवर्णैःराजतैश्चापितथामणिमयैरपि ॥
भाजनैर्विमलैश्चित्रैःसुकृतैश्चपिवेत्सदा ।
स्त्रीभिर्यौवनमत्ताभिःशिक्षिताभिर्यथर्तुकैः
वस्त्राभरणमाल्यैश्चभूषिताभिर्विभूषितः ।
शौचानुरागयुक्ताभिःप्रमदाभिरितस्ततः॥
संवाह्यमानइष्टाभिःपिबन्मद्यमनूत्तमम् ॥
पिबन्मद्यानुकूलैर्वाफलैर्हारितकैःशुभैः ॥
लवणैर्गन्धपिशुनैर्वरंदशैर्यथर्तुकैः । भृष्टै
मांसैर्बहुविधैर्भूजलाम्बरचारिणाम् ॥
पौरगवजविहितैर्भक्ष्यैश्चविविधात्मकैः

अर्थ—वमन विरेचन के पश्चात् देहके शुद्ध होने पर पवित्र, उत्तम सुगंधित पदार्थोंसे युक्त होकर सुगंधित निर्मल वस्त्रों को धारणकरे अनेक प्रकार के पुष्पों की माला धारण करे, तरह तरह के रत्नजटित आभूषणोंको पहरे देवता और द्विजोंकी पूजाकरके मंगलद्रव्योंका स्पर्श करे। तदनन्तर ऋतुके अनुकूल अनेक प्रकार के पुष्पों से निर्मित, सुगंधित द्रव्योंसे धूपित, बसने योग्य स्थानमें एक शय्या बिछावे जिसपै मनोऽनुकूल तोसक तकिये लगरहे हों, उस

शय्या वा आसनपर बैठकर अथवा मुख फेर कर सोने, चांदी या मणिमय निर्मल चित्र विचित्र और अच्छे घने हुए पात्रमें मद्यको भरकर पान किया करे। यौवनके मदमें चूर, सुशिक्षित ऋतुके अनुकूल वस्त्र आभूषण, मालाओंसे अलंकृत, आभूषणोंसे भूषित, शौच और अनुरागसे युक्त, मनोहारिणी स्त्रियां देह पर इधर विधर हाथ फेरतीहों। मदपानके पश्चत् मद्यानुकूल उत्तम हरे फल वा ऋतु के अनुकूल नमकीन और सुगंधित अवदंशादि (माजून, चटनी इत्यादि) का सेवन करै॥ अनेक प्रकारके थलचर जलचर आकाशचर जीवोंका मांस भून कर उन में नमक सुगंध द्रव्य आदि मसाले डालकर अनेक प्रकार के बनाकर सेवनकरै॥

दोषानुसार मद्यपान विधि।

पूजयित्वासुरान्पूर्वमाशिषःप्राक्प्रयुज्यच प्रदायसजलंमद्यमादितोवसुधातले। अभ्यङ्गोत्सादनस्नानवासोधूपानुलेपनैः स्निग्धोष्णैर्भावितैश्चान्नैर्वातिकेमद्यमाचरेत्। शीतोपचारैर्विविधैर्मधुरस्निग्धशीतलैः। पैत्तिकोभावितश्चान्नैःपिबेन्मद्यंनसीदति॥ उपचारैरशिशिरैर्यव गोधूमभुक्पिबेत्। श्लैष्मिकैर्धन्वजैर्मांसैर्मद्यंमारिचकैःसह॥ विधिर्वसुमतामेषभविष्यद्विभवाश्रये। यथोपपत्तिकै र्मद्यंपातव्यंमात्रयाहितम्॥

अर्थ—प्रथम देवताओंका पूजन करके मंगल पाठकरै फिर मद्यमें थोडासा जल मिलाकर पृथ्वी पर डाल देवै। तदनन्तर वातप्रकृति वाला मनुष्य अभ्यंग, उबटना स्नान करके, कपडे पहनकर, धूमपानकरके चन्दन लगाके स्निग्ध और उष्ण अन्नके साथ मद्य का सेवन करै। पित्तप्रकृति वाला पुरुष अनेक प्रकारके शीतल उपचारोंके पीछे मधुर, स्निग्ध और शीतल अन्नोंके साथ मद्यका सेवन करै। इसीतरह कफप्रकृतिवाला पुरुष उष्ण उपचारोंके करनेके पश्चात् गेंहूंके पदार्थ और कालीमिरच डालकर सिद्ध कियेहुए धन्वज पशुओंके मांसकेसाथ मद्यपानकरै

जो मनुष्य धनपात्रहैं, वा भविष्यत्में धनपात्र होनाचाहतेहैं वे ऊपर कहीहुई विधि के अनुसार प्रमाण पूर्वक मद्य का पानकरै।

प्रकृत्यनुसार पेयमद्य।

वातिकेभ्योहितंमद्यंप्रायोगौडिकपैष्टिकम् कफपित्ताधिकेभ्यस्तुफालमाधवशर्करम् बहुद्रवंबहुगुणंबहुकर्म्मप्रदात्मकम्॥ गुणैर्दोषैश्चतन्मद्यमुभयैरुपदेक्ष्यते।

अर्थ....वातप्रकृतिवाले पुरुषों को प्रायः गुडसे बनाहुआ और पिष्टकसे बनाहुआ मद्य हितहै, कफप्रकृति तथा पित्त प्रकृति वालों को फल, मधु और शर्करासे बनाहुआ हित होताहै। मद्य अत्यन्त पतला होताहै यह अनेक प्रकारके कर्म और गुणोंका करने वाला है। अब मद्यके गुण और दोष वर्णन कियेजाते हैं।

मद्यके गुणदोष।

विधिनामात्रयाकालेहितैरन्नैर्यथाबलम्॥ महृष्टोयःपिबेन्मद्यंतस्यस्यादमृतोपमम्।

यथोपेतंपुनर्मद्यंप्रसंगाद्येनपीयते ॥ रूक्ष व्यायामनित्येनविषवद्यातितस्यतत् । मद्यंहृदयमाविश्यस्वगुणैरोजसोगुणान् ॥ दशभिर्दशसंक्षोभ्यचेतोनयतिविक्रियाम् ।

अर्थ....उचित समयमें विधिपूर्वक मात्रावत् और हितकारी अन्नके साथ बलके अनुसार प्रसन्न चित्त से मद्यपान करै । तौ यह मद्य अमृतके समान गुणकारक होताहै। और जो रूक्ष और परिश्रमी मनुष्य यथाप्राप्त मद्यको अत्यन्त प्रसंगसे पीलेताहै उसको विषके समानहै ।

मद्य हृदयमें प्रवेश करके अपने दशगुणों से ओजोधातुके दशगुणोंको क्षुभित करके चित्तमें विकार उत्पन्न करताहै ।

मद्यकेदशगुण ।

लघूष्णतीक्ष्णसूक्ष्माम्लव्यवायाशुगमेवच ॥ रूक्षंविकासिविशदंमद्यंदशगुणं स्मृतम् ।

अर्थ—मद्यमें दश प्रकारके गुण होतेहै, यथा—हलकापन, उष्णता, तीक्ष्णता, सूक्ष्मता, खटाई, व्यवायत्व, शीघ्रगामित्व, रूक्षता, विकासित्व और विषदता ।

ओजोधातुकेदशगुण ।

गुरुशीतंमृदुश्लक्ष्णंबहुलंमधुरंस्थिरम् ॥ प्रसन्नंपिच्छिलंस्निग्धंओजोदशगुणंतथा॥

अर्थ....भारीपन, शीतलता, मृदुता, श्लक्ष्णता, बहुलता, मधुरता, स्थिरता, प्रसन्नता, पिच्छिलता और स्निग्धता ये दश गुण ओजोधातुके हैं ।

मद्यगुणोंसेओजकेगुणोंकानाश ।

गुरुत्वंलाघवाच्छैत्यंचौष्ण्यादम्लस्वभावतः । माधुर्यमार्दवंतैक्ष्ण्यात्प्रसादश्चाशुभावनात् ॥ रौक्ष्यात्स्नेहंव्यवायित्वात्स्थिरत्वंश्लक्ष्णतामपि । विकासिभावात्पैच्छिल्यंवैशद्यात्सान्द्रतांतथा । सौक्ष्म्यान्मद्यंविहन्त्येवमोजसःस्वगुणैर्गुणान् ॥

अर्थ... मद्यके दशगुणोंसे ओजोधातुके दशगुणोंका नाश नीचे लिखीहुई रीतिसे होता है । यथा मद्यके हलकापनसे ओजका भारापन, उष्णतासे शीतलता, अम्लतासे मधुरता, तीक्ष्णतासे मृदुता, शीघ्रगामित्व से स्वच्छता, रूखापनसे चिकनाई, व्यवायितासे स्थिरता, विकासितासे श्लक्ष्णता, पिच्छिलता से विशदता और सूक्ष्मतासे गाढेपनका नाश होताहै ॥

नशेकाकारण ।

सत्वंतदाश्रयंचाशुसंक्षोभ्यजनयेन्मदम् ।

अर्थ—मन ओजोधातुके आश्रितहै अतएव ओजो धातुके नष्ट होनेसे शीघ्र ही मद उत्पन्न होताहै ।

रसधात्वादिमार्गाणांसत्वबुद्धीन्द्रियात्मनाम् ॥ प्रधानस्यौजसश्चैवहृदयंस्थानमुच्यते । अतिपीतेनमद्येनविहतेनौजसा चतत् ॥ हृदयंयातिविकृतत्वंतत्रस्थाश्च धातवः ।

अर्थ—हृदय रसादि धातुओं का मार्गहै, मन, बुद्धि, इन्द्रियगण, आत्मा और प्रधान ओजोधातुका स्थानहै । अत्यन्त मद्यपान करनेसे ओजोधातु नष्ट होजाताहै इस ओजोधातुके नष्ट होनेसे हृदय विकृत होजाताहै और हृदयस्थधातु भी नष्ट होजातेहै ।

मद्यको पूर्वापरत्व ।

ओजस्यविहितपूर्वेहृदिचमतिबोधिते ॥
मध्यमेविहतेऽल्पेचाविहतेतूत्तमोमदः ।

अर्थ—जितने मद्यके पानसे ओज अ-विहितहो और हृदयमें चैतन्यताहो उसको पूर्व मद कहतेहैं । ओजके अल्पविहत होने पर मध्यममद और सर्वथा विहत होनेपर उत्तममद कहाताहै ॥

पैष्टिकमद्यकेगुण ।

नैवंविधांतजनयेन्मद्यंपैष्टिकमोजसः ॥
विकासरूक्षविषदागुणास्तत्रहिनोल्वणाः

अर्थ—पैष्टिकमद्य ओजोधातुमें ऐसा विकार कभी उत्पन्न नहीं करताहै, क्योंकि इसमें विकासी, रूक्ष और विषद ये गुण अधिक नहीं होतेहैं ॥

मद्यगुणाविष्टकेलक्षण ।

हृदिमद्यगुणाविष्टेहर्षस्तर्षोरतिःसुखम् ।

अर्थ....हृदयके मद्यगुणसे आविष्ट होनेपर हर्ष, तर्ष (इच्छा), रति और सुख ये उत्पन्न होतेहैं ।

अतिसेवितमद्यकेउपद्रव ।

विकाराश्चयथासत्त्वंचित्राराजसतामसाः
जायन्तेमोहनिद्रान्तामद्यस्यातिनिषेवणा
त्॥समद्यविभ्रमोनाम्नामदइत्यभिधीयते॥

अर्थ—मद्यके अत्यन्त पीनेसे जैसा मनुष्य होताहै उसीके अनुसार अनेक प्रकार के रजोगुण उत्पन्न होतेहैं मोह तथा निद्रा की उत्पत्ति भी होती है । इसीदशा को मद्य विभ्रम या मद कहते हैं ॥

मद्यकेभेद ।

पीयमानस्यमद्यस्यविज्ञातव्यास्त्रयोमदाः
प्रथमोमध्यमोऽन्त्यश्चलक्षणैस्तान्प्रवक्ष्यते।

अर्थ—मद्यपानसे तीनप्रकारका नशा उत्पन्न होताहै, यथा-प्रथम, मध्यम और अन्त्यम । अब इनमें से प्रत्येकके लक्षण कहतेहैं

प्रथममदकेलक्षण ।

महर्षणःप्रीतिकरःपानान्नगुणदर्शकः ॥
वाद्यगीतप्रहासानांकथानाञ्चप्रवर्त्तकः
नचबुद्धिस्मृतिहरोविषयेषुनचाक्षमः ॥
सुखनिद्राप्रबोधश्चप्रथमःससुखोमदः ।

अर्थ—प्रथममद हर्षवर्द्धक, प्रीतिकारक अन्नपानके गुणोंका दिखानेवाला, बाजा, गीत, प्रहास और अनेक प्रकारकी वार्ताओं का प्रवर्त्तक होताहै, इससे बुद्धि और स्मृति का नाश नहीं होता, इन्द्रिय विषयोंमें असमर्थता नहीं होती, सोने और जागने में सुख होता है ॥

मध्यममदकेलक्षण ।

मुहुःस्मृतिर्मुहुर्मोहोव्यक्तासज्जतिवाङ्मुहुः
युक्तायुक्तप्रलापश्चप्रचलायनमेवच ।
स्थानपानान्नसांकथ्ययोजनासविपर्यया
लिङ्गान्येतानिजानीयादाविष्टेमध्यमेमदे।

अर्थ....कभी वाणी की व्यक्तता, कभी कण्ठ का घिरजाना, युक्त और अयुक्त प्रलाप, कभी चलना, कभी बैठजाना, कभी खाना, कभी पीना आदि विपर्ययकर्म होते हैं ॥

मध्यममदकानिषेध ।

मध्यमंमदमुत्क्रम्यमदमप्राप्यचोत्तमम्॥न
किञ्चिन्नाशुभंकुर्युर्नराराजसतामसाः
कोमदंतादृशंविद्वानुन्मादमिवदारुणम् ॥
गच्छेदध्वानमस्वन्तंबहुदोषमिवाध्वगः।

अर्थ—रजोगुणी और तमोगुणी मनुष्यों को जो उत्तममद प्राप्त न हो तोवे मध्यममद को प्राप्त करके अनेक प्रकारके अशुभकर्म कर बैठतेहैं। इस भयानक मध्यम मदका इसतरह त्यागकर देना चाहिये जैसे यात्री बहुत विघ्नोंसे युक्त मार्गका परित्याग करदेतेहैं।

तृतीय मद के लक्षण ॥

तृतीयंतुमदंप्राप्यभग्नदार्वविनिष्क्रियः ॥
मदमोहावृतमनाजीवन्नपिमृतैःसमः । र-
मणीयान्सविषयान्नवेत्तिनसुहृज्जनम् ॥
यदर्थंपीयतेमद्यंरतितांचनविन्दति ॥ का
र्य्याकार्य्यंसुखंदुःखंलोकेयच्चहिताहितम्।
यदवस्थोनजानातिकोऽवस्थांतांव्रजेद्बुधः
सदूष्यःसर्वभूतानांनिन्द्यश्चाग्राह्यएवच ॥
व्यसनित्वादुदर्केचसदुःखंव्याधिमश्नुते।

अर्थ—तीसरे मदके होनेसे मनुष्य टूटी लकड़ीकी तरह निष्काम होजाता है, उसका मन मद और मोहसे आवृत होनेके कारण वह जीता हुआ भी मरेहुए के समान होताहै, उस दशामें उसको भोग्य विषय और सुहृज्जनोंका भी ज्ञान नहीं रहताहै। जिस रति विलास के लिये वह मद्यपान करताहै उसका आनन्द भी उसके हाथ नहीं लगताहै। जिस अवस्थामें ज्ञान होनेसे कर्तव्याकर्तव्यकर्म, सुख दुःख और हिताहित का ज्ञान नहीं रहताहै, उस अवस्था के प्राप्त करने की कौनसा बुद्धिमान् इच्छा करताहै। ऐसा मद्यप मनुष्य सब प्राणियों की दृष्टिमें दूष्य, निन्दनीय और अग्राह्य होजाताहै और बुढापेमें पूर्व दुर्व्यसनों के कारण कृच्छ्रसाध्य व्याधियोंसे ग्रस्तहोजाताहै

मदकेअवगुण ॥

प्रेत्यचेहचयच्छ्रेयःश्रेयोमोक्षश्चयत्परम् ॥
मनःसमाधौतत्सर्वमायत्तंसर्वदेहिनाम् ।
मद्येनमनसश्चास्यसंक्षोभःक्रियतेमहान्
महामारुतवेगेनतटस्थस्येवशाखिनः ।

अर्थ....इस लोक और परलोक में जो श्रेय पदार्थ हैं और जो उत्तम मोक्ष है वह प्राणियों के मनकी एकाग्रता पर निर्भरहै। यह एकाग्रता मद्यपान से नष्ट होजाती है, जैसे वायु के वेग से किनारे के वृक्ष उखड पडते हैं ॥

मद के अन्य अवगुण ।

मद्यप्रसक्तमज्ञानंमहादोषंमहागदम् ॥ सु-
खमित्यधिगच्छन्तिरजोमोहपराजिताः ॥
मद्योपहतविज्ञानावियुक्ताःसात्त्विकैर्गुणैः ॥
श्रेयोभिर्विप्रयुज्यन्तेमदान्धामदलालसाः ।
मद्येमोहोभयंशोकःक्रोधोमृत्युश्चसंश्रिताः ।
सोन्मादमदमूर्च्छायाःसापस्मारापतान-
काः ॥ यत्रैकःस्मृतिविभ्रंशस्तत्रसर्वमसा
धुवत् । इत्येवंमद्यदोषज्ञामद्यंगर्हन्तिसाध-
वः ॥

अर्थ....मद्य में आसक्ति का होना अज्ञान, महादोष और महाघोर रोगोंका उत्पन्न करने वाला है। रज और मोह से पराजित हुए मनुष्यों को इस में सुख सूझता है। मदान्ध और मद की लालसा करने वाले मनुष्य मद्यपान से ज्ञान रहित होजाते हैं, उनके सतोगुण नष्ट होजाते हैं और श्रेयस्कर पदार्थों से वह वियुक्त होजातेहैं। म-

द्यपान में मोह, भय, शोक, क्रोध मृत्यु उन्माद, मद, मूर्छा, अपस्मार और अपतानक इतने उपद्रव आश्रित रहते हैं, मद्य में स्मृतिविभ्रंश एक सब में भारी दोष है इसी से सम्पूर्ण उपद्रव उत्पन्न होतेहैं।

इसतरह मद्यके दोषोंके जानने वालों ने मद्य की निन्दा की है।

युक्ति वाजत मद्यपान के दोष।

सत्यमेतेमहादोषामद्यस्योक्तानसंशयः ॥ अहितस्यातिमात्रस्यपीतस्यविधिवर्जनम् किन्तुमद्यंस्वभावेनयथैवान्नंतथास्मृतम्। अयुक्तियुक्तंरोगाययुक्तियुक्तंतथामृतम्॥ प्राणःप्राणभृतामन्नंतदयुक्त्यानिहन्त्यसून्। विषंप्राणहरंतच्चयुक्तियुक्तंरसायनम् ॥

अर्थ—विधि रहित अहितकारी मद्यका अत्यन्त पान करने से जो महादोष मद्य के कहे गये हैं वे ठीकही हैं, उनमें कोई संदेह नहींहै, परन्तु मद्यका और अन्नका स्वभाव एकसा है। बिना युक्ति से युक्त किया मद्य रोगों को उत्पन्न करता है और उसीका युक्ति पूर्वक सेवन करना अमृत के समान गुणकारी है, जैसे युक्ति पूर्वक अन्नका सेवन करनेसे प्राणोंका पोषण होता है और अयुक्ति पूर्वक सेवन करने से प्राणों का हरण कर लेता है। जो विष प्राणोंका नष्ट करने वालाहै उसी का युक्ति पूर्वक सेवन करनेसे रसायन का काम देता है ॥

युक्तिपूर्वक मद्यके गुण ॥

हर्षमूर्जांमदंपुष्टिमारोग्यंपौरुषंपरम्। युक्त्यापीतंकरोत्याशुमद्यमंदसुखावहम् ॥ रोचनंदीपनंहृद्यंस्वरवर्णप्रसादनम्। प्रीणनंबृंहणंबल्यंभयशोकश्रमापहम्॥ स्वापनंनष्टनिद्राणांमूकानांवाग्विबोधनम्। बोधनञ्चातिनिद्राणांविबद्धानांविबन्धनुत् ॥ वधबन्धपरिक्लेशदुःखानाञ्चाप्रमोहनम्। मदोत्थानाञ्चरोगाणांमद्यमेवप्रसाधकम् ॥ रतिविषयसंयोगप्रीतिसंयोगवर्द्धनम्। अतिप्रवयसांमद्यमुत्सवामोदकारकम् ॥

अर्थ....युक्तिपूर्वक मद्य के सेवनसे हर्ष, उत्साह, मद, पुष्टि, अरोगिता और अत्यन्त पुरुषार्थ बढताहै, मद्यका मद सुख प्रबोधक होता है। यह रुचिवर्द्धक अग्निसंदीपन, हृदयको हितकारी, स्वर और वर्णको बढाने वाला, प्रीणनकर्त्ता, बृंहणकर्त्ता बलकर्त्ता भयनाशक, शोकहर्त्ता, श्रमनाशक है जिसकी निद्रा नष्ट होगई हो उसको नींद आजाती है, गूंगोंकी बोली खुलजाती है, अतिनिद्रित अर्थात् गाफिलों को चेत होजाता है, जिन को दस्तकी कबजियत होतीहै उन का कब्ज मिट जाता है। बंध बन्ध, परिक्लेश और दुःखोंका इससे नाश होजाता है, मद से उत्पन्न हुए रोगों को मदही दूर करता है, यह रति विषयमें संयोजक, प्रीतिके संयोग का वर्द्धक, वृद्धमनुष्योंको आल्हाद और आमोद का उत्पन्न करने वाला है ॥

प्रथम मद के गुण।

पञ्चस्वर्थेषुकान्तेषुयारातिःप्रथमेपदे। युनांवास्थविराणांवातस्यनास्त्युपमाश्रुति बहुदुःखकृतस्यास्यशोकेनोपहतस्यच।

विश्रामोजीवलोकस्यमदंयुक्त्यानिषेधितम् ॥

अर्थ—मदकी प्रथमावस्था में युवा और वृद्ध मनुष्यों को जो आनन्द पाँचों इन्द्रियों के विषयोंमें प्राप्त होताहै उसकी उपमा पृथ्वी में नहीं है। युक्ति पूर्वक सेवन किया हुआ मद बहुत दु:खों से व्याप्त और शोक से उपहत प्राणियों के लिये विश्राम दायकहै॥

मद्यपान में कर्त्तव्य।

अन्नपानवयोव्याधिवलकालात्रिकाणि षट्। त्रीन्दोषांस्त्रिविधंसत्त्वंज्ञात्वामद्यं पिवेत्सदा ॥

अर्थ....अन्न, पान, वय, व्याधि, वल कालकी तीन अवस्था ये सव छः और तीनों दोष, तीनों प्रकारका सत्व इनको विचार के मद्यपान करे।

तेषांत्रिकाणामष्टानांयोजनायुक्तिरुच्यते। यथायुक्त्यापिवेन्मद्यंमद्यदोषैर्नयुज्यते ॥ मद्यस्यचगुणान्सर्वान्यथोक्तान्समुपाश्नुते। धर्मार्थयोरपीडार्थैर्नरःसत्वगुणोच्छ्रितः ॥

अर्थ—इन आठोंकी तीन तीन युक्तियों के अनुसार मद्यका योग करना मद्य की युक्ति कहाती है। युक्ति पूर्वक मद्यके सेवनसे मद्य के दोष नहीं होने पाते, और मद्य के यथोक्त सम्पूर्ण गुण भोगने में आते हैं, तथा धर्मार्थ के अवपीडन और सतोगुणके वढनेसे आनन्द प्राप्त होता है ॥

सत्त्वानितुप्रबुध्यन्तेप्रायशःप्रथमेमदे। द्वितीयेव्यक्ततांयातिमदेचोत्तममध्ययोः ॥ सत्त्वसम्बोधकंहर्षंहमप्रकृतिदर्शकः।यथाग्निरेवंसत्त्वानांमद्यंप्रकृतिदर्शकम् ॥

अर्थ—उत्तम और मध्यम प्रकृतिवाले मनुष्योंके प्रथम मदमें सम्पूर्ण सत्व प्रवुद्ध होते हैं और मध्यम मदमें सम्पूर्ण सत्व व्यक्त अर्थात् स्पष्ट होजाते हैं, जैसे अग्नि से सुवर्णकी प्रकृति दीखने लगती है उसी तरह मद्य भी सत्व सम्वोधक, हर्षवर्द्धक और और प्रकृतिदर्शक होताहै ॥

सुगन्धमाल्यगन्धैर्वासुमणीतमनाकुलम्। मिष्टान्नपानविशदंसदामधुरसंकथम् ॥ सुखप्रमाणंसुमदंप्रहर्षप्रीतिवर्द्धनम्। स्वन्तंसात्विकमापन्नंनचोत्तममदंमदम् ॥

अर्थ....सुगंधित गंधमालाको धारण करके, सुन्दर वनायेहुए निर्मल मिष्टान्न पान के साथ प्रमाणसे सेवन कियाहुआ मद्य तथा मिष्टवार्ताओं से युक्तिपूर्वक सेवन कियाहुआ मद्य उत्तम नशा करता है, हर्ष और प्रीति को वढाता है यह मद अन्तमें सात्विकता उत्पन्न करता है तथा इससे उत्तम और कोई मद नहीं है ॥

वैगुण्यंसहसायान्तिमद्यदोषैर्नसात्विकाः मद्यंहिवलवत्सत्त्वंप्रद्धातिसहसानतु ॥

अर्थ....मद्यके दोषसे सत्वप्रकृति पुरुष शीघ्रही विगुणताको प्राप्त नहीं होजाते हैं। मद्य वलवान् सत्व को सहसा पराजित नहीं करसक्ता है ॥

राजसादिप्रकृतिमद्यकेकर्म ॥

सौम्यासौम्यकथाप्रायंविपदाविपदंक्षणात्।चित्रंराजसमापानंप्रायेणास्वन्तमाकुलम्॥हर्षस्मृतिकथोपेतमतुष्टपानभोजने।संमोहक्रोधनिद्रार्त्तमापानंतामसंस्मृतम् ॥

अर्थ—राजसप्रकृतिवाला मनुष्य मद्यके पीने से कभी सौम्य कभी असौम्य बातें करने लगता है, क्षणभर में विशद और क्षणभर में अविशद भाव को ग्रहण करता है, उस के स्वभाव में एक तरह की विचित्रता पैदा होजाती है, अन्त में प्रायः आकुल होजाता है । इसको हर्ष, स्मरण और कथोपकथन बढजाता है, खाने पीने में तुष्टि नहीं होती है। जिसमें मोह, क्रोध और निद्रा पीनेवाले को घेरलेते हैं उसे तामस आपान कहते हैं ।

आपानेसात्त्विकान्बुद्ध्वातथाराजसतामसान् । जह्यात्सहायान्यैःपीत्वासहर्दापानुपाश्नुते ॥

अर्थ—मदिरालयमें सात्विक, राजस और तामस का विचार करके जिन के साथ मद्यपान करने से दोष बढते हों उन का परित्याग करदेवे ॥

मद्यपानकेयोग्यसाथी ।

सुखशीलाःसुसंभाषा सुमुखाःसंमताःसताम् । कलासुवाक्यविपदाविषयभवणाश्चये ॥ परस्परविधेयायेयेषामैक्यंसुहृत्तया । प्रहर्षप्रीतिमाधुर्य्यैरापानंवर्द्धयन्तिये ॥ उत्सवादुत्सवतरंयेषामन्योन्यदर्शनम् । तेसहायाःसुखाःपानैःतैःपिबन्सहमोदते ॥ रूपगन्धरसस्पर्शैःशब्दैश्चापिमनोरमैः । पिबन्तिससहायायेतेनेसुकृतिभिःसमाः । पञ्चभिर्विषयैरिष्टरुपेतमनसःप्रियैः । देशेकालेपिबेन्मद्यंप्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥

अर्थ—जिन मनुष्यों का स्वभाव शीलसम्पन्न हो, जो मधुरभाषी,सुमुख, सत्संगी हों जो कलाकुशल, बात कहने में प्रवीण, विषयों में लीन, परस्परस्नेही, ऐक्यतायुक्त सुहृदता सम्पन्न हों, जो मदिरालय में हर्ष प्रीति, और मधुरता को बढावें । जिन के एक दूसरे से मिलने में अत्यन्त आनन्द की वृद्धि हो । ऐसे मनुष्यों के साथ मद्यपान करने से सुख बढता है और इन्हीके साथ में मद्यपान करना चाहिये । मनकोहरण करनेवाले रूप, रस गंध, स्पर्श तथा शब्दों के बीच में उत्तम साथियों के साथ जो मद्यपान करतेहैं वे बडे सुकृती पुरुष होतेहैं ॥ उत्तमदेश काल में अत्यन्त प्रसन्नचित्तसे मनोऽनुकूल शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध इन पांच विषयों से युक्त होकर मद्यपान करना चाहिये ।

स्थिरसत्त्वशरीरायेपुराणामद्यपान्वयाः॥ बहुमद्योचितायेचमाद्यन्तिसहसानते ॥ प्राङ्मद्याःक्षुत्पिपासार्त्तादुर्बलावातपैत्तिकाः । रूक्षाल्पप्रमिताहाराविरुतव्यःसत्त्वदुर्बलाः ॥ क्रोधिनोऽनुचिताःक्षीणाःपरिश्रान्तामदक्षताः । अल्पेनापिमदंशीघ्रंयान्तिमद्येनमानवाः ॥

अर्थ—जिस मनुष्यका मन और शरीर स्थिरहै, जिसके कुटुम्बमें मद्य पीतेआये हैं जो बहुत मदिरा पीनेका अभ्यास रखतेहैं उनको नशा बहुत शीघ्र नहीं होता जो क्षुधा और प्यास से आतुर हैं, दुर्बल हैं. वातपित्त की प्रकृतिवाले हैं, जो रूखा थोडा

और प्रमित भोजन करते हैं, जो विस्तब्ध हैं जिनका मन दुर्बल हैं, जो क्रोधी हैं, जिनको मद्यपान का अभ्यास नहीं है, जो क्षीण, थकेहुए और मद से क्षय हैं, ऐसे मनुष्योंको थोडा भी मद्य पीने से बहुत शीघ्र नशा होजाता है ॥

ऊर्ध्वमदात्ययस्यातःसम्भवंस्वस्वलक्षणम् । अग्निवेश ! चिकित्साञ्चप्रवक्ष्यामियथाक्रमम् ॥

अर्थ....हे अग्निवेश! अब यहां से मदात्यय की उत्पत्ति, लक्षण और पृथक् २ चिकित्सा का क्रम से वर्णन करेंगे ॥

वातप्रायमदात्ययकीउत्पत्तिकाकारण।

स्त्रीशोकभयभाराध्वकर्म्मभियोऽतिकर्षितः । रूक्षाल्पप्रमिताशीवायःपिवत्यतिमात्रया॥ रूक्षंपरिणतंमद्यंनिशिनिद्राविहत्यच । करोतितस्यतच्छीघ्रंवातप्रायमदात्ययम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य अत्यन्त स्त्रीसेवन, शोक, भय, भारवहन और मार्गगमन आदि परिश्रमोंसे अत्यन्त कृश होगया है और रूक्ष, अल्प और प्रमित भोजन किया करता है। ऐसा मनुष्य यदि अत्यन्त मद्यपान करे तो वह मद्य परिणाममें अत्यन्त रूक्षता को उत्पन्न करके रात्रिमें निद्रा को दूर करके शीघ्रही वातजन्य मदात्यय रोगों को उत्पन्न करदेता है ॥

वातिकमदात्यय के लक्षण।

हिक्काकासशिरःकम्पपार्श्वशूलप्रजागरैः। विद्याद्बहुप्रलापस्यवातप्रायंमदात्ययम् ॥

अर्थ....हिचकी, खांसी, शिरःकम्प, पार्श्वशूल, निद्रानाश और अत्यन्त प्रलाप ये वातप्राय मदात्यय के लक्षण हैं।

पित्तप्रमदात्ययका वर्णन।

तीक्ष्णोष्णंमद्यमम्लंवायोऽतिमात्रंनिषेवते । अम्लोष्णतीक्ष्णभोजीचक्रोधनोऽग्न्यातपप्रियः ॥ तस्योपजायतेपित्ताद्विशेषेणमदात्ययः । सतुवातोल्वणस्याशुप्रशमंयातिहन्तिवा ॥ तृष्णादाहज्वरस्वेदमूर्च्छातीसारविभ्रमैः । विद्याद्धरितवर्णस्यपित्तप्रायंमदात्ययम् ॥

अर्थ....जो मनुष्य तीक्ष्ण, उष्ण और अम्ल मद्य का अत्यन्त सेवन करताहै, तथा जो खट्टे, उष्ण और तीक्ष्ण भोजन किया करता है, जो अत्यन्त क्रोधी होताहै तथा जिसको अग्नि और धूप अच्छे लगते हैं उसके पित्तजन्य मदात्यय उत्पन्न होताहै। वातोल्वणवाले मनुष्यको पित्तजन्य मदात्यय या तो शीघ्रही मारडालता है या अच्छा होजाता है।....तृष्णा, दाह, ज्वर, स्वेद, मूर्च्छा, अतीसार, विभ्रम और देहका हरावर्ण ये पित्तज मदात्यय के लक्षणहैं ॥

कफप्रायमदात्ययकावर्णन।

तरुणंमधुरप्रायंगौडंपैष्टिकमेववा ॥ मधुरस्निग्धगुर्वाशीयःपिवत्यतिमात्रया । अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखेरतः ॥ मदात्ययंकफप्रायंसशीघ्रमधिगच्छति। छर्द्यरोचकहृल्लासतन्द्रास्तैमित्यगौरवैः ॥ विद्यात्शीतपरीतस्यकफप्रायंमदात्ययम् ॥

अर्थ....मीठे, चिकने और भारी पदार्थों का भोजन करनेवाला मनुष्य यदि, नया,

मधुरप्राय गुडका बनाहुआ वा पैष्टिकमद्य का अत्यन्त सेवन करै और कसरत करती न करै, दिन में सोवै सुखासन वा शय्या पर पडारहै तो उसके कफप्रायमदात्यय उत्पन्न होता है। वमन, अरुचि, हृल्लास, तंद्रा, स्तिमिता, गौरव और शीत ये सब कफप्राय मदात्यय के लक्षण हैं ॥

विषस्यये गुणा दृष्टाः सन्निपातप्रकोपणाः॥ तएवमद्ये दृश्यन्ते विषे तु बलवत्तराः। हन्त्याशु हि विषं किञ्चित् किञ्चित् रोगाय कल्पते॥ यथा विषं तथैवान्त्यो ज्ञेयो मद्यकृतो मदः तस्मात् त्रिदोषजं लिङ्गं सर्वत्रापि मदात्यये॥ दृश्यते रूपवैशेष्यात् पृथक्त्वंचास्य लक्ष्यते

अर्थ....विषके जो सन्निपातको प्रकोप करानेवाले गुण हैं वेही सम्पूर्ण गुण मद्य में दिखाई देतेहै और तब वेहीगुण विषमें अत्यन्त बलवान् दिखाई देते हैं, कोई विष शीघ्रही प्राणों का नाश करतेहैं और कोई रोगों को उत्पन्न करतेहैं। विषके सदृशही मद्यकृत अन्त्यमद होताहै। इसी हेतुसे मदात्यय रोगोंमें सब जगहही त्रिदोषके लक्षण दृष्टिगत होते हैं। केवल भिन्न २ लक्षणों के कारण उनमें पृथक्ता दिखाई देती है॥

मदात्ययकेरूप।

शरीरदुःखंबलवत्संमोहोहृदयव्यथा॥ अरुचिःसततातृष्णाज्वरःशीतोष्णलक्षणः शिरःपार्श्वास्थिसन्धीनांविद्युत्तुल्याचवेदना॥ जायतेऽतिबलाजृम्भास्फुरणंवेपनंश्रमः। उरोविबन्ध कासश्चहिक्काश्वासःप्रजागरः॥ शरीरकम्पःकर्णाक्षिमुखरोगस्त्रिकग्रहः। छर्द्यतीसारमुत्क्लेशोवातपित्तकफात्मकः॥ भ्रमःप्रलापोरूपाणामसतांचैवदर्शनम्। तृणभस्मलतापर्णपांसुभिश्चावपूरणम्। प्रधर्षणंविहङ्गैश्चभ्रान्तचेताःसमन्यते॥ व्याकुलानामशस्तानांस्वमानांदर्शनानिच। मदात्ययस्यरूपाणिसर्वाण्येतानिलक्षयेत्।

अर्थ....अत्यन्त शारीरिक क्लेश, सम्मोह, हृदयव्यथा, अरुचि निरन्तर तृषा की आधिकता, ज्वर, शीतज्वर, उष्णज्वर, शिर, पसली, हड्डी और जोडो में बिजलीके समान वेदना, वेगवती जंभाई, फडफडाहट, कंपन, परिश्रम, हृदयमें रुकावट, खांसी, हिचकी श्वास, निद्रानाश, शरीर कम्पन, कर्णरोग, नेत्ररोग, मुखरोग, त्रिकग्रह, वमन, अतीसार, वातोत्क्लेश, पित्तोत्क्लेश, कफोत्क्लेश, भ्रम, प्रलाप, भयंकर रूपोंका दर्शन, तिनुका, भस्म लता, पत्ते, धूल आदिसे भराहुआसा दिखाई देना, विहंगोंसे भयका बोध, चित्तमें भ्रांति, घवडाहट पैदा करनेवाले दुःस्वप्नोंका दीखना ये सब मदात्ययके लक्षण हैं।

मदात्यय में चिकित्साक्रम।

सर्वंमदात्ययंविद्यात्त्रिदोषमधिकन्तुयत्। दोषंमदात्ययेपश्येत्तस्यादौप्रतिकारयेत्॥ कफस्थानानुपूर्व्याचक्रियाकार्य्यामदात्यये। पित्तमारुतपर्य्यन्तःप्रायेणाहिमदात्ययः॥

अर्थ—सब प्रकारके मदात्यय त्रिदोष से होतेहैं, परन्तु जो दोष अधिक दीखे उसी की प्रथम चिकित्सा करना उचित है कफ-

स्थानके आनुपूर्वीक्रमसे मदात्ययमें चिकित्सा करना योग्यहै जैसे प्रथम कफ स्थानहै,पीछे पित्तस्थानहै, उससे पीछे वायुस्थानहै। इसी क्रमसे प्रथम कफकी, फिर पित्तकी और फिर वातकी चिकित्सा करे॥

मिथ्यातिहीनपीतेनयोव्याधिरुपजायते। समपीतेनतेनैवसमद्येनोपशाम्यति॥ जीर्णाममद्यदोषायमद्यमेवमदापयेत्। प्रकाङ्क्षालाघवेजातेयद्यदस्मैहितंभवेत्॥ सौवर्चलानुसंविद्धंशीतंसविडसैन्धवम्॥ मातुलुङ्गार्द्रकोपेतंजलयुक्तंप्रमाणवित्।

अर्थ....मद्यके मिथ्यापान, अतिपान या हीन पान से जो व्याधि उत्पन्न होतीहैं उनको समान मद्यपान द्वाराशमन करे। जिसका आमजीर्ण होगया हो ऐसे मदात्यय रोगीको मद्यही का पान करावे। तथा शरीरमें हलकापन होनेपर इच्छाके अनुसार हितकारी मद्यपान करावे। मद्यमें सौवर्चल नमक, विडनमक, सेंधानमक, बिजौरेका रस, अदरख का रस, जल और शीतवीर्य औषध मिलाकर प्रमाणके अनुसार पान करावे।

तीक्ष्णोष्णेनातिमात्रेणपीतेनाम्लविदाहिना॥ मद्येनान्नरसोत्क्लेदोविदग्धःक्षारतांगतः। अन्तर्दाहंज्वरंतृष्णांप्रमोहंविभ्रमंमदम्॥ जनयत्याशुतच्छान्त्यैमद्यमेवमदापयेत्। क्षारोहियातिमाधुर्यंशीघ्रमम्लोपसंहितः॥ श्रेष्ठमम्लेषुमद्यञ्चयैर्गुणैस्तान्परंशृणु।

अर्थ....उष्ण, तीक्ष्ण, अम्लऔर विदाही मद्यके अत्यन्त सेवन करनेसे अन्नके रसका उत्क्लेद होकर विदग्धता होतीहै और फिर उसमें खारीपन होताहै तदनन्तर अन्तर्दाह, ज्वर, तृषा, प्रमोह विभ्रम और मद ये शीघ्रही उत्पन्न होजाते हैं इससे इनकी शान्तिके निमित्त मद्यपानही करावे। अम्लसे मिलने पर क्षार में फिर शीघ्रही मधुरता उत्पन्न होजातीहै॥

अब हम उन गुणोंका वर्णन करतेहैं जिनके कारण मद्य सब अम्ल रसोंमें श्रेष्ठहै।

मनके चार अनुरस॥

मद्यस्याम्लस्वभावस्यचत्वारोऽनुरसाः स्मृताः॥ मधुरश्चकषायश्चातिक्तःकटुक एवच। गुणाश्चदशपूर्वोक्तास्तैःचतुर्दशभिर्गुणैः॥ सर्वेषामद्यमम्लानामुपर्युपरितिष्ठति।

अर्थ....मद्यका स्वभाव अम्ल है, इसमें चार अनुरस होते हैं यथा- मधुर, तिक्त, कटु और कषाय। और इस मद्यके दस गुण पहिले वर्णन किये है। इन चौदह गुणों के कारण मद्य सब अम्ल रसों में उत्तम होता है।

मदोत्क्लिष्टेनदोषेणरुद्धःस्रोतःसुमारुतः। करोतिवेदनांतीव्रांशिरस्यस्थिपुसन्धिषु

अर्थ....मदोत्क्लिष्ट दोषसे स्रोतःसमूहों के रुकजाने पर वायु सिर, हड्डी और संधियों में अत्यन्त तीव्र वेदनाको उत्पन्न करती हैं।

दोषविष्यन्दनार्थंहितस्मैमद्यंविशेषतः॥ व्यायामितीक्ष्णोष्णतयादेयमम्लेषुसत्स्वपि। स्रोतोविबन्धमुन्मथ्यमारुतस्वा

नुलोमनम् ॥ रोचनंदीपनंचाग्नेरभ्यासा त्सात्म्यमेवच । रसस्रोतःस्वरुद्धेपुमारु तेचानुलोमिते ॥ निवर्त्तन्तेविकाराश्चशा म्यन्त्यास्यमदोदयाः ।

अर्थ....दोषोंको निकालनेके निमित्त उसको विशेष करके मद्यपान करावै । मद्य व्यवायी तीक्ष्ण और उष्ण होने के कारण स्रोतः समूहके विबन्ध को दूर करके वायु का अनुलोमन करता है तथा रुचिकर्त्ता अग्निवर्द्धक और सात्म्य होताहै ॥ रसवाही स्रोतों के खुलने पर और वायुके अनुलोमन होनेपर सम्पूर्ण विकार शान्त होजाते हैं और सव प्रकारके मदजन्य विकार भी दूर होजाते हैं ॥

वातशमनमें मद्यका प्रयोग ।

वीजपूरकवृक्षाम्लकोलदाडिमसंयुतम् यमानीहपुपाजाजीशृंगवेरावचूर्णितम् । सस्नेहैःशक्तुभिर्युक्तमर्धदंशैश्चिरोत्थितम् दद्यात्सलवणंमद्यंपैष्टिकंवातशान्तये ॥

अर्थ—विजौरा, वृक्षाम्ल, वेर, अनार इन का रस अजवायन, हाऊवेर, जीरा, अदरख इनका चूर्ण डालकर दे अथवा स्नेह सहित सत्तू के साथ नमक डालकर पुराना मद्य पान करावै तो वातजन्यरोग शान्त होजाताहै

वातोल्वणमदात्ययमें चिकित्सा ।

दृष्ट्वावातोल्वणंलिंगंरसैश्चैनमुपाचरेत्। लावतित्तिरिदक्षाणांस्निग्धाम्लैःशिखिनाम पि।पक्षिणांमृगमत्स्यानामानूपानाश्चसंस्कृतैः।भूशयप्रसहानाश्चरसैःशाल्योदनेनच। स्निग्धोष्णलवणाम्लैश्चवेशवारैर्मुखप्रियैः ॥ चित्रैर्गोधूमिकैश्चान्नैर्वारुणीमण्ड संयुतैः। पिशितार्द्रकगर्भाभिःस्निग्धाभि र्धूमवर्तिभिः॥ माषपूपलिकाभिश्चवाति कंसमुपाचरेत् । नातिस्निग्धंनचाम्लेन सिद्धंसमरिचार्द्रकम् ॥ रसमल्पोपसंपूर्णैः सुखोष्णैःसह संपिवेत्।

अर्थ—मदात्ययमें यदि वातकी उल्वणता के लक्षण दिखाई दें तो लवा, तीतर, मोर और मुर्गेका मांसरस चिकनाई और खटाई के साथ देकर इसकी चिकित्सा करै । तथा आनूप, भूशय और प्रसहजातिके पशु और मछलियोंके मांसरस के साथ शालीचांवल देवै । चिकने, गरम, नमकीन और खट्टे तथा मुखके जायके को सुधारनेवाले वेशवार, सुरामण्ड से युक्त अनेक प्रकार के गेहुंओं के पदार्थ, मांस और अदरख की पिट्ठी भरीहुई स्निग्ध धूमवर्त्ती और उरद के वडे आदिको देकर वातिक मदात्ययको दूर करै । इस पूर्वोक्त मांसरस को थोडी चिकनाई डालकर खटाई, काली मिरच और अदरख डालकर देवै । अथवा सुहाता २ गरम गोधूमपिष्टक में मांसरस मिलाकर पानकरावै ।

भक्तेनवारुणीमण्डंदद्यात्पातुंपिपासवे ॥ दाडिमस्यरसंवाथजलंवापाश्वमूलिकम्। धान्यनागरतोयंचदधिमण्डमथापिवा ॥ अम्लकाञ्जिकमण्डंवाशुक्तोदकमथापिवा कर्म्मणानेनसिद्धेनविकारउपशाम्यति॥ मात्राकालप्रयुक्तेनवलवर्णश्चवर्द्धते ।

अर्थ—मदात्ययमें तृषाकी प्रवलता होने

पर भातके साथ वारुणीमण्डका पान करावे। अथवा अनार का रस या पंचमूल का क्वाथ, वा धनिये और सोंठका क्वाथ, अथवा दधिमण्ड वा अम्ल कांजीका मण्ड वा शुक्तोदक देवे। इन अनुभव कियेहुये प्रयोगों से मदात्यय के विकार शान्त होजाते हैं, तथा उचित समयपर प्रमाणके अनुसार देनेसे बल और वर्णकी वृद्धि होतीहै

रागखाण्डवसंयोगैर्विविधैर्भक्तरोचनैः ॥
पिशितैर्बहुपिष्टान्नैर्यवगोधूमशालिभिः ।
अभ्यङ्गोत्सादनैःस्नानैरुष्णैःप्रावरणैर्घनैः॥
घनैरगुरुपङ्कैश्चधूपैश्चागुरुजैर्घनैः ॥
नारीणांयौवनोष्णानांनिर्दयैरवगूहनैः॥
श्रोण्यूरुकुचभारैश्चसंरोधोष्णसुखावहैः॥
शयनाच्छादनैरुष्णैःरूक्षैश्चान्तर्गृहैःसुखैः
मारुतःप्रबलःशीघ्रंप्रशाम्यतिमदात्ययः॥

अर्थ—इस वातिक मदात्यय में भोजन में रुचि बढानेवाले अनेक प्रकारके राग पाडव,अनेक प्रकारके मांस, अनेक प्रकार के मिष्टान्न, अनेक प्रकारके जौ, गेहूं,शाली चांवल, अभ्यंग, उत्सादन, स्नान, गरम और गाढे ओढने के वस्त्र, कपूर और अगरका लेप, कपूर और अगरकी धूप, यौवन के जोरसे उष्ण स्त्रियोंसे गाढ आलिंगन उन स्त्रियों के श्रोणी, ऊरू, कुचोंके घर्षण से उत्पन्न गर्मी, उष्णशय्या, उष्ण आच्छादन वस्त्र, सुखदायक रूक्ष अन्तर्गृह, इन वस्तुओंका सेवन करने से वातजन्य प्रबल मदात्यय शीघ्रही शान्त होजाता है।

पित्तमदात्ययमें चिकित्सा।

भव्यखर्जूरमृद्वीकापरूपकरसैर्युतम् ॥
सदाडिमरसंशीतंशक्तुभिःस्ववचूर्णितम्।
सशर्करंशार्करंवामाध्वीकमथवापरम् ॥
दद्यात्वहूदकंकालेपातुंपित्तमदात्यये।
शशान्कपिञ्जलनैणान्लावानसितपुच्छाकान् ।मधुराम्लान्प्रयुञ्जीतभोजनेशालिषष्टिकान्॥ पटोलयूपमिश्रंवाछागलंकल्पयेद्रसम् ॥ सतीनमुद्गमिश्रंवादाडिमामलकान्वितम्॥ द्राक्षामलकखर्जूरपरुपकरसेनवा ॥ कल्पनान्तर्पणान्यूपान्रसां श्चविविधात्मकान् ॥

अर्थ....भव्य, खजूर, किसमिस और फालसे का रस, तथा अनारका रस सत्तू के साथ मिलाकर, थोडीसी चीनी डालकर शर्करामद्य, वा माध्वीकमद्य अथवा और किसी मद्य में बहुतसा जल मिलाकर पित्तजनित मदात्ययमें पान करावे।

सरसा, सफेदतीतर, एण, लवा, कालीपूंछका हरिण इनके मांसको मधुराम्ल करके शाली चांवल और साठी चांवलों के भात के साथ देवे। अथवा बकरे के मांसरस में परवलका यूष मिलाकर उक्तभात का भोजन करावे। अथवा मटर और मूंगों के यूष में अनार और आंवले का रस मिलाकर इनके साथमें उक्त भात देवे। अथवा दाख आंवला, खजूर, फालसे का रस इनके साथ में अनेक प्रकारसे सिद्ध किये हुए तर्पण, यूष और मांसरस देवे।

कफपित्त मदात्ययमें चिकित्सा ।

आमाशयस्थमुत्क्लिष्टंकफपित्तंमदात्यये॥ विज्ञायबहुदोपस्यदह्यमानस्यतृप्यतः । मद्यंद्राक्षारसंतोयंदत्वातर्पणमेववा॥ निःशेषंवामयेत्शीघ्रमेवंरोगाद्विमुच्यते ।

अर्थ—बहुत दोषोंसे युक्त कफपित्त मदात्ययमें आमाशयस्थ आमके अत्यन्त उत्क्लिष्ट होनेपर जब दाह और तृषाकी अधिकताहो तब मद्य, दाखका रस और जलको तृप्ति पर्य्यन्त पान कराके निःशेष वमनकरा देवै तौ शीघ्रही रोग जाता रहता है ।

कालेपुनस्तर्पणाढ्यंक्रमंकुर्य्यात्प्रकांक्षिते तेनाग्निर्दीप्यतेतस्यदोषशेषान्नपाचनः । कासेसरक्तनिष्ठीवेपार्श्वेस्तनरुजोस्तथा॥ तृष्यतेसविदाहेचसोत्क्लेशेहृदयोरसि । गुडूचीभद्रमुस्तानांपटोलस्याथवाभिषक् रसंसनागरंदद्यात्तित्तिरिंप्रतिभोजनम्॥ तृष्यतेचातिबलवद्वातपित्तेसमुद्धते। दद्या द्द्राक्षारसंपातुंशीतंदोषानुलोमनम् ॥ जीर्णेसमधुराम्लेनछागमांसरसेनतम् । भोजनंभोजयेन्मद्यस्यानुतर्षञ्चपाययेत्॥ अनुतर्षस्यमात्रासायया नोहन्यतेमनः । तृष्यतेमद्यमल्पाल्पंप्रदेयंस्याद्बहूदकम्॥ तृष्णायेनचसंशाम्येन्मदंयेनचनाप्नुयात् परूषकाणांपीलूनांरसंशीतमथापिवा ॥ पर्णिनीनांचतस्रणांपिवेद्वाशिशिरंजलम् मुस्तदाडिमलाजानांतृष्णाघ्नंवापिवेद्रसम् ॥ कोलदाडिमवृक्षाम्लचुक्रीकाचुक्रिकारसः । पञ्चाम्लकोमुखालेपः सद्यःतृष्णांनियच्छति ॥

अर्थ—फिर उचित समयपर मुख में इच्छा उत्पन्न होनेपर तर्पण क्रमका अवलम्बन करै, जिससे जठराग्नि बढजाय और दोष निःशेष होकर अन्न पचजाय ।

जो खांसीके साथ रुधिर निकलने लगे, पसली और छातीमें वेदना होवै, दाहके साथ तृषा उत्पन्न होवै, हृदय और वक्षःस्थलमें उत्क्लेश हो तौ गिलोय और भद्रमोथा या परवलका क्वाथ सोंठ डालकर देवै और खाने के लिये तीतरका मांस देवै ।

जो वातपित्त के प्रबल होनेपर तृषाका वेग अधिक हो तौ उसको किसमिस का क्वाथ ठंडा करके देवै इससे दोषों का अनुलोमन होता है । औषध के पचने पर मधुराम्ल बकरी के मांसरस के साथ भोजन करावै और तृषा लगने पर मद्यका पान करावै । तृषितको मद्यकी ऐसी मात्रा देवै कि जिससे बेहोशी नहो, तृषाके लगनेपर मद्यमें बहुतसा जल मिलाकर थोडा २ पान करावै जिससे तृषाभी शान्त होजाय और नशा भी उत्पन्न नहो । अथवा फालसा, पीलू इनका शीतल क्वाथ अथवा चारोंपर्णी का ठंडा क्वाथ अथवा ठंडा जल अथवा मोथा, अनार, खील इनका क्वाथ पान करावै । इन प्रयोगों से तृषा शान्त होतीहैं । अथवा बेर, अनार, वृक्षाम्ल, चुकीका, चूका इन पांचों खटाइयों का मुख में लेप करने से तृषा तत्काल शान्त होजाती है ॥

पित्त मदात्ययमें सेवनीय कर्म ।

शीतलान्यन्नपानानिशीतशय्यासनानिच

शीतवातजलस्पर्शाः शीतान्युपवनानिच॥ क्षौमपद्मोत्पलानाञ्चमणीनांमौक्तिकस्य च । चन्दनोदकशीतानांस्पर्शाश्चन्द्रांशु शीतलाः ॥ हेमराजतकांस्यानांपात्राणां शीतवारिभिः । पूर्णानांहिमपूर्णानांदृता नांपवनाहताः । संस्पर्शाश्चन्दनार्द्राणांना रीणाञ्चसमारुताः॥चन्दनानाञ्चमुख्या नांशस्ताःपित्तमदात्यये ।

अर्थ—शीतल अन्नपान, शीतल शय्या और आसन, शीतल बायु, जलका स्पर्श शीतल उपवन, रेशमविस्त्र, लालकमल, नीलकमल, मणि, मोती, चन्दन और शीतलजलका स्पर्श, चन्द्रमाकी शीतल किरणों का सेवन, शीतल जलसे भरे हुए सोने, चांदी और कांसी के पात्रों का स्पर्श हिमपूर्ण पवनाहत दृति (मशक) का स्पर्श तथा हवादार स्थानमें चन्दनसे तर बतर स्त्रियोंका स्पर्श और चन्दनका लेपन ये सब पित्तमदात्ययमें श्रेयस्कर हैं ।

मदात्ययजन्य दाहमें कर्त्तव्यकर्म ।

कुमुदोत्पलपत्राणांसिक्तानाञ्चन्दनाम्बुना ॥ हिताःस्पर्शामनोज्ञानांदाहेमयसमुत्थिते। कथार्थविविधाःशस्ताःशब्दाश्च शिखिनांशिवाः ॥ तोयदानाश्चदाहाद्दि शमयन्तिमदात्ययम् । जलयन्त्राभिवर्षीणिवातयन्त्रवहानिच ॥ कल्पनीयानि भिषजादाहेधारागृहाणिच । फलिनीसेव्यलोधाम्बुहेमपत्रंकुटन्नटम् ॥ कालीय करसोपेतंदाहेशस्तंमलेपनम् । बदरीप ल्लवोत्थाश्चतथैवारिष्टकोद्भवाः । फेनि लायाश्चयःफेनस्तैर्दाहेलेपनंशुभम् ॥ सुरासमण्डादध्यम्लंमातुलुङ्गरसोमधु ॥ सेकमदेहेशस्यन्तेदाहघ्नाःसाम्लकाञ्जिकाः । परिषेकावगाहेषुव्यञ्जनानाञ्चसेवने । शस्यतेशिशिरंतोयंदाहतृष्णामशान्तये ॥ मात्राकालमयुक्तेनकर्म्मणानेन शाम्यति । धीमतोवैद्यवश्यस्यशीघ्रंपित्त मदात्ययम्।

अर्थ—मद्यसे उत्पन्न हुए दाहमें चन्दन के जल से सींचे हुए कमोदनी और कमल के मनोज्ञ पत्तों का स्पर्श हितहै, अनेक प्रकारकी कथा, मोरोंका मधुर शब्द, बादलों की गर्जन ये सब मदात्यय को शान्त करने वाले हैं । इस दाहमें रोगी को ऐसे धारागृहमें निवास करावे जिसमें फव्वारे चलतेहो और कलके पंखों की हवा आतीहो। इस दाह में प्रियंगु, खस, लोध, नेत्रबाला हेमपत्र और कुटन्नट इनको पीत चन्दन के जलमें पीसकर लेप करै । अथवा बेर के पत्तोंकेझाग, नीमके पत्तों के झाग, या रीठा के झागों का भी लेपकरने से दाह शान्त होता है । सुरामण्ड, दही, खटाई, बिजौरेका रस, शहत इनको अम्लकांजी में मिलाकर परिषेक और प्रदेहमें उपयुक्त करने से दाह शान्त होजाता है । शीतल जलसे परिषेक स्नान और जलाई पंखोंकी हवाका सेवन दाह और तृषाकी शान्ति के निमित्त है । यथोचित कालमें मात्रा के अनुसार इन कर्म्मोंका प्रयोग करने से बुद्धिमान और वैद्यानुयायी रोगीका मदात्यय शीघ्र शान्त होजाताहै

कफमद्यकी तृषा के उपाय ॥

उल्लेखनोपवासाभ्यांजयेत्कफमदात्यय म् ॥ तृष्यतेसलिलंचास्मैदद्याद्धीबेरसा धितम् । बलायाःपृश्निपर्ण्यावाकण्टका र्य्याथवाशृतम् ॥ सनागराभिःसर्वाभि र्जलंवाशृतशीतलम् । दुःस्पर्शितेनमुस्ते नमुस्तपर्पटकेनवा ॥ जलंमुस्तैःशृतंवा पिदद्याद्दोषविपाचनम् । एतदेवचपानी यंसर्वत्रापिमदात्यये ॥ निरत्ययंपीयमा नंपिपासाज्वरनाशनम् ॥

अर्थ—कफजन्य मदात्यय को वमन और लंघन द्वारा दूर करै, इस रोगमें तृषाकी प्रबलता होने पर नेत्रवाला डालकर औटा याहुआ जल ठंडा करके देवै । अथवा खरैटी, पृश्णिपर्णी वा कटेरीका ठंडा क्वाथ देवै, अथवा तीनों ये और चौथी सोंठ डालकर औटायाहुआ जल ठंडा करके देवै ॥ अथवा जवासा और मोथा अथवा मोथा और पित्तपापडा अथवा केवल मोथा डालकर औटाया हुआ जल पान कराने से दोष पचजातेहैं॥ सब मदात्ययोंमें इन्हींका प्रयोग श्रेष्ठहै । इस के पीनेसे किसी प्रकारका उपद्रव नहीं होताहै, किन्तु तृषा और ज्वर नष्ट होजातेहैं ॥

कफमदात्ययमेंअन्यप्रयोग ।

निरामंकांक्षितंकालेसक्षौद्रंपाययेत्स्नुतम् । शार्करंमधुवाजीर्णमारिष्टंशीधुमेववा ॥ रूक्षतर्पणसंयुक्तंयवानीनागरान्वितम् । यवगोधूमिकंचान्नंरूक्षयूषेणभोजयेत् ॥ कुलत्थानांसुशुष्कानांमूलकानांरसेनवा॥ तनुनाल्पेनलघुनाकट्वम्लेनाल्पसर्पिषा॥ व्योषयूषमथाम्लंवायूषंवासाम्लवेतसम् । छागमांसरसंरूक्षमम्लंवाजांगलंरसम् ॥ स्थाल्यांवाथकपालेवाभृष्टंनीरसवार्तिनम्। कट्वम्ललवणंमांसंभक्षयन्प्रणुयान्मधु ॥

अर्थ—जब कफमदात्यय में रोगी का आम दूर होजाय और भूख पर इच्छाहो तब उस समय उसे शहद डालकर शर्करा मद्य देवे अथवा पुराना शहत, वा अरिष्ट वा शीधु पान करावै । इस रोग में अजवायन और सोंठ डालकर रूक्षतर्पण देवे अथवा रूक्ष यूपके साथ जौ और गेहूं का अन्न देवे ॥ अथवा कुलथीका यूप वा अत्यन्त सूखीहुई मूलियोंका रस पतला, थोडा, हलका, कटु और अम्लयुक्त थोडा घी डालकर देवै । अथवा त्रिकुटा डालकर अम्लयूप वा अमलवेत डालाहुआ यूप वा बकरे का रूक्ष मांसरस वा अम्लजांगल पशुओं का मांसरस देवै । अथवा बटले वा मिट्टी के पात्रमें भूना हुआ नीरस मांस कटु, अम्ल और नमक डालकर भोजन करै ऊपर से शहत पीवै ॥

अन्यप्रयोग ।

त्वक्कमारिचिकंमांसमातुलुङ्गरसान्वितम्। भृष्टंदाडिमसाराम्लमुष्णयूपोपवेष्टितम्॥ यथाग्निभक्षयेत्कालेभूतार्द्रकपेशितम् । पिवेचानिगदंमद्यंकफप्रायेमदात्यये ॥ सौवर्चलमजाजीचवृक्षाम्लंसाम्लवेतसम् । त्वगेलामरिचार्द्धांशंशर्कराभागयोजितम्॥ एतल्लवणमष्टांगमग्निसन्दीपनंपरम् । मदात्ययेकफप्रायेदद्यात्स्रोतोविशोधनम् ॥

एतदेवपुनर्युक्त्याधूमराम्लैर्द्रवीकृतम्। गोधूमान्नयवान्नानांमांसानाञ्चातिरोचनम् पेषयेत्कटुकैयुक्तांश्वेतांबीजविवर्जिताम् मृद्वीकांमातुलुङ्गस्यदाडिमस्यरसेनवा ।

अर्थ—तेजमिरच डालकर तथा विजौरे का रस मिलाकर मांसको भूने इसमें अनारदाने की खटाई डालकर गरम २ यूप का जठराग्नि के बल के अनुसार भक्षण करै इसमें बहुतसी अदरख भी पीसकर डालदेवै इस कफजन्य मदात्यय में निगद मद्य का पान करावै । अथवा संचलनमक कालाजीरा, वृक्षाम्ल, अमलवेत, दालचीनी, छोटी इलायची और नमक से आधी मिश्री डालकर चूर्ण तय्यार करै । यह चूर्ण अत्यन्त अग्निसंदीपन है, इस चूर्णको **अष्टांगलवण** कहते हैं, । यही चूर्ण स्रोतः समूह के मार्गों का शुद्ध करनेवाला भी है । इसी चूर्णको मधुराम्ल द्रव्यों से पतला करके गेहूं और जौ के पदार्थ तथा मांस के साथ सेवन करै तौ अत्यन्त रुचि बढै ॥ अथवा मिरच आदि तीक्ष्ण द्रव्योंको डालकर सफेद दूव, विनावीजकी दाखको विजौरे अथवा अनार के रसमें पीसकर सेवन करै ॥

अन्यप्रयोग ॥

सौवर्चलैलामरिचैरजाजीभृङ्गदीप्यकैः । सरागःक्षौद्रसंयुक्तःश्रेष्ठोरोचनदीपनः ॥ मृद्वीकानांविधानेनकारयेत्कारवीमपि । युक्तमत्स्यण्डिकोपेतंरागंदीपनपाचनम् । आम्रामलकपेशीनांरागान्कुर्य्यात्पृथक्पृथक् । धान्यसौवर्चलाजाजीकारवीमरिचान्वितान् ॥ गुडेनमधुयुक्तेनव्यक्ताम्ललवणीकृतान् । तैरन्नंरोचतेदिग्धंसम्यक्भुक्तंविजीर्य्यति ॥

अर्थ—संचरनमक, छोटीइलायची, कालीमिरच, जीरा, भांगरा, अजवायन, इनका चूर्ण रागपाडव और शहत में मिलाकर सेवनकरै॥ यह अत्यन्त उत्तम रुचिवर्द्धक और अग्निसंदीपन प्रयोगहै ॥ विधिपूर्वक दाख, कारवी और मिश्री का रागपाडव दीपन और पाचन होता है । आम और आंवले के गूदे का जुदा २ रागपाडव बनावै । और इनमें धनिया, संचरनमक, जीरा, कारवी और मिरच डालै तथा गुड और शहत भी मिलावै, खटाई और नमक तेज डालै। इन रागपाडवों से भोजन करै तौ अच्छी तरह पचजाय ॥

अन्यउपचार ।

रूक्षोष्णनान्नपानेनस्नानेनाशिशिरेणच । व्यायामलंघनाभ्यांचयुक्ताभ्यांजागरेणतु कालेयुक्तेनतीक्ष्णेनस्नानेनोद्वर्तनेनच । स्नानवर्णकवासानांमहर्घाणाञ्चसेवया॥ सेवयायमनानाञ्चगुरूणामगुरोरपि ॥ सकामोष्णसुखाढ्यानामङ्गनानाञ्चसेवया सुखशिक्षितहस्तानांस्त्रीणांसंवाहनेनच । मदात्ययःकफप्रायःशीघ्रमेवोपशाम्यति ।

अर्थ—रूक्ष और उष्ण अन्नपान का सेवन, उष्णजल से स्नान, व्यायाम, उपवास, जागरण, तीक्ष्ण द्रव्यों का उवटना करके स्नान करना, रूक्षवस्त्र

तदुक्तमखिलंमदात्ययचिकित्सिते ॥

अर्थ —इस मदात्यय चिकित्सित नामक अध्यायमें भगवती मदिरादेवीका प्रभाव उसके पीनेकी विधि, मदिराके द्रव्य, जिस को यह अभीष्ट है, मदिराके भिन्न भिन्न मदोंके भेद, मदिराके महागुण, मद के तीन भेद, तीनोंके पृथक् पृथक् लक्षण, मद्यकृत दोष, मद्यकृत गुण, तीन प्रकारके मदिरालय, तीनों सत्वोंके पृथक् २ लक्षण, मद्यपानके योग्य साथी, जिनको देरमें नशाहोवे और जिनको शीघ्रनशाहोवे ऐसे पुरुषोंका वर्णन मदात्यय के हेतु और लक्षण, मद्यसे उत्पन्न हुए रोगोंकी चिकित्सा, ये सब बातें पूरीरीति, से वर्णन की गई हैं।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचिता यांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सित स्थाने मदात्यय चिकित्सितं-नाम द्वादशोऽध्यायः॥१२॥

———:*:———

त्रयोदशोऽध्यायः।

अथातोद्विव्रणीयचिकित्सितंव्याख्या स्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम द्विव्रणीय चिकित्सितनामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

परावरज्ञमात्रेयंगतमानमदव्यथम्॥अग्नि वेशोगुरुंकालेविनयादिदमुक्तवान्॥भगव न्पूर्वमुद्दिष्टौद्वौव्रणौरोगसंग्रहे॥तयोर्लिंगं चिकित्साञ्चवक्तुमर्हसिशर्म्मद ॥ इत्यग्निवेशस्यवचोनिशम्यगुरुरब्रवीत्॥ यौव्रणौपूर्वमुद्दिष्टौनिजश्चागन्तुरेवच॥भृणु तांविधिवत्सौम्यतयोर्लिंगञ्चभेषजम्॥

अर्थ—अग्निवेशने अवकाश पाकर अति नम्रतासे परावरके जाननेवाले, मान, मद और व्यथा से रहित अपने गुरु आत्रेय से पूछा कि भगवन्! जो आपने रोगोंके संग्रहमें दो प्रकार के व्रणोंका वर्णन किया था अब आप हे कल्याणदाता! उनके लक्षण और चिकित्सा कहो। अग्निवेशके इस वचन को सुनकर गुरु बोले कि हे सौम्य? जो निज और आगन्तु दो प्रकार के व्रणों का वर्णन किया गया है, उनके विधिपूर्वक लक्षण और चिकित्साश्रवण करो।

निजागन्तुव्रणों के लक्षण।

निजःशरीरदोषोत्थआगन्तुर्बाह्यहेतुजः॥

अर्थ—जो शरीर के दोष से उत्पन्न होते हैं वे निजव्रण कहाते हैं, तथा जो बाहर के हेतुओं से उत्पन्न होतेहैं वे आगन्तुव्रण होते हैं।

आगन्तुव्रण के हेतु।

वधबन्धप्रपतनाद्दंष्ट्रादन्तनखक्षतात्। आगन्तुवोव्रणास्तद्वद्विषस्पर्शाग्निशस्त्रजाः॥ मन्त्रागदप्रलेपाद्यैर्भेषजैर्हेतुभिश्चते। लिङ्गैकदेशैर्निर्दिष्टाविपरीतानिजैर्व्रणाः॥

अर्थ—वध, बन्ध, प्रपतन (गिरपडना) डाढ, दांत नख आदिका लगना विषका स्पर्श, अग्निसे जलना, शस्त्रका लगना, मन्त्र, औषधका लेप आदि हेतुओंसे आगन्तुव्रण होते हैं। इसीतरह निज लक्षणों के एक देशद्वारा जो व्रण निर्दिष्ट

होते हैं वे निज हैं उनकी उत्पात्ति ऊपर कहेहुये हेतुओं से विपरीत होती है।

व्रणानांनिजहेतूनामागन्तूनामसाध्यताम् । कुर्य्याद्दोषवलापेक्षीनिजानामपिधंतथा ॥

अर्थ—दोष और वल की अपेक्षा करके निज और आगन्तुव्रणोंकी चिकित्सा करै अव निज व्रणोंकी औषधियोंका वर्णन करतेहैं।

निजव्रणों का कारण।

यथास्वैर्हेतुभिर्दुष्टावातपित्तकफानृणाम्। वहिर्मार्गसमाश्रित्यजनयन्तिनिजान्व्रणान्॥

अर्थ—अपने २ हेतुओं से दूषितहुये वातपित्त कफ वहिर्मार्ग का अवलम्बन कर के निज व्रणों को उत्पन्न करते हैं।

वातजव्रणकेलक्षण

स्तब्धःकठिनसंस्पर्शोमन्दस्रावोऽतितीव्ररुक् । तुद्यतेस्फुरतिश्यावोव्रणोमारुतसम्भवः ॥

अर्थ—जो व्रण वातसे उत्पन्न होता है वह स्तब्ध, छूने में कठोर, धीरे २ स्रावित होनेवाला, अत्यन्त तीव्र शूलयुक्त, तोदयुक्त, स्फुरणयुक्त, कृष्णवर्ण होताहै।

वातजव्रणका चिकित्साक्रम।

संपूरणैःस्नेहपानैःस्निग्धैःस्वेदोपनाहनैः। प्रदेहैःपरिषेकैश्चवातव्रणमुपाचरेत् ॥

अर्थ—संपूरण, स्नेहपान, स्निग्धस्वेद, स्निग्ध उपनाहन, प्रदेह, परिषेक से वातजव्रण की चिकित्सा करै।

पित्तजव्रणकेलक्षणऔरचिकित्सा

तृष्णामोहज्वरस्वेददाहावदरणौषधैः । व्रणंपित्तकृतंविद्यात्गन्धस्रावैःसपूतिकैः॥ शीतलैर्मधुरैस्तिक्तैःप्रदेहपरिषेचनैः । सर्पिःपानैर्विरेकैश्चपैत्तिकंशमयेद्व्रणम् ॥

अर्थ—पित्तजव्रण में तृष्णा, मोह, ज्वर, स्वेद, दाह, औषधियों द्वारा अवदारण, दुर्गन्ध, दुष्टस्राव होते हैं । शीतल, मधुर, तिक्त, प्रदेह, परिषेक तथा घृतपान और विरेचन द्वारा इसकी चिकित्सा कीजाती है।

कफजव्रणके लक्षणादि।

वहुपिच्छोगुरुःस्निग्धःस्तिमितोमन्दवेदनः पाण्डुवर्णोऽल्पसंक्लेदश्चिरकारीकफव्रणः कषायकटुरूक्षोष्णैःप्रदेहपरिषेचनैः ॥ कफव्रणप्रशमयेत्तथालंघनपाचनैः ॥

अर्थ—कफजव्रणमें वहुत पिच्छलता, भारापन, स्निग्धता, स्तिमिता, मंदवेदना, पाण्डुवर्ण, अल्पसंक्लेद तथा चिरकारिता होती है. अर्थात् इसमें वहुत दिन लगतेहैं । कषाय, कटु, रूक्ष, उष्ण, प्रदेह, परिषेक तथा लंघन और पाचन द्वारा कफव्रणकी चिकित्सा होती है।

दोनोंव्रणोंकेभिन्न २ भेद ।

तौद्वौनानात्वभेदेननिरुक्ताविंशतिव्रणाः। तेषांपरीक्षात्रिविधाप्रदुष्टाद्वादशस्मृताः॥ स्थानान्यष्टौतथागंधाःपरिस्रावाश्चतुर्दश। षोडशोपद्रवादोषाश्चत्वारोविंशतिस्तथा तथाचोपक्रमाःसिद्धाःषट्त्रिंशत्समुदाहृताः । विभाज्यमानाःशृणुतानसर्वानत्रयथेरितान् ॥

हैं तो व्रण कष्टसाध्य होताहै और जो सबही गुणों का अभाव होता है तो व्रण दुःसाध्य होताहै ।

व्रणमें प्रथमकर्त्तव्य ।

व्रणानामादितःकार्य्ययथासन्नंविशोधनम् । ऊर्ध्वभागैरधोभागैःशस्त्रैर्बस्तिभिरेवच ॥ सद्यःशुद्धशरीराणांप्रशमंयान्तिहिव्रणाः ।यथाक्रममतश्चोर्ध्वंश्रृणुसर्वानुपक्रमान् ॥

अर्थ—व्रणकी चिकित्सा करनेके आरम्भमें प्रथमही व्रणका संशोधन करना उचित है और यह संशोधन आसन्न अर्थात् समीपवर्ती होना चाहियें अर्थात् कफज-व्रणमें ऊर्ध्वभागगामी संशोधनदेवै, पित्तज व्रणमें अधोभागगामी अर्थात् दस्त करावै । रक्तजव्रणमें फस्त खोले, और वातजव्रणमें वस्तिप्रयोग करै । इसतरह शरीरके शुद्ध होनेपर व्रण बहुत शीघ्र शान्त होजाते हैं । अब हम यहांसेयथाक्रम सबकी चिकित्सा वर्णन करते हैं ।

छत्तीसप्रकारकीचिकित्सा ।

शोफघ्नंषड्विधंश्चैवशस्त्रकर्म्मावपीडनम् । निर्वापणंससन्धानंस्वेदःशमनमेषणा । शोधनीरोपणीयाश्चकषायाःसमलेपनाः ॥ द्वौस्नेहौतद्गुणौपत्रच्छेदेद्वेचबन्धने । भोज्यमुत्सादनंदाहोद्विविधःसावसादनः ॥ काठिन्यमार्दवकरेधूपनालेपनेशुभे । व्रणावचूर्णनंवर्ण्यलेपनंलोमरोपणम् ॥ इतिषट्त्रिंशदुद्दिष्टाव्रणानांसमुपक्रमाः ॥

अर्थ—शोफनाशक छः प्रकार के शस्त्र कर्म, अवपीडन, निर्वापण, संधान, स्वेद, शमन, एषणा, दो प्रकार के शोधनकर्त्ता कषाय, दो प्रकार के रोपणकषाय, शोधन प्रलेप, रोपणप्रलेप, शोधन स्नेह, रोपण स्नेह, दो प्रकार का पत्रच्छद, दो प्रकार का बन्धन, भोजन विधि, उत्सादन, दो प्रकार का दाह, अवसादन, काठिन्यकर धूपन, काठिन्यकर आलेपन, मार्दवकर धूपन मार्दवकर आलेपन, व्रणावचूर्णन, व्रण को हितकारी लेप, लोमरोपण इसतरह व्रणोंकी ये ३६ प्रकार की चिकित्सा हैं ।

व्रणकेपूर्वरूपमेंकर्तव्य ।

पूर्वरूपंभिषग्बुद्ध्वाव्रणानांशोफमादितः। रक्तावसेचनंकुर्य्यादजातव्रणशान्तये । शोधयेद्बहुदोषान्तुस्वल्पदोषान्विलंघयेत् ॥ पूर्वंकषायैःसर्पिर्भिर्जयेद्वामारुतोत्तरम् ॥

अर्थ—वैद्य को उचित है कि जब से व्रणका पूर्वरूप विदित होनेलगे तबही अनुत्पन्न व्रण की शान्तिके निमित्त रुधिर निकाल देवै । जो व्रण बहुत दोषोंसे युक्त हो तो लंघन करावै ।

प्रथमही क्वाथ वा घृत प्रयोग से वाताधिक्य व्रण की शान्ति करै ।

शोफनाशकलेप ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलाः ससर्पिष्कःप्रलेपःस्याच्छोफनिर्वापणंपरम् । विजयामधुकंवीराविसग्रन्थिःशतावरी । नीलोत्पलंनागपुष्पंप्रदेहःस्यात्सचन्दनः ॥ शक्तवोमधुकंसर्पिः प्रदेहः

स्यात्सशर्करः । अविदाहीनिचान्नानि शोफेभेषजमुत्तमम् ॥ सर्वदैवमुपक्रान्तः शोफोनप्रशमंव्रजेत् । तस्योपनाहःपक्वस्य पाटनंहितमुच्यते ॥

अर्थ—बड़, गूलर, पीपल, पाकड, और वेत इनकी छालको पीसकर घृतमें सानकर लेप करनेसे शोफ दूर होजाती है । अथवा हरड़, मुलहटी, काकोली, कमलनाल की जड़, सतावर, नलिकमल, नागकेसर, रक्तचन्दन, इन को पीसकर लेप करनेसे शोफ जातारहता है । अथवा सत्तू, मुलहटी, घी और चीनी का लेप करै । शोफमें अविदाही अन्नका भोजनभी उत्तम औषध है । जो इन लेपों से शोफ की शान्ति न-हो तो उसपर लपसी या पुलटस बांधकर उसे पकाले और पकने पर चीरा लगादेवै।

शोफ पर पुलटिस ॥

तैलेनवासर्पिषावाताभ्यांवाशक्तुपिण्डिका । सुखोष्णाशोफपाकार्थमुपनाहःप्रशस्यते ॥ सतिलासातसीबीजदध्यम्लाशक्तुपिण्डिका । सकिण्वकुष्ठलवणाशस्तास्यादुपनाहने ॥

अर्थ— सत्तूमें तेल वा घी डालकर पुलटिस तयार करै, इसको गरम शोफ के पकानेके निमित्त बांध देवै ॥ अथवा तिल, अलसी, दही, कांजी, सत्तू, सुराबीज, कूठ और नमक इनकी पुलटिस भी बहुत अच्छी होती है ॥

विदग्ध शोथके लक्षण ।

रुग्दाहरागतोदैश्चविदग्धंशोथमादिशेत् ॥

अर्थ—जिस सूजनमें वेदना, जलन, सूची भेदन के समान पीडा होती है उसे विदग्ध कहते हैं ।

पक्व शोथ के लक्षण ।

जलवस्तिसमस्पर्शंसंपक्वंपिण्डितोन्नतम्

अर्थ—जो स्पर्श करने में जलकी मशक के समानहो, गोल तथा ऊंचाहो उसे पक्व समझो ।

पक्वशोथ के भेदन कर्त्ता द्रव्य ।

उमाथगुग्गुलुःसौधंपयोदक्षकपोतयोः । विट्पलाशभवःक्षारोहेमक्षीरीमकूलकः॥ इत्युक्तोभेषजगणःपक्वशोथप्रभेदनः । सुकुमारस्यकृच्छ्रस्यंशस्त्रन्तुपरमुच्यते ॥

अर्थ—पकीहुई सूजन को फाडने वाले ये द्रव्य हैं, यथा—गूगल, सेंहुडका दूध, मुर्गा और कबूतरकी बीट, विड्नमक, ढाक का खार, स्वर्णक्षीरी और दन्ती । जो शोफ कोमल और कष्ट साध्य हो अर्थात् औषधों से न फटतीहो तो शस्त्र कर्म करे ।

छः प्रकार के शस्त्र कर्म ।

पाटनंव्यधनंचैवछेदनंलेखनंतथा । प्रच्छन्नंसीवनञ्चैवषड्विधंशस्त्रकर्म्मतत् ।

अर्थ—पाटन, व्यधन, छेदन, लेखन, प्रच्छन्न और सीवन, ये छः प्रकार के शस्त्र कर्म होते हैं ।

पाटन के योग्य शोथ ।

नाडीव्रणाःपक्वशोथास्तथाक्षतगुदोदरम्॥ अन्तः शल्याश्रयेदेशाः पाट्यास्तेतद्विधाश्रये ॥

अर्थ—नाडीव्रण, पक्वशोथ, क्षतगुदोदर अन्तःशल्य (जिनके भीतर शल्यहो) तथा ऐसेही और भी पाटन अर्थात् चीरा लगने के योग्य होते हैं ।

व्यधन योग्य व्रण ।

दकोदराणिसंपक्वागुल्मायेयेचरक्तजाः॥ वध्याःशोणितरोगाश्चविसर्पपिडकादयः

अर्थ—दकोदर [जलंधर], पकाहुआ गुल्म, रक्तजगुल्म, तथा विसर्प और पिड कादिक अन्य. रक्तके रोग व्यधन अर्थात् बेधने के योग्य होते हैं ।

छेदनीय व्रण ।

उद्वृत्तान्स्थूलपर्य्यन्तानुत्सन्नान्कठिनान् वृणान् । अर्शःप्रभृत्यधीमांसंछेदनेनोप पादयेत् ॥

अर्थ—उद्वृत्त [जिसका गोलासा बन गयाहो], स्थूलपर्य्यन्त (जिसके किनारे मोटे हों), जो उत्सन्न और कडा हो, अर्श आदि रोग जिनमें मांस बढ गयाहो वे छेदनके योग्य होते हैं ॥

लेखन के योग्य रोग ।

किलासानिसकुष्ठानिलिखेल्लेख्यानि-बुद्धिमान् ।

अर्थ—किलास और कोढ आदि लेख नीय रोगोंका लेखन करै ॥

प्रच्छनके योग्यरोग ।

वातासृग्ग्रन्थिपिडिकाः सकोठारक्तमण्ड लाः ॥ कुष्ठान्यभ्याहतंचाङ्गंशोथांश्चप्र च्छयेद्भिषक् ।

अर्थ—वातरक्त, ग्रन्थि, पिडका, कोठ (पित्ती) रक्तमण्डल (खूनके चकत्ते), कुष्ठ, अभ्याहत अंग और शोथ ये प्रच्छन्न अर्थात् पछना के योग्य होते हैं ।

सीवन के योग्य व्रण ।

सीव्यंकुक्ष्युदराद्यन्तुगम्भीरंयद्विपाटित-म् ॥ इतिषड्विधमुद्दिष्टंशस्त्रकर्म्ममनी षिभिः ।

अर्थ—कूख और उदर में जो गहरा फटगया हो वह सीवन के योग्य होता है । ये छः प्रकार के शस्त्रकर्म पण्डितों ने वर्णन किये हैं ।

पीडनयोग्य व्रण ।

सूक्ष्माननाःकोपवन्तोयेवृणास्तान्प्रपी-डयेत् ॥

अर्थ—सूक्ष्ममुखवाले तथा कोपवानव्रण (जो भीतर पोला पडजाता है) प्रपीडन के योग्य होते हैं ।

पीडनद्रव्य ।

कलायाश्चमसूराश्चगोधूमाःसहरेणवः । कल्कीकृताःप्रशस्यन्तेनिःस्नेहाव्रणपीडने

अर्थ—कलाय, मसूर, गेहूं, रेणुका इन का कल्क करके विना चिकनाई डालेव्रण पर चिपकादेवै ।

अन्यप्रयोग ।

शाल्मलीत्वग्बलामूलंतथान्यग्रोधपल्लवाः न्यग्रोधादिकमुद्दिष्टंबलादिकमथापिवा ॥ आलेपनंनिर्वापणंतद्विधान्यैश्चसेचनम् ॥ सर्पिषाशतधौतेनपयसामधुकाम्बुना । निर्वापयेत्सुशीतेनरक्तपित्तोत्तरान्वृणान् लम्बानिवृणमांसानिप्रलिप्यमधुसर्पिषा

नूप मांस, वेशवार, तथा गरम २ छपडी द्वारा स्वेदन देवै। इस स्वेदन से रोगी को शीघ्रही सुख प्राप्त होताहै॥ जिन वातप्रधान व्रणों में दाह और वेदना इन दोनों की अधिकता होती है उन में तिल और अलसी को भूनकर दूध में भिगो देवे। फिर उसी दूध के साथ उन्हें पीसकर लेपकरदेवे॥

व्रणोंपरप्रयोग।

वलागुडूचीमधुकंपृश्निपर्णीशतावरी ॥ जीवन्तीशर्कराक्षीरंतैलमत्स्यवसाघृतम्। ससिद्धासमधूच्छिष्टाशूलघ्नीस्नेहशर्करा॥ द्विपञ्चमूलक्वथितेनाम्भसापयसाथवा। सर्पिषावासतैलेनकोष्णेनपरिषेचयेत् ॥ यवचूर्णसमधुकंसतैलंसहसर्पिषा। दद्यादालेपनंकोष्णंदाहशूलोपशान्तये ॥ उपनाहश्चकर्त्तव्यःसतिलोमुद्गपायसः। रुग्दाहयोःप्रशमनोव्रणेष्वेषुविधिर्हितः।

अर्थ—खरेटी, गिलोय, मुलहटी, पृष्णिपर्णी, सितावर जीवन्ती, चीनी, दूध, तेल, मछली, चर्बी, घी और मोम इन को पककरके लेप करै तो व्रणका शूलजाता रहता है। इस मरहम का नाम स्नेह शर्करा है॥

दशमूल डालकर सिद्ध किया हुआ कुछ कुछ गरम जल वा दूध अथवा तेल मिले हुए घृत का सेचन करै॥

जौं का चून, मुलहटी, तेल और घी इन को पक्व करके सुहाते हुए गरमका लेप करने से दाह और शूल शान्त होजातेहै॥

तिल और मूंग को दूध के साथ पीस कर लेप करने से वेदना और दाह शान्त होजाते हैं॥

एषणीय व्रण।

सूक्ष्मानानावहुस्रावाकोशवन्तश्चयेव्रणाः ॥ नचमर्माश्रितास्तेषामेषणांहितमुच्यते।

अर्थ—जो व्रण सूक्ष्म, अनेक प्रकार के वहुत स्रावयुक्त और कोशयुक्त हों परन्तु मर्म स्थान में न हों उन में सलाई डालना हितकरहै॥

एषणा के भेद।

द्विविधामेषणांविद्यात्मृद्वीञ्चकठिनामपि उद्भिदैर्मृदुभिर्नालैर्लोहानांवाशलाकया। गम्भीरमांसगेदेशेपार्श्वेलौहशलाकया॥ एष्यंविद्याद्व्रणंनालैर्विपरीतमतोभिषक्

अर्थ—एषणा अर्थात् सलाई मृदु और कठिन दो प्रकार की होतीहै। इन में से उद्भिदकी सलाई मृदु और लोहे की कठिन होती है। जहां गहरा मांस हो वहां लोहे की सलाई डाले और जहां गहरा मांस न हो वहां मृदु सलाई डाले॥

शोधनीय व्रण।

पूतिगन्धान्विवर्णांश्चवहुस्रावान्महारुजः ॥ व्रणानशुद्धान्विज्ञायशोधनैःसमुपाचरेत् ॥

अर्थ—जिन व्रणों में दुर्गन्ध आती हो, जो विवर्ण, बहुस्रावी, अत्यन्त, वेदनायुक्त, और अशुद्ध हों उन को प्रथम शुद्ध करै।

शोधनद्रव्य।

त्रिफलाखदिरोदार्वीन्यग्रोधोऽतिवलाकुशः। निम्बकोलकपत्राणिकषायाःशोधनामताः॥ तिलकल्कःसलवणो

द्वेहरिद्रेत्रिवृद्घृतम् । मधुकंनिम्बपत्राणि प्रलेपोव्रणशोधनः ॥

अर्थ—त्रिफला, खैरसार, दारुहल्दी, न्यग्रोधादि गण, अतिबला, कुशा, नीमके पत्ते बेरके पत्ते इनके क्वाथसे व्रण को धोवै तौ व्रण शुद्ध हो जाताहै। तिलका कल्क, सेंधानमक, दोनों हल्दी, निसोथ, घृत, मुलहटी और नीमके पत्तों का लेप करनेसे व्रण शुद्ध होजाता है॥

रोपणीय व्रणोंकी चिकित्सा ।

नातिरक्तोनातिपाण्डुर्नातिश्यावोनचातिरुक् । नचोत्सन्नोनचोत्सङ्गीशुद्धोरोप्यः परंव्रणः॥ न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थकदम्बप्लक्षवेतसाः । करवीरार्ककुटजाःकषाया रोपणाःस्मृताः॥चन्दनंपद्मकिञ्चल्कंदार्वीत्वङ्नीलमुत्पलम् । मेदांमूर्वासमङ्गाश्चयष्ट्याह्वंवर्णरोपणम् ॥ मपुण्डरीकंजीवन्तीह्रोजिह्वांधातकींबलाम् । रोपणंसतिलंकुर्यात्प्रलेपंसघृतंव्रणे ॥ कम्पिल्लकंविडंगानिवत्सकंत्रिफलांबलाम् ॥ पटोलंपिचुमर्दंचरोध्रंमुस्तांप्रियंगुकम् ॥ खदिरंधातकींसर्जंमेलामगुरुचन्दने । पिष्ट्वासाध्यंभवेत्तैलंतत्परंव्रणशोधनम् ॥ प्रपुण्डरीकंमधुकंकाकोल्यौद्वेसचन्दने । सिद्धमेतैःसमस्तैलंतर्पणंव्रणरोपणम्॥दूर्वास्वरससिद्धंवातैलंकम्पिल्लकेनवा ।दार्वीत्वचश्चकल्केनप्रधानंव्रणरोपणम्॥येनैवविधिनातैलंघृतंतेनैवसाधयेत् । रक्तपित्तोत्तरंदृष्ट्वारोपणीयंघृतंतथा ॥ कदम्बार्जुननिम्बानांपाटल्याःपिप्पलस्यच । व्रणप्रच्छादनेविद्वान्पत्राण्यर्कस्यचादिशेत्॥ वाक्षोऽथवादरश्चैवपट्टोव्रणहितःस्मृतः॥ बन्धश्चद्विविधःशस्तोव्रणानांसव्यदक्षिणः

अर्थ....जो व्रण अत्यन्त लाल, पाण्डुवर्ण श्याव, वेदनायुक्त, उत्सन्न और उत्संगी नहीं होते हैं वे रोपण करने के योग्य होते हैं । वड़, गूलर, पीपल कदम्ब, पाकर, वेत, कनेर, आक, कुड़ाकी छाल, इनका कषाय रोपणकर्त्ता होताहै॥ रक्तचन्दन, लाल कमल की केशर, दारुहल्दीकी छाल, नीलकमल, मेदा, मूर्वा, लज्जालू और मुलहटी ये व्रणको रोपण करने वाले हैं ॥पुण्डरिया, जीवन्ती, गोभी, धायके फूल, खरैटी, तिल इनके कल्कको घीमें सानकर लेप करनेसे व्रणका रोपण होता है ॥कबीला, बायविडंग, इन्द्रजौ, त्रिफला, खरैटी, परवल, नीम, लोध, मोथा, प्रियंगु, खैर, धायके फूल, राल, इलायची, अगर, चन्दन इनका तेल व्रणको शोधन कर्त्ता होताहै ॥ पुण्डरिया, मुलहटी, दोनों काकोली, चन्दन, इनके साथमें सिद्ध कियाहुआ तेल तर्पणकर्त्ता और रोपणकर्त्ताहै।दूबका रस डालकर अथवा कबीला डालकर अथवादारुहल्दी की छाल डालकर सिद्ध किया हुआ तेल व्रणरोपण के निमित्त अत्यन्त उत्तम प्रयोग है । जिन २ द्रव्यों को डालकर तेल पकाया जाता है उनही से घृत भी सिद्ध किया जाता है । जो व्रणमें रक्त पित्त की अधिकता होती है तौ घृतही प्रयुक्त किया जाता है। कदम्ब, अर्जुन, नीम, पाटला, पीपल और आक के पत्ते व्रण के ढकनेमें काम आते हैं रूएंदार चर्म या

सूती कपडे की पट्टी व्रण पर बाई और दाहिनी दोनों ओर से बांधी जाती है ॥

व्रणपर पथ्यविधि ।

लवणाम्लकटूष्णानिविदाहीनिगुरूणि च ॥ वर्जयेदन्नपानानिव्रणीमैथुनमेवच। नातिशीतगुरुस्निग्धमविदाहियथाक्रमम्। अन्नपानंव्रणहितंहितंनास्वापनंदिवा ॥

अर्थ—नमकीन, खट्टा, कडवा, ऊष्ण, विदाही और भारी अन्नपान तथा मैथुन व्रणरोग में वर्जितहै॥ न अत्यन्त शीतल न भारी, न स्निग्ध, अविदाही अन्नपान और दिनमें न सोना ये व्रणमें हितकर होते हैं॥

स्तन्यानिजीवनीयानिबृंहणीयानियानि च । उत्सादनार्थंनिम्नानांव्रणानांतानि कल्पयेत् ॥ भूर्जग्रन्थ्यश्मकासीसमधोभागानिगुग्गुलुः । व्रणावसादनंतद्वत्क लविङ्ककपोतविट् ॥

अर्थ—नीचे व्रणोंको ऊंचा करने केलिये स्तन्यवर्द्धक गणोक्त, जीवनीयगणोक्त और बृंहणीय गणोक्त औषधोंका प्रलेप करे॥ भोजपत्र की गांठ, पाखानभेद, हीराकसीस और गूगलका लेप करनेसे व्रण एक होजाता है और इसीतरह मुर्गे और कबूतर की बीट का प्रयोग भी किया जाता है ॥

अग्निकर्मकेयोग्यव्रण

रुधिरेऽतिप्रवृद्धेतुछिन्नेछेद्येऽधिमांसके । कफग्रन्थिषुगण्डेषुवातस्तम्भानिलार्तिषु॥ गूढपूयलसीकेषुगम्भीरेषुस्थिरेषुच । क्लिन्नेषुचाङ्गदेशेषुकर्माग्नेः संप्रशस्यते ॥

अर्थ—छेदन के योग्य, अधिमांसके काटनेपर जो रुधिर अत्यन्त बहने लगे तो, कफग्रंथि, गलगण्ड, वातस्तम्भ, वातजवेदना, गूढपूय (जिस में पीव बहुत भीतरको हो), गूढलसीका, गंभीर, स्थिर, और क्लिन्न अंगावयवों में अग्निकर्म श्रेष्ठ होताहै ।

मधुच्छिष्टेनतैलेनमज्जक्षौद्रवसाघृतैः । तप्तैर्वाविविधैर्लोहैर्दहेद्दाहविशेषवित् ॥ रूक्षाणांसुकुमाराणांगम्भीरान्मारुतोत्तरान् ॥ दहेत्स्नेहैर्मधूच्छिष्टैर्लोहैःक्षौद्रैस्ततोऽन्यथा॥

अर्थ—मोम, तेल, मज्जा, शहत, चर्वी, घी, तथा लोहा आदि अनेक धातुओंको गरम कर करके व्रण को दग्ध करे । रूक्ष कोमल, गम्भीर और वाताधिक्य व्रणोंको स्नेह और मोम द्वारा दग्ध करे । पित्ताधिक्य व्रणको लोह द्वारा और कफाधिक्य व्रणको शहतद्वारा दग्धकरे ।

अग्निकर्म के अयोग्यव्याक्ति ।

बालदुर्बलवृद्धानांगर्भिण्यारक्तपित्तिनाम् । तृष्णाज्वरपरीतानामबलानांविषादिनाम्॥ नाग्निकर्मोपदेष्टव्यंस्नायुमर्मव्रणेषुच। सविशेषेषुचशल्येषुनेत्रकुष्ठव्रणेषुच

अर्थ—बालक, दुर्बल, वृद्ध, गर्भिणीस्त्री रक्तपित्तरोगी, तृषारोगी, ज्वररोगी, प्रबल विषादग्रस्त, स्नायुव्रणी, मर्मव्रणी, सविषरोगी, शल्ययुक्त रोगी, नेत्रव्रणी, कुष्ठव्रणी आदिरोगी अग्निकर्म से वर्जित हैं।

रोगदोषबलापेक्षीमात्राकालाग्निकोविदः। शस्त्रकर्माग्निकृत्येषुक्षारमप्यवचारयेत् ॥ कठिनत्वंव्रणायान्तिगन्धैःसारैश्चधूपिताः।

सर्पिर्मज्जवसाधूपैःशैथिल्यंयान्तिहिव्रणाः।
रुजःस्रावाश्चगन्धाश्चक्रिमयश्चव्रणाश्रिताः
शैथिल्यंमार्दवंवापिधूपनेनोपशाम्यति॥

अर्थ—रोग, दोष, वल, मात्रा काल और अग्नि की अपेक्षा करके शस्त्रकर्म और अग्निकर्मके योग्य स्थलोंमें क्षारका प्रयोग करे ॥ गन्धद्रव्य और रालआदि की धूनी देनेसे व्रण कड़ा पड़जाता है, इसी तरह घी, मज्जा और चर्बीकी धूनी देनेसे व्रण शिथिल पड़जाते हैं। व्रणकी वेदना, स्राव; गंध और क्रिमि तथा ढीलापन और मृदुता धूनी देनेसे मिटजाती है।

अन्यप्रयोग ॥

रोध्रन्यग्रोधशुङ्गानिखदिरस्त्रिफलाघृतम्
प्रलेपोव्रणशैथिल्यसौकुमार्य्याभिवाधनः॥
सरुजःकठिनाःस्तब्धानिरास्रावाश्चयेव्रणाः। यवचूर्णैःससर्पिष्कैर्वहुशस्तान्प्रलेपयेत् ॥ मुद्गषष्टिकशालीनांपायसैर्वायथाक्रमम्। सघृतैर्जीवनीयैर्वातर्पयेत्तानभीक्ष्णशः ॥ ककुभोदुम्वराश्वत्थरोध्रजाम्ववकट्फलैः। त्वचमाश्वेवगृह्णन्तित्वचूर्णैश्चूर्णिताव्रणाः ॥ मनःशिलैलामञ्जिष्ठालाक्षाचरजनीद्वयम्। प्रलेपःसघृतःक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरःपरः॥अयोरजःसकासीसंत्रिफलाकुसुमानिच। करोति लेपःकृष्णत्वंसद्यएवनवत्वचि ॥ कालीयकनताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमाः। लेपःसगोमयरसःसवर्णीकरणःपरः॥ क्रमुकाश्वत्थनिचुलमूलंलाक्षासगैरिका। सहेमश्चामृतासज्ञाकासीसञ्चेतिवर्णकृत् ॥

अर्थ—पठानी लोध, वडकी कोंपल, खैरसार, त्रिफला, घी इनका लेप व्रणकी शिथिलता और सुकुमारताको दूर करता है। जिन व्रणोंमें वेदना, कडापन, स्तब्धता, निरास्रावता होतीहै उनपर वहुत घी मिले हुए जौके चून का लेप करे। मूंग, साठी चांवल, शाली चांवल इनमें से प्रत्येक को दूधके साथ सिद्ध करके लेप करे अथवा जीवनीय गणोक्त औषधियों को घृतमें सानकर लेप करे तौ तर्पण होता है। अर्जुन गूलर, पीपल, लोध, जामन, कायफल इनकी छाल का चूर्ण करके लेप करने से व्रण पर शीघ्र खाल आजाती है। मनसिल, इलायची, मजीठ, लाख, दोनों हलदी, घी और शहत इनका लेप त्वचा को शुद्ध करता है। लोहचूर्ण, कसीस, त्रिफलाके फूल इनका लेप करने से नई त्वचा शीघ्र काली पडजाती है। कालीयक तगर, आमकी गुठली, नागकेसर, कान्तीसार इनको गोवर के रसमें मिलाकर लेप करनेसे व्रणकी त्वचा शरीर की अन्य त्वचा के समान होजाती है। सुपारी, पीपल की जड, हिंजलकी जड, लाख, गेरू, केसर, मुर्दासंग, हीराकसीस इनका लेप करने से व्रणका वर्ण देहकी त्वचाके समान होजाताहै॥

व्रणपर वालजमने की विधि.

चतुष्पदांहित्वग्लोमखुरशृंगास्थिभस्मना।
तैलाक्ताचूर्णिताभूमिर्भवेल्लोमवतीपुनः॥
षोडशोपद्रवायेचव्रणानांपरिकीर्तिताः।ते
षांचिकित्सानिर्दिष्टायथास्वंस्वेचिकित्सिते।

चितंमनोहयन्सञ्जनयेद्विकारम् ॥

अर्थ—बहुत भोजन करने से तथा शरीरके मन्द व्यवहारसे ऊष्मा सहित कफ मर्मस्थान अर्थात् हृदय में वृद्धि पाकर बुद्धि और स्मृतिका नाश करके चित्तको मुग्ध करता हुआ उन्मादको उत्पन्न करताहै।

कफज उन्माद के लक्षण।

वाक्चेष्टितंमन्दमरोचकश्चनारीविविक्तप्रियता।तिनिद्रा।छर्दिश्चलालाचबलञ्चभुक्तेनखादिशौक्ल्यञ्चकफात्मकेस्यात् ॥

अर्थ—वाणी और चेष्टाका मन्द पडजाना अरुचि होना, स्त्रियोंमें अनुराग, एकान्तकी अभिलाषा, अत्यन्त निद्रा, वमन, लालास्राव, भोजन के पीछे रोगकी वृद्धि, नख नयन, मूत्र पुरीषादिका सफेद पडजाना ये सब कफज उन्मादके लक्षण हैं ॥

सान्निपातिक उन्माद के हेत्वादि।

यःसन्निपातप्रभवोऽतिघोरः सर्वैःसमस्तैः सतुहेतुभिःस्यात्॥ सर्वाणिरूपाणिबिभर्त्तितादृग्विरुद्धभैषज्यविधिर्विवर्ज्यः॥

अर्थ—जो उन्माद सन्निपातसे होता है वह अत्यन्त घोर होता है और वह पूर्वोक्त तीनों दोषों के मिले हुए लक्षणों से उत्पन्न होता है तथा इसके लक्षण भी मिले हुए तीनों दोषोंके समान होतेहैं, इसकी चिकित्सा विरुद्ध होती है, इससे यह रोग वर्जित होता है।

आगन्तु उन्माद के हेत्वादि।

देवर्षिगन्धर्वपिशाचयक्षरक्षःपितृणामभिधर्षणानि॥ आगन्तुहेतुर्नियमव्रतादिमिथ्याकृतःकर्मचपूर्वदेहे॥

अर्थ—देवता, ऋषि, गंधर्व, पिशाच, यक्ष, राक्षस और पितृगणों की अवधर्षणा-नियम और व्रतों में विक्षेप, तथा पूर्वजन्मार्जित कर्मफलसे आगन्तु उन्माद होता है।

भूतोन्मादके लक्षण॥

असत्यवाग्विक्रमवीर्य्यचेष्टाज्ञानादिविज्ञानबलादिभिर्यः॥ उन्मादकालोऽनियतश्चयस्यभूतोत्थमुन्मादमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—वाणी, पराक्रम, वीर्य, चेष्टा ज्ञान, विज्ञान और बलके मिथ्या आचरण से जो उन्माद होता है तथा जिसके घटने बढने का समय नियत नहीं है उसे **भूतोन्माद** कहते हैं।

देवादिके शरीरमें प्रविष्ट होनेमें दृष्टान्त

अदूषयन्तःपुरुषस्यदेहंदेवादयःस्वैश्चगुणप्रभावैः। विशन्त्यदृश्यास्तरसायथैवछायातपौदर्पणसूर्य्यकान्तौ॥

अर्थ—देवतादिक अपने गुणों के प्रभाव से शरीरको विना दूषित किये अलक्षित रीति से मनुष्योंके देहमें ऐसे प्रविष्ट होजाते हैं जैसे दर्पण और सूर्यकान्तिमणि में छाया और आतप प्रविष्ट होजाते हैं।

आयातकालोहिसपूर्वरूपःप्रोक्तोनिदानेऽस्यपरंसुराद्यैः॥ उन्मादरूपाणिपृथङ्निबोधकालञ्चगम्यंपुरुषांश्चतेषामिति

अर्थ—निदानस्थान में इस उन्मादरोग में देवादि गणका शरीर में प्रवेश होने का काल, और पूर्वरूप वर्णन कियागयाहै। अब हम उन्मादके पृथक् २ लक्षण और शरीरमें प्रविष्ट होने का काल वर्णन करते हैं।

देवोन्मत्त के लक्षण ॥

सौम्यदृष्टिंगम्भरिमप्रधृष्यमकोपनमस्व मभोजनाभिलाषिणमल्पस्वेदमूत्रपुरी षवाचंशुभगन्धंफुल्लपद्मवदनइतिदेवोन्मत्तंविद्यात् ॥

अर्थ--सौम्य दृष्टिवाला, गंभीर, अप्रधृष्य (धर्षणके अयोग्य) अक्रोधी, निद्राहीन, भोजनाभिलाषी, तथा जिसके पसीने, मूत्र मल कम होते हों, जो कम बोलता हो, देह में सुगन्ध आती हो, जिसका मुख प्रफुल्लित कमलके समान हो, ऐसा पुरुष देवोन्मत्त होता है ।

अभिचारोन्मादके लक्षण ।

गुरुवृद्धसिद्धर्षीणामभिचाराभिध्यानानुरूपाहारचेष्टाव्याहारंतैरुन्मत्तंविद्यात् ॥

अर्थ....जिस उन्मादमें गुरु, वृद्ध, सिद्ध तथा ऋषियोंके अभिचार और अभिध्यान के अनुरूप आहार, चेष्टा और व्याहार होता है वह उन्माद गुरुवृद्धादिकृत होता है ।

पितृगणकृतउन्माद ।

अप्रसन्नदृष्टिमपश्यन्तंनिद्रालुंप्रतिहतवाचमनन्नाभिलाषारोचकाविपाकपरीतंपितृभिरुन्मत्तंविद्यात् ।

अर्थ....जो मनुष्य पित्रोंके किये हुए उन्माद से ग्रस्त होताहै उसकी दृष्टि स्वच्छ नहीं होतीहै वह पदार्थों को अच्छी तरह नहीं देख सक्ताहै, और निद्रालु होता है उसकी वाणी यथावत् नहीं निकल सक्ती है, अन्नमें अनिच्छा और भोजनमें अरुचि होतीहै तथा वह अविपाक रोगसे पीडित होताहै ।

गंधर्वोन्मादके लक्षण

चण्डंसाहसिकंतीक्ष्णंगम्भीरमप्रधृष्यंमुखवाद्यनृत्यगीतानुपानस्नानपानमाल्यधूपगन्धरक्तवस्त्रबलिकर्म्महास्यकथायोगप्रियंशुभगन्धमितिगन्धर्वोन्मत्तंविद्यात्

अर्थ—जो चण्डप्रकृति, साहसिक, तीक्ष्ण स्वभाव, गम्भीर, अप्रधृष्य, मुखसे बाजा बजाने का अनुरागी, नृत्य, गीत, अनुपान, स्नान, मालाधारण, धूप, गंध, लालवस्त्र, बलिकर्म, हास्य, आदिकर्मो, में प्रीति रखनेवालाहो जो देहमें सुगंधित पदार्थों को लगातांहो उसे गन्धर्वोन्मत्त समझो॥

यक्षोन्माद के लक्षण

असकृत्स्वप्नरोदनहास्यंनृत्यगीतवाद्यकथान्नपानस्नानमाल्यधूपगन्धरतिंरक्तविप्लुताक्षंद्विजातिवैद्यपरिवादिनंरहस्यभाषिणमितियक्षोन्मत्तंविद्यात् ।

अर्थ—जो बार २ सोताहै, रोताहै, हंसता है, नाचताहै, गाताहै, बजाताहै, बकताहै, खाता पीताहै, स्नान करता है, फूलमाला, धूप गंध धारण करता है, जिसकी आंखें अत्यन्त लाल होतीहै जो द्विजाति और वैद्य की निन्दा करता है जो अपनी या औरकी गुह्यबातोंका प्रकाश करदेताहै उसे यक्षोन्मादी समझो ।

राक्षसोन्माद के लक्षण ।

नष्टनिद्रमन्नपानद्वेषिणमनाहारमप्यतिबलिनंशस्त्रशोणितमांसरक्तमाल्याभिलाषिणंतर्ज्जनमितिराक्षसोन्मत्तंविद्यात् ।

अर्थ—जिसकी निद्रा नाश होगई हो, जिसको अन्नपानसे द्वेष हो, जो भोजन न करता हो, जो अतीव बलवान्हो, जो शस्त्र रुधिर, मांस और लालपुष्पोंकीमाला धारण करनेका अभिलाषीहो उसे राक्षसोन्मत्त समझो॥

ब्रह्मराक्षसोन्मत्त के लक्षण

प्रहासनृत्यप्रधानंदेवविप्रवैद्यद्वेषावज्ञाभि ष्टुतिवेदमन्त्रशास्त्रोदाहरणैःकाष्ठादिभि रात्मपीडनेनचब्रह्मराक्षसोन्मत्तंविद्यात्।

अर्थ—जो अत्यन्तही हँसता वा नाचता हो, जो देवता, ब्राह्मण और वैद्योंसे द्वेष रखता हो, जो अवज्ञा पूर्वक स्तुति करता हो, जो वेदमंत्र और शास्त्रके उदाहरण देता हो, जो अपनी देहमें लकडी लाठी आदि मारताहो, वह ब्रह्मराक्षसोन्मत्त होताहै।

पिशाचोन्मत्त के लक्षण।

अस्वस्थचित्तंस्थानमलभमानंनृत्यगीतहा सिनंबद्धाबद्धप्रभाषिणंसङ्कटकूटमालिनर ध्याचेलतृणेष्वारोहणरतिंसंभिन्नवर्णरू क्षस्वरंनग्नंविधावन्तंनैकत्रतिष्ठन्तंदुःखा न्यावेदयन्तंनष्टस्मृतिंपिशाचोन्मत्तंविद्यात्

अर्थ—जिसका चित्त एक ठिकाने नहीं रहताहै और चंचल होताहै, जो नाचता, गाता और हंसता रहताहै, जो प्रसंगाप्रसंगगत बातें बकता रहताहै, जो कष्टकारक पहाड़ों की चोटियों पर चढजाता है, जो ऊंचे मार्गों पर, चिथड़ोंके ढेरोंपर, तृणों के ढेरोंपर चढजाता है, जिसके देह का वर्ण बिगड़जाताहै, स्वरमें रूखापन होता है, जो नंगा होजाता है, इधर उधर दौड़ने लगता है, एक स्थान पर नहीं ठहरता है, दुःखों को कहता फिरता है, जिसकी स्मृति नष्ट होजातीहै उसे पिशाचोन्मत्त कहते हैं॥

देवादिकृत उन्माद की विधि॥

तत्रशौचाचारतपःस्वाध्यायकोविदंनरंमा यःशुक्लप्रतिपदित्रयोदश्याञ्चदेवाः॥स्ना नशुचिविविक्तसेविनंधर्म्मशास्त्रश्रुतिका व्यकुशलंमायःपष्ठीनवम्योर्ऋषयः। मा तृपितृगुरुवृद्धसिद्धाचार्योपसेविनंमायोद शम्याममावास्यायाञ्चापितरः॥ गन्धर्वा स्तुस्तुतिगीतवादित्ररतिंपरदारगन्धमाल्य प्रियशौचाचारंद्वादश्याञ्चतुर्दश्याञ्च॥ सत्त्वबलरूपगर्वशौर्य्ययुक्तंमाल्यानुलेपनं हास्यप्रियमतिवाक्करणंप्रायःशुक्लैकाद श्यांसप्तम्यांचयक्षाः। स्वाध्यायतपोनि यमोपवासब्रतचर्य्यादेवयतिगुरुपूजारतिं भ्रष्टशौचंब्राह्मणमब्राह्मणंवाब्रह्मवादिनं शूरमानिनंदेवतागारसलिलक्रीडनरतिं मायःशुक्लपञ्चम्यांपूर्णचन्द्रदर्शनेचब्रह्मरा क्षसाः। रक्षःपिशाचास्तुहीनसत्त्वपिशुन स्त्रैणलुब्धंप्रायेद्वितीयातृतीयाष्टमीपुपुरु षंछिद्रमवेक्ष्याभिधर्षयन्तीत्यपरिसंख्ये यानांग्रहाणामाविष्कृततमाह्यष्टावेतेव्या ख्याताः।

अर्थ....इन में से जो मनुष्य शौच, आचार, तप और स्वाध्याय में निरत है उस को छिद्र पाकर देवगण शुक्ल पक्षकी प्रतिपदा या त्रयोदशी को दबाते हैं। जो स्नानादि से पवित्र रहता है एकान्त में रहता

है जो धर्मशास्त्र, श्रुति और काव्यमें कुशल है उसको ऋषिगण प्रायः छट् वा नवमीको दवाते हैं। जो माता, पिता, गुरु वृद्ध, सिद्ध और आचार्यो की सेवा करता है उसे पितृगण प्रायः दशमी वा अमावास्या को दवाते हैं। जो मनुष्य स्तुतिपाठ, गाने और बजाने में लीन रहता है, पर स्त्री गामी होता है, गंध, माला, शौचाचार से हित रखताहै उसे गन्धर्व द्वादशी वा चतुर्दशीको दवाते हैं। जो मनुष्य सत्व, बल, रूप, गर्व शौर्य से युक्त होता है, हंसी दिल्लगी करता रहता है, अत्यन्त बोलता है, उसे यक्षगण प्रायः शुक्लपक्षकी एकादशी वा सप्तमी को दवाते हैं। जो स्वाध्याय, तप, नियम, उपवास, ब्रतचर्या देवता, यति और गुरु की पूजा में विरक्त मन है, अपवित्र है, जो ब्राह्मण को अब्राह्मण कहता है, जो ब्रह्मवादी है, जो शूरमानी है जो देवस्थानमें जलक्रीडा करता है उसे ब्रह्मराक्षस प्रायः शुक्लपक्षकी पंचमी वा पूर्णमासी को दवाते हैं। जो मनुष्य हीन पराक्रम छली पर स्त्री लम्पट और लोभी होता है उसे राक्षस और पिशाचगण छिद्रपाकर द्वितीया तृतीया वा अष्टमी को धर दवाते है। असंख्य ग्रहोंमें से ये आठ वडे उग्र हैं इससे इन्ही का यहां वर्णन किया गया है

असाध्य उन्माद के लक्षण।

सर्वेष्वपितुखल्वेषुयोहस्ताबुद्यम्यरोषसंरम्भानिःसंज्ञमन्येष्वात्मनिवापातयेत्। सोह्यसाध्योज्ञेयस्तथासाश्रुनेत्रोमेढ्रप्रवृत्त रक्तःक्षतजिह्वःप्रस्नुतनासिकः। छिद्यमानमर्माप्रतिहन्यमानपाणिःसततंविकूजन् दुर्वर्णस्तृषार्त्तःपूतिगन्धिश्चहिंसार्थीउन्मत्तोज्ञेयस्तंपरिवर्ज्जयेत् ॥

अर्थ—इन सब रोगियोंमें जो रोगी अपने दोनों हाथोंको ऊंचे करके रोषके आवेग में अचेत होकर और के देह पर स्वयंही गिर पड़ताहै वह असाध्य होता है, तथा जिस उन्मादरोगी के नेत्रों में आंसू आते हैं, मेढसे रक्त निकलता हैं, जीभमें घाव होजाताहै, नाक टपकतीहै, मर्म स्थान में छिदने की सी पीड़ा होतीहै हाथोंको दे मारताहै, कंठ में कूजन शब्द होता है, शरीर का रंग बिगड़ जाताहै, तृषा से पीडित होता है जिसके देहमें दुर्गन्ध आतीहै जो हिंसा करनेके लिये उद्यत होता है, ऐसा रोगी त्यागनेके योग्य होता है ॥

मंत्रादि द्वारा चिकित्स्य रोगी।

रत्यर्चनाकामोन्मादिनौतुभिषगभिप्रायाचाराभ्यांबुद्ध्वातदङ्गोपहारबलिप्रमेणमन्त्रभैषज्यविधिनोपक्रमेत्।तत्रद्वयोरपिनिजागन्तुनिमित्तयोरुन्मादयोःसमासविस्ताराभ्यांभेषजविधिंव्याख्यास्यामः।

अर्थ—देवतोंके पूजा पाठमें व्यतिक्रम होनेसे वा काम पीडित होनेसे जो अभिशाप वा अभिचार द्वारा उन्माद होता है उसमें उपहार, वलिदान और मंत्रमिश्रित औषधियों द्वारा चिकित्सा करे ॥

अब हम निज और आगन्तु दोनों प्रका-

र के उन्मादों की चिकित्सा संक्षेप और विस्तारसे कहते हैं।

वातज उन्माद में चिकित्साक्रम।

उन्मादेवातजेपूर्वस्नेहपानंविशेषवित्। कुर्य्यादावृतमार्गेतुसस्नेहंमृदुशोधनम्।

अर्थ—वातज उन्मादमें प्रथम स्नेह पान कराना उचित है और जो स्रोतों के मार्ग रुकरहे हों तौ स्नेह मिश्रित मृदु संशोधन देवै।

कफपित्तोन्माद में चिकित्साक्रम।

कफपित्तभवेऽप्यादौवमनंसविरेचनम्॥ स्निग्धस्विन्नस्यकर्त्तव्यंशुद्धेसंसर्जनक्रमः निरूहणस्नेहवस्तीशिरसश्चविरेचनम्। ततःकुर्य्याद्यथादोषंतेपांभूयस्त्वमाचरेत्॥

अर्थ—स्नेहन और स्वेदनकर्म कराने के पश्चात् कफज उन्मादमें वमन और पित्तजमें विरेचन देवै अथवा दोनों ही देवै। इसके पीछे पूर्वोक्त क्रमसे पेया आदि का सेवन करावै। फिर निरूहणवस्ति और शिरो विरेचन देवै। फिर जैसा दोष हो उसीके अनुसार वार वार वमन विरेचनादि का प्रयोग करतारहै॥

वमनादिकाफल।

हृदिन्द्रियशिरःकोष्ठेसंशुद्धेवमनादिभिः। मनःप्रसादमाप्नोतिस्मृतिसंज्ञाञ्चाविन्दति

अर्थ—वमन विरेचनादि प्रयोगोंसे हृदय इन्द्रियगण, शिर और कोष्ठके शुद्ध हो जाने पर मनमें प्रसन्नता तथा स्मरणशक्ति और चैतन्यता बढ़ती है।

आचारविभ्रंशमेंउपाय।

शुद्धस्याचारविभ्रंशेतीक्ष्णंनावनमञ्जनम्। ताडनञ्चमनोबुद्धिदेहसंतर्ज्जनंहितम्॥ यःशक्तोविनयेतपट्टैःसंयम्यसुदृढैःसुखैः। अपेतलोष्ठकाष्ठाद्यैःसंरोध्यश्चतमोगृहे॥

अर्थ....वमन विरेचनादि से शुद्धव्यक्ति के आचार विभ्रंश होने पर तीक्ष्ण नस्य, अंजन और ताड़ना का प्रयोग करै। मन, बुद्धि और देह का ताड़ना हित होता है जो रोगी बलवान् हो तौ लोह और काष्ठको छोड़कर मजबूत सुखदाई पट्टियोंसे बांधकर अंधेरे घर में बन्दकरदेवै॥

स्मृतिवर्द्धक उपाय।

तर्ज्जनत्रासनंदानंसान्त्वनंहर्षणंभयम्। विस्मयोविस्मृतेर्हेतुर्नयन्तिप्रकृतिंमनः॥ प्रदेहोत्सादनाभ्यङ्गधूमापानञ्चसर्पिषः। प्रयोक्तव्यंमनोबुद्धिस्मृतिसंज्ञाप्रबोधनम्॥

अर्थ....डराना, धमकाना, दैना, समझाना, प्रसन्नकरना, भय दिखाना और भूलमें डालना इन बातों से स्मृति बढ़ती है और मन सुस्थ होता है। प्रदेह, उत्सादन, अभ्यंग, धूमपान, घृतपान इन प्रयोगों से बुद्धि स्मृति और संज्ञा बढ़तीहै।

आगन्तुउन्मादमें उपाय।

सर्पिःपानादिरागन्तोर्मन्त्रादिश्चेष्यतेविधिः। अतःसिद्धतमान्योगान्शृणून्माद विनाशनान्॥

अर्थ—आगन्तु उन्माद में घृतपान और मंत्र प्रयोग बहुत अच्छे होते हैं। अब उन्मादको दूर करनेवाले उत्तम २ अनुभव कियेहुये प्रयोगों को लिखते हैं।

उन्मादनाशकप्रयोग ।

हिंगुसौवर्चलाव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् । चतुर्गुणेगवांमूत्रेसिद्धमुन्मादनाशनम् ॥

अर्थ—हींग, संचलनमक, त्रिकुटा इनमें से प्रत्येक द्रव्य को दो २ पल लेकर एक आढक घृत और चौगुने जल में पकाकर सेवन करै, यह उन्मादनाशक प्रयोग है ॥

कल्याणकघृत ।

विशालात्रिफलाकौन्तीदेवदार्वेलवालुकम् । स्थिरानन्तारजन्यौद्वेशारिवेद्वेप्रियंगुकम् ॥ नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठादन्तीदाडिमकेसरम् । तालीसपत्रंबृहतीमालत्याःकुसुमंनवम् ॥ विडंगपृश्नीपर्णीचकुष्ठंचन्दनपद्मकम् । कल्कैःकर्षसमैरेतैर्विंशत्यष्टाभिरेवच ॥ चतुर्गुणेजलेपक्त्वा घृतप्रस्थंप्रयोजयेत् । अपस्मारेज्वरेकासे श्वासेमन्देऽनलक्षये ॥ वातरोगेप्रतिश्यायेतृतीयकचतुर्थके । छर्द्यर्शोमूत्रकृच्छ्रेच विसर्पोपहतेषुच ॥ कण्डूपाण्ड्वामयोन्मादविषमेहगरेषुच । भूतोपहतचित्तानांगद्गदानामरेतसाम् ॥ शस्तंस्त्रीणाञ्च वंध्यानांधन्यमायुर्बलप्रदम् । अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नंसर्वग्रहविनाशनम् ॥ कल्याणकमिदंसर्पिःश्रेष्ठंपुंसवनेषुच ।

अर्थ....इन्द्रायण, त्रिफला, रेणुका, देवदारु, एलुआ, शालिपर्णी, अनन्ता, दोनोंहल्दी, दोनों शारिवा, प्रियंगु, नीलोफर, इलायची, मजीठ, दन्ती, अनार, नागकेशर, तालीस पत्र, वडी कटेरी; मालती के नये फूल, वायविडंग, पृश्निपर्णी, कूट, चन्दन, पद्माख, इन अट्ठाईस द्रव्योंका एक एककर्ष कल्क लेवै । इनको चौगुने जलमें पकाकर एक प्रस्थ घी डाल देवै । यहघृत मृगीरोग, ज्वर खांसी. श्वास. मन्दाग्नि. वातरोग. प्रतिश्याय तृतीयकज्वर. चतुर्थकज्वर. वमन. ववासीर. मूत्रकृच्छ्र. विसर्प. खुजली. पाण्डुरोग. उन्माद विष. प्रमेह. विषरोग भूतोपहत चित्त, गद्गदरोग वीर्यनाश तथा स्त्रियों के वन्ध्यापन को दूर करताहै । यह आयु और वलका वढानेवाला है तथा अलक्ष्मी. पाप. राक्षस और सम्पूर्ण ग्रहों को नष्ट करनेवाला है । यह कल्याणनामकघृत पुंसवनकर्ममे श्रेष्ठहै ।

महाकल्याणकघृत ।

एभ्यएवस्थिरादीनिजलेपक्त्वैकाविंशतिम् ॥ रसेतस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्टिक्षीरचतुर्गुणे वीराद्विमाषकाकोलीस्वयगुप्तर्षभकर्द्धिभिः मेदयाचसमैःकल्कैस्तत्स्यात्कल्याणकं महत् । बृंहणीयंविशेषेणसन्निपातहरं परम् ॥

अर्थ....शालपर्णी से आदि लेकर इक्कीस द्रव्यों को ऊपर कहेहुये प्रमाण से लेकर जलमें औटावै, उस क्वाथमें एक वार ब्याई हुई गौ का चौगुना दूध डालकर घी पकावै इसमें क्षीरकाकोली, दोनोंप्रकारकेमाष, काकोली, कैंच, ऋषभक, ऋद्धि और मेदा इन सव को समान भाग लेकर कूटकर डाल देवै यह महाकल्याणक घृत है । यह घृत अत्यन्त बृंहणकर्त्ता और सान्निपात को दूर करने वाला है

महापैशाचिक घृत ।

जटिलांपूतनांकेशींचारटींमर्कटींचाम् ।

त्रायमाणांजयांवीराञ्चीरकंकटुरोहिणीम्
वयःस्थांशूकरींछत्रामतिच्छत्रांपलङ्कपाम्।
महापुरुषदन्ताश्चवयःस्थानाकुलीद्वयम्॥
कटम्भरांवृश्चिकालींस्थिरांचाहृत्यतैर्घृतम्।
सिद्धंचतुर्थकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम्।
महापैशाचिकंनामघृतमेतद्यथामृतम्॥
बुद्धिस्मृतिकरंचैवबालानांचाङ्गवर्द्धनम्।

अर्थ....जटामासी, हरड, केशी (नीली-वृक्ष), चारटी, कैंच, वच, त्रायमाणा,जया, क्षीरकाकोली, चोरपुष्पी, कुटकी, गिलोय, वाराहीकन्द, छत्रा, अतिछत्रा गूगल, शतमूली, वयस्था, दोनों नाकुली (दो प्रकार की रास्ना), कटभी, वृश्चिकाली, शालिपर्णी इन को कूटकर इनके क्वाथ में घृत पकावै यह घृत अनुभव किया हुआ है। इस के सेवन से चौथैया ज्वर, उन्माद, ग्रह,अपस्मार नष्ट होजातेहै यह महापैशाचनामक घृत अमृत के समान गुणकारी बुद्धि और स्मृति को वढाने वाला है। यह घृत बालकों के अंगों को वढाता हैं ॥

लशुनाद्य घृत।

लशुनानांशतंत्रिंशदभयास्त्र्यूषणात्पलम्।
गवांचर्म्ममसीप्रस्थोद्व्याढकंक्षीरमूत्रयोः॥
पुराणसर्पिषःप्रस्थमेभिःसिद्धंप्रयोजयेत्।
हिंगुचूर्णपलंशीतेदत्वाचमधुमानिकाम्॥
तद्दोषागन्तुसम्भूतानुन्मादान्विषमज्वरान्
अपस्मारांश्चहन्त्याशुपानाभ्यञ्जननावनैः

अर्थ—सौ गांठ लहसन, तीस हरड़, त्रिकुटा एक पल, गोचर्म की भस्म एक प्रस्थ गौ का दूध और गौ का मूत्र एक एक आढक, पुराना घी एक प्रस्थ इन सब को सिद्ध करलेवे। जब यह ठंडा होजाय तब इसमें एक पल हींग पिसी हुई और आठ पल शहत डालकर मिलाले। इस घृतको पान अभ्यंजन और नस्यकर्म में प्रयोग करने से आगन्तुक उन्माद, विषमज्वर और अपस्मार नष्ट होजाते हैं ॥

अन्य लशुनादि घृत।

लशुनस्याविनष्टस्यतुलार्द्धंनिस्तुषीकृतम्
तदर्द्धंदशमूलस्यद्व्याढकेऽपांविपाचयेत्।
पादशेषेघृतप्रस्थंलशुनस्यरसंतथा॥
कोलमूलकवृक्षाम्लमातुलुङ्गार्द्रकैरसैः।
दाडिमाम्बुसुरामस्तुकांजिकाम्लैस्तदर्द्धकैः। साधयेत्त्रिफलादारुलवणव्योषदीप्यकैः॥ यवानीचव्यहिङ्ग्वम्लवेतसैश्चपलार्द्धिकैः। सिद्धमेतत्पिवेच्छूलगुल्मार्शोजठरापहम्॥ ब्रध्मपाण्ड्वामयप्लीहयोनिदोषज्वरक्रिमीन्। वातश्लेष्मामयान्सर्वानुन्मादंश्चापकर्षति॥

अर्थ—उत्तम ल्हसन की छिलका दूर की हुई गांठ पचासपल, दशमूल पचीसपल इन को दो आढक जलमें पकावै, जब चौथाई शेषरहजाय तब इस क्काथमें एक प्रस्थ घी, एक प्रस्थ ल्हसन का रस, बेर, मूली, वृक्षाम्ल, बिजौरा, अदरखका रस अनारका रस, ये सब एक एक प्रस्थ लेवै। तथा सुरा, मस्तु और कांजी आधे आधे प्रस्थ लेवै। तथा त्रिफला, दारुहलदी, सेंधा नमक, त्रिकुटा, दोनों अजवायन, चव्य, हींग, अमलवेत इन सबका आधे आधे

पल चूर्ण मिलाकर पाक करै । इस घृतका पान करनेसे शूल, गुल्म, अर्श, जठररोग ब्रध्म, पाण्डुरोग, प्लीहा, योनिदोष, ज्वर क्रिमिरोग, वातकफरोग तथा सबप्रकार के उन्मादरोग नष्ट होजाते हैं ।

अन्य घृत ।

हिंगुनाहिंगुपर्ण्याचसकायस्थावयस्थयाासि द्धंसर्पिर्हितंतद्वद्वयस्थाहिंगुरोचकैः।केवलं सिद्धमेभिर्वापुराणंपाययेद्घृतम् । पाय यित्वोत्तमांमात्रांश्वभ्रेरुन्ध्याद्गृहेऽपिवा

अर्थ—हींग, हिंगुपर्णी, हरड और गिलोय इनको डालकर पुराना घी पान करै अथवा गिलोय, हींग और रोचक [राजपलांडु] डालकर पुराना घी सिद्ध करै । इस घृत की उत्तम मात्रा पान कराके रोगी को किसी श्वभ्र [तहखाने] में वा घर में विठलाये रखे ।

पुराने घी के गुण ।

विशेषतःपुराणञ्चघृतंतंपाययेद्भिषक् । त्रिदोषघ्नंपवित्रत्वाद्विशेषाद्ग्रहमोक्षणम् गुणकर्माधिकंस्थानादास्वादात्कटुतिक्तकम् ॥ उग्रगन्धंपुराणंस्याद्दशवर्षस्थितंघृतम् । लाक्षारसनिभंशीतंतद्धिसर्वग्रहापहम् । मेध्यंविरेचनेष्वग्र्यंप्रपुराणमतःपरम् ।नासाध्यंनामतस्यास्तियत्स्या द्वर्षशतास्थितम् ॥ दृष्टंस्पृष्टमथाघ्रातंतद्धिसर्वग्रहापहम् । अपस्मारग्रहोन्मादवतांशस्तंविशेषतः ॥

अर्थ—वैद्यको उचित है कि उन्माद रोगमें विशेष करके पुराना घी पान करावे यह घृत त्रिदोषनाशक और पवित्र होने से ग्रहमोक्षण कर्त्ता है । पुराना घी बहुत दिवस का होने से गुण और कर्म में अधिक होताहै, स्वादमें कटु और तिक्त होता है, इसमें गंध बडी उग्र आती है इस तरह दसवर्ष का घी पुराना होता है । जो घृत लाख के रस के समान और शीतल होता है वह सर्वग्रह नाशक होताहै । दश वर्ष से अधिक दिनका घी मेधावर्द्धक और उत्तम विरेचनकर्त्ता है, इसे प्रपुराण कहते हैं सौ बरसके घी के सामने कोई भी ऐसा रोग नहीं है जो साध्य न हो । इस घृत के देखने, छूने और सूंघनेही से सम्पूर्ण ग्रह शान्त होजाते हैं । यह घृत अपस्मार और ग्रहोन्माद रोगियों को विशेष करके उपयोगी होता है ।

नस्याञ्जन प्रयोग ।

एतैरौषधवर्गैर्वाविधेयत्वंसगच्छति । अञ्जनोत्सादनालेपाभावनादींश्चयोजयेत् शिरीषोमधुकंहिंगुलशुनंतगरंवचाम् ॥ कुष्ठञ्चवस्तमूत्रेणपिष्टंस्यान्नावनाञ्जनम् ।

अर्थ—इन्हीं नीचे लिखीहुई औषधियों द्वारा उन्मादका विधान कियाजाता है, तथा अंजन, उत्सादन, आलेपन और नस्यकर्म में भी प्रयुक्त कीजाती है । उन औषधियों के नाम ये हैं, सिरस, मुलहटी, हींग, लहसन, तगर, वच, और कूठ इनको वकरे के मूत्र में पीसकर नस्यकर्म और अञ्जन में प्रयुक्तकरै ॥

अन्यप्रयोग ।

तद्वद्व्योपहरिद्रेद्वेमञ्जिष्टाहिंगुसर्षपाः। शिरीषबीजञ्चोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ।

अर्थ—ऊपरकी रीतिके अनुसारही दोनों हल्दी, मजीठ, हींग, सरसों, सिरस के बीज इनको नस्यकर्म और अञ्जन में प्रयुक्त करे । इससे उन्माद, ग्रहरोग और अपस्मार दूर होजाते हैं ॥

अन्यप्रयोग ।

पिष्ठातुल्यमपामार्गहिंगुलंहिंगुपात्रिकाम्॥ वर्त्तिःस्यान्मरिचार्द्धांशापित्ताभ्यांगोमृगालयोः । तयांजयेदपस्मारभूतोन्मादज्वरार्दितान् ॥ भूतार्त्तानमरार्त्ताश्चनरार्त्तांश्चैवगोमये । मरिचञ्चातपेमांससंसापित्तं स्थितमञ्जनम् ॥ वैकृतंपश्यतःकार्य्यंदोष भूतहतस्मृते : ॥

अर्थ—ओंगा, हींगलू और हींगपत्री, इनको समानभाग लेवै और तीनोंसे आधी कालीमिरच डालकर गौ वा शृगाल के पित्ते के साथ वत्ती वनावे । इससे अपस्मार, भूतोन्माद, ज्वर, अर्दित, भूतार्त, देवार्त्तादिरोग नष्ट होजाते हैं ।

कालीमिरच, गोमांस और गोपित्त इन तीनोंको मिलाकर धूपमें रख देवै फिर इनको आखों में आंजे तौ दृष्टि की विकृति, दोषज उन्माद, भूतोन्माद तथा स्मृतिनाश ये सब जाते रहते हैं ।

(किसी २ पुस्तक में 'मांस की जगह मास पाठ करके यह अर्थ किया है कि महीने भरतक धूप में रक्खे)

अन्यप्रयोग ॥

सिद्धार्थकोवचाहिंगुकरञ्जंदेवदारुच मञ्जिष्ठात्रिफलाश्वेताकटभीत्वककटुत्रिकम्॥समांशानिप्रियंगुश्चशिरीषोरजनीद्वयम् ।बस्तमूत्रेणपिष्टोऽयमगदःपानमञ्जनम् । नस्यमालेपनञ्चैवस्नानमुद्वर्त्तनंतथा । अपस्मारविषोन्मादकृत्यालक्ष्मोज्वरापहः ॥ भूतेभ्यश्चभयंहन्तिराजद्वारेचशस्यते । सर्पिरेतेनासिद्धंवासगोमूत्रंतदर्थकृत् ॥

अर्थ—सफेदसरसों, वच, हींग, दोनों प्रकारके कञ्जा, देवदारु, मजीठ, त्रिफला, सफेदकोयल, कटभीकीछाल, त्रिकुटा, प्रियंगु, सिरसकी छाल, दोनों हल्दी, इन सबको समान भाग लेकर बकरेके मूत्रमें पीस लेवै इस औषधका पान, अंजन, नस्य, आलेपन, स्नान, उद्वर्त्तन में प्रयोग करने से अपस्मार, विषोन्माद, कृत्या, अलक्ष्मी और ज्वर नष्ट होजाते हैं । इसका अंजन लगाने से भूतोंका डर जाता रहता है और राज द्वार में प्रशंसा का पात्र होता है॥ इन्हीं औषधियों को गोमूत्र में पीसकर घृत पाक करके सेवनकरै तौ पूर्वोक्त गुण होतेहैं।

अन्य प्रयोग ॥

प्रसेकेपीनसेगन्धैर्धूमवर्त्तिकृतांपिवेत् । वैरेचनिकधूमोक्तैःश्वेताद्यैर्वासाहिंगुभिः ॥ शल्लकोलूकमार्जारजम्बूकद्टकवस्तजैः । मूत्रपित्तशकृल्लोमनखैश्चर्मभिरेवच ॥ सेकाञ्जनंप्रधमनंनस्यधूमञ्चकारयेत् ।

अर्थ ...जो उन्माद रोगमें मुखसे लार गिरती हो वा पीनसका रोग होगया हो तो

वैरेचनिक धूममें कहे हुए सुगंधित द्रव्यों की वत्ती बनाकर धूमपान करै, अथवा ऊपरके प्रयोग में कही हुई श्वेत कोयल से आदि लेकर सब द्रव्य और हींग इनकी बत्ती बनाकर धूमपान करै। अथवा सेह, घुग्घू, बिल्ली, सिरकटा, भेडिया और बकरा इन के मूत्र, पित्त, विष्टा, लोम, नख, और चर्म इन सब के द्वारा सेक अंजन, प्रधमन, नस्य और धूम ये कर्म करै।

अन्यप्रयोग ॥

वातश्लेष्मात्मकेप्रायःपैत्तिकेत्वप्रशस्यते ॥ तिक्तकंजीवतीयञ्चसर्पिःस्नेहश्चमिश्रकः। शीतानिचान्नपानानिमधुराणिमृदूनिच॥

अर्थ—प्रायः वातश्लेष्मात्मक तथा पित्तज उन्मादमें तिक्तकघृत, जीवनीयघृत और मिश्रस्नेह तथा ठंडा मीठा और कोमल-अन्नपान का प्रयोग करै ॥

उन्माद में फस्त।

शंखकेशान्तसन्धौवामोक्षयेत्क्षोभिपक्शिराम्। उन्मादेविषमेचैवज्वरेऽपस्मार एवच ॥

अर्थ—उन्माद, विषमज्वर और अपस्मार में कनपटी और केशान्त की सन्धियों में फस्त खोले ॥

अन्यप्रयोग।

घृतमांसवितृप्तंवानिवातेस्थापयेत्सुखम्। त्यक्त्वामतिस्मृतिभ्रंशंसंज्ञांलब्धाप्रबुध्यते। आश्वासयेत्सुहृद्वातंवाक्यैर्धर्मार्थसंहितैः ॥ ब्रूयादिष्टविनाशंवादर्शयेदद्भुतानिवा॥बद्ध्वासर्षपतैलाक्तंन्यसेद्वोत्तानमम तपे ॥ कापिकच्छ्वाथवातप्तैर्लोहतैलजलैः स्पृशेत् ॥ कशाभिस्ताडयित्वावासुबद्धं विजनेगृहे ॥ रुन्ध्याच्चेतोहिविभ्रान्तंव्रजत्यस्यतथाशमम्।

अर्थ—उन्मादरोगी को पेट भरकर पुराना घी वा मांस पान कराके सुखपूर्वक निर्वातस्थान में बैठावे ऐसा करने से रोगी की बुद्धि और स्मरणशक्ति ठीक होजाती हैं और वह होश में आजाता है। अथवा रोगी के सुहृदजन धर्म और अर्थ के वाक्यों द्वारा रोगी को आश्वासन देवें किसी प्यारी वस्तु के नाश होनेका संवाद सुनावै अथवा कोई आश्चर्योत्पादक वस्तुओं का दर्शन करावे। कभी २ सरसों का तेल लगाकर चित्त करके तथा बांधकर धूप में डालदेवे। अथवा कैंचकी फली, गरमलोहा, गरमतेल, गरमजल रोगी के शरीर के लगावै। अथवा निर्जन घरमें रस्सियों से दृढ़ बांधकर कोड़ों की मार लगावै। अथवा उसके विभ्रान्त चित्तको ऐसी रीति से रोके जिस से उसको शान्ति होवै।

अन्यप्रयोग।

सर्पेणोद्धृतदंष्ट्रेणदान्तैःसिंहैर्गजैश्चतम् त्रासयेच्छस्त्रहस्तैर्वातस्करैःशत्रुभिस्तथा अथवाराजपुरुषावहिर्नीत्वासुसंयतम्॥ त्रासयेयुर्वधेनैनंतर्जयन्तोनृपाज्ञया। देहदुःखभयेभ्योहिपरंप्राणभयंमहत्॥तेनयातिशमंतस्यसर्वतोविप्लुतंमनः। इष्टद्रव्यविनाशात्तुमनोयस्योपहन्यते ॥ तस्यतत्सदृशप्राप्तिशान्त्याश्वासैःशमंनयेत्। का-

मशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसम्भवान् ॥ परस्परमतिद्वन्द्वैरेभिरेवशमंनयेत् ॥

अर्थ—दांत उखाडे हुये सर्पो से उसे कटवावे, पालतू सिंह और हाथियों से डर पावें, हाथमें शस्त्र लेकर, तस्करों द्वारा या शत्रुओं द्वारा भय दिखावे। अथवा राजा के कर्मचारी राजाकी आज्ञा लेकर उसे अच्छी तरह बांधकर बाहर ले जाकर खूब मारपीट करें क्योंकि देह के दुःखों के भय से प्राणों का भय अधिक होता है। उसी प्राणभय के कारण उसका विभ्रान्त चित्त स्थिर होजाताहै। जिस अभीष्ट वस्तुके नष्ट होने से मन चलायमान होजाता है, उसको उसीके सदृश वस्तुका दर्शन करानेसे, तथा समझाने और आश्वासन करने से चित्त शान्त होजाता है। जिसका मन काम, शोक, भय, क्रोध, हर्ष, ईर्ष्या और लोभ द्वारा चालित होताहै उस को उसीके विपरीत कारणसे शान्त करे, जैसे क्रोधजन्य उन्माद को हर्ष से, इसी तरह और भी।

बुद्ध्वादेशंवयःसात्म्यंदोषंकालंबलाबलम् ॥ चिकित्सितमिदंकुर्य्यादुन्मादे भूतदोषजे। देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तस्य तुबुद्धिमान् ॥ वर्जयेदञ्जनादीनितीक्ष्णानिक्रूरकर्मच। सर्पिष्पानादितस्येहमृदुभैषज्यमाचरेत् ॥ पूजाम्बल्युपहारांश्चमन्त्राञ्जनाविधींस्तथा। शान्तिकर्मेष्टिहोमांश्चजप्यस्वस्त्ययनानिच॥वेदोक्तान्नियमांश्चापिप्रायश्चित्तानिचाचरेत्॥भूतानामधिपंदेवमीश्वरंजगतःप्रभुम्॥ पूजयन्प्रयतोनित्यंजयत्युन्मादजंभयम्। रुद्रस्यप्रमथानामगणालोकेचरन्तिये॥ तेषांपूजाञ्चकुर्वाणउन्मादेभ्योविमुच्यते।

अर्थ—भूत दोषज उन्माद में देश, वय, सात्म्य, दोष, काल, बल और अबलकी परीक्षा करके चिकित्सा करे। देव, ऋषि, पितृ, गन्धर्व इन से किये हुए उन्माद में तीक्ष्ण अञ्जनादि तथा क्रूरकर्म न करे। तथा घृतपान और मृदु औषध इस में हितकारी होती हैं और पूजा, बलिदान, उपहार मंत्र तथा अंजन विधिका प्रयोग करे। शान्तिकर्म, यज्ञ, होम, जप स्वस्तिवाचन तथा वेदोक्त नियम और प्रायश्चित्त का अवलम्बन करे। जगत् के स्वामी भूतनाथ महादेवजी का विधि पूर्वक नित्य नियम से पूजन करता रहे तो उन्मादज भय दूर हो जाता है। रुद्र के जो प्रमथ नामक गण संसार में विचरते रहते हैं उनका पूजन करनेसे उन्माद पास नहीं आताहै।

बलिभिर्मंगलैर्होमैरौषध्यगदधारणैः। सत्याचारतपोज्ञानप्रदाननियमव्रतैः। देवगुह्यकविप्राणांगुरूणांपूजनेनच॥आगन्तुःप्रशमंयातिसिद्धैर्मन्त्रौषधैस्तथा।

अर्थ—बलिदान, मंगलपाठ, होम, अगद, औषधधारण, सत्याचरण, तप, ज्ञान, दान, नियम, व्रतादि नियमोंका पालन, देव, गुह्यक, विप्र, गुरुका पूजन, तथा सिद्ध मंत्र और औषधियों द्वारा आगन्तु उन्माद शान्त होजाता है।

यचोपदेक्ष्यतेकिञ्चिदपस्मारेचिकित्सिते

उन्मादेतचकर्त्तव्यसामान्याद्धेतुदूष्ययोः

अर्थ—जो जो चिकित्सा अपस्मार रोग मे वर्णन कीजायगी, वही चिकित्सा उन्मादरोग में भी कर्त्तव्य हैं क्योंकि इनदोनों रोगों के हेतु और दूष्य एकही हैं।

उन्माद के अयोग्यव्यक्ति।

निवृत्तामिषमद्योयोहिताशीप्रयतःशुचिः॥ निजागन्तुभिरुन्मादैःसत्त्ववान्नसयुज्यते।

अर्थ—जो मद्य मांसका सेवन नहीं करता है, हित भोजन करता है जितेन्द्रिय और पवित्र रहताहै, ऐसे सत्ववान् पुरुषके निज और आगन्तु उन्माद नहीं होने पातेहैं।

उन्मादमुक्तके लक्षण

प्रसादश्चेन्द्रियार्थानांबुद्ध्यात्ममनसांतथा धातूनांप्रकृतिस्थत्वंविगतोन्मादलक्षणम्।

अर्थ—इन्द्रियों के विषय, बुद्धि, आत्मा तथा मन इनकी प्रसन्नता, तथा धातुओं का प्रकृतिस्थ होना ये विगत उन्मादके लक्षण हैं।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ॥

उन्मादानांसमुत्थानंलक्षणंसचिकित्सितम् ॥ निजागन्तुनिमित्तानामुक्तवान्भिषगुत्तमः॥

अर्थ—वैद्यवर आत्रेयने इस अध्याय में निज और आगन्तु भेद वाले उन्मादों की उत्पत्ति,लक्षण और चिकित्सा वर्णन की हैं।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सित स्थाने उन्माद चिकित्सितं-नाम चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

---:*:---

पञ्चदशोऽध्यायः ॥

अथातोऽपस्मारचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम अपस्मार रोग की चिकित्सा का वर्णन करेंगे।

अपस्मार की निरुक्ति।

स्मृतेरपगमंप्रहुरपस्मारंभिषग्विदः।तमः प्रवेशबीभत्सचेष्टंधीसत्त्वसंप्लवात् ॥

अर्थ—आयुर्वेदज्ञ स्मृति के नाश होजाने को अपस्मार कहते हैं। इस में बुद्धि और मनके संप्लावित अर्थात् नष्ट होने से अंधकार में प्रवेश होनेकी सी दशा और भयंकर चेष्टा होजातीहै।

अपस्मार के कारण।

विभ्रान्तबहुदोषाणामहिताशुचिभोजिनाम्। रजस्तमोभ्यांविहतेसत्त्वेदोषावृतेहृदि॥ चिन्ताकामभयक्रोधशोकोद्वेगादिभिस्तथा। मनस्यभ्याहतेन्दृणामपस्मारःप्रवर्तते॥

अर्थ—चलितचित्त, बहुदोषी अहित और अपवित्र भोजी के तथा जिसका सतोगुण रजोगुण और तमोगुण द्वारा नष्ट होगया है, जिसका हृदय दोषों से आवृत है तथा जिसका चित्त चिन्ता, काम, भय, क्रोध शोक और उद्वेगादिसे व्याप्त है उस के अपस्मार रोग होता है।

अपस्मारके वेगका रूप।

धमनीभिःश्रितादोषाहृदयंपीडयन्तिहि।

दूध और मूत्र डाल देवे । यह अमृत के समान गुणकारी महापंचगव्यनामक घृत हैं । यह घृत अपस्मार, उन्माद, सूजन, उदररोग गुल्म, अर्शरोग, पाण्डुरोग कामला, भगन्दर, अलक्ष्मी, ग्रहरोग, चातुर्थिकज्वर इन सबको नष्टकर देता है ॥

अन्यप्रकारकेघृत ।

ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशंखपुष्पीभिरेवच ॥ पुराणंघृतमुन्मादालक्ष्म्यपस्मारपाप्माजित् घृतंसैंधवहिंगुभ्यांवार्षवान्तेचतुर्गुणे ॥ मूत्रेसिद्धमपस्मारहृद्ग्रहामयनाशनम् ॥ वचासम्पाककैडर्यवयःस्थाहिंगुरोचकैः ॥ सिद्धंपलंकषायुक्तैर्वातश्लेष्मात्मकेघृतम् । तैलप्रस्थंघृतप्रस्थंजीवनीयैःपलोन्मितैः ॥ क्षीरद्रोणेपचेत्सिद्धमपस्मारविनाशनम् । कंसेक्षीरेक्षुरसयोःकाश्मर्येऽष्टगुणेरसे ॥ कार्षिकैर्जीवनीयैश्चघृतप्रस्थंविपाचयेत् । वातपित्तोद्भवंक्षिप्रमपस्मारंनियच्छति ॥

अर्थ—ब्राह्मीका रस, वच, कूठ, शंखपुष्पी इन के साथ में पुराने घृत को पक्कार के सेवन करे, तो उन्माद, अलक्ष्मी, अपस्मार और पाप्मा दूर होजाती है । सेंधानमक; हींग इन से चौगुना घी, घी से चौगुना बैल या बकरे का मूत्र इन को सिद्ध कर के पान करने से अपस्मार, हृद्रोग, ग्रहरोग सब शान्त होजातेहैं । वच,अमलतास; कायफल, बहेडा, हींग, रोचक, [राजपलांडु] और गूगल इन के साथमें घृतको पक्व करके सेवन करने से वातश्लेष्मात्मक अपस्मार दूर होजाती हैं । एक प्रस्थ तेल, एक प्रस्थ घी, जीवनीय गणोक्तद्रव्य एक २ पल, इनको एक द्रोण दूध में पकाकरदे तो अपस्मार नष्ट होवें । दूध और ईख का रस चार २ सेर खँभारी का रस आठगुना; जीवनीय गणाक्त द्रव्य एक २ कर्ष, एक प्रस्थ घी इनको पकाकर सेवन करने से वातपित्तोद्भव अपस्मार शान्त होजाता है ॥

अन्यप्रयोग ।

तद्वत्काशविदारीक्षुकुशक्वाथशृतंपयः । मधुकाद्विपलेकल्केद्रोणेचामलकीरसात् । तद्वत्सिद्धोघृतप्रस्थःपित्तापस्मारभेषजम्॥ अभ्यङ्गःसार्षपंतैलवस्तमूत्रेचतुर्गुणे । सिद्धस्याद्गोशकृन्मूत्रेस्नानोत्सादनमेवच कटभीनिम्बकट्वङ्गमधुशिग्रुत्वचांरसे । सिद्धंमूत्रसमंतैलमभ्यङ्गार्थेप्रशस्यते ॥ पलङ्कषावचापथ्यावृश्चिकान्यर्कसर्षपैः । जटिलापूतनाकेशीनाकुलीहिंगुरोचकैः॥ लशुनातिरसाचित्राकुष्ठैर्विड्भिश्चपक्षिणाम् । मांसाशिनांयथालाभंवस्तमूत्रेचतुर्गुणे ॥ सिद्धमभ्यञ्जनंतैलमपस्मारविनाशनम् । एतैश्चैवौषधैःकार्यंधूपनं सम्प्रलेपनम् ॥

अर्थ—इसीतरह से कांस, विदारी कंद, ईखकी जड, कुशा इनके क्वाथ में औटाया हुआ दूध देवै । किसी २ पुस्तक में घृत है । यह दूध या घृत पूर्वोक्त गुणकर्त्ताहै । मुलहटी दो पल, आंवले का रस एकद्रोण इस में एक प्रस्थ पुराना घी पकाकर सेवन करने से पित्तापस्मार दूर होजाता है सरसों के तेल को चौगुने बकरे के मूत्रमें औटाकर

मालिश करे। फिर गोबरका उवटना करके गोमूत्र से स्नान करे। कटभी, नीम, कटुंबग और सहजना इनकी छाल का रस तथा गोमूत्र और इसके समानही तेल डालकर औटावे फिर इससे मालिश करे तो अपस्मार दूर होवै। गूगल, वच, हरड़, बिछवन, आक, सरसों, जटामांसी, पूतना (हरड़) केशी, रास्ना, हींग, राजपलांडु, लहसन, अतिरसा (मुलहटी) चीता, कूठ, मांसाहारी पक्षियों की विष्ठा जिनकी मिलसकै लाकर तेलसे चौगुना बकरे का मूत्र डालकर सिद्ध करै। इस तेल का मर्दन करने से अपस्मार जाता रहता है। इन्हीं औषधियों को पीसकर अपस्मार रोगीको धूप देवै वा उसके लेप करे।

अन्य प्रयोग।

पिप्पलींलवणंशिग्रुंहिंगुंहिंगुशिवाटिकाम् काकोलींसर्षपान्काकनासांकैडर्यचंदने। शुनःस्कंन्धास्थिनखरान्पर्शुकांश्चेतिपेषयेत्। वस्तमूत्रेणपुष्यर्क्षेमदेहःस्यात्सधूपनः॥ अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशिरोचकैः॥ उत्सादनंमूत्रपिष्टैर्मूत्रैरेवावसेचनम् खरास्थिभिर्हस्तिनखैस्तथागोपुच्छलोमभिः। कपिलानांगवांमूत्रंनावनंपरमंहितम्। श्वशृगालविडालानांसिंहादीनांचशस्यते॥ भार्गीवचानागदन्तीश्वेताश्वेताविषाणिका। ज्योतिष्मतीनागदन्तीपादोत्थामूत्रपेषिताः॥ योगास्त्रयोऽतःषड्विन्दून्पञ्चवानावयेद्भिषक्। त्रिफलाव्योपपीतद्रुयवक्षारफणिज्झकैः॥ श्यामापामार्गकारञ्जफलैर्मूत्रेऽथवस्तजे। साधितंनावनंतैलमपस्मारविनाशनम्॥

अर्थ—पीपल, सेंधानमक, सहजना, हींग गोंदनी के पत्ते काकोली, सरसों, कौआ टोंटी, कायफल, रक्तचन्दन, कुत्ते का कंधा, नख, पसली इनको पुष्यनक्षत्र में लाकर बकरे के मूत्र में पीस लेवै इसका लेप करने से वा धूप देने से अपस्मार दूर होजाता है। काली तुलसी, कूठ, हरड़, केशी, राजपलाण्डु, इनको गोमूत्र में पीसकर उत्सादन करै तथा गोमूत्र में घोलकर इनके द्वारा सेचन करै। चमगिद्ड़ की विष्ठाका लेप करै अथवा जले हुये बकरेके लोम, गधेकी हड्डी, हाथीके नख वा गौ की पूंछ के लोमों का लेप करै॥ कपिला गौके मूत्र की नस्य परमहितकारी होती है॥ इसी तरह कुत्ता, सिरकटा, बिल्ली और सिंहादिक जीवों के मूत्रकी नस्य भी उत्तम होती है। भाडंगी, वच, नागदन्ती, तथा दोनों प्रकार की अपराजिता और मेढासिंगी तथा मालकांगनी और नागदन्ती इन तीनों प्रयोगों को गोमूत्र में पीसलेवै फिर इसमें से पांच वा छः विन्दु नाक में डालै। त्रिफला, त्रिकुटा, दारुहल्दी, जबाखार, फणिज्झक, निसोथ, औंगा, कंजा के फल इनको पीस कर बकरे का मूत्र और तेल अग्निपर चढ़ादे। पक्व होने पर इसकी नास लेवै तो अपस्मार दूर होजाता है॥

पिप्पलीवृश्चिकालीचकुष्ठंचलवणानिच। भार्गीचचूर्णितंनस्तःकार्यमधमनंपरम्॥ कायस्थान्शारदान्मुद्गान्मुस्तोशीरयवांस्तथा॥ सव्योपान्वस्तमूत्रेणपिष्ट्वाव-

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

हेतुंकुर्वन्त्यपस्मारंदोषाःप्रकुपितायथा ॥ सामान्यतःपृथक्त्वाचलिङ्गंतेषांचभेषजम् ॥ महागदसमुत्थानंलिङ्गंचोक्तचसौषधम् ॥ मुनिर्व्याससमासाभ्यामपस्मारचिकित्सिते॥

अर्थ—इस अपस्मार चिकित्सत अध्याय में पुनर्वसुने अपस्मार के हेतु, प्रकुपित दोषों के द्वारा रोगकी उत्पत्ति, तथा सामान्य रीति से पृथक् पृथक् उसके लक्षण और औषध, महागदकी उत्पत्ति लक्षण और औषध ये सब वातें संक्षिप्त और सविस्तर उभय प्रकार से वर्णन की हैं ॥

इति श्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहिताय चिकित्सितस्थानेऽपस्मारचिकित्सितं नाम पञ्चदशोऽध्यायः॥ १५ ॥

—:( ):—

षोडशोऽध्यायः

अथातःक्षतक्षीणचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम क्षतक्षीण रोगोंकी चिकित्सा का वर्णन करेंगे ।

उदारकीर्तिर्महर्षिरात्रेयःपरमार्थवित् ॥ क्षतक्षीणचिकित्सार्थमिदमाहचिकित्सितम् ॥

अर्थ—उदारकीर्ति, महर्षि और परार्थवित्, आत्रियने क्षतक्षीण की चिकित्सा के निमित्त यह अध्याय वर्णन किया है ॥

क्षतरोगकाहेतु।

धनुषायस्यतोऽत्यर्थंभारमुद्वहतोगुरुम् ॥ पततोविषमोच्चेभ्योयुध्यमानस्यचाऽन्यैः दृप्तंहयंवाधावन्तंदम्यंवान्यंनिगृह्णतः ॥ शिलाकाष्ठाश्मनिर्घातान्क्षिपतोनिघ्नतःपरान् ॥ अधीयमानस्यात्युच्चैर्दूरंवाव्रजतोद्रुतम् ॥ महानदींवातरतोगजैर्वासहधावतः ॥ सहसोत्पततोदूरंतूर्णंचातिनृत्यतः ॥ तथान्यैःकर्मभिःक्रूरैर्भृशमभ्याहतस्यवा ॥ विक्षतेवक्षसिव्याधिर्बलवान्समुदीर्यते ॥

अर्थ—धनुष लेकर अत्यन्त डोलना बहुत भारी बोझको उठाना, उंचे नीचे स्थानोंसे गिर पडना, अधिक बलवान्के साथ युद्ध करना, दौडते हुये बैल वा घोडे के रोकने का प्रयत्न करना, शिला, काठ वा पत्थर का मुद्गर फेंकना और उनसे शत्रुओंका मारना, बहुत चिल्ला चिल्लाकर पढना, जोरसे दूरतक भागते हुए चला जाना, गम्भीर बडी नदी में तैरना, हाथी घोडेके साथ दौडना; सहसा उछलकर दूर जा पडना, वेगसे नृत्य करना वा और और कठिनकर्मोंको करना । इन सबवातों से आहत होकर वक्षःस्थल में घाव होजाता है तब बलवान् व्याधि का उदय होता है।

क्षीणरोगकाहेतु ।

स्त्रीषुचातिप्रसक्तस्यरूक्षाल्पप्रमिताशिनः

अर्थ—रूक्ष, अल्प और थोडा खानेवाला मनुष्य जो स्त्रियोंसे अत्यन्त संगम करताहै उसके क्षीणरोग होता है ।

क्षतक्षीणकेलक्षण।

उरोनिरुज्यतेतस्यभिद्यतेऽथविदह्यते ॥ प्रपीड्यतेततःपार्श्वेशुष्यत्यङ्गंप्रवेपते । क्रमाद्वीर्य्यंबलंवर्णोरुचिरग्निश्चहीयते ॥ ज्वरोव्यथामनोदैन्यंविड्भेदोऽग्निवधस्त था।दुष्टःश्यावःसदुर्गन्धःपीतोविग्रंथितो बहुः। कासमानस्यचश्लेष्मासरक्तःसंप्र वर्त्तते। सक्षतःक्षीयतेत्यर्थं तथाशुक्रौ जसोक्षयात्

अर्थ—जिनके क्षतक्षीण रोग होतेहैं उनके हृदयमें वेदना, भेदन और दाह होता रहताहै पसलीमें पीडा, अंग का शुष्क होना और शरीरका कांपना ये बातें भी होतीहैं। क्रम २ से बल, वर्ण रुचि, और अग्निक्षीण होती चलीजाती है। ज्वर, व्यथा, मनमें दीनता, पुरीषभेद और अग्निमान्द्य होता है। खांसीके साथ विगडा हुआ, कुछ काला, दुर्गंध युक्त, पीतवर्ण, गांठदार, बहुतसा कफ रुधिर निकलताहै ॥ इस प्रकार क्षतयुक्त प्राणी अत्यन्त क्षीण होजाता है और शुक्र आदि के क्षीण होने से भी प्राणी ऐसे ही क्षीण होजाता है॥

क्षतक्षीण के वैशेषिकलक्षण।

अव्यक्तंलक्षणंतस्यपूर्वरूपमितिस्मृतम्। उरोरुक्शोणितच्छर्दिःकासोवैशेषिकः क्षते।क्षीणेसरक्तमूत्रत्वंपार्श्वपृष्ठकटिग्रहः॥

अर्थ—पूर्वोक्त समस्त लक्षण जब तक अस्पष्ट हों तब तक उनको इन दौनों रोगों के पूर्वरूप कहते हैं। क्षतरोग में वक्षःस्थल में पीडा रुधिरकी, वमन, और खांसी होती है। क्षीणरोग में रुधिर सहित मूत्र, पसली पीठ और कमर में जकडन होतीहै।

साध्यासाध्यलक्षण।

अल्पलिंगस्यदीप्ताग्नेःसाध्योबलवतोनरः गतेसम्वत्सरेयाप्यःसर्वलिंगंतुवर्जयेत्॥

अर्थ—दोषोंका अल्प लक्षण, अग्निकी तीव्रता और रोगीका बलवान् होना. जब ये बातें होतीहैं तब उक्त रोग साध्य होतेहैं। एक वर्षके पुरानेरोग याप्य होतेहैं और जिन रोगोंमें पूर्ण लक्षण होजाते हैं वे असाध्य होतेहैं॥

क्षतमेंचिकित्सा।

उरोमत्वाक्षतंलाक्षांपयसासमधुसंयुताम्। सद्यएवपिवेज्जीर्णेपयसाद्यात्सशर्करम्॥ पार्श्ववस्तिरुजश्चाल्पेपित्ताग्निस्तांसुरायु ताम्। भिन्नविट्कःसमुस्तातिविषापाठां सवत्सकाम्॥ लाक्षांसर्पिर्मधूच्छिष्टंजीव नीयगणंसिताम्। त्वक्क्षीरीसम्मितंक्षीरे पक्त्वादीप्तानलःपिवेत्॥ इक्ष्वालिकवि सग्रन्थिपद्मकेसरचन्दनैः। शृतंपयोमधु युतंसन्धानार्थंपिवेत्क्षती॥

अर्थ—हृदयमें घावका अनुमान होनेपर लाख को दूध और शहतके साथ तत्काल पान करावै और औषधके जीर्ण होनेपर दूध और चीनीके साथ भोजन करावै॥ यदि पसली और वस्तिमें वेदना होती हो और पित्ताग्नि अल्प पडगई हो तो लाख को मद्यमें मिलाकर पान करावे। मलके फटनेपर मोथा, अतीस, पाठा और इन्द्र जो का क्वाथ देवे। अग्नि के तीव्र होनेपर

लाख; घी, मोम. जीवनीय गणोक्त द्रव्य मिश्री, वंशलोचन इन का समान भाग लेकर दूध में औटाकर पीवे। क्षत के संधान करने के लिये इक्षुवालिक, कमल की जड, नागकेसर, रक्तचन्दन इनको दूध में औटाकर शहत डालकर पीवे ॥

यवानांचूर्णमादायक्षीरसिद्धंघृताप्लुतम्। ज्वरदाहेसिताक्षौद्रसक्तूनवापयसापिबेत् ॥ कासीपर्वास्थिशूलीचलिह्यात्सघृतमाक्षिकाः। मधूकमधुकद्राक्षात्वक्क्षीरीपिप्पलीबलाः ॥

अर्थ....ज्वरदाह में जौके चून को दूध में सिद्ध करके बहुतसा घी डालकर पीवे अथवा मिश्री शहत और सत्तूको मिलाकर दूध के साथ पीवे, जो रोगी के खांसी होवे अथवा पोरुए और हड्डियों में वेदना हो तो महुआ, मुलहटी, दाख, वंशलोचन, पीपल और खरैटी, इनके चूर्ण को घी और शहत में सानकर सेवन करै।

एलादि वटिका।

एलापत्रत्वचोर्धाक्षाःपिप्पल्यर्धपलंतथा-सितामधुकखर्जूरमृद्वीकाश्चपलोन्मिताः॥ संचूर्ण्यमधुनायुक्तागुलिकाःसंप्रकल्पयेत्। अक्षतुल्यास्ततश्चैकांभक्षयेन्नादिनेदिने-कासंश्वासंज्वरंहिक्कांछर्दिंमूर्च्छांमदंभ्रमम् ॥ रक्तनिष्ठीवनंतृष्णांपार्श्वशूलमरोचकम्। शोषप्लीहाढ्यवातांश्चस्वरभेदंक्षतक्षयम् ॥ गुलिकातर्पणीवृष्यारक्तपित्तञ्चनाशयेत्।

अर्थ—छोटी इलायची, तेजपात, दालचीनी इनमें से प्रत्येक आधे २ तोला, पीपल दो, तोला, मिश्री, मुलहटी, खजूर और दाख प्रत्येक चार तोला, इन सब को पीसकर शहत में तोले तोले भरकी गोली बनालेवै और प्रति दिन एक गोली का सेवन करै तौ खांसी, श्वास, ज्वर, हिचकी, वमन मूर्च्छा, मद, भ्रम, रक्तनिष्ठीवन, तृषा, पार्श्वशूल, अरुचि, शोष प्लीहा, आढ्यवात स्वरभंग, क्षत, क्षीणता और रक्तपित्त इतने रोग नष्ट होजाते हैं। येगोली तृप्तिकर्त्ता और वृष्य होती हैं।

रक्तेऽतिरिक्तेदक्षाण्डंयूषैस्तोयेनवापिबेत्॥ चटकाण्डरसंवापिरक्तंवाछागजाङ्गलम्। चूर्णपौनर्नवंरक्तशालितण्डुलशार्करम् ॥ रक्तष्ठीवीपिबेत्सिद्धंद्राक्षारसपयोघृतैः। मधूकमधुकक्षीरसिद्धंवातण्डुलीयकम् । मूढवातस्त्वजामेदःसुराभृष्टंससैन्धवम्भक्षा मःक्षीणःक्षतोरस्कस्त्वनिद्रःसबलेऽनले॥ शृतक्षीररसेनाद्यात्सक्षौद्रघृतशर्करम् ॥

अर्थ—रुधिरके अत्यन्त निकलनेपर मुर्गे के अंडे, या चिडियाके अंडों का रस वा बकरे या जांगल जीवों का रक्त यूप या जल के साथ पीवे। सांठ, लाल शाली चावल, शर्करा, द्राक्षारस दूध और घी इनको मिलाकर पीनेसे रुधिर बन्द होजाता है। महुआ और मुलहटीको दूधमें औटाकर अथवा चौलाई की जडको दूधमें औटाकर पीवै। मूढवातरोगी बकरेके मेदको सुरामें गरम करके सेंधानमक डालकर पीवै ॥ वातकी अधिकता से जब क्षत रोगी कृश

और क्षीण होजाय और निद्रा जाती रहै तौ औटे हुए दूध के साथ मांसरसका सेवन करै उसमें शहत, घी और चीनीभी डालदेवै ॥ शर्कराञ्चयवक्षौद्रजीवकर्षभकोमधु ॥ घृतक्षीरानुपानंवालिह्यात्क्षीणःक्षतःकृशः क्रव्यादमांसनिर्यूहंघृतभृष्टंपिबेच्चसः । पिप्पलीक्षौद्रसंयुक्तंमांसशोणितवर्द्धनम् न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षशालप्रियंगुभिः॥ तालमस्तकजम्बूत्वक्प्रियालैश्चसपद्मकैः॥ साश्वकर्णैःशृतात्क्षीरादद्याज्जातेनसर्पिषा । शाल्योदनंक्षतोरस्कःक्षीणशुक्रश्च मानवः॥ यष्ट्याह्वनागबलयोःक्वाथेक्षीरसमेघृतम् ॥ पयसापिप्पलीवांशीकल्कसिद्धंक्षतेशुभम् । कोलल्लाक्षारसेतद्वत्क्षीराद्गुणसाधितम् । कल्कैःकट्वङ्गदार्वी त्वग्वत्सकत्वचफलैर्घृतम् ।

अर्थ—जब क्षतक्षीण रोगी कृश होजाय तब वह शर्करा, जौका चून और शहत अथवा जीवक, ऋषभक और शहत को चाट कर ऊपर से गरम दूध पीवै । मांस और रुधिरकी वृद्धिके लिये मांसाहारी पशुओं के मांस रसको घी में छोंककर पीपल और शहत मिलाकर सेवन करे । अथवा वड,गूलर पीपल, पाकर, प्रियंगु, ताडकीछाल, पियाल जामनकीछाल, पद्माख,अश्वकर्ण (शालका भेद) इनको डालकर दूध औटावै, इस दूध में से घृत निकाल कर शाली चावलों का भात सेवन करै तौ वक्षःस्थल का क्षत और शुक्रकी क्षीणता दूर होजातीहै । अथवा मुलहटी और नागवलाके क्वाथ में दूध और घी समान भाग डाले तथा क्षीर काकोली, पीपल और वंशलोचन डालकर पान करै तौ क्षतरोग दूर होजाता है । अथवा वेर और लाक्षारस का समान भाग घी और दूध में औटाकर पूर्ववत् सेवन करै । अथवा सोनापाठा, दारुहल्दी की छाल, कुडाकी छाल: इनको घृतसे अठगुने दूध में औटाकर सेवन करै ।

अमृत प्राशघृत ।

जीवकर्षभकौवीरांजीवन्तींनागरंशठीम्। चतस्रःपर्णिनीर्मेदेकाकोल्यौद्वेनिदिग्धिके पुनर्नवेद्वेमधुकंसात्मगुप्तांशतावरीम् ॥ ऋद्धिपरूषकंभार्गीमृद्वीकांबृहतींतथा॥शृङ्गाटकीतामलकींपयस्यांपिप्पलींबलाम्॥बद राक्षोटखर्जूरवातामाभिषुकाण्यपि । फलानिचैवमादीनिकल्कान्कुर्वीतकार्षिकान्। धात्रीरसविदारीक्षुछागमांसरसंपयः कुर्य्यात्प्रस्थोन्मितंतेनघृतप्रस्थंविपाचयेत् प्रस्थार्द्धमधुनःशीतेशर्करार्द्धतुलांतथा । द्विकार्षिकाणिपत्रैलाहेमत्वङ्मरिचानिच॥ चूर्णितानिविनीयास्माल्लिह्यान्मात्रांसदा नरः॥अमृतप्राश्यमित्येतन्नराणाममृतंघृतम् सुधामृतरसंप्राश्यक्षीरमांसरसाशिना॥नष्टशुक्रक्षतक्षीणदुर्बलव्याधिकर्षितान्॥स्त्रीप्रसक्तान्कृशान्वर्णस्वरहीनांश्चबृंहयेत् । कासहिक्काज्वरश्वासदाहतृष्णास्रपित्तनुत्॥ पुत्रदंवमिमूर्च्छाहृद्योनिमूत्रामयापहम्॥

अर्थ—जीवक, ऋषभक, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, सोंठ, कचूर चारोंपर्णी [शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, माषपर्णी, मुद्गपर्णी)

मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, छोटी कटेरी, बड़ीकटेरी, सफेदसांठ, लालसांठ, मुलहटी, कैंच, सितावर, ऋद्धि, फालसा, भांडगी, दाख, बड़ी कटेरी, सिंघाड़ा, भूम्यांमला, विदारीकन्द, पीपल, खरैटी, बेर अखरोट, खजूर, बदाम, पिस्ता, तथा अन्य ऐसे ही फलोंको एक २ कर्ष लेकर पीसलेवै ॥ आंवलेका रस, विदारीकारस, ईखका रस, बकरेका मांसरस, दूध प्रत्येक एक २ प्रस्थ लेकर एक प्रस्थ घी डालकर पकावै, ठंडी होने पर आधा प्रस्थ शहत, आधा तुला शर्करा तथा तेजपात, इलायची, दालचीनी, काली मिरच प्रत्येक दो दो कर्ष लेकर चूर्ण कर के मिलादेवै । जो मनुष्य इस अमृतप्राश नामक घृत का प्रति दिन ठीक प्रमाण से सेवन करता है, उसे यह अमृतके समान गुणकारी है ॥ इसपर दुग्ध और मांसरस का अनुपानकरै । इसके सेवन से शुक्रक्षय, क्षतक्षीणता, दुर्बलता व्याधिसे कर्षता, स्त्री प्रसंग से कृशता, वर्णहीनता और स्वरहीनता ये सब नष्ट होजाते हैं । तथा खांसी, हिचकी, ज्वर, श्वास, दाह, तृष्णा, रक्तपित्त, वमन, मूर्छा, योनिरोग, मूत्ररोग भी नष्ट होजाते हैं ॥ इसके सेवन से पुत्र की उत्पत्ति होती है ।

स्वदंष्ट्रादिघृत ।

स्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठाबलाकाश्मर्यकत्तृणम् ॥ दर्भमूलंपृथक्पर्णीपलाशर्षभकौस्थिराम् । पालिकंसाधयेत्तेषांरसेक्षीरचतुर्गुणे ॥ कल्कैःस्वगुप्ताजीवन्तीमेदर्षभजीवकैः ॥ शतावर्य्यृद्धिमृद्वीकाशर्कराश्रावणीबिसैः ॥ प्रस्थःसिद्धोघृताद्वातपित्तहृद्द्रवशूलनुत् । मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःकासशोषक्षयापहः ॥ धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वखिन्नानांबलमांसदः ।

अर्थ—गोखरू, खस, मजीठ, खरैटी खंभारी, कतृण, दाभकी जड़, पृथक्पर्णी, ढाक, ऋषभक, शालिपर्णी, इनमें से प्रत्येकको एक २ पल लेकर इनका क्वाथ करै । चौथाई शेष रहनेपर चौगुना दूध, तथा कैंच, जीवन्ती, मेदा, ऋषभक, जीवक शतावरी, ऋद्धि, दाख, शर्करा, श्रावणी, कमलनाल, इनका कल्क डालकर एकप्रस्थ घृत सिद्ध करै । यह घृत वातापित्त, हृच्छूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्शरोग, खांसी, शोष, क्षयी इनको दूर करता है । जो धनुष, स्त्रीसेवन, मद्यपान, भारवहन, मार्ग भ्रमण से व्यथित है उसको बल और मांस का बढानेवाला है ।

मधुकाष्टपलंद्राक्षाप्रस्थंक्वाथेघृतंपचेत् ॥ पिप्पल्यष्टपलेकल्केप्रस्थंसिद्धेचशीतले । पृथगष्टपलंक्षौद्रंशर्कराभ्यांविमिश्रयेत् ॥ समंसक्तुक्षतक्षीणेरक्तगुल्मेपुताद्धितम् ॥

अर्थ—मुलहटी आठ पल, दाख एक प्रस्थ, पीपल आठपल, इनके क्वाथमें एक प्रस्थ घृत पक्व करै ठंडा होने पर आठपल शहत और आठपल शर्करा मिलालेवै फिर इसमें समान भाग सत्तू मिलाकर मात्रावत् सेवन करै तो क्षतक्षीणता और रक्तगुल्म दूर होजाते हैं ।

धान्यादिघृत।

धात्रीफलविदारीक्षुजीवनीयरसाद्घृतात्
छागगोपयसोश्चैवसमप्रस्थान्पचोद्भिषक्
सिद्धशीतेसिताक्षौद्रद्विप्रस्थंविनयेत्ततः॥
यक्ष्मापस्मारापित्तासृक्कासमोहक्षयापहम्।
वयःस्थापनमायुष्यंमांसशुक्रबलप्रदम्॥

अर्थ—आंवलेका रस, विदारीका रस ईखका रस, जीवनीय द्रव्योंका रस, घृत, बकरीका दूध, गौका दूध, येसब एक एक प्रस्थ लेकर पकावै। जब टंढा होजाय तब उसमें एक २ प्रस्थ मिश्री और शहत-मिलादेवै। इस घृतका सेवन करने से यक्ष्मा, अपस्मार, रक्तपित्त, खांसी, मोह और क्षयरोग दूर होजाते हैं। यह घृत वयःस्थापन कर्त्ता, आयुवर्द्धक, मांसवर्द्धक, शुक्रोत्पादक और बलकारक होता है॥

घृतंतुपित्तेऽभ्यधिकेलिह्याद्वातेऽधिकेपिबेत्
लीढंनिर्वापयेत्पित्तमल्पत्वाद्धन्तिनानिलम्॥ आक्रामत्यनिलंपीतमूष्माणानिरुणद्धिच। क्षामक्षीणकृशाङ्गानामेतान्येवघृतानिच॥ त्वक्क्षीरीशर्करालाजचूर्णैःपानानियोजयेत्। सर्पिर्गुडानसमध्वंशान् जग्ध्वादद्यात्पयोनुच॥ रेतोवीर्य्यंबलं पुष्टिंतैराशुतरमाप्नुयात्॥

अर्थ—इस क्षतक्षीण रोगमें पित्तकी अधिकता होने से घृतको चाटै, वातकी अधिकता में घृतका पानकरै, क्योंकि चाटा हुआ घृत थोड़ा होनेके कारण पित्त को शान्त करदेताहै किन्तु वायु नष्ट नहीं करने पाता है। पियाहुआ घृत वायुको नष्ट कर देता है और ऊष्मा को रोकदेताहै॥ दुर्बल, क्षीण और कृश मनुष्योंको ऊपर कहेहुये घृत वंशलोचन, मिश्री और लाजचूर्ण डालकरदेवै॥ सर्पिर्गुडमें मधु मिलाकर देवै ऊपर से दूधका अनुपान करावै, तौ रोगी शीघ्रही शुक्र, वीर्य, बल और पुष्टि से युक्त होजाता है॥

सर्पिर्गुड।

बलांविदारींह्रस्वञ्चपञ्चमूलींपुनर्नवाम्।
पञ्चानांक्षीरिवृक्षाणांशुङ्गामुष्ट्यंशकाम
पि॥ एषांकषायेद्विक्षीरेविदार्य्याजरसां
सिकेजीवनीयैःपचेत्कल्कैरक्षमात्रैघृताढ
कम्॥ सितापलानिपूतेऽस्मिन्शीतेद्वा
त्रिंशतंक्षिपेत्॥ गोधूमपिप्पलीवांशीचू
र्णशृङ्गाटकस्यच। सक्षौद्रकुडवांशेनतत्
सर्वंखजमूर्च्छितम्॥ स्त्यानंसर्पिर्गुडान्
कृत्वाभूर्जपत्रेणवेष्टयेत्।तान्जग्ध्वापलि-
कान्क्षीरंमद्यंवानुपिबेत्कफे। शोषेकासे
क्षतेक्षीणेश्रमस्त्रीभारकर्षितः॥ रक्तनिष्ठी-
वनेतापेपीनसेचोरसिस्थिते॥ शस्ताः
पार्श्वशिरःशूलेविभेदेस्वरवर्णयोः।

अर्थ—खरैटी, विदारीकन्द, लघुपंचमूल सांठ और पांचों क्षीर वृक्ष, ये प्रत्येक एक एक पल लेकर इनका क्वाथ करै॥ फिर इस क्वाथमें क्वाथसे दूना दूध, विदारी का रस, बकरेका मांसरस और घृत एक एक आढक लेवै और इसी में जीवनीय गणोक्त द्रव्य दो दो तोले डालदेवै। जब पकाते पकाते घृत शेष रहजाय तब छान कर ठंढा होने पर बत्तीसपल मिश्री डालदेवै और गेहूं, पीपल, वंशलोचन, सिंघाड़ा,

ज्ञाता,प्रवर पुनर्वसु ने निज आगन्तुक, एकांगज, सर्वांगज, शोथों के वातादि दोषों से किये हुए तीन भेद वर्णन किये ।

निजशोथकेकारण ॥

शुद्ध्यामयाभक्तकृशावलानांक्षाराम्लतीक्ष्णोष्णगुरूपसेवा । दध्याममृच्छाकविरोधिदुष्टगरोपसृष्टान्ननिषेवणंच ॥ अर्शास्यचेष्टानचदेहशुद्धिर्मर्मोपघातोविषमाप्रसूतिः । मिथ्योपचारःप्रतिकर्म्मणाञ्च निजस्यहेतुःश्वयथोःप्रदिष्टः ॥

अर्थ—संशोधन क्रिया, रोग और निराहार रहनेसे जो मनुष्य कृश और दुर्बल होगये है उनके क्षार, अम्ल, तीक्ष्ण, उष्ण और गुरु, पदार्थों के सेवन से, दही कच्चा-पदार्थ, शाक, विरोधी अन्न, दुष्ट भोजन, विषसंसृष्ट भोजन के अत्यन्त करने से अर्शादि रोगों से, चेष्टा न करनेसे, देहकी शुद्धि न होने से, मर्म में चोट लगने से, विषमरीति से प्रसूति होने के कारण, शोधन क्रियाओं के मिथ्या उपचार से निज शोथ उत्पन्न होता है ।

आगन्तु के लक्षण ।

बाह्यास्त्वचोदूषयिताभिघातः । काष्ठाश्मशस्त्राग्न्यशनीविषाद्यैः ॥

अर्थ—लकडी पत्थर, शस्त्र,अग्नि, वज्र विष आदिकी चोट बाहरकी त्वचा पर लगने से आगन्तुशोथ होता है ।

शोफके भेद ।

आगन्तुहेतुःत्रिविधोनिजश्च । सर्वार्द्धगात्रावयवाश्रितत्वात् ॥

अर्थ—आगन्तुनिमित्तक तथा तीन प्रकार की निजशोफ सर्वांग अर्द्धांग या अर्द्धांग अंगावयव का आश्रय लेकर उत्पन्न होतीहै ।

वातिकशोथ का हेतु ।

बाह्याःसिराः प्राप्ययदाकफासृक्पित्तानिसंदूषयतीहवायुः ॥ तैर्वद्धमार्गःसतदाविसर्पन्नुत्सेधलिङ्गंश्वयथुंकरोति ॥

अर्थ—वायु जब बाहरकी शिराओंका ग्रहण करके कफ, रक्त और पित्तको दूषित करती है, तब कफादिके द्वारा वायुके बाहर निकलने का मार्ग बन्दहोजाता है, तब संपूर्ण शरीर में फैलती हुई शोफको उत्पन्न करती है। देह के किसी भागके फूल जाने का नाम शोथ है ।

नामपरत्वसेशोथों के भेद ।

उरःस्थितैरूर्ध्वमधस्तुवायोः स्थानस्थितैर्मध्यगतैस्तुमध्ये ॥ सर्वांगगैःसर्वगतैः क्वचित्स्थैर्दोषैःक्वचित्स्यात्श्वयथुस्तदाख्या ॥

अर्थ—दोषों के उर्ध्वस्थान में स्थित होनेसे देह के ऊपर के भागों में सूजन होती है, इसी तरह नीचे के अवयवों में स्थित होनेसे नीचे और बीच में स्थित होने से मध्य देह में सूजन होती है । दोषों के सम्पूर्ण देह में विचरने से सर्वांगगामी शोफ होतीहै तथा शरीर के जिस २ विभाग में दोष स्थित होकर सूजनको उत्पन्न करते है वह सूजन उसी स्थान विशेष के नामसे कहलातीहै ।

ऊष्मातथास्याच्छ्वथुः शिराणा मायास इत्येवचपूर्वरूपं ॥ सर्वास्त्रिदोषोऽधिक

दोषलिंगैस्तत्संज्ञमभ्येतिभिषक्जितंच

अर्थ—सूजन उत्पन्न होनेसे पहिले देह में गरमी और दाह होता है, नसें फूलजाती है, सब प्रकारकी सूजन त्रिदोष से होती इन में जिस दोषकी अधिकता होती है,उसी के नाम से वह सूजन कहलाती है और उसी प्रधान दोष पर दृष्टि रखकरचिकित्साकीजातीहै

शोफकेसामान्यलक्षण ।

सगौरवंस्यादनवस्थितत्वं । सोत्सेधमुष्णाथशिरातनुत्वम् ॥ सलोमहर्षांगविवर्णताचसामान्यलिंगंश्वयथोःप्रदिष्टम् ॥

अर्थ—भारापन, चंचलता, ऊंचापन, गर्माई, नसों का पतलापन, लोमहर्षण, अंग की विवर्णता, ये सब सूजन के सामान्य लक्षणहैं

वाताधिक्यशोफ के लक्षण ।

चलस्तनुत्वक्परुषोऽरुणोसितः सुप्तिप्रहर्षार्त्तियुतोनिमित्ततः॥ प्रशाम्यतिप्रोन्नमतिप्रपीडितो । दिवाबलीचश्वयथुः समीरणात् ॥

अर्थ—वायुकी अधिकता से सूजन स्थानान्तर में जाती रहती है, खाल पतली पड जाती है, और उसका वर्ण परुष, लाल या काला पडजाता है सूजनकी जगह सुन्न, रोमाञ्चित और वेदनायुक्त होती है, हेतु विपरीत औषध से ये शान्त होजाती है । दबाने पर फिर ऊंची होजाती है, दिन में इसका वेग बढजाता है ॥

पित्ताधिक्यशोफके लक्षण ।

मृदुःसगन्धोऽसितपीतरागवान् । भ्रमज्वरस्वेदतृषामदान्वितः । यउष्यतेस्पर्शसहोऽक्षिरागकृत्सपित्तशोथोभृशदाहपाकवान्

अर्थ—पित्ताधिक्य शोफ कोमल, गन्ध युक्त, काली, पीली वा लाल होती है इसके होने से चक्कर, ज्वर, पसीना, तृषा, और मद होता है ॥ इस सूजन में हाथ लगाना बुरा मालूम होता है, आंखें लाल पडजातीहै, दाह और पाक बहुत होता है ।

कफाधिक्यशोफकेलक्षण ।

गुरुःस्थिरःपाण्डुररोचकान्वितःप्रसेकनिद्रावमिवन्हिमान्द्यकृत्॥ सकृच्छजन्मप्रशमो निपीडितोनचोन्नमेद्रात्रिबलीकफान्वितः

अर्थ—कफाधिक्य शोफ भारी, अचंचल और पांडुरंगका होताहै, इसके होने से अन्नमें अरुचि, लार टपकना, निद्रा, वमन और मंदाग्नि होती है, इसके उत्पन्न होने और शान्त होने में बडी कठिनता होती है दाबनेपर फिर उठती नहीं है रात्रिके समय इसका वेग बढजाता है ।

असाध्य शोथके लक्षण ।

कृशस्यरोगैरबलस्ययोभवेदुपद्रवैर्वावमिपूर्वकैर्युतः । महार्तिमर्मानुगतोऽथराजिमान्परिस्रवन्भीमबलश्चसर्वशः ॥

अर्थ—कृश मनुस्यकी, रोगसे दुर्बल मनुष्य की, वमनादि उपद्रवों से युक्त सूजन, मर्म स्थान की सूजन, रेखाओं की सूजन स्रावयुक्त सूजन और हीनबल पुरुष की सूजन असाध्य होती है ।

साध्य शोफ के लक्षण ।

अहीनमांसस्ययएकदोषजोनवोबलस्त

स्यसुखःससाधने । निदानदोषर्तुविपर्य्ययक्रमैरुपाचरेत्तंवलदोषकालवित् ॥

अर्थ....जिसका मांस क्षीण न हुआ हो ऐसे वलवान् व्यक्ति की एक दोष से उत्पन्न हुई नवीन सूजन सुख साध्य होती है। वल, दोष और काल को जाननेवाले वैद्य को उचितहै कि इस की चिकित्सा निदान, दोष और ऋतुकी विपरीततासे करै।

निकित्साक्रम ॥

अथामजंलंघनपाचनक्रमैर्विशोधनैरुल्वणदोषमादितः । शिरोगतंशीर्षविरेचनैरधोविरेचनैरूर्ध्वहरैस्तथोर्ध्वजम् ॥ उपाचरेत्स्नेहगतंविरूक्षणैःप्रकल्पयेत्स्नेहविधिन्चरूक्षजे । विवद्धविट्केनिलजेनिरूहणंघृतन्तुपित्तानिलजेसतिक्तकम् ॥ पयश्चमूर्च्छारतिदाहतर्षितेविशोधनीयेतुसमूत्रमिष्यते । कफोत्थितंक्षारकटूष्णसंयुतःसमूत्रतक्रासवयुक्तिभिर्जयेत् ॥

अर्थ—आम से उत्पन्न सूजन को लंघन और पाचन से, उल्वण दोष वाली सूजन को विशोधन द्वारा, अधोगामी शोफ को दस्त कराके, उर्ध्वांग शोफको वमन कराके, घृतके अधिक सेवन से उत्पन्न शोथको विरूक्षण क्रियासे, रूक्षज शोफको स्नेह विधिसे, जीतने का उपाय करै। विबन्धयुक्त वातज शोफ को निरूहण वस्ति से, वा स पित्तज शोफ को तिक्तक घृत से, विजय करै। मूर्च्छा, अरति, दाह और तृषासे युक्त सूजन में दूधको और विशोधन के योग्य सूजनमें गोमूत्र मिलाकर दूध को देवै। इसीतरह कफज शोफमें क्षार, कटु, उष्ण द्रव्यों से युक्त गोमूत्र मिले हुए तक्र वा आसव का प्रयोग करै॥

सूजन में त्याग के योग्य पदार्थ

ग्राम्यानूपंपिशितलवणंशुष्कशाकंनवान्नम् । गौडंपिष्टंदधितिलकृतंविज्वलंमद्यमम्लम् ॥ धानावल्लूरसमशनमथोगुर्वसात्म्यंविदाहि । स्वप्नश्चरात्रौश्ययथुगदवान्वर्ज्जयेन्मैथुनंच ॥

अर्थ—ग्राम्य और आनूप पशुओं का मांस, लवण, सूखाशाक, नवीन अन्न, गुड के पदार्थ, पिट्ठी के पदार्थ, दही, तिलके पदार्थ, कुछ रसीले व्यंजन, मद्य, खटाई, जौ की धानी, सूखामांस, समशन, भारी, असात्म्य और विदाही अन्न, रात्रिमें सोना और मैथुन इन कर्मों का परित्याग शोथ रोगी को करदेना उचित है।

कफज शोफ पर प्रयोग ॥

व्योषंत्रिवृच्चित्रककरोहिणीचसायोरजस्कात्रिफलारसेन । पीतंकफोत्थंशमयेत्तुशोफमूत्रेणगव्येनहरीतकीवा ॥ हरीतकीनागरदेवदारुसुखाम्बुयुक्तंसपुनर्नवंवा । संवैपिवेद्विप्वापिमूत्रयुक्तंस्नातश्चजीर्णेपयसान्नमद्यात् ।

अर्थ—त्रिकुटा, निसोथ, कुटकी, लोह चूर्ण इनको त्रिफलाके रस के साथ पानकरै अथवा हरड़के चूर्ण को गोमूत्रके साथ पानकरै तो कफकी सूजन दूर होजाती है। अथवा हरड़, सोंठ, देवदारु और सांठ इन के चूर्ण को गरम जलके साथ फांकै तो क

फ की सूजन जाती है अथवा इसी चूर्ण को गोमूत्र के साथ फांके तौ तीनों प्रकार की सूजन दूर होजाती है, औषध के पचने पर दूधके साथ अन्न का सेवन करै ॥

वातज शोफ के प्रयोग ।

पुनर्नवानागरमुस्तकल्कान्प्रस्थेनधीरः पयसोऽक्षमात्रान्। मयूरकंमागधिकांसमूलासनागरांवाप्रविपेत्सवाते ॥ दन्तीत्रिवृत्त्र्यूषणचित्रकैर्वापयःशृतंदोषहरंपिबेद्वा द्विप्रस्थमात्रञ्चपलार्द्धिकैस्तैरर्द्धावशिष्टं पवनेसपित्ते । सशुण्ठिपीतद्रुरसंप्रयोज्यं श्यामोरुबूकोषणसाधितंवा ॥ त्वग्दारुवर्षाभ्वमहौषधैर्वागुडूचिकानागरदन्तिभिर्वा

अर्थ—सांठ, सोंठ और मोथा प्रत्येकदो तोला इनको एकप्रस्थ दूधमें औटाकर आधा शेष रहने पर पान करै। अथवा ओंगा की जड़, पीपल, पीपलामूल और सोंठ इन को ऊपरकी रीतिसे पीवै तौ वातकी सूजन जाती रहतीहै। अथवा दन्ती, निसोथ, त्रिकुटा, चीता इनको दूधमें डालकर औटावै और पान करै तौ सूजन के दोष दूर होजाते हैं॥अथवा दन्ती निसोथ, त्रिकुटा चीता इनको आधे आधे पल लेकर दो प्रस्थ दूध में औटावै जब एक प्रस्थ रहजाय तब पान करै तौ वातपित्त का शोफ दूर होजाता है॥सोंठ और देवदारु का क्वाथ दूध के साथ पीने से अथवा काली निसोथ, अरंड की जड और कालीमिरच इन सबको समान भाग लेकर अठगुने दूध और उससे चौगुने जल में चढाकर दूध शेष रहने पर छानकर पीवै तौ वातपित्त की सूजन जाती रहती है ॥ अथवा दालचीनी, दारुहलदी, पुनर्नवा और सोंठ, अथवा गिलोय, सोंठ और दन्ती इन दोनों में से किसी को दूधमें औटाकर पान करने से वातपित्त की सूजन दूर होजाती है ॥

सप्ताहमौष्ट्रंयदिवापिमासंपयःपिबेद्भोजनवारिवर्जी । गव्यंसमूत्रंमहिषीपयोवाक्षीराशनंमूत्रमथोगवांवा ॥ तक्रंपिबेद्वागुरुभिन्नवर्चास्त्र्योषसौवर्चलमाक्षिकंवा॥ गुडाभयांवागुडनागरांवासदोषभिन्नामविबद्धवर्चाः ॥ विड्वातसङ्गेपयसारसैर्वा प्राग्भुक्तमद्यादुरुबूकतैलम् । स्रोतोविबन्धेऽग्निरुचिप्रणाशेमद्यान्यरिष्टांश्चपिबेत्सुजातान्॥

अर्थ—वातपित्तकी सूजनमें भोजन और जलको छोडकर एक सप्ताह या एक महीने तक केवल ऊंटनी का दूध पीकर रहै अथवा इसी तरह से गोमूत्र और भैंस के दूधका सेवन करै, अथवा गौ के दूध को भोजन में और पीने में प्रयुक्त करै। सूजन में मलका अत्यन्त भेद होनेसे त्रिकुटा संचलनमक और शहत डालकर मठा पीवै दोषोंके द्वारा भिन्न हुए आम और विबद्ध मलमें गुड और हरड अथवा गुड और सोंठका पान करावै। मल और अधोवायु के रुकनेपर भोजन करने से पहिले अंडी का तेल दूध या मांस रसके साथ पान करावै स्रोतोंके बन्द होने पर जठराग्नि और रुचि के नष्ट होने पर उत्तम बने हुए मद्य और अरिष्टों का पान करै ॥

कण्डीराद्यरिष्ट ।

कण्डीरभल्लातकचित्रकाश्चव्योपविडङ्गं
द्वतीद्वयञ्च । द्विप्रस्थिकंगोमयपावकेन
द्रोणेपचेत्काञ्जिकमस्तुनस्तु ॥ त्रिभा
गशेषञ्चसुपूतशीतंद्रोणेनतत्प्राकृतमस्तुना
च । सितोपलायाश्चशतेनयुक्तंलिप्तघटे
चित्रकपिप्पलीनाम् ॥ वैहायसेस्थापित
मादशाहात्प्रयोजयंस्तद्विनिहन्तिशोकान्
भगन्दरार्शःक्रिमिकुष्ठमेहान्वैवर्ण्यकार्श्या
निलहिक्कनञ्च ॥

अर्थ....कण्डार, भिलावा, चीता, त्रिकुटा वायविडंग, दोनो कटेरी, इन सबको दो प्रस्थ लेकर जौकुट करले फिर इसे एक द्रोण कांजी और दही के तोडमें गौ के गोबरके उपलों की आगपर पकावै । तिहाई जलजाने पर इस को उतारकर छान लेवै और ठंडा होने पर एक द्रोण दहीका तोड सौ पल मिश्री इसमें मिलाकर एक ऐसे घडे में भरदेवे जिस में चीते और पीपलों की भावना दी हो, इस घडे को ढककर छींके पर दस दिन तक टंगा रहनेदे । फिर इस का सेवन करने से सूजन, भगन्दर, अर्श, क्रिमिरोग, कुष्ट प्रमेह, विवर्णता, कृशता, वातरोग और हिचकी नष्ट होजाते हैं ।

अष्टाशतअरिष्ट ।

काश्मर्यधात्रीमरिचाभयानांद्राक्षाफला
नाञ्चसपिप्पलीनाम् । शतंशतंजीर्णगु
डात्तुलाञ्चसक्षुद्रकुम्भेमधुनावलिप्ते ॥
सप्ताहमुष्णाद्विगुणन्तुशीतेस्थितंजलद्रोण
युतांपिवेत्ताम् । शोफाग्निवन्धानकफवात
जांश्चसहन्त्यरिष्टोऽष्टशतोग्निकृच्च ॥

अर्थ....खंभारी के फल, आंवला, काली मिरच, हरड, दाख और पीपल, प्रत्येक सौ सौ लेवै, पुराना गुड एक तुला इन सब को जौकुट करके गुडमें सानकर एक ऐसे घडेमें भरै जिसमें भीतर शहत पोता गया हो और उस घडेमें एक द्रोण जल भी भरदेवे, इस घडेको गरमी की ऋतुमें एक सप्ताह इसी तरह धरा रहने देवै ॥ इस अरिष्टका सेवन करने से सूजन, कफवातज विवन्ध दूर होजाते हैं और जठराग्नि बढतीहै॥

पुनर्नवाद्यरिष्ट ।

पुनर्नवेद्वेचवलेसपाठेदन्तीगुडूचीमथचित्रक
श्चनिदिग्धिकाञ्चात्रिपलानिपक्त्वाद्रोणा
र्द्धशेषेसलिलेततस्तम् । पूतारसंद्वेचगुडा
त्पुराणात्तुलेमधुप्रस्थयुतंसुशीतम् ॥ मां
संनिदध्याद्घृतभाजनस्थंपक्षेयवानांपरि
तस्तुमासान् । चूर्णीकृतैरर्द्धपलांशिकैस्त
पत्रत्वगेलामरिचाम्बुलोहैः ॥ गन्धान्वि-
तंक्षौद्रघृतप्रदिग्धेजीर्णेपिवेद्व्याधिवलंसमी-
क्ष्य। हृत्पाण्डुरोगंश्वयथुंप्रवृद्धंप्लीहभ्रमारोच
कमेहगुल्मान्। भगन्दरंषट्जठराणिकासं
श्वासंग्रहण्यामयकुष्ठकण्डूः ॥ शाखानिलं
वद्धपुरीषताञ्चहिक्कांकिलासञ्चहलीम
कञ्च । क्षिप्रंजयेद्वर्णवलायुरोजस्तेजोन्वि
तामांसरसान्नभोक्ता ॥

अर्थ....सफेद सांठ, लालसांठ, खरैटी, नागवला, पाठा, दन्ती, गिलोय, चीता और कटेरी, इनमें से प्रत्येक को तीन तीन पल लेकर एक द्रोण जलमें चढावे जब आधा

शेष रहजाय तब छानकर ठंडा होने पर इस में दो तुला पुराना गुड औरएकप्रस्थ शहत मिलाकर घीके चिकने घडेमें भरकर जौके ढेर में एक महीने तक गढ़ा रहनेदेवै । महीने भर पीछे इस में तेजपात, दालचीनी, छोटी इलायची, काली मिरच और नेत्रबाला का चूर्ण आधा २ पल डालकर सुगंध युक्त करै॥ पुराना होने पर इस अरिष्टमें घृत शहत मिलाकर व्याधि और बलके अनुसार सेवन करै तो हृदरोग, पाण्डुरोग, बढीहुई सूजन, प्लीहा, भ्रम, अरुचि, प्रमेह, गुल्मरोग, भगन्दर, छःप्रकारके जठररोग खांसी, श्वास, ग्रहणीरोग, कोढ, खुजली, शाखागत वायु, मलकी बद्धता, हिचकी, किलास और हलीमक, ये सब रोग शीघ्रही दूर होजाते हैं ॥ इस अरिष्टको सेवन करके मांसरस और अन्नका भोजन करने से वर्ण, बल, आयु, ओज और तेज बढता है॥

त्रिफलारिष्ट ।

फलत्रिकंदीप्यकचित्रकौचसपिप्पलीलोहरजोविडङ्गम् । चूर्णीकृतंकौडविकंद्विरंशं क्षौद्रंपुराणस्यतुलांगुडस्य ॥ मासंनिदध्याद्घृतभाजनस्थंयवेपुतानेवनिहन्तिरोगान्

अर्थ....त्रिफला, अजवायन, चीता, पीपल, लोहभस्म, बायविडंग, प्रत्येक एक २ कुडव, शहत दो कुडव, पुराना गुड एक तुला इन सबको घी की हांडी में भरकर महीने भरतक जौ के ढेरमें गाढदे और फिर सेवन करै तो पूर्वोक्त फलहोय ॥

येचार्शसांपाण्डुविकारिणाञ्च । मोक्ताः शुभाःशोफिषुतेऽप्यरिष्टाः ॥

अर्थ....अर्शरोग और पाण्डुविकारों में जो २ अरिष्ट वर्णन कियेगये हैं वे सब शोफमें हितकारी होते हैं ॥

पिप्पल्यादिचूर्ण ।

कृष्णासपाठागजपिप्पलीचनिदिग्धिकाचित्रकनागरेच । सपिप्पलीमूलरजन्यजाजीमुस्तञ्चचूर्णंसुखतोयपीतम् ॥ हन्यात्त्रिदोषंचिरजञ्चशोफंकल्कश्चभूनिम्बमहौषधस्य । अयोरजस्त्र्यूषणयावशूकंचूर्णञ्चपीतंत्रिफलारसेन ॥

अर्थ—पीपल, पाठ, गजपीपल, कटेरी, चीता, सोंठ, पीपलामूल, हल्दी, कालाजीरा और मोथा इनके चूर्णको गुनगुने जलके साथ फांकनेसे त्रिदोषज पुराना शोफ दूरहो जाताहै, इसीतरह चिरायता और सोंठका चूर्ण गरमजलके साथ फांकनेसे पूर्वोक्त गुण होता है । अथवा लोहचूर्ण, त्रिकुटा, जवाखार इनके चूर्णको त्रिफला के रसके साथ पीनेसे भी पूर्वोक्त गुण होता है ॥

क्षारादिवटिका ।

क्षारद्वयंस्याल्लवणानिचत्वार्य्ययोरजोव्योपफलत्रिकंच । सपिप्पलीमूलविडङ्गसारं मुस्ताजमोदामरदारुविल्वम् । कालिङ्गकाश्चित्रकमूलपाठंसयष्टिकञ्चातिविषंपलांशम् ॥ सहिंगुकर्षत्वनुसूक्ष्मचूर्णंद्रोणंयथामूलकशुण्डिकानाम् । स्याद्भस्मनस्तत्सलिलेनसाध्यमालोड्ययावद्घनमप्यदग्धम् ॥ स्त्यानंततःकोलसमान्तुमात्रांकृत्वासुशुष्कांविधिनाभजेत ।प्लीहोदरश्वित्रहलीमकांस्तुपाण्ड्वामयारोचकशोपशो-

फान् ॥ विसूचिकागुल्मगराश्मरीश्च सश्वासकासाःप्रणुदेत्सकुष्ठाः

अर्थ—दोनों प्रकारके खार, चारोंनमक, लोहचूर्ण, त्रिकुटा, त्रिफला, पीपलामूल, वायविडंगकी मींगी, मोथा, अजमोद, देवदारु, बेलगिरी, इन्द्रजौ, चीते की जड़, पाठा, मुलहटी, और अतीस एक २ पल लेवै और एक कर्ष भुनी हुई हींग लेवे इन सबका महीन चूर्ण करलेवै । फिर मूली और सोंठ की भस्मको अठगुने जलमें डालकर अग्निपर चढादे जब चौथाई शेष रहै तब उतारकर छानले । फिर इनमें पूर्वोक्त चूर्ण डालकर अग्निपर धरकर चलातारहै जिससे लगने न पावै। गाढाहोने पर बेर की बराबर गोली बनाकर सुखालेवै । इन गोलियोंका विधिपूर्वक सेवन करने से प्लीहा, उदररोग, श्वित्रकुष्ठ, हलीमक, पाण्डुरोग, अरुचि, शोष, शोफ, विसूचिका गुल्मरोग, पथरी, श्वास, खांसी और कोढ़ शीघ्र नष्ट होजाते हैं ॥

अन्यप्रयोग

प्रयोजयेदार्द्रकनागरंवातुल्यंगुडेनार्द्धपलाभिवृद्ध्या। मात्रापलंपञ्चपलानिमासंजीर्णेपयोयूपरसान्नभोक्ता ॥ गुल्मोदरार्शः श्वयथुप्रमेहान्श्वासप्रतिश्यालसकाविपाकान्। सकामलाशोपमनोविकारान्कासंकफञ्चैवजयेत्प्रयोगः।

अर्थ—आधेपल अदरख वा सोंठ को समानभाग पुराने गुड़के साथ सेवन करै। फिर प्रतिदन आधा २ पल बढाता रहै, जब पांचपल पूरे होजाय तब महीने भरतक प्रतिदिन पांचपल का सेवन करता रहै। औषधके जीर्ण होने पर दूध, यूप और मांसरस का सेवन करता रहै। इस औषधसे गुल्म, उदररोग, अर्शोविकार, सूजन, प्रमेह, श्वास, प्रतिश्याय, अलसक, अविपाक, कामला, शोष, मनोविकार, खांसी और कफ दूर होजाते हैं।

रसस्तथैवार्द्रकनागरस्यपेयोऽथजीर्णेपयसान्नमद्यात् जत्वश्मजञ्चात्रिफलारसेन हन्यात्त्रिदोषंश्वयथुंप्रसह्य ॥

अर्थ—ऊपर कही हुई रीतिके अनुसार ही प्रतिदिन आधे २ पल बढाकर अदरख का रस पान करै, जब पांचपल पर पहुंच जाय तब एक महीने पर्य्यन्त प्रति दिन पांच पल सेवन करतारहै। औषध के पचनेपर दूध के साथ अन्नका भोजन करै। त्रिफला के क्वाथ केसाथ शिलाजतु पीनेसे भी त्रिदोष की सूजन जाती रहती है।

हरीतक्यादिप्रयोग

द्विपञ्चमूलस्यपचेत्कषायेकंसेभयानाञ्च शतंगुडस्य।लेहेसुसिद्धेचविनीयचूर्णंव्योषंत्रिसौगन्ध्यमुपास्थितेच ॥ प्रस्थार्द्धमात्रंमधुनः सुशीतेकिञ्चिच्चचूर्णादपियावशूकात् ॥ एकाभयांप्राश्यततश्चलेहाच्छुक्तिंनिहन्तिश्वयथुंप्रवृद्धम् । श्वासज्वरारोचकमेहहिक्काप्लीहात्रिदोषोदरपाण्डुरोगान्॥कार्श्यामवातानसृगम्लपित्तंवैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥

अर्थ—चारसेर दशमूल और सौ हरडको

सोलह सेर जल में भरकर अग्निपर चढा देवै जब चौथाई रहजाय तब उतारकर छान लेवै और हरडोंके भीतर से गुठली निकालकर फेंकदे । फिर उस क्वाथ को हरडोंके गूदे और पुराने गुडके साथ अग्निपर चढादे जब चाटने के योग्य गाढी होजाय तब अग्निपरसे उतारकर त्रिकुटा, दालचीनी, इलायची, तेजपात, इन को पीसकर उसमें डाल देवै तथा आधा प्रस्थ शहत और थोडासा यवशूक डालकर मिलाकर उतार लेवै । फिर प्रतिदिन इनमें से एक हरड खाकर आधेपल चटनी चाट लेवै तो अत्यन्त वढीहुई सूजन नष्ट होजाती है तथा श्वास, ज्वर, अरुचि, प्रमेह, हिचकी, प्लीहा, त्रिदोषजन्य उदर रोग, पाण्डुरोग, कृशता, आमवात, रक्तपित्त, अम्लपित्त, विवर्णता, मूत्रदोष, वातदोष, शुक्रदोष ये सब रोग दूर होजाते हैं ॥

पटोलादिघृत ।

पटोलमूलासुरदारुदन्तीत्रायन्तिपिप्पलयभयाविशालाः ॥ यष्ट्याह्विकातिक्तकरोहिणीच । सचन्दनास्यांनिचुलानिदार्वी ॥ कर्पोंत्थितैस्तैःक्वथितःकपायो । घृतस्यपेयःकुडवेनयुक्तः । वीसर्पदाहज्वरसन्निपातां स्तृष्णांविषाणिश्वयथुंनिहन्ति ॥

अर्थ....परवलकी जड, देवदारु, दन्ती, त्रायमाणा, पीपल, हरड, इन्द्रायणकीजड, मुलहटी, कुटकी, रक्तचन्दन निचुल और दारुहलदी, इनमें से प्रत्येक को एक एक कर्ष लेकर अठगुने जल में चढा दे चौथाई शेष रहने पर उतारकर छान ले और इस क्वाथ में एक कुडव घृत डालकर फिर पकावे जब घृत शेष रहजाय तब नित्यप्रति मात्राके अनुसार सेवन करै तो विसर्प, दाह ज्वर, सन्निपात, तृष्णा विषरोग और सूजन दूर होजावैगी ॥

चित्रकादिघृत ॥

सचित्रकंधान्ययवान्यजाजी । सौवर्च्चलंव्यूषणवेतसाम्लम् । विल्वात्फलंदाडिमयावशूकौ । सपिप्पलीमूलमथोऽपि चव्यम् ॥ पिष्ट्वाक्षमात्राणिजलाढकेन पक्त्वाघृतप्रस्थमथोविदध्यात् ॥ अर्शांसिगुल्मंश्वयथुञ्चदुःखं । तद्धन्तिवन्हिश्चकरोतिदीप्तम् ॥ पिवेद्घृतंवाष्टगुणाम्बुसिद्धं । सचित्रकक्षारसुदारवर्यम् ॥ कल्याणकंवापिसपञ्चगव्यं ।तिक्तंमहद्वाप्यथतिक्तकंवा ॥

अर्थ--चीता, धनियां, अजवायन, कालाजीरा, संचलनमक, कालीमिरच, सोंठ, पीपल, अमलवेत, वेलफल, अनारकीछाल, जवाखार, पीपलामूल, चव्य, इन सवको दो २ तोले लेकर एक आढक जल में पकावे फिर चौथाई शेष रहनेपर छानकर पूर्वोक्तरीतिसे एक प्रस्थ घृत पकावे, घृत शेष रहनेपर उतार लेवै । इस घृतके सेवन करनेसे अर्शरोग, गुल्म, सूजन और मूत्रदोष दूर होजाते हैं और जठराग्नि प्रवल होतीहै । अथवा चीते और जवाखारको अठगुने जलमें चढाकर उसके साथ घृत

षधियोंका वर्णन कियागयाहै अब उन औषधियोंका का वर्णन करेंगे जो वाहर लगानेमें काम आती हैं, यथा वातजशोथमें स्नेह, प्रदेह, परिषेचन और स्वेदन ॥

शैलेयतैल ।

शैलेयकुष्ठागुरुदारुकौन्ती । त्वक्पद्मकैलाम्बुपलाशमुस्तैः ॥ प्रियंगुथौणेयकहेमंमासी । तालीसपत्रप्लवपत्रधान्यैः ॥ श्रीवेष्टकध्यामकपिप्पलीभिःस्पृक्कानखैश्चयथोपलाभम् । वातान्वितेऽभ्यङ्गमुशन्तितैलंसिद्धंसुपिष्टैरपिचप्रदेहम्‌।जलेच वासार्ककरञ्जशिग्रुकाश्मर्यपत्रार्जकजैश्च सिद्धैः । स्विन्नोमृदूष्णैरवितप्ततोयस्नातश्चगन्धैरनुलेपनीयः ॥

अर्थ....शिलापुष्प, कूठ, अगर, दारुहल्दी, पद्माख, इलायची, नेत्रवाला, पलाश, मोथा, प्रियंगु, थूनेर, जटामांसी, तालीसपत्र, कैवर्टीमोथा, तेजपात, धनियां, श्रीवेष्टक, ध्यामक, स्पृक्का, नखी, इनद्रव्योंमें से जितनी मिलसकें उनको लेकर उनके क्राथमेंतेल पकाकर वादीकी सूजनपर लेपकरै ॥

अडूसा, कंजा, सहजना, खंभारी, और तुलसी, इनके पत्तोंको डालकर जलऔटावै और इस गरम, गरम, जलसे सूजनके स्थानको धोवै अथवा धूपसे कियेहुए गरम जल द्वारा पसीनेलेवै । इसजलसे स्नानकरके गन्धद्रव्यों का लेपकरै ॥

पित्तज शोफपर तैलादि ।

सवेतसाःक्षीरवतान्द्रुमाणान्त्वचःसमाञ्जिष्ठबलामृणालाः । सचन्दनाःपद्मकवालकौंचपंतैप्रदेहस्तुसतैलपाकः ॥ आक्तस्य तेनाम्बुरविप्रतप्तंसचन्दनंसाभयपद्मकञ्च स्नानेमतंक्षीरवतांकषायःक्षीरोदकंचन्दनलेपनंच ॥ कफेतुकृष्णासिकतापुराणपिण्याकशिग्रुःत्वगुमाप्रलेपः।कुलत्थशुण्ठीजलमूत्रसेकःचण्डागुरुभ्यामनुलेपनंच ॥

अर्थ—पित्तजशोफमें बेत और गूलर, पीपल आदि दूधके बृक्षोंकी छाल, मजीठ, खरैटी, कमलनाल, रक्तचंदन, पद्माख, नेत्रवाला, इनको पीसकर लेपकरै अथवा इनद्रव्योंके काथमें तेल पकाकर लगावै । इसतेलको लगाकर रक्तचंदन, हरड और पद्माख डालकर जलको धूपमें गरमकरके स्नानकरै । इसीतरह दूधिया बृक्षोंकी छालके क्राथसे वा दूध मिलेहुए जलसे स्नान करके चन्दनका लेपकरै ॥

कफजशोफपर तैलादि ।

विभीतकानांफलमध्यलेपःसर्वेपुदाहार्तिहरःप्रलेपः। यष्ट्याह्वमुस्तैःसकपित्थपत्रैः सचन्दनैस्ततिपडकासुलेपःरास्नाग्रपार्कत्रिफलाविडंगा ॥ शिग्रुत्वचोमूषिककर्णिकाचानिम्बार्जकौव्याघ्रनखसदूर्वा।सुवर्चलास्यात्कटुरोहिणीचसकाकमाचीद्विहतौस कुष्ठापुनर्नवाचित्रकनागरेच ॥ उन्मर्दनं शोफिपुमूत्रपिष्टंशस्तस्तथामूलकतोयसेकः

अर्थ....कफकी सूजन में पीपल का चूर्ण, पुरानीखल, सहजनेकी छाल और राई इनको पीसकर लेप करै । कुलथी और सोंठके क्राथ में गोमूत्रको मिलाकर परिषेक करै ॥ पीछे चण्डा और अगरका लेपकरै । बहेडे

के गूदे का लेप करने से सब प्रकार की सूजनोंका दाह शान्त होजाताहै । जो सूजन में फुन्सियां होजांय तो मुलहटी, मोथा, कैथके पत्ते, और रक्तचंदन का लेप करै ।

रास्ना, अडूसा, आक, त्रिफला, बायविडंग, सहजने की छाल, मूषिकपर्णी, नीम, तुलसी, वाघनखी, दूब, सुवर्चला, कुटकी,मकोय, कटेरी, कूट, पुनर्नवा, चीता और सोंठ इन सबको गोमूत्रमें पीसकर लेप करै । अथवा सूखीमूली को जल में औटाकर इस जलसे परिषेक करै ॥

शोफास्तुगात्रावयवाश्रितायेतेस्थानदूष्याकृतिनामभेदात् । अनेकसंख्याःकतिचिद्यतेषांनिदर्शनार्थंशृणुचोच्यमानान्।दोषास्त्रयस्वैःकुपितानिदानैःकुर्वन्तिशोफान् शिरसःसुघोरान् ॥ अन्तर्गलेघुर्घुरिकान्वितंचशालूकमुतश्वासनिरोधनानि । गलस्यसन्धौचिबुकेगलेचसदाहरागश्वसनासुचोग्रःशोफोभृशार्तिस्तुविडालिकास्याद्वन्याद्गलेचेद्वलयीकृतास्यात् ॥

अर्थ—जो सूजन शरीर के जुदे २ स्थानोंमें होती है वह स्थान, दूष्य, आकृति और नामके भेदसे अनेक प्रकार की होती है, अब हम उनमें से उदाहरण के निमित थोडीसी शोफोंका वर्णन करते हैं उन्हे सुनों। अपने २ कारणोंसे कुपित होकर तीनों दोष सिरमें घोर सूजन उत्पन्न करते हैं ॥ इसमें गले के भीतर घुर्घुर शब्द होने लगता है और श्वास रुकने लगता है इसका नाम शालूकशोफ है ॥ गलेकी संधि ठोडी और गले में दाह, राग और श्वास से युक्त सुचोग्रनामक शोफ उत्पन्न होता है ॥ जब यह सूजन गलेमें मंडलाकार हो कर अत्यन्त वेदना उत्पन्न करके मनुष्य को मारती है तब उसे विडालिका कहतेहैं॥

अन्यशोफोंकेनाम ।

स्यात्तालुविद्रध्यपिदाहरोगैर्युताभवेत्तालुनिसात्रिदोषात् । जिह्वोपरिष्टादुपजिह्विकास्यात्कफादधस्तादधिजिह्विकाच। योदन्तमांसेषुतुरक्तपित्तात् पाकोभवेत्सोपकुशःप्रदिष्टः॥स्याद्दन्तविद्रध्यपिदन्तमांसेशोफःकफाच्छोणितसंञ्चयोत्थः॥

अर्थ—जोशोफ दाह युक्त और रक्त वर्ण की तालुमें होतीहै उसे तालुविद्रधि कहतेहैं॥ यह त्रिदोषसे होतीहै ॥ जो जिह्वा के ऊपर होती है उसे उपजिह्विका कहते हैं ॥ और जो कफके कारण जिह्वासे नीचे होती है उसे अधिजिह्विका कहते हैं ॥ रक्तपित्त के कारण दांतों के मांस में जो पाकयुक्त शोफहोती है उसे उपकुश कहते हैं ॥ दांतोंके मांस में जो सूजन रक्त और कफ के संचय से उठती है उसे दन्त विद्रधि कहते हैं ।

गलगण्डशोफ ।

गलस्यपार्श्वेगलगण्डएकः स्याद्गण्डमाला वहुभिस्तुगण्डैः । साध्याःस्मृताःपीनसपार्श्वशूलकासज्वरच्छर्दियुतास्त्वसाध्याः

अर्थ—गलेकी बगलमें जो एक गांठ उठती है उसे गलगण्ड कहते हैं और जो बहुतसी गांठ होती हैं उन्हें गण्डमाला क-

हते हैं। ये दोनों साध्य होती हैं परन्तु जब में पीनस, पार्श्वशूल, खांसी, ज्वर और वमनसे युक्त होती हैं तब असाध्य होती हैं।

शोफों में चिकित्साक्रम।

तेषांसिराकायशिरोविरेकोधूमःपुराणस्य घृतस्यपानम्। सलङ्घनंवक्त्रभवेषुचापि मर्हपणंस्यात्कवलग्रहश्च ॥

अर्थ—इन ऊपरकी शोफों में सिरामोक्षण, कायविरेचन, और शिरोविरेचन, धूमपान, पुराना घृतपान, और लंघन हितकारी है तथा मुखमें होनेवाली सूजनोंमें सूजन के नाश करने वाले द्रव्योंको रगडे और उन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध कियाहुआ कवल धारणकरे।

अन्य ग्रन्थियों कावर्णन।

अङ्गैकदेशेष्वनिलादिभिस्यात्स्वरूपधारीस्फुरणःसिराभिः। ग्रन्थिर्महान्मांसभवस्त्वनर्तिर्मेदोभवःस्निग्धतलश्चलश्च ॥

अर्थ—वातादि दोषोंकी प्रबलतासे शरीर के विशेष २ अंगों में मूर्तिमान् लक्षणों से युक्त सूजन होती हैं। एक सूजन तो नसों में रुधिरका बहना बन्द होजाने से होती है। एक बडी गांठ मांसमें होती है इसमें वेदना नहीं होती है। एक गांठ मेदामें होती है यह बहुत चिकनी और चलायमान होती है

तंशोधितंस्वेदितमश्मकाष्ठैःसाङ्गुष्ठदण्डैर्विनयेदपक्वम्। विपाक्यचोद्धृत्यभिषक्सकोशंशस्त्रेणदग्ध्वाव्रणवच्चिकित्सेत्॥ अदग्धइत्थपरिशोषितश्चमयातिभूयोऽपि शनैर्विवृद्धिम्। तस्मादशेषं कुशलसमन्तात्तच्छेद्यभेद्यस्यशरीरदेशान् ॥ शोषेक्ष तेपाकवशेनशीर्य्येततःक्षतोत्थःप्रसरेद्विसर्पः ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके ऐसी गांठ होजाय उसको विना पकेही शोधन देकर पत्थर वा काठ द्वारा स्वेदन देकर अंगूठा वा लकडी लगाकर नरम करदे। उसके पकने पर शस्त्रसे चीरा लगाकर सब मवाद और गली हुई खालको अलग करके दग्धकरे और फिर व्रणवत् चिकित्सा करै। जो दग्ध न कीजाय तो कम शुष्क होने के कारण यह फिर धीरे २ बढजाती है। इसलिये कुशल वैद्यको उचित है कि उस ग्रन्थि के स्थान का विचार करके उसको जड से दूरकर देवै। काटने पर भी शेष बचरहै तो पाकके कारण शीर्ण होकर उसमें क्षतज विसर्प उत्पन्न होगा।

वर्जनीय ग्रन्थि।

उपद्रवंतंप्रनिवारयेज्ज्ञःस्वैर्भेषजैःपूर्वनिरेवयोक्तैः। ततःक्रमेणास्ययथाविधानव्रणं व्रणवस्तस्यचिकित्सेत् ॥ विवर्जयेत् कुक्ष्युदराश्रितश्चगलेचमर्मणिसंश्रितश्च स्थूलःखरश्चापिभवेद्विवर्ज्योयश्चापि बालस्थविराबलानां ॥

अर्थ—इस क्षतज विसर्प नामक उपद्रव को दूर करनेके लिये पहिले कही हुई विसर्प चिकित्साओंके द्वारा चिकित्सा करै फिर क्रम से यथाविधान व्रणके समान क्रियाओं का प्रारम्भकरै] जो गांठ कुक्षि, उदर, गले और मर्मस्थान में हुई हो वह असाध्य है। जो बालक, बूढे और दुर्बल के हुईहो वह भी वर्जनीय है।

नयेद्दोषहरैर्यथास्वं । मालेपनच्छेदन-भेददाहैः ॥

अर्थ—इसमें तीनों दोष होते हैं परन्तु पित्त प्रबल होता है । यह तीव्र पतली और रक्तपाक युक्त होती है । इसमें जो सूजन होती है उस में ज्वर और तृषा का वेग होता है । यह जालगर्दभ नामक विसर्प रोग होता है । इस में लंघन, रक्तमोक्षण, विरूक्षण, कायविरेचन, आंवलेका प्रयोग और शीतल लेप हितकारी होते हैं । इसीतरह अन्य सूजनों में भी वातादि दोषोंके लक्षणों की विवेचना करके यथा दोष आलेपन, भेदन, और दाहआदि कर्मों से शोथ को अच्छा करै ॥

आगन्तु शोफ का वर्णन ।

प्रायोऽभिघातादनिलःसरक्तः । शोथंसरागंमकरोतितत्र ॥ वीसर्पनुन्मारुतरक्तनुच । कार्यंविपघ्नंविषजेचकर्म ॥

अर्थ—प्रायः चोट लगने से वातरक्त दूषित होकर लालरंगकी सूजन उत्पन्न करतेहैं । इस सूजन में विसर्प नाशक और वातरक्त नाशक क्रिया करै तथा विषज शोथ में विषनाशक क्रिया करै ।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

त्रिविधस्यदोषभेदात्सर्वाद्धावयवगात्रभेदाच । श्वयथोर्द्विविधस्यतथालिङ्गानि चिकित्सितंचोक्तम् ॥

अर्थ—इस अध्याय में भगवान् पुनर्वसु तीन दोषों के भेद से तीन प्रकार की शोफ, सर्वांग शोफ, अर्द्धांगशोफ, अवयवशोफ, निजशोफ, आगन्तु शोफ इनके लक्षण और चिकित्सा वर्णन की है ।

इति श्री भाषाटीकान्वितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने श्वयथु चिकित्सितनामसप्तदशोऽध्यायः॥१७॥

——:*:——

अष्टादशोऽध्यायः।

अथातउदरचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोलेकि अब हम उदर चिकित्सितनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

अग्निवेश का प्रश्न ।

सिद्धविद्याधराकीर्णेकैलासेनन्दनोपमे । तप्यमानंतपस्तीव्रंसाक्षाद्धर्म्ममिवस्थितम् ॥ आयुर्वेदविदांश्रेष्ठंभिषग्विद्याप्रवर्त्तकम् । पुनर्वसुंजितात्मानमग्निवेशोऽब्रवीद्वचः ॥ भगवन्नुदरैर्दुःखैर्दृश्यन्तेह्यर्दितानराः । शुष्कवक्त्राःकृशैर्गात्रैराध्मातोदरकुक्षयः ॥ प्रणष्टाग्निबलाहारा सर्वचेष्टास्वनीश्वराः । दीनाःप्रतिक्रियाभावाज्जहतोऽसूननाथवत् ॥ तेषामायतनंसंख्यांप्राग्रूपाकृतिभेषजान् । यथावत् ज्ञातुमिच्छामिगुरुणासम्यगीरितम् ॥ सर्वभूतहितार्थर्षिःशिष्येणैवंप्रचोदितः । सर्वभूतहितंवाक्यंव्याहर्तुमुपचक्रमे ॥

अर्थ—सिद्ध और विद्याधरों से सेवित, नन्दन काननके सदृश कैलास पर्वतमें तीव्रतप में लीन, साक्षात् मूर्तिमान् धर्मस्वरुप,

आयुर्वेद वेत्ताओं में श्रेष्ठतम, आयुर्वेद प्रवर्त्तक और जितेन्द्रिय पुनर्वसु से अग्निवेशने यह प्रश्न किया कि हे भगवन्! प्रायःसब मनुष्य उदर रोगों से पीडित दिखाई देते हैं जिनके मुखसूख गये हैं, गात्र कृश पड गये हैं, उदर और कूखफूल गये हैं जठराग्नि वल और आहार थक गये हैं, सम्पूर्ण चेष्टाओंसे हीन होगये हैं ॥ ये दीन मनुष्य चिकित्सा के अभावसे अनाथकी तरह प्राणोंका परित्याग करदेते हैं। इस से हे प्रभो! मैं आप के मुखसे उनका आयतन, संख्या, पूर्वरूप आकृति और चिकित्सा यथावत् सुनना चाहताहूं। शिष्य से इस तरह प्रेरणा किये जाने पर सम्पूर्ण प्राणियों के हित के निमित्त सम्पूर्ण प्राणियों के हितकारी वाक्योंके कहने में उद्यत हुए।

उदरविषयमें आत्रेयकावाक्य।

अग्निदोषान्मनुष्याणांरोगसंघाःपृथग्विधाः। मलवृद्ध्याप्रवर्त्तन्ते विशेषेणोदराणितु ॥ मन्देऽग्नौमलिनैर्भुक्तैरपाकाद्दोषसञ्चयः। प्राणापानान्हिंसंदूष्यमार्गान्वद्धोत्तरोत्तरान् ॥ त्वङ्मांसान्तरमागम्यकुक्षिमाध्मापयन्भृशम्। जनयत्युदरंतस्यहेतुंशृणुसलक्षणम् ॥

अर्थ—जठराग्नि के दोषसे मनुष्यों के अनेक प्रकारके रोगों के समूह उत्पन्न होते हैं, तथा विशेष करके मलकी वृद्धि से उदर रोग होतेहैं। मन्दाग्नि में मलवर्द्धक भोजनों के अपाक से दोष संचित होकर प्राण और अपान वायुओंको दूषित करके ऊपर और नीचेके मार्गोंको रोक कर त्वचा और मांस के मध्यमें स्थित होकर कुक्षिको अत्यन्त फुला देतेहैं और फिर उदर रोगोंको पैदा करतेहैं उसके लक्षण सहित हेतुओं को सुनो।

उदररोग के हेतु।

अत्युष्णलवणक्षारविदाह्यम्लरसाशनात् मिथ्यासंसर्जनाद्रूक्षविरुद्धाशुचिभोजनात् ॥प्लीहार्शोग्रहणीदोषकर्षणात्कर्मविभ्रमात्। क्लिष्टानामप्रतीकाराद्रौक्ष्याद्वेगविधारणात् ॥स्रोतसांदूषणादामात्संक्षोभादतिपूरणात्। अर्शोऽवातशकृद्रोधादन्त्रस्फुटनभेदनात् ।अतिसञ्चितदोषाणां पापकर्म्मचकुर्वताम्। उदराण्युपजायन्तेमन्दाग्नीनांविशेषतः।

अर्थ—अत्यन्त उष्ण, नमकीन, खारी, विदाही और खट्टे रसोंके भोजन करने से, मिथ्या और असंसर्जनकर्मसे रूक्ष, अशुचि और विरुद्ध भोजनोंके करने से, प्लीहा, अर्श ग्रहणी दोष इनके कारण शरीरके कृशहो जानेसे, स्वेदनादि कर्मोंकेयथावत् नहोनेसे. क्लिष्ट रोगोंकी चिकित्सा न करने से, रूक्षतासे, मलमूत्रादि के उपस्थित वेगोंको रोकने. से, स्रोतोंके दूषित होनेसे, आम दोष से संक्षोभसे, अत्यन्त पेट भरकर भोजन करने से अर्शकी अवलि के कारण विष्ठाके रुकने से, आंतों में फटनेकी सी पीडा होने से, अति संचित दोषवाले मनुष्यों के पापकर्मों के करने से, और विशेष करके मन्दाग्नि वालों के उदररोग उत्पन्न होते हैं।

उदररोग के पूर्वरूप।

क्षुन्नाशःस्वाद्वतिस्निग्धगुर्वन्नपच्यतेचिरा-

त् ॥ भुक्तंविदाह्यतेसर्वंजीर्णाजीर्णनवे त्तिच । सहतेनातिसौहित्यंशोफरोपञ्च पादयोः ॥ शश्वद्बलक्षयोऽल्पेऽपिव्या यामेश्वासमृच्छति । पुरीषनिचयोवृद्धि रुदावर्त्तकृताचरुक् ॥ बस्तिसन्धौरुगा ध्मानंवर्द्धतेपाट्यतेऽपिच । आतन्यतेच जठरमपिलघ्वल्पभोजनात् ॥ राजीजन्म वलीनाशइतिलिंगंभविष्यताम् ॥

अर्थ—क्षुधाका नष्ट होना, मीठे, चिकने और भारी अन्नका देरमें पचना; भुक्त अन्न से विदाह होना; जीर्ण वा अजीर्ण का ज्ञान न होना; पेट भरकर भोजन करने में अ-समर्थता; पांवों में कुछ सूजन होना, बल का निरन्तर नष्ट होना, थोडे परिश्रम में भी श्वास बढना, मलकी वृद्धि, उदावर्त्तकृत वेदना, वस्तिसन्धि में वेदना, अफरा का बढना, हलके और थोडे भोजन से भी पेट का तन जाना, उदरमें रेखाओं की उत्पत्ति और बलीका नाश, ये सब उदररोग के पूर्वरूप हैं।

उदररोग की साधारण उत्पत्ति ।

रुद्ध्वास्वेदाम्बुवाहानिदोषाःस्रोतांसिसञ्चि ताः । प्राणापानान्हिसंदूष्यजनयन्त्युद रंनृणाम् ॥

अर्थ—स्वेदवाही और जलवाही स्रोतों को रोककर संचित दोष, प्राण और अपान वायुओंको दूषित करके उदररोगों को उत्पन्न करते हैं ॥

उदररोग के साधारण लक्षण ।

[illegible] पादकरस्यच॥ मन्दोऽग्निःश्लक्ष्णगण्डत्वंकार्श्यञ्चोदर लक्षणम् ॥

अर्थ—कूखमें आध्मान, अफरा, हाथ पांवमें सूजन, मन्दाग्नि, गण्डस्थल में श्ल-क्ष्णता और देह में कृशता ये सब उदर-रोगों के लक्षण हैं ॥

उदररोगों की संख्या ।

पृथग्दोषैःसमस्तैश्चप्लीहबद्धक्षतोदकैः ॥ संभवन्त्युदराण्यष्टतेषांलिंगंपृथक्शृणु ।

अर्थ....पृथक् पृथक् दोषों से, सम्पूर्ण दोषों से, प्लीहा, बद्ध, क्षत और उदक से आठ प्रकार के उदररोग उत्पन्न होते हैं। अब उन के पृथक् २ लक्षण सुनो ॥

वात के कारण उदर रोग ।

रूक्षाल्पभोजनायासवेगोदावर्त्तकर्शनैः ॥ वायुःप्रकुपितःकुक्षिहृद्बस्तिगुदमार्गगः । हत्वाग्निंकफमुद्धूयतेरुद्धगतिस्तथा॥ आ- चिनोत्युदरंजन्तोःत्वङ्मांसान्तरमाश्रितः॥

अर्थ....रूक्ष और अल्पभोजन करने से, आयास से, वेग धारण से उत्पन्न उदावर्त्त से,और कृशता से कूख, हृदय, वस्ति और गुदामार्गोंमें विचरने वाली वायु कुपित होकर अग्निको मन्द करके कफको बढा देताहै । तब इस कफसे मार्ग रुकजाने के कारण त्वचा और मांसके बीच में स्थित होकर वायु उदर रोगों को उत्पन्न करताहै।

वायुजन्य उदररोगके लक्षण ।

तस्यरूपाणिकुक्षिपाणिपादशोफश्वयथू दरविपाटनमनियतौचवृद्धिह्रासौकुक्षिपा- र्श्वशूलोदावर्त्ताङ्गमर्दपर्वभेदशुष्ककासका-

र्थ्यदौर्बल्यारोचकाविपाकाअधोगुरुत्वंवा तवर्चोमूत्रसङ्गःश्यावारुणत्वंनखनयनव दनत्वङ्मूत्रवर्चसामपिचोदरंतन्नासितरा जीशिरासन्ततमाहतमाध्मातद्दतिशब्दव द्भवति । वायुश्चोर्ध्वमधस्तिर्य्यक्सचशू लशब्दश्चरत्येतद्वातोदरंविद्यात् ॥

अर्थ—कूख, हाथ, पांव और अंडकोशों में सूजन, उदरमें फटनेकी सी पीड़ा कभी उदर का बढ़ना और कभी घटना, कुक्षिशूल, पसलियोंमें शूल, उदावर्त; अंगमर्द; संधियोंमें हडफूटन; सूखी खांसी, कृशता; दुर्बलता, अरुचि, अविपाक, पेटके नीचे के भागमें भारापन, अधोवायु, विष्टा और मूत्रका रुकजाना, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टाका काला वा लाल होजाना, पतली और काली रेखाओंका उदरपर पडना, नीली नसोंका चमकना, पेट को बजाने से फूलीहुई मशक के समान शब्दहोना, तथा वायुका ऊपर, नीचे, तिरछे शूल और शब्दयुक्त घूमना ये सब वातोदर के लक्षण हैं ॥

पित्तोदरका कारण ॥

कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णाग्न्यातपसेवनैः । विदाह्यध्यशनाजीर्णैश्चाशुपित्तं समाचितम् ॥ प्राप्यानिलकफौरुद्ध्वा मार्गमुन्मार्गमास्थितम् । निहत्यामाशये वन्हिंजनयत्युदरंततः ॥

अर्थ—कडवे, खट्टे, नमकीन, अत्यन्त उष्ण और तीक्ष्ण भोजनों के करने से, अग्नि और धूपका सेवन करने से, विदाही अन्न, अध्यशन और अजीर्णकर्त्ता अन्नके सेवन से पित्त इकठा होकर कफ और वात से मिलजाता है और तब ये पित्तके मार्ग को रोकलेते हैं, इस मार्ग के रुकने से पित्त ऊपरको जाताहै और आमाशयस्थ वन्हिका नाश होजाता है और तब पित्त के कारण उदररोग उत्पन्न होते हैं ॥

पित्तोदर के लक्षण ॥

तस्यरूपाणि । दाहज्वरतृष्णामूर्च्छातीसारभ्रमाः कटुकास्यत्वंहरितहारिद्रत्वंनखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसामपिचोदरंनीलपीतहारिद्रहरितताम्रराजीसिरावनद्धंदह्यात् । दूयतेधूप्यतेउष्मायतेस्विद्यते क्लिद्यतेमृदुस्पर्शंक्षिप्रपाकञ्चभवत्येतत्पित्तोदरंविद्यात् ।

अर्थ—दाह, ज्वर, तृष्णा, मूर्छा, अतीसार, भ्रम, मुखमें कडवापन, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टाका हरा वा हलदी के समान वर्ण होजाना, पेटमें नीली पीली, हारिद्रवर्ण, हरी और तांबेकीसी रेखाओं का पडजाना, नसोंकाचमकना, तथा पेट में दाह, ऐंठा, धूमनिर्गम, ऊष्मा, स्वेदन, क्लेद, मृदुस्पर्श और शीघ्रपाक भी होता है, ये सब पित्तोदर के लक्षण हैं ॥

कफोदर के हेतु ॥

अव्यायामदिवास्वप्नस्वाद्वतिस्निग्धपिच्छिलैः । दधिदुग्धोदकानूपमांसैश्चात्युपसेवितैः ॥ क्रुद्धेनश्लेष्मणास्रोतःस्वाहतेष्वावृतोऽनिलः । तमेवपीडयन्कुर्य्यादुदरंबाहिरन्तगः ॥

अर्थ—व्यायाम न करने से दिनमें सोने से, मीठे, अत्यन्तचिकने, पिच्छिल भोजनों के करने से, दही, दूध, जल और आनूप-मांसके अत्यन्त सेवन से कुपित कफ स्रोतः समूह से वायुको रोक देता है। तब वह वायु श्लेष्माको बाहर और भीतर पीडित कर के कफोदर को उत्पन्न करती है ॥

कफोदर के लक्षण ॥

तस्यरूपाणिगौरवारोचकाविपाकाङ्गमर्द सुप्तिपाणिपादमुष्कोरुशोफोत्क्लेशनिद्राकासश्वासाःशुक्लत्वञ्चनखनयनवदनत्वङ्मूत्रवर्चसामपिचोदरंशुक्लराजीसिरासन्ततगुरुस्तिमितंस्थिरंकठिनञ्चभवत्येतत् श्लेष्मोदरंविद्यात् ॥

अर्थ....भारापन, अरुचि, अविपाक, अङ्गमर्द, सुप्ति, हाथ, पांव और अंडकोषों में सूजन, उत्क्लेश, निद्रा, खांसी, श्वास, नख, नेत्र, मुख, त्वचा, मूत्र और विष्टाका श्वेत होजाना, पेट में श्वेतधारियों औरनसोंका चमकना, पेटमें भारापन, स्तिमिता, स्थिरता और कठिनता ये सब लक्षण कफोदरके हैं॥

सन्निपातिक उदर रोग के हेतु ॥

दुर्बलाग्नेरपथ्यामविरोधिगुरुभोजनात् । सभुक्तश्चरजोरोमविण्मूत्रास्थिनखादिभिः । विषश्चाप्यन्दैर्वाताद्याःकुपिताःमञ्चिताःत्रयः । शनैःकोष्ठमकुर्वन्तोजनयन्त्युदरंनृणाम् ॥

अर्थ—मन्दाग्नि वाला मनुष्य अहित कच्चा, विरोधी और भारी भोजन करे । अथ रज, रोम, विष्टा, मूत्र हड्डी और नख भोजनके साथ खाजाय अथवा मन्द विषका सेवन करे तब उसके तीनों दोष कुपित होकर शनैः २ कोष्ठमें इकट्ठे होकर उदररोगों को करते हैं ॥

सन्निपातिक उदर रोगके लक्षण ॥

सर्वेषामेवदोषाणांसमस्तानिलिङ्गान्युपलभ्यन्तेवर्णाश्चनखादिषूदरमपिनानावर्णराजीसिरासन्ततंभवत्येतत्सान्निपातोदरंविद्यात् ।

अर्थ—त्रिदोषज उदररोगमें सम्पूर्ण दोषों के मिलेहुए लक्षण पाये जातेहैं। नख, नयन, वदन, मूत्र और पुरीषमें सब प्रकार का रंग होताहै । पेटमें अनेक रंगोंकी धारियां और नसोंका जाल होताहै इन लक्षणों से युक्त उदरको सन्निपातोदर कहतेहैं ।

प्लीहोदर के कारण ।

अशितस्यातिसंक्षोभाद्यानयानाभिचेष्टितैः । अतिव्यवायभाराध्ववमनव्याधिकर्शनैः ॥ वामपार्श्वाश्रितःप्लीहाच्युतः स्थानात्प्रवर्द्धते । शोणितंवारसादिभ्यो विवृद्धन्तींविवर्द्धयेत् ॥

अर्थ—भोजन करके सवारी पर चढकर वा वैसेही कठिन चेष्टाओंके द्वारा संक्षोभ करनेसे, अत्यन्त व्यवाय, भारवहन, मार्ग चलना, वमनादि व्याधियों से कर्षण, इन हेतुओंसे बांये पसवाडे में स्थित प्लीहा (तापतिल्ली) अपने स्थानको छोडकर बढने लगती है । अथवा रसादि से बढा हुआ रक्त प्लीहा को बढाने लगता है ।

प्लीहोदर की वृद्धि ।

इतितस्यप्लीहाकाठिनोष्ठीलेवादौवर्द्धमानः

कच्छपसंस्थानउपलभ्यतेतत्रोपेक्षितः क्रमेणकुक्षिंजठरमग्न्यधिष्ठानंचपरीक्षम न्नुदरमभिनिवर्त्तयति ॥

अर्थ—इस तरह यह प्लीहा प्रथम पत्थर के समान कठोर होतीहै और फिर बढते बढते कछुएकी पीठके समान आकृति धारण करलेती है। यदि इसकी चिकित्सा न की जाय तो यह क्रम से कूख, जठर और अग्निस्थानको परिक्षिप्त करके उदर रोगको उत्पन्न करताहै।

प्लीहोदर के लक्षण।

दौर्बल्यारोचकाविपाकवर्चोमूत्रग्रहतमकपिपासाङ्गमर्दच्छर्दिमूर्च्छांगसादकासश्वासमृदुज्वरानाहाग्निनाशकार्श्यास्यवैरस्यपर्वभेदकोष्ठवातशूलान्यपिचोदरमरुणवर्णांविवर्णवानीलहरितहारिद्रराजिमद्भवत्येवमेवयकृदपिदक्षिणपार्श्वस्थंकुर्य्यात्तुल्यहेतुलिंगौषधत्वात्तस्यप्लीहजएवावरोधइत्येतत्प्लीहोदरंविद्यात्।

अर्थ—दुर्बलता, अरुचि अविपाक, मूत्रग्रह तमकश्वास, प्यास, अंगमर्द, वमन, मूर्च्छा अंगग्लानि, खांसी, श्वास, मृदुज्वर, आनाह मन्दाग्नि, कृशता, मुख में विरसता हड्फूटन, कोष्ठ में वात वेदना, पेटका लाल वर्ण वा विवर्णता, पेटपर नीली, हरी, हरिद्र्ण रेखाओं का होना आदि उपद्रव होतेहैं। इसी तरह दाहिनी कूखमें जो यकृत् होती है वह भी ऊपर कहे हुए लक्षणों को प्रकट करती है। परन्तु यकृत् और प्लीहाके हेतु, लक्षण और औषध एकसेही हैं। इससे प्लीहा से इसकी उत्पत्तिका अवरोध है ये प्लीहोदर के लक्षण हैं॥

बद्धोदर के हेतु।

पक्ष्मवालैःसहान्नेनभुक्तैर्बद्धायनेगुदे । उदावर्त्तैस्तथार्शोभिरन्त्रसंमूर्च्छनेनवा॥ अपानेमार्गसंरोधाद्धत्वाग्निंकुपितोऽनलः॥वर्चःपित्तकफान्रुद्ध्वाजनयत्युदरंततः

अर्थ—पक्ष्म और बाल मिलाहुआ भोजन कर लेने से उदावर्त्त से; अर्शसे वा आंतों के सुकड जानेसे गुदाका मार्ग रुकजाने पर मार्ग संरोध के कारण कुपित हुई अपानवायु जठराग्नि को नष्ट करके पुरीष, पित्त और कफको रोककर उदर रोग को उत्पन्न करतीहै।

बद्धगुदोदर के लक्षण।

तस्यरूपाणितृष्णादाहज्वरमुखतालुशोपोरुसादकासश्वासदौर्बल्यारोचकाविपाकवर्चोमूत्रसंगाध्मानछर्दिःक्षवथुशिरोहृन्नाभिगुदशूलान्यपिचोदरंमूढवातंस्थिरमरुणंनीलराजिसिरावनद्धंमराजिकंवामायोनाभ्युपरिगोपुच्छवदभिनिवर्त्ततइत्येतद्वद्धगुदोदरंविद्यात्॥

अर्थ—तृष्णा, दाह, ज्वर, मुखशोष, तालुशोष, ऊरुसाद, खांसी, श्वास, दुर्बलता, अरुचि, अविपाक, पुरीषबद्धता, मूत्रबद्धता, आध्मान, वमन, छींक, शिरःशूल, हृदशूल, नाभिशूल, गुदशूल, तथा अधोवातकी विबन्धता, पेट में स्थिरता, लाल और नीलवर्णकी रेखा, नसोंकेजालों का चमकना, अथवा रेखाओं का न होना, प्रायः नाभि

के ऊपर गौकी पूंछ के आकार के सदृश होजाना, ये सब बद्धगुदोदरके लक्षण हैं ॥

छिद्रोदर के हेतु ॥

शर्करातृणकाष्ठास्थिकण्टकैरन्नसंयुतैः । भिद्येतान्त्रंयदाभुक्तैर्जृम्भयात्याशितस्यचा॥ इयात्पाकरसस्तेभ्यःछिद्रेभ्यःभस्रवद्व हिः। पूरयन्गुदमन्त्रञ्चजनयत्युदरंततः॥

अर्थ....भोजनके साथ में रेत, कंकर, तिनुका, काठ, हड्डी वा कांटे खालेनेसे जब आंतें फटजाती हैं अथवा अत्यन्त भोजन करके जोर से जँभाई लैने के कारण जब आंतें फटजाती है। तब उन छिद्रोंमें होकर पाक रस बाहर टपकने लगताहै और गुदा और आंतोंको पूर्ण करके उदररोगों को उत्पन्न करता है ॥

छिद्रोदरके लक्षण ॥

इतितदधोनाभ्याःमायोऽभिनिर्वर्त्तमान मुदकोदरस्यचयथावलंचदोषाणांरूपाणि दर्शयत्सापिचातुरःसलोहितनीलपीतपि च्छिलकुणपगन्धामवर्चउपवेशतेहिकाश्वा सकासतृष्णाप्रमेहारोचकाविपाकदौर्बल्यप रीतश्चभवत्येताच्छिद्रोदरंविद्यात् ॥

अर्थ—यह रोग प्रायः नाभीके नीचे उत्पन्न होता है और दोषों के बलके अनुसार इसमें जलोदरके से लक्षण दिखलाई पडते है और रोगीके लाल, नीला, पीला पिच्छिल, कुणपगंधी और आम विष्टा निकलता है। तथा उसके हिचकी, श्वास, खांसी, तृष्णा, प्रमेह, अरुचि अविपाक, दुर्बलता ये उपद्रव होते हैं इसे ही छिद्रोदर या क्षतोदर कहते हैं ॥

जलोदरके हेतु ॥

स्नेहपीतस्यमन्दाग्नेःक्षीणस्यातिकृशस्यवा अत्यम्बुपानान्नष्टेऽग्नौमारुतःक्लोम्निस स्थितः॥स्रोतःसुरुद्धमार्गेषुकफश्चोदक मूर्च्छितः।वर्द्धयेतांतदेवाम्बुतत्स्थानादुद रायतौ ॥

अर्थ—जिसने स्नेह पान कियाहै, जिसकी अग्नि मन्द है, जो क्षीण और अत्यन्त कृशहै उसके अत्यन्त जल पीलेनेसे, अग्नि मंद पडजाती है और वायु पिपासास्थानका आश्रय लेकर और जल से मूर्च्छित कफ स्रोतों के रुकेहुए मार्गोंमें ठहरकर दोनों कफ और वायु बढने लगते हैं और वह जल यहांसे उदरमें आकर जलोदर उत्पन्न करता है।

जलोदरके लक्षण ।

तस्यरूपाण्यनन्नकांक्षापिपासागुदस्राव शूलश्वासकासदौर्बल्यान्यपिचोदरना- नावर्णराजिशिरासन्ततमुदकपूर्णदृतिक्षो भसंस्पर्शभवत्येतदुदकोदरंविद्यात् ।

अर्थ—अन्नमें अनिच्छा, तृषा, गुदा से जलका स्राव, शूल, श्वास, खांसी, दुर्बलता पेट में अनेक रंगकी रेखाओं का होना, नसोंका चमकना तथा जलसे भरीहुई मशकके समान उदरका हाथ लगातेही थलर थलर करना, ये सब जलोदर के लक्षणहैं।

चिकित्साके योग्य उदररोग ॥

तत्राचिरोत्पन्नमनुपद्रवमनुदकमाशुदरं त्वरमाणःचिकित्सेदुपेक्षितानांहिपांदोपाः स्वस्थानादपावृत्ताःअपरिपाकाद्द्रवीभूता

णंनरम् ॥ जन्मनैवोदरंसर्वंप्रायःकृच्छ्रत मंमतम्।बलिनस्तदजाताम्बुयत्नसाध्यंन वोत्थितम् ॥

अर्थ....जिस उदररोगी की आंखों पर सूजन आजाती है, उपस्थेन्द्रिय टेढी पड-जातीहैं, त्वचा क्लिन्न और पतली पडजातीहै बल, रक्त, मांस और जठराग्नि क्षीण पड-जाती हैं, उसे त्याग देवै। मर्मस्थानों में सू-जन, श्वास, हिचकी, अरुचि तृषा, मूर्च्छा, वमन, अतिसार आदि उपद्रवों के होने से उदररोगी मरजाता है। उत्पन्न होतेहीं सब प्रकारके उदररोग प्रायः असाध्य होते हैं परन्तु इन में से वह रोग जो बलवान् पुरुष के नवीन ही हुआ हो और जिस में जल उत्पन्न न हुआहो वह बहुत यत्न करने से साध्य होजाता है॥

अजातउदकोदरके लक्षण ।

अशोथमरुणाभासंसशब्दंनातिभारिकम्
सदागुडगुडायन्तंशिराजालगवाक्षितम् ।
नाभिंविष्टभ्यपायौतुवेगंकृत्वाप्रणश्यति॥
हृन्नाभिवंक्षणकटीगुदप्रत्येकशूलिनः ।
कर्कशंसृजतेवातंनातिमन्देचपावके ॥
मूत्रेऽल्पेसंहतेविपिलालयाविरसेमुखे ।
अजातोदकमित्येतैर्लिङ्गैर्विज्ञायतत्त्वतः॥
उपक्रमेत्भिषग्दोषबलकालाविशेषवित्।

अर्थ—जिस उदररोगी के पेट पर सू-जन नहीं होती हैं, उदरका रंग लाल हो, शब्दयुक्तहो, पेटमें बहुत भारापन न हो, सदा गुड़ गुड़ शब्द होता रहताहो, गवाक्ष के समान नसों के जाल से पूरित, वायु नाभि के पाससे गुड़ गुड़ाहट उत्पन्न कर के गुदा में वेग उत्पन्न करके नष्ट होजाती हो रोगी के हृदय, नाभि, वंक्षण, कमर और गुदा प्रत्येक स्थान में शूल होता हो कर्कश शब्द करती हुई वायु निकले। अग्नि अति मन्द न हो, पेशाव थोडा हो, विष्ठा कमहो, मुखसे लारटपकती हो, मुख का जायका विगड़ गया हो। ये सब लक्ष-ण उस उदररोग के हैं जिस में जल उत्प-न्न न हुआ हो। इन सब लक्षणों का विचा र करके दोष, बल और काल के अनुसार उदररोगों का चिकित्सा करे।

वातोदर में चिकित्साक्रम ।

वातोदरेबलवतःपूर्वस्नेहैरुपाचरेत् ॥स्नि-ग्धायस्वेदितांगायदद्यात्स्नेहविरेचनम्। हृतेदोषेपरिम्लानवेष्टयेद्वाससोदरम् ॥ तथास्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाध्मापयेत्पुनः। दोषातिमात्रोपचयात्स्रोतसांसन्निरोध-नात् ॥ सम्भवन्त्युदराण्येवमतोनित्यं विशोधयेत् । शुद्धंसंसृज्यचक्षीरंबलार्थं पाययेत्तुतम् ॥ प्रागुत्क्लेशाग्निवर्त्ये च्चबलेऽल्पेक्रमात्पयः। यूषैरसैर्वामन्दा म्ललवणैरेधितानलम् ॥ सोदावर्त्तंपुनः स्निग्धंस्विन्नमास्थापयेन्नरम् ॥

अर्थ—वातोदर में बलवान् मनुष्यकी प्रथम स्नेहनकर्म द्वारा चिकित्सा करे। स्ने हन और स्वेदन के पीछे स्नेह विरेचनका प्रयोग हित है इस तरह दोषोंके दूर होने पर जब म्लानता उत्पन्न होजाय तब उदर पर वस्त्र लपेटना चाहिये, ऐसा करने

से वायु प्रवेश होनेका स्थान न पाकर फिर पेटको नही फुलासकती है ॥ दोषों के अधिक इकट्ठे होजाने से और स्रोतो के रुक जानेही से उदररोग हुआ करते हैं इससे उदररोग में नित्यप्रति विरेचन देना चाहिये ॥जब रोगी शुद्ध होजाय तव पेयादि विरेचन के उत्तरक्रमोंका साधन कराके वल वढानेके निमित्त दुग्धपान करावै । वल आजाने पर दोषों के उत्क्लेश होने से पहिलेही क्रम से दुग्धका त्याग करादेवै, अग्नि का रोध होजाने पर और उदावर्त्तमें फिर स्नेहन करके किंचित् नमक और खटाई डालकर यूष वा मांस रस की आस्थापन वस्ति देवै ॥

स्फुरणाक्षेपसन्ध्यस्थिपार्श्वपृष्ठत्रिकार्तिषु॥ दीप्ताग्निबद्धविड्वातंरूक्षमप्यनुवासयेत्॥ तीक्ष्णाधोभागयुक्तःस्यान्निरूहोदाशमूलिकः ॥ वातघ्नाम्लसृतैरण्डतैलैस्तैलानुवासनः॥

अर्थ—फुरफुरी वा आक्षेप (हाथ पांव फेंकना) होनै से तथा सन्धि, अस्थि, पसली पीठ और त्रिकमें वेदना होने से उस दीप्ताग्नि पुरुषका जिसका विष्टा वन्द होग याहो और जो रूक्षभी हो उसे अनुवासन वस्ति देवे ॥ तीक्ष्ण विरेचनकर्त्ता औषधियों को मिला कर दशमूल के क्वाथ से निरूहणवस्ति देवै । तथा वातनाशक अम्ल औषधियों को संयुक्त करके अरंडी के तेलकी अनुवासन वस्ति देवै ॥

विरेचन के अयोग्य व्यक्ति ।

अविरेच्यंतुयंविद्यादुर्वलंस्थविरंशिशुम्॥ सुकुमारंप्रकृत्याल्पदोषंवातोल्वणानलम्॥ तंभिषक्शमनैःसर्पिर्यूषमांसरसौदनैः । वस्त्यभ्यङ्गानुवासैश्चक्षीरैश्चोपाचरेद्बुधः

अर्थ—दुर्वल मनुष्य, बुड्ढा, बालक, सुकुमार, प्रकृति से अल्पदोष युक्त व्यक्ति तथा वातोल्वण मनुष्यको विरेचन देना ठीक नहीं है । ऐसे रोगीको घृत, यूष, मांसरस और ओदनके संयोगों से संशमन औषधियां देवै, तथा वस्ति, अभ्यंग, अनुवासन और दुग्धद्वारा चिकित्सा करै ॥

पित्तोदर में चिकित्साक्रम ॥

पित्तोदरेतुवलिनंपूर्वमेवविरेचयेत् । दुर्वलन्त्वनुवास्यादौशोधयेत्क्षीरवस्तिना॥ संजातवलकायाग्निंपुनःस्निग्धंविरेचयेत् । पयसासत्रिवृत्कल्केनोरुवूकशृतेनवा सातलात्रायमाणाभ्यांशृतेनारग्वधेनवा सकफेवासमूत्रेणसवातेतिक्तसर्पिषा ॥ पुनःक्षीरप्रयोगंचवस्तिकर्मविरेचनम् ॥ क्रमेणध्रुवमातिष्ठन्युक्तःपित्तोदरंजयेत् ।

अर्थ—पित्तोदरमें वलवान् रोगीको प्रथम विरेचन देवै ॥ और जो रोगी दुर्वल हो तो उसे प्रथम अनुवासन देकर क्षीरवस्ति द्वारा शुद्धकरै ॥ इस तरह वल और जठराग्निके वढनेपर स्नेहनकर्म करने के पश्चात् विरेचन देवै ॥ विरेचन दैने के क्रम ये हैं, यथा दूध और निसोतका कल्क, अरंडी के वीज डालकर औटायाहुआ दूध, अथवा सातला और त्रायमाणा डालकर औटाया हुआ दूध, अथवा अमलतास डालकर औटायाहुआ दूध । कफयुक्त पित्तोदर मे

गोमूत्र मिलाकर दूध पानकरावे और वातानुबन्धी पित्तोदरमें तिक्तक घृतद्वारा विरेचन देवे ॥ इसतरह दूधका प्रयोग करने के पीछे वास्तिकर्म करके विरेचन देने से रोगीका वल ठीक रहताहै और पित्तोदरभी शीघ्रही शान्त हो जाता है ॥

कफोदर में चिकित्साक्रम ॥

स्निग्धंस्विन्नंविशुद्धंतुकफोदरिणमातुरम्। संसर्जयेत्कटुक्षारयुक्तैरन्नैःकफापहैः ॥ गोमूत्रारिष्टपानैश्चचूर्णायस्कृतिभिस्तथा सक्षारैस्तैलपानैश्चशमयेत्तुकफोदरम् ॥

अर्थ—कफोदर रोगी को स्नेहन, स्वेदन और संशोधन देकर कफनाशक कटु और क्षार युक्त अन्नका पथ्य विधान करै। तथा गोमूत्र, अरिष्ट, लोहचूर्ण, क्षार, तैलपान आदि से कफोदर को दूर करे ॥

सन्निपातोदर में चिकित्साक्रम ॥

सन्निपातोदरेसर्वायथोक्ताःकारयेत्क्रियाः ॥ सोपद्रवन्तुनिर्गुत्तंप्रत्याख्येयंविजानता ॥

अर्थ....सन्निपातोदरमें पूर्वोक्त सम्पूर्ण क्रियाओंका करना उचित है। यदि इस उदररोग में उपद्रव हों तो चिकित्सा करना त्याग देवे ॥

प्लीहोदर में चिकित्साक्रम ॥

उदावर्त्तरुगानाहैर्दाहमोहतृषाज्वरैः ॥ गौरवारुचिकाठिन्यैश्चानिलादीन्यथाक्रमम्। लिंगैःप्लीहोदरानदृष्ट्वारक्तंवापि स्वलक्षणैः ॥ चिकित्सांसंप्रकुर्वीतयथादोषंयथाबलं ॥

अर्थ—प्लीहोदर में उदावर्त, शूल और आनाह के होने पर वात की चिकित्सा करें करे। दाह, मोह, तृषा और ज्वर होनेपर पित्तकी और भारीपन, अरुचि और कठिनता के होनेपर कफ की चिकित्सा कर्त्तव्यहै, और यदि रक्तज प्लीहा के लक्षण दिखाई दें तो रक्त की चिकित्सा करै। इसमें दोष और बलपर अवश्य ध्यान देना उचितहै ॥

उदररोग में कर्त्तव्य कर्म ॥

स्नेहंस्वेदंविरेकञ्चनिरूहमनुवासनम् । समीक्ष्यकारयेद्बाहौवामेवाव्यधयेच्छिराम् ॥ षट्पलंवापिबेत्सर्पिःपिप्पलींवाप्रयोजयेत् । सगुडामभयांवापिक्षारारिष्टगणांस्तथा ॥

अर्थ—जैसा उदररोगहो उस के अनुसारही स्नेहन, स्वेदन, विरेचन, निरूहण और अनुवासनादि कर्म करावै अथवा वाम वाहु में रगको वेधकर रुधिर निकाल दे। अथवा षट्पलघृत, वा पिप्पल्यादि रसायन, वा गुड और हरड वा क्षारों और अरिष्टोंका देना उचित है ॥

उदररोग में प्रयोग ॥

पिप्पलीनागरंदन्तीचित्रकंद्विगुणाभयम् विडङ्गांशयुतंचूर्णमेतदुष्णाम्बुनापिबेत् ॥ विडङ्गंचित्रकंशुंठींसघृतांसैन्धवंवचाम् । दग्ध्वाकपालेपयसागुल्मप्लीहापहंभवेत्। रोहीतकलतानान्तुकाण्डकाःसाभयाजले। मूत्रेवाशतमेतच्चसप्तरात्रस्थितंपिबेत् कामलागुल्ममेहार्शःप्लीहसर्वोदरक्रिमीन् तन्याज्जांगलरसैर्जीर्णेस्याच्चात्रभोजनम्॥

अर्थ—पीपल, सोंठ, दंती और चीता ये चारों समानभाग, दोभाग हरड, चतुर्थांश बायविडंग इन सबका चूर्ण बनाकर गरमजलके साथ फांकना चाहिये ॥ बायविडंग, चीता, सोंठ घृत, सेंधानमक और वच इन को एक कुलडे में भरकर फूंकले फिर इनका चूर्ण बनाकर दूधके साथ सेवन करै तौ गुल्मरोग और प्लीहा दूर होजाते हैं ॥ रोहेडाकी शाखाके अग्रभागों को लेकर और हरड को कूटकर जल वा गोमूत्र में औटाकर छानले और सातरात तक धरारहने दे। तदुपरांत इनका सेवनकरने से कामला गुल्म, मेह, अर्श, प्लीहा, सब प्रकार के उदररोग और क्रिमि नष्ट होजाते हैं। इस औषध के पचने पर जांगल जीवों के मांस रसके साथ भोजन करै।

रोहीतक घृत।

रोहीतकत्वचःकृत्वापलानांपञ्चविंशतिम्
कोलद्विप्रस्थसंयुक्तंकषायमुपकल्पयेत् ॥
पालिकैःपञ्चकोलैस्तुतैःसर्वैश्चापितुल्यया
रोहीतकत्वचापिष्टैःघृतप्रस्थंविपाचयेत्।
प्लीहातिवृद्धिंशमयत्येतदाशुप्रयोजितम्।
तथागुल्मोदरश्वासक्रिमिपाण्डुत्वकामलाः

अर्थ—रोहेडे की छाल पच्चीसपल, कोल दो प्रस्थ इन दोनों को अठगुने जल में चढादे और चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले। फिर इस में पंचकोलोक्त द्रव्य एक एक पल और रोहेडे की छाल पांच पल इनका चूर्ण करके डालदे और एक प्रस्थ घी डालकर पकावै घृत शेष रहने पर उतार लेवै यह घृत अत्यन्त बढी हुई प्लीहा को शीघ्रही शान्त करदेता है, तथा गुल्मरोग, उदररोग, श्वास, क्रिमिरोग, पाण्डुरोग और कामला इन को भी दूर करदेताहै ॥

अन्यप्रयोग।

अग्निकर्मचकुर्वीतभिषग्वातकफोल्बणे।
पैत्तिकेजीवनीयानिसर्पींषिक्षीरबस्तयः।
रक्तावसेकःसंशुद्धिःक्षीरपानंचशस्यते ॥
यूषैर्मांसरसैश्चापिदीपनीयसमायुतैः।
लघून्यन्नानिसंसृज्यभजेत्प्लीहोदरीनरः

अर्थ....वात और कफकी अधिकता में अग्निकर्म करना हित है। पैत्तिक उदर में जीवनीय गणोक्त द्रव्य, तिक्तकादि घृत क्षीर बस्ति, रक्तमोक्षण, संशोधन और दुग्धपान हितकर होते हैं प्लीहोदर में दीपनीय औषधियों से सिद्ध यूष और मांसरस के साथ लघु अन्नका भोजन हितहै।

बद्धोदर में चिकित्सा।

स्विन्नायबद्धोदरिणेमूत्रतीक्ष्णौषधान्वितम्। सतैललवणंदद्यान्निरूहंसानुवासनम् ॥ परिस्रंसीनिचान्नानितीक्ष्णञ्चैव विरेचनम्।उदावर्त्तहरंकर्मकार्यंवातघ्नमेवच

अर्थ....बद्धोदररोगी को स्वेदन देकर तीक्ष्ण विरेचन देवै, उदावर्त्त नाशक कर्म तथा वातनाशक क्रिया का भी प्रयोग करै ॥

छिद्रोदर में कर्त्तव्यकर्म।

छिद्रोदरमृतेस्वेदात्श्लेष्मोदरवदाचरेत्।
जातंजातंजलंस्राव्यमेवंतत्पाययेद्भिषक्।
तृष्णाकासज्वरार्त्तंतुक्षीणमांसाग्निभोजनम् ॥ वर्जयेत्श्वासिनंतद्वत्शूलिनंदुर्बलेन्द्रियम् ॥

अर्थ....छिद्रोदरमें स्वेदनकर्मके अतिरिक्त कफोदर के सदृश शेष चिकित्सा करनी चाहिये। जितना जितना जल पेटमें उत्पन्न होती जाय उतना उतनाही निकाल देना उचित है। इसतरह इस रोगको याप्य करता रहै। जिस छिद्रोदर में तृष्णा, खांसी ज्वर, क्षीणमांस, क्षीणाग्नि, क्षीणभोजन, श्वास, शूल और दुर्बलेन्द्रियता आदि उपद्रव होते हैं वह दुश्चिकित्स्य होता है ॥

जलोदर में चिकित्सा।

अपांदोषेग्रहण्यादौविदध्यादुदकोदरे । मूत्रयुक्तानितीक्ष्णानिविविधंक्षारवन्तिच दीपनीयैःकफघ्नैश्चतमाहारैरुपाचरेत् । द्रवेभ्यश्चोदकादिभ्योनियच्छेदनुपूर्वशः

अर्थ—जलोदरमें ग्रहणी आदि में जल का दोष होनेपर गोमूत्र मिश्रित तीक्ष्णक्षार युक्त औषधियोंका प्रयोग करे। दीपनीय औषधियोंसे संयुक्त कफनाशक आहार का सेवन करावै। इस रोगमें जल आदि द्रव पदार्थों का सेवन कराना बन्द रक्खे ॥

उदररोगोंमेंसाधारणविधि।

सर्वमेवोदरंप्रायोदोषसंघातजंमतम् । तस्मात्त्रिदोषशमनींक्रियांसर्वेषुकारयेत्॥ दोषैःकुक्षौहिसंपूर्णेवन्हिर्मन्दत्वमृच्छति । तस्माद्भोज्यानियोज्यानिदीपनानिलघूनिच ॥ रक्तशालीन्यवान्मुद्गान्जांगलांश्चमृगद्विजान् । पयोमूत्रासवारिष्टान्मधुशीधूंस्तथासुरान् । यवागूमोदनंवापियूषैरद्यादसैरपि ॥ मन्दाम्लस्नेहकट्वाभिः पंचमूलोपसाधितैः ॥

अर्थ—प्रायः सम्पूर्ण उदररोग त्रिदोष से उत्पन्न होते हैं इससे इनमें त्रिदोषनाशिनी क्रिया करना उचितहै। दोषों के कुक्षिमें भरजाने से अग्नि मन्द पडजाती है इस लिये अग्निसंदीपन और लघु भोजन कराना चाहिये, यथा रक्तशालि, जौ, मूंग, जांगल पशुपक्षियोंका मांस, दूध, गोमूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु, शीधु, और सुरा देवै। थोडी सी खटाई, चिकनाई और कटुद्रव्य डाल कर लघुपंचमूलसे सिद्ध कियेहुये यूष और मांसरस के साथ यवागू और भातका सेवन करावै।

उदरमेंवर्जितकर्म।

औदकानूपजंमांसंशाकंपिष्टकृतंतिलान्॥ व्यायामाध्वदिवास्वप्नंयानयानञ्चवर्ज्जयेत् । तथोष्णलवणाम्लानिविदाहीनिगुरूणिच । नाद्यादन्नानिजठरीतोयपानंचवर्ज्जयेत् ॥

अर्थ—औदक और आनूपजीवोंका मांस शाक, पिष्टपदार्थ, तिलके पदार्थ, व्यायाम, भ्रमण, दिवानिद्रा, सवारीपर चढकरचलना इन कर्मोंका त्याग देना उचितहै। तथा उष्ण, नमकीन, खट्टे, विदाही, भारीअन्नोंका सेवन और जलपानभी त्यागदेना चाहिये।

उदरमेंतक्रप्रयोग।

नातिसान्द्रंमतंपानेस्वादुतक्रमपेलवम् । त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तंतुनिचयोदरी ॥ वातोदरीपिबेत्तक्रंपिप्पलीलवणान्वितम् । शर्करामरिचोपेतंस्वादुपित्तोदरीपिबेत् ॥ यवानीसैन्धवाजाजीव्योषयुक्तं

कफोदरी। पिबेन्मधुयुतंतक्रंव्यक्ताम्लं नातिपेलवम्। मधुतैलवचाशुंठीशताह्वा कुष्ठसैन्धवैः॥ युक्तप्लीहोदरीजातंसव्यो पन्तुदकोदरी। बद्धोदरीतुहबुपायमान्य जाजीसैन्धवैः॥ पिबेच्छिद्रोदरीतक्रंपि प्पलीक्षौद्रसंयुतम्॥ गौरवारोचकार्त्ता नांमन्दाग्न्यतिसारिणाम्। तक्रंवात कफार्त्तानाममृतत्वायकल्पते।

अर्थ—सब प्रकारके उदररोगोंमें त्रिकुटा क्षार और नमक डालकर ऐसा मठा पीना चाहिये जो स्वादु और स्निग्धहो परन्तु बहुत गाढा नहो। वातोदरमें पीपल और नमक डालकर मठा पीवै। पित्तोदरमें शर्करा, कालीमिरच, डालकर मीठा मठापीवै कफोदरमेंअजवायन, सेंधानमक, कालाजीरा और त्रिकुटा डालकर तक्रपान हित है। परन्तु इस तक्रमें शहत और तेज खटाई डाललेवै। यह अत्यन्त गाढा भी न होना चाहिये। प्लीहोदरमें शहत, तेल, वच, सोंठ सोंफ, कूठ और सेंधानमक डालकर तक्र का पानकरै। जलोदरमें त्रिकुटा डालकर तक्रपान करै। बद्धोदरमें हाऊवेर, अजवायन, कालाजीरा और सेंधानमक डालकर तक्रपान करै। छिद्रोदरमें पीपल और शहत डालकर तक्रपान करै। जो मनुष्य गौरव, अरुचि, मन्दाग्नि, अतिसार और वातकफ रोगों से पीडित हैं उनको मठा अमृत के समान गुणकारी होता है॥

उदरमेंदुग्धप्रयोग।

दाहशोकार्त्तितृष्णामूर्च्छापीडितेकारभंपयः शुद्धानांक्षामदेहानांगव्यंछागंसमाहिषम्॥

अर्थ—दाह, शोक, आर्त्ति तृषा और मूर्च्छा इन रोगोंके होनेपर हथिनीका दूध पान करावै। तथा संशोधन से जो क्षीण देह होगये हैं उनको गौ, बकरी और भैंस का दूध पान करावै॥

उदरपर लेपनादिप्रयोग।

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः॥ साश्वगन्धैःसगोमूत्रैःप्रदिह्यादुदरंसमैः॥ वृश्चिकालींवचांकुष्ठंपञ्चमूलांपुनर्नवाम्॥ भूतीकांनागरंधान्यंजलेपक्वावसेचयेत्॥ पलाशंकतृणंरास्नातद्वदपक्वावसेचयेत् मूत्राण्यष्टावुदरिणांसेकेपानेचयोजयेत्॥

अर्थ—देवदारु, ढाक, आक, गजपीपल सहजना और असगन्ध इनको गोमूत्र में पीसकर पेटपर लेप करै। तथा बिछुवन, वच, कूठ, पंचमूल, सांठ, अजवायन, सोंठ और धनियां इनको जलमें औटाकर उस जलसे पेट पर तरडा देवै। अथवा ढाक, कत्तृण और रास्ना इनको जलमें औटाकर इस जलसे तरडा देवै। आठों प्रकारके मूत्र उदररोग में परिषेक और पानमें प्रयुक्त किये जाते हैं।

रूक्षाणांबहुवातानांतथासंशोधनार्थिनाम् स्नेहनीयानिसर्पींषिजठरघ्नानिवक्ष्यते॥

अर्थ—रूक्ष, बहुवातपीडित और संशोधन के योग्य मनुष्यों के निमित्त उदरनाशक स्नेहनीय घृतोंका वर्णन कियाजाताहै

पिप्पल्यादि घृत।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः॥

सक्षारैरर्द्धपलिकैस्तैःप्रस्थंसर्पिषःपचेत्॥ कल्कैर्द्विपञ्चमूलस्यतुलार्द्धस्यरसेनच । दधिमण्डाढकोपेतंतत्सर्पिर्जठरापहम् ॥ श्वयथुंवातविष्टम्भंगुल्मार्शांसिचनाशयेत्

अर्थ....पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ और जवाखार इनमें से प्रत्येक आधे२ पल लेवै, घृत एक प्रस्थ, दशमूल का काथ आधीतुला और दहीका तोड एक तुला इन सबको पकाकर घृत प्रस्तुत करै इस घृत के सेवन करनेसे उदररोग, कूजन, वात विष्टम्भ, गुल्म और अर्श दूर होजातेहैं

नागरादिघृत ।

नागरत्रिफलाप्रस्थंघृततैलात्तथाढकम् ॥ मस्तुनःसाधयित्वैतत्पिवेत्सर्वोदरापहम् कफमारुतसम्भूतेगुल्मेचैतत्प्रशस्यते ॥

अर्थ—सोंठ और त्रिफला एक प्रस्थ घी और तेल एक आढक इनको दहीके दूने तोडमें पकावै । यह घृत सम्पूर्ण प्रकार के उदररोग, तथा कफवात से उत्पन्न गुल्मरोगों में हित है ।

चित्रकघृत ।

चतुर्गुणेजलेमूत्रेद्विगुणेचित्रकात्पले ॥ कल्केसिद्धंघृतप्रस्थंसक्षारंजठरीपिवेत् ।

अर्थ—चीता एक पल, घृत एक प्रस्थ, जवाखार एक पल, गोमूत्र दो प्रस्थ और जल चार प्रस्थ इनको पाक करले । यह घृत पेटरोग में हित है ॥

यवादि घृत ॥

यवकोलकुलत्थानांपञ्चमूलरसेनच । सुरासौवीरकाभ्यांचसिद्धंवापिपिबेद्घृतम्॥

अर्थ—जौ, बेर, कुल्थी इनका कल्क पञ्चमूल का काथ सुरा और सौवीर इन के साथ घृत को पकाकर सेवन करै ।

एभिःस्निग्धायसंजातेवलेशान्तेचमारुते॥ स्रस्तेदोषाशयेदद्यात्कल्पदृष्टंविरेचनम्।

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए घृतोंसे जव रोगी स्निग्ध होजाय, उसमें बल बढजाय और वातभी शान्त होजाय तब दोषाशय की शुद्धिके निमित्त कल्पस्थानमें कहा हुआ विरेचन देवै ।

पटोलादि चूर्ण ॥

पटोलमूलरजनीविडङ्गत्रिफलात्वचम् । काम्पिल्यकोनीलिनीचत्रिवृताचेतिचूर्णयेत् ॥ षडाद्यान्कार्षिकानन्त्यांस्त्रींश्चद्वित्रिचतुर्गुणान् । कृत्वाचूर्णमतोमुष्टिंगवांमूत्रेणवापिवेत् ॥ विरिक्तोमृदुभुञ्जीत भोजनंजांगलैरसैः।मण्डपेयाञ्चपीत्वावास्योषंपडहंपयः ॥ भृतंपिवेत्ततःचूर्णंपिवेदेवपुनःपुनः।हन्तिसर्वोदराण्येतच्चूर्णंजातोदकान्यपि ॥ कामलांपाण्डुरोगञ्च श्वयथुंचापकर्षति ॥

अर्थ—परवलकी जड, हलदी, वायविडंग त्रिफलाकी छाल, प्रत्येक एक एक कर्ष,कबीला दोकर्ष, नीलनी तीन कर्ष, और निसोथ चारकर्ष ॥ इन सबका चूर्ण बना लेवै। इसमें से एक पल चूर्ण गोमूत्र के साथ सेवन करै ॥ दस्त होने के पीछे जांगल मांसरस के साथ मृदु भोजन करै अथवा मण्ड पेया को पीकर त्रिकुटा डाला हुआ दूध छः दिवस तक पान करै ॥ इसी तरह फिर चूर्ण

का सेवन करके फिर दुग्धादि का सेवन करै । यह चूर्ण उन उदररोगों को भी दूर कर देता है जिन में जलकी उत्पत्ति हो आई है, तथा कामला, पाण्डुरोग और सूजन कोभी दूर कर देता है ॥

गवाक्ष्यादि चूर्ण ।

गवाक्षींशंखिनींदन्तींतिल्वकस्यत्वचंवचाम् । पिवेद्द्राक्षाम्बुगोमूत्रकोलकर्कन्धुशीधुभिः ॥

अर्थ—इंद्रायण, शंखपुष्पी, दन्ती, लोध, वच इनके चूर्णको दाखके क्वाथ के साथ, वा गोमूत्रके साथ वा कोल वा कर्कन्धुके क्वाथ के साथ वा शीधुके साथ पानकरै ॥

नाराच चूर्ण ।

यमानीहवुषाधान्यंत्रिफलाचोपकुञ्चिका। कारवीपिप्पलीमूलमजगंधाशटीवचा ॥ शताह्वाजीरकंव्योपंस्वर्णक्षीरीसचित्रका ॥ द्वौक्षारौपौष्करंमूलंकुष्टंलवणपञ्चकम् । विडङ्गस्यसमांशानिदन्त्याभागास्त्रयस्तथा ॥ त्रिवृद्विशालयोर्द्वौद्वौसातलास्याचतुर्गुणा । एतन्नाराचकंनामचूर्णरोगगणापहम् ॥ नैतत्प्राप्यातिवर्त्तन्तेरोगाविष्णुमिवासुराः । तक्रेणोदरिभिःपेयंगुल्मिभिर्बदराम्बुना ॥ आनद्धवातेसुरयावातरोगेप्रसन्नया । दधिमण्डेनविट्संगेदाडिमाम्बुभिरर्शसैः ॥ परिकर्त्तेसवृक्षाम्लमुष्णाम्बुभिरजीर्णके । भगन्दरेपाण्डुरोगेश्वासेकासेगलग्रहे ॥ हृद्रोगेग्रहणीदोषेकुष्ठेमन्देऽनलेज्वरे ।दंष्ट्राविषेमूलविषेसगरेकृत्रिमेविषे । यथार्हस्निग्धकोष्ठेनपेयमेतद्विरेचनम् ॥

अर्थ...अजवायन, हाऊवेर, धनियां, त्रिफला, कालाजीरा, छोटा कालाजीरा, पीपलामूल, अजगन्ध, कचूर, वच, सौंफ, जीरा, त्रिकुटा, स्वर्णक्षीरी, चीता, दोनों प्रकार के क्षार, पुहकरमूल,कूठ, पांचों नमक और वायविडंग एक एक भाग, दंती तीन भाग निसोथ और इंद्रायण दो २ भाग, सातला चारभाग।इन सबको कूट पीसकर चूर्ण बना लेवै । इस चूर्णका नाम नाराचचूर्ण है यह सम्पूर्ण रोग समूहों का नाश करने वाला है । इस चूर्णका सेवन करनेके पश्चात् रोग ऐसे नहीं बढनेपाते हैं । जैसे विष्णु के साम्हने असुर गण सिर नहीं उठासक्ते हैं । इसचूर्ण के भिन्न २ अनुपान ये हैं, यथा इस चूर्ण को उदररोग में तक्रके साथ गुल्मरोग में बेरके क्वाथ के साथ; आनाहमें सुराके साथ; वातरोग में प्रसन्ना के साथ, मलकीवद्धता में दधिमण्ड के साथ; अर्शमें अनार के क्वाथ के साथ; परिकर्त्तिका (ऐंठा) में वृक्षाम्लके क्वाथकेसाथ; अजीर्ण में गरम जलके साथ सेवन करना चाहिये। तथा इन रोगोंके अतिरिक्त यह चूर्ण पाण्डुरोग, श्वास, खांसी, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणी दोष, कुष्ठ, मन्दाग्नि, ज्वर, दंष्ट्राविष (दांत का विष) मूलविष, विषरोग और कृत्रिमविष को दूर करदेताहै । यह विरेचनकर्त्ता औषध रोगीके कोष्ठ को स्निग्ध करने के पीछे दीजाती है ॥

हवुषादिचूर्ण ॥

हवुषाकाञ्चनक्षीरीत्रिफलाकटुरोहिणी।

क्रमका अवलंबन करना चाहिये । बार बार घृतपान करके मिश्रकघृतका पानकरैं कुशल वैद्यको उचित है कि गुल्म, गरदोष तथा उदररोगों की शान्ति के निमित्त ऊपर कहे हुए घृतों का पान करे।

पीलुकल्कोपसिद्धंवाघृतमानाहभेदनम्॥गुल्मघ्ननीलिनीसर्पिःस्नेहंवामिश्रकंपिबेत्॥

अर्थ—पीलु के कल्क के साथ सिद्ध किया हुआ घी आनाह को दूर करताहै। गुल्मनाशक नीलिनी घृत वा मिश्रक स्नेह का पान करने से भी उदररोग दूर होजातेहैं।

क्रमाग्निर्हृतदोषाणांजांगलप्रतिभोजिनाम्दोषशेषनिवृत्यर्थंयोगानवक्षाम्यतःपरम्

अर्थ—क्रम से विरेचनादि द्वारा दोषों के निकलने पर जांगल मांसरसादि का भोजन करना चाहिये । अब हम यहां से उन योगों का वर्णन करते हैं जो शेष दोषोंकी निवृत्ति के लिये उपयोगी होते हैं ।

अन्यप्रयोग ।

चित्रकामरदारुभ्यांकल्कंक्षीरेणवापिबेत्॥मांसंयुक्तस्तथाहस्तिपिप्पलीविश्वभेषजात्। विडङ्गचित्रकोदन्तीचव्यंव्योषञ्चतैःपयः॥ कल्कैःकोलसमैःपीत्वाप्रवृद्धमुदरंजयेत्। पिबेत्कषायंत्रिफलादन्तीरोहीतकैःशृतम्॥ व्योषक्षारयुतंजीर्णेरसैरद्यात्सजांगलैः। मांसंवाभोजनंभोज्यंसुधाक्षारघृतान्वितम्॥ क्षीरानुपानंगोमूत्रमभयांचामयोजयेत्। सप्ताहंमाहिषंमूत्रंक्षीरंचानन्नभुक्पिबेत्। मांसमौष्ट्रंपयःछागंत्रीन्मासान्व्योषसंयुतम्॥

अर्थ—चीता और देवदारु इन दोनों के कल्कको दूधके साथ सेवन करै । अथवा गजपीपल, सोंठ, वायविडँग, चीता, दन्ती, चव्य, और त्रिकुटा इन सबको समान भाग लेकर पीसले । इस कल्कमें से बेरके बराबर दूधके साथ एक महीने तक पीवैतो बढा हुआ उदररोग शान्त होजाताहै । अथवा त्रिफला, दन्ती और रोहेडा इनका क्वाथकरके त्रिकुटा और क्षार डालकर पान करै। औषधके पचनेपर जांगल पशुओंका मांसरस देवै अथवा सेहुंडके दूधके घीके साथ पकाया हुआ मांस देवै । अथवा गोमूत्र के साथ हरडको फांककर ऊपरसे दूध पीवै । अथवा सात दिवसतक भैंसका मूत्र पीवै और उसी का दूध पीकर रहै, अन्न छोड देवै। अथवा ऊंटका मांस और बकरी का दूध त्रिकुटा डालकर तीन महीने तक पीवै ।

हरीतकीसहस्रंवाक्षीराशीवाशिलाजतु । शिलाजतुविधानेनगुग्गुलुंवाप्रयोजयेत्॥ शृङ्गवेरार्द्रकरसःपानेक्षीरसमोमतः। तैलंरसेनतेनैवसिद्धंदशगुणेनवा॥ दन्तीद्रवन्तीफलजंतैलंदूष्योदरेमतम्। शूलानाहविबन्धेषुसक्तुयूषरसादिभिः॥ सरलामरशिशूर्णांवीजेभ्योमूलकस्यच॥ तैलान्यभ्यंगपानार्थेशूलघ्नान्यनिलोदरे। स्तैमित्यारुचिहृल्लासेप्वल्पाग्निर्मद्यपस्तथा॥ अरिष्टान्त्रापिबेत्क्षारान्कफस्त्यानस्थिरोदरः।

अर्थ—सहस्र हरडका सेवन एक एक बढाने घटाने की रीति से करै और दूध

पान करके रहे। अथवा शिलाजीत का सेवन करै अथवा शिलाजीत की रीतिही से गूगलका प्रयोग करै। अथवा दूध में समान भाग अदरखका रस मिलाकर पीवै अथवा दसभाग अदरखके रसमें एक भाग तेल पकाकर सेवनकरै। अथवा दन्ती और द्रवन्ती के फलों का तेल दूष्योदर में सेवन करै - शूल आनाह और विबन्ध रोगों में शक्तु, यूष और मांसरसके साथ इसी तेल का सेवन करै। वातोदर में शूलको नष्ट करने के लिये सरलकाष्ट, सहजना वा मूली के बीजोंका तेल अभ्यंग और पानमें प्रयोग करै॥ कफोदर में जब उदर कफ के कारण स्निग्ध और स्थिर होजाय तब तथा स्तिमिता, अरुचि, हृल्लास, और अल्पाग्नि में मद्यपीनेवाला मनुष्य अरिष्ट वा क्षारोंका पानकरै।

पिप्पलींतिल्वकंहिंगुनागरंहस्तिपिप्पलीम्।
भल्लातकंशिग्रुफलंत्रिफलांकटुरोहिणीम्।
देवदारुहरिद्रेद्वेसरलातिविषेवचाम्।
कुष्ठंमुस्तंतथापञ्चलवणानिप्रकल्पयेत्॥
दधिसर्पिर्वसातैलमज्जायुक्तानिदाहयेत्।
अन्तर्धूमंतथाक्षाराद्विडालकपदंपिवेत्।
मदिरादधिमण्डोष्णजलारिष्टसुरासवैः।
हृद्रोगश्वयथुंगुल्मंप्लीहार्शोजठराणिच॥
विसूचिकामुदावर्त्तंवाताष्ठीलाञ्चनाशयेत्।

अर्थ—पीपल, लोध, हींग, सोंठ, गजपीपल, भिलाया, सहजना, त्रिफला, कुटकी देवदारु, दोनों हल्दी, सरला, अतीस, वच कूट, मोथा- पाचों नमक, इनको कूटकर दही, घी, वसा, मज्जा; और तेल मिलाकर ऐसी रीतिसे दग्धकरै कि धूंआं भीतरका भीतरही भरजाय बाहर न निकलने पावे। इस क्षारमें से प्रतिदिन दो तोले मदिरा, दधिमण्ड, उष्णजल, अरिष्ट, सुरा और आसव के साथ पान करै तो हृद्रोग- सूजन, गुल्म रोग, प्लीहा, अर्श, जठर, विसूचिका, उदावर्त्त और वातष्ठीला दूर होजाते हैं।

आजकरीषका प्रयोग॥

क्षारश्चाजकरीषाणांशृतंमूत्रेविपाचयेत्।
कार्षिकंपिप्पलीमूलंपञ्चैवलवणानिच॥
पिप्पलीचित्रकंशुण्ठीत्रिफलांत्रिवृतांवचाम्। द्वौक्षारौशातलांदन्तींस्वर्णक्षीरींविषाणिकाम्॥ कोलप्रमाणांवटिकांपिवेत् सौवीरसंयुताम्। श्वयथावविपाकेचप्रवृद्ध चोदकोदरे।

अर्थ—बकरीकी मेंगनियोंको जलाकर अठगुने मूत्रमें पकावै जब औटजाय तब एक छन्नेमें होकर चुआले इसतरह बीस कर्ष क्षार लेवै और पीपला मूल, पांचोंनमक पीपल, चीता, सोंठ, त्रिफला, निसोथ, वच, दोनों क्षार, शातला, दन्ती, स्वर्णक्षीरी, और मेढासिंगी इनको एक एक कर्ष लेकर पीसकर वेरकी बराबर गोली बनावै एकगोली खाकर ऊपरसे सौवीरका पान करले। इससे सूजन, अविपाक और बढेहुए उदररोगनष्टहोजातेहैं।

उदररोग में भोजन।

भावितानांगवांमूत्रेषष्टिकानांतुतण्डुलैः।
यवागूंपयसासिद्धंप्रकामंभोजयेन्नरम्।
पिबेदिक्षुरसञ्चानुजठराणांनिवृत्तये। स्वं

स्वंस्थानंव्रजत्येपांतथापित्तकफानिलाः ॥

अर्थ—साठीचांवलों को गोमूत्रकी भावना देकर दूधके साथ उनकी यवागू बनाकर यथेष्ट भोजन करावै । ऊपरसे इक्षुरस का पान करै, ऐसा करनेसे जठर रोग शान्त होजातेहैं और वात पित्त कफ अपने अपने स्थानोंको चले जातेहैं ।

शंखिनीस्नुक्त्रिवृद्दन्तीचिरिविल्वादिपल्लवैः। शाकंगाढपुरीषायप्रागभक्तंदापयेद्भिषक् ॥ ततोऽस्मैशिथिलीभूतवर्चोदोषायशास्त्रवित् । दद्यान्मूत्रयुतंक्षीरंदोषशेषहरंशिवम्॥पार्श्वशूलमुपस्तम्भंहृद्ग्रहञ्चापिमारुतः । जनयेद्यस्यतैलंसविल्वक्षारेणनापिवेत्॥

अर्थ—जिस रोगीका मल गाढा पड गया हो उसे शंखाहूली, सेंहुड, निसोथ, दन्ती और कंजेके पत्तोंका साग भोजन करने से पहिले देवै । जब विष्ठा और दोष ढीले पडजांय तब वचे हुए दोषोंको दूर करने के लिये गोमूत्र और दूधका सेवन करावै । जब वायु पार्श्वशूल, उपस्तम्भ और हृद्ग्रह उत्पन्न करै तब उसे विल्वक्षार के साथ तैलपान कराना चाहिये ॥

तथाग्निमन्थश्योनाकपलाशतिलनालजैः बलाकदल्यपामार्गक्षारैःप्रत्येकशःस्रुतैः॥ तैलंपक्त्वाभिषग्दद्यादुदराणांप्रशान्तये निवर्त्ततेचोदरिणांहृद्ग्रहश्चानिलोद्भवः॥

अर्थ—अरनी, सोनापाठा, ढाक, तिलकी नाल, खरैटी, केला, ओंगा, इन सब के क्षारोंको अलग अलग तयार करै । फिर इन क्षारों के साथ तैल सिद्ध करै । यह तैल उदररोग तथा वातज हृद्ग्रह को दूर करदेता है ।

कफेवातेसपित्तेनताभ्यांवाप्यावृतेऽनिले बलिनःस्वौषधयुतंतैलमैरण्डजंहितम् । सुविरिक्तोनरोयस्तुपुनराध्मतांइतम् ॥ सुश्लिष्टैरम्ललवणैर्निरूहैःसमुपाचरेत् ।

अर्थ—कफ, वात वा वातपित्तसे वायु के आवृत होने पर बलवान रोगी को वात नाशक या कफनाशक औषधियों के साथ में सिद्ध कियाहुआ अंडी का तेल देवै । अच्छी तरह विरेचन होने के पीछे भी जो फिर उदररोग की उत्पत्ति होवै तौ अम्ल और लवण द्वारा स्निग्ध निरूहण वस्ति देवै । जिसरोगी के वायु उपस्तम्भ के साथ उदररोग की उत्पत्ति करै उसे क्षार और गोमूत्र द्वारा तीक्ष्ण वस्ति देवै ।

सोपस्तम्भोऽपिवावायुराध्मापयतियंनरम् तीक्ष्णैःसक्षारगोमूत्रैर्वस्तिभिस्तमुपाचरेत्।

अर्थ—अथवा उपस्तम्भ सहित वायु जिस नरको ग्रस्त कर लेती है, उस मनुष्य का तीक्ष्ण क्षार सहित गोमूत्र और वस्ति से उपचार करै ॥

त्रिदोषज उदर में कर्त्तव्य ।

क्रियातीतेत्रिदोषेचजाठरेचाप्रशाम्यति ॥ ज्ञातीन्सत्सुहृदोदारान्ब्राह्मणान्नृपतीन् गुरून् । अनुज्ञाप्यभिषक्कर्मविदध्यात्संशयंब्रुवन् । अक्रियायांध्रुवोमृत्युःक्रियायांसंशयोभवेत् ॥ एवमाख्यायतस्येद मनुज्ञातःप्रयोजयेत् ।

नाभि से चार अंगुल नीचे नापकर बांईकू खमें चार अंगुल के शस्त्रसे चीरा लगाकर बद्ध वा क्षत आंतों की परीक्षा करै और उस आंत में घी चुपडकर केश आदि जो शल्य उसमें हों उनको निकाल डाले । इन के निकालने से जो आंतों में छिद्र होजाय उनको बडी बडी चींटियों से कटवावै ऐसा करने से आंतें इकट्ठी होकर पुरजांयगी पुरने पर चींटियों को छुडा देवै और आंतों को उनके स्थान पर रखकर व्रणको बाहर से सींदेवै ।

जातोदकउदरमें शस्त्रकर्म ।

तयाजातोदकंसर्वमुदरंव्यधयेद्भिषक् ॥ वामपार्श्वेत्वधोनाभेर्नाडींदत्वाचगालये त् । निःस्राव्यचाविमृज्यैतद्वेष्टयेद्वाससो-दरम् ॥ तथावस्तिविरेकाद्यैर्म्लानंसर्व-चवेष्टयेत् । निःसृतेलंघितःपेयामस्नेहल-वणांपिवेत् ॥ अतःपरञ्चषण्मासान्क्षी-रवृत्तिर्भवेन्नरः । त्रीन्मासान्पयसापे-यांपिवेत्त्रींश्चापिभोजयेत् ॥ श्यामाक-कोरदूष्यंवाक्षारेणलघुभोजनः ॥

अर्थ....जिसउदररोग में जलबढ गयाहो उसमें भी नाभिके नीचेबांई ओर को चीरा लगाकर एक नली द्वारा सब जल को निकाल देवे । जल के निकलनेके पीछे खाल को जहां की तहां लगाकर वस्त्र से लपेटदेवे । इसी तरह वस्ति और विरेचनादिसे म्लान उदर को वस्त्रसे लपेट देवे । जलके निकलनेके पीछे लंघन कराके विना चिकनाई और नमक की पेयाका सेवन करावे इन मे पीछे छः महीने पर्य्यन्त मनुष्य केवल दूध पीकर रहे । उससे पीछे तीन महीने तक दूध के साथ पेया पीवे और फिर तीन महीने तक दूधके साथ सौखिया और कोरदूष आदि हल्के अन्नका सेवन करता रहे ॥

नरःसंवत्सरेणैवंजयेत्प्राप्तंजलोदरम् । प्रयोगाणान्तुसर्वेषामनुक्षीरंप्रयोजयेत् ॥ दोषानुबन्धरक्षार्थंबलस्थैर्यार्थमेवच । प्र योगापचिताङ्गानांहितंह्युदरिणांपयः॥ सर्वधातुक्षयार्तानांदेवानाममृतंयथा ॥

अर्थ....इस तरह एक वरस तक सुपथ्य और उत्तम आहार विहार करने से मनुष्य जलोदर को विजय करसकता है । उदररोगों में सम्पूर्ण प्रयोगोंके पीछे दूध का पीना अवश्य है, ऐसा करनेसे वातादि दोषों का अनुबंध दूर होजाताहै और बल तथा दृढता बनी रहतीहैं । बहुतसे प्रयोगोंके कारण रोगीका देह क्षीण होजाताहै और सम्पूर्ण धातुभी क्षय होजाती हैं इससे उदरोगीको दूध ऐसा गुणदायक है जैसे देवताओं को अमृत ।

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

हेतुंप्राग्रूपमष्टानांलिंगंव्याससमासतःउप द्रवान्गरीयस्त्वंसाध्यासाध्यत्वमेवच । जाताजाताम्बुलिंगानिचिकित्सांचोक्तवा नृपः ॥ समासव्यासनिर्देशैरुदराणांचि कित्सितम् ।

अर्थ—इस उदरचिकित्सित नामक अध्यायमें भगवान् पुनर्वसुने आठ प्रकार के उदररोगोंके हेतु, पूर्वरूप, और लिंगों का

रसाद्रक्तंविसदृशात्कथंदेहेऽभिजायते ।
रसस्यचनरक्तोऽस्तिसकथंयातिरक्तताम् ॥
रसाद्रक्तात्स्थिरंमांसंकथंतज्जायतेनृणाम् ।
रसाद्रक्ताच्चथामांसान्मेदसःश्वेतताकथम्॥
श्लक्ष्णाभ्यांमांसमेदोभ्यांखरत्वंकथमास्थिषु । खरेष्वस्थिषुमज्जाचकेनस्निग्धोमृदुस्तथा ॥ मज्जश्चपरिणामेनयदिशुक्रंप्रवर्तते । सर्वेसर्वगतंशुक्रमवदन्तिमनीषिणः॥
अथापिमध्येमज्जश्चशुक्रंभवतिदेहिनाम् ।
छिद्रंनदृश्यतेऽस्थ्नाञ्चतन्निःसरतिनुःकथम्

अर्थ....जब आत्रेय इस तरह कह रहेथे तब उनके शिष्यने पूछा कि हेभगवन् ! रस और रक्तमें विसदृशता है फिर रससे, रक्त कैसे उत्पन्न होता है ? रस में ललाई नहीं होती है फिर रक्तलाल क्यों होजाता है ? रस और रक्त तो पतले हैं फिर इनसे स्थिर मांस कैसे उत्पन्न होता है ? रस, रक्त तथा मांससे उत्पन्न हुआ मेद सफेद क्यों होता है ? मांस और मेदा तो चिकने होते हैं फिर इनसे उत्पन्नहुई हड्डियों में खरखराहट क्यों होता है ? खरदरी हड्डियोंमें फिर मज्जा किस कारणसे स्निग्ध और मृदु होती है । और यदि मज्जा के परिणामसे ही वीर्य की प्रवृत्ति होती है और उसी शुक्र को सब पंडित सर्वगत अर्थात् सम्पूर्ण देह व्यापक कहते हैं, इससे वीर्य मनुष्योंकी के बीच में ही होता है परन्तु हड्डि के बीच में उसके निकलने का कोई नहीं दिखाई देता है फिर बाहर कैसे आता है ॥

रससे रक्त बनने का कारण ॥

एवमुक्तस्तुशिष्येणगुरुःप्राहदमुत्तरम् ।
तेजोरसानांसर्वेषामनुजानांयदुच्यते ॥
पित्तोष्मणःसरागेणरसोरक्तत्वमृच्छति ॥

अर्थ....इस तरह शिष्य से प्रश्न किये जाने पर गुरुने उत्तर दिया कि सम्पूर्ण मनुष्यों के आहार रसमें एक तेज नामकरस होता है यह पित्त की ऊष्मा से रक्त होजाता है ॥

मांस और मेदकी रीति ॥

वाय्वग्नितेजसारक्तमूष्मणाचाभिसंयुतम् ।
स्थिरतांमाप्यशौक्ल्यञ्चमेदोदेहेऽभिजायते

अर्थ—यह रक्त वायु और अग्नि का तेज तथा ऊष्मा से मिलकर जमजाता है और मांस बन जाताहै एवं मांसकी ऊष्मा से उसीका सफेद मेद बनजाता है ॥

अस्थिकी विधि ॥

पृथिव्यग्न्यानिलादीनांसंघातःश्लेष्मणावृतः
खरत्वंप्रकरोत्यस्यजायतेऽस्थिततोनृणाम्॥

अर्थ—कफसे आवृत पृथ्वी, अग्नि और वायु के संघात में खरखराहट पैदाहोती है इसी से हड्डियां उत्पन्न होती हैं ॥

मज्जाकी उत्पत्ति ॥

करोतितत्रसौशिर्यमस्थ्नांमध्येसमीरणः ॥
मेदसस्तानिपूर्यन्तेस्नेहोमज्जाततःस्मृतः।

अर्थ....तब वायु हड्डियों के मध्य में छिद्रों को उत्पन्न कर देती है और वे छिद्र मेदा से परिपूर्ण होजाते हैं, इससे हड्डियों में स्निग्ध मज्जा उत्पन्न होती है ॥

शुक्रकी उत्पत्ति ॥

तस्मान्मज्जस्तुयःस्नेहःशुक्रंसञ्जायतेततः वाय्वाकाशादिभिर्भावैःसौशिर्यंजायतेऽस्थिषु। तेनस्रवतितत्शुक्रंनवात्कुम्भादिवोदकम् ॥

अर्थ....उस मज्जा की चिकनाई से शुक्र की उत्पत्ति होती है और हड्डियों में वायु और आकाशादि के भावोंद्वारा बहुत से छोटे २ छिद्र होजाते हैं उन्ही छिद्रों में होकर वीर्य ऐसे निकलता है जैसे नये घडे में से जल चुचाता है ॥

वीर्य के निकलने की रीति ।

स्रोतोभिःस्यन्दतेदेहात्समन्तात्शुक्रवाहिभिः । हर्षेणोदीरितंरागात्संकल्पाच्चमनोभवात् ॥ विलीनंघृतवद्व्यायामोष्मणास्थानविच्युतम् । वस्तौसंभृत्यनिर्यातिस्थलान्निम्नादिवोदकम् ॥

अर्थ....सम्पूर्ण देह से शुक्रवाही स्रोतों द्वारा मन से उत्पन्न हुए हर्ष, राग और संकल्प से शुक्र उदीर्ण होताहै तथा मैथुनादि परिश्रमकी ऊष्मा से घृत के समान पिघलकर अपने स्थान से च्युत होकर वस्ति में इकट्ठा होकर इस तरह निकलने लगता है, जैसे नीची जगह से जल निकलताहै ।

पृथक् २ मलों का वर्णन ।

किट्टमन्नस्यविण्मूत्रंरसस्यचकफोऽसृजः पित्तंमांसस्यचमलोमलःस्वेदस्तुमेदसः । स्यात्किट्टंकेशलोमास्थ्नोमज्जःस्नेहोऽक्षिविट्त्वचाम् ॥ प्रसादकिट्टेधातूनांपाकादेवम्विधः स्मृतः ॥

अर्थ....अन्नका किट्ट अर्थात् मल विष्टा और मूत्र है, रस और रक्त का किट्ट कफ हैं, हड्डी का मल केश और लोम, है मज्जा का किट्ट स्नेह है, त्वचा का किट्ट आंखों का मल है, इसी तरह धातुओंके पाक से प्रसाद और किट्ट उत्पन्न होते हैं ।

परस्परोपसंरम्भाद्धातुस्नेहपरम्परा ॥ वृष्यादीनांप्रभावस्तुपुष्णातिबलमाशुहि षड्भिःकेचिदहोरात्रैरिच्छन्तिपरिवर्तनम् सन्तत्याभोज्यधातूनांपरिवृत्तिस्तुचक्रवत्

अर्थ—स्नेह परम्परा धातु आपस में एक दूसरीको पुष्ट करती हैं, परन्तु वृष्य औषधियोंका यह प्रभाव है कि वे बलको ही शीघ्र बढाती हैं । किसी २ का यह मत है कि एक धातु से दूसरी धातु के बनने में छःदिनरात लगते हैं,परन्तु वास्तव में एक धातुसे दूसरी धातु का बनना गाडी के पहिये की तरह घूमता रहताहै ।

व्यानेनरसधातुर्हिविक्षेपोचितकर्मणा ॥ युगपत्सर्वतोऽजस्रंदेहेविक्षिप्यतेसदा । क्षिप्यमाणस्तुवैगुण्याद्रसःसज्जतियत्रसः करोतिविकृतिंचात्रखेवर्षमिवतोयदः । दोषाणामपिचैवंस्यादेकदेशप्रकोपनम् ॥

अर्थ—विक्षेपकारी व्यान वायु रसधातु को निरन्तर सम्पूर्ण देहमें विक्षिप्त करती रहतीहै । इसतरह विक्षिप्त रस विगुण होकर देहमें जहां कहीं एकत्रित होजाताहै वहीं विकृति उत्पन्न करता है जैसे आकाश में बादल एक जगह इकट्ठे होकर बरसने लगतेहैं । इसीतरह दोष एक स्थानमें प्रकुपित होजातेहैं ।

जठराग्नि की उत्कृष्टता ।

इतिभौतिकधात्वन्नपक्तॄणांकर्मभाषितम् ॥ अन्नस्यपक्तासर्वेषांपक्तॄणामधिकोमतः ॥ तन्मूलास्तेहितद्वृद्धिक्षयवृद्धिक्षयात्मकाः॥ तस्मात्तंविधिवद्युक्तैरन्नपानेन्धनैर्हितैः ॥ पालयेत्प्रयतस्तस्यस्थितौह्यायुर्बलस्थितिः

अर्थ—ऊपर लिखी हुई रीति के अनुसार भौतिक धातु और पाचकाग्निके कर्म वर्णन किये गयेहैं । सम्पूर्ण अग्नियोंमें अन्नको पचानेवाली अग्नि अधिक होतीहै, पाचकाग्निही सम्पूर्ण अग्नियोंका मूलहै क्योंकि इसीके घटने वढनेसे औरों की भी घटती वढती होती है । इसलिये ईंधनरूपी हितकारी अन्नपानके विधिवत् सेवन करने से जठराग्नि का पालन करै । पाचकाग्नि के स्थित होनेही से आयु और वल की स्थिति होतीहै।

ग्रहणी दोषों का कारण ।

योहिभुंक्तेविधिंमुक्त्वाग्रहणीदोषजान्गदान् । सलौल्याल्लभतेशीघ्रंवक्ष्यन्तेऽतः परन्तुये ॥

अर्थ—जो मनुष्य विधि छोडकर भोजन करताहै, उसके जिह्वाकी लोलुपतासे ग्रहणी दोषसे उत्पन्न होकर अनेक प्रकार के रोग होजातेहैं । अब उन्हीं का वर्णन करते हैं ।

अग्नि के दूषित होने का कारण

अभोजनादजीर्णातिभोजनाद्विषमाशनात् । असात्म्यगुरुशीतातिरूक्षसन्दुष्टभोजनात् ॥ विरेकवमनस्नेहविभ्रमाद्व्याधिकर्षणात् । देशकालर्तुवैषम्याद्वेगानांञ्चविधारणात्॥दुष्यत्यग्निःसदुष्टोऽन्नंनतत्पचातिलघ्वपि । अपच्यमानंशुक्तत्वंयात्यन्नंविषताञ्चतत्॥

अर्थ—भोजन न करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे, अतिभोजनसे, विषम भोजन से, विरेचन, वमन, और स्नेहन कर्मों के अतियोगसे, व्याधिद्वारा अत्यन्तकृश होनेसे, देशकाल और ऋतुकी विषमता से, मलमूत्रादि वेगोंके रोकनेसे, अग्नि दूषित होजातीहै और दुष्ट होनेसे वह लघु अन्न को भी नहीं पचासकतीहै । और अपचमान अन्न खट्टा और विषवत् होजाताहै ॥

अजीर्ण अन्न के लक्षण ॥

तस्यलिंगमजीर्णस्याविष्टम्भोऽगञ्चसादिति । शिरसोरुक्चमूर्च्छाचभ्रमःपृष्ठकटिग्रहः ॥ जृम्भांगमर्दस्तृष्णाचज्वरच्छर्दिःप्रवाहणम् । अरोचकोविपाकश्चघोरमन्नंविषञ्चतत् ॥

अर्थ—अपच्यमान अन्न इन उपद्रवों को करताहै, यथा गुडगुडाहट, अंगग्लानि, सिरदर्द, मूर्छा, भ्रम पृष्ठग्रह कटिग्रह, जृम्भा, अंगमर्द, तृष्णा, ज्वर, वमन, ऐंठा; अरुचि और अविपाक, इसतरह अन्न घोर विष के समान होजाताहै॥

भिन्नदोषों से संसृष्ट विषान्न ॥

संसृज्यमानेनपित्तेनदाहंतृष्णांमुखामयान् । जनयत्यम्लपित्तंचपित्तजांश्चापरान्गदान् ॥ यक्ष्मपीनसमेहादीन्कफजान्कफसंगतः । करोतिवातसंसृष्टंवातजांश्चगदान्बहून् ॥ मूत्ररोगांश्चमूत्रस्थंकुक्षिरोगानशकृद्गतान् । रसादिभिश्चसंसृष्टं

कुर्याद्रोगान्रसादिजान् ॥

अर्थ—वही अपच्यमान अन्न पित्तसे मिलकर दाह, तृष्णा, मुखरोग, अम्लपित्त तथा पित्तजन्य अन्य २ रोगोंको उत्पन्न करता है। कफ से मिलकर यक्ष्मा, पीनस प्रमेह तथा अन्यकफज विकारोंको करता है वात से मिलकर अनेक प्रकारके वातरोगों को करताहै, मूत्रसे मिलकर अनेक प्रकार के मूत्ररोगोंको, विष्ठासे मिलकर अनेक प्रकारके कुक्ष रोगोंको और इसीतरह रसादिसे मिलकर रसादिसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको करताहै॥

भिन्नजठराग्निकेकर्म।

विषमोधातुवैषम्यंकरोतिविषमंपचन्। तीक्ष्णोमन्देन्धनोधातून्विशोषयतिपावकः ॥ युक्तंभुक्तवतोयुक्तोधातुसाम्यंसमंपचन्। दुर्बलोविदहत्यन्नंतद्यात्यूर्ध्वमधोऽपिवा ॥

अर्थ—विषम अग्नि अन्नको विषमरीति से पकाकर धातुओंको विषम करदेताहै, तीक्ष्णाग्नि भोजनरूपी ईंधनको अल्पपाकर सम्यक् पक्व करके धातुओंको शुद्ध कर देताहै। समाग्नि युक्तिपूर्वक भोजन करनेके कारण धातुओं में साम्यता करताहै तथा मन्दाग्नि अन्नको अच्छीतरह न पचानेसे विदग्धता करती है और वह अन्न वमन द्वारा या मलद्वारा बाहर निकल जाताहै ॥

ग्रहणी रोग के लक्षण ।

अधश्चपक्कमामंवाप्रवृत्तंग्रहणीगदः । उच्यतेसर्वमेवान्नंप्रायोह्यस्यविदह्यते ॥ अतिसृष्टंविबद्धंवाद्रवंतदुपवेश्यते ।

अर्थ—पक्व वा कच्चा अन्न जो अधोमार्गद्वारा होकर निकलताहै, इसे ग्रहणी रोग कहतेहैं, इसमें प्रायः सब प्रकार का अन्न विदग्ध होजाता है। विबद्धता के साथ वा पतला होकर निकलता है ॥

ग्रहणी रोग के लक्षण ॥

तृष्णारोचकवैरस्यप्रसेकतमकान्वितः ॥ शूनपादकरःसास्थिपर्वरुक्छर्दनंज्वरः । लोहामगन्धिस्तिक्ताम्लउद्गारश्चास्यजायते ॥

अर्थ....इस रोगमें तृष्णा, अरुचि, विरसता, लालास्राव, तमकश्वास, हाथपांव में सूजन, हड्डी पर्वोंमें वेदना, वमन, ज्वर, लोहगन्धि, आमगन्धि, तथा तिक्त और खट्टी डकार आदि उपद्रव होते हैं ॥

ग्रहणी रोगके पूर्वरूप ॥

पूर्वरूपंतुतस्येदंतृष्णालस्यंबलक्षयः। विदाहोऽन्नस्यपाकश्चचिरात्कायस्यगौरवम् ॥

अर्थ—तृष्णा, आलस्य, बलकीक्षीणता, अन्नका विदाह, देरमें अन्नका पाक और देह का भारापन ये सब ग्रहणी के पूर्वरूप हैं।

ग्रहणीका विशेष वर्णन ।

अग्न्यधिष्ठानमन्नस्यग्रहणाद्ग्रहणीमता। नाभेरुपरिसाह्यग्निबलोपस्तम्भबृंहिता॥ अपक्वंधारयत्यन्नंपक्वंसृजतिपार्श्वतः । दुर्बलाग्न्यबलाद्दुष्टादाममेवविमुञ्चति ॥

अर्थ—ग्रहणी अग्निका अधिष्ठान है, यह अन्नको ग्रहण करती है इससे इसे ग्रहणी

कहते हैं, यह नाभिके ऊपर होती है, अग्निवलही इसके लिये उपस्तम्भ और बृंहण कर्त्ता होता है यह अपक्व अन्न को धारण करती है और पक्व अन्नको पार्श्वद्वारा निकाल देती है । अग्निवलके दूषित होने से यह दूषित होकर अपक्व अन्न को ही निकालने लगती है ।

ग्रहणी रोग के भेद ।

वातात्पित्तात्कफात्सर्वात्ग्रहणीदोपउच्यते । हेतुंलिंगंचिकित्साञ्चशृणुतस्य पृथक्पृथक् ॥

अर्थ....ग्रहणीरोग चार प्रकार का होता है, यथा—वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक और सान्निपातिक । अब इनके पृथक् २ हेतु लक्षण और चिकित्सा वर्णन किये जाते हैं, उन्हें सुनो ।

वातिक ग्रहणी के हेतु ।

कटुतिक्तकषायातिरूक्षशीतलभोजनैः । प्रमितानशनात्यध्ववेगनिग्रहमैथुनैः ॥ करोतिकुपितोमन्दमग्निंसंछाद्यमारुतः ।

अर्थ—कडवे, तीखे, कसीले, अत्यन्त रूखे, अत्यन्त शीतल भोजन करने से, थोडा भोजन करने से, वा सर्वथा न करने से, अत्यन्त मार्ग चलने से, उपस्थित वेगों के रोकने से और मैथुन करने से वायु कुपित होकर अग्निको ढककर मन्द करदेती है, इसी से ग्रहणी रोग उत्पन्न होता है।

वातिक ग्रहणी के लक्षण ।

तस्यान्नंपच्यतेदुःखंशुक्तपाकःखरांगता॥ कण्ठास्यशोषःक्षुत्तृष्णातिमिरकर्णयोः स्वनः । पार्श्वोरुवंक्षणग्रीवारुजोऽभीक्ष्णविसूचिका ॥ हृत्पीडाकार्श्यदौर्वल्यवैरस्यंपरिकर्तिका । गृद्धिःसर्वरसानांचमनसःसदनंतथा ॥ जीर्णेजीर्यतिचाध्मानंभुक्तेस्वास्थ्यमुपैतिच । सवातगुल्महृद्रोगप्लीहाशङ्कीचमानवः ॥ चिराद्दुःखंद्रवंशुष्कंतन्वामंशब्दफेनवत्। पुनःपुनसृजेद्वर्चःकासश्वासान्वितोऽनिलात् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके वादी से ग्रहणी रोग होताहै उसका अन्न कठिनतासे पचता है और अम्लपाक होताहै अर्थात् खट्टी डकारें आने लगती हैं । देहमें खुरदरापन, कण्ठ और मुखमें खुश्की, क्षुधा, तृषा आंखों के साम्हने अंधेरा, कानों में शब्द, पार्श्ववेदना, ऊरुशूल, वंक्षणशूल, ग्रीवा में वेदना, वार वार विसूचिका, हृत्पीडा कृशता, दुर्बलता, विरसता, ऐंठा, सम्पूर्ण रसोंमें स्पृहा, मनका शिथिल होना, अन्न के पचनेपर वा पचने के समय अफरा,होता है केवल भोजन करने से सुस्थता होती है। इस रोगी को यह शंका होती है कि मेरे वात गुल्म, हृद्रोग और प्लीहा होगई है । इस रोगमें देरमें कष्टसे पतला, सूखा थोडा कच्चा, शब्दयुक्त, और झागदार मल वार २ निकलता है , तथा रोगी के खांसी और श्वास भी उत्पन्न हो आते हैं ।

पैत्तिक ग्रहणी का हेतु ।

कट्वजीर्णविदाह्यम्लक्षाराद्यैः पित्तमुल्वणम् । अग्निमाप्लावयद्धन्तिजलंतप्तमिवानलम् ॥

अर्थ—विदग्ध आहारसे मूर्च्छित होकर जब दोष ग्रहणीका आश्रय लेलेतेहैं तब विष्टम्भता, लालास्राव, आर्त्ति, विदाह, अरुचि, भारापन और आमके लक्षण दिखाई देने लगते हैं। उस समय सुहाता हुआ गरम जल, मेनफलका क्वाथ वा पीपल और सरसों का कल्क देकर वमन करा देवे ॥ तथा जो पक्वाशय में लीन होजाय तो संदीपन औषधोंके प्रयोगसे आमको निकाल डाले।

शरीरानुगतेसामेरसेलंघनपाचनम् ॥ विशुद्धामाशयायास्मैपञ्चकोलादिभिर्युतम्। दद्यात्पेयादिलघ्वन्नंपुनर्योगांश्चदीपनान्

अर्थ—जब आम रस शरीरमें फैलजाय तब लंघन पाचन औषधियों का प्रयोगकरे इसतरह आमाशयके विशुद्ध होनेपर पंच कोलादि मिश्रित पेयादि लघु अन्न तथा संदीपन योगोंका प्रयोग करे।

ज्ञात्वातुपरिपक्वामंमारुतग्रहणीगदम्। दीपनीययुतंसर्पिःपाययेताल्पशोपिक् ॥ किञ्चित्सन्धुक्षितेत्वग्नौसक्त विण्मूत्रमारुतम्। द्वित्रीण्यहानिसस्नेहंस्नेहाभ्यक्तंनिरूहयेत् ॥ ततएरण्डतैलेनसर्पिपातैलकेन वा। सक्षारेणानिलेशान्तेस्रस्तदोषंविरेचयेत् ॥ शुद्धरूक्षाशयंबद्धवर्चसश्चानुवासयेत्। दीपनीयाम्लवातघ्नसिद्धतैलेनमात्रया ॥ निरूढश्चविरिक्तश्चसम्यक्चानुवासितः। लघ्वन्नप्रतिसम्भुक्तः सर्पिरेवाचरेत्पुनः ॥

अर्थ—वातज ग्रहणी रोगमें आमकी परिपक्वता जान पड़े तो दीपनीय औषधियों से सिद्ध कियाहुआ घृत थोड़ा थोड़ा देवे। इससे अग्नि के कुछ बढने पर जब विष्ठा, मूत्र और अधोवायुकी विबद्धता दिखाई देवे तो दो तीन दिनतक स्नेहन कर्म और अभ्यक्त करने के पश्चात् निरूहण वस्ति देवे। इस तरह दोषों के शिथिल होनेपर तथा वादीके शान्त होनेपर क्षार युक्त अंडीका तेल वा विरेचन औषधियों द्वारा सिद्ध कियाहुआ घृत वा तेल देकर विरेचन करावे। इसतरह संशोधन औषधों के प्रयोग से पक्वाशयके रूक्ष होनेपर विष्टा की विबन्धतामें दीपनीय औषधों का क्वाथ या वातनाशक औषधियों से सिद्धकियेहुए तेल द्वारा अनुवासनवस्ति देवे। इसतरह अच्छी प्रकार से निरूहण, विरेचन और अनुवासन होने के पश्चात् लघु अन्न का भोजन कराके नीचे लिखे हुए घृतों का सेवन करावे।

द्विपंचमूलादि घृत।

द्वेपञ्चमूलेसरलंदेवदारुसनागरम्। पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकंहस्तिपिप्पलीम् ॥ शणबीजंयवान्कोलान्कुलत्थान्सुरभींस्तथा। पाचयेदारनालेनदध्नासौवीरकेणवा ॥ चतुर्भागावशेषेणपचेत्तेनघृताढकम्। स्वर्जिकायावशूकाख्यौक्षारौ दत्वाचयुक्तितः ॥ सैन्धवोद्भिदसामुद्रविडानांरोमकस्यच। ससौवर्चलपाक्यानांभागान्द्विपलिकान्पृथक् ॥ विनीय चूर्णितानसिद्धात्ततोद्वेद्वेपलेपिबेत्। करोत्यग्निंबलंवर्ण्यंवातघ्नंभुक्तपाचनम् ॥

अर्थ—दोनों पंचमूल, सरला, देवदारु, सोंठ, पीपल, पीपलामूल, चीता; गजपीपल सन के बीज, जौ, बेर, कुलथी और सुरभी इन सबको समान भाग लेकर चौगुनी, कांजी, दही वा सौवीरके साथ पकावै, जब चतुर्थांश शेष रहजाय तब उतारकर छान ले, फिर उसमें सज्जी, जवाखार, सेंधा, उद्भिद, सामुद्र, विड, रोमक, सौवर्चल और पाक्य ये सात प्रकारके नमक सबको दो२ पल डाले और एक आढक घृत डालकर पकावै। यह घृत प्रति दिन दोपल सेवन करनेसे अग्नि, वल, और वर्णको बढाताहै, बादी को मारता, और भोजनको पचाताहै, ।

त्र्यूषणादि घृत ।

त्र्यूषणत्रिफलाकल्केबिल्वमात्रेगुडात्पले। सर्पिषोऽष्टपलंपक्त्वामात्रांमन्दानिलःपिबेत् ॥

अर्थ—त्रिकुटा और त्रिफला का कल्क एकएक पल, गुड एकपल, घी आठ पल, और चौगुना जल डालकर पानकरै और मात्राके अनुसार सेवन करै तौ मन्दाग्नि दूर होजाती है ॥

पंचमूलादि घृत और चूर्ण।

पञ्चमूलाभयाव्योषविडङ्गशटिभिर्घृतम्। शुक्तेनमातुलुङ्गस्यस्वरसेनार्द्रकस्यच॥ शुष्कमूलककोलाम्बुचुक्रिकादाडिमस्यच। तक्रमस्तुसुरामण्डसौवीरकतुषोदकैः ॥ काञ्जिकेनचतत्पक्वमग्निदीप्तिकरंपरम् । शूलगुल्मोदरश्वासकासानिलकफापहम्॥ सबीजपूरकरसंसिद्धंवापाययेद्घृतम् । सिद्धमभ्यञ्जनार्थञ्चतैलमेतैःप्रयोजयेत्॥ एतेषामौषधानांवापिबेच्चूर्णसुखाम्बुना। वातेश्लेष्मावृतेसामेकफेवावायुनोद्धते ॥

अर्थ—पंचमूल, हरड, त्रिकुटा, वायविडंग, कचूर, इन सबसे चौगुना घी, शुक्त, बिजौरेका रस, अदरखका रस, पृथक् २ घी के समान लेवै। सूखी मूली, बेर, नेत्रवाला, चूका, अनार इनका क्वाथ घी के समान, तक्र घी के समान तथा मस्तु, सुरामंड, सौवीरक और तुषोदक ये सब घृत के समान लेकर पकावैं। यह घृत अत्यन्त अग्नि को बढानेवाला है तथा शूल, गुल्म उदररोग, श्वास, खांसी और वातकफ को दूर करताहै। अथवा सम्पूर्ण द्रव्यों का कल्क और केवल बिजौरे के रसमें सिद्ध कियाहुआ घृत भी ऊपर कहे हुए गुण करताहै। उक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ तेल मालिशमें लगावै। अथवा इन्हीं औषधों का चूर्ण गरम जलके साथ पीवै। इससे कफावृत वात, आमयुक्त कफ वा वात कफ दूर होजाते हैं ॥

मलपरीक्षा ॥

मज्जत्यामाद्गुरुत्वाद्विट्पक्वातूत्प्लवतेजले। विनातिद्रवसंघातशैत्यश्लेष्मप्रदूषणात् ॥ परीक्ष्यैवंपुरासामंनिरामंवासदोषिणाम्। विधिनोपाचरेत्सम्यक्पाचनेनेतरेणवा॥

अर्थ—कच्चामल भारी होने के कारण जल में डूबजाता है, पक्व विष्टा जलके ऊपर तैरता रहता है, परन्तु पकाहुआ मलभी अत्यन्त पतला, गाढा, अत्यन्त शीतलता

युक्त वा श्लेष्मासे दूषित होने के कारण डूबजाताहै । इसतरह रोगियों की आम सहित और आमरहित मलकी परीक्षाकरै, तथा विधिपूर्वक पाचन और दीपन औषधियों द्वारा चिकित्सा करै ॥

चित्रकादि चूर्ण ॥

चित्रकंपिप्पलीमूलंद्वौक्षारौलवणानिच। व्योपंहिंग्वजमोदश्चचव्यंचैकत्रचूर्णयेत्॥ गुडिकामातुलुङ्गस्यदाडिमस्यरसेनवा । कृताविपाचयन्त्यामन्दीपयन्त्याशुचानलम् ॥

अर्थ—चीता, पीपलामूल, दोनों क्षार, पांचों नमक, त्रिकुटा, हींग, अजमोद और चव्य इन सबको बिजौरे वा अनार के रस में खरल करके गोली बनालेवै । ये गोलियां आमको पचाती हैं और अग्नि को प्रदीप्त करती हैं ।

अन्यप्रयोग ।

नागरातिविषामुस्तकाथःस्यादामपाचनः मुस्तान्तकल्कः पथ्यावानागरंचोष्णवारिणा ॥ देवदारुवचामुस्तनागरातिविषाभयाः । वारुण्यामासुतास्तोयेकोष्णे वालवणंपिवेत् ॥

अर्थ—सोंठ, अतीस और मोथेकाक्वाथ आमको पचाताहै । अथवा इन्हीं तीनोंद्रव्यों का चूर्ण, अथवा हरड अथवा सोंठ को गरम जलके साथ फांकने से आम पचजाता है । अथवा देवदारु, वच, मोथा, सोंठ अतीस और हरड इनको वारुणी मद में डाले जब इनका सार उसमें आजाय तब छानकर पीले अथवा इन्हीं द्रव्यों के चूर्ण को सेंधानमक मिलाकर गुनगुने जलके साथ पीवैतो आम पचजाता है ॥

पिवेत्सपरिकर्त्तामेमलेवादाडिमाम्बुना । विडनलवणंपिष्ट्वाविल्वंचित्रकनागरम् ॥ सामेवासकफेवातेकोष्ठशूलकरेपिवेत् । कलिङ्गहिंग्वातिविषावचासौवर्चलाभयाः छर्द्यर्शोग्रन्थिशूलेषुपिवेदुष्णेनवारिणा । पथ्यासौवर्चलाजाजीचूर्णमरिचसंयुतम्। अभयांपिप्पलीमूलंवचांकटुकरोहिणीम् पाठांवत्सकबीजानिचित्रकंविश्वभेषजम् पिवेन्निष्क्काथ्यचूर्णानिकृत्वाकोष्णेनवारिणा । पित्तश्लेष्मावृतेवातेग्रहण्यामरुचौतथा ।

अर्थ—जो आम और ऐंठाहो तौ बेलगिरी, चीता और सोंठ तथा विडनमक डालकर अनार के क्वाथ के साथ पीवै । कफयुक्त आम और वातज कोष्ठशूलमें इन्द्रजौ, हींग, अतीस, वच, इनके चूर्ण को गरम जलके साथ पीवै । अथवा वमन, अर्शरोग, ग्रन्थिशूलमें हरड, संचरनमक जीरा और कालीमिरच का चूर्ण गरम जल के साथ पीवै । अथवा हरड, पीपलामूल, वच कुटकी, पाठा, इन्द्रजौ, चीता और सोंठ इनका क्वाथ करके पीवै, अथवा इनका चूर्ण गरम जलके साथ फांकै तौ कफ, पित्त और वातकी ग्रहणी और अरुचि दूर होजाती हैं

सामेसातिविषांव्योपलवणक्षारहिंगुवत् निःक्काथ्यपाचयेच्चूर्णकृत्वावाकोष्णवारिणा । पिप्पलीनागरंपाठांशारिवांबृह

तीद्वयम् ॥ चित्रकंकौटजबीजंलवणान्यथपश्चच। तच्चूर्णसयवक्षारंदध्युष्णाम्बुसुरादिभिः ॥ पिवेदग्निविवृद्ध्यर्थंकोष्ठवातहरंनरः ।

अर्थ—आमयुक्त पित्त श्लेष्मावृत ग्रहणी में अतीस त्रिकुटा, नमक, क्षार, और हींग इनका क्वाथ करके वा चूर्ण बनाकर गरम जलके साथ पीवे । अथवा पीपल सोंठ, पाठा शालिवा, दोनोंकटेरी, चीता, कडा, के वीज पांचों नमक और जवाखार इनका चूर्ण बनाकर दही, गरम जल वा सुराके साथ सेवन करे तो अग्निकी वृद्धि होती है और कोष्ठगतवायु दूर होजाती है ।

मरिचादि चूर्ण ।

मरिचःकुञ्चिकाम्वष्ठावृक्षाम्लकुडवाः पृथक् ॥ पलानिदशचाम्लस्यवेतसस्य पलार्द्धिकम् । सौवर्चलंविडंपाक्यंयव क्षारःससैन्धवः ॥ शटीपुष्करमूलानिहिंगुहिंगुशिवाटिका । तत्सर्वमेकतःसूक्ष्मं चूर्णंकृत्वाप्रयोजयेत् ॥ हितंवाताभिभूतायांग्रहण्यामरुचौतथा ॥

अर्थ—कालीमिरच, कालाजीरा, पाढ, वृक्षाम्ल इनको एक २ कुडव ले । अमलबेत दसपल, तथा संचलनमक, विडनमक पाक्यनमक, जवाखार, सेंधानमक, कचूर, पुहकरमूल,हींग और हिंगुपत्री ये सब आधे आधे पल लेकर चूर्ण बना लेवै । यह चूर्ण वाताभिभूत ग्रहणी और अरुचि में हितहै ।

चतुर्णामस्थमम्लानांत्र्यूषणाचपलत्रयम् ॥ लवणानांचचत्वारिशर्करायाःपलाष्टकम् ॥ संचूर्ण्यशाकसूपान्नरागादिष्ववचारयेत् ॥ कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डवामयगुल्मनुत् ।

अर्थ—चारों प्रकारकी खटाई एक प्रस्थ त्रिकुटा तीनपल, चार प्रकारके लवण चार पल, शर्करा आठपल इनका चूर्ण बनाकर साग, दाल, तथा रागादि में डालकर सेवन करता रहै तो खांसी, अजीर्ण, अरुचि,श्वास, पाण्डुरोग और गुल्म दूर होजातेहैं ।

यवागू विधि ।

चव्यत्वक्पिप्पलीमूलधातकीव्योषचित्रकम् ॥ कपित्थंविल्वमम्बष्ठांशाल्मलंहस्तिपिप्पलीम् ॥ शिलोद्भेदंतथाजाजींपिष्ट्वावदरभागिकम् । परिभर्ज्यघृतेदध्ना यवागूंसाधयेद्भिषक् ॥ रसैःकपित्थचुक्रीकावृक्षाम्लैर्दाडिमस्यच । सर्वातिसारमन्दाग्निगुल्मार्शःप्लीहनाशिनी ॥

अर्थ—चव्य, दालचीनी, पीपलामूल, धाय के फूल, त्रिकुटा, चीता, कैथ, वेलगिरी, पाठा, सेमर, गजपीपल, शिलोद्भेद, कालाजीरा ये सब एक२ तोले लेकर पीसडाले । फिर दही, वा कैथ, वा चूका, वा वृक्षाम्ल, वा अनारके रस के साथ यवागू तयार कर के घृत में छोंक कर सेवन करै तौ सर्वातिसार, मन्दाग्नि, गुल्म, अर्श और प्लीहा दूर होजाते हैं ।

भोजनादि विधि ।

पञ्चकोलकयूपश्चमूलकानांचसोषणः । स्निग्धोदाडिमतक्राम्लोजाङ्गलःसंस्कृतो रसः ॥ क्रव्यादस्वरसःशस्तोभोजनार्थे-

सदीपनः। तक्रारनालमद्यानिपानार्थेरि-
ष्टएवच ॥

अर्थ....पंचकोल के साथ सिद्ध किया हुआ मूंग का यूप, सूखी मूली का यूप, अनार वा तक्रकी खटाई डालकर सिद्ध किया हुआ जांगल पशुओं का मांसरस, अथवा मांसाहारीजीवों का मांसरस, भोजन में हित है और मठा, कांजी वा मद्य पीने में हितहै

तक्रके गुण।

तक्रन्तुग्रहणीदोषेदीपनग्राहिलाघवात्। श्रेष्ठंमधुरपाकित्वान्नचपित्तंप्रकोपयेत् ॥ कषायोष्णविकासित्वाद्रौक्ष्याच्चैवकफेमतम्। वातेस्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहितत् ॥ तस्मात्तक्रप्रयोगायेजठराणांतथार्शसाम्। विहिताग्रहणीदोषेसर्वशस्तान्प्रयोजयेत् ॥

अर्थ—दीपन; संग्राही और हलका होनें के कारण तक्र गृहणी दोषों में हित है। मधुर पाकी होने से पित्त को कुपित नहीं करता है। यह कषाय, उष्ण, विकासी और रूक्ष होने से कफ में हितकारक है। यह स्वादु, अम्ल और सान्द्र है अतएव वात में हितहै। ताजा मठा अविदाही होताहै। इसी कारण से तक्रके जोजो प्रयोग जठर रोग और अर्शरोग में कहे गयेहैं येभी ग्रहणी दोषमें प्रशस्तहैं।

तक्रारिष्ट।

यवान्यामलकेपथ्यामरिचंत्रिपलांशिकम्। लवणानिपलांशानिपञ्चचैकत्रचूर्णयेत्॥ तक्रंकंसासुतंजातंतक्रारिष्टंपिबेन्नरः। दीपनंशोथगुल्मार्शःक्रिमिमेदोदरापहम् ॥

अर्थ....अजवायन, आंवला, हरड, कालीमिरच,प्रत्येक तीन तीन पल; पांचों नमक एक एक पल इन सबका चूर्ण करले. फिर इनको सोलहसेर मठे में भरकर तीन चार दिन तक रक्खा रहने देवैं। इस तक्रारिष्ट का पानकरने से शोथ, गुल्म, अर्श, क्रिमिरोग, मेदरोग, उदररोग, दूर होजाते हैं और यह दीपनभी है।

स्वस्थानगतमुत्क्लिष्टमग्निनिर्वापकंभिषक् पित्तंज्ञात्वाविरेकेणनिर्हरेद्वमनेनवा ॥ अविदाहिभिरन्नैश्चलघुभिस्तिक्तसंयुतैः ॥ जाङ्गलानांरसैर्यूषैर्मुद्गादीनांखडैरपि दाडिमाम्लैःससर्पिष्कैर्दीपनग्राहिसंयुतैः। तस्याग्निंदीपयेच्चूर्णैःसर्पिर्भिर्वासतिक्तकैः

अर्थ....अग्निका बुझानेवाला पित्त जब अपने स्थान में हो तब विरेचन देवै और वह उत्क्लिष्ट हो तब वमन द्वारा निकालडाले।

इस रोग में अविदाही, हलका, तिक्त औषधियों से संस्कृत भोजन, जांगलमांसरस मूंगकायूप, अनारदाने की खटाई, घृत तथा दीपन और संग्राही औषधियों से संस्कार किया हुआ खडयूप तथा दीपनीय चूर्ण और तिक्तक घृत के प्रयोगों से जठराग्नि को उत्तेजित करना उचित है।

चन्दनादिघृत ॥

चन्दनंपद्मकोशीरंपाठांमूर्वांकुटन्नटम्। षड्ग्रन्थाशारिवास्फोतासप्तपर्णाटरूपकान् ॥ पटोलोदुम्बराश्वत्थवटप्लक्षकपीतनान्। कटुकारोहिणींमुस्तंनिम्बञ्चद्वि-

लांशिकम् ॥ द्रोणेऽपांसाधयेत्पादशेषे॰ प्रस्थंघृतात्पचेत्किराततिक्तेन्द्रयवत्रवीरा मागधिकोत्पलैः ॥ कल्कैरक्षसमैःपेयंत- त्पित्तग्रहणीगदे । तिक्तकंयद्घृतंचोक्तं- कौष्ठिकेतच्चदापयेत् ॥

अर्थ—चन्दन, पद्माख, खसीर, पाठा, मरो डफली, केवटीमोथा, वच, सारिवा, आस्फोता सप्तपर्ण, आमडा, परवल गूलर, पीपल, वड, पाकर, अडूसा; कुटकी, मोथा, नीम, इनमें से प्रत्येक द्रव्य दो २ पल लेकर एकद्रोण जल मे सिद्ध करे जव चौथाई शेषरहजाय तव उतारकर छानले और उसमें एकप्रस्थ घी डालकर पकावै और इसमें साथ ही चिरायता, इन्द्रजौ, शालिपर्णी, पीपल, और नीलकमल इन सवका एक २ तोले कल्क डाल देवै । इस घृतके पान करने से पित्तग्रहणी दूर होजाती है तथा कुष्ठरोग में जो तिक्तक घृत वर्णन किया गया है यह भी हित है ॥

नागराद्यचूर्ण ॥

नागरातिविषेमुस्तंधातकींसरसाञ्जनम् । वत्सकत्वक्फलंबिल्वंपाठांकटुकरोहिणी- म् । पिवेत्समांशंतच्चूर्णंसक्षौद्रंतण्डुलाम्बुना ॥ पैत्तिकेग्रहणीदोषेरक्तंयच्चोपवेश्यते ॥ अर्शांसिचगुदेशूलंजयेच्चैवप्रवाहिकाम् । नागराद्यमिदंचूर्णंकृष्णात्रेयेन पूजितम् ॥

अर्थ—सोंठ, अतीस, मोथा, धायकेफूल, रसौत, कुडाकीछाल, इन्द्रजौ, बेलगिरी, पाठा, कुटकी इनसवको समानभागलेकरचूर्ण वनावै इस चूर्णको शहत और तंडुलजलके साथ पीवै इससे पित्तज ग्रहणीदोष, रक्तरोग, अर्श गुदशूल और प्रवाहिका दूर होजाती है। इस नागराद्य चूर्ण की कृष्णात्रेयने वडी प्रशंसाकी है ॥

भूनिंबाद्यचूर्ण ॥

भूनिम्बकटुकव्योषमुस्तमिन्द्रयवान्समान् । द्वौचित्रकाद्दरसकत्वग्भागान्षोडश चूर्णयेत् ॥ गुडशीताम्बुपीतंतद्ग्रहणीदोषगुल्मनुत् । कामलाज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारनुत् ॥

अर्थ—चिरायता, कुटकी, त्रिकुटा, मोथा, इन्द्रजौ, ये सव समान भाग लेवै । चीता दोभाग, कुडाकी छाल सोलहभाग, इनसव का चूर्ण वनाकर गुड और ठंडे जलके साथ पानकरै तो ग्रहणी दोष, गुल्म, कामला, ज्वर, पांडुरोग, मेह, अरुचि और अतिसार दूर होजाता है ॥

वचाद्यचूर्ण ॥

वचामतिविषांपाठांसप्तपर्णंरसाञ्जनम् । श्योनाकोदीच्यकट्वङ्गवत्सकत्वग्दुरालभाः ॥ दार्वींपर्पटकंमूर्वांयवानींमधुशिग्रुकम् । पटोलपत्रंसिद्धार्थान्यूथिकाजातिपल्लवान् ॥ जाम्वाम्रविल्वमध्यानि निम्वपत्रफलानिच । तद्रोगशममन्विच्छन्भूनिम्वाद्येनयोजयेत् ॥

अर्थ—वच, अतीस, पाठा, सप्तपर्ण, रसौत, नेत्रवाला, श्योनाक, नेत्रवाला, सोनापाठा, कुडाकीछाल, जवासा, दारुहलदी, पितपापडा, मरोडफली, अजवायन, सहजना, परवलकेपत्ते, सफेद

विपाचयेत्।द्रोणशेषेतुतच्छीतंमध्वर्धाढक संयुतम् ॥ एलामृणालागुरुभिश्चन्दनेन चरूपिते ॥ कुम्भेमासस्थितेजातमासव न्तंमयोजयेत् ॥ ग्रहणींदीपयत्येषबृंहणः कफपित्तजित् । शोफंकुष्टंकिलासञ्चमेहांश्चमणाशयेत्॥

अर्थ—महुआके फूल एक द्रोण, वायविडंग आधा द्रोण,चीता चौथाई द्रोण भिलाया एकआढक,मजीठ आधापल इन सबको तीन द्रोण जलमें पकावै जब एक द्रोण शेष रहजाय तब उतारकर छानले उसमें ठंडा होने पर आधा आढक मधु मिलादेवै। फिर इसको एक घीकी चिकनी हांडीमें भर देवै जिसके भीतर इलायची, कमलनाल अगर और रक्तचन्दनका कल्क पुत रहा हो। इस घडेको एक महीने तक बन्द रहने दे। जब यह उठ आवै अर्थात् आसव बनजाय तब इसका प्रयोग करै । यह आसव ग्रहणी को दीप्त करने वाला है; बृंहणकर्ता, कफपित्त नाशक, शोष, कोद किलास और प्रमेह को दूर करता है ॥

दूसरा मध्वासव ।

मधूकपुष्पस्वरसंशृतमर्द्धक्षयीकृतम् । क्षौद्रपादयुतंशीतंपूर्ववत्सन्निधापयेत्।तं पिबनग्रहणीदोषानजयेत्सर्वान्हिताशनः तद्वद्द्राक्षेक्षुखर्जूरस्वरसानाशुतान्पिबेत्॥

अर्थ—महुआके फूलों के रसको औटा कर आधा रहने पर उतार ले और ठंडा होने पर चौथाई शहत डालकर पाहिले की एक मास तक धरा रहने देवै। यदि हिताहार सेवी मनुष्य इसका पान करै तो ग्रहणी रोग से मुक्त होजाता है।

इसीतरह दाख, ईख का रस और खजूर का आसव पान करै।

दुरालभासव ।

मस्थौदुरालभायाद्वौमस्थमामलकस्यच॥ शुण्ठीचित्रकदन्त्योर्द्वेमत्यग्रंचाभयाशतम् चतुर्द्रोणेऽम्भसःपक्त्वासार्द्धद्रोणावशेषितम् । सगुडाद्विशतंपूतंमधुनःकुडवायुतम् तद्वत्प्रियंगोःपिप्पल्याःविडंगानांचचूर्णितैः । कुडवैर्घृतकुम्भस्थंपक्षाज्जातंततःपिवेत् ॥ ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकुष्ठवीसर्पमेहनुत्।स्वरवर्णकरश्चैषगरपित्तकफापहः

अर्थ—दो प्रस्थ जवासा, दो प्रस्थ आंवला चीता और दंती दो दो पल, गुठली निकाली हुई सौ हरड, इन सबको चार द्रोण जलमें पकावै, जब आधा शेष रहजाय तब छानकर ठंडा होनेपर दोसौपल गुड, शहत एक कुडव, प्रियंगु, एककुडव, पीपल एक कुडव, वायविडंग एक कुडव, इन सबको उसमें मिलाकर घी की चिकनी हांडी में भरकर रखदे एक पखवारे पीछे इसका पान करै तो ग्रहणी दोष, पाण्डुरोग, अर्श, कुष्ठ, विसर्प, प्रमेह, विषदोष, पित्त और कफदूर होजातेहैं तथा स्वर और वर्णबढतेहैं।

मूलासव ।

हरिद्रापञ्चमूलेद्वेवीरकर्षभजीवकम् ॥ एपांपञ्चपलानभागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसःपचेत् ॥ द्रोणशेषरसेपूतेगुडस्यद्विशतंभिषक् चूर्णितानकुडवार्द्धांशान्प्रक्षिपेच्चसमाक्षि

कान् ॥ प्रियंगुमुस्तमञ्जिष्ठाविंडगमधुक प्लवान् । रोध्रंशावरकंचैवमासार्द्धस्था पयेत्ततः॥ एषमूलासवःसिद्धोदीपनोर-क्तपित्तजित् ॥ आनाहकफहृद्रोगपाण्डु रोगांगसादनुत् ॥

अर्थ—हलदी, दोनों पंचमूल, वीरक, ऋषभक, जीवक, प्रत्येक पांच पांच पल लेकर चार द्रोण जलमें पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले और ठंडा होने पर दो सौ पल गुड तथा एक कुडव शहत डालदे और प्रियंगु, मोथा, मजीठ, बायवि डंग, मुलहटी, केवटीमोथा, पठानीलोध, ये सब आधे आधे कुडव पीसकर डालदे एक महीने पश्चात् इसका सेवन करै यह मूला-सव अनुभूत और रक्तपित्त को जीतने वाला है, इससे आनाह, कफ, हृद्रोग, पांडुरोग और अंगसाद दूर होजातेहैं ।

पिण्डासव ।

भारिणकंपिप्पलींपिष्ट्वागुडंमध्यंविभीतका त् ।उदकप्रस्थसंयुक्तंयवपल्लेनिधापयेत्॥ तस्मात्सुजातात्पलंसलिलांज्जलिसयुतम् पिवेत्पिण्डासवोह्यपरोगानीकविनाशनः स्वस्थोप्येनंपिबेन्मासंनरःसिद्धंरसायनम् इत्येह्यपामनुर्पाचरोगाणांयेप्रकीर्तिताः॥

अर्थ—एक प्रस्थ पीपल, एक प्रस्थगुड, एक प्रस्थ बहेडे का गूदा, एक प्रस्थ जल इन सबको घीकी चिकनी हांडीमें भर कर जौके ढेरमें गाड दवै । एक महीने पीछे जब यह तयार होजाय तब इस मेंसे एक पल आध सेर जलमें मिलाकर पान करै । यहपिण्डासव रोग समूहों का नाश करनेवालाहै । यदि इस सिद्ध रसायनका प्रयोग स्वस्थ पुरुषभी एक महीने तक करै तो उसके रोग होने ही नहीं पाते हैं ।

मध्वरिष्ट

नवेपिप्पलीमध्वाक्तेकलशेऽगुरुधूपिते ॥ माध्वाढकंजलसमंचूर्णानीमानिदापयेत्॥ कुडवार्द्धंविडंगानांपिप्पल्याःकुडवंतथा॥ चतुर्थकांशास्त्वक्क्षीर्याःकेशरंमरिचानि च॥त्वगेलापत्रकशटीक्रमुकातिविषातथा हरेण्वेलुकतेजोह्वापिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ कार्षिकास्तान्स्थितंमासमतऊर्ध्वंप्रयोजयेत् मन्दंसन्दीपयत्यग्निंकरोतिविषमंसमम्॥ हृत्पाण्डुग्रहणीरोगकुष्ठार्शःश्वयथुज्वरान् वातश्लेष्मामयांश्चान्यान्मध्वरिष्टोव्यपोहति

अर्थ—एक नवीन मिटी के घडे में अग रका धुआं देकर पिसीहुई पीपल शहत मेंमिला करउसके भीतर लेप करदे उस घडे में एक आढक जल और एक आढक शहत भर कर नीचे लिखे हुए द्रव्यों का चूर्ण भरदेवै यथा बायविडंग आधाकुडव, पीपल एक कुडव, वंशलोचन एकपल, तथा केसर, काली मिरच दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात कचूर, सुपारी, अतीस, हरेणु, एलुआ चव्य, पपिलामूल, चीता, इनको एक एक कर्ष डालकर एक महीने तक धरा रहने दे पीछे इसका प्रयोग करै । यह मन्दाग्नि को संदीपन करता है विषमाग्निको समान करता है, हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी रोग, कोढ अर्श, सूजन, ज्वर, वात श्लैष्मिकरोग तथ

अन्यरोगों को भी दूर करता है ॥

पीपलामूलादियोग ॥

समूलांपिप्पलींक्षारौद्वौपञ्चलवणानिच॥ मातुलुंगाभयारास्नाशटीमरिचनागरम्। कृत्वासमांशतच्चूर्णपिबेत्प्रातः सुखाम्बुना ॥ श्लैष्मिकेग्रहणीदोषेबलवर्णाग्निवर्द्धनम् । एतैरेवौपधैःसिद्धंसर्पिःपेयंसमारुते ॥ गौल्मिकेपट्पलंप्रोक्तंभल्लातकघृतञ्चयत् ।

अर्थ—पीपलामूल, पीपल, सज्जीखार, जवाखार, पाचोंनमक, विजौरा, हरड,रास्ना कचूर, कालीमिर्च, सोंठ, इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनावे, प्रतिदिन प्रातःकाल गरमजलके साथ इसका सेवन करे तो कफ की ग्रहणी दूर होजाती है और बल, वर्ण तथा अग्नि बढती है । अथवा इन्ही औषधियों से सिद्ध किया हुआ घी वातयुक्त कफकी ग्रहणी में उत्तम होता है । गुल्म रोग के प्रकरणमें कहाहुआ पट्पल घृत और भल्लातक घृतभी इसरोग में हितहै ॥

क्षारघृत ।

स्वर्जिकाविड्कालोत्थलवणंयवशूकजम् सप्तलाकण्टकारीचाचित्रकश्चेतिदाहयेत् । सप्तकृत्वः स्रुतस्यास्यक्षारस्यद्व्याढकेनतु आढकंसर्पिषः पक्त्वापिबेदग्निविवर्द्धनम्

अर्थ—सज्जी, विड्नमक, काचनमक, जवाखार, सातला, कटेरी और चीता, इन सबमें से पिछले तीनों की भस्म कर लेवै। इन को दो आढक जलमें घोलकर सात वार छानले पीछे इनमें एक आढक घृत डालकर पकावे, यह घृत अग्निको बढाने वाला होता है ॥

पिप्पलीमूलादिक्षार ॥

समूलांपिप्पलींपाठांचव्येन्द्रयवनागरम्। चित्रकातिविषेहिंगुश्वदंष्ट्राकटुरोहिणीम्। वचांचकार्षिकंपञ्चलवणानांपलानिच॥ दध्नःप्रस्थद्वयेतैलसर्पिषोःकुडवद्वये। चूर्णीकृतानिनिष्क्वाथ्यशनैरन्तर्गतेरसे ॥ अन्तर्धूमंततोदग्ध्वाचूर्णकृत्वाघृतास्लुतम् । पिबेत्पाणितलंतस्मिन्जीर्णेस्यान्मधुराशनः ॥ वातश्लेष्मामयान्सर्वान्हन्याद्विषगरांश्चसः ॥

अर्थ—पीपलामूल, पीपल, पाठ, चव्य, इन्द्रजौ, सोंठ, चीता, अतीस, हींग, गोखरू, कुटकी, और वच इनमें से प्रत्येक द्रव्य एक एक कर्ष लेवै । पांचों नमक, पांचपल, दही दो प्रस्थ, घी तेल दो कुडव इनको जौ कुट करके क्वाथ करै और क्वाथ का जल उसी मेंलीन होजाय । फिर इसको एक हांडी में बन्द करके ऐसी रीति जलावे कि धूंआं बाहर न निकलने पावै ॥. इसमें से तोले भर चूर्ण घृतमें सानकर सेवन करे ॥ औषध के पचने पर मधुर भोजन करै ॥ यह यात श्लैष्मिक रोग और सम्पूर्ण प्रकार के विषरोगों को करताहै ॥

भल्लातकादि क्षार।

भल्लातकंत्रिकटुकंत्रिफलालवणात्रिकम् ॥ अन्तर्धूमंद्विपलिकंगोपुरीपाग्निनादहेत् सक्षारः सर्पिषापीतोभोज्योवाप्यवचूर्णितः ॥ हृत्पाण्डुग्रहणीदोषगुल्मोदावर्त शोपनुत् ॥

अर्थ—मिलाया, त्रिकुटा, त्रिफला, लवण त्रिक (सेंधा, संचर और विड) प्रत्येकको दो पल लेकर गौके गोबर की अग्नि में अन्तर्धूम रीतिसे जलावे ॥ इस क्षार को घृत में मिलाकर वा भोजन के साथ सेवन करै तो हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी दोष, गुल्म, उदावर्त्त और शोष दूर होजाते हैं ।

दुरालभादि क्षार ॥

दुरालभांकरञ्जौद्वौसप्तपर्णसवत्सकम् ॥ पङ्ग्रन्थांमदनंमूर्वापाठामारग्वधंतथा ॥ गोमूत्रेणसमांशानिकृत्वाचूर्णानिदाहये त् ॥ दग्ध्वाचतंपिवेत्क्षारंगृहणीवलव र्द्धनम् ॥

अर्थ—जवासा, दोनोंकंजा, सप्तपर्ण, इन्द्रजौ, वच, मेनफल, मरोडफली, पाठा और अमलतास इनको समान भाग लेकर खरल करै और फिर अन्तर्धूम रीति से जलाकर गोमूत्रके साथ इस क्षार को सेवन करै तौ ग्रहणी के बलकी वृद्धि होती है ॥

भूनिम्बादिक्षार ॥

भूनिम्बंरोहिणींतिक्तांपटोलंनिम्बपर्पट म् ॥ दहेन्माहिषमूत्रेणक्षारएषोऽग्निव र्द्धनः ॥

अर्थ—चिरायता, कुटकी, पर्वल, नीम और पित्तपापड़ा इनको अन्तर्धूम रीतिसे जलाकर भैंसके मूत्रके साथ सेवन करै तौ अग्नि बढती है ॥

हारिद्रादिक्षार ॥

द्वेहरिद्रेवचाकुष्ठंचित्रकः कटुरोहिणी ॥ मुस्तंचवस्तमूत्रेणासिद्धःक्षारोऽग्निवर्द्धनः

अर्थ—दोनों हल्दी, वच, कूट, चीता, कुटकी, मोथा, इनको अन्तर्धूम रीतिसे दग्ध करके बकरे के मूत्र के साथ सेवन करै तो अग्नि बढती है ॥

क्षार वटिका ॥

चतुष्पलंसुधाकाण्डंत्रिपलंलवणत्रयात् ॥ वार्ताकीकुडवंचार्कादष्टौद्वेचित्रकात्पले । दग्धानिवार्ताकुरसेगुलिकाभोजनोत्तराः ॥ भुक्तंभुक्तंपचत्याशुकासश्वासार्शसांहि- ताः । विसूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगशम नाश्रताः ।

अर्थ....सेंहुड की टहनी चार पल, तीनों नमक तीन पल, वार्ताक एक कुड़व, आक की जड़ आठ पल, चीता दो पल, इनको अन्तर्धूम रीतिसे दग्ध करके वार्ताकु रस में गोलियां बनावे । भोजन करने से पीछे इन- का सेवन करै तो कियाहुआ भोजन शीघ्र पचजाताहै तथा खांसी, श्वास, अर्श विसूचि- का, प्रतिश्याय और हृद्रोग शान्त होजातेहैं।

वत्सकादि क्षार ।

वत्सकातिविषेपाठांदुःस्पर्शहिंगुचित्रकम् चूर्णीकृत्यपलाशानांक्षारमूत्रस्रुतेपचेत् ॥ आयसेभाजनेसान्द्रात्तस्मात्कोलंसुखा म्बुना । मद्यैर्वाग्रहणीदोषेशोथार्शःपाण्डु मानपिवेत् ॥

अर्थ—कुडाकी छाल, अतीस, पाटा, जवासा, हींग और चीता इनका चूर्ण करके गोमूत्र में छाने हुए ढाक के क्षार में लोहे की कढाई में पकावे गाढा होनेपर उतार ले । इस में से एक तोले भर गरम जल वा

हितम् । परीक्ष्यामंशरीरस्यदीपनंस्नेहसं युतम् ॥ दीपनंबहुपित्तस्यतिक्तंमधुरसंयु तम् । बहुवातस्यसस्नेहलवणाम्लयुतंहि तम् ॥ सन्धुक्षतियथावन्हिरेपांविधि वदिन्धनैः ॥

अर्थ—ग्रहणीरोगियोंको जो जो आवस्थि की क्रिया कर्त्तव्य हैं अब उनको सुनो। कफाधिक्य ग्रहणी में रूक्ष, संदीपन और तिक्त औषधियों का काथ पान करके लार टपकावै। जो कफाधिक्य में रोगी कृशहो तौ कभी रूक्षण और कभी स्नेहन कर्म करे। कफ के क्षीणहोने पर स्नेहयुक्त दीपन औषधियों का प्रयोग करे। पित्ताधिक्य में मधुरयुक्त तिक्त औषधियों का प्रयोग करे। वाताधिक्य में स्नेह, लवण और अम्लसंयुक्त दीपन औषधी देवै॥ दीपनकर्त्ता औषधियों के सेवन से जठराग्नि इस तरह प्रबल होजातीहै जैसे ईंधन जलने से अग्नि॥

स्नेहमेवपरंविद्याद्दुर्बलानलदीपनम् । नालंस्नेहसीमद्धस्यशमायान्नंसुगुर्वपि ॥ मंदाग्निरापिपक्कन्तुपुरीषंयोऽतिसार्यते ॥ दीपनीयौषधैर्युक्तांघृतमात्रांपिबेत्तुसः । तयासमानःपवनः प्रसन्नोमार्गमास्थि तः ॥ अग्नेःसमीपचारित्वादाशुप्रक्रमते बलम् । काठिन्याद्यःपुरीषन्तुकृच्छ्रान्मुञ्चातिमानवः॥सघृतंलवणैर्युक्तंनरोऽन्ना-वमर्हयेत् ।

अर्थ—दुर्बल अग्निको बढानेके निमित्त घृत उत्तम होता है, जो अग्नि घृत से प्रदीप्त होतीहै उसे भारी अन्न भी नहीं बुझासकता है॥ जो मन्दाग्निव्यक्ति पक्व पुरीषको अत्यन्त निकालता है उसको उचित है कि दीपनीय औषधियोंसे सिद्ध किया हुआ घृत मात्राके अनुसार पानकरे॥ इसके पानकरने से समान वायु प्रफुल्लित होकर अपने मार्ग में स्थित रहती है तथा अग्निके पास रहने से यह बल को शीघ्र बढातीहै॥ जिस रोगी का मल कडा होकर कठिनता से निकलता है उसे नमक मिलाकर अन्नके साथ घृत देवै॥

रौक्ष्यान्मन्देपिबेत्सर्पिस्तैलंवादीपनैर्युत म् ॥ अतिस्नेहात्तुमंदेऽग्नौचूर्णारिष्टास वाहिताः । भिन्नेगुदोपलेपात्तुमलेतैलसु रासवाः॥उदावार्त्तात्तुमन्देऽग्नौनिरूहाः स्नेहबस्तयः।दोषवृद्ध्यातुमन्देऽग्नौशुद्धौ दोषविधिंचरेत् ॥ व्याधिमुक्तस्यमन्देतु सर्पिरेवाग्निदीपनम् । उपवासाच्चमन्दे ऽग्नौयवागूभिःपिबेत्घृतम्। अन्नावपीडि तेचालं दीपनंबृंहणंचतत्। दीर्घकालप्रसा दात्तुक्षतक्षीणकृशान्नरान् ॥ प्रसहानां रसैःसाम्लैःभोजयेत्पिशिताशिनाम् । लघुतीक्ष्णोष्णशोधित्वाद्दीपयन्त्याशुतेऽ नलम् ॥ मांसोपचितमांसत्वाच्चथाशुतर बृंहणाः ॥

अर्थ—रूक्षतासे अग्निके मन्द होने पर दीपनीय औषधियोंसे युक्त घृत वा तैल का पान करावै। जो अत्यन्त स्नेहपानसे मन्दाग्नि हुई हो तौ चूर्ण, अरिष्ट और आसवोंका सेवन करावै। गुदोपलेप से जो मल भिन्न होगयाहो तौ तैल, सुरा और आसव देवै

येऽश्रम् । भुक्तेऽन्नेलभतेशान्तिंजीर्णमात्रे प्रताम्यति । तृट्श्वासदाहमूर्च्छाद्याव्याधयोऽत्यग्निसम्भवाः ।

अर्थ—कफके क्षीण होनेपर पित्तवायुका अनुगमन करके अत्यन्त कुपित होजाता है और अपनी गरमीसे अग्निस्थानमें जाकर अग्निको अत्यन्त बलवान् करदेता है ॥ इसतरह रूक्ष देह में वायुसहित अग्नि बल को पाकर अन्नको पराभव कर देतीहै और अपनी तीक्ष्णताके कारण अन्नको शीघ्रही बार बार पचातीहै । इसतरह अन्न का पाक करके रक्तादिधातुओं कामी पाक कर देती है ॥ तदनन्तर रोगीको दुर्बलता, रोग तथा मृत्यु पकड लेतीहै ॥ भोजन करतेही कुछ शान्ति होजाती है और उसके पचते ही फिर ताप होने लगताहै । इस अत्यग्नि के कारण तृषा, श्वास, दाह, मूर्च्छा आदि अनेक रोग होजातेहैं ॥

अत्यग्निकी शान्ति का उपाय ।

तमत्यग्निंगुरुस्निग्धस्वादुसान्द्रहिमस्थिरैः॥ अन्नपानैर्नयेच्छांतिंदीप्तमग्निमिवाम्बुभिः॥मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपिभोज्यान्यस्योपहारयेत् । निरिन्धनोऽन्तरंलब्धायथैनंनविपादयेत् ॥

अर्थ— जैसे जलतीहुई अग्निको पानी से बुझाते हैं वैसेही गुरु, स्निग्ध, मधुर, गाढे शीतल और कठोर पदार्थों का भोजन कराके उस अत्यग्निको शान्त करै । बार बार अजीर्ण होनेपर भी भोजन कराताही रहै, क्योंकि इन्धनरूप भोजनके न मिलनेसे ऐसा न होकि अग्नि मनुष्यको मारडाले ॥

अत्यग्नि में भोजनादिक्रम ।

पायसंकृशरांस्निग्धंपैष्टिकंगुडवैकृतम् ॥ अद्यादौदकानूपपिशितानिघृतानिच । मत्स्यान्विशेषतःश्लक्ष्णान्स्थिरतोयचरांस्तथा । आविकंसघृतंमांसमद्यादत्यग्निनाशनम् । यवागूंसमधूच्छिष्टांघृतंवाक्षुधितःपिबेत् । पयोवाशर्करासर्पिजीवनीयौषधैःशृतम् । फलानांतैलयोनीनामुत्कुञ्चांश्चसशर्कराः ॥ मार्दवंजनयत्यग्नेःस्निग्धान्मांसरसांस्तथा । पिबेच्छीताम्बुनासर्पिर्मधूच्छिष्टेनवायुतम् ।

अर्थ—खीर, खिचडी, स्नेहयुक्त पैष्टिक पदार्थ, गुडके पदार्थ, औदकमांस, आनूपमांस, घृतके पदार्थ, विशेष करके बंधे हुए जलकी मछली, घृतभ्रष्ट भेडका मांस, अत्यग्नि के दूर करने के लिये सेवन करै । अत्यन्त भूख लगनेपर मोम डालकर यवागू अथवा घृतका पान करै अथवा दूधका पान करै अथवा मिश्री घोलकर पीवै । अथवा जीवनीय गणोक्त औषधियों के साथ सिद्ध किया हुआ घृत पान करै । अथवा जिनसे तेल बनताहै उन उत्कुंच फलोंको शर्करा मिलाकर भक्षण करै । स्निग्ध मांसरसोंका सेवन करनेसे अग्नि मृदु पडजातीहै । पिघला हुआ मोम घृतमें मिलाकर पीवै ऊपरसे ठंडा जल पीवै ॥

आनूपरससिद्धान्वात्रीनस्नेहांस्तैलवार्जितान् । गोधूमचूर्णमन्थंवाव्यधयित्वाशिरांपिबेत् ॥ पयसासम्मितञ्चापिपर्नांश्च

स्नेहसंयुतम् । नारीस्तन्येनसंयुक्तांपिबेदौदुम्बरींत्वचम् ॥ आभ्यांवापायसंसिद्धमद्यादत्यग्निशान्तये । श्यामात्रिवृद्विपक्वंवापयोदद्याद्विरेचनम् ॥ असकृत्पित्तशान्त्यर्थंपायसमतिभोजनम् । यत्किञ्चित्मधुरंमेध्यंश्लेष्मलंगुरुभोजनम् । तदत्यग्निहितंसर्वंभुक्त्वास्वपनंदिवा ॥ मेध्यान्यन्नानियोत्यग्नावमशान्तःसमश्नुते । नतन्निमित्तमाप्नोतिव्यसनंपुष्टिमेतिसः ॥ कफेवृद्धेजितेपित्तेमारुतेचानलःसमः । समधातोःपचत्यन्नंपुष्ट्यायुर्बलवृद्धये ॥

अर्थ—आनूप मांसरस में सिद्ध करके तेल को छोडकर तीन प्रकार के स्नेह (घी, चर्बी, मज्जा) सेवन करै । अथवा शिरा मोक्षण करके गेहूं के चूनका मन्थ देवै । दूधके साथ गेहूंके चूनका पाक कर के गाढा करले और इसमें घी, चर्बी और मज्जा डालकर सेवन करै, अथवा स्त्री के दूधके साथ गूलरकी छाल औटाकर पान करै । अथवा स्त्रीका दूध या गूलर की छाल के साथ खीर पकाकर सेवन करै इससे अत्यग्नि शान्त होजाती है । अथवा श्यामा निसोथ के साथ दुग्धपकाकर विरेचन देवै। पित्तकी शान्ति के निमित्त रोगी को खीर का भोजन करावै । मिष्ट,मेध्य, और कफकारी भोजन करके दिनमें सोना भी हितं है । जो नित्यप्रति मेध्य अन्नोंका सेवन करता रहता है उसके अत्यग्नि नहीं होने पाती किन्तु पुष्टि होती है । कफके बढने पर और वातपित्त के दूर होनेपर अग्नि समान होजाती है और वह धातुओं की समानता प्रतिपादन करके पुष्टि, आयु और बलको बढाती है ।

समशन के लक्षण ॥

पथ्यापथ्यमिहैकत्रभुक्तंसमशनंमतम् ।

अर्थ—पथ्य और अपथ्य भोजन को मिलाकर करने का नाम समशन है ॥

विषम भोजन के लक्षण ॥

विषमंबहुवाल्पंवाप्यप्राप्तातीतकालयोः॥

अर्थ—न्यून या अधिक, विना समय वा समयके बीतनेपर जो भोजन कियाजाताहै उसे विषम भोजन कहते हैं ॥

अध्यशन के लक्षण ॥

भुक्तंपूर्वान्नशेषेतुपुनरध्यशनंमतम् । त्रीण्यप्येतानिमृत्युंवाघोरान्व्याधीन्सृजन्तिवा

अर्थ—पहिले भोजनके विना पचेही जो भोजन कियाजाताहै उसे अध्यशन कहतेहैं ये तीनों प्रकारके भोजन मृत्यु अथवा घोर व्याधियों को उत्पन्न करते हैं ।

दिनके भोजनका वर्णन ॥

प्रातराशेत्वजीर्णेऽपिसायमाशोदुष्यति॥ दिवाप्रबुध्यतोऽर्केणहृदयंपुण्डरीकवत्॥ तस्मिन्विबुद्धेस्रोतांसिस्फुटत्वंयान्तिसर्वशः । व्यायामाच्चविचाराच्चविक्षिप्तत्वाच्चचेतसः॥ उत्क्लेदमपगच्छन्तिदिवातेनास्यधावतः । अक्लिन्नेष्वन्नमासिक्तमन्यत्तेपुनदुष्यति ॥ अविदग्धइवक्षीरेक्षीरमन्यद्धिमिश्रितम् ।

अर्थ—प्रातःकालके भोजनके विना पचे

भी जो सायंकालमें भोजन किया जाताहै यह कुछ अवगुण नहीं करताहै क्योंकि दिन में मनुष्यका हृदय इसतरह विकसित रहता है जैसे सूर्यकी किरणों से कमल । उसके विकसित रहने से सम्पूर्ण स्रोतभी विकसित रहते हैं, तथा दिनमें मनुष्य कुछ न कुछ परिश्रम करता रहताहै, विचारताहै और चित्त भी इधर उधर चलता रहताहै इससे धातुओं में क्लेद नहीं होने पाताहै । अक्लिन्न धातुओं में दूसरा भोजन इसतरह अवगुण नहीं करताहै जैसे अविदग्ध दूधमें अन्य मिलाया हुआ दूध विकृत नहीं होता है ।

रात्रीके भोजनका वर्णन ।

रात्रौतुहृदयेम्लानेसंवृत्तेष्वयनेषुच ॥
यान्तिकोष्ठेचविक्लेदंसंवृत्तेदेहधातवः ।
क्लिन्नेष्वन्यदपक्वेषुतेष्वासिक्तंप्रदुष्यति ॥
विदग्धेषुपयःस्वन्यत्पयस्तप्तेष्विवार्पितम्
नैशेष्वाहारजातेषुनापिपक्वेषुबुद्धिमान् ॥
तस्मादन्यत्समश्नीयात्तुंपालयिष्यन्बला
युषी ।

अर्थ—रात्रिमें हृदय मलीन रहता है, स्रोतः समूह अस्फुट रहते हैं, इसी तरह कोष्ठ भी सम्वृत रहताहै और देहकी सम्पूर्ण धातु क्लिन्न रहती हैं, क्लिन्न धातुओंमें प्रथम भोजन के परिपक्व हुए विना दूसरी वार भोजन करना ऐसा अवगुण कर्त्ता है जैसे जले हुए तप्त दूधमें और दूधका मेल विकृत होजाता है । अतएव रात्रिमें कियेहुए आहारके विना पचे पुनर्वार आहार करना निषिद्ध है । इसनियमसे भोजन करनेसे बल और आयु की वृद्धि होती है ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ॥

अन्तरग्निगुणादेहंयथाधारयतेचसः ॥
यथान्नंपच्यतेयांश्चयथाहारःकरोत्यपि ॥
येऽग्नयोयांश्चपुष्यन्तियावन्तोयेपचन्तिया
न् । रसादीनांक्रमोत्पत्तिर्मलानांतेभ्यए
वच ॥ तृष्णानामाशुकृद्धेतुर्धातुकालोद्भ
वक्रमः । रोगैकदेशकृद्धेतुरन्तरग्निर्यथा
धिकः । सन्दुष्यतियथादुष्टोयानरोगा
न्जनयत्यपि। ग्रहणीयायथावच्चग्रहणीदो
षलक्षणम् । पूर्वरूपंपृथक्चैवव्यञ्जनंस
चिकित्सितम् । चतुर्विधस्यनिर्दिष्टंतथा
चावस्थिकीक्रिया ॥ जायतेचयथात्य-
ग्निर्यच्चतस्यचिकित्सितम् । उक्तवानि
हतत्सर्वंग्रहणीदोषकेमुनिः॥

अर्थ—इस ग्रहणी दोष चिकित्सित अध्यायमें भगवान् पुनर्वसुने अन्तर अग्नि के गुण, अन्तरअग्नि द्वारा देह धारण की रीति, अन्न के परिपाक की विधि, आहार विधि, अग्निके भेद, अग्निसे पुष्ट होनेवाले द्रव्य, जिनको अग्नि पकाती है, रसादि धातुओंकी क्रमसे उत्पत्ति, धातुओं से मल की उत्पत्ति, तृषाके शीघ्रकारी हेतु, धातुका कालोद्भव क्रम, अन्तराग्नि द्वारा रोगैक देश कारक हेतु, दुष्ट अन्तराग्नि के दूषित होने की विधि, दूषित अग्निसे उत्पन्न रोगों का वर्णन, ग्रहणी शब्दका अर्थ, ग्रहणीदोष के यथावत् लक्षण, चार प्रकार की ग्रहणी के पूर्वरूप, दोष भेदसे ग्रहणी के पृथक् २ लक्षण, चिकित्सा, आवास्थिकी क्रिया, अत्यग्नि का लक्षण, और उसकी शान्ति

के उपाय ये सब इस अध्याय में वर्णन किये गये हैं ॥

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने ग्रहणी चिकित्सितं नामैकोनविंशोऽध्यायः॥१९॥

---*---

विंशोऽध्यायः ॥

अथातःपाण्डुरोगचिकित्सितंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ....तदन्तर भगवान् आत्रेय बोलेकि अब हम यहां से पाण्डुरोग चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

पाण्डुरोग के भेद ।

पाण्डुरोगाःस्मृताःपञ्चवातपित्तकफैस्त्रयः चतुर्थःसन्निपातेनपञ्चमोभक्षणात्मृदः ॥

अर्थ....पाण्डुरोग पांच प्रकारका होताहै, यथा वातिक, पैत्तिक,श्लैष्मिक, सान्निपातिक, और पांचवां मृद्भक्षणोद्भव ।

पाण्डुरोग की उत्पत्ति ।

दोषाःपित्तप्रधानास्तुयस्यकुप्यन्तिधातुपु। शैथिल्यंतस्यधातूनांगौरवञ्चोपजायते ॥ ततोवर्णबलस्नेहायेचान्येऽप्योजसोगुणाः व्रजन्तिक्षयमत्यर्थंदोषदूष्यप्रदूषणात् ॥ सोऽल्परक्तोऽल्पमेदस्कोनिःसारःशिथिलेन्द्रियः ।वैवर्ण्यंभजतेतस्यहेतुंशृणुसलक्षणम् ॥

अर्थ....जब मनुष्यके पित्तप्रधान दोष धातुओं में कुपित होजातेहैं और उन के कोपके कारण धातुओं में शिथिलता और भारापन होता, तब दोषों से दूष्योंके दूषित होने से देह के वर्ण, बल, स्नेह तथा ओजधातु के अन्यगुण अत्यन्त क्षीण होजाते है और उस रोगी के रुधिर और मेदा कम रहजाते हैं तथा शरीर निः सारऔर इन्द्रियां शिथिल पडजाती है । उसकी देह का वर्ण भी बिगड जाता है । अब उसरोग के हेतु और लक्षणों का वर्णन करते है ।

पाण्डुरोग के हेतु ।

क्षाराम्ललवणात्युष्णविरुद्धासात्म्यभोजनात् । निष्पावमाषपिण्याकतिलतैलनिषेवणात् ॥ विदग्धेऽन्नेदिवास्वप्नाद्व्यायामान्मैथुनात्तथा । प्रतिकर्मर्तुवैषम्याद्वेगानाञ्चविधारणात् ॥ कामाचिन्ताभयक्रोधशोकोपहतचेतसः । समुदीर्णंयथापित्तंहृदयेसमवस्थितम् ॥ वायुनावलिनाक्षिप्तंस्रोतोभिर्दशभिःसृतम् । प्रपन्नंकेवलंदेहंत्वङ्मांसान्तरमाश्रितम् ॥ प्रदूष्यकफवातासृक्त्वङ्मांसानिकरोतितत्। वर्णान्हरितहारिद्रान्पाण्डून्बहुविधास्त्वचि ॥ सपाण्डुरोगइत्युक्तस्तस्यालिंगंभविष्यतः ।

अर्थ....खारे, खट्टेनमकीन, अत्यन्त उष्ण, विरुद्ध और असात्म्य भोजन के करने से; चौलाई, उरद,खल, तिल और तेल के अत्यन्त सेवन से अन्नके विदग्ध होने से दिन में सौने से, अत्यन्त शारीरिक परिश्रमसे अत्यन्त मैथुन से; स्नेहनादि पंचकर्मों की विषमता से, मलमूत्रादि के उपस्थित वेगों को रोकने से; काम, चिन्ता,भय क्रोध शो-

कादि से चितका पराभव होने से, हृदयस्थ पित्त उदगीर्ण होजाता है तब वायु उसे अत्यन्त वेग से फेंकती है और यह दसों धमनियों द्वारा सम्पूर्ण शरीर में फैलकर त्वचा और मांस के बीच में स्थित होजाता है तब कफ, वात, रुधिर, त्वचा और मांस को दूषित कर देता है तथा त्वचा में हरा, हल्दीके समान पाण्डु तथा अनेक प्रकार के वर्णों को उत्पन्न करता है । इसी को पाण्डुरोग कहते हैं । अब इस रोग के पूर्वरूपका वर्णन करते है ।

पाण्डुरोग का पूर्वरूप ।

हृदयस्पन्दनंरौक्ष्यंस्वेदाभावःश्रमस्तथा ॥

अर्थ....हृदयका फड़कना, रूक्षता, पसीने का अभाव तथा श्रम ये पाण्डुरोग के पूर्व रूप हैं॥

पाण्डुरोग के साधारण लक्षण ।

सम्भूतेऽस्मिन्भवेत्सर्वःकर्णक्ष्वेडोहतानलः। दुर्बलःसदनोन्निद्रश्रमभ्रमनिपीडितः गात्रशूलज्वरश्वासगौरवारुचिमान्नरः । मृदितैरिवगात्रैश्चपीडितोन्मथितैरिव ॥ शूनाक्षिकूटोहरितःशीर्णलोमाहतप्रभः । कोपनःशिशिरद्वेषीनिद्रालुष्ठीवनोऽल्पवाक्॥पिण्डिकोद्वेष्टकट्यूरुपादरुक्सदनानिच। भवन्त्यारोहणायासैर्विशेषश्चात्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—इस रोग के उत्पन्न होने पर कर्णनाद, मन्दाग्नि, दुर्बलता, अंगसाद, गतनिद्रता, श्रम, भ्रम, गात्रशूल, ज्वर, श्वास, भारापन और अरुचि, होती है । सम्पूर्ण देह मृदित, पीडित और उन्माथित होजाता है अक्षिकूट में सूजन, हरावर्ण, रोमों में क्षीणता, कांति का नष्ट होना, स्वभावमें क्रुद्धता सरदी से द्वेष, निद्रालुता, लालास्राव, वाक्निग्रह, पिंडलियों में बांयटे तथा चढने फिरने से कमर, ऊरू और पांवों में वेदना और शिथिलता उत्पन्न होती हैं । अब इस रोग के विशेष लक्षणों को कहते हैं ॥

वातज पाण्डुरोग के लक्षण ।

आहारैरुपचारैश्चवातलैःकुपितोऽनिलः। जनयेत्कृष्णपाण्डुत्वंतथारूक्षारुणाङ्गताम् अङ्गमर्दरुजन्तोदकम्पंपार्श्वशिरोरुजम् । शकृच्छोषास्यवैरस्यशोफानाहबलक्षयान्

अर्थ—वातकर्त्ता आहार विहार के सेवन से वायु कुपित होकर शरीर के वर्ण को काला, पीला, रूक्ष या लाल कर देती हैं तथा अंगमर्द, वेदना, तोद, कम्प, पार्श्ववेदना, शिरोवेदना मलशोष, विरसता, शोष, आनाह तथा बलक्षयको उत्पन्न करती है ॥

पित्तजपाण्डुरोग के लक्षण ॥

पित्तलस्याचितंपित्तंयथोक्तैःस्वैःप्रकोपनैः दूषयित्वाशुरक्तादीन्पाण्डुरोगायकल्पते। सपीतोहरिताभोवाज्वरदाहसमन्वितः । तृष्णामूर्च्छापरीतस्तुपीतमूत्रशकृन्नरः॥ स्वेदनःशीतकामश्चनचान्नमभिनन्दति ॥ कटुकास्योनचास्योष्णमुपशेतेऽम्लमेववा उद्गारोऽम्लोविदाहश्चविदग्धेऽन्नेऽस्यजायते ॥ दौर्गन्ध्यभिन्नवर्चस्त्वंदौर्बल्यंतमएवच ।

अर्थ—पित्त प्रकृति वाले पुरुषका अपने कुपितकर्त्ता द्रव्यों के सेवन से पित्त बढ-

कर रक्तादि धातुओं को दूपित करके पाण्डुरोग को उत्पन्न करता हैं। पित्त जनित पाण्डुरोग में देहका वर्ण पीला अथवा हरा होजाता है! ज्वर, दाह, तृषा और मूर्च्छा इन से रोगी गृस्त होजाता है, उस के विष्टा और मूत्रका रंग पीला पड़जाताहै, पसीना आताहै, ठंडी वस्तु प्यारी लगती है, अन्नसे रुचि हटजातीहै, मुख में कड़वापन, उष्ण और खट्टे पदार्थका अच्छा न लगना, खट्टी डकार, विदाह, अन्न की अपरिपक्वता, दुर्गन्धि, विष्टाका फटना और दुर्बलता ये बातें होती हैं तथा आखोंके साम्हने अन्धकार छाजाताहै ॥

कफजपाण्डुरोग के लक्षण ॥

विवृद्धैःश्लेष्मलैःश्लेष्मापाण्डुरोगंसपूर्ववत् करोतिगौरवंतन्द्रांछर्दिंश्वेतावभासताम् प्रसेकंलोमहर्षञ्चसादंमूर्च्छांभ्रमंक्लमम्॥ श्वासकासौतथालस्यंअरुचिंवाक्स्वरग्रहम् ॥ शुक्लमूत्राक्षिवर्चस्त्वंकटुरूक्षोष्णकासता ॥ श्वयथुंमधुरास्यत्वमितिपाण्ड्वामयः कफात् ।

अर्थ—कफकर्त्ता द्रव्यों के सेवन से कफ कुपित होकर कफज पाण्डुरोग उत्पन्न करता है, इससे देह में भारापन, तन्द्रा,वमन, शरीरमें सफेदाईकी झलक, प्रसेक,लोमहर्षण, अंगसाद, मूर्च्छा, भ्रम, क्लम,श्वास, खांसी, आलस्य, अरुचि, वाक्ग्रह,स्वर भंग, मूत्र, नेत्र और विष्टामें सफेदाई तथा कड़वे, रूक्ष और उष्ण पदार्थोंपर मन चलना, ये सब कफज पाण्डु के लक्षणहै.

सान्निपातिक पाण्डुरोग के लक्षण ॥

सर्वान्नसेविनःसर्वेदुष्टादोपास्त्रिदोपजम् ॥ त्रिलिङ्गंसम्प्रकुर्वन्तिपाण्डुरोगंसुदुः सहम्

अर्थ—त्रिदोषकर्त्ता अन्नोंके सेवन करने से तीनों दोष कुपित होकर सान्निपातिक पाण्डुरोग उत्पन्न करतेहैं इस में तीनों दोषों के कुछ २ लक्षण पाये जाते हैं यह रोग बडा भयंकर होता है ॥

मृद्भक्षणजन्य पाण्डुरोग ॥

मृत्तिकादनशीलस्यकुप्यत्यन्यतमोमलः॥ कपायामारुतंपित्तंमूपरामधुराकफम् । कोपयेन्मृद्रसादींश्चरौक्ष्यात्भक्तंविरूक्षयेत् ॥पूरयत्यविपक्वैवस्रोतांसिनिरुणाद्धि-च॥इन्द्रियाणांबलंतेजओजोवीर्यंनिहत्यच पाण्डुरोगंकरोत्याशुबलवर्णाग्निनाशनम्॥ शूनगण्डाक्षिकूटभ्रूनाभिपादाग्रमेहनः ॥ क्रिमिकोष्ठोऽतिसार्येतमलंसासृक्कफान्वितम्

अर्थ—मिट्टी खानेकी आदतसे तीनों दोषोंमें से कोई सा दोष कुपित होजाता है । कसीली, मिट्टी वायुको, ऊपरा पित्त को और मधुर कफको विगाडदेतीहै ॥ मृत्तिका रूखी होनेके कारण रसरक्तादि धातुओंको कुपित करतीहै और भोजन को रूखा कर देतीहै । और परिपाक को प्राप्त न होनेके कारण स्रोतोंको पूरित करके रोक देतीहै तथा इन्द्रियोंके बल, तेज, ओज, और वीर्यको नष्ट करके बल, वर्ण, और अग्निके नाश करनेवाले पाण्डुरोगको उत्पन्न करतीहै । इस रोगमें गंडस्थल, आंखके कोये; भृकुटी नाभि, पावोंके अग्रभाग और

मेहनेंद्रिय में सूजन उत्पन्न होजातीहै । रोगीके कोष्ठमें कीडे पडजातेहैं, उसे दस्त बहुत आतेहैं तथा मलके साथ रुधिर और कफ निकलताहै ॥

असाध्य पाण्डुरोग के लक्षण॥

पाण्डुरोगश्चिरोत्पन्नःखरीभूतोनसिध्यति कालप्रकर्षाच्छूनानांयश्चपीतानिपश्यति। बद्धाल्पविट्कंसकफंहरितंयोऽतिसार्यते। दीनःश्वेतातिदिग्धाङ्गश्छर्दिमूर्छातृषार्दितः सनास्त्यसृक्क्षयाद्यश्चपाण्डुश्वेतत्वमाप्नुयात् ॥ इतिपञ्चविधस्योक्तपाण्डुरोगस्य लक्षणम्॥

अर्थ—बहुत दिनका पुराना पाण्डुरोग जिससे देहमें खरदरापन होजाताहै वह असाध्य होताहै । जिसमें बहुत दिनका होनेके कारण सूजन होआतीहै और हरिद्वर्ण होताहै, जो रोगी दीन होजाता है,सब शरीर सफेद पडजाताहै, जो वमन,मूर्च्छा और तृषा से पीडित होताहै और जो पाण्डुरोगी रुधिर की क्षीणतासे सफेद होजाताहै । वह भी असाध्य होता है।इसतरह पांचों प्रकारके पाण्डुरोगोंके लक्षण वर्णन कियेगयेहैं ॥

कामलारोग के लक्षण ॥

पाण्डुरोगीतुयोऽत्यर्थंपित्तलानिनिषेवते तस्यपित्तमसृङ्मांसंदग्ध्वारोगायकल्पते। हारिद्रनेत्रःसभृशंहारिद्रत्वङ्नखाननः। रक्तपीतशकृन्मूत्रोभेकवर्णोहतेन्द्रियः।दाहाविपाकदौर्बल्यसदनारुचिकर्षितः।कामला बहुपित्तैषाकोष्ठशाखाश्रयामता ॥

अर्थ—जो पाण्डुरोगी पित्तकर्ता पदार्थों का अत्यन्त सेवन करताहै, उसका पित्त रक्त और मांसको दूषित करके रोगको उत्पन्न करताहै । इसमें रोगीके नेत्र हलदी के समान पीले होजाते हैं तथा त्वचा नख और मुख हलदी के समान होजाते हैं। उसका विष्टा और मूत्र लाल और पीला पडजाताहै, उसके देह का वर्ण वर्षा के मेडक का सा होजाता है, इन्द्रियां हतशक्ति होजाती हैं, रोगी दाह, अविपाक, दुर्बलता अंगसाद और अरुचिसे कृश होजाता है, इसी को कामला रोग कहते हैं, इसमें पित्तकी अधिकता होती है, कोष्ठ और शाखा इसके आश्रय स्थान होते हैं ।

कुम्भकामलाके लक्षण ।

कालान्तरात्खरीभूतात्कृच्छ्रास्यात्कुम्भकामला ।।कृष्णपीतशकृन्मूत्रोभृशंशूनश्च मानवः॥सरक्ताक्षिमुखच्छर्दिर्विण्मूत्रोयश्च ताम्यति । दाहारुचितृषानाहतन्द्रामोह समन्वितः नष्टाग्निसंज्ञःक्षिप्रंहि कामलावान्विपद्यते।।(?) कामली ॥ साध्यानामितरेषांतुभेषजंसं प्रवक्ष्यते॥

अर्थ....यही कामला रोग कालान्तर में खरता को प्राप्त करके कष्टसाध्य कुम्भकामला को उत्पन्न करताहै । इसमें विष्टा और मूत्र काले पीले पड़जातेहैं, सूजन बहुत होआतीहै, इसमें आंख, मुख, वमन विष्टा और मूत्रका रंग लाल होजाता है, दाह, अरुचि, तृषा, आनाह, तन्द्रा और मोह उत्पन्न होते है, अग्निमंद पड़जाती है, संज्ञा नष्ट होजाती है, यह कामलारोगी

शीघ्र मरजाता है । अब इनसे अतिरिक्त साध्य रोगों की चिकित्सा का वर्णन करतेहैं

पांडुरोग में चिकित्सा विधान ।

तत्रपाण्डवामयीस्निग्धस्तीक्ष्णरूध्वानुलोमिकैः ॥ संशोध्योमृदुभिस्तिक्तैःकामलीतुविरेचनैः।ताभ्यांसंशुद्धकायाभ्यांपथ्यान्यन्नानिदापयेत्।शालयोयववगोधूमपुराणाःसूपसंस्कृताः। मुद्गाढकमसूरैश्चजाङ्गलैश्चरसैर्हिताः॥ यथादोषंविशिष्टश्चतयोभैषज्यमाचरेत् ।

अर्थ—इनमें से पाण्डुरोगी को स्निग्ध और तीक्ष्ण वमन, विरेचन द्वारा संशोधन देवै । कामलारोगी को मृदु और तिक्तविरेचन देवै । जब इनसे देह शुद्ध होजाय तब पथ्य अन्नोंका सेवन करावे, यथा पुराने शालीचांवल, जौ, गेंहूं, मूंग, अडहर, मसूर तथा जांगल मांसरसका सेवन हितहै। इस रोगमें जिस दोषकी अधिकता हो उसी के अनुसार औषधियोंका प्रयोग हितकरहै।

स्नेहनघृत ।

पञ्चगव्यंमहातिक्तंकल्याणकमथापिवा॥ स्नेहनार्थंघृतंदद्यात्कामलापाण्डुरोगिणे॥

अर्थ—कामलारोगी तथा पाण्डुरोगियोंको पंचगव्य, महातिक्तक और कल्याणकघृत स्नेहन करने के लिये देवै ॥

दाडिमाद्यघृत ।

दाडिमात्कुडवोधान्यात्कुडवार्द्धंपलंपलम् चित्रकाच्छृङ्गवेराच्चपिप्पल्याष्टमिकात्तथा । तैःकल्कैर्विंशतिपलंघृतस्यसलिलाढके ॥ सिद्धंहृत्पाण्डुरोगार्शःप्लीहवातकफार्तिनुत् । दीपनंश्वासकासघ्नंमूढवातेचशस्यते ॥ दुःखप्रसाविनीनांचवन्ध्यानांचैवगर्भदम् ।

अर्थ—अनारकी छाल एक कुडव, धनियां आधा कुडव, चीता एकपल, अदरख एक पल, पीपल, आधा पल, इनका कल्क बीस पल घृत और एक आढक जलमें सिद्ध करै यह हृद्रोग, पांडुरोग, अर्श, प्लीहा, वात कफको दूर करताहै, यह दीपनहै,श्वास,कासको दूर करनेवालाहै । और मूढवात में हितकारीहै ॥ जिन स्त्रियोंके बालक कष्ट से होता है उनको सुखदाई है वन्ध्यास्त्रियों को गर्भ देनेवालाहै ।

कटुकाद्यघृत ।

कटुकारोहिणीमुस्तंहरिद्रेवत्सकात्फलम्॥ पटोलंचन्दनंदूर्वात्रायमाणादुरालभा । कृष्णापर्पटकोनिम्बोभूनिम्बोदेवदारुच॥ तैःकार्षिकैर्घृतप्रस्थःसिद्धःक्षीरचतुर्गुणः । रक्तपित्तंज्वरंदाहश्वयथुंसभगन्दरम् ॥ अर्शांस्यसृग्दरंचैवहन्तिविस्फोटकांस्तथा

अर्थ—कुटकी, मोथा, दोनों हलदी, इंद्रजौ, परवल, रक्तचन्दन, दूर्वा, त्रायमाणा जवासा, पीपल, पित्तपापडा, नीम,चिरायता देवदारु, प्रत्येक एक २ कर्ष, घी एक प्रस्थ, दूध चार प्रस्थ इनको मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत रक्तपित्त, ज्वर दाह, सूजन भगन्दर, अर्श, रक्तप्रदर तथा विस्फोटक रोगोंको दूर करता है ॥

पथ्याघृत ।

पथ्याशतरसेपथ्यावृन्ताद्धेःतकल्कवान्॥

द्रव्यों के साथ दूध को औटाकरपीवै । इस से भी दोषोंका अनुलोमन होताहै ।

अन्यप्रयोग ।

हरीतकीप्रयोगेणगोमूत्रेणाथवापिबेत् ॥ जीर्णेक्षीरेणभुञ्जीतरसेनमधुरेणवा । सप्तरात्रंगवांमूत्रेभावितंवाप्ययोरजः ॥ पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थंपयसापायेत्ततच ।

अर्थ—गोमूत्र में भिगोई हुई हरड का गोमूत्रके साथ पानकरै, औषधके पचने पर दूधके साथ अथवा मधुर मांसरस के साथ भोजन करै, अथवा लोहचूर्णको सात दिन तक गोमूत्रकी भावना देकर दूध के साथ पान करै इससे पांडुरोग शान्त होजाताहै॥

नवायस चूर्ण ।

त्र्यूषणंत्रिफलामुस्तंविडङ्गचित्रकंसमा ॥ नवायोरजसोभागास्तच्चूर्णंक्षौद्रसर्पिषा। भक्षयेत्पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शःकामलापहम्॥ नवायसमिदंचूर्णंकृष्णात्रेयेनभाषितम् ।

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, मोथा, वायविडंग और चीता ये सब समान भाग लेकर कूट ले तथा इन सबके समाण भाग लोह चूर्ण मिलाकर शहत और घीके साथ सेवन करै । इससे पाण्डुरोग, हृद्रोग, कुष्ट, अर्श और कामला दूर होजाते हैं । यह नवायस नामक चूर्ण कृष्णात्रेयेन कहा है ॥

गुडनागरमण्डूरतिलांशान्मानतःसमान्। पिप्पलीद्विगुणांकुर्य्यात्गुटिकांपाण्डुरोगिणे ॥

अर्थ—गुड, सोंठ, मंडूर और तिल चारों समान भाग, तथा पीपल ८ भाग इनकी गोली बनाकर पाण्डुरोगी को देवै ।

मंडूरवटिका ।

त्रिफलात्र्यूषणंमुस्तंविडंगचव्यचित्रकौ। दार्वीत्वङ्माक्षिकोधातुर्ग्रन्थिकोदेवदारु च॥एतान्द्विपलिकान्भागांश्चचूर्णानकुर्य्यात्पृथक्तथा । मण्डूरंद्विगुणंचूर्णात् शुद्धमञ्जनसन्निभम् ॥ मूत्रमष्टगुणंपक्त्वा तस्मिंस्तत्प्रक्षिपेत्ततः । उदुम्बरसमान कृत्वावटकांस्तान्यथाग्निच॥उपयुञ्जीततक्रेणसात्म्यंजीर्णेचभोजनम् । मण्डूरवटकाह्येतेप्राणदाःपाण्डुरोगिणाम् ॥ कुष्ठाण्यजीर्णकंशोथमूरुस्तम्भंकफामयान् अर्शांसिकामलांमेहंप्लीहानंशमयन्तिच ॥

अर्थ—त्रिफला,त्रिकुटा, वायविडंग,मोथा, चव्य, चीता, दारुहल्दी की छाल,सोनामाखी, पीपलामूल और देवदारु इन में से प्रत्येक द्रव्य दो दो पल लेकर जुदे जुदे कूट डालै और इन सब से दुगुना शुद्धअंजनके समानकाला मंडूर औरमंडूरसे अठगुना गोमूत्रलेकर प्रथम गोमूत्र और मंडूरको पकावै जब पकने पर आजाय तब त्रिफलादि पूर्वोक्त चूर्ण डालकर गूलर के समान गोलियां बनावै।इनमें से अग्निबलके अनुसार प्रति दिन एक गोली मठे में घोलकर पान करै । तथा औषध के पचने पर सात्म्य भोजन तक्र के साथ करै । इन मंडूर वटिकाओं का सेवन करना पाण्डुरोगियों को प्राणदायक है । कुष्ट, अजीर्ण, शोथ, ऊरुस्तम्भ, कफ रोग, अर्श, कामला, मेह और प्लीहाभी इस के सेवन से शान्त होजाते हैं ।

ताप्यादि चूर्ण ।

ताप्याद्रिजतुरूप्यायोमलाःपञ्चपलाःपृथक् । चित्रकत्रिफलाव्योपविडङ्गैःपालिकैःसह ॥ शर्कराष्टपलोन्मिश्राःचूर्णिता मधुनप्लुताः । अभ्यस्यास्त्वक्षमात्राहि जीर्णेनियमिताशिना ॥ कुलत्थकाकमाच्यादिकपोतपरिहारिणा ॥

अर्थ—सोनामाखी, शिलाजीत, रूपामक्खी, लोहमल, प्रत्येक पांच २ पल, चीता त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, प्रत्येक एक२ पल, शर्करा आठपल इन सबका चूर्ण कर के प्रतिदिन इस में से एक तोले लेकर शहत के साथ चाटै । औषध के पचने पर नियमित भोजन करै तथा कुलथी मकोय और कपोतादिका परित्याग करदेवै ।

योगराज वटिका ॥

त्रिफलायास्त्रयोभागास्त्रयस्त्रिकटुकस्यच ॥ भागश्चित्रकमूलस्यविडङ्गानांतथैवच । पञ्चाश्मजतुनोभागास्तथारूप्यमलस्यच ॥ माक्षिकस्यचशुद्धस्यलोहस्यरजतस्यच । अष्टौभागाःसितायाश्चतत्सर्वंसूक्ष्मचूर्णितम् ॥ माक्षिकेणाप्लुतंस्थाप्यमायसेभाजनेशुभे । उदुम्बरसमांमात्रांततःखादेद्यथाग्निना ॥ दिनेदिनेप्रयुञ्जीतजीर्णेभोज्यंयदीप्सितम् । वर्जयित्वाकुलत्थानिकाकमाचीकपोतकम् ॥ योगराजइतिख्यातोयोगोऽयममृतोपमः । रसायनमिदंश्रेष्ठंसर्वरोगहरंशिवम् ॥ पाण्डुरोगंविषञ्चासंयक्ष्माणंविषमज्वरम् । कुष्ठान्यजीर्णमेहंशोषंश्वासमरोचकम् ॥ विशेषाद्धन्त्यपस्मारंकामलांगुदजानिच ।

अर्थ—त्रिफला तीनभाग, त्रिकुटा तीन भाग, चीतेकी जड एक भाग, वायविडंग एक भाग, शिलाजीत पांचभाग, रौप्यमल पांच भाग, शुद्धकी हुई सौनामाखी पांच भाग, शुद्ध कियाहुआ लोहचूर्ण पांचभाग, मिश्री आठ भाग, इन सबको महीन पीसकर शहतमें मिलाकर लोहे के स्वच्छ पात्रमें भरदे । तत्पश्चात् अग्निबलके अनुसार तोलेभर प्रतिदिन सेवन करै । औषधके जीर्ण होनेपर प्रतिदिन इच्छानुसार भोजन करै । केवल कुलथी, मकोय और कपोत को परित्याग करदेवे । यह अमृतके समान योगराजयोग है । यह रसायन बहुतश्रेष्ठ सम्पूर्ण रोगोंका नाश करने वाला है, इस से पाण्डुरोग, विषरोग, खांसी, यक्ष्मा, विषमज्वर, कोढ, अजीर्ण, प्रमेह, शोष, श्वास अरुचि, दूर होजाते हैं, यह योग विशेष करके अपस्मार, कामला और अर्श रोग को दूर करताहै ॥

शिलाजतु वटिका ।

कौटजत्रिफलानिम्बपटोलघननागरैः ॥ भावितानिदशाहानिरसैर्द्वित्रिगुणानिच । शिलाजतुपलान्यष्टौतावतींसितशर्कराम् । त्वक्क्षीरीपिप्पलीधात्रीकर्कटाख्यापलोन्मिता । निदिग्ध्याःफलमूलाभ्यांपलंयुक्त्यात्रिगन्धिकम् ॥ चूर्णितंमधुरंकुर्यात्त्रिपलेनाक्षिकान्गुडान् । दाडिमाम्बुपयःपक्षिरसतोयसुरासवान् ॥ भक्षयित्वापिबेच्चानुतान्निरन्नोबुभुक्षया । पाण्डुकुष्ठज्वरप्लीहतमकार्शोभगन्दरम् ।

पूतिहृच्छुक्रमूत्राग्निदोषशोषगरोदरम् । कासासृग्दरपित्तासृक्शोथगुल्मगरामया-न्॥ तेसर्वेविभ्रमान्हन्युःसर्वरोगहराः-शिवाः ॥

अर्थ....इन्द्रजौ, त्रिफला, नीम, परवल, मोथा, सोंठ, इन के क्वाथ में आठपल शिलाजीत को दश, वीस वा तीस दिनतक भावना देवै । फिर यह शिलाजीत, इतनी ही मिश्री, तथा एक एक पल वंशलोचन, पीपल आंवला और काकडासींगी, कटेरी कीजड और उसके फल एक पल, त्रिगंध (इलायची तेजपात और दालचीनी) एक पल, इन सबका चूर्ण करके तीनपल शहत में सानतोले २ भरकी गोली वनावै । भोजन करके वा विना भोजन कियेही इन गोलियोंका सेवन करै और ऊपर से अनारका रस, दूध पक्षियों का मांस रस, जल, सुरा और आसव का पान करै । इसके सेवन करने से पांडुरोग, कुष्ठ, ज्वर, प्लीहा, तमक, अर्श, भगन्दर, पूतिरोग, हृद्रोग, शुक्ररोग, मूत्ररोग, अग्निदोष, शोषरोग, गरदोष, उदररोग, खांसी, रक्तप्रदर, रक्तपित्त, शोथ, गुल्म तथा विषरोग दूर होजाते हैं । ये गोलियां सब प्रकारकी भ्रांति और सवप्रकारके रोगोंकी हरनेवाली वडी कल्याणकर्त्ता हैं

पुनर्नवादि प्रयोग ।

पुनर्नवात्रिवृद्व्योपविडंगंदारुचित्रकम् । कुष्ठंहरिद्रेत्रिफलादन्तीचव्यंकलिंगकाः । पिप्पलीपिप्पलीमूलंमुस्तश्चेतिपलोन्मितम् मण्डूरंद्विगुणंचूर्णात्गोमूत्रेद्व्याढकेपचत् । कोलवद्गुडिकाःकृत्वातक्रेणालोड्यताः पिवेत् । ताःपाण्डुरोगान्प्लीहानमर्शांसिविषमज्वरम् । श्वयथुंग्रहणीदोषंहन्युःकुष्ठं क्रमींस्तथा ॥

अर्थ—सांठ, निसोथ, त्रिकुटा, वायविडंग, देवदारु, चीता, कूठ, दोनों हलदी, त्रिफला, दन्ती, चव्य, इन्द्रजौ, पीपल, पीपलामूल, मोथा ये सव एक एक पल लेवै, इन सव से दूना मंडूर मिलाकर चूर्ण वनालेवै और दो आढक गोमूत्रमें पकाकर वेरके वरावर गोली वनाकर तक्रमें घोलकर सेवनकरै । इससे पांडुरोग, प्लीहा, अर्श, विषमज्वर, सूजन, ग्रहणीदोष, कोढ और क्रिमिरोग नष्ट होजातेहैं ।

अवलेह प्रयोग ।

दार्वीत्वक्त्रिफलाव्योपविडङ्गमयसोरजः मधुसर्पिर्युतंलिह्यात्कामलापाण्डुरोगवान् तुल्याअयोरजःपथ्याहरिद्राःक्षौद्रसर्पिषा। चूर्णिताःकामलीलिह्यात्गुडक्षौद्रेणवाभयम् त्रिफलाद्वेहरिद्रेचकटुरोहिण्ययोरजः ॥ चूर्णितंक्षौद्रसर्पिर्भ्यांसलेहःकामलापहः।

अर्थ—कामला रोगी और पाण्डुरोगी दारुहलदीकीछाल, त्रिफला, त्रिकुटा, वायविडंग, लोहचूर्ण इनको शहत और घीके साथ चाटै। लोहचूर्ण हरड और, हल्दी इनको समान भाग अथवा केवल हरड को गुड और शहत के साथ चाटनेसे कामला रोग नष्ट होताहै । त्रिफला, दोनों हलदी, कुटकी और लोहचूर्ण इनको घी और शहतके साथ चाटै तो कामलारोग जातारहताहै ॥

धात्र्यावलेह ।

द्विपलाशन्तुगाक्षीरींनागरंमधुयष्टिकाम् भास्थिकींपिप्पलींद्राक्षांशर्कराद्धतुलांश्च भाम् । धात्रीफलरसद्रोणेसुपिष्टंलेहवत्प चेत् ॥ शीतांमधुप्रस्थयुतांलिह्यात्पाणि तलंततः । हन्त्येपकामलापित्तपाण्डुंका संहलीमकम्॥

अर्थ—वंशलोचन दो पल,सोंठ,मुलहटी, पीपल और दाख एक एक प्रस्थ, सफेद- चीनी आधीतुला, इन सबको पीसकर एक द्रोण आंवलेके रसमें पकावे, जब लेहसी होजाय तब उतार ले और ठंडाहोजाने पर एक प्रस्थ शहत मिलाकर रखदेवे इसमें से प्रतिदिन दोतोले सेवन करे कामला, पित्तरोग, पांडुरोग, खांसी और हलीमक दूर होजातेहैं ॥

मंडूरगुटिका ॥

त्र्यूपणंत्रिफलाचव्यंचित्रकोदेवदारुच । विडङ्गान्यथमुस्ताश्चवत्सकंचेतिचूर्णयेत्॥ मण्डूरतुल्यंतच्चूर्णंगोमूत्रेऽष्टगुणेपचेत् ॥श नैःसिद्धास्तथाशीताःकार्याःकर्षसमागुडाः यथाग्निभक्षणीयास्तेप्लीहपाण्ड्वामयाप- हाः । ग्रहण्यर्शोनुदःजीर्णेतक्रवाट्यशिनः स्मृताः ॥

अर्थ—त्रिकुटा, त्रिफला, चव्य, चीता,देव दारु,वायविडंग, मोथा और इन्द्रजौ इनसबका चूर्ण बनावै इन सब के बराबर मंडूर लेकर उससे अठगुने गोमूत्र में प्रथम मंडूर को पकावै और फिर उसमें उक्त चूर्ण डाल देवै फिर धीरे २ सेक कर उतारले और ठंडा होनेपर एक एक कर्षकी गोलियां बनावै और अग्निबलके अनुसार सेवन करै तो प्लीहा, पांडुरोग ग्रहणी और अर्शरोग दूर होजाते हैं । औषधके पचने पर तक्र और यवमंड का सेवन करै ।

गुडारिष्ट ।

मञ्जिष्ठारजनीद्राक्षाबलामूलान्ययोरजः रोध्रंचैतेपुगोडःस्यादरिष्टःपाण्डुरोगिणाम्

अर्थ—मजीठ, हलदी, दाख, खरैटी की जड़, लोहचूर्ण और लोध ये सब समान- भाग लेकर चूर्ण करै तथा इस सबसे चौगुना गुड़ और, गुड़से चौगुना जल मिलाकर सबको एक घीकी हांडीमें भर देवै। यह गुडारिष्ट पांडुरोगियोंको हितहै ।

अन्य अरिष्ट ।

बीजकात्षोडशपलंत्रिफलायाश्चविंशतिः द्राक्षायाःपञ्चलाक्षायाःसप्तद्रोणेजलस्यतत् साध्यंपादावशेषेतुपूतशेषेसमावपेत् । श- र्करायास्तुलांप्रस्थंमाक्षिकस्यचकार्षिकम्। व्योषंव्याघ्रनखोशीरक्रमुकैलवालुकम् । मधुकंकुष्ठमित्येतच्चूर्णितंघृतभाजने॥य- वेषुदशरात्रंतद्ग्रीष्मेद्विःशिशिरेस्थितम् । पिबेत्तद्ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकामलारु- चीः॥ मूत्रकृच्छ्राश्मरीकुष्ठसन्निपातांश्च नाशयेत् ।

अर्थ—बिजौरा सोलहपल, त्रिफला, बीस पल, दाख पांचपल, लाख सातपल, इनसब को एक द्रोण जलमें पकावै, चौथाई शेष रहनेपर उतारकर छानले । ठंडा होने- पर इसमें एक तुला सफेदचीनी, शहत एक प्रस्थ, तथा त्रिकुटा, व्याघ्रनखी खशीर,

सुपारी, एलुआ, मुलहटी और कूठ, प्रत्येक एक एक कर्ष लेकर इनका चूर्ण बनाकर ऊपर कहहुये क्वाथमें मिलाकर एक चिकनी हांडी में भरदेवै। इसको ग्रीष्मऋतु में दस दिवस तक जौके ढेरमें गाढ़ देवै और सर्दी में बीस दिनतक दवा रहने दे, फिर निकाल कर इसका सेवन करे। इससे ग्रहणीरोग, पांडुरोग, अर्श, कामला, अरुचि, मूत्रकृच्छ्र अश्मरी, कोढ़ और सन्निपात दूर होजातेहै।

धात्र्यरिष्ट।

धात्रीफलसहस्रेद्वेपीडयित्वारसन्ततम्। क्षौद्राष्टांशेनसंयुक्तंकृष्णार्द्धकुडवेनच॥ शर्करार्द्धतुलोन्मिश्रंपक्वंस्निग्धघटेस्थितं। प्रपिवेत्मात्रयाप्रातर्जीर्णेमितहिताशनः॥ कामलापाण्डुहृद्रोगवातासृग्विषमज्वरा न्‌। कासंहिक्कारुचिंश्वासांश्चैपोऽरिष्टःप्रणाशयेत्॥

अर्थ—दो सहस्र आंवलोंका मर्दनकर के रस निकाल लेवै। इस रसका आठवां भाग शहत, आधा कुडव पीपल, शर्करा आधा तुला, इन को मिलाकर पकावै और एक चिकने घडेमें भरकर रखदे। इसमें से प्रतिदिन प्रातःकाल मात्रा के अनुसार सेवन करै और औषधके पचनेपर थोडा और पथ्य भोजन करै, इसके सेवन से कामला, पाण्डुरोग, हृद्रोग, वातरक्त, विषम ज्वर, खांसी, श्वास हिचकी और अरुचि दूर होजातीहैं।

स्थिरादिभिःशृतंतोयंपानाहारेप्रशस्यते। पाण्डूनांकामलार्तानांमृद्वीकामलकीरसः॥

अर्थ—पांडुरोगमें स्थिरादि औषधियों से सिद्ध कियाहुआ जल या आहार हित है तथा कामलारोगमें दाख और आंवले का रस भी हितहै।

पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थमितिप्रोक्तंमहर्षिणा। विकल्प्यमेतद्भिषजापृथग्दोषबलंप्रति। वातिकेस्नेहभूयिष्ठंपैत्तिकेतिक्तशीतलं॥ श्लेष्मिकेकटुतिक्तोष्णंविमिश्रंसान्निपातिके॥

अर्थ—महर्षि आत्रेयने पांडुरोगकी शान्तिके लिये जो जो औषधें यहां तक वर्णन की हैं वेही पृथक् पृथक् दोषवल के अनुसार विकल्पपूर्वक अर्थात् कमीवेशी करके प्रयोग [illegible]ना ठीकहै। जैसे वातिक रोगमेंये औषधि[illegible] धिक स्निग्ध द्रव्योंसे संस्कार करके, [illegible] रोगमें तिक्त शीतल और कफज[illegible] कटु, तिक्त और उष्ण तथा सान्नि[illegible]तिक में तीनों प्रकारकी मिली हुई औषधियां देनी चाहिये।

मृत्तिका भक्षण में उपाय।

निर्घातयेत्शरीरात्तुमृत्तिकांभक्षितांभिषक्‌ युक्तिज्ञःशोधनैस्तीक्ष्णैःप्रसमीक्ष्यबलाबलम्॥ शुद्धकायस्यसर्पींपिबलाधानानि योजयेत्।

अर्थ—मृत्तिका भक्षणसे उत्पन्न हुए पांडुरोगमें रोगी का बलाबल देखकर तीक्ष्ण संशोधनों द्वारारोगीके शरीरसे मृत्तिका निकाल देवै। इसतरह देहकेशुद्ध होने पर निम्नलिखित बलकारक घृतोंका प्रयोग करै।

मृत्तिकादोष पर घृत।

व्योषंबिल्वंहरिद्रेद्वेत्रिफलाद्वेपुनर्नवे॥ मुस्तान्ययोरजःपाठाविडङ्गंदेवदारुच।

वृश्चिकालीचभार्गीचसक्षीरैस्तैःसमर्घृतम्। साधयित्वापिबेद्यस्त्यानरोमृद्दोषपीडितः। तद्वत्केशरयष्ट्याह्वपिप्पलीमूलशाद्वलैः॥

अर्थ—त्रिकुटा, बेलगिरी, दोनों हलदी, त्रिफला, दोनों प्रकारकी सांठ, मोथा, लोह चूर्ण, पाठा, देवदारु, वायविडंग, विछवन भांडंगी सब समान भाग लेकर चूर्ण करले इनसे चौगुना घृत और घृतसे चौगुना दूध डालकर पकावै। इस घृतका युक्ति पूर्वक सेवन करनेसे मृद्भक्षणजन्य पांडुरोग दूर होजाताहै। इसीतरहसे केशर, मुलहटी, पीपलामूल और शाद्वल (नवीन छोटी घास)से सिद्ध किया घृत उपयोगी होताहै

अन्यउपाय।

मृदोनिवर्तमानायलौल्यान्मर्त्यायभक्षणात्। द्रव्यार्थभाविर्तांकामंदद्यात्तद्दोषनाशनैः॥ श्वलातिविषयानिम्बैर्विडंगैःकुटजेनच। वार्चाकैःकटुरोहिण्यापाठयामूर्वयापिवा॥

अर्थ—जिस मनुष्यको मिट्टी खानेकी बडी टेवहै उसको मिट्टीसे अरुचि बढाने के निमित्त दोष नाशक द्रव्यों से भावना की हुई मृत्तिका यथेष्ट खवावै,वे द्रव्य यहहै, यथा अतीस, नीम, वायविडंग, इन्द्र जौ, वार्त्ताकु, कुटकी, पाठा और मूर्वा।

यथादोषञ्चकुर्वीतभैषज्यंपांडुरोगिणाम्। क्रियाविशेषएषोऽस्यमतोहेतुविशेषतः॥ तिलीपिष्टनिभंयस्तुवर्चःसृजतिकामली। श्लेष्मणारुद्धमार्गतत्पित्तंकफहरैर्जयेत्॥

अर्थ—पांडुरोगमें दोषके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये, हेतु विशेषसे क्रिया में भी अन्तर होताहै। जिसकामला रोगीका विष्ठा तिलकी लुगदी सा होताहै उसरोग में पित्तका स्रोत कफसे वन्द होजाताहै, इसमें कफनाशक चिकित्सा करना चाहिये॥

शाखाश्रित कामलाके लक्षण।

रूक्षशीतगुरुस्वादुव्यायामैर्वेगनिग्रहैः। कफसंमूर्च्छितोवायुःस्थानात्पित्तंक्षिपद्बहिः॥ हारिद्रनेत्रमूत्रत्वक्श्वेतवर्चास्तदानरः। भवेत्साटोपविष्टम्भोगुरुणाहृदयेनच॥ दौर्बल्याल्पाग्निपार्श्वार्तिहिक्काश्वासारुचिज्वरैः। क्रमेणाल्पेऽनुपज्येतापित्तेशाखासमाश्रिते॥

अर्थ—रूक्ष, शीत, भारी, मिष्ट,व्यायाम और वेगनिग्रहसे वायु कफसे मिलकर पित्त को उसके स्थानसे बाहर निकालती है तव नेत्र, मूत्र और त्वचा हलदके समान होजाते है और विष्ठा सफेद होजाताहै। अफरा, गुडगुडाहट हृदयमें भारापन; दुर्बलता,मन्दाग्नि, पार्श्वशूल, हिचकी, श्वास, अरुचि और ज्वर ये उपद्रव होते हैं। यह पित्त क्रमक्रमसे शाखाओं पर आक्रमण करताहै।

पांडुरोगमेंअन्यउपचार।

बर्हितित्तिरदक्षाणांरूक्षाम्लैःकटुकैःरसैः। शुष्कमूलककौलत्थैर्यूषैश्चान्नानिभोजयेत्॥ मातुलुङ्गरसंक्षौद्रंपिप्पलीमरिचान्वितम्। सनागरंपिबेत्पित्तंतथास्यैतिस्वमाशयम्॥ तृपाम्लैःकटुरूक्षोष्णैर्लवणैश्चाप्युपक्रमः। आपित्तरोगाच्चकृतोवायोश्चाप्रशमाद्भवेत्। स्वस्थानमागतेपित्तेपुरीषेपित्तरञ्जिते

निवृत्तोपद्रवस्यास्यपूर्वःकामलिकीविधिः॥

अर्थ--मोर, तीतर और मुर्गाके मांसरस को रूक्ष, अम्ल, और कटु द्रव्योंसे संस्कार करके देवे अथवा सूखीमूली और कुलथी के यूषके साथ भोजन करावै। बिजौरे के रसमें शहत, पीपल, कालीमिरच और सोंठ डालकर पीनेसे पित्त अपने स्थान में चला जाताहै। मलके पित्त रंजित न होने और वायु की अशान्ति से जो तृषादि रोग होतेहैं उन में कटु, उष्ण, रूक्ष और लवणान्वित औषधियों द्वारा चिकित्सा कीजातीहै, जब पित्त अपने स्थानमें आजाताहै और मल पित्तसे रंगजाता है तब उसके सब उपद्रव निवृत हो जातेहैं उस समय कामलारोग की विधि कर्त्तव्यहै।

हलीमकके लक्षण ॥

यदातुपाण्डोर्वर्णःस्याद्धरितश्यावपीतकः वलोत्साहक्षयस्तन्द्रामन्दाग्नित्वमृदुर्ज्वरः स्त्रीष्वहर्षोऽङ्गमर्दश्चसादस्तृष्णारुचिर्भ्रमः हलीमकंतदातस्यविद्यादनलिपित्ततः ॥

अर्थ---जब पाण्डुरोगीका वर्ण हरा, काला व पीला पड़जाय, बल और उत्साह क्षीण होजांय, तन्द्रा, मन्दाग्नि, मृदुज्वर स्त्रियोंमें अनिच्छा, अंगमर्द, अंगसाद, तृष्णा, अरुचि, और भ्रम ये उपद्रव उत्पन्नहों तब वात पित्तकेकोपसे हलीमक नाम पाण्डुरोग रोगहोताहै

हलीमकमें चिकित्सा।

गुडूचीस्वरसक्षीरसाधितंमाहिषंघृतम् ॥ सपिवेत्त्रिवृतांस्निग्धोरसेनामलकस्यतु॥ निरिक्तोमधुरमायंसेवितोऽनिलपित्तनुत्। द्राक्षालेहंचपूर्वोक्तंसर्पींषिमधुराणिच ॥ यापनान्क्षीरवस्तींश्चशीलयेत्सानुवासनान्। मार्द्वीकारिष्टयोगांश्चपिबेद्युक्त्याग्निवृद्धये॥ कासिकञ्चाभयालेहंपिप्पलींमधुकंम्बलाम्। पयसावामयुञ्जीतयथादोषंयथावलम्॥

अर्थ---गिलोयका रस और दूध इनमें भैंसका घी सिद्ध करके स्नेहन कर्मके लिये पानकरै, स्निग्ध होने के पीछे आंवले के रसके साथ निसोथ पीवे जब इससे दस्त होजांय तब वात पित्तको दूरकरनेवाली मधुर औषधियों का सेवन करै। पूर्वोक्त द्राक्षावलेह,मधुर औषधियों से संस्कृत घृत, यापन क्षीरवस्ति और अनुवासन वस्तियों का प्रयोग करै। जठराग्नि को बढाने के लिये मृद्वीकारिष्ट आदियोगों का पानकरै। कासोक्त अध्यायमें कहाहुआ अभयावलेह अथवा पीपल, मुलहटी और खरैटीको दोष और बलके अनुसार दूध के साथ सेवनकरै

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन।

पाण्डोःपञ्चविधस्योक्तंहेतुलक्षणभेषजम्। कामलाद्विविधाचैवसाध्यासाध्यत्वमेवच तेषांविकल्पोयश्चान्योमहाव्याधिर्हलीमकः ॥ तस्यचोक्तंसमासेनव्यञ्जनंसचिकित्सितम्।

अर्थ---इस अध्यायमें पांडुरोगके पांच भेद,उनके हेतु, लक्षण, चिकित्सा, दो प्रकार का कामलारोग, इन रोगों के साध्यासाध्य लक्षण, औषधियों का वैकल्पिक प्रयोग, हलीमक नाम महाव्याधि, तथा संक्षिप्त से हलीमक के लक्षण और चिकित्सा

वर्णन किये गये हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने पांडुरोगचिकित्सितं नामविंशोऽध्यायः ॥ २० ॥

एकविंशोऽध्यायः॥

अथातोहिक्काश्वासचिकित्सितंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अवहम यहांसे हिक्काश्वास चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे ॥

अग्निवेशका प्रश्न ।

वेदलोकार्थतत्वज्ञमात्रेयमृषिभिःस्तुतम् ॥ अपृच्छत्संशयंधीमानग्निवेशःकृताञ्जलिः यइमेद्विविधाःप्रोक्ताःत्रिदोषास्त्रिप्रकोपनाः ॥ रोगानानात्मकास्तेषांकःकोभवतिदुर्जयः

अर्थ—बुद्धिमान् अग्निवेश ने हाथ जोडकर वैदिक और लौकिक विषयों के तत्वों को जाननेवाले और ऋषिगणोंसे स्तुति किये हुये भगवान् आत्रेयसे पूछा कि हे भगवन्! आपने द्विविधात्मक दोषोंका वर्णन किया तथा तीन दोष और तीनों दोषोंके प्रकुपित करनेवाले हेतु भी वर्णन किये । अब मेरी यह जानने की इच्छा है कि इन अनेक प्रकार के रोगों में कौन २ रोग दुर्जय हैं

आत्रेय का उत्तर ।

अग्निवेशस्यतद्वाक्यंश्रुत्वामतिमताम्वरः उवाचपरमप्रीतःपरमार्थविनिश्चयःका-मंप्राणहरारोगावहवोनतुतेतथा ॥ यथाश्वासश्चहिक्काचप्राणानाशुनिरस्यतः।अन्यैरप्युपसृष्टस्यरोगैर्जन्तोःपृथग्विधैः।अन्तेसजायतेहिक्काश्वासोवातीव्रवेदनः।

अर्थ—अग्निवेशके इस प्रश्नको सुनकर मति मताम्बर, परोपकार परायण आत्रेय अत्यन्त प्रसन्न होकर बोलेकि यद्यपि प्राण नाशक रोग वहुत हैं परन्तु वे ऐसे नहीं हैं जैसे हिक्का और श्वास शीघ्र प्राणनाशक होते हैं । प्राणी के अनेक प्रकारके अन्य२ वहुत से रोगों से पीडित होनेपर भी अन्त में तीव्र वेदनावाले हिक्का और श्वासरोग उत्पन्न होते हैं अर्थात् मरते समय हिचकी आती हैं या श्वास वढता है ॥

हिक्काश्वासका स्थानादि विवर्ण ।

कफवातात्मकावेतौपित्तस्थानसमुद्भवौ॥ हृदयस्यरसादीनांधातूनांचोपशोषणौ । तस्मात्साधारणावेतौमतौमममसुदुर्जयौ॥

अर्थ—ये दोनों रोग कफवातसे होतेहैं, इनकी उत्पत्तिका स्थान पित्ताशय है ये दोनोंही रोग हृदयस्थ रसादिक धातुओं का शोषण करतेहैं अतएव ये दोनों सव तरह से समान हैं और दोनों ही दुर्जय हैं ॥

हिक्काश्वासके भेद ।

मिथ्योपचरितौक्रुद्धौहतावाशीविषाविव पृथक्पञ्चविधावेतौनिर्दिष्टौरोगसंग्रहे ॥ तयोःशृणुसमुत्थानंलिङ्गान्येकैकशस्तथा

अर्थ—उक्त दोनों रोग मिथ्या आहार विहारसे उत्पन्न होकर क्रुद्ध आशी विषकी तरह मनुष्य को मार डालतेहैं। सूत्रस्थानमें

अर्थ—कफसंसृष्टत्वात प्राणवाही उदकवा ही और अन्नवाही स्रोतोंको रोककर हिचकी उत्पन्न करती है। इन हिचकियोंके पृथकुर लक्षणोंका वर्णन कियाजाताहै।.

महाहिका के लक्षण ॥

क्षीणमांसबलप्राणतेजसःसकफोऽनिलः॥ गृहीत्वासहसाकण्ठमुच्चैर्घोपवतींभृशम्। करोतिसततंहिकामेकद्वित्रिगुणांतथा॥ प्राणःस्रोतांसिमर्माणिसंरुद्ध्योष्माणमेव चासंज्ञामुष्णातिगात्राणिस्तम्भंसञ्जनय-त्यपिमार्गंचैवान्नपानानांरुणद्ध्यपहतस्मृतेः साश्रुविप्लुतनेत्रस्यस्तब्धशंखच्युतभ्रुवः सक्तजल्पमलापस्यानिर्वृतिंनाधिगच्छतः। महामूलामहावेगामहाशब्दामहाबला॥ महाहिकेतिसान्द्रणांसद्यःप्राणहरामता॥

अर्थ—जिस मनुष्य के मांस, बल, प्राण और तेज क्षीण होगये हैं उसके कंठको कफयुक्त वायु पकडकर अत्यन्त शब्दवाली ऊपरकी हिचकी कों उत्पन्न करती है, यह हिचकी निरन्तर एक दो तीन वार आती है। उससमय रोगी के प्राण वाही स्रोत, मर्मस्थान, ऊष्मा और संज्ञा नष्ट होजाती है। देह में उष्णता और स्तम्भता उत्पन्न होतीहै। उसके अन्न पानके मार्ग रुकजातेहैं, स्मृति नष्ट होजातीहै, नेत्रोंमें जल डबडबाताहै, कनपटी स्तब्ध और भृकुटी गिरीसी पडती हैं मुंहसे बोल नहीं निकलताहै,किसी तरह चैननहीं पडताहै, यह हिका महामूल, महावेगा, महाशब्दा और महाबला होतीहै, इसीसे इसका नाम महाहिका है, यह मनुष्यों का तत्काल प्राणनाश करनेवाली होतीहै॥

गंभीरा हिकाके लक्षण।

हिकतेयःप्रवृद्धस्तुकृशोदीनमनानरः। जर्जरेणोरसासर्वंगम्भीरमनुनादयन्॥ संजृम्भन्संक्षिपंश्चैवतथाङ्गानिप्रसारयन्॥ पार्श्वेचोभेसमायस्यकूजनस्तम्भरुगर्दितः नाभेःपक्काशयाद्वापिहिक्काचास्योपजायते॥ क्षोभयन्तीभृशंदेहंनामयन्तीचताम्यतः। रुणद्ध्युच्छासमार्गन्तुप्रणष्टबलचेतसः।गम्भीरनामासातस्यहिकाप्राणान्तिकीमता॥

अर्थ—जो मनुष्य कृश और दीन मन होकर अत्यन्त हिचकी लेताहै, हृदयमें जर्जरता दिखाई देवै, हिचकी का शब्द गंभीरहो, यदि रोगी हाथ पांवोंको फैलाकर जम्हाई लेने लगे और इधर विधर पटकनेलगे, दोनों पसवाडोंको लम्बा करदेवै कंठ में कूजन और शरीर में स्तम्भ और शूल होवै। नाभि वा पक्काशयसे हिचकी निकलती मालूमहो जिससे सम्पूण देह में क्षोभहो, देह झुकजाय, वेदना होनेलगे श्वास आनेजाने का मार्ग रुकजाय और बल तथा संज्ञा नष्ट होजांय, यह प्राणोंका नाश करनेवाली गंभीरा हिका होतीहै।

व्यपेताहिक्का।

व्यपेतेजायतेहिक्कायान्नपानेचतुर्विधे। आहारपरिणामान्तेभूयश्चलभतेबलम्॥ मलापवम्यतीसारतृष्णार्तस्यविचेतसः॥ सजृम्भस्यप्लुताक्षस्यशुष्कास्यस्यविना-

मिनः ।पर्याध्मातस्यहिक्कायाजत्रुमूलाद सन्तता ॥ साव्यपेतेतिविज्ञेयाहिक्कामा णोपरोधिनी ।

अर्थ—जो हिचकी भक्ष्य भोज्यादि चार प्रकारके अन्नपान से उठतीहै और भोजन के पचनेके समय जिसका वल अधिक वढ जाताहै जिसके होनेसे प्रलाप, वमन, अतीसार तृषा और संज्ञा नाश होजाय, जिससे, जम्हाई नेत्रोंमे आंसू, मुखमें शुष्कता, शरीरका झुकना, पेटमें अफरा होवै, और जो जत्रु के मूलसे उत्पन्नहो उसे व्यपेताहिक्का कहते हैं।यहहिचकी प्राणवाही स्रोतोंको रोकदेतीहै।

क्षुद्राहिक्का ।

क्षुद्रवातोयदाकोष्ठाद्व्यायामपरिघट्टितः॥ कण्ठेमपद्यतेहिक्कांतदाक्षुद्रांकरोतिसः ॥ अतिदुःखानसाचोरःशिरोमर्मवाधिनी॥ नचोच्छासान्नपानानांमार्गमाट्टत्यतिष्ठ ति। वृद्धिमायासतोयातिभुक्तमात्रेसमार्द वम्॥ यतः प्रवर्ततेपूर्वंततएवनिवर्तते ॥ हृदयंक्लोमकण्ठञ्चताल्वकञ्चसमाश्रिता॥ मृद्वीसाक्षुद्रहिक्केतिनृणांसाध्यामकीर्तिता

अर्थ—क्षुद्रवात अत्यन्त परिश्रमके कारण उद्घाटित होकर जब कंठमें स्थित होजाती है तब यह क्षुद्रा हिक्का को उत्पन्न करती है, यह हिचकी अत्यन्त कष्टदायक नहीं होती और न यह वक्षस्थल, शिर वा मर्मों में पीडा पहुंचातीहै, न यह श्वास वाही तथा अन्नपान वाही मार्गों को रोकतीहै, परिश्रम सेवढतीहै और भोजन करतेही मृदु पडजाती है यह जिस कारण से उत्पन्न होती है उसही से निवृत्त होजातीहै। इसका आश्रयस्थान हृदय, क्लोम, कंठ और तालु है यह मृदु होतीहै, इसका नाम क्षुद्राहिक्का है। यह हिचकी साध्य होतीहै।

अन्नजाहिक्काका लक्षण ।

सहसात्यभ्यवहृतःपानान्नैःपीडितोऽनिलः । उर्ध्वमपद्यतेकोष्ठान्मद्यैर्वातिमदप्रदैः । तथातिरोषभाष्याध्वभारातिपरिवर्तनैः । वायुःकोष्ठगतोधावन्पानभोज्यप्रपीडितः । उरःस्रोतःसमाविश्यकुर्याद्धिक्कांततोऽन्नजाम् ॥ तथाशनैरसम्बद्धंक्षुवन्चापिसहिक्कते । नमर्मवाधाजननीचेन्द्रियाणांमवाधिनी ॥ हिक्कापीतत था भुक्तेशमंयातिचसान्नजा ।

अर्थ—सहसा अन्नपान के अत्यन्तसेवन से वा अत्यन्त नशीले मद्यके सेवनसे वायु वढकर ऊपरको कोष्ठोंमे जातीहै, तथा अत्यन्तरोष, भाषण, मार्ग भ्रमण, भारवहन वा अत्यन्त परिवर्त्तनसे अन्नपान के द्वारा उत्पीडित होकरकोष्ठगतवायु हृदयस्थ स्रोतोंका अवलंबन करके अन्नजा हिचकी उत्पन्न करतीहै। कभी २ यह हिचकी भोजनसे नहीं होतीहै तथा वैसेही हिचकियां आने लगतीहैं इनसे मर्मस्थान वा इन्द्रियों में कुछ वाधा नहीं पहुंचती है और अन्नपान के सेवनसे ये शान्त होजातीहैं।

हिक्काका साध्यासाध्यवर्णन ।

अतिसञ्चितदोषस्यभक्तच्छेदक्षतस्यच ॥ व्याधिभिःक्षीणदेहस्यवृद्धस्यातिव्यवायिनः॥आमाशयात्समुत्पन्नाहिक्काहन्त्या-

शुजीवितम् ॥ यमिकाचमलापार्तितृष्णा मोहसमन्विता । अक्षीणश्चाप्यदीनश्च स्थिरधात्विन्द्रियश्चयः ॥ तस्यसाधयितुंशक्यायमिकाहन्त्यतोऽन्यथा ॥

अर्थ—जिसमनुष्यके दोष अत्यन्त इकट्ठे होगये हैं जिसको भोजनमें अरुचिहै, जो क्षतपीडितहै, व्याधियोंसे जिसका देह क्षीणहै, जो वृद्ध और अति व्यवायी है, उसके हिचकी आमाशय से उत्पन्न होतीहै जिस यमिका हिचकी में प्रलाप, वेदना, तृष्णा और मोह होताहै वह भी असाध्य होतीहै, यदि वह ऐसे पुरुषके होतीहै, जो अक्षीण, अदीन, स्थिर धातु और स्थिरेन्द्रिय होताहै वह साध्य होतीहै जो इस से भिन्नहै वह असाध्य होतीहै

श्वास की उत्पत्ति ।

यदास्रोतांसिसंरुद्ध्यमारुतःकफपूर्वकः॥विष्वग्व्रजतिसंरुद्धःतदाश्वासान्करोतिसः

अर्थ—जब कफसे मिली हुई वायु प्राण वाही स्रोतों को रोक देती है, इसतरह रुकी हुई वायु सम्पूर्ण देहमें गमन करतीहै तब श्वास उत्पन्न होता है ।

महाश्वासका लक्षण ।

उद्धूयमानवातोयःशब्दवद्दुःखितोनरः उच्चैःश्वसितिसंरुद्धोमत्तर्षभइवानिशम्॥ प्रणष्टज्ञानविज्ञानस्तथाविभ्रान्तलोचनः विकृताक्षाननोबद्धमूत्रवर्चाविशीर्णवाक्॥ दीनःप्रश्वसितंचास्यदूराद्विज्ञायतेभृशम् महाश्वासोपसृष्टःसक्षिप्रमेवप्रमपद्यते ॥

अर्थ—वायुके ऊपरको जानेसे संरुद्ध होकर जो मनुष्य मत्त बैल की तरह अत्यन्त कष्टसे शब्दयुक्त ऊंचा श्वास लेताहै, तब उसके ज्ञान विज्ञान नष्ट होजातेहैं, नेत्र भ्रान्तियुक्त होतेहैं, आंख और मुख विकृत होजातेहैं, मूत्र विष्टा बन्द होजातेहै, वाणी रुक जातीहै, दीनता होजातीहै, उसका श्वास लेना दूरहीसे दिखाई देने लगता है। इसका नाम महाश्वास है, इस के होनेसे रोगी शीघ्र मरजाताहै ।

उर्ध्वश्वास का लक्षण ।

दीर्घंश्वसितियस्तूर्ध्वंनचमत्याहरत्यधः॥ श्लेष्मावृतमुखस्रोताःक्रुद्धगन्धवहार्दितः॥ ऊर्ध्वदृष्टिर्विपश्यंश्चविभ्रान्ताक्षस्ततस्ततः प्रमुह्यन्वेदनार्तश्चशुष्कास्योऽतिनिपीडितः॥ ऊर्ध्वश्वासेप्रवृत्तेचयश्चाधःश्वासरोधभाक् । ताम्यतोभ्राम्यतश्चोर्ध्वश्वासस्तस्यैपहन्त्यसून्।

अर्थ—जो ऊपरको मुख करके दीर्घ श्वास लेताहै और नीचा मुखकरके भीतरको नहीं खींच सकताहै, जिसके मुख स्रोत कफसे आच्छन्न हैं, जिसके मुखसे क्रुद्ध दुर्गन्धितवायु निकलताहै जो ऊपर को दृष्टि करके भ्रान्तियुक्त नेत्रोंसे देखता है, वेदनासे व्याकुल होकर मुग्ध होजाता है, मुख सूख जाता है वेदना अत्यन्त होती है, ऊर्ध्व श्वासके प्रवृत होने पर जिसका अधःश्वास रुकजाता है, इसमें क्लेश बहुत होता है, यह उर्ध्वश्वास शीघ्र ही प्राणों का नाश कर देताहै ।

छिन्नश्वास के लक्षण ।

यस्तुश्वसितिविच्छिन्नंसर्वप्राणेनपीडि

तः । नवाश्वसितिदुःखार्तोमर्मच्छेदरुग दितः । आनाहस्वेदमूर्च्छार्तोदह्यमानेन वस्तिना । विप्लुताक्षःपरिक्षीणःश्वसन्र क्तैकलोचनः ॥ विचेताःपरिशुष्कास्योवि वर्णःमलपन्नरः । छिन्नश्वासेनसंछिन्नः सशीघ्रंमजहात्यसून् ॥

अर्थ—जिस मनुष्यके टूटा हुआ श्वास निकलता है और सम्पूर्ण देह में इससे कष्ट होता है अथवा कष्टके कारण श्वास कम निकलताहै तथा मर्मस्थान में वेदना होने लगतीहै वेदनाके कारण आनाह, स्वेद और मूर्च्छा होजातीहै, वस्ति में दाह होने लगताहै, नेत्रोंमें पानी भर आताहै, क्षीणता होतीहै, नेत्र लाल पड़जाते हैं, संज्ञानाश होजातीहै, मुख सूख जाता है, देह का वर्ण बिगड़ जाता है, प्रलाप होता है, ये छिन्न श्वास के लक्षण हैं । इस रोग से पीडित मनुष्य शीघ्रही प्राणों को त्याग देता है ।

तमकश्वासकेलक्षण ।

प्रतिलोमंयदावायुःस्रोतांसिप्रतिपद्यते । ग्रीवांशिरश्चसंग्रह्य श्लेष्माणंसमुदीर्यच ॥ करोतिपीनसंतेनरुद्धोघुर्घुरकंतथा ।अतीव तीव्रवेगञ्जश्वासंप्राणप्रपीडकम् ।प्रताम्य त्यतिवेगाच्चकासतेसन्निरुध्यते । प्रमोहं कासमानश्चसगच्छतिमुहुर्मुहुः॥श्लेष्मण्य मुच्यमानेचभृशंभवतिदुःखितः । तस्यैव चविमोक्षान्तेमुहूर्तंविन्दतेसुखम् ।अथास्यो द्वंसतेकण्ठःकृच्छात्शक्नोतियाधितुं । नचापिनिद्रांलभतेशयानःश्वासपीडितः॥ पार्श्वेतस्यावगृह्णातिशयानस्यसमीरणः आसीनोलभतेसौख्यमुष्णंचवाभिनन्दति उच्छ्रिताक्षोललाटेनस्विद्यताभृशमर्तिमान विशुष्कास्योमुहुश्वासोमुहुश्चैवाधमत्य पि । मेघाम्बुशतिमाग्वातःश्लेष्मलश्चा भिवर्धते।सयाप्यस्तमकःश्वासःसाध्योवा स्यान्नवोत्थितः॥

अर्थ——जब वायु प्रतिलोम अर्थात् उलटी होकर प्राणवाही स्रोतोंमें स्थित होजाती हैं, तब, वह ग्रीवा और शिरको जकडकर तथा कफको उद्गीर्ण करके पीनस उत्पन्न कर देतीहै और स्वयंरुद्ध होकर कंठ में घुरघुरा हट पैदा करतीहै तब उस समय प्राणों को कष्ट देनेवाला और बडे तीव्र वेगवाला श्वास उत्पन्न होताहै इसके उत्पन्न होने पर रोगी अत्यन्त वेगसे खांसने लगता है तथा खांसते २ कंठ रुकासा हो जाता है, खांसते २ रोगी वार-वार मूर्च्छित हो जाता है । और कफके न निकलने के कारण रोगी अत्यन्तही क्लेशित होता है, कफके निकलने पर थोडी देर को चैनसा पडजाताहै । गलेमें धूआं सा घुमडता रहता है इससे वातभी कठिनता से कर सक्ताहै । सोनेमें श्वासका वेग अधिक बढताहै,इससे वह सोनेभी नही पाता है, करवट भी लेने में कष्ट होताहै क्योंकि करवट लेनेमें श्वास का वेग अधिक बढता है, बैठे होने पर कुछ सुख मिलताहै , उष्ण द्रव्योंमें इच्छा बढतीहै, आंख फटीसी होजातीहै, माथे पर पसीना आजाता है, वेदना अधिक होने लगतीहै, मुख सूख जाताहै, वारवार श्वास

बढताहै, वार वार देह में झोटेसे लगते हैं वादलों के होनेपर, शीतल जलके स्पर्श पर पूर्व की वायु के चलने पर और कफकारी द्रव्यों के सेवन से श्वासकी वृद्धि होती है। यह **तमकश्वास** याप्य होताहै, यदि नया होताहै तो साध्य भी होताहै ॥

मतमकश्वासका लक्षण ।

ज्वरमूर्च्छापरीतस्यविद्यात्मतमकन्तुतम् ।

अर्थ—यदि तमकश्वास में रोगीको ज्वर और मूर्च्छा होतो इसे **मतकश्वास** कहते हैं ।

सन्तमकश्वासका लक्षण ।

उदावर्त्तरजोजीर्णक्लिन्नकायनिरोधजः। तमसावर्द्धतेऽत्यर्थंशीतैश्चाशुप्रशाम्यति- मज्जतस्तमसीवास्यविद्यात्संतमकंतुतत्।

अर्थ—उदावर्त्त, रज, तथा अजीर्ण से देहके क्लिन्न होनेसे वा जठराग्निके निरोध से जो श्वास होताहै, तथा जो अंधकार से अत्यन्त बढताहै, शीतोपचारसे शान्त होता है तथा रोगीको श्वास में अंधेरासा छाया हुआ दीखै तो इस श्वास को **सन्तमकश्वास** कहतेहैं ।

क्षुद्रश्वासकालक्षण ।

रूक्षायासोद्भवःकोष्ठेक्षुद्रवातउदीरयेत्॥ क्षुद्रश्वासोनसोऽत्यर्थंदुःखेनाङ्गप्रबाधकः॥ हिनस्तिनसगात्राणिनचदुःखीयथेतरः॥ नचभोजनपानानांनिरुणद्ध्युचितांगति म्॥नेन्द्रियाणांव्यथांनापिकाञ्चिदुरुपा दयेद्रुजम् । ससाध्यउक्तोबलिनःसर्वेचा व्यक्तलक्षणाः॥

अर्थ—रूक्ष पदार्थोंके सेवन और परिश्रम से अल्पनिदान और अल्पलक्षणों से युक्त वायु उदीर्ण होकर **क्षुद्रश्वास** को उत्पन्न करतीहै यह देहको अत्यन्त कष्ट नहीं देताहै, वह अंगावयवोंको और श्वासों की तरह पीडित नहीं करताहै, न अन्न पानों की उचित गतिको रोकताहै इन्द्रियों को व्यथित नहीं करताहै न किसी प्रकार की वेदना वा अन्य उपद्रवोंको उत्पन्नकरताहै यह श्वास साध्य होताहै, तथा, बलवान् पुरुष के सबही श्वास जिनके पूर्ण लक्षण नहीं होते है साध्य होतेहैं ।

इतिश्वासाःसमुद्दिष्टाहिकाश्चैवस्वलक्षणैः एषांप्राणहरावर्ज्याघोरास्तेह्याशुकारिणः॥ भेषजैःसाध्ययाप्यांस्तुक्षिप्रमेभिरुपाचरे- त् ॥ उपेक्षितादेहयुर्हिंशुष्कंकक्षमिवान- लाः ॥ कारणस्थानमूलैक्यादेकमेवंचि कित्सितम् ।द्वयोरपियथादृष्टमृषिभिस्त न्निबोधत ॥

अर्थ—इसतरह श्वास और हिचकियों के पृथक् पृथक् लक्षण वर्णन किये गये हैं इनमें से जो जो प्राणनाशक, भयंकर और शीघ्रकारी हैं वे त्याग के योग्य होते हैं साध्य और याप्यरोगोंकी चिकित्सा औषधियों द्वारा शीघ्रही करनी चाहिये । जैसे अग्नि सूखे तृणोंके ढेरको शीघ्रही जला देती है उसीतरह उपेक्षा कियेहुए उक्तरोग देहको शीघ्रही दग्ध करदेतेहैं। हिचकी रोग के कारण, स्थान और मूल एकही है इससे ऋषियों ने दोनोंकी चिकित्सा भीएकहीकही

है, अब उसीका वर्णन किया जाताहै ॥

हिक्का और श्वास में चिकित्सा

हिक्काश्वासार्दितंस्निग्धैरादौस्वेदैरुपाचरेत्। युक्तंलवणतैलेननाडीप्रस्तरशङ्करैः॥ तैरस्यग्रथितःश्लेष्मास्रोतःस्वभिविलीयते। खानिमार्दवमायान्तिततोवातानुलोमता॥ यथाद्रिकुञ्जेष्वर्कांशुतप्तंविष्यन्दतेहिमम्॥ स्थिरःश्लेष्माशरीरस्थाःस्वेदैर्विष्यन्दतेतथा॥

अर्थ—हिचकी वा श्वास से पीडित मनुष्यको प्रथम स्निग्ध करके स्वेदन देवे, अर्थात् प्रथम लवणयुक्त तैल से स्निग्ध कर के नाडी,प्रस्तर वा संकर स्वेद द्वारा पसीने देवै, ऐसा करने से रोगी के स्रोतः समूह में जमाहुआ कफ गलजाता है, तब सम्पूर्ण स्रोत नरम पडजांयगे और वायु अनुलोम गामी होगी। जैसे पहाडकी गुहाओं में जमाहुआ बर्फ सूर्य की तप्तकिरणोंसे पिघल जाता है उसीतरह शरीर के स्रोतोंमे जमाहुआ कफ भी स्वेदन कर्मसे पिघलजाताहै॥

स्वेदनोत्तर भोजनादिक्रम।

स्विन्नंज्ञात्वाततस्तूर्णंभोजयेत्स्निग्धमोदनम्। मत्स्यानांशूकराणांवारसैर्दध्युत्तरेण वा॥ ततःश्लेष्मणिसंवृद्धेवमनंपाययेत्तुतम्॥ पिप्पलीसैन्धवक्षौद्रैर्युक्तंवाताविरोधियत्॥ निर्हृतेसुखमाप्नोतिसकफेदुष्टविग्रहे। स्रोतःसुचविशुद्धेषुचरत्यानिहतोऽनिलः॥ लीनश्चेद्दोषशेषःस्यात्तंधूपैर्निर्हरेद्बुधः। हरिद्रापत्रमैरण्डमूलंलाक्षांमनःशिलाम्॥ सदेवदार्वेलंमांसींपिष्ट्वावर्त्तिप्रकल्पयच। तांघृताक्तांपिबेद्धूमंयवैर्वाघृतसंयुतैः॥ मधूच्छिष्टंसर्जरसंघृतंमःल्लकसंपुटे। कृत्वाधूमंपिबेच्छागवालंवास्नायुवागवाम्॥

अर्थ....स्वेदनकर्म के पश्चात् शीघ्रहीरोगी को स्निग्ध भोजन करावै अथवा दही डालकर मछली और सूअर का मांसरस देवै। ऐसा करनेसे कफकी वृद्धि होगी, कफके वढनेपर वमनकारक औषधियोंका पान करावै। इस वमन कारक औषध में पीपल, सेंधानमक, शहत और वातविरोधी अन्यद्रव्य डालदेवें। वमन होनेसे विगडेहुये कफके निकलने पर रोगीको सुख प्रतीत होगा और वायु भी शुद्ध स्रोतों में विना रुकावट के घूमने लगैगा। यदि वमन कराने पर भी दोष रहें तो निम्नलिखित धूमपान करावे। हलदी, तेजपात, अरंडकी जड, लाख, मनसिल, देवदारु, इलायची, इन सबको पीस वत्ती बनाकर घीमें भिजोकर धूमपान करै अथवा जौ पीसकर वत्ती बनाकर घीमें भिजोकर धूमपान करै। अथवा मोम, राल और घी इनको पीसकर चिलम में धरकर पीवै अथवा बकरे वा गौके वाल और स्नायुका धूमपान करै।

अन्यधूमपान।

श्योनाकवर्द्धमानानांनाडीशुष्कांकुशस्य वा। पद्मकंगुग्गुलुंलोहंशल्लकींवाघृताप्लुताम्।

अर्थ—श्योनाक, अरंड अथवा कसाकी सूखी नली को घी में भिगोकर धूमपान क-

रे अथवा पद्माख, गूगल, लोह, और शल-की को पीस बत्ती बना घी में भिगोकर धूमपान करे।

स्वरक्षीणातिसारासृक्पित्तदाहानुबन्धजान्। मधुरस्निग्धशीताद्यैर्हिक्काश्वासा नुपाचरेत्॥

अर्थ....जिस श्वास और हिचकी में स्वर क्षीणता, अतिसार, रक्त पित्त और दाहका अनुबन्ध हो उस में मधुर, शीत और स्निग्ध क्रियाओं द्वारा चिकित्सा करे।

अस्वेद्यरोगी।

नस्वेद्याःपित्तदाहार्त्तारक्तस्वेदातिवर्तिनः। क्षीणधातुबलारूक्षागार्भिण्यश्चाप्य पित्तलाः॥

अर्थ—पित्तरोगी, दाहरोगी, रक्तरोगी, स्वेदरोगी, क्षीणधातुरोगी, क्षीणबल, रूक्ष, गर्भिणी स्त्रियां और पित्तलधातुवाले ये सब स्वेदन कर्म के योग्य नहीं हैं॥

कोष्णैः कामसुरःकण्ठस्नेहसेकैःसशर्करैः उत्कारिकोपनाहैश्चस्वदेयेत्मृदुभिक्षणम्॥ तिलोमामाषगोधूमचूर्णैर्वातहरैःसह। स्नेहैश्चोत्कारिकासाम्लैःसक्षीरैर्वाकृताहिता॥ नवज्वरामदोषेषुरूक्षस्वेदंविलङ्घनम्। समीक्ष्योल्लेखनंवापिकारयेल्लव णाम्बुना॥

अर्थ—यदि ऊपर कहेहुए रोगियों को स्वेदन देने की आवश्यकता हो तौ उस के हृदय और कंठ पर चीनी मिलेहुये कुछगुनगुने स्नेह सेचन द्वारा वा मृदु उत्कारिका वा उपनाह द्वारा क्षणमात्र स्वेदनदेवें। अथवा तिल, अलसी, उरद, और गेहूंका चून पिसवाकर इस में वातनाशक द्रव्य मिलावे और कांजी एवं स्नेह डालकर अथवा दूध डालकर उत्कारिका बनाकर स्वेदन देवें। नवीन ज्वर और आमदोष में रूक्ष स्वेदन वा लंघन करावे। अथवा इस के साथही नमक और जल पान कराके वमन करादेवे।

अतियोगोद्धतंवापिदृष्ट्वावातहरैर्भिषक्। रसायैर्नातिशीतोष्णैरभ्यङ्गैश्चशमंनयेत्॥ उदावर्त्ततथाध्मानेमातुलुङ्गाम्लवेतसैः। हिंगुपीलुविडैश्चान्वयुक्तंस्यादनुलोमनम्॥

अर्थ—वमन का अतियोग होनेसे जो वायुकी प्रबलता हो तौ वातनाशक मांसादि रस और न अत्यन्त उष्ण और न अत्यन्त ठंडे अभ्यंगों द्वारा उसे शान्त करे। उदावर्त्त और आध्मान के होने पर बिजौरा, अमलवेत, हींग, पीछ, विडनमक के साथ भोजन कराने से अनुलोमन होता है॥

भिन्न २ अवस्थाओंमें चिकित्सा।

हिक्काश्वासामयीह्येकोबलवान्दुर्बलोऽपरः। कफाधिकस्तथैवैकोरूक्षबहुनिलोऽपरः। कफाधिकेबलस्थेचवमनंसविरेचनम्॥ कुर्य्यात्पथ्याशिनेधूमलेहादिशमनंततः। वातिकान्दुर्बलान्वृद्धान्वृद्धांश्चानिलसूदनैः॥ तर्पयेदेवशमनैःस्नेहयूषरसादिभिः

अर्थ—हिक्का और स्वास से पीडित कोई मनुष्य तौ बलवान् और कोई दुर्बल होता है, कोई कफाधिक कोई रूक्ष और कोई अत्यन्त वात से पीडित होता है। कफ की अधिकता मे बलवान् रोगी को वमन

जल पीवै तौहिचकी और श्वास दूर होजाते हैं। अथवा भाडंगी और सोंठ का कल्क अथवा कालीमिरच और जवाखारका कल्क अथवा सरलकाष्ठ, चीता, आस्फोता, मूर्वा, इनका कल्क गरमजल के साथ पीने से उक्त रोग दूर होजाते हैं ॥

उक्तरोगोंमेंअन्यप्रयोग ।

मधूलिकातुगाक्षीरीशर्करापिप्पलीतथा। उत्कारिकाघृतेसिद्धाश्वासेपित्तानुबन्धजे श्वाविधःशशमांसञ्चशशकस्यचशोणितम् पिप्पलीघृतसिद्धानिश्वासेवातानुबन्ध जे॥सुवर्चलारसोदुग्धंघृतंत्रिकटुकायुतम्। शाल्योदनस्यानुपानंवातपित्तानुगेपरम् शिरीषपुष्पस्वरसःसप्तपर्णस्यवापुनःपिप्प लीमधुसंयुक्तःकफपित्तानुगेमतः॥ मधुकं पिप्पलीमूलंगुडोऽश्वशकृद्रसः।घृतंक्षौद्रञ्चत च्छासेरौक्ष्याभिष्यन्दजेशुभम् ॥

अर्थ—श्वास में पित्त का अनुबन्ध होने पर गेहूंकी मैदा, वंशलोचन, चीनी और पीपल इनकी उत्कारिका बनाकर घी में सिद्ध करके देवै। वातानुबन्धी श्वासमें सेह का मांस, सस्से का मांस अथवा छोटी सेह का रुधिर पीपल डालकर घी में सिद्ध करके देवै। वातपित्त का अनुबन्ध होनेपर श्वास में सांचौली का रस अथवा घी, दूध और त्रिकुटा डालकर शालीचांवलका भातदेवै। कफपित्त का अनुबन्ध होनेपर श्वास में सिरस के फूलों का स्वरस पीपल और शहत मिलाकर देवै। रूक्षता और अभिष्यन्दज श्वास में मुलहटी पीपलामूल,गुड,गोबरकारस घोडेकीलीद का रस इनको घी और शहत के साथ सेवन करै ॥

अन्यप्रयोग ।

खराश्वोष्ट्रवराहाणांमेषस्यचगजस्यच । शकृद्रसंवहुकफेचैकैकंमधुनापिबेत्॥क्षार- श्चाप्यश्वगन्धायालेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा ।

अर्थ—गधा, घोडा, ऊंट, सूअर, मेंढा हाथीइनमें से किसी एक के विष्टाका रस शहत डालकर कफकी अधिकतामें पानकरै अथवा असगंधके क्षारको शहत और घीके साथचाटै

कफकी अधिकता में अन्यप्रयोग

मयूरपादंनालंवाशकलंशल्लकस्यवा ॥ श्वाविज्जाण्डकचाषाणांरोमाणिङ्कुररस्य वा । शृङ्ग्येकद्विशफानांवाचर्मास्थीनि खुरांस्तथा ॥ सर्वाण्येकैकशोवापिदग्ध्वाक्षौद्रघृतान्वितान् । चूर्णलीढ्वाज येत्कासंहिक्कांश्वासञ्चदारुणम् ॥ एतेहिकफसंरुद्धगतिप्राणप्रकोपजाः । तस्मात्तन्मार्गशुद्ध्यर्थंलेहायोज्यानिष्कफे

अर्थ—मोरके पंजे वा नली वा सेहके कांटे अथवा सेह, जाण्डक, नीलकंठ वा कुरर के रोम अथवा सींग वाले एक या दो खुर के पशुओंके चर्म, हड्डी इनको एक एक वा सब को एक साथ जलाकर इन की भस्मको शहत और घीके साथ चाटै तौ खांसी, हिचकी और दारुण श्वास दूरहो जाते हैं। कफसे प्राण वायुका मार्ग रुक- जाने पर जब वह कुपित होताहै तब ये प्रयोग हितकारी होतेहैं, प्राणवायु के मार्ग की शुद्धिके लिये इनका सेवन हित है, यदि

कफनहो तो इनका सेवन कदापि न करे।

सुतरांमार्गसंरोधाद्वहिर्ज्जलमुदीर्यते। यथातथानिलस्तस्यमार्गशुद्धौयतेतना॥

अर्थ—जैसे नदियों का वाहर का मार्ग रुकजाने से वीच में रुकाहुआ जल बढता चला जाता है, उसी तरह वायुका मार्ग रुकने पर वह भी बढती चली जाती है इस लिये उसके मार्गकी शुद्धि यत्नपूर्वक करनाचाहिये

तमक श्वास में प्रयोग।

शटीचोरकजीवन्तीत्वङ्मुस्तंपुष्कराह्वयम्। सरसंतामलक्येलापिप्पल्यगुरुनागरम्। वालकञ्चसमंचूर्णंकृत्वाष्टगुणशर्करम्। सर्वथातमकेश्वासेहिकायाञ्चमयोजयेत्॥

अर्थ—कचूर, चोरक,जीवन्ती,दालचीनी मोथा, पुहकरमूल,वा कूठ, तुलसी भूयआंवला, छोटीइलायची,अगर, पीपल, नेत्रवाला इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण करै और अठगुनी चीनी मिलाकर तमकश्वास और हिक्का में प्रयोग करै॥

छर्दनंकासमानस्यस्वरभेदेप्रताम्यतः। वातश्लेष्महरैर्योज्यंतमकेतुविरेचनम्॥

अर्थ—खांसी, स्वरभेद की अधिकता में वातकफ नाशक द्रव्यों के द्वारा वमन करावै और तमकश्वास में उन्ही औषधियों से सिद्ध विरेचन देवै।

मुक्तादि चूर्ण।

मुक्ताप्रवालवैदूर्य्यशंखस्फटिकमञ्जनम्। ससारगन्धकाचार्कसूक्ष्मैलालवणद्वयम्॥ ताम्रायोरजसीरूप्यंसौगन्धिकमेववा। जातीफलशणाद्वीजमपामार्गश्चतण्डुलाः।

एषांपाणितलाच्चूर्णात्तुल्यानांक्षौद्रसर्पिषा। हिकांश्वासञ्चकासञ्चलीढमाशुनियच्छति। अञ्जनात्तिमिरंकाचंनीलिकंपुष्पकंतमः॥ पैल्लंकण्डूमभिष्यन्दंमन्दञ्चतत्प्रणाशयेत्॥

अर्थ—मोती, मूंगा, वैदूर्य्यमणि, शंख स्फटिक [विल्लौर],रसौत,काचमणि,गन्धक शाककीजड, छोटी इलायची, दोनों नमक ताम्रभस्म, लोहभस्म, रौप्यभस्म, जायफल, सन के बीज, औंगा के बीज, ॥ इन सबको समान भाग लेकर चूर्ण बनावै॥फिरदोतोले चूर्ण को घी और शहत के साथ चाटै इसके सेवन करने से हिचकी, श्वास, खांसी शीघ्रही दूर होजाते हैं तथा इसी चूर्ण को आंखोंमें आंजने से तिमिर, काच, नीलक, पुलीतम, पैल्ल,कंडू,अभिष्यन्द,और मन्दता दूर होजातीहैं

अन्यप्रयोग।

शठीपुष्करमूलानांचूर्णमामलकस्यच। मधुनासंयुतंलेह्यंचूर्णंवायोरजोमयम्॥ सशर्करांतामलकींद्राक्षांगोऽश्वसकृद्रसम्। तुल्यंगुडंनागरञ्चभाशयेन्नावयेत्तथा॥ लशुनस्यपलाण्डोर्वारसंगृञ्जनकस्यवा। नावयेच्चन्दनंवापिनारीक्षीरेणसंयुतम्॥ सुखोष्णंघृतमण्डंवासैन्धवेनावचूर्णितम्। नावयेन्मक्षिकाविष्टामलक्तकरसेनवा॥ स्त्रियाःस्तन्येनसिद्धंवासर्पिर्मधुरकैरपि। पीतंनस्तोनिषिक्तंवारुद्धोहिक्कांनियच्छति

अर्थ—कचूर, पुहकरमूल, आंवला, इनका चूर्ण अथवा लोहभस्म को शहत के साथ चाटै। अथवा चीनी, भूम्यांवला,

दाख, गौ और घोडे के विष्टा का रस तथा गुड और सोंठ समान भाग लेकर खानेको देवे वा सुंघावे । अथवा लहसन, प्याज वा गृञ्जनका रस नस्य में देवे । अथवा चन्दन और स्त्रीके दूधकी नस्य देवे। अथवा ईषदुष्ण घृत मंड में सेंधा नमक मिलाकर नस्यदेवे । अथवा मक्खी का मल और महावरके रसकी नस्यदेवे, अथवा मक्खी के विष्टाको स्त्रीके दूधमें मिलाकर नस्य देवे । अथवा मधुरगण से सिद्ध घृत को पान कराने, वा नस्य देने से शीघ्रही हिचकी दूर होजातीहै ।

अन्य प्रयोग ।

पिप्पलीमधुयुक्तौवारसौधात्रीकपित्थयोः लाजालाक्षामधुद्राक्षापिप्पल्यश्वशकृद्रसान् ॥ लिह्यात्कोलमधुद्राक्षापिप्पलीनागराणिवा । शीताम्बुसेकःसहसात्रासोस्मापनंभयम् ॥ क्रोधहर्षप्रियोद्वेगाहिक्काप्रच्यवनामताः । हिक्काश्वासविकाराणां निदानंयत्प्रकीर्तितम् ॥ वर्ज्यमारोग्यकामैस्तद्धिकाश्वासविकारिभिः ।

अर्थ—आंमलेके रस वा कैथके रस में पीपल और शहत मिलाकर पान करै ॥ अथवा खील, लाख, शहत और घोडे की लीदके रसका सेवन करै । अथवा बेर, शहत, दाख, पीपल और सोंठका सेवनकरै । शीतल जलका तरडा, सहसा त्रास दिखाना भूलमें डालना, भय दिखाना, क्रोध करना, हर्षकराना, प्यारों का उद्वेग कराना इनसब से हिक्कादूर होतीहै ॥ हिक्का और श्वास ये दोनोंरोग जिन२कारणोंसे होतेहैं उनका त्यागदेना उन हिक्का और श्वासविकारियोंकेलिये हित है जो आरोग्यकी इच्छा करतेहैं ॥

उक्तरोगोंमें घृतविधान ।

हिक्काश्वासानुबन्धायेशुष्कोरःकण्ठताळुकाः ॥प्रकृत्यारूक्षदेहाश्चसर्पिभिस्तानुपाचरेत् ।

अर्थ—जिन मनुष्यों के हिचकी और श्वास के अनुबन्धमें वक्षःस्थल, कंठ और तालु सूखगयेहैं और जिनकी देह स्वाभाविक रूक्ष है उनको घृतदेवे ।

दशमूलादिघृत ।

दशमूलरसेसर्पिर्दधिमण्डेचसाधयेत् ॥कृष्णासौवर्चलक्षारवयःस्थाहिंगुचोरकैः॥कायस्थयाचसंसिद्धंकासश्वासौप्रणाशयेत्॥

अर्थ—दशमूलके क्वाथ और दधिमंड में पीपल, संचलनमक, जवाखार, हरड, हींग और चोरक डालकर घृत पाक करै । अथवा दशमूलके क्वाथमें छोटी इलायची डालकर घृत सिद्ध करै । इसके पनिसे हिक्का और श्वास नष्ट होजातेहैं।

तेजोवत्यादिघृत ।

तेजोवत्यभयाकुष्ठंपिप्पलीकटुरोहिणी । भूतीकंपौष्करंमूलंपलाशश्चित्रकःशठी ॥ सौवर्चलंतामलकीसैन्धवंविल्वपेशिका । तालीसपत्रंजीवन्तीवचातैरक्षसम्मितैः॥ हिंगुपादैर्घृतप्रस्थंपचेत्तोयेचतुर्गुणे॥एतद्यथावलंपीत्वाहिक्काश्वासौजयेन्नरः ॥ शङ्खानिलार्शोग्रहणीहृत्पार्श्वरुजएववा ।

अर्थ—तेजोवती, हरड, कूठ, पीपल, कु-

टकी, अजवायन, पुष्करमूल, ढाक, चीतेकी जड, कचूर, संचलनमक, भूयआंवला, सेंधा-नमक, बेलगिरी, तालीसपत्र, जीवन्ती, बच ये सब दो २ तोले लेवै फिर इनका क्वाथ करके चौगुने क्वाथमें एक प्रस्थघी पकावै इसमें भुनीहुई हींग आधा तोला डालदेवै। इस घृतको बलानुसार पीनेसे हिक्का और श्वास दूर होजातेहैं। शाखावात, अर्श, ग्रहणीरोग, हृद्रोग और पार्श्ववेदना ये भी सब दूर होजातेहैं।

अन्यप्रयोग।

मनःशिलासर्जरसलाक्षारजनिपद्मकैः॥ मञ्जिष्ठैलैश्चकर्षांशैःप्रस्थःसिद्धोघृताद्भितः जीवनीयोपसिद्धंवासक्षौद्रंलेहयेद्घृतम्॥ त्र्यूषणंचाधिकंवापिपिबेद्घृतंतथा॥ यत्किञ्चित्कफवातघ्नमुष्णंवातानुलोमनम्। भेषजंपानमन्नंवाताद्धितंश्वासहिक्किने वातकृद्वाकफहरंकफकृद्वानिलापहम्॥ कार्यनैकान्तिकंताभ्यांप्रायःश्रेयोऽनिलापहम्॥

अर्थ—मनसिल, राल, लाख, हल्दी, पद्माख, मजीठ और छोटी इलायची ये सब एक १ कर्ष लेकर इनके चतुर्गुण क्वाथ में घृत पाक करके सेवन करै। यह घृत अनुभव, कियाहुआहै। अथवा जीवनीय गणमें सिद्धकिया हुआ घृत शहत मिलाकर सेवन करै अथवा वासाघृतमें त्रिकुटा डालकर सेवन करै जो जो द्रव्य कफ वातनाशक, उष्ण और वातानुलोमीहैं वे सब खाने वा पीनेमें श्वास वा हिचकी रोगवाले को देवै। जो द्रव्य वातकर्ता और कफनाशकहैं अथवा जो कफकर्ता और वातनाशकहैं। ऐसे द्रव्यों का सेवन ठीक नहींहै इनसे तो केवल वात नाशक द्रव्यही उक्तरोगों में हितहै॥

उक्तरोगोंमेंसंशमनद्रव्योंकाविधान।

सर्वेषांबृंहणोह्यल्पःशक्यश्चप्रायशोभवेत्॥ नात्यर्थंशमनोपायोभृशःशक्यश्चकर्षणे। तस्मात्शुद्धानशुद्धांश्चशमनैर्बृंहणैरपिहि क्काश्वासार्दितान्जन्तून्प्रायशःसमुपाचरेदिति॥

अर्थ— इन संपूर्ण रोगोंमें बृंहणकर्त्ता द्रव्य प्रायःअल्पशक्य होतेहैं, संशमनकर्ता द्रव्य अत्यन्त शक्य नहीं होते और कर्षन अत्यन्त शक्य होते हैं, अतएव हिक्काश्वास रोगी संशोधन द्रव्योंसे शुद्ध हुये हों वा न हुयेहों उनको शमनकर्त्ता और बृंहणकर्त्ता औषधियोंका सेवन प्रायः करावै॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन

दुर्जयत्वेसमुत्पत्तौकियैकत्वेचकारणम्॥ लिंगंपथ्यञ्चहिक्कानांश्वासानांचहृद्गतम्॥

अर्थ— इस अध्याय में हिका और श्वासकी दुर्जयता, समानोत्पत्ति, समान चिकित्सा, समान कारण, लक्षण और पथ्य वर्णन किये गये हैं।

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां चिकित्सितस्थाने हिक्काश्वासचिकित्सितंनामैकविंशोऽध्यायः॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः॥

अथातःकासचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम कासचिकित्सितनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

तपसायशसाधृत्याश्रियाचपरयान्वितः॥ आत्रेयःकासशान्त्यर्थंसिद्धमाहचिकित्सितम्।

अर्थ—तप, यश, धृत्ति, और श्री के कारण सर्वोत्कृष्टता को प्राप्त हुए आत्रेय ऋषि खांसी की निवृत्ति के लिये अनुभूत चिकित्सा का वर्णन करने लगे।

कास के भेद।

वातादिभ्यस्त्रयोयेचक्षतजःक्षयजस्तथा॥ पश्चैतेस्युर्नृणांकासावर्द्धमानाःक्षयप्रदाः।

अर्थ—वातज, पित्तज, कफज, क्षतज और क्षयज इन पांच प्रकारकी खांसी होती है, क्रम २ से बढकर ये खांसी शरीर को क्षीण करदेती है।

खांसी के पूर्वरूप।

पूर्वरूपंभवेत्तेषांशूकपूर्णगलास्यता॥ कण्ठेकण्डूश्चभोज्यानामवरोधश्चजायते।

अर्थ—गले और मुखमें शूक भराहुआ मालूम होना, कंठमें खुजली, तथा भुक्त पदार्थका अवरोध ये सब कास के पूर्वरूप हैं

कासका लक्षण।

अधःप्रतिहतोवायुरूर्द्धस्रोतःसमाश्रितः॥ उदानभावमापन्नःकण्ठेसक्तस्तथोरसि। आविश्यशिरसःखानिसर्वाणिप्रतिपूरयन्॥ आभञ्जन्नाक्षिपन्देहंहनुमन्येतथाक्षिणी। नेत्रेपृष्ठमुरःपार्श्वेनिर्भज्यस्तम्भयंस्ततः॥ शुष्कोवासकफोवापिकसनात्कासउच्यते॥

अर्थ—नीचेसे रुकीहुई वायु ऊपर को उठकर ऊपरवाले स्रोतों का आश्रय लेकर उदानवायु से मिलकर जब कंठ और वक्षःस्थल में प्रवृत्त होजाती है, तब सिर के सम्पूर्ण स्रोतों को भरकर सम्पूर्ण देह को विकल करदेती है, तथा हनु, मन्या और आंखोंको विचलित करदेती है। तदनन्तर वही वायु दोनों नेत्र, पीठ, वक्षस्थल और पसलियों को तोडकर स्तम्भित करदेती है। सूखी वा कफके साथ खुल २ शब्द करने से खांसी कहलाती है।

कासमें विषमशब्दका हेतु।

प्रतिघातविशेषेणतस्यवायोःसरंहसः॥ वेदनाशब्दवैषम्यंकासानामुपजायते॥

अर्थ—नीचेसे रुकने के कारण वायु के ऊपर जानेमें अनेक प्रकारकी वेदना होतीहै उसी के अनुसार खांसीमें विषम शब्दहोतेहैं।

वातज कास का निदान॥

रूक्षशीतकषायाल्पप्रमितानशनस्त्रियः॥ वेगधारणमायासोवातकासप्रवर्तकाः॥

अर्थ—रूखे, कसीले और शीतल पदार्थों के सेवनसे, अल्पाहार करनेसे, प्रमित भोजनसे या बिलकुल न खाने से, स्त्रीसंसर्ग से, वेग धारणसे, परिश्रम से वातज खांसी की प्रवृत्ति होती है।

वातजखांसी के लक्षण।

हृत्पार्श्वोरःशिरःशूलस्वरभेदकरोभृशम्॥

शुष्कोरः कण्ठवक्त्रास्यहृष्टलोम्नःप्रताम्य तः । निर्घोषीस्तनतोदैन्यदौर्बल्यक्षयमोहकृत् ॥ शुष्ककासःकफंशुष्कंकृच्छ्रान्मुक्त्वाल्पतांव्रजेत् । स्निग्धाम्ललवणोष्णैश्चभुक्तमात्रेप्रशाम्यति ॥ ऊर्द्ध्ववातस्य जीर्णेऽन्नेवेगवान्मारुतोभवेत् ।

अर्थ—हृदय, पसली, वक्षःस्थल और शिरमें शूल होताहै, स्वरभंग होजाता है, वक्षःस्थल, कंठ और मुखमें शुष्कता होती है, लोम खडे होजाते हैं, आंखों के साम्हने अंधेरा छाजाता है शब्द बन्द होजाता है, दीनता होती है, दुर्बलता, क्षीणता और मोह होते हैं। सूखी, खांसी सूखा कफ बडी कठिनतासे थोडासा निकलता है। चिकना खट्टा, नमकीन और उष्ण भोजन करनेही से शान्ति होजाती है। अन्नके पचनेपर वायु फिर बलवान् होजाती है ॥

पित्तजकास का निदान ।

कट्वोष्णविदाह्यम्लक्षाराणामतिसेवनम् ॥ पित्तकासकरंक्रोधःसन्तापश्चाग्निसूर्यजः ॥

अर्थ—कडवे, ईषदुष्ण, विदाही, खट्टे और क्षारादिके अत्यन्त सेवन से, क्रोधसे, अग्नि वा सूर्य के संतापसे पित्तजकास उत्पन्न होताहै ।

पित्तजकासके लक्षण ॥

पीतनिष्ठीवनाक्षत्वंतिक्तास्यत्वं स्वरामयः । उरोधूमायनंतृष्णादाहोमोहोरुचिभ्रमः ॥ प्रततंकासमानश्चज्योतींषीवचपश्यति । श्लेष्माणंपित्तसंसृष्टंनिष्ठीवतिचपैत्तिके ॥

अर्थ—कफका पीलापन, नेत्रों में पीलापन, मुखमें कडवापन, स्वरभंग, हृदय में धूंआसा घुमडना, तृष्णा, दाह, मोह, अरुचि भ्रम, अत्यन्त खांसने के समय आंखों के सामने तारोंकीसी चमक दिखाई देना तथा पित्त मिलाहुआ कफ निकलना येसब पित्तजकास के लक्षण हैं ।

कफजकासके हेतु ।

गुर्वभिष्यन्दिमधुरस्निग्धस्वप्नाविचेष्टनैः वृद्धःश्लेष्मानिलंरुद्ध्वाकफकासंकरोतिहि

अर्थ—भारी, अभिष्यन्दी, मधुर और स्निग्ध द्रव्यों के सेवन से, निद्रा और विचेष्टासे, बढाहुआ कफ वायुको रोककर कफकी खांसी उत्पन्न करता है ।

कफजकास के लक्षण ।

मन्दाग्नित्वारुचिच्छर्दिपीनसोत्क्लेशगौरवैः लोमहर्षास्यमाधुर्यक्लेदसंसदनैर्युतम् । बहलंमधुरंस्निग्धंनिष्ठीवतिघनंकफम् । कासमानोऽतिरुग्वक्षःसम्पूर्णमिवमन्यते ॥

अर्थ—मन्दाग्नि, अरुचि, वमन, पीनस, क्लेश, भारापन, लोमहर्ष, मुखमें मीठापन, क्लेद, अंगग्लानि, अत्यन्त मधुर, स्निग्ध और गाढा कफ निकलना तथा खांसते समय अत्यन्त वेदना होना और वक्षःस्थल कफ से भराहुआ मालूम होना ये कफजकास के लक्षण हैं ।

क्षतजकास का हेतु ।

अतिव्यवायभाराध्वयुद्धाश्वगजविग्रहैः रूक्षस्योरःक्षतंवायुःगृहीत्वाकासमावहेत् ॥

अर्थ—अत्यन्त स्त्रीगमन करने से; बोझ

होने से, मार्ग चलने से, युद्ध करने से घोडे हाथियों को रोकने से रूक्ष व्यक्ति के वक्षःस्थल में घाव होजाता है इस से वायु का संसर्ग होने से क्षतजकास उत्पन्न होताहै

क्षयजकासके लक्षण ।

सपूर्वकासतेशुष्कंततःष्ठीवेत्सशोणितम्। रुज्यमानेनकण्ठेनविरुग्नेनैवचोरसा॥ सूचीभिरिवतीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेनशूलिना दुःखस्पर्शेनशूलेनभेदपीडाभितापिना ॥ पर्वभेदंज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्य्यपीडितः॥ पारावतइवाकूजन्कासवेगात्क्षतोद्भवात्

अर्थ—इस रोग में प्रथम सूखी खांसी उठती है फिर थूक के साथ में रुधिरआने लगता है, कठ और वक्षःस्थल में अत्यन्त वेदना होने लगती है, पैनी सुई के चुभने कासा शूल होने लगता है, वक्ष स्थल के हाथ लगाने में दर्द होता है, फटने कीसी पीडा तथा ताप होता है। जोडों में दर्द ज्वर, श्वास, तृष्णा, और स्वरभंगता ये उपद्रव भी होते हैं । इस क्षतजकास में कंठ के भीतर कबूतरके कूजने के समान शब्द होता है।

क्षयजकासका हेतु ।

विषमासात्म्यभोज्यातिव्यवायाद्वेगनिग्रहात् । घृणिनांशोचतांनृणांव्यापन्नेग्नौ त्रयोमलाः।कुपिताःक्षयजंकासंकुर्युर्देहक्षयप्रदम्

अर्थ....विषम भोजन, असात्म्य भोजन अति स्त्री संसर्ग मलमूत्रादि वेगनिग्रहादि कारणों से, तृष्णा से,शोचसे, अग्नि के मन्द होने से तीनों दोष कुपित होकर देह को क्षीण करने वाली क्षयज खांसी को उत्पन्न करते हैं ।

क्षयजकासके लक्षण ॥

दुर्गन्धंहरितंरक्तंष्ठीवेत्पूयोमपंकफम्।स्थानादुत्कासमानश्चहृदयंमन्यतेच्युतम्।अकस्मादुष्णशीतार्त्तोबह्वाशीदुर्बलःकृशः॥ स्निग्धाच्छमुखवर्णत्वक्श्रीमद्दशनलोचनः॥ पाणिपादतलैःश्लक्ष्णैःसततासूयकोघृणी ज्वरोमिश्राकृतिस्तस्यपार्श्वरुक्पीनसोऽरुचिः।स्वरभेदोनिमित्तञ्चभिन्नंवृत्तपुरीषता॥इत्येषक्षयजःकासःक्षीणानांदेहनाशनः॥

अर्थ—इस खांसीमें दुर्गन्धयुक्त हरा वा लाल राधके समान कफ निकलता है,खांसनेमें ऐसा मालूम होने लगताहै कि हृदय अपने स्थानसे जुदा हुआ जाताहै । रोगीको अकस्मात् कभी जाडा और कभी गर्मी लगने लगतीहै, भोजन बहुत करता है इस पर भी दुर्बल और कृश रहताहै । मुखके वर्ण और त्वचामें स्निग्धता और स्वच्छता होतीहै, दांत और नेत्रोंमें चमक होती है। हथेली और पगतली में चिकनापन होताहै। असूयकता और घृणा उत्पन्न होतीहै, ज्वर, मिश्राकृति, पार्श्व वेदना, पीनस और अरुचि होतीहै। मल फटजाता है विनाही निमित्त स्वरभंग होजाताहै, यह क्षीण पुरुषोंकी देह को नाश करनेवाली क्षयजकास होतीहै

कासकासाध्यासाध्यवर्णनं।

याप्योवलवतांवास्याद्याप्यस्त्वेवक्षतो

स्थितः॥कदाचिदपिसिद्ध्येतामेतौपादगुणान्वितौ । स्थविराणांजराकासःसर्वो याप्यःप्रकीर्तितः। त्रीन्साध्यान्साधयेत् पूर्वान्पथ्यैर्याप्यांश्चयापयेत् । चिकित् सामतऊर्ध्वन्तुशृणुकासनिबर्हिणीम् ॥

अर्थ—बलवान् रोगीके क्षतज और क्षयज कास याप्य होजातीहै और यदि चिकित्साके चारों पाद ठीक हों तो ये दोनों साध्य भी हो जाताहै, वृद्ध मनुष्योंकी जरा कालीन खांसी याप्यही होती है । पहिली तीन प्रकार की साध्य खांसियों को दूर करने का उपाय करै दूसरी दो याप्य हैं इन को पथ्यद्वारा याप्य करै । अब कास नाशक चिकित्साका बर्णन करते हैं उसे श्रवण करो ।

वातकास में चिकित्साक्रम ।

रूक्षस्यानिलजंकासमादौस्नेहैरुपाचरेत् । सर्पिर्भिर्वस्तिभिःपेयायूपक्षीररसादिभिः। वातघ्नसिद्धैःस्नेहाद्यैर्धूमैर्लेहैश्चयुक्तितः । अभ्यङ्गैः परिषेकैश्चास्निग्धैःस्वेदैश्चबुद्धिमान्। वस्तिभिर्बद्धविड्वातंशुष्कोर्ध्वंत्वूर्ध्वभक्तिकैः।घृतैःसपित्तंसकफंजयेत्स्नेहविरेचनैः ॥

अर्थ— रूक्ष व्यक्ति की वातज खांसीमें प्रथम स्नेहन करै, पीछे घृत, वस्ति, पेया यूष, क्षीर, मांसरसादि द्वारा चिकित्सा करै। वातनाशक द्रव्यों से संस्कार किये हुए स्नेहयुक्त धूमपान और अवलेहों का प्रयोग करै, तथा अभ्यंग, परिषेक और स्निग्ध स्वेदन भी करै । विष्टा और अधोवायु के बन्द होने पर वस्ति देवै और ऊर्ध्वभाग के शुष्क होने पर भोजनोत्तर घृतपान करावै तथा इस खांसी में कफ वा पित्तका संसर्ग भी हो तौ स्नेह विरेचन देवै ।

कण्टकारी घृत ।

कण्टकारीगुडूचीभ्यांपृथक्त्रिंशत्पलाद्रसे प्रस्थःसिद्धोघृताद्वातकासनुद्वह्निदीपनः

अर्थ....कटेरी और गिलोय तीस तीस पल लेकर इनका अठगुने जल में काथ करै चौथाई शेष रहने पर इस को छानकर इस में एक प्रस्थ घृत पकावै, इस के सेवन से वातज कास नष्ट होजातीहै और अग्नि बढजाती है ।

पिप्पल्यादि घृत ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलेचव्यचित्रकनागरैः॥ धान्यपाठावचारास्नायष्ट्याह्वक्षारहिंगुभिः। कोलमात्रैर्घृतप्रस्थंदशमूलीरसाढके सिद्धंचतुर्थिकांपीत्वापेयांमण्डंपिवेदनु॥ तच्छ्वासकासहृत्पार्श्वग्रहणीदोषगुल्मनुत्।

अर्थ—पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता सोंठ धनियां, पाठा, वच, रास्ना, मुलहटी, जवाखार और हींग इनका चूर्ण करले फिर दशमूलके एक आढक काथमें एक प्रस्थ घी और उक्त चूर्ण डालकर सिद्ध करे इस घृत में से प्रतिदिन एक पल सेवन करके ऊपरसे पेया वा मंड पीवै, यह घृत श्वास, खांसी, हृच्छूल, पार्श्वशूल, ग्रहणीदोष और गुल्मरोगोंको दूर कर देताहै ॥

त्र्यूषणाद्यघृत ।

त्र्यूषणंत्रिफलांद्राक्षांकाश्मर्याणिपरूषकम्

को पांच आढक जलमें पकावै, जब जौ सीज जांय और क्वाथ भी चौथाई रहजाय तब उतार कर छानले, फिर इस क्वाथमें एक तुला गुड,एक कुडव घी,एक कुडव तेल, एक कुडव पीपलीका चूर्ण डाले और पूर्वोक्त हरडों की गुठली निकालकर उसमें डाले जब ये पक जाय तब उतारले ठंडा होने पर इस में एक कुडव शहत डालकर रख छोडै । इसमें से थोडा सा अवलेह और दो हरड प्रति दिन सेवन करै । इसके सेवन करने से झुर्री और बालों का गिरना बन्द होजाता है वर्ण, आयु और बल वढताहै, पांचों प्रकारकी खांसी, क्षयी, श्वास, हिचकी, विषमज्वर, अर्श,ग्रहणी रोग, हृद्रोग, अरुचि और पीनस दूर होजातेहैं । यह उत्तम रसायन अगस्तजीने वर्णनकी है । (इसी में से कुछ परिवर्तन करके यूनानी हकीम मुरब्बे की हरड बनातेहैं) ।

अन्यप्रयोग ।

सैन्धवंपिप्पलींभार्गींशृङ्गवेरंदुरालभाम् दाडिमाम्लेनकोष्णेनभार्गींनागरमम्बुना पिबेत्खदिरसारंवामदिरादधिमस्तुभिः। अथवापिप्पलीकल्कंघृतभृष्टंससैन्धवम्॥

अर्थ——सैंधानमक,पीपल,भाडंगी,अदरख जवासा, इनके चूर्णको अनारके रसके साथ पीवै अथवा भाडंगी और सोंटके चूर्ण को गरमजलके साथ फांकै अथवा खैरसार को मदिरा वा दहीके तोडके साथ पीवै अथवा पीसी हुई पीपल को घीमें भून कर सैंधानमक डालकर सेवन करै ।

धूमपान विधि ।

शिरसःसदनेस्रावेनासायाहृदितास्यति कासमतिश्यायरसेधूमंवैद्यःप्रयोजयेत् ॥ दशांगुलोन्मितांनाडीअथवाष्टांगुलोन्मिताम् । शरावसंपुटछिद्रेकृत्वाजिह्मांविचक्षणः ॥ वैरेचनंमुखेनैवकासवान्धूममापिबेत् । तमुरःकेवलंप्राप्तंमुखेनैवोद्वमेत् पुनः ॥ सद्यस्यतैक्ष्ण्याद्विक्षिप्यश्लेष्माणमुरसिस्थितम् ॥ निष्कृष्यशमयेत्कासं वातश्लेष्मोभयोद्भवम् ॥

अर्थ——खांसी और जुकाममें जो शिरमें वेदना, नासास्राव और हृदय में वेदना होतीहो तो धूमपान करावै । आठ वा दसे अंगुलकी एक नली लेकर एक शराव सम्पुट के छिद्र में लगा देवै यह नली टेढी होनी चाहिये (जैसा बहुधा हुक्कों मे देखने में आता है) इस शराव सम्पुट अर्थात् चिलम में वातनाशक द्रव्योंको धरकर ऊपर से अग्नि रखदे और पूर्वोक्त नली को मुंह में लगाकर धूँआं खींचै । जब यह धूँआं वक्षःस्थल के भीतर पहुंच जाय तब इसे मुख के रस्ते सेही बाहर निकाल देवै । इस धूँए की तेजी से छाती में जमाहुआ कफ खिंचकर बाहर निकलजाता है । इस रीति से वातकफजन्य खांसी दूर होजाती हैं ॥

धूमपान का प्रयोग और गुण ।

मनःशिलालयष्ट्याह्वमांसीमुस्तेंगुदैःपिबेत् । धूमंतस्यानुचक्षीरंसुखोष्णंसगुडंपिबेत् ॥एपकासान्पृथग्दोषसन्निपातोद्भवान्जयेत् । मसह्यपर्यसंसिद्धानन्यैर्योगशतैरपि ॥

अर्थ—मनसिल, हरिताल, मुलहटी, जटामांसी, मोथा और गोंदी इन को पूर्वोक्त रीति से पीवै ऊपर से गुनगुने दूध में गुड डालकर पीवै । यह धूमपान पृथक् २ दोष तथा सन्निपात से उत्पन्न हुई खांसी को दूर कर देता है तथा जो अन्य सैंकडों प्रयोगों से भी खांसी दूर नहीं हुई है वह इससे दूर होजाती है ।

धूमपानके अन्यप्रयोग ।

प्रपुण्डरीकमधुकंशार्ङ्गेष्टालेमनःशिलाम् । मरिचंपिप्पलींद्राक्षामेलांसुरसमञ्जरीम् ॥ कृत्वावर्त्तिपिवेद्धूमंक्षौमश्चैलानुवर्त्तिताम् । घृताक्तामनुचक्षीरंगुडोदकमथापिवा ॥ मनःशिलैलामरिचक्षाराञ्जनकुटन्नटैः । वंशलोचनशैवालक्षौमलक्तकरोहिषैः ॥ पूर्वकल्पेनधूमोऽयंसानुपानोविधीयते । आलंमनःशिलातद्वत्पिप्पलीनागरैःसह त्वगैंगुदीबृहत्योद्वेतालमूलंमनःशिला । कार्पासास्थ्यश्वगन्धाचधूमःकासविनाशनः ॥

अर्थ—पुण्डरिया, मुलहटी, शार्गेष्टा (घंटारवा), हरिताल, मनसिल, कालीमिरच, पीपल, दाख, इलायची, तुलसीकी मंजरी, इन सबको पीसकर बत्तीसीवना एक रेशमी कपडेमें लपेटै फिर इसे घीमें भिगोकर धूमपानकरै । पीछे दूध वा गुड का शरबत पीवै ॥ अथवा मनसिल, इलायची, कालीमिरच, जवाखार, अंजन, कैवटीमोथा, वंशलोचन, शैवाल, अलसी, लाख, रोहिषतृण इनसबकी पूर्वोक्त रीतिसेबत्ती बनाकर धूमपान करै। तथा पूर्वोक्त अनुपानका सेवनभी करै । अथवा हरिताल, मनसिल, पीपल और सोंठकी बत्ती बनाकर पूर्वोक्त रीतिसे धूमपान करै । अथवा गोंदाकी छाल, दोनोंकटेरी, तालमूली, मनसिल, बिनौला और असगंध का भी पूर्वोक्त रीति से धूमपान करने पर खांसी दूर होजातीहै ॥

यूपादिप्रयोग ।

ग्राम्यानूपौदकैःशालियवगोधूमषष्टिकान् रसैर्माषात्मगुप्तानांयूषैर्वादापयेद्धितान्॥ यवानीपिप्पलीविल्वमध्यनागरचित्रकैः। रास्नाजाजीपृथक्पर्णीपलाशशटिपौष्करैः स्निग्धाम्ललवणांसिद्धांपेयामनिलजेपिबेत् । कटीहृत्पार्श्वकोष्ठार्तिश्वासहिक्काप्रणाशनीम् ॥ दशमूलरसेतद्वत्पञ्चकोलगुडान्विताम् । पिवेत्समतिलांपेयांक्षीरेवापिससैन्धवाम् ॥ मत्स्यकौक्कुटवाराहैरामिषैर्वाघृतान्वितैः। सिद्धांससैन्धवांपेयांवातकासीपिबेन्नरः ॥ वास्तुकंवायसीशाकंमूलकंसुनिषण्णकम् । स्नेहास्तैलादयोभक्ष्याःक्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ दध्यारनालाम्लफलप्रसन्नापानमेवच । शस्यतेवातकासेतुस्वाद्वम्ललवणानिच ॥

अर्थ—ग्राम्य, आनूप, और औदक मांस रसोंके साथ अथवा कैंच के बीजके यूष के साथ शालीचांवल, जौ, गेहूं, और साठी चांवल देवै । अजवायन, पीपल, बेलगिरी सोंठ, चीता, रास्ना, जीरा, पृष्णपर्णी, पलास, कचूर, पौष्कर । इन सबको समान भाग लेकर इनका क्वाथ करै इस क्वाथमें चिकनाई, खटाई और नमक डालकर पेया

सेवन करावे। दोनों काकोली दोनों कटेरी, मेदा, महा मेदा, अडूसा और सोंठ इनके साथ पित्त कास में मांसरस, यूप या दूध बनाकर देवै। शरादि पंचमूल, पीपल और दाख इनके कषाय के साथ औटाया हुआ दूध शहत और चीनी डालकर पान करावे ॥

स्थिरादि दूध वा घृत

स्थिरासितापृश्निपर्णीश्रावणीबृहतीयुगैः।
जीवकर्षभकाकोलीतामलक्यर्द्धिजीरकैः॥
शृतंपयःपिबेत्कासीज्वरीदाहीक्षतक्षयी।
तज्जंवासाधयेत्सर्पिःसक्षीरेक्षुरसंभिषक्॥

अर्थ—शालिपर्णी, चीनी, पृश्निपर्णी, श्रावणी, महाश्रावणी, कटेरी, बडी कटेरी, जीवक, ऋषभक, काकोली, भूम्यांबला, ऋद्धि जीरा इन के साथ औटाया हुआ दूध पीने से खांसी, ज्वर, दाह, क्षत और क्षय दूर होजाते हैं अथवा इन्ही द्रव्यों के साथ दूध और ईखकारस डालकर सिद्ध कियाहुआ घी हितकारी होता है।

जीवकाद्यैर्मधुरकैःफलैश्चाभिषुकादिभिः।
कल्कैस्त्रिकार्षिकैःसिद्धेपूतशेपेचसर्पिषि॥
शर्करापिप्पलीचूर्णस्त्वक्क्षीर्यामरिच स्यच। शृङ्गाटकस्यचावाप्यक्षौद्रगर्भान् पलोन्मितान्॥ गुडान्गोधूमचूर्णेनकृत्वा खादेद्दिनाशनः। शुक्रासृग्दोषशोषेषुकासेक्षीणक्षतेषुच॥ शर्करानागरोदीच्यं कण्टकारींशठींसमाम्। पिष्ट्वारसंपिबे त्पूतंवस्त्रेणघृतमूर्च्छितम्॥ माहिष्यजा विगोक्षीरधात्रीफलरसैःसमैः॥ सर्पिः सिद्धंपिबेद्युक्त्यापित्तकासनिबर्हणम्॥

अर्थ—जीवकादि मधुरगणोक्त दस द्रव्य, मधुरफल तथा पिस्तादि फल ये तीन तीन कर्ष लेकर इनका क्वाथ करै और चौथाई शेष रहनेपर घृत सिद्ध करै और इसमें शर्करा, पीपल, वंशलोचन, कालीमिरच, सिंघाडा, इन सब को समानभाग लेकर उक्त घीमें डालदे और इस घीमें गेंहूका चून सेककर एक एक पलके ऐसे मोदक बनावै जिनके बीच में शहत भराहो। इसके सेवनसे शुक्रदोष रक्तदोष, शोष, खांसी, और क्षीण क्षतरोग शान्त होजाते हैं।

सोंठ, नेत्रवाला कटेरी और कचूर समान भाग लेके पीसकर रस निकालले इसमें चीनी और घृत डालकर सेवन करै। भैंस का दूध, बकरीका दूध, भेडका दूध, गौका दूध, आंवलेका रस, इन सबको समानभाग लेकर इनमें सिद्ध कियाहुआ घी युक्तिपूर्वक सेवन करनेसे पित्तकी खांसी दूर होजातीहै।

कफजकासमेंचिकित्साक्रम।

बलिनंवमनैरादौशोधयेत्कफकासिनम्। यवान्नैःकटुरूक्षोष्णैःकफघ्नैश्चाप्युपाचरेत्॥ पिप्पलीक्षारिकैर्यूपैःकौलत्थमूलकस्यच॥लघून्यन्नानिभुञ्जीतरसैर्वाकटुकान्वितैः।धान्वबैलरसैःस्नेहैःतिलसर्षपबिल्वजैः।मध्वम्लोष्णाम्बुतक्रंवामद्यंवा निगदंपिबेत्॥

अर्थ—कफकी खांसी वाला रोगी जो बलवान् हो तो प्रथम वमन देकर संशोधन करै फिर कफनाशक कटु, रूक्ष और उष्ण प-

दार्थोंसे संस्कार कियाहुआ यवान्न देवै । पीपल और जवाखार डालकर कुलथी वा मूली के यूषके साथ हलके अन्नका भोजन करावै अथवा कटुरसोंसे तयार कियाहुआ धान्वदेशज अथवा बिलेशयों का मांसरस देवै, अथवा तिल, सरसों और बिल्वके तेलके साथ भोजन करावै ऊपर से मधु, कांजी, गरमजल, छाछ मद्य वा निगद सेवन करावै ॥

कफजकास में पेयद्रव्य।

पौष्करारग्वधमूलंपटोलान्तंनिशास्थितम् । जलंमधुयुतंपेयंकालेष्वन्नस्यवात्रिषु॥ कट्फलंकत्तृणंभार्गीमुस्तंधान्यंवचाभयाम् । शुण्ठीपर्पटकःशृङ्गीसुराह्वञ्चशृतंजले॥ मधुहिंगुयुतंपेयंकासेवातकफात्मके कण्ठरोगेमुखेशूलेश्वासहिक्काज्वरेपुच ॥

अर्थ—पोहकरमूल, अमलतासकी जड परवल इनको रात्रि में भिगोदेवै, दूसरेदिन भोजन के समय इस जल में शहत डालकर पीवै । अथवा कायफल गंधतृण, भाडंगी, मोथा, धनियां, वच, हरड, सोंठ, पित्तपापडा, काकडासींगी इनका क्वाथ करके शहत और भुनीहुई हींग डालकर पीवे, इस से वातकफ की खांसी, कंठरोग, मुखरोग, शूल श्वास, हिचकी और ज्वर दूर होजाते हैं ।

पाठांशुण्ठींशटींमूर्वांगवाक्षींमुस्तपिप्पलीम् पिष्ट्वाघर्माम्बुनाहिंगुसैन्धवाभ्यांयुतांपिवेत् ॥ नागरातिविषामुस्तंशृङ्गीकर्कटकस्यच । हरीतकीशटींचैवतेनैवविधिना पिवेत् ॥ तैलभृष्टंचपिप्पल्याःकल्कांक्षंसितोत्पलम् । पिवेद्वाश्लेष्मकासघ्नंकुलत्थरससंयुतम् ॥ कासमर्दाश्वविट्भृङ्गरजोवार्ताकजारसाः । सक्षौद्राःकफकासघ्नाःसुरसस्यासितस्यच ॥ देवदारुशटीरास्नाकर्कटाख्यादुरालभा । पिप्पली नागरंमुस्तंपथ्याधात्रीसितोपलाः ॥ मधुतैलयुतावेतौलेहौवातानुगेकफे ॥

अर्थ—पाठा, सोंठ, कचूर, मरोडफली इन्द्रायण, मोथा, पीपल इनको पीसकर हींग और सेंधानमक मिलाकर गरमजलके साथ पान करै । अथवा सोंठ, अतीस, मोथा, काकडासीगी, हरड और कचूरको पीस हींग और सेंधानमक डालकर गरमजल के साथ पीवै । अथवा पीपलके तोलेभर कल्कको तेलमें भूनकर मिश्री डालकर कुलथी के रसमें मिलाकर पीवै इससे कफकी खांसी दूर होजातीहै । अथवा कसोंदी के पत्तोंका रस, घोडेकी लीद का रस, भांगरेका रस, बेंगनका रस, शहतके साथ मिलाकर पीवै, अथवा काली तुलसी के पत्तों का रस शहत डालकर पीवै । अथवा (१) देवदारु, कचूर, रास्ना, काकडासीगी, जवासा, अथवा (२) पीपल, सोंठ, मोथा, हरड, आंवला और मिश्री इनदोनो प्रयोगों को शहत और तेलमें मिलाकर चाटनेसे वातानुबंधी कफकीखांसी दूर होजातीहै

कफजकासनाशक चार प्रयोग ॥

पिप्पलीपिप्पलीमूलंचित्रकोहस्तिपिप्पली पथ्यातामलकीधात्रीभद्रमुस्तानिपिप्पली देवदार्वभयामुस्तंपिप्पलीविश्वभेषजम् । विशालापिप्पलीमुस्तंत्रिवृताचेतिलेहयेत्

उनको पित्तकास में कहाहुआ पथ्य देना चाहिये । तथा इस पथ्य में दूध, घी और मधु का अधिक भाग होना चाहिये । परन्तु उन खांसियों में जो दो २ दोषों के मेल से उत्पन्न हुई हैं उन में कुछ विशेषता होती है, यथा —वातपित्त की खांसी में शरीर में भेदनवत् पीडा होनेपर घृत से अभ्यंग करावै । वायुकी अधिकता होनेपर वातनाशक तैलों को काम में लावै, जो हृदय और पसली में वेदना की अधिकता होतो जीवनीय द्रव्यों से सिद्ध कियाहुआ घृत हितकर होता है । ऐसे खांसीवालोंको जिनके दाह हो, कफके साथ रुधिर आता हो, जठराग्नि प्रवल हो और उनको मांस भक्षण अनुकूल हो तो लावादिक पक्षियोंका मांसरस पान करावै । जो तृषाकी प्रवलता हो तो शरमूलादि द्रव्यों को डालकर औटाया हुआ बकरी का दूधदेवै । जिस के नाक या मुख के रस्ते से रुधिर जारी हो । उसे दूध से निकलाहुआ घी पानकरावै वा उसकी नस्य देना हितकर होता है, जो रोगी थकगया हो, क्षीण होगया हो या उसकी अग्नि मन्द पडगई हो तो उसे यवागू पान करावै । देह की स्तम्भता या आयाम के होने पर घीकी उत्तम अर्थात् वडी मात्राका पान करावै । इस में पित्तरक्त से अविरोधी वात नाशक क्रिया भी हितकर होती है ।

धूमपान के द्रव्य ।

निवृत्तेक्षतदोषेतुकफेवृद्धउरःशिरः ।
दाल्यतेकासिनोपस्यसधूमान्पिवेदिमान् ॥
द्वेमेदेमधुकंद्वेचवलेतैःक्षौमलक्तकैः । वर्ति तंधूममापीयजीवनीयघृतंपिवेत् ॥ मनः
शिलापलाशाजगन्धात्वक्षीरिनागरैः ।
भावयित्वापिवेत्धूमंशर्करेक्षुगुडोदकम् ॥
पिष्ट्वामनःशिलांतुल्यामार्द्रयावटशुंगया
ससर्पिष्कंपिवेद्धूमंतित्तिरिमतिभोजनम् ।
भावितंजीवनीयर्वाकुलिङ्गाण्डरसायुतैः ।
क्षौमंधूमंपिवेत्क्षीरंमृतंचायोगुडैःपिवेत् ॥

अर्थ—जो छाती का क्षत मिटजाय और उसके उत्तेजक वातपित्त दोषभी शान्त हो जाय । परन्तु कफ वढजाय और उस कफ के वढने से शिर में दटने कीसीपीडा हो, तो निम्न लिखित धूमपान हितकर होतेहैं। मेदा, महामेदा, मुलहटी, वला, नागवला, इनको पीसकर रेशमी वस्त्र में और चिथडे में लपेटकर घी में भिगोकर धूमपान करै । धूमपान करने के पीछे जीवनीय घृत का सेवन करै । मनसिल, पलाश, अजगन्ध, वंशलोचन और सोंठ इनको पीसकर पूर्वोक्त रीति से वत्ती तयार कर के धूमपान करै॥ तदनन्तर गुडका शरवत वा शर्करेक्षु (चीनी का शरवत—ईखकारस) पानकरै ॥ वडकी हरी कोपल और मनसिल ये दोनों समानभाग लेकर पीसले और घीमें सानकरै पूर्ववत् धूमपान करै, पीछे, तीतर के मांस रसके साथ पथ्य लेवै । अथवा जीवनीय गणोक्त द्रव्य और चिरोंटे के अण्डे इन के रसकी रेशमीवस्त्रमें भावना देकर सुखाले और इसकी वत्ती वनाकर धूमपान करै और ऊपरसे गरम गरम लोहे के गोले डालकर गरम किया हुआ दूध पान करावै ।

क्षयज कास में चिकित्साक्रम।

सम्पूर्णरूपंक्षयजंदुर्बलस्यविवर्जयेत्। नवोत्थितंवलवतःमत्वाख्यायाचरेत्क्रियाम्॥ तस्मैबृंहणमेवादौकुर्यादग्नेश्चवर्द्धनम्। बहुदोषायसस्नेहंमृदुदद्याच्चशोधनम्॥

अर्थ—यदि क्षयकी खांसी अपने पूर्ण रूप पर पहुंच गई हो और रोगी दुर्वल हो तौ उसकी चिकित्सा न करै। और जो रोग नया हो और रोगी भी बलवान् हो तौ यह कहकर चिकित्सा करै कि "आराम होगा तौ होजायगा और न होगा तौ खैर,, ऐसे रोगी को प्रथमही बृंहणकर्त्ता और अग्निवर्द्धक औषध देनी चाहिये और जो बहुत दोषों से रोगी युक्त हो तौ मृदु स्निग्ध विरेचन देवै।

क्षयजकास में विरेचन।

शम्पाकेनत्रिवृतयामृद्वीकारसयुक्तया। विल्वकस्यकषायेणविदारीस्वरसेनच॥ सर्पिःसिद्धंपिवेद्युक्त्याक्षीणदेहोविशोधनम्। हितंतद्देहवलयोरस्यसंवरणंमतम्॥

अर्थ—अमलतासका गूदा और निसोथ इसमें दाखका रस डालकर घी सिद्ध करके पान करावै अथवा निसोथ और विदारीकन्द के कषाय में घृत सिद्ध करके देवै। यह क्षीण देहवालोंके लिये उत्तम विरेचन है। इस रोग में देह के वलकी रक्षाकरना आवश्यकीय है॥

पित्तेकफेचसंक्षीणेपरिक्षीणेषुधातुषु॥ घृतंकर्कटकीक्षीरद्विवलासाधितंपिवेत्॥ विदारीभिःकदम्वैर्वातालशस्यैस्तथाघृतम्॥ घृतंपयश्चमूत्रस्यवैवर्ण्येकृच्छ्रएवच शूलेसवेदनेमेढ्रपायौसश्रोणिवंक्षणे॥ अनुवास्योघृतमण्डेनमधुनामिश्रकेणवा।

अर्थ—पित्त और कफके क्षीण होने पर तथा धातुओंके क्षीण होने पर काकडासींगी, खरैटी, नागवला इनको पीसकर इनमें इनसे चौगुना दूध और चौथाई घी डालकर सिद्ध करै। अथवा मूत्रकी विवर्णता और मूत्रकृच्छ्र में विदारीकन्द अथवा कदंब अथवा ताड़ के अंकुरोंके साथ पाक कियाहुआ घी दूध देवै। मेढ़, गुदा, श्रोणी और वंक्षण में शूल तथा वेदना होनेपर शहत मिलेहुए घृतमंड की अनुवासन वस्ति देवै अथवा घी और तेल मिलाकर अनुवासन देवै।

जाङ्गलैःप्रतिभुक्तस्यवर्तकाद्याविलेशयाः॥ क्रमशःप्रसहाश्चैवप्रयोज्याःपिशिताशिनः औष्ण्यात्प्रमाथिभावाच्चस्रोतोभ्यःच्यावयन्तिते।कफंशुद्धैश्चतैःपुष्टिंकुर्यात्सम्यग्वहन्रसः॥

अर्थ—जांगल, वर्त्तकादिक विलेशय तथा मांसाहारी प्रसहोंका मांस क्रमसे देवै, इनका मांस उष्ण और प्रमाथी होने से स्रोतों से कफको निकाल देताहै। जब सब स्रोत शुद्ध होजाते हैं तब उनमें अच्छीतरह वहता हुआ रुधिर शरीरको पुष्ट करदेता है॥

दशमूलादि घृत।

चविकात्रिफलाभार्गीदशमूलैःसचित्रकैः कुलत्थपिप्पलीमूलपाठाकोलयवैर्जले॥

भूतैर्नागरदुःस्पर्शापिप्पलीशठिपौष्करैः॥ कल्कैः कर्कटशृङ्गचासमैःसर्पिर्विपाचयेत् ॥ सिद्धेऽस्मिंश्चूर्णितौक्षारौद्वौपञ्चलवणानिच । दत्वायुक्त्यापिबेन्मात्रांक्षयकासनिपीडितः ॥

अर्थ—चव्य, त्रिफला, भाडंगी, दशमूल चीता, कुलथी, पीपलामूल, पाठा, वेर और जौ इनके क्वाथ में सोंठ, जवासा, पीपल, कचूर, पौहकरमूल और काकडासींगी इन सबका समान समान कल्क डालकर घृत पकावै घृत पकनेपर दोनों क्षार और पांचों नमक डाल युक्तिपूर्वक मात्राके अनुसारपीवै इससे क्षयकी खांसी दूर होजाती है ।

गुडूच्यादि घृत ।

गुडूचींपिप्पलींमूर्वांहरिद्रांश्रेयसींवचाम् निदिग्धिकांकासमर्दपाठांचित्रकनागरम् जलेचतुर्गुणेपक्त्वापादशेषेणतत्समम् । सिद्धंसर्पिःपिबेद्गुल्मश्वासार्तिक्षयकासनुत् ॥

अर्थ—गिलोय, पीपल, मरोडफली, हलदी, गजपीपल, वच कटेरी, कसोंदी, पाठा, चीता, सोंठ, इनसबका चौगुने जल में क्वाथकरै, चौथाई शेष रहनेपर घृत पकाकर सेवन करै । इस घृतसे गुल्म, श्वास, और क्षयजकास दूर होजाती है ॥

कासमर्दादि घृत ।

कासमर्दाभयामुस्तपाठाकट्फलनागरैः। [illegible] ...सुरसेनच [illegible] ...आढके । पचेच्छोषज्वरप्लीहसर्वकासहरंशिवम् ॥

अर्थ—कसोंदी, हरड, मोथा, पाठा, कायफल, सोंठ, पीपल, कुटकी, खंभारी और तुलसी इनसबको एक २पल लेकर इन का क्वाथ करै । इसमें दूध और दाखका रस एक आढक डालकर एक प्रस्थ घी पकाकर सेवन करै तो शोप, ज्वर, प्लीहा और सम्पूर्ण प्रकारकी खांसी दूर होजाती है ॥

धात्री फलादि घृत ।

धात्रीफलैः क्षीरसिद्धैः सर्पिराप्यत्वचूर्णितम् । द्विगुणेदाडिमरसेविपक्कंव्योपसंयुतम् ॥ पिबेदुपरिभक्तस्ययवक्षारघृतं नरः । पिप्पलीगुडसिद्धंवाछागक्षीरयुतं घृतम् ॥ एतान्यग्निविवृद्ध्यर्थंसर्पींषिक्षयकासिनाम् । स्युर्दोषवद्धकोष्ठोरःस्रोतसांचविशुद्धये ॥

अर्थ—दूधमें आंवलोंको पकाकर उनकी गुठलीनिकाल डालै फिर इनकी लुगदी बना घृतमें पकावै अथवा घी से दुगना अनारका रस इसमें त्रिकुटा डालकरपकावै। तथा भोजन करनेके पछि जवाखारके साथ सिद्ध किये हुए घृतका पान करै अथवा पीपल, गुड, वकरीका दूध और घृत इनको सिद्ध करके देवै । ये घृत क्षयकासवाले रोगी की अग्नि वढाने में उपयोगी होते हैं तथा इनके सेवन करनें से दोषों की विवद्धता, कोष्ठ और उरःस्रोत शुद्ध होजातेहैं।

हरीतक्यावलेह ।

हरीतकीयवक्वाथद्व्याढकेविंशतिंपचेत् । स्विन्नामृदित्वातास्तस्मिन्पुराणंगुडपट्पलम् ॥ दद्यान्मनःशिलाकर्पकर्पार्धंचर-

साञ्जनात् । गुडयावञ्जनपिप्पल्याःस्ले
हःश्वासकासनुत् ॥

अर्थ—हरड़ नग बीस लेकर जौ के दो आढक क्वाथमें पकावे सीजनेपर गुठलियां निकालकर पीसडाले इनमें छ. पल पुराना गुड़ डालकर तथा एक कर्ष मनसिल, आधा कर्ष रसौत, आधा कुडव पीपल ये सब पीसकर डालदेवे । इस लेहका सेवन करने से श्वास और खांसी दूर होजाते हैं ॥

अन्य अवलेह ।

भाविपःशृनपोद्भ्याःसघृतक्षौद्रशर्कराः।
श्वासकासहरावर्हिपादोवाक्षौद्रसर्पिषा ।
एरण्डपत्रक्षारंवाव्योषतैलगुडान्वितम् ।
सुरसैरण्डपत्राणांविधिनानेनलेहयेत् ।
द्राक्षापद्मकवार्ताकपिप्पली क्षौद्रसर्पिषा ।
त्रिजातव्यूषणचूर्णवापुराणगुडसर्पिषा ॥
शिवर्कीभफल्गाजाजीकर्कटाख्यकटुत्रिक
म् । द्राक्षाञ्चक्षौद्रसर्पिर्भ्यांलिह्यादथवा
गुडेनवा ।

अर्थ—मोरके पांखों की भस्मको घी, शहद और चीनी मिलाकर चाटे अथवा मोर के पंजोंकी भस्म को घी और शहद के साथ चाटने से श्वास और कास दूर होजाते हैं, अथवा अरंडी के पत्तों का क्षार त्रिकुटा मिलाकर गुड और तेल के साथ चाटे अथवा इसी भांतिसे तुलसी और अरंडी के पत्तोंका क्षार चाटे । दाख, पद्माख, बैंगन, पीपल इनके चूर्ण को घी और शहद के साथ चाटे अथवा उस में त्रिकुटा का चूर्ण, पुराना गुड़ और घी मिला कर चाटे । चौ-ला, त्रिफला, आंवला, काकडासींगी, त्रिकुटा और दाख इनको घी, शहद और गुड़ के साथ चाटे ।

पद्मकाद्यवलेह ।

पद्मकंत्रिफलाव्योषंविडङ्गंसुरदारुच ॥
बलांरास्नांचतुल्यानिसूक्ष्मचूर्णानिकार-
येत्॥ सर्वैरेभिःसमंचूर्णैःपृथक्क्षौद्रघृतं-
सिताम् । विमथ्यलेहयेल्लेहंसर्वकासापहं
शिवम् ॥

अर्थ—पद्माख, त्रिफला, त्रिकुटा वाय-विडंग, देवदारु, खरैंटी, रास्ना, इनसबको समान भाग लेकर महीन पीसले और इनमें चीनी, शहद और घी प्रत्येक चूर्ण के बराबर मिलाकर चाटे । इससे सम्पूर्णप्रकारकी खांसी दूर होजातीहै ।

जीवन्त्याद्यवलेह ।

जीवन्तींमधुकंपाठांत्वक्क्षीरींत्रिफलांश-
टीम् । मुस्तैलपद्मकंद्राक्षांद्वेबृहत्यौवितुन्न
कम् ॥ शारिवांपुष्करंमूलंकर्कटाख्यांर
साञ्जनम् । पुनर्नवांरजोलौहंत्रायमाणां
यवानिकाम् ॥ भार्गीतामलकींऋद्धिंवि
डङ्गंधन्वयासकम् । क्षारौचित्रकचव्याम्ल
वेतसव्योषदारुच ॥ चूर्णीकृत्यसमांशा
निलिह्यात्क्षौद्रसर्पिषा । चूर्णात्पाणितलं
पञ्चकासानेषव्यपोहति ॥

अर्थ....जीवन्ती, मुलहटी, पाठा, वंश-लोचन, त्रिफला, कचूर, मोथा, छोटी इला-यची, पद्माख, द्राक्षा, दोनों कटेरी धनियां शारिवा, पुष्करमूल, काकडासींगी, रसौत, सांठ, लोहचूर्ण, त्रायमाणा, अजवायन,

भोजनमें अरुचि ये तीन वमनके पूर्वरूपहैं

वातजवमनका निदान ।

व्यायामतीक्ष्णौषधशोकरोगभयोपवासा द्यतिकर्शितस्य।क्रुद्धोमहास्रोतसिमातरिश्वा दोषान्समुत्क्लिश्यतदूर्द्ध्वमस्यन्।आमा शयोद्रेककृतश्चमर्ममपीडयेच्छर्दिरुदीरयेच।

अर्थ—व्यायाम, तीक्ष्ण औषध, शोक रोग, भय और उपवास से अत्यन्त कृश हुए मनुष्य के महास्रोतों में वायु कुपित हो कर दोषोंको उत्क्लिष्ट करके ऊपर को फेंकती है तथा हृदयादि मर्मस्थानोंको पीडित करके वमनको करतीहै । यह वमन आमाशयके उद्रेकसे भी होती है ॥

वातजवमन के लक्षण ॥

हृत्पार्श्वपीडामुखशोषमूर्द्धनाभ्यर्तिकास स्वरभेदतोदैः।उद्गारशब्दप्रबलंसफेनंविच्छि न्नकृष्णतनुकंकषायम्॥कृच्छ्रेणचाल्पंमह ताचवेगेनार्त्तोऽनिलाच्छर्दयतीहदुःखम्॥

अर्थ—हृदय और पसली में वेदना,मुख-शोष, नाभिके ऊपर पीडा, खांसी, स्वरभेद तोद, और डकारमें अत्यन्त शब्द होताहै । तथा झागदार, फटीहुई कष्टकर पतली कसी-ली, अत्यन्त कष्ट से, थोडी, और अत्यन्त वेगवती वमन होतीहै । वातज वमन बडी दुखदाई होतीहै ।

पित्तजवमनका निदान ॥

अजीर्णकट्वम्लविदाह्यशीतैरामाशयेपि त्तमुदीर्णवेगम्॥रसायनीभिर्विसृतंप्रपीड्य मर्मोर्द्ध्वमागम्यवमिंकरोति ॥

अर्थ—अजीर्णमें कडवे, खट्टे, विदाही और उष्ण पदार्थोंके अत्यन्त सेवनसे आमा-शयमें पित्त अत्यन्त उदीर्ण होकर रसवाही स्रोतोंके द्वारा फैलकर मर्मस्थान को पीडित करके ऊपरको उठकर वमन करताहै ॥

पित्तजवमनके लक्षण ॥

मूर्च्छापिपासामुखमूर्द्धकण्ठताल्वक्षिसन्ता पतमोभ्रमार्त्तः।पित्तंभृशोष्णंहरितसतिक्तं धूम्रञ्चपित्तेनवमेत्सदाहम् ॥

अर्थ—पित्तज वमन में मूर्च्छा पिपासा, मुख, मूर्द्धा, कठ, तालु, अक्षि, इनमें संताप अंधकार, छाना; चक्कर आना, ये लक्षण होते हैं । तथा इसमें अत्यन्त उष्ण, तीखे, धूंआं और दाहयुक्त पित्त निकलते हैं ॥

कफज वमनका निदान ।

स्निग्धातिगुर्वामविदाहिभोज्यैः । स्वप्ना दिभिश्चैवकफोऽतिवृद्धः ॥उरःशिरोमर्मर सायनीश्चासर्वाःसमावृत्यवमिंकरोति ॥

अर्थ—स्निग्ध, भारी, आम और विदाही भोजनों के करने से अथवा बहुत सोने से कफ अत्यन्त वृद्धि पाकर, हृदय, शिर, मर्म स्थान, और रसवाही स्रोतों को घेरकर व-मन उत्पन्न करता है ॥

कफजवमनका लक्षण॥

तन्द्रास्यमाधुर्यकफप्रसेकसन्तोषनिद्रारु चिगौरवार्त्तः।स्निग्धंघनंस्वादुकफंविशुद्धं सलोमहर्षोऽल्परुजंवमेत्तु॥

अर्थ....कफज वमनमें तन्द्रा मुख में मी-ठापन कफ प्रसेक, सन्तोष तथा नि द्रा, अरुचि, भारापन, और वेदना होती है तथा वमन में चिकनाई, गाढापन, मिष्टता

मेवतस्मात् । आकारयेन्मारुतजंविमुच्य संशोधनंवाकफपित्तहारि ॥

अर्थ—सब प्रकारकी वमन आमाशय के उत्क्लेश से उत्पन्न होती है इससे वमन में प्रथम लंघन कराना हितहै । तत्पश्चात् कफपित्तनाशक संशोधन देवै । परन्तु वातज वमन में ऐसा नहीं कियाजाता है ॥

कफपित्तनाशक वमन विरेचन ।

चूर्णानिलिह्यान्मधुनाभयानांहृद्यानिवायानिविरेचनानि ।मद्यैःपयोभिश्चयुतानियुक्तानयन्त्यधोदोषमुदीर्णमूर्ध्वम् ॥ वल्लीफलाद्यैर्वमनंपिबेद्वायोदुर्बलस्तंशमनैश्चिकित्सेत् । रसैर्मनोज्ञैर्लघुभिर्विशुष्कैर्भक्ष्यैःसभोज्यैर्विविधैःसपानैः ॥

अर्थ—हरडका चूर्ण शहतके संग चाटै अथवा अन्य द्रव्य भी जो हृदयप्रिय और विरेचन कर्ताहों उन्हें मद्य वा दूध के संग सेवन करै, ऐसा करने से ऊपरको उठे हुए दोष फिर नीचेको चले जाते हैं । अथवा वल्लीफलादि द्वारा वमन करावै । दुर्बल मनुष्यको संशोधन न देवै उसकी संशमन क्रिया करना उचितहै । दुर्बल मनुष्य को मनके अनुकूल लघु मांसरस शुष्क भोजन तथा अनेक प्रकार के पेय द्रव्य देवै ।

सुसंस्कृतास्तित्तिरिबर्हिलावारसाव्यपोहन्त्यनिलमवृत्तम् । छर्दिस्तथाकोलकुलत्थमाषबिल्वादिमूलाम्बुयवैश्चयूषाः ॥

अर्थ—अच्छी तरह संस्कार किये हुए तीतर, मोर, लावा इनके मांसरस बढीहुई वातज वमनको शान्त करदेते हैं इसी तरह बेर, कुलथी, उरद, बिल्वादि पंचमूल का क्वाथ और जौ का यूष भी वातजवमन को दूर करता है ।

वातज वमनकी चिकित्सा ।

वातात्मकेहृद्रुवकासयुक्तोनरः पिबेत्सैन्धववद्घृतन्तु । सिद्धंतथाधान्यकनागराभ्यांदध्नाचतोयेनचदाडिमस्य ॥ व्योषेणयुक्तांलवणैस्त्रिभिश्चघृतस्यमात्रामथवा विदध्यात् । स्निग्धानिहृद्यानिचभोजनानिरसैःसयूषैर्दधिदाडिमाम्लैः ॥

अर्थ—वातज वमनमें जो हृदय में फडफडाहट हो तथा खांसी हो तो उसे सेंधानमक मिलाकर घृतपान करावे अथवा सोंठ और धनिये को पीसकर दहीके साथ सिद्ध किये घृत में डालकर पानकरै, अथवा अनार के रस में घृतको सिद्ध करले अथवा उक्त घृत में त्रिकुटा और तीनों नमक डालकर मात्राके अनुसार पान करै और दही तथा अनारकी खटाई डालकर मांस रस और यूषके साथ स्निग्ध और हृद्य भोजन देवै ॥

पित्तजवमनमेंचिकित्सा ।

पित्तात्मिकायामनुलोमनार्थंद्राक्षाविदारीक्षुरसैस्त्रिवृत्स्यात् । कफाशयस्थन्त्वतिमात्रवृद्धं । पित्तंहरेत्स्वादुभिरूर्ध्वमेव ॥ शुद्धायकालेमधुशर्कराभ्यां ॥ लाजैश्चमन्थंयदिनापिपेयाम् ॥ मदापयेन्मुद्गरसेनवापि । शाल्योदनंजांगलजैरसैर्वा ॥ सितोपलामाक्षिकपिप्पलीभिःकुल्माषलाजायवसक्तुगृञ्जान्॥ खर्जूरमांसान्यथ-

नारिकेलं द्राक्षामथोवाबदराणिलिह्यात्। स्रोतोजलाजोत्पलकोलमज्ज ॥ चूर्णानि लिह्यान्मधुनाभयाञ्च॥ कोलास्थिमज्जाञ्जनमक्षिकाविड् लाजासितामागधिकां कणान्वा ॥

अर्थ—पित्तजवमन में अनुलोमन के लिये दाखरस, विदारी रस वा ईखरस के साथ निसोथ देवै और जो अत्यन्त बढा हुआ पित्त कफाशय में स्थितहो तो स्वादु औषधियों द्वारा वमन करावै । इस तरह शुद्ध होने पर खीलोंके मन्थ में शहत और शर्करा डालकर पान करावै अथवा शहत और शर्करा डालकर पेयादेवै अथवा मूंग के यूष के साथ वा जांगल मांसरस के साथ शाली चांवलों का भात देवै । अथवा कुल्माष, खील और जौ का सत्तू गृंजनचूर्ण, खजूर का गूदा, नारियल, दाख, अथवा बेर में शहत, पीपल और मिश्री मिला कर सेवन करै।अथवा रसोत, ,खील,नीलकमल और बेर इनके चूर्णको शहत और हरडके साथ चाटै अथवा बेरकी गुठली का गूदा, रसोत, मक्खीका विष्टा, खील, मिश्री और पीपलके बीज लेकर शहत के साथ चाटै ॥

द्राक्षारसंवापिपिवेत्सुशीतंमृत्स्नष्टलोष्टमभसंजलंवा । जम्ब्वाम्रयोःपल्लवजंकषायंपिबेत्सुशीतंमधुसंयुतंवा ॥ निशिस्थितं वारिसमुद्गकृष्णसोशीरधान्यश्चणकोदकं वा । गवेधुकामूलजलंगुडूच्याजलंपिबेदिक्षुरसंपयोवा ॥ सेव्यंपिबेत्काञ्चनगैरिकंवासवालकंतण्डुलधावनेन । धात्री रसेनोत्तमचन्दनंवातृष्णावमिघ्नानिसमाक्षिकाणि॥कल्कंतथाचन्दनचव्यमांसीद्राक्षोत्तमावालकगैरिकाणाम् । शीताम्बुनागैरिकशालिचूर्णमूर्वातथातण्डुलधावनेन ॥

अर्थ—दाख के काथको ठंडा करके पान करै अथवा मिट्टी के डेलेको आग में तप्त करके जलमें बुझावै और उस जलको ठंडा होनेपर पीवै और जामन और आमके पत्तों का क्वाथ ठंडा करके शहत मिलाकर पीवै । अथवा मूंग और पीपल रात्रिमें जल में भिजो देवै । और प्रातःकाल छान कर पीवै अथवा रात्रिमेंचना खस, और धानियां जल में भिजोवै प्रातः काल उस जल को छानकर पीवै अथवा गवेधुकाकी जड और गिलोय भिजोकर प्रातःकाल पीवै अथवा ईखका रस और दूध पीवै । अथवा खस, कांचनगेरू और नेत्रवाला को भिजोकर चांवलके जलके साथ पीवै अथवा आंवले के रसमें सफेद चन्दन घिसकर पीवै अथवा तृषानाशक और वमननाशक औषधोंमें शहत डालकर पीवै । अथवा रक्तचन्दन, चव्य,जटामांसी, हिंगु, नेत्रवाला, गेरू इनके कल्कको चांवल जल के साथ पीवै अथवा गेरू, शालीचूर्ण दोनों को मिलाकर ठंढे जलके साथ पीवै अथवा [illegible] चांवलके जलके साथ पीवै ।

कफकी वमन में चिकित्सा

कफात्मिकायांवमनंप्रशस्तंसपिप्पलीसर्षपनिम्बतोयैः । पिण्डीतकैःसैन्धवसम्प्र-

युक्तैर्वम्यांकफामाशयशोधनार्थम् ॥ गोधूमशालीन्सयवान्पुराणान्यूषैःपटोलामृताचित्रकाणाम् । व्योषस्यनिम्बस्यचतक्रासैर्द्वैर्यूषैःफलाम्लैःकटुभिस्तुवाद्यात्। रसांश्चशूल्यानिचजाङ्गलानांमांसानिजीर्णान्मधुशीध्वरिष्टान् । रागांस्तथाखाडवपानकानिद्राक्षाकपित्थैःफलपूरकैश्च ॥

अर्थ—कफात्मक वमनमें कफाशय और आमाशयका शोधन करनेकें निमित्त पीपल सरसों, नीमका क्वाथ, मेनफल और सैंधानमक मिलाकर वमन देवै । पुराने गेहूं शालीधान्य और जौको परवल, गिलोय और चीतेके यूपके साथ देवे अथवा त्रिकुटा डाल कर मठाके साथ वा नीमके क्वाथ के साथ सिद्ध किये हुए मठे के साथ अथवा फलाम्ल और कटुद्रव्यों के साथ सिद्ध किये हुए यूप के साथ देवै । जांगल मांसरस वा जांगल मांस शूलपर भुना हुआ पुराना शहत शीधु, अरिष्ट, रागपाडव और दाख, कैथ वा बिजौरे के रस के साथ सिद्ध किये हुए पानक सेवन करावै ।

मुद्गान्सगोधूमयवान्कलायान्भृष्टान्युतान्नागरमाक्षिकाभ्याम्॥ अथात्तथैवात्रिफलाविडङ्ग । चूर्णविडङ्गप्लवयोरथोवा॥ सजाम्बवंतंवाबदरस्यचूर्णमुस्तायुतांकर्कटकस्यशृंगीम्॥दुरालभांवामधुसम्प्रयुक्तालिह्यात्कफछर्दिविनिग्रहार्थम् ॥ मनःशिलायाःफलपूरकस्यरसैःकपित्थस्यचपिप्पलीनाम् ॥ क्षौद्रेणचूर्णमरिचैश्चयुक्तांलिहन्जयेत्छर्दिमुदीर्णवेगम् ॥

अर्थ—मूंग, गेहूं जौ और मटर इनको घीमें तलकर सोंठ और शहत मिलाकर सेवन करै अथवा त्रिफला और वायविडंग का चूर्ण शहत के साथ चाटै अथवा वायविडंग और केवटी मोथा को शहतके साथ चाटै अथवा जामनकी मींगी और बेरकी मींगी का चूर्ण बना कर शहत के साथ सेवन करै अथवा मोथा और काकडासींगी वा जवासा इनके चूर्णको शहतके साथ सेवन करै । इनसे कफकी वमन शान्त होजाती है ॥ बिजौरे वा कैथके रसके साथ मनसिल का चूर्ण सेवन करनेसे वा पीपल और कालीमिरच का चूर्ण शहतमें मिलाकर सेवन करनेसे उदीर्ण वेगवाली वमन दूर होजातीहै।

सान्निपातिक वमन में चिकित्सा ।

यैषापृथक्त्वेनतयाक्रियोक्तातांसन्निपातेऽपिसमीक्ष्यबुद्ध्यादोषर्तुदेहाग्निबलान्यवेक्ष्यमयोजयेत्शास्त्रविदप्रमत्तः ॥

अर्थ—जुदे २ दोषोंसे उत्पन्न हुई वमन की जो जो जुदी जुदी क्रिया वर्णन कीगई हैं वे सम्पूर्ण क्रिया दोष ऋतु,देह अग्नि और बलकी परीक्षा करके अत्यन्त सावधानीसे सन्निपातज वमन के दूर करनेके लिये प्रयुक्त करै

दुष्टसंयोगजवमन में उपाय

मनोभिघातेतुमनोनुकूलावाचःसमाश्वासनहर्षणानि।लोकप्रसादःश्रुतयोवयस्याःशृङ्गारिकाश्चैवहिताविहाराः॥गन्धाविचित्रामनसोऽनुकूलाघृतपुष्पशुक्लाम्लफलादिकानाम्॥शाकानिभोज्यान्यथपानकानिसुसंस्कृताःखाडवरागलेह्याःयु-

पारसाकाम्वालिकाःखडाश्चमांसानिधा नाविधाश्चभक्ष्याः ॥ फलानिमूलानि चगन्धवर्णे रसैरुपेतानिवमिञ्जयन्ति॥ गन्धंरसंस्पर्शमथापिशब्दंरूपञ्चयद्यत्प्रि यमप्यसात्म्यम् ॥ तदेवकुर्यात्प्रशमायत स्यास्तज्जोहिदोषःसुखएवजेतुम् ॥

अर्थ—जो वमन मनमें किसी प्रकार की घृणा उत्पन्न होनेसे होती हैं उसमें मन के अनुकूल वाणी, संतोषदायक वचन, प्रसन्न करनेवाली कहानियां समानवयवाली स्त्री से संगमन, तथा शृंगारादि हितकर विहार उत्तम होते हैं। मनके अनुकूल अनेकप्रकार के सुगंधित द्रव्य,खिलेहुए फूलोंकी सुगंधि, शाक, भोजनके पदार्थ, पानक अच्छी तरह से संस्कार कियेहुए षाडव, मुरब्बे, अवलेह अनेक प्रकार के यूप, रस, काम्बलिक यूष खडयूष, मांस, धान, अनेक प्रकारके भक्ष्य पदार्थ, अनेक प्रकार के गंध, वर्ण और रसों से युक्त फल मूल का सेवन वमनको दूर करताहै। जो जो गंध, रस, स्पर्श, शब्द और रूप रोगीको प्रियहों यद्यपि ये गंधादि असात्म्य भी होतो भी रोगकी नि वृत्तिके लिये इनका प्रयोग करे क्योंकि मन की घृणासे उत्पन्न हुए रोग मनोऽनुकूल पदार्थोंके सेवनसेही सुखपूर्वकदूरकरनेमेंआतेहैं

वम्युत्थितानांचचिकित्सितंस्याच्चिकित्सि तंकार्यमुपद्रवाणाम्। अतिप्रवृत्तासुविरेच नस्यकर्मातियोगेविहितंविधेयम् ॥ वमि प्रसङ्गात्पवनोऽप्यवश्यंधातुक्षयाद्वृद्धिमुपै तितस्मात् ॥ चिरप्रवृत्तास्वनिलापहानि कार्याण्युपस्तम्भनबृंहणानि ॥ सर्पिर्गुडा क्षीरविधिर्घृतानिकल्याणकत्र्यूषणजीव नानि ॥वृष्यास्तथामांसरसाःसलेहाश्चि रप्रसक्ताश्चवमिंजयन्ति ॥

अर्थ—जो चिकित्सा वमन के दूर करने की होती है वही चिकित्सा वमन से उत्पन्न हुए उपद्रवों में भी कीजाती है तथा विरेचन के अतियोग होने में जो जो चिकित्सा नि- रूपण कीगई है वेही वेही चिकित्सा वमन के अतियोग में भी होतीहै। वमनके प्रसंग से धातुओं के क्षीण होजानेपर वायु अवश्य हीबढजातीहै अतएव पुराने वमन रोग में वातनाशक, स्तम्भन और बृंहण क्रियाकरे। सर्पिगुड, क्षीरविधि,कल्याण घृत,त्र्यूषणघृत जीवनीय घृत, वृष्यप्रयोग मांसरस और अवलेह इनसे बहुत दिन की पुरानी वमि दूर होजाती है ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन।

संख्यांहेतुंलक्षणमुपद्रवान्। साध्यतांच योगांश्चछर्दीनामुक्तवान्प्राह चिकित्सि तमुनिवर्य ॥

अर्थ—इस वमन चिकित्सिताध्यायमें पुनर्वसुने वमन रोगोंकी संख्या, हेतु, लक्षण उपद्रव, साध्यासाध्य विचार और औषध वर्णन कीहै।

इति श्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचि- तायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायां चिकित्सितस्थानेछर्दिचिकित्सितंनाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

--::--

चतुर्विंशोऽध्यायः॥

अथातस्तृष्णाचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम तृषाचिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे।

ज्ञानप्रशमतपोभिःख्यातोऽत्रिसुतोजगद्धितेऽभिरतः।तृष्णानांप्रशमार्थंचिकित्सितंप्राहपञ्चानाम् ॥

अर्थ—जो भगवान् आत्रेय अपने ज्ञान शान्ति और तपोगुणसे जगत् में विख्यात हैं और संसारके हितमें दत्तचित्तहैं वे पांच-प्रकार के तृष्णारोगोंकी शान्तिका उपाय वर्णन करने लगे।

तृषा रोग का हेतु।

क्षोभाद्भयाच्छ्रमादपिशोकात्क्रोधाद्विलंघनान्मद्यात्॥क्षाराम्ललवणकटुकोष्णरूक्षशुष्कान्नसेवाभिः॥ धातुक्षयगदकर्षणवमनाद्यतियोगसूर्यसन्तापैः।पित्तानिलौप्रवृद्धौसौम्यान्धातूंश्चशोषयत॥ रसवाहिनीश्चनालीर्जिह्वामूलगलतालुक्लोम्नः। संशोष्यनृणांदेहेकुरुतःतृष्णांमहाबलावेतौ॥पीतंपीतंहिजलंशोषयतस्तमतोनयातिशमम्। घोरव्याधिकृशानांभवत्युपसर्गभूतासा॥

अर्थ—क्षोभ, भय, श्रम, शोक, क्रोध, लंघन, और मद्यपान के करने से, खारे,खट्टे, नमकीन, कडवे, गरम, रूखे और सूखे अन्न के सेवन से, धातुकी क्षीणता, रोग के कारण कृशता, वमनातियोग और सूर्य सन्ताप से पित्त और वात बढकर ये दोनों महाबली सौम्यधातुओं को सुखाते हुए रस वाहिनी नाडी, जिह्वामूल, गला, तालु और पिपासास्थान इन को सुखाकर मनुष्य की देह में तृष्णा को उत्पन्न करते हैं, जल पीते पीते सूखता चला जाताहै और किसी तरह से तृषाकी शान्ति नहीं होती। जो मनुष्य घोर व्याधि के कारण कृश होगये हैं उन के उपद्रव सहित तृष्णा उत्पन्न होती है।

तृषाका प्राग्रूप।।

प्राग्रूपंमुखशोषःस्वलक्षणंसर्वदाम्बुकामित्वम् ॥

अर्थ....मुखशोष, तृषाका लक्षण और सदैव जलपान की इच्छा ये तृषा के पूर्वरूपहैं।

तृष्णानांसर्वासांलिङ्गानांलाघवमपायः॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकार की लक्षणवाली तृष्णाओं का लाघवही अपाय है।

तृषा के लक्षण।

मुखशोषस्वरभेदभ्रमसन्तापप्रलापसंस्तम्भान्। ताल्वोष्ठकण्ठजिह्वाकर्कशतां चित्तनाशञ्च ॥ जिह्वानिर्गममरुचिंबाधिर्यंमर्मणान्दवसादम्। तृष्णोद्भूतान् जयेत्पञ्चविधांलिङ्गतःशृणुताम् ॥

अर्थ—मुखशोष, स्वरभंग, भ्रम, संताप, प्रलाप, संस्तम्भ, तालु शोष, कंठ और जिह्वा में कर्कशता, चित्तनाश, जिह्वा का बाहर निकलना, अरुचि, बधिरता, मर्मों में ताप और शिथिलता ये लक्षण तृषा रोग में होते हैं। तृषापांच प्रकार की होती है अ-

व इनके पृथक् पृथक् लक्षणों का वर्णन किया जाता है ॥

वातजतृषाकाहेतु ॥

अब्धातुंदेहस्थंकुपितःपवनोयदाविशोषयति।तस्मिन्शुष्केशुष्यत्यबलस्तृष्यंश्व-विशुष्यन् ॥

अर्थ—पवन कुपित होकर जब देहस्थ जलधातु को सुखा देती है तब उस के सूखने पर दुर्बल मनुष्य शुष्क होजाता है और शुष्क होने से उसे तृषा उत्पन्न होती है।

वातज तृषाका लक्षण।

निद्रानाशःशिरसोभ्रमस्तथाशुष्कविरसमुखता। श्रोत्रोपरोधइतिचस्याल्लिङ्गंवा-ततृष्णायाः ॥

अर्थ—निद्रानाश, सिरका घूमना, मुखमें सूखापन और विरसता, कानों में सुन्नताये लक्षण वात की तृष्णा में होते हैं।

पित्तज तृषका हेतु।

पित्तंमतंकुपितमाग्नेयंकुपितंचेत्तापयत्यपांधातुम्। सन्तप्तःसहिजनयेत्तृष्णांदाहोल्वणांनृणाम् ॥

अर्थ—प्रथमकहचुके हैं कि पित्त आग्नेय होता है और जब यह कुपित होजाता है तब जल धातु को तप्त करता है और जल धातु तप्त होकर मनुष्योंके दाहाधिक्य तृषा को उत्पन्न करती है।

पित्तजतृषा के लक्षण।

तिक्तास्यत्वंशिरसोदाहःशीताभिनन्दिताऽमूर्च्छा। पीताक्षिमूत्रवर्चस्त्वमाकृतिःपित्ततृष्णायाः ॥

अर्थ—मुख में कडवापन, सिर में दाह, शीतलवस्तु में स्पृहा, मूर्च्छा, नेत्र, मूत्र और विष्ठामें पीलापन ये पित्तजतृषाके लक्षणहैं।

कफज तृषा।

तृष्णायामप्रभवासाप्याग्नेय्यामपित्तजनितत्वम्। लिङ्गंतस्याश्चारुचिराध्मानकफसेकौच ॥

अर्थ—जो तृषा आमसे उत्पन्न होती है वह आग्नेय होतीहै, क्योंकि वह आमाश्रित पित्तसे उत्पन्न होती है। अरुचि, आध्मान् और कफप्रसेक इसके लक्षण हैं।

देहोरसजोऽम्बुभवारसश्चतस्यक्षयाच्चतृष्येत्तु। दीनस्वरःप्रताम्यन्दीनःसंशुष्कहृदयगलतालुः ॥ भवतिखलुसोपसर्गान्तृष्णासाभवतिशोषणीकष्टाज्वरमेहक्षयशोषश्वासाद्युपसृष्टदेहानाम् ॥ सर्वास्त्वतिप्रसक्तारोगकृशानांवमिप्रसक्तानाम्। घोरोपद्रवयुक्तास्तृष्णामरणायविज्ञेया ॥॥

अर्थ—रससे देह उत्पन्न होताहै और रस जलसे होताहै, इससे रसधातुके क्षीण होनेसे तृषा उत्पन्न होतीहै। इस तृषामें स्वर क्षीण होजाताहै, दीनता होजाती है हृदय, गला और तालु शुष्क होजाताहै।

ज्वर, प्रमेह, क्षयी, शोष और श्वासादि उपद्रवों से युक्त मनुष्य के जो तृषा उत्पन्न होती है वह सोपद्रव होती है, इसे शोषणी कहते हैं, यह कष्टसाध्य होतीहै। सब प्रकार की अत्यन्त प्रसक्त तृषा, तथा रोग से कृश पुरुषोंकी तृषा, वमन रोगियों की

तृषा तथा घोर उपद्रवों से युक्त पुरुषों की तृषा मनुष्य की मृत्युकारक होती है ।

अग्नि और पवनको तृषाकाकारणत्व ।

नाग्निविनाहितर्षःपवनाद्वातौहिशोषणेहेतू अब्धातोरतिवृद्धावपांक्षयेतृष्यतिनरोहि

अर्थ—अग्नि और पवन के विना तृषा उत्पन्न नहीं होती है क्योंकि येही जलधातु को सुखानेवाली है इसतरहजल धातु के अत्यन्त क्षीण होने ही से तृपारोगउत्पन्न होता है ॥

तृषा के अन्यकारण ।

गुर्वन्नपयःस्नेहैःसंमूर्च्छद्भिर्विदाहकालेच। यस्तृष्येद्धृतमार्गौतत्राप्यानिलानलौहेतू॥ तीक्ष्णोष्णरूक्षभावान्मद्यंपित्तानिलौप्र-कोपयति । शोपयतोऽपांधातुंतावाशुमद्य शीलानाम् ॥ तप्तास्विवसिकतासुहितदा शुमद्यतोयंविशुष्यति । क्षिप्रंतेपांसन्तप्ता नांहिमजलपानाद्भवतिमर्म ।शिशिरस्ना तस्योष्मारुद्धःकोष्ठंप्रपद्यतर्षयति। तस्मा न्नोष्णः क्लान्तोभजेतसहसाजलंशीतम् लिङ्गंसर्वास्वेतास्वनिलक्षयात्पित्तजंभव त्ययतु । पृथगागमाच्चिकित्सितमतःप्रव क्ष्यामितृष्णानां ॥

अर्थ—पाचिक होते हुए भारीअन्न, दूध औरघृतादि पदार्थोंके विदाहकालमें तृपा उत्पन्न होतीहै । इसमें भी रुकेहुए मार्ग वाले जल और अग्निही हेतुहैं । तीक्ष्ण और रूक्ष भावोंके कारण मद्य पित्त और वायुको कुपित करता है । येही पित्त और वायु मद्यप मनुष्यकी जलधातु को शुष्क कर देतेहैं । गरमवालूमें जल डालनेसे जल शुष्कहोजाता है उसी तरह मद्यसे संतप्त मनुष्योंके ठंडा जलपान शुष्कहोकर मर्म को सुखादेताहै । सहसा ठंडे जल के स्नानसे ऊष्मा रुककर कोष्ठमें पहुंचकर तृपा उत्पन्न करतीहै इस लिये गरमीका माराहुआ मनुष्य शीघ्रही शीतल जलसे स्नान न करै ।इन ऊपर वर्णन कियेहुए सम्पूर्ण कारणों में वायु के क्षीण होनेसे पित्तज तृपाके लक्षण होतेहैं । अब हम सब प्रकारकी तृपाओंकी पृथक्२चिकित्सा वर्णन करतेहैं ॥

तृपारोगमें चिकित्सा ।

अपांक्षयाद्धितृष्णासंशोष्यनरंप्रणाशये दाशु । तस्मादैन्द्रंतोयंसमधुपिबेत्तद्गुणं वान्यत् ॥ किञ्चित्तुवरानुरसंतन्नालघुशी तंसुगन्धिसुरसम् । अनभिष्यन्दिचयत्त त्क्षितिगतमप्यैन्द्रवज्ज्ञेयम् ॥ शृतंशीतं ससितोपलमथवाशरपूर्वपञ्चमूलेन । ला जासक्तुसिताक्तान्मधुयुतमैन्द्रेणवामन्थं॥ वाट्यावासुयवानांशीतमधुशर्करायुतंदद्या त् ।पेयांवाशालीनांद्राक्षाकोरदूषाणाम् पयसाशृतेनभोजनमथवामधुशर्करायुतंभो ज्यम् । पारावतादिकरसैर्घृतभृष्टैर्वाप्य लवणाम्लैः ॥ तृणपञ्चमूलमुञ्जातकैःपि यालैश्चजांगलाःसुकृताःशस्ताःरसाःपयो वातैःसिद्धंशर्करामधुमत् ॥

अर्थ—जलधातु के क्षीण होनेसेही तृष्णा मनुष्यको सुखाकर शीघ्र मारडालतीहै । इसलिये तृपारोगमें आन्तरीक्षजल शहत मिलाकर या तद्गुण विशिष्ट अन्य जल

पीना चाहिये । पृथ्वीमें गिराहुआ जल भी जिसमें कुछ कसीलापन और हलकापन, ठंडापन, सुगन्धि, सुरसता और अनभिष्यन्दता होती है वह आन्तरीक्ष जलके समान नहीं होता है । जलको औटाकर वा शरादि पंचमूल का क्वाथ करके मिश्री डालकर पीवै । खील का सत्तू मिश्री मिलाकर वा शहत और मन्थको आन्तरीक्ष जलमें घोलकर देवै ॥ अथवा जौकी वाट्य में ठंडा होनेपर शहत और चीनी मिलाकर देवै अथवा शालिचांवल वा कोदों की पेया देवै अथवा औटेहुए दूध में शहत और चीनी डालकर उसके साथ भोजन करै अथवा पारावतादि पक्षियोंके मांसरसको घी में भूनकर बिना नमक और खटाईके सेवन करै अथवा तृण पंचमूल, मूंज और पियालके क्वाथके साथ जांगल मांसरस अच्छीतरह पक्व करके सेवन करै । अथवा उन्हीं तृणपंचमूलादि में दूध औटाकर शहत और चीनी डालकर पीवै ॥

शतधौतघृतेनाक्तःपयःपिबेच्छीततोयमवगाह्य॥मुद्गमसूरचणकजारसास्तुभृष्टाघृते देया॥मधुरैःसजीवनीयैःशीतैश्चसतिक्तकैः शृतंक्षीरं । पानाभ्यञ्जनसेकेष्विष्टंमधुशर्करायुक्तंतज्जं॥ वाघृतमिष्टंपानाभ्यङ्गेपुनस्यमपिचस्यात्॥ नारीपयःसशर्करमुष्ट्या अपिनस्यमिक्षुरसः ॥

अर्थ—सौबार धुले हुए घीकी देह पर मालिश करके ठंडे जलसे स्नान करके दूध पीवै । मूंग, मसूर और चनेके यूप को घी में भूनकर देवै । अथवा मधुरगण, जीवनीय गण और शीतल तिक्तद्रव्योंके साथमें औटायाहुआ दूध शहत और चीनी मिला हुआ पान, अभ्यंग और सेक में हितहै अथवा इसी दूधसे निकाला हुआ घी पान, अभ्यंग और नस्यमें हित होता है । चीनी मिलाकर स्त्रीका दूध, ऊंटनी का दूध, अथवा ईखका रस नस्य में हित है ॥

क्षीरेक्षुरसगुडोदकसितोपलाद्यैःक्षौद्रसीधुमाध्वीकैः । वृक्षाम्लमातुलुङ्गैर्गण्डूषास्तालुशोषघ्नाः ॥ जम्वाम्रातकबदरीनडवेतसपञ्चपल्लवैश्चाम्लाः । हृन्मुखशिरःप्रलेपाःसघृतामूर्च्छाभ्रमतृषघ्नाः॥ दाडिमदधित्थलोध्रैःसाविदारीवीजपूरकैः । शिरसःप्रलेपोगौरामलकैर्घृतारनालायुतैश्चहितः ॥

अर्थ—दूध,ईखका रस, गुडोदक, (गुड़ का शरबत), मिश्री का शर्वत, शहत, शीधु, माध्वीक, वृक्षाम्ल, बिजौरा, इनके रसके कुल्ले तालुशोषको दूर करते हैं । जामन, अंबाडा, बेर, बेल फल और पंचपल्लव इनके कल्कका घृत मिलाकर हृदय, मुख और सिर पर लेप करने से मूर्छा, भ्रम और तृषा नष्ट होजातीहै । अनार, कैथ लोध,विदारी और बिजौरा इनके कल्क का सिर पर लेप करनेसे अथवा कपूर और आंवलेको घी और कांजी में मिलाकर लेप करने से तृषा शान्त होजातीहै ।

शैवालपङ्कजलजैःसाम्लैःसघृतैश्चसक्तुभिर्लेपः । मस्त्वारनालकमलर्द्रवसनम-

णिहारसंस्पर्शाः॥ शिशिराम्बुचन्दनार्द्रा स्तनतटपाणितलसंस्पर्शाः। क्षौमार्द्रवसनानांवराङ्गनानांमियाणाञ्च ॥ हिमवद्दरीघनसरित्सरोम्बुजपवनेन्दुपादशिशिराणाम् । रम्यशिरोदकानांस्मरणञ्चकथाश्चतृष्णाघ्न्यः ॥

अर्थ—शैवाल, कीचड और कमलका लेप अथवा घी और खटाई मिलाकर सत्तू कालेप तृषाको शान्त करताहै । अथवा दही का तोड, कांजी, गीलावस्त्र, मणियों के हारका स्पर्श करने से भी तृषाशान्त होती है । शीतल जलसे आर्द्र या चन्दन लगी हुई नवबालाओंके स्तनों का और हाथोंका स्पर्श करने से तृषा शान्त होजातीहै। रेशमी गीले वस्त्रोंको धारण करनेवाली मनोहारिणी स्त्रियों का स्पर्श करने से भी तृषा शान्त होती है । हिमालयकी शीतल गुहा,वन, नदी, सरोवर, कमल, पवन, चन्द्रमाकी शीतल किरण, शिशिर ऋतु और रमणीक शीतल जलों के स्मरण करने से भी तृषा शान्त होतीहै ।

वातघ्नमन्नपानंमृदुलघुशीतञ्चवाततृष्णायाः । क्षतकासनुत्घृतक्षीरमूर्ध्ववातक्षयतृषांस्यात्। स्याज्जीवनीयसिद्धंक्षीरघृतंवातपित्तजतर्षे । पैत्तद्राक्षाचन्दनखर्जूरोशीरमधुयुतंतोयम् ॥ लोहितकशालितण्डुलखर्जूरपरूषकोत्पलद्राक्षाः। मधुपवकलोष्ठमेघचजलेशृतंशीतलंपयम्।लोहितशालितन्दुलमस्थःसलोध्रमधुकाञ्जनोत्पलः पद्मागलेष्ट्रमधुजलसमायुतोमृण्मयेपेयः

अर्थ—वातनाशक, मृदु, लघु और शीतल अन्नपान वातजतृष्णाका नाश करने वाला होता है । क्षत कासको नाश करने वाले घी को पीकर ऊपरसे दूध पी लेने से वातजतृषा क्षय होजातीहै। वातपित्तकी तृषा में जीवनीयगणोक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत और दूध हितकारकहै । पित्तकी तृषा में दाख, चन्दन, खजूर, खस इनके शीतल क्वाथ में शहत मिलाकर पीना चाहिये । लालशाली चांवल, खजूर, फालसा, नील कमल दाख इनको पीस कर जल में छान ले और एक मिट्टी के डेले को अग्नि में अच्छी तरह गरम कर के उस में बुझादे फिर ठंडा होने पर शहत मिलाकर पीवै । लालशाली चांवल एक प्रस्थ, लोध,मुलहटी रसौत और नीलकमल इनको पीसकर एक मिट्टी के पात्र में छान ले और गरम मिट्टी का डेला उस में बुझा कर ठंडा होने पर शहत मिलाकर पीवै ।

वटमातुलुङ्गवेतसपल्लवकुशकाशमूलयष्ट्याह्वैः ॥ सिद्धेऽम्भस्यग्निनिभाःकृष्णमृदःकृष्णासिकतावा । तप्तानिनवकपालान्यथवानिर्वाप्यपाययेताच्छम् ।सपाकशर्करयामृतवल्ल्युदकंतृपंहन्ति । क्षीरवतांमधुराणांशीतानांशर्करामधुविमिश्राः शीतकषायामृद्भृष्टसंयुताःपित्ततृष्णाघ्नाः

अर्थ—वड,बिजौरा, बेतके पत्ते, कुश, कांसकी जड,मुलहटी, इनको डालकर सिद्ध किये हुए जल में काली मिट्टी या काली बालू या नवीन खीपडोंको अग्नि के समान

बलवांस्तुतालुशोषेपिबेद्घृतनृष्यमनुमद्यम्। सर्पिर्भृष्टंक्षीरंमांसरसांश्चावलःस्निग्धान्। अतिरूक्षदुर्बलानांतर्षंशमयेन्नृणामिहाशुपयः ॥ छागोवाघृतभृष्टःशीतोमधुरोरसोहृद्यः। स्निग्धेऽन्नेभुक्तेयातृष्णास्यात्तांगुडाम्बुनाशमयेत् ॥तर्षमूर्च्छाभिहतस्यरक्तपित्तापहैर्हन्यात्।

अर्थ—तालुशोष में तृषायुक्त रोगी जो बलवान् हो तौ वृष्य घृतपान करै ऊपरसे मद्य का अनुपान करै। तथा जो रोगी निर्बल हो तौ दूध और घी में तले हुए स्निग्ध मांसरस देवै। अत्यन्त रूक्ष और दुर्बल मनुष्यों की तृषा दूध से शीघ्रही शान्त होजाती है अथवा बकरे का मांसरस सेवन करने से भी तृषा शान्त होजाती है। स्निग्ध अन्नके भोजन करनेसे जो तृषा उत्पन्न होतीहै वह गुडका शर्बत पीने से मिटतीहै। मूर्छारोगीकी तृषा रक्त पित्तनाशक औषधियोंसे दूर होतीहै।

शीतोष्णजलकीविधि।

छर्द्यम्लदाहमूर्च्छातमःक्लममदात्ययासविषपित्ते ॥ शस्तंस्वभावशीतंशृतशीतंसन्निपातेऽम्भः। हिक्काश्वासनवज्वरपीनसघृतपीतपार्श्वगलरोगे ॥ कफवातकृतेस्त्यानेसद्यःशुद्धेचहितमुष्णम्। पाण्ड्दरपीनसमेहगुल्ममन्दानलातिसारेषु ॥ प्लीहनिचयेतोयमशुभंकाममशक्येपिबेदल्पम् ॥

अर्थ—वमन, अम्लपित्त, दाह, मूर्छा, तम, क्लान्ति, मदात्यय, रक्तपित्त और विषरोगों में स्वभावशीतल जल हितकर होताहै और सन्निपातमें औटाकर ठंडाकिया हुआ जल हितावह है। हिचकी, श्वास, नवीनज्वर, पीनस, घृतपानजरोग, पार्श्ववेदना, कफवातरोग, कफका गाढापन और संशोधन के पीछे तत्कालही उष्णजल हित होता है। पांडुरोग, उदर रोग, पीनस, प्रमेह गुल्मरोग, मन्दाग्नि, अतिसार और प्लीहा इन में जल पीना अच्छा नहीं है। जो जल पिये विना काम न चलसके तौ बहुत थोडा पीना चाहिये।

पूर्वामयातुरःसंदीनस्तृष्णार्दितोजलंकांक्षन् ॥ नलभेतसचेन्मरणमाश्विवाप्नुयादीर्घरोगंवा। तस्माद्धान्याम्बुपिबेत्तृष्यन्रोगीसशर्कराक्षौद्रम् ॥ यद्वातस्यान्यत्स्यात्सात्म्यंरोगस्यतच्चेष्टम्। तस्यांविनिवृत्तायांतज्जन्योपद्रवःसुखञ्जेतुम् ॥ तस्मात्तृष्णापूर्वंजयेद्बहुभ्योऽपिरोगेभ्यः

अर्थ—रोग से पीडित तृषार्त्तमनुष्य यदि पानी चाहे और उसे न मिलै तौ वह शीघ्रही मरजाता है वा उस के कोई बडारोग होजाता है, इसलिये उसे धनिये का जल शहत और चीनी डालकर पान करावै अथवा रोग के अनुसार और कोई सात्म्य द्रव्य हो तौ उसे देवै। तृषा के शान्त होने पर उस से उत्पन्न हुए अन्य उपद्रव भी सुखपूर्वक दूर होजाते हैं। इसलिये सब रोगों से पहिले तृषा का उपाय करना उचित है ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

हेतूयथाक्षिपवनौकुरुतःसोपद्रवांचपञ्चा नां । तृष्णानांपृथगाकृतिरसाध्यतासा ध्यतासाधनंचोक्तम् ॥

अर्थ—इस तृषा चिकित्सित अध्याय में पांचों प्रकार की तृषा के हेतु अग्नि और वायु हैं और येही तृषाके साथ उपद्रवों को भी उत्पन्न करते हैं । इस अध्याय में तृ-षाकी पृथक् २ आकृति, साध्यता, असाध्य ता तथा साधन के उपाय वर्णन कियेगयेहैं ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचि तायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचि कित्सितस्थानेतृषाचिकित्सितंनाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

—:*:—

पंचविंशोऽध्यायः

अथातोविषचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम विष चिकित्सित नामकअध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

विष की उत्पत्ति ।

मागुत्पत्तिगुणान्योनिंवेगाँल्लिङ्गान्युप क्रमान् ॥ विषस्यमुवतःसम्यगग्निवेशनि बोधमे ॥ अमृतार्थसमुद्रेतुमथ्यमानेसुरा सुरैः । जज्ञेप्रागमृतोत्पत्तेःपुरुषोघोरदर्श नः ॥ दीप्ततेजाश्चतुर्दंष्ट्रोहरित्केशोऽनले क्षणः ।जगद्दृष्ट्वाविषण्णन्तंविषंतस्माद्वि पादनात् ॥

अर्थ—आत्रेय बोले कि हे अग्निवेश ! मैं तेरे साम्हने विषकी उत्पत्ति, गुण, योनि वेग, लक्षण और चिकित्सा को वर्णन करता हूं तू सावधानी से सुन । जब देवता और राक्षसों ने मिलकर अमृत के लिये समुद्र को मथा था तब अमृत के उत्पन्न होने से पहिले एक ऐसा पुरुष निकला जिसका बडा भयंकर रूप था, उसमें बडा तेजथा, चार डाढ थीं, हरे केश थे और उसकी आंखें अग्निके समान थीं, उस पुरुष को देखकर सम्पूर्ण जगत् विषण्ण अर्थात् विषाद युक्त होगया, इस विषाद के कारणही से उसको विष कहने लग गये ॥

विषकी योन्यादि संख्या ।

जङ्गमस्थावरायांतयोनौब्रह्मान्ययोजयत् तदम्बुसम्भवंतस्माद्द्विविधंपावकोपमम् अष्टवेगंदशगुणंचतुर्विंशत्युपक्रमम् ।

अर्थ—ब्रह्माने इस विष को स्थावर और जंगम दो योनियों में स्थापित कर दिया इसी हेतु से अग्निके समान तीक्ष्ण यह ज-लसे उत्पन्न हुआ विषदो प्रकारका होताहै । विष में आठ वेग, दस गुण और चौबीस प्रकारकी चिकित्सा होती है ॥

तद्वर्षास्वम्बुयोनित्वात्संक्लेदंगुडवद्गतम् सर्पत्यम्बुधरापायेतदगस्त्योहनास्तिच । मयातिगन्दवीर्यत्वंविषंतस्माद्धनात्यये ।

अर्थ—विषकी योनि जल है इससे यह वर्षाऋतु में क्लेदताको प्राप्त होकर गुडकी तरह पतला पडजाता है और पृथ्वी में बह ने लगता है तथा वर्षा के अन्त में जब अ-गस्त्य का उदय होता है तब विष नष्ट हो-

जाता है और इसी हेतु से वर्षा के पीछे विप मन्दवीर्य पडजाता है ।

जंगम विपकी योनि ।

सर्पाःकीटोन्दुराळूताद्यश्चिकागृहगोधिकाः जलौकामत्स्यमण्डूकाःशलभाःसकृकण्टकाः । श्वसिंहव्याघ्रगोमायुतरक्षुनकुलादयः ॥ दंष्ट्रिणोयेविपंतेपांदंष्ट्रोत्थंजङ्गमतम् ।

अर्थ—सर्प, कीट, चूहा, मकडी, बीछू, छपकली, जोक, मछली, मेंढक, चींटी, किरकेंटा, कुत्ता, सिंह, व्याघ्र, सिरकटा, तरक्षु, और नकुल आदि ये दंष्ट्री अर्थात् दांत वाले होते हैं इनकी डाढ लगने से जो विप उत्पन्न होता है उसे जंगम विप कहते हैं।

स्थावर विपका वर्णन ।

मुस्तकंपौष्करंक्रौञ्चंवत्सनाभंवलाहकम्। फर्कटंकालकूटेन्द्रकरवीरकसञ्ज्ञकम् ॥ गालवेन्द्रायुधंतैलंमेघकंकुशपुष्पकम् ॥ रोहिपपुण्डरीकाक्षंलाङ्गलव्यञ्जनाभकम् । संङ्कोचंमर्कटंशृंगिविषहालाहलंतथा ।एवमादीनिचान्यानिमूलजानिस्थिराणिच

अर्थ—मुस्तक, पौष्कर, क्रौंच, वत्सनाभ बलाहक, कर्कट, कालकूटेन्द्र, करवीरक, गालव, इन्द्रायुध, तेल, मेघक, कुशपुष्पक, रोहिप, पुण्डरीकाक्ष, लांगली, अंजनाभक संकोच,मर्कट, शृंगीविप, हालाहल तथा ऐसे ही और भी मूलज और धातुज विपहोते हैं

गरविप का वर्णन ।

गरसंयोगजंचान्यद्गरसंज्ञमुदाहृतम् ॥ कालान्तरविपाकित्वान्नतदाशुहरत्यसून् ।

अर्थ—विपके संयोगसे उत्पन्न हुआ संयोगी विप होताहै इसे गरविप कहते हैं यह रोगोंको उत्पन्न करताहै इसका विपाक बहुत दिनके पीछे होताहै इससे वह प्राणों को शीघ्र नष्ट नहीं करता है ।

जंगम विप के कार्य ।

निद्रांतन्द्रांक्लमंदाहंसपाकंलोमहर्षणम् ॥ शोफंचैवातिसारञ्चजनयेज्जंगमंविषम्॥

अर्थ—निद्रा, तन्द्रा, क्लान्ति, दाह, पाक रोमहर्पण, सूजन और अतिसार ये सब जंगम विपके कर्म हैं ॥

स्थावर विपके कर्म ।

स्थावरंतुज्वरंहिक्कांदन्तहर्षंगलग्रहम् ॥ फेनवम्यरुचिश्वासमूर्छाश्चजनयेद्विपम् ।

अर्थ—ज्वर, हिका, दन्तहर्प, गलग्रह, झाग, वमन, अरुचि, श्वास और मूर्च्छा, इनको स्थावरविप उत्पन्न करताहै ॥

दोनोंविपोंका परस्पर विरोध ।

जंगमंस्यादधोभागमूर्द्धभागंतुमूलजम् ॥ तस्माद्दंष्ट्रिविषंमौलंहन्तिमौलंचदंष्ट्रजम् ।

अर्थ—जंगमविप अधोगामी होताहै और स्थावर, विप ऊर्ध्वगामी होताहै, इससे जंगम विप स्थावरविपको और स्थावर विप जंगमविपको मारता है ।

सातोंवेगोंके कर्म ।

तृष्णामोहदन्तहर्षप्रसेकवमथुक्लमाभवन्त्याद्यौवेगेरसप्रदोषादसृक्प्रदोषाद्द्वितीयेच वैवर्ण्यभ्रमवेपथुमूर्च्छाजृम्भांगचिमिचिमातमकाः ॥दुष्टपिशितात्तृतीयमण्डलकण्डूश्वयथुकोठाः । वातादिजास्तुर्येछर्दि

विष को त्रिदोषानुगामित्व ।

दोषस्थानप्रकृतीःप्राप्यान्यतमंह्युदीरयति ॥ स्याद्वातिकस्यवातस्थानेकफपित्तलिंगमीषत्तु । तृण्मूर्छारुचिमोहगलग्रहछर्दिफेनादिःपित्ताशयिस्थितंपैत्तिकस्य कफवातयोर्विषंतद्वत् । तृट्कासज्वरवमथुक्लमदाहतमोऽतिसारादि ॥ कफदेशगतञ्चकफस्यदर्शयेद्वातपित्तयोश्चैतत् ॥ लिंगंश्वासगलग्रहकण्डूलालावमथ्वादि॥ दूषीविषंतुशोणितदुष्टकिटिभकोठादिरक्तलिंगञ्च॥विषमेकैकंदोषंसन्दूष्यहरत्यसू नेवम्।

अर्थ—विष दोष के स्थान और प्रकृति को प्राप्त करके एक दोषको उदीर्ण कर देताहै अर्थात् जौनसा दोष अधिक होता है उस की स्थान और प्रकृति को प्राप्तकर के उसी दोषको बढाताहै जैसे वात प्रकृति वाले मनुष्यके वातस्थानमें जाकर वातज तृष्णा, मूर्च्छा, अरुचि, मोह, गलग्रह, छर्दि और फेनादि उत्पन्न करताहै और उस समय कफपित्तके लक्षण कम पाये जाते हैं । पित्त प्रकृति वालेके पित्ताशय में जाकर पित्तज तृषा, खांसी, ज्वर, वमन क्लान्ति, दाह, अन्धकार और अतिसारादि उत्पन्न करता हैं तथा कफ वात के लक्षण कम पाये जातेहैं । इसी तरह विषके कफ स्थान में जाने से कफजन्य श्वास, गलग्रह, कण्डू लालास्राव और वमथु आदि होते हैं तथा वातपित्तके लक्षण कम पाये जाते हैं ॥ तथा दूषीविष रक्तको दूषित करके किटिभ, पित्ती आदि रक्तज उपद्रवोंको करताहै । इसतरह विष एक एक दोष को दूषित करके प्राणों को नष्ट करदेताहै ॥

विष से मरने के हेतु॥

क्षरतिविषतेजसासृक्तत्खानिनिरुद्ध्यमारयतिजन्तून्। पीतंमृतस्यहृदितिष्ठतिदष्टविद्धयोर्दंशदेशेस्यात् ॥

अर्थ—विषके तेजसे रक्त क्षरित होकर अर्थात् झडकर रोमके छिद्रोंको रोककर मनुष्योंको मार डालताहै । पान किया हुआ विष मृतकके हृदय में स्थित होजाताहै और काटे हुए वा विषसे बुझे तीर आदि से घायल हुए मनुष्य के विष दंश स्थान में स्थित होताहै ॥

विषद्वारा मृत्युलक्षण ।

नीलौष्ठदन्तशैथिल्यकेशपतनांगभंगविक्षेपाः । शिशिरैर्नलोमहर्षोनाभिहतेदण्डराजीच ॥ क्षतजंक्षताच्चनायात्युक्तान्येतानिमरणलिंगानि ॥

अर्थ— ओष्ठोंपर नीलापन' दातोंमें शिथिलता, बालोंका गिरना,अंग भंग, अंगविक्षेप, शीतल वस्तु से रोमाञ्च न होना,लकडी से चोट मारनेपर शरीर पर दाग न पडना,तथा घाव से रुधिर न निकलना ये सब विष द्वारा मरने के लक्षणहैं ॥

विष में चिकित्सा भेद ।

एभ्योऽन्यथाचिकित्स्यास्तेषांश्चोपक्रमान्शृणुमे ॥ मन्त्रारिष्टोत्कर्त्तनीनिष्पीडनचूषणाग्निपरिषेकाः ।अवगाहनरक्तमोक्षणवमनविरेकोपधानानि।हृदयावरणा-

ञ्जननस्यधूमलेहौषधप्रशमन।नि।प्रतिसारणंप्रतिविषसंज्ञासंस्थापनंलेपः ॥ मृतसञ्जीवनमेवचविंशतिरेतेचतुर्भिरभ्यधिकाः स्युरुपक्रमायथायत्रयोज्याःशृणुतथातान्

अर्थ--ऊपर कहे हुए लक्षणों से विपरीत लक्षण वाला चिकित्साके योग्य होता है अब हम उनकी चिकित्सा का वर्णन करते हैं ॥ मन्त्र, अरिष्ट [दुष्ट स्थानका बांधना] उत्कर्त्तन (दुष्टका किसी पैनी छुरी आदि से कतरना वा खुरचना), निष्पीडन (भींचकर मवाद निकालना), चूषण [दंश स्थान का चूसकर थूकदेना] अग्निकर्म [जलादेना], परिषेक, अवगाहन, रक्तमोक्षण,वमन, विरेचन, उपधान,हृदयावरण, अंजन, नस्य, धूम, अवलेह, औषध प्रशमन, प्रतिसारण, प्रतिविष, संज्ञा स्थापन, लेप और मृत संजीवन । ये चौबीस प्रकारकी चिकित्सा हैं। जहां जहां ऊपर कही हुई चिकित्साओं का प्रयोग किया जाताहै उसका वर्णन करतेहैं ॥

विष में बन्धनादि विधि ।

दंशात्तुविषदष्टस्यानिसृतंवेणिकाभिपरुवद्धा । निष्पीडयेद्धरांदंशमुद्धरेन्मर्मवर्जं॥ वातंदंशंवाचूषेन्मुखेनयवचूर्णपांशुपूर्णेन प्रच्छन्नंवेधजलौकाःशृंगैःस्राव्यंततोरक्तम्

अर्थ—काटे हुये मनुष्य के दंश स्थान से जो विष न निकलाहो और यदि वह दंश हाथ वा पांव ऐसी जगह में हो जो बंधने के योग्य होतो जहां तक विष फैल गयाहो वहांतक ऊपर और नीचे वेणि का नामक बंधन से बांधकर चारों ओर से खूब भींचे और फिर दंशस्थानकोकिसी पैनी छुरीसेखुरच डाले परन्तु मर्मस्थान परऐसा न करै । जो वह दंशस्थान बांधने वा काटने योग्य नहो तौ मुखमें जौ का चून वा धूल भरकर दंशस्थान को चूसै,फिर उसे चीरकर पछना लगाकर वा वेधकर वा सींगियाजोंक वा सींगी लगाकर रुधिर को निकालडालै।

विषदूषितरक्तका परिणाम।

रक्तेविषमदुष्टेदुष्येत्प्रकृतिःततस्त्यजेत्प्राणान् ॥ तस्मात्प्रघर्षणैरसृग्वर्तमानं प्रवर्त्यंस्यात्।

अर्थ—विषसे रक्तके दूषित होनेपर प्रकृति दूषित होजातीहै और प्रकृतिके दूषित होनेपर प्राण जाते रहतेहैं,अतएव जो ऊपर कहीहुई रीतोंसे भी रक्त न निकला होतौ निम्नलिखित घर्षणों का प्रयोग करने से रक्त प्रवृत होजाताहै अर्थात् निकलने लगताहै॥

घर्षणप्रयोग॥

त्रिकटुगृहधूमरजनीपञ्चलवणाःसवार्ताकाः ॥ घर्षणमतिप्रवृत्तेवटादिभिःशीतलैर्लेपः ॥

अर्थ--त्रिकुटा, घरकाधूमसा, हलदी, पांचों नमक और बेंगन इनसबको पीसकर काटने की जगहपर धीरे २ रिगडनेसे बन्द हुआ रुधिर बहने लगताहै, जो रुधिर अत्यन्त बहने लगे तौ वटादि शीतल वृक्षोंकी छालको पीसकर लेप करदेवै ॥

विषके फैलने में रक्तकी प्रधानता॥

रक्तंहिविषाधानंवायुरिवाग्नेःप्रदेहमेके-

स्तत् ॥ शीतैःस्कन्दतितास्मिनस्कन्नेव्ययं यातिविषवेगः॥

अर्थ—रक्तही विषका आधान है जैसे पवनके लगनेसे अग्नि बढतीहै इसीतरह रुधिरके संसर्ग से विष बढताहै । शीतल लेप से रक्तके जमजानेपर विष फैल नही सक्ताहै। कारण यहहै कि रुधिर दिन रात सब देहमें घूमताहै तो विष भी उसके साथमें फैलता चलाजाता है और जब रुधिरही वहनेसे बन्द होगया तो विष कैसे फैलसक्ताहै ॥

विषवेगफलक्षण ॥

विषवेगान्मदमूर्च्छाविषादहृदयद्रवाःप्रवर्तन्ते ॥ शीतैर्निवर्तयेचान्यीज्येश्चलोमहर्षःस्यात्॥

अर्थ—विषके वेगसे मद, मूर्च्छा, विषाद और हृदयमें कम्पन होती हैं, शीतल उपचार से ये उपद्रव शान्त होजाते हैं तथा पंखेकी हवा करनेसे रोमाञ्चभी खडे होजातेहैं ॥

तरुरिवमूलच्छेदाद्दंशच्छेदान्नद्याद्विमुपयातिविषम् ॥ अचूषणमानयनन्जलस्यसेतुर्यथारिष्टा । त्वङ्मांसगतोदाहोदहति विषंरावणंहरातिरक्तात्॥

अर्थ—जडके काटनेसे जैसे वृक्ष नहीं बढता है, उसीतरह दंशस्थान के छेदन करनेसे विष नहीं बढने पाताहै । दंशस्थानके चूसनेसे विष निकलजाताहै और जैसे जलपर पुल बांधनेसे जल का वेग रुकजाता है उसीतरह दंशस्थान पर ऊपर नीचे जोर से बांधे देनेपर विषका वेग रुकजाता है ॥ जब विष त्वचा और मांस में पहुंच जाताहै उस समय अग्नि से दंश स्थानको दग्ध करनाहितहै जब विष रुधिर में पहुंच जाताहै उस समयरुधिरको निकाल देनेसे विष क्षीण होता है

प्रथमद्वितीयवेगमेंचिकित्सा

पीतंवमनैःसद्योहरेद्विरेकैर्द्वितीयेतु॥ आदौहृदयंरक्ष्यंतस्यावरणंपिबेद्यथालाभम् मज्जानंमधुघृतंगैरिकमथगोमयरसंवा॥ तद्वंसपक्षमथवाकाकनिष्पीड्यतद्रसंवमनं छागादीनांवासृक्भस्मप्रदंवापिवेदाशु॥

अर्थ—पिया हुआ विष वमन कराने से तत्काल निकलजाताहै ॥ द्वितीय वेग में पहुंचनेपर विरेचन कराना उत्तमहै ॥ पीत विषमें सबसे पहिले हृदयकी रक्षा करना उचित है ॥ विष द्वारा हृदयका आवरण होनेपर मज्जा, शहत, घी, गेरू, गोबरका रस, हंस या कौए का मांसरस पान कराके वमन करावै ॥ अथवा बकरेका रुधिर अथवा मिट्टी या भस्म इनमें से जो जो मिल सकें शीघ्रपान करावै किसी २ पुस्तक में तद्वंसपक्षादि, की जगह ' इक्षुसुपक्वमथ वाकाकंनिष्पीड्यतद्रसंबलदम, पाठ भी है)

तृतीयादि वेगों में चिकित्सा

क्षारोगदस्तृतीयेशोफहरैलेखनंसमध्वम्बु॥ गोमयरसश्चतुर्थेवेगेसकापित्थमधुसर्पिः। काकाण्डशिरीषाभ्यांस्वरसेनाश्च्योतनमञ्जनेनस्यम् ॥ स्यात्पंचमेऽथषष्ठेसंज्ञायाःस्थापनंकार्यम् ॥ गोपित्तयुतारजनीमञ्जिष्ठागैरिचपिप्पलीपानम्॥

अर्थ—विषके तीसरे वेग में क्षार गद,

तकदमीकरञ्जौरक्षोघ्नीसिन्धुकारिकारजनी ॥ सुरसरसाअनंगेरिकमञ्जिष्ठानिम्बुनिर्यासाः । वंशत्वगश्वगन्धाहिंगुदधित्थाम्लवेतसंलाक्षा ॥ मधुमधुकसोमराजीवचारुहारोचनाचगवाम् । अगदोऽयंवैश्रवणायाख्यातःत्र्यम्बकेणपष्टयङ्गः ॥ अप्रतिहतप्रभावःख्यातोमहागन्धहस्तीति। पित्तेनगवांपोप्येगुलिकाःकार्य्यास्तुपुष्ययोगेन । पानाञ्जनप्रलेपैःप्रसाधयेत्सर्वकर्माणि।पैल्लयंकण्डूंतिमिरंरात्र्यन्धंकाचमर्बुदंपटलम्॥हन्तिसततंप्रयोगाद्धितमितपथ्याशिनांपुंसाम् । विपमज्वरानजीर्णंदद्रूंसविसूचिकांपामाम् ॥ कुष्ठंकिटिभंश्वित्रंविचर्चिकांचोपहन्तिनृणाम् । विषंमूषिकलूतानांसर्वेषांपन्नगानाञ्च ॥ आशुविषंनाशयतिसमूलमथकन्दजंसर्वम् । एतेनलिप्तगात्रःसर्पांद्गृह्णीतभक्षयेच्चविषम् ॥ कालातीतोऽपिनरोजीवतिकिञ्चिन्निरातङ्कः । आरुद्धेगुदलेपोयोनिलेपश्चमूढगर्भाणाम् । मूर्द्धार्तिपुचललाटेप्रलेपमाहुःप्रधानतमम् ॥ भेरीमृदङ्गपटहाशङ्खाण्यनुनातथाध्वजपताकाः ॥ लिप्तानिविपनिरस्यैप्रध्वनयेद्दर्शयेन्मतिमान् । यत्रचसन्निहितोऽयंनतत्रबालग्रहाःखार्खोटाः नचकार्मणवेतालाप्रहन्तिनाथर्वणामन्त्राः सर्वग्रहानतत्रप्रभवन्तिनचाग्निशस्त्रनृपचौराः ॥ लक्ष्मीश्चतत्रभजतेतत्रमहागन्धहस्त्यस्ति । पिष्यमाणश्चास्त्रात्रासिद्धंमन्त्रमुदीरयेत्॥ममभाताजयानामविजयोनामपिता । सोऽहंजयोजयापुत्रोविजयोऽथजयामिच ॥ नमःपुरुषसिंहायविष्णवेविश्वकर्मणे । सनातनायकृष्णायभवायविभवायच ॥ तेजोवृषाकपेःसाक्षात्तेजोब्रह्मेन्द्रयोर्यमे । यथाहंनाभिजानामिवाम्देवपराजयम् ॥ मातुश्चपाणिग्रहणंसमुद्रस्यचशोपणम् । अनेनसत्यवाक्येनसिद्ध्यतामगदोह्ययम् ॥ हिलिमिलिसंस्पृष्टेरक्ष सर्वेभेषजेतुमेस्वाहा ॥

अर्थ—तेजपात, अगर, मोथा, इलायची पांच प्रकारके निर्यास [राल, गूगल, अफीम सिल्हक और लोबान] चन्दन, असवरग, दालचीनी, जटामांसी, नीलकमल, नेत्रवाला, हरेणुका, खस, व्याघ्रनखी, देवदारु नागकेसर, कुंकुम, गंधतृण, कूठ, प्रियंगु, तगर, सिरस के फल, फूल, पत्ते जड और छाल, त्रिकुटा, हरिताल, मनसिल, काळाजीरा, सफेद कोयल, कटभी, दोप्रकार के कंजे, सरसों, सम्हालू, हलदी, तुलसी, रसौत, गेरू, मजीठ, नीमका निर्यास, बांसकीछाल, असगंध, हींग, कैथ अमलवेत, लाख, महुआ, मुलहटी, सोंगराजी, वच, दूव, गोरोचन। यह पष्ट्यंग औषध त्र्यम्बक ने वैश्रवण से कही थी। इसका प्रभाव अनिवार्य है। इसे महागंधहस्ती कहते हैं। इन साठ औषधियोंको इकट्ठी करके गौ के पित्तके साथ पुष्य नक्षत्र में गोलियां बनावै। इन गोलियोंका पान, अंजन और लेप द्वारा प्रयोग करने से सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धि होती है हितकारी अल्प और पथ्य भोजन करनेवाले मनुष्य के निरन्तर सेवन

करने से इस औषधसे पैल, खुजली, तिमिर, रतौंध, काच, अर्बुद और पटलरोग दूर हो जाते हैं। तथा विषमज्वर, अजीर्ण, दाद, विसूचिका, पामा, कोढ, किटिभ, श्वित्रकुष्ठ और विचर्चिका जाते रहते हैं। मूषकविष, मकडी का विष, सब प्रकारके सर्पों का विष, मूलजविष और कन्दजविष सब शीघ्रही दूर होजातेहैं। इस औषध का शरीर पर लेप करके मनुष्य सर्प को पकडसक्ता है, विष खा सक्ताहै। कालातीत मनुष्य भी इस औषधके धारण करने से निरातंक रहसक्ता है। इस औषध का आनाहरोग गुदरोग, मूढगर्भा स्त्रीकी योनि, मूर्छा, तथा आर्तिरोगमें ललाट इन स्थानोंपर लेप करना अत्यन्त उत्तमहै। जो रोगी विष से मूर्च्छित होगया हो उस के कानपर भेरी, मृदंग और ढोलक पर इस औषध का लेप करके बजावे। तथा इसी औषध का लेप करके छत्र, ध्वजा, और पताका विषरोगी को दिखावे। जहां यह औषध होती है वहां बालग्रह, राक्षस, कार्मण, वेताल, और अथर्वणोक्त मंत्र नहीं चल सकते हैं। सम्पूर्ण ग्रह, अग्नि शस्त्र, राजा और चोर अपनी दुश्चेष्टा नहीं करसकते हैं। जहां यह औषध होती है वहां लक्ष्मी निवास करती है। इस औषध को पीसते समय इस मंत्रका पाठ करना चाहिये, यथा—"मम माता जया नाम विजयो नाम मे पिता। सोऽहं जयो जयापुत्रो विजयोऽथ जयामिच। नमः पुरुष सिंहाय विष्णवे विश्वकर्मणे। सनातनाय कृष्णाय भवाय विभवायच। तेजो वृषाकपेः साक्षात् तेजो ब्रह्मेन्द्रयोर्यमे। यथाहं नाभि जानामि वासुदेव पराजयम्। मातुश्च पाणिग्रहणं समुद्रस्यच शोषणम्। अनेन सत्यवाक्येन सिद्धतामगदोऽध्ययम्। हिलि मिलि संस्पृष्टेरक्ष सर्वभेषजेतुभे स्वाहा,,॥ यह सिद्ध मंत्र है॥

विषरोगनाशक अन्यप्रयोग।

ऋषभकजीवकभार्गीमधुकोत्पलधान्यकैसगाजाज्यः॥ ससितगिरिकोलमध्याः पेयाःश्वासज्वरादिहराः। हिंगुचकृष्णायुक्तंकपित्थरससम्प्लवणंच। समधुसितेपातव्योज्वरहिक्काश्वासकासघ्नः॥ लेह्यःकोलास्थ्यञ्जनलाजोत्पलमधुघृतैर्वैःस्याम्। बृहतीद्वयाढकीपत्रधूमवर्त्तिस्तु हिक्काघ्नी॥ शिखिवर्हवलाकास्थीनिसर्पपाश्चन्दनेचघृतयुक्तः। धूमोगृहशयनासनवस्त्रादिपुशस्यतेविषनुत्॥ घृतयुक्तेनतकुष्ठेभुजगपतिशिरःशिरीषपुष्पंच। धूमागदःस्मृतोऽयंसर्वविषघ्नःश्वयथुहृच्च जतुसेव्यपत्रगुग्गुलुभल्लातककुभपुष्पसर्जरसाः। श्वेताएवधूमउरगाखुकीटवस्त्र कृमिनुदग्यूः।

अर्थ—ऋषभक, जीवक, भाडंगी, मुलहटी, नीलकमल, धनिया, केसर, कालाजीरा, चीनी गेरू, और वेरकी गुठली की मींगी इनको पान करने से श्वास और ज्वरादिक दूर होजाते हैं। हींग, पीपल, कैथका रस, संचल नमक इनका शहत और चीनी मिलाकर पान करनेसे ज्वर, हिचकी, श्वास और खां-

भेद होताहै। इसको मुख में धारण करने से मुख तालु और ओष्ठमें चिमचिमाहट, जिह्वा में शूल, जडता और विवर्णता, दन्तहर्ष, हनुस्तम्भ, मुखदाह लालास्राव और कंठ विकार होजातेहैं। विषयुक्त अन्नपान के आमाशयमें पहुंचने पर विवर्णता, पसीने अंगसाद और उत्क्लेद होताहै, दृष्टिनाश तथा हृदयावरोध भी होताहै और देह पर सेंकडों विन्दुके समान फुन्सियां होजाती हैं। विषयुक्त अन्न के पक्वाशयमें पहुंचने पर मूर्च्छा, मद, मोह, दाह और बलनाश होताहै। विषके उदरमें स्थित होजाने से तन्द्रा, कृशता और पांडुरोग होतेहैं।

दन्तपवनस्यकूर्चः विशीर्यतेहिदन्तोष्ठमांसशोथश्च॥ केशच्युतिःशिरोग्रन्थयश्च सविषेशिरोऽभ्यङ्गे। दुष्टेऽञ्जनेऽक्षिदाहः स्रावोपदेहशोथोरागाश्च ॥

अर्थ—विषयुक्त दन्तधावन की कूची को दांतोंपर फेरनेसे मसूडे और होटों पर सूजन होजाती है, दांतनकी कूंची विशीर्ण होजातीहै। विषयुक्त द्रव्यका शिर पर अभ्यंग करनेसे बाल गिर पडते है और सिर पर फुन्सियां होजातीहै। अंजन में विष होनेसे आंखों में दाह, स्राव, उपदेह, सोथ और ललाई होतीहै।

आदिरादौकोष्ठःस्पृश्यैस्त्वग्दुष्यतेदुष्टैः॥ स्नानाभ्यङ्गोत्सादनवस्त्रालङ्कारकैर्दुष्टैः॥ कंड्वार्त्तिलोमहर्षाःकोठपिडकाचिमिचिमाशोथाः। एतैःकरचरणदाहतोदक्लमविकाराश्च॥ भूपादुकाश्वगजकेतुचर्मशयनासनैर्दुष्टैः। माल्यमगन्धंम्लायतिशिरसोरुक्रोथलोमहर्षकरम्॥ स्तम्भयति खानिदर्शनमुपहन्तिचनासिकांधूमः॥ कूपतडागादिजलंदुर्गन्धंसकलुषंविवर्णञ्च॥ पीतंदवयथुकोठानपिडकांश्चकरोतिमरणंच आदावामाशयगेवमनंत्वक्स्थेप्रदेहसेकादि॥ कुर्य्याद्विपक्वचिकित्सांदोषबलञ्चैवहितमीक्ष्य। इतिमूलविषविशेषामोक्ताःशृणुजङ्गमस्यातः॥

अर्थ—विषयुक्त भोजनके करनेसे प्रथम ही कोष्ठ में दाह होताहै। विषयुक्त छूने के द्रव्यसे प्रथमही त्वचा में दाह होता है। इसीतरह विषयुक्त स्नान, अभ्यंग, उत्सादन, वस्त्र, और अलंकार धारण करने से खुजली, अर्ति, रोमोद्गम, पित्ती, पिडका, चिमचिमाहट और सूजन होती है। पृथ्वी खडाम, हाथी घोडों के जीन, शय्या और आसनोंके विषसे दूषित होने पर हाथ और पांव में दाह, तोद, क्लान्ति और अन्य विकार उत्पन्न होजाते हैं। विषयुक्त पुष्प गंधहीन, मलीन, शिर पीडाकारक और रोमोद्गमकारक होते हैं विषयुक्त धूआं के नासिका में प्रवेश होने से नासिका के छिद्र रुकजाते हैं और नेत्रोंमें पीडा होती है॥ कूए वा तालाव आदि का जल विषके संसर्ग से दुर्गन्धित, कलुषित और विवर्ण होजाता है इस जलके पीनेसे सूजन पित्ती, फुन्सी तथा मृत्यु भी होजातीहै॥ विषके आमाशय में प्रवेश करतेही प्रथम वमन करावै तथा त्वचामें स्थित होने पर प्रदेह और परिषेक

करावै ॥ इसमें वैद्यको उचितहै कि रोगीके दोष और बलकी परीक्षा करके चिकित्सा करै इसतरह मूलजविषोंके भेद वर्णन किये गयेहै अब हम जंगमविषोंका वर्णन करते है ॥

सर्पों के भेदादि वर्णन ॥

इहदर्वीकरःसर्पोमण्डलीराजिमानिति ॥ त्रयोयथाक्रमंवातपित्तश्लेष्मप्रकोपणाः

अर्थ—यहां दर्वीकर, मण्डली और राजिमान् तीन तरह के सर्प होतेहैं इन में से दर्वीकर वातको,मण्डली पित्तको और राजमान् कफ को कुपित करनेवाले होते हैं ।

सर्पों की परीक्षा ।

दर्वीकरःफणीज्ञेयोमण्डलीमण्डलाफणः॥ विन्दुलेखोविचित्रांगःपन्नगःस्याद्राजिमान्॥

अर्थ—जिस सर्प का फण करछी के सदृश होता है उसे दर्वीकर कहते हैं । जिसका फण गोल होताहै वह मण्डली होताहै और जिसके देह पर अनेक प्रकार के विन्दु और रेखा होतीहैं वह राजिमान् कहाता है ।

उक्तसर्पों के विष के गुण ।

विशेषाद्रूक्षकटुकमम्लोष्णंस्वादुशीतलम् विषंयथाक्रमंतेषांतस्माद्वातादिकोपनम् ।

अर्थ—दर्वीकर सर्पका विष विशेष करके रूक्ष और कटु है, मण्डलीका विष अम्ल और उष्ण है तथा राजिमान् का विष स्वादु और शीतल है और इसी हेतु से ये क्रम से वात, पित्त और कफके प्रकोपकर्त्ता हैं ॥

दर्वीकरके दंशका लक्षण ।

दर्वीकरकृतोदंशःसूक्ष्मदंष्ट्रपदोसितः॥ निरुद्धरक्तःकूर्म्माभोवातव्याधिकरोमतः

अर्थ—दर्वीकर सर्पका दंशस्थान अर्थात् काटने की जगह सूक्ष्म और काली होती है, उसमें से रुधिर नहीं बहता है, देखने में कछुएसी दिखाई होतीहै तथा उन मनुष्यमें वातव्याधिके लक्षण दृष्टिगत होने लगतेहैं ॥

मण्डली के दंश का लक्षण।

पृथ्व्यर्पितःसशोफश्चदंशोमण्डलिनाकृतः। पीताभःपीतरक्तश्चसर्वपित्तविकारकृत् ॥

अर्थ—मंडली सर्पका दंशस्थान बडा सूजनयुक्त, पीतवर्ण और पीतरक्त से युक्त होता है इसमें सब तरहके पित्तविकार दिखाई देतेहैं ॥

राजिमान के दंशका लक्षण ।

कृतोराजिमतादंशःपिच्छिलःस्थिरशोफकृत् । स्निग्धःपाण्डुश्चसान्द्रास्रश्श्लेष्मव्याधिसमरिणः ॥

अर्थ—राजिमान् का दंश पिच्छिल, स्थिर, शोफकृत्, स्निग्ध, पांडुवर्ण होता है इस के घावका रुधिर जमजाता है और विशेष करके कफ लक्षण दिखाई देते हैं तथा कुछ२ वात के भी होते हैं ॥

सर्पोकेलिंगभेद ।

वृत्तभोगोमहाकायःफणऊर्द्धेक्षणःपुमान्। स्थूलमूर्धासमांगश्चस्त्रीततःस्याद्विपर्य्ययात्॥क्लीबःस्रस्तस्त्वधोदृष्टिःस्वरहीनःप्रकम्पते। स्त्रियादष्टोविपर्य्यस्तैरतःपुंसा

वृद्धावालास्त्वचोमुक्ताःसर्पामन्दाविषाः स्मृताः ॥

अर्थ—पानी का मारा हुआ, क्षीण, भीत न्यौले से पराजय किया हुआ, वृद्ध, बालक जिसने अभी काचली छोडीहो ऐसे सर्प मन्द विष होतेहै ॥

विषको सर्व देहाश्रितत्व ।

सर्वदेहाश्रितंकोधाद्विषंसर्पोविमुञ्चाति । तदेवाहारहेतोर्वाभयाद्वानप्रमुञ्चाति ॥

अर्थ—सर्प क्रोधावेश में अपने सम्पूर्ण देह से विष को निकालता है परन्तु आहार हेतु वा भय से नहीं निकाल सकता है ।

अन्य विषाक्त कीडोंकी प्रकृति ।

वातोल्वणविषाःप्रायउच्चिटिङ्गाःसवृश्चिकाः । वातपित्तोल्वणाःकीटाःश्लैष्मिकाः कणभादयः॥ यस्ययस्यहिदोषस्यलिंगाधिक्यानिलक्षयेत्।तस्यतस्यौषधःकुर्याद्विपरीतगुणैः क्रियाम् ॥

अर्थ—उच्चिटिंग और बीछू इन दोनों के विष प्रायः वातपित्ताधिक्य और कणभ का विष कफाधिक्य होताहै । जिस जिस दोष के विशेष लक्षण दिखाई पडें उसी दोष के विपरीत गुणवाली औषधों द्वारा चिकित्सा करना उचित है ॥

वातिकविषकेलक्षण ॥

हृत्पीडोर्ध्वानिलस्तम्भःशिरायासोऽस्थिपर्वरुक्॥घूर्णनोद्वेष्टनंगात्रश्यावतावातिकेविषे ॥

अर्थ—वातिक विषमें हृत्पीडा, ऊर्ध्ववात स्तम्भ, शिरायास, अस्थि और पर्व में वेदना, घूर्णन, उद्वेष्टन [अगडाई] और शरीर में कालापन ये लक्षण होते हैं ।

पैत्तिकविष के लक्षण ॥

संज्ञानाशोष्णनिश्वासोहृद्दाहःकटुकास्यता॥मांसावदारणंशोफोरक्तपीतश्चपैत्तिके

अर्थ—पैत्तिक विष में वेहोशी, उष्णश्वास, हृदयमें दाह, मुखमें कडवापन, मांसका विदीर्ण होना और लाल पीली सूजन ये लक्षण होते हैं ॥

श्लैष्मिक विष के लक्षण ॥

वम्यरोचकहृल्लासप्रसेकोत्क्लेशगौरवैः॥ सशैत्यमुखमाधुर्यैर्विद्यात्श्लेष्माधिकं विषम् ॥

अर्थ—वमन, अरुचि, हृल्लास, प्रसेक, उत्क्लेश, भारापन, शीतलता, मुखमें मीठापन ये श्लैष्मिक विषके लक्षण हैं ।

वातिकविषमें चिकित्सा ।

खण्डेनचत्रणालेपस्तैलाभ्यंगश्चवातिके स्वेदोनाडीपुलाकाद्यैर्बृंहणश्चविधिर्हितः॥

अर्थ—वातिकविष में खांडकालेप, तैल मर्दन, नाडीस्वेद, पुलाकादिस्वेद और बृंहणविधि हितहैं ॥

पैत्तिकविषमें चिकित्सा ।

सुशीतैःस्तम्भयेत्सेकैःप्रदेहैश्चापिपैत्तिकम्

अर्थ—पैत्तिक विष में शीतल परिषेक और प्रदेहादि द्वारा स्तम्भन करे ॥

श्लैष्मिकविष में चिकित्सा॥

लेखनच्छेदनस्वेदवमनैःश्लैष्मिकंजयेत् ॥

अर्थ—श्लैष्मिक विषको लेखन, छेदन, स्वेदन और वमनद्वारा दूरकरना चाहिये॥

शीतक्रियोपयोगीविष ।

विषेष्वपिचसर्वेषुसर्वस्थानगतेषुच । अन्य त्रवृश्चिकोच्चिटिङ्गेषुप्रायःशीतोविधिर्हितः ॥

अर्थ—वीछू और उचिटिंगको छोडकर सब प्रकारके सर्वस्थानगत विषोंमें शीत-क्रिया हितहै ॥

वीछूके विष में चिकित्सा॥

वृश्चिकेस्वेदमभ्यंगंघृतेनलवणेनच॥से-कांश्चोष्णान्प्रयुञ्जीतभोज्यपानञ्चसर्पिषः

अर्थ—वीछू के विषमें घृत और नमक से पसीनादेवे, मालिश करावे, उष्णपरिषेक घृतमिश्रित भोजन और घृतपान हितहैं॥

उचिटिंगके विषमें चिकित्सा।

एतदेवोच्चिटिंगेऽपिप्रतिलोमञ्चपांशुभिः। उद्वर्त्तनंसुखाम्बूष्णैस्तथावच्छादनंघनैः॥

अर्थ—उचिटिंगके काटनेपर वीछूके समानही चिकित्सा करनी चाहिये । जहां डंक लगाहो वहां धूलि लगाकर प्रतिलोमन करे, उद्वर्त्तन करे और सुहाते हुए गरमजलमें भीगेहुए कपडे की कई तह करके दंशस्थान पर रखदेवे ॥

त्रिदोषजविषकेलक्षण ॥

स्यात्रिदोषप्रकोपाच्चतथाधातुविपर्य-यात्।शिरोऽभितापोलालास्राव्यधोवक्त्र-स्तथाभवेत्॥

अर्थ—त्रिदोष के प्रकोप और धातुओं के विपर्य्ययसे काटेहुए मनुष्यके सिर में ताप, लारका गिरना और मुख का नीचा होजाना ये लक्षण होते हैं।

अन्यसर्पों के लक्षण।

अन्येऽप्येवंविधाव्यालाःकफवातप्रकोप नाः । हृच्छिरोरुग्ज्वरस्तम्भतृषामूर्च्छा करामताः॥

अर्थ—इनसे अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के व्याल हैं जो कफवातको प्रकुपित करतेहैं इनके काटनेसे हृदय में वेदना, शिरःशूल, ज्वर, स्तम्भ, तृषा, और मूर्च्छा होतीहै।

सविषशरीरकेलक्षण ॥

कण्डूनिस्तोदवैवर्ण्यसुप्तिक्लेदोपशोषणम् विदाहरागरुक्पाकाःशोफोग्रन्थिर्निकुञ्च नम् ॥ दंशावदरणंस्फोटाःकर्णिका मण्डलानिच ॥ ज्वरश्चसविषेलिंगंविप रीतन्तुनिर्विषे ॥

अर्थ—खुजली, निस्तोद, विवर्णता, शून्यता, क्लेद, उपशोषण, विदाह, राग, वेदना, पाक, शोफ, ग्रन्थि, निकुंचन, दष्टस्थानका फटना, फोडे, कर्णिका, चकत्ते, और ज्वर ये सविष शरीरके लक्षण हैं।इनसे विपरीत निर्विष शरीरके लक्षण होतेहैं ।

तत्रसर्वेयथावस्थंप्रयोज्याःस्युरुपक्रमाः पूर्वोक्तविधिमन्यञ्चयथावद्ब्रुवतःशृणु॥

अर्थ—सविष शरीरमें अवस्थाके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिये इन चिकित्साओंमें से थोडीसी पहिले कहचुके हैं और कुछ अब कहतेहैं ।

विषरोग में चिकित्सा ।

हृद्दिदाहेप्रसेकेवाविरेकवमनंभृशम् । यथावस्थंप्रयोक्तव्यंशुद्धेसंसर्जनक्रमः॥शिरोगतेविषेनस्तःकुर्यान्मूलानिबुद्धिमान्।

वन्धुजीवश्चभार्ग्याश्चसुरसस्यासितस्यच
दंशकाकमयूराणांमांसासृक्मस्तकेक्षते ।
मूर्ध्निदेयमथोदष्टस्योर्द्धंदष्टस्यपादयोः
पिप्पलीमरिचक्षारवचासैन्धवशिग्रुकाः॥
पिष्टारोहितपित्तेनघ्नन्त्यक्षिगतमञ्जनात्॥

अर्थ—विषके कारण जो हृदयमें विदाह और लालास्राव होताहो तौ अवस्था के अनुसार तीक्ष्ण वमन विरेचनदेवै और शुद्ध होनेके पीछे संसर्जनक्रम का प्रयोग करै। जो विष शिरोगतहो तौ वन्धूक, भाडंगी और कालीतुलसी इन तीनोंकी जडों को पीसकर नस्य देवै। जो मस्तकमें काटा हो तौ उस जगह मुर्गा, मोर और कौए का मांस और रुधिर लगावै और जो पांवों के ऊपर काटाहो तौ भी यही चिकित्सा करै। जो विष नेत्रोंमें पहुंचगया हो तौ पीपल, कालीमिरच, जवाखार, वच, सेंधानमक और संहजने के बीज इन सबको पीसकर रोहू-मछली के पित्ते में मिलाकर आंजे ॥

विषेकण्ठगतेमांसंकपित्थंससितामधु ।
आमाशयगतेलिह्यात्ताभ्यांचूर्णपलंनतात्
विषेपक्वाशयप्राप्तेपिप्पलीरजनीद्वयम् ॥
मञ्जिष्ठाचसमंपिष्ट्वागोपित्तेननरःपिवेत् ॥
मांसंरक्तश्चगोधायाःशुष्कंचूर्णीकृतंहित-
म् ॥ विषेरसगतेपानंकपित्थरससंयुतम्॥
शेलुमूलत्वगग्राणिवादरौदुम्वराणिच ॥
कटभ्याश्चपिवेद्रक्तगतेमांसगतेपिवेत्॥
सक्षौद्रंखदिरारिष्टंकीटजमूलमम्भसा ।
सर्वेपुचवलेद्वेतुमधुकंमधूकंनतम् ॥ पिप्प
भिगद्गुर्दोर्णेतुविदध्यात्प्रतिसारणम् ॥

अर्थ—जो विष कंठमें पहुंचा हो तौ कैथ का गूदा, मिश्री और शहत मिलाकर देवै। आमाशयगत विषमें तगर का एक पल चूर्ण चीनी और शहत मिलाकर सेवन करै विषके पक्वाशयमें पहुंचनेपर पीपल दोनों हल्दी और मंजीठ ये सव समान भाग लेकर गौके पित्ते के साथ पान करै। विषके रसमें पहुंचनेपर गोहके मांस और रक्तको सुखाकर पीसकर कैथ के रस के साथ पान करै। विषके रक्तमें पहुंचनेपर शेलु की जड छाल तथा वेर, गूगल और कटुभी की डालियों का अग्रभाग पीसकर जल के साथ पीवै। विष के मांसगत होनेपर खैर के अरिष्टमें शहत डालकर पीवै अथवा कुटकीकी जडको पानीके साथ पीसकर पीवै। विषके सर्व धातुगत होने-पर वला, अतिवला, मुलहटी, महुआ और तगर इनको जलमें पीसकर देवै विषमें कफका प्रकोप होनेपर पीपल, सोंठ, जवाखार, इन सबको मक्खनमें सानकर प्रतिसारण करावै ॥

सर्वशोथनाशकयोग ॥

मांसीकुंकुमपत्रत्वक्रजनीनतचन्दनैः ।
मनःशिलाव्याघ्रनखसुरसैरम्बुपेषितैः ॥
पाननस्याञ्जनालेपाःसर्वशोथविषापहाः

अर्थ—जटामांसी, कुंकुम, तेजपात, दाल-चीनी, हल्दी, तगर, चन्दन, मनसिल, व्याघ्र-नख और तुलसी इनको जलके साथमें पीसकर पान, नस्य, अंजन और लेपन में

प्रयोग करे। इससे सब प्रकार की सूजन और विष नष्ट होजातेहैं।

अन्यप्रयोग

चन्दनंतगरंकुष्ठंहरिद्रेद्वेत्वगेवच। मनःशिलातमालश्चरसःकेसरएवच॥ शार्दूलस्यनखश्चैवसुपिष्टंतण्डुलाम्बुना। हन्ति सर्वविषाण्येववज्रिवज्रामिवासुरान्॥

अर्थ—चन्दन, तगर, कूठ, दोनों हलदी, दालचीनी, मनसिल, तमाल, रस, केसर, व्याघ्रनख इन सबको चांवलके जलके साथ अच्छी तरह पीस लेवे। इसका पान करनेसे सम्पूर्ण विष ऐसे नष्ट होजातेहैं जैसे इन्द्रका वज्र असुरों को नष्ट करताहै।

रसेसिरीषपुष्पस्यसप्ताहंमरिचंसितम्। भावितंसर्पदष्टानांनस्यपानाञ्जनेहितम्॥ गृहधूमंहरिद्रेद्वेसमूलंतण्डुलीयकम्। अपि वासुकिनादष्टःपिवेद्दधिघृतायुतम्॥ द्विपलंनतकुष्ठाभ्यांघृतक्षौद्रंचतुष्पलम्। अपितक्षकदष्टानांपानमेतत्सुखप्रदम्॥ सिन्धुवारस्यमूलञ्चश्वेताचगिरिकर्णिका पानंदर्वीकरैर्दष्टेनस्यंमधुसपाकलम्॥ मञ्जिष्ठामधुयष्ट्याह्वाजीवकर्षभकौसिता काश्मर्यवटशुङ्गानिपानंमण्डलिनांविषे॥ व्योषमतिविषांकुष्ठंगृहधूमोहरेणुका। तगरंकटुकाक्षौद्रंहन्तिराजीमताविषम्॥ क्षीरिवृक्षत्वगालेपःशुद्धेकीटाविषापहः। मुक्तालेपोवरःशोफदाहतोदज्वरापहः॥

अर्थ—सहजने के बीजोंको सात दिवस तक सिरसके फूलोंके रसकी भावना देवै। इसका नस्य, पान और अंजनमें प्रयोग करने से सर्पके काटने में गुणकारक है। गृहधूम दोनों हलदी, चौलाई जड समेत इन सबको पीसकर दही और घीमें सान कर पीवै तौ वासुकी का काटा हुआ भी अच्छा होजाता है। तगर और कूट दो पल घृत दो पल, शहत दो पल, इन सबको मिलाकर पीनेसे तक्षकका काटा हुआ भी अच्छा होजाताहै। संभालूकी जड, सफेद कोयलकी जड और गिरकर्णिका की जडका क्वाथ करके पीवै तथा शहत और पाकलाकी नस्य लेवै। ये दर्वीकर सर्प के काटने में हित है। मंडली सर्प के विष में मजीठ, शहत मुलहटी, जीवक, ऋषभक, चीनी, खंभारी और बडकी कोंपल को घोट कर पीना हित है। राजिमान् सर्प के विष में त्रिकुटा, अतीस, कूट, गृहधूम, हरेणु, तगर, कुटकी इनको जल में पीसकर शहत के साथ पान करै। वमन विरेचन कराके बड आदि दूध वाले वृक्षकी छाल का लेप करने से कीट विष दूर होजाता है। तथा इन्हींके दंश पर जलमें पीसकर रास्ना का लेप करने से शोफ, दाह तोद और ज्वर दूर होजाते हैं।

लूताविष की चिकित्सा।

चन्दनंपद्मकोशीरंपाटलिःसिन्धुवारिका। क्षीरशुक्लानतंकुष्ठंशिरीषोदीच्यशारिवाः शेलुस्त्वरसापिष्टोऽयंलूतानांसार्वकार्मिकः॥

अर्थ—चन्दन, पद्माख, उसीर, पाटला संभालू, विदारीकन्द का दूध, तगर कूठ, सिरस, नेत्रवाला और शारिवा इन सबको शेलुके रसमें पीसकर पीने और लेप करने

प्रयुक्त करै तौ मकड़ीका विष दूर होजाता है ।

मकड़ीकीअन्य चिकित्सा ॥

मधुकंमधुकंकुष्ठशारिवादीच्यपाटलैः ।
सनिम्बशारिवाक्षौद्रंपानंलूताविषापहम् ।

अर्थ—मुलहटी, महुआ, कूट, शारिवा नेत्रवाला, पाटला, नीम, और शारिवा, इनको जलमें पीसकर शहत मिला कर पीने से लूताविष दूर होजाता है ।

कुसुम्भपुष्पंगोदंतःस्वर्णक्षीरीकपोतविट्
दन्तीत्रृवृत्सैन्धवैलार्कणिकापातनंतयोः ॥
कटभ्यार्जुनकुष्टानिशेलुक्षीरिद्रुमत्वचम्
कषायकल्कचूर्णास्युःकीटलूतामलापहाःत्व-
चञ्चनागरञ्चैवसमांशश्लक्ष्णपेषितं॥पेय
मुष्णाम्बुनासर्वमूषिकाणांविषापहम् ॥

अर्थ—कसूम के फूल, गोदन्ती हरिताल, स्वर्णक्षीरी, कबूतरकी वींट, दन्ती, निसोथ, सेंधानमक और बडी इलायची पीसकर लेप करने से लूताविष और कीटविष नष्ट होजाते हैं । कटभी, अर्जुन, कूठ, शेलु, वटादिदुग्ध वृक्षोंकी छाल इनका कषाय, कल्क और चूर्ण द्वारा प्रयोग करनेसे कीट विष का और लूताविष का प्रलाप नष्ट होजाता है । अथवा दालचीनी और सोंठ समानभाग लेकर महीन पीस डालै और फिर इसको गरम जल के साथ पानकरै तौ मूषकविष दूर होजाता है ।

कुटजस्यफलंपिष्टंतगरंजालमालिनी ॥
तिक्तेक्ष्वाकुकयोगोयंपानंमधमनादिभिः॥
वृश्चिकोन्दुरलूतानांसर्पाणाञ्चविषापहम्
समानममृतेनेदंगराजीर्णञ्चनाशयेत् ॥

अर्थ—इन्द्रजौ, तगर, घीयातोरई, कटु तुम्बी इनको पीसकर पान और प्रधमनादि द्वारा प्रयोग करै तौ बीछू, चूहा मकडी और सर्पोंका विष दूर होजाता हैं यह योग अमृत के समान है इसके सेवन से विषदोष और अजीर्ण दूर होजाते हैं ।

किरकटविषचिकित्सा ।

सर्वागदायथादोषंप्रयोज्याःस्युःकृकण्ठके

अर्थ—रोगीकी अवस्थाके अनुसार सब प्रकारकी औषधियों के करने से किरकेंटेका विष दूर होजाता है ।

वृश्चिकविषचिकित्सा ॥

कपोतविट्मातुलुंगंशिरीषकुसुमाद्रसः ॥
शंखिन्यार्कम्पयःशुण्ठीकरञ्जमधुवृश्चिके

अर्थ—कबूतरकी वींट, बिजौरा, सिरस के फूलका रस, शंखिनी, आककादूध, सोंठ कंजा, शहत इन सबको समान भाग ले पीसकर लेपकरै तौ बिछूका विषदूरहोजाताहै

मंडूकविषचिकित्सा ।

शिरीषस्यफलंपिष्टंस्नुहीक्षीरेणदार्दुरे ॥

अर्थ—सिरसके बीजोंका सेंहुड के दूध में पीस कर लेप करने से मेंडक का विष दूर होजाता है ।

मत्स्यविषचिकित्सा ॥

मूलानिश्वेतभिण्डायाव्योपसर्पिश्चमत्स्यजे

अर्थ—सफेद अपराजिताकी जड और त्रिकुटाको पीसकर लेप करने से मछली का विष दूर होजाता है ।

जोकाविषचिकित्सा।

कीटदष्टक्रियासर्वासमानास्याज्जलौकसाम्।

अर्थ--कीटदष्टकी जोर चिकित्साकही गई हैं उनहिंके समान जौककी चिकित्साहै॥

वातपित्तहरीप्रायःक्रियाप्रायःप्रशस्यते। वार्श्चिकस्तूच्चिटिंगस्यकणभस्योन्दुरोगदः

अर्थ--बीछू, उच्चिटिंग, कणभ और उन्दुर के विषमें प्रायःवातनाशिनी क्रियाहितहै

विश्वम्भरादि विष चिकित्सा।

वचावंशत्वचंपाठांनतंसुरसमञ्जरीम्॥ द्वेबलेनाकुलंकुष्ठंशिरीषंरजनीद्वयम्।गुहाम तिगुहांश्वेतामजगन्धांशिलाजतु। कत्तृणं कटभींक्षारंगृहधूमंमनःशिलाम्॥ रोही तकस्यपित्तेनपिष्टत्वातुपरमोगदः।नस्या ञ्जनाद्यलेपेषुहितोविश्वम्भरादिषु॥

अर्थ--वच, बांसकी छाल, पाठा,तगर, तुलसीकी मंजरी,दोनो बला, रास्ना, कूठ, सिरस,दोनों हलदी, शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, श्वेत अपराजिता, अजगंध, शिलाजीत, कत्तृण, कटभी, जवाखार, गृहधूम,मनसिल इन सबको पीसकर रोहू मछली के पित्तेमें सानकर नस्य, अंजन और प्रलेपादि द्वारा प्रयोग करने से विश्वम्भरादि कीडों का विष दूर होजाता है।

कांतर की चिकित्सा।

स्वर्जिकाजशकृत्क्षारःसुरसाथासपीडकः मदिरामण्डसंयुक्तोहितःशतपदीविषे॥

अर्थ--सर्जीखार, बकरीकी मेंगनी का खार इनको तुलसी के पत्ते के रसमें मिलाकर आंखों पर लगावै और इन्हीं द्रव्यों को सुरामण्डमें मिलाकर शतपदीके दंश पर लेप करे तो आराम होता है।

छपकली विषकी चिकित्सा।

कपित्थमक्षिपीडोऽर्कबीजंत्रिकटुकंतथा। करञ्जोद्वेहरिद्रेचगलगोड्याविषंजयेत्॥

अर्थ--कैथ का रस, आक के बीज और त्रिकुटा इनको पीसकर रस निकालकर आंखों पर लगावै अथवा कंजा और दोनों हलदी इनका रस भी आंखपर लगाने से छपकली का विष दूर होजाता है।

काकाण्डरससंयुक्तोविषाणांतण्डुलीयकः सर्वेषांवाहिपित्तेनतद्वद्यायसपीलुकः॥ शिरीषफलमूलत्वक्पुष्पपत्रैःसमैर्घृतैः। श्रेष्ठः पञ्चशिरीषोऽयंविषाणांप्रवरोवधे॥

अर्थ--कृष्णशिम्बी और चौलाई इन दोनों का रस सब विषों में हितकर है। मकोय और पीलू भी मोरके पित्ते के साथ में तद्वत् गुणकारक है॥

सिरस के फल, मूल, छाल, फूल और पत्ते इनको समान भाग लेकर घी में पीस कर लगावै यह औषध विषनाशक प्रयोगों में हितकारी है। इसे पंचशिरीष कहते हैं।

दंत और नखमें चिकित्सा।

चतुष्पाद्भिर्द्विपाद्भिर्वानखदन्तक्षतंतुयत्। शूयतेपच्यतेवापिस्रवतिज्वरयत्यपि॥ सोमवल्कोऽश्वकर्णाचगोजिह्वाहंसपद्यपि रजन्यौगैरिकंलेपोनखदन्तविषापहः॥

अर्थ--चौपाये वा द्विपाये जीवोंके दांत या नख लगने से जो घाव होजाते हैं उन

में सूजन, पाक, स्राव और ज्वर होजाता है। इसमें सफेद खैर, अश्वकर्ण, गोभी, हंसपादी, दोनों हलदी और गेरू इनका लेप करने से नख और दांतों का विष दूर होजाता है।

शंकाविष में उपाय।

दुर्गान्धकारेविद्धस्यकेनचिद्दृष्टशङ्कया॥ विषोद्वेगाज्ज्वरश्छर्दिमूर्च्छादाहोऽपिवाभवेत्। ग्लानिर्मोहोऽतिसारोवाप्येतच्छङ्काविषंमतम्॥ चिकित्सितमिदंतस्यकुर्यादाश्वासयन्बुधः। सितांवेगन्धिकांद्राक्षांपयस्यांमधुकंमधु॥ पानंसमन्त्रपूताम्बुप्रोक्षणंसान्त्वहर्षणम्।

अर्थ—दुर्गम अन्धकार में चींटी आदि क्षुद्र जन्तुके काटने से सर्पकी शंका होकर विषके वेगसे ज्वर, वमन, मूर्च्छा और दाह भी होता है तथा ग्लानि, मोह और अतिसार ये भी विषकी शंकासे होआते है। इनमें शान्तिप्रदायक वचनों द्वारा रोगीको आश्वासन देवें और चीनी, गोंदी, दाख, क्षीरकाकोली, मुलहटी, शहत, इनका पान करावे। मंत्र पढे हुए जल से प्रोक्षण करे और शान्ति प्रदायक वचनों से प्रसन्न करता रहे।

विषरोग में पथ्यविधान।

शालयःषष्टिकाश्चैवकोरदूषाःप्रियङ्गवः॥ भोजनार्थेप्रशस्यन्तेलवणार्थेचसैन्धवम्। तण्डुलीयकजीवन्तीवार्ताकुसुनिषण्णकाः चुच्चुर्मण्डूकपर्णीचशाकश्चकुलकंहितम्। धात्रीदाडिममम्लार्थेयूषामुद्गहरेणुभिः॥ रसार्थेणशिखिश्वाविल्लावतित्तिरिपार्षताः विषघ्नौषधसंयुक्तारसायूषाश्चसंस्कृताः॥ अविदाहीनिचान्नानिविषार्तानांभिषग्जितम्॥

अर्थ—शालीचांवल, साठीचांवल, कोदों, प्रियंगु, ये भोजन के लिये देवै, नमक में सेंधानमक देवे। शाक में चौलाई, जीवन्ती बेंगन, चौपतिया, चुच्चू, तण्डुकपर्णी, और परवल का साग हितहै। खटाई में आंवला और अनार, यूषमें मूंग और हरेणु, मांसरस में मोर, मेंढा लवा, तीतर और पृषत हिरण, इन मांस और यूषों को विषनाशक औषधियों मे सिद्ध करके देवे तथा अविदाही अन्नका सेवन भी विषरोगियों के लिये हित है।

विषमें वर्जितकर्म।

विरुद्धाध्यशनक्रोधक्षुद्भयायासमैथुनम्। वर्जयेद्विषमुक्तोऽपिदिवास्वप्नंविशेषतः॥

अर्थ—विरुद्धादि भोजन, क्रोध, क्षुधाके वेगको सहन करना, भय, परिश्रम, मैथुन और दिन में सौना इन वातों को विष दूर होनेपर भी त्यागदेवै॥

चतुष्पददष्टके लक्षण।

मुहुर्मुहुःशिरोन्यासःशोफःसस्तौष्ठकर्णता ज्वरस्तब्धाक्षिगात्रत्वंहनुकम्पोऽङ्गमर्दनम्। रोमहर्षमनंग्लानिररतिर्वेपथुर्ग्रहः॥ चतुष्पदांभवत्येतद्दष्टानामिहलक्षणम्।

अर्थ—चौपाये जीवके काटने से ये लक्षण होते है कि दुष्ट व्यक्ति बार बार सिर को फेंकता है, सूजन, ओष्ठों में शुष्कता,

कानों में स्तब्धता, ज्वर, आंखोंका पथराना गात्रमें स्तब्धता, हनुकम्प, अंगमर्द, रोमोद्गम, ग्लानि, अरति, कम्पन और जकडन ये लक्षण भी होते हैं।

चतुष्पददष्टमें उपाय।

देवदारुहरिद्रेद्वेसरलंचन्दनागुरु॥ रास्नागोरोचनाजाजीगुग्गुल्विक्षुरकोनताम्। चूर्णससैन्धवानन्तंगोपित्तमधुसंयुतम्॥ चतुष्पदाहिदष्टानामगदःसार्वकार्मिकः

अर्थ—देवदारु, दोनोंहल्दी, सरलकाष्ट, चन्दन, अगर, रास्ना, गोरोचन, कालाजीरा, गूगल, तालमखाना, तगर, सेंधानमक और अनन्तमूल इन सबका चूर्ण बनाकर शहत और गौ के पित्त के साथ खाने, पीने, लगाने आदि सब कार्यों में देवे इससे चौपायों का विष दूर होजाता है।

गरविषके लक्षण।

सौभाग्यार्थंस्त्रियःस्वेदरजोनानाङ्गजान्मलान्।शत्रुप्रयुक्तांश्चगरान्प्रयच्छन्त्यन्न मिश्रितान्॥ तैःस्यात्पाण्डुःकृशोऽल्पाग्निज्वरश्चास्योपजायते। मर्ममथनाध्मानहस्तपाच्छोफलक्षणाः॥ जठरं ग्रहणीदोषंयक्ष्माणंश्वयथुंक्षयम्॥ एवंविधस्यचान्यस्यव्याधेर्लिङ्गानिदर्शयेत्॥

अर्थ—वशीकरणादि प्रयोगों के लिये स्त्री अपने भिन्न २ अंगोंके स्वेद, रजआदि मलों को खाने पीने की वस्तु में देदेती हैं इसीतरह शत्रु भी गरविष मिलाकर अन्न वा पानी दे देते हैं। इन से पांडुरोग, कृशता, मन्दाग्नि, ज्वर, मर्मप्रपीडन, आध्मान, हाथ पांव में सूजन, उदररोग ग्रहणीदोष, यक्ष्मा, श्वयथु और क्षयरोग तथा ऐसेही और उपद्रव भी होते हैं॥

गरविष के अन्यलक्षण॥

स्वप्नेमार्जारगोमायुव्यालान्सनकुलान् कपीन्॥प्रायःपश्यतिनद्यादीन्शुष्कांश्च सवनस्पतीन्॥कालश्चगौरमात्मानंस्वप्नेगौरश्चकालकम्॥विकर्णनासिकंवापि पश्येत्तद्विहतेन्द्रियः॥

अर्थ—गरविष से पीडित स्वप्न में बिल्ली, सिरकटा, सर्प, नकुल, बन्दर, नदी और सूखी वनस्पतियों को देखता है। उसे अपना कालाशरीर गोरा और गोरा शरीर काला दिखाई देता है। उस के कान और नाक विरूप दिखाई देते हैं और सम्पूर्ण इन्द्रियों में विकलता होती है।

गरविष में वैद्यकाकर्त्तव्य।

तमवेक्ष्यभिषक्प्राज्ञःपृच्छेत्किङ्कैःकदासह। जग्धमित्यवगम्याशुमदद्याद्वमनंभिषक्। सूक्ष्मताम्ररजस्तस्मैसक्षौद्रंहृद्विशोधनम्॥ शुद्धेहृदिततःशाणंहेमचूर्णस्यदापयेत्। हेमसर्वविषाण्याशुगरांश्चविनियच्छति। हेमपरयसजत्यङ्गेनहिपद्मेऽम्बुवाद्विषम्।

अर्थ—ऊपर कहे लक्षणों से युक्त देख कर बुद्धिमान् वैद्य को पूछना चाहिये कि तुमने किस के साथ कब क्या खाया है। यह पूछकर शीघ्रही तांबेकी भस्म में शहत मिलाकर वमन करावे। ऐसा करने से हृदय शुद्ध होजायगा। हृदय के शुद्धहोने पर एक शाणशुद्ध हेमचूर्ण देवें। सुवर्ण सम्पूर्ण

मैथुन करने से वढीहुई अपानवायु अधोगामी स्रोतों को बद्ध करके ऊपरको लौटती है और वस्ति में पहुंचकर घोर विडग्रह, मूत्रग्रह और अधोवातग्रह रोगोंको उत्पन्न करती है ('वायुर्विवृद्धः' से 'करोत्यपानः' तक पाठान्तर भी है यथा "पक्वाशयेकुप्यतिचेदपानः स्रोतस्यधोगानिवलीसरुद्धा । करोतिविण्मारुतमूत्रसंगं क्रमादुदावर्त्तमतःसुघोरम्,,) ॥

उदावर्त्तजन्यरोग ।

रुग्वस्तिहृत्कुक्ष्युदरेष्वभीक्ष्णं सपृष्ठपार्श्वेष्वतिदारुणास्यात् ॥ आध्मानहृल्लास विकर्त्तिकाश्च । तोदोविपाकश्चसवस्तिशोथः ॥ दोषाःप्रवृद्धाजठरेचगण्डान् । ऊर्द्ध्वंचवायुर्विहितोगुदेस्यात् ॥ कृच्छ्रेणशुष्कस्यचिरात्प्रवृत्तिः । स्याद्वातनुः स्यात्खररूक्षशीताः ॥ ततश्चरोगाज्वरमूत्रकृच्छ्र प्रवाहिकाहृद्ग्रहणीप्रदोषाः॥ वम्यान्ध्यवाधिर्यशिरोऽभिताप वातोदराष्ठीलमनोविकाराः ॥तृष्णास्रपित्तारुचिगुल्मकास श्वासप्रतिश्यार्दितपार्श्व रोगाः ॥ अन्येचरोगावहवोऽनिलोत्था । भवन्त्युदावर्त्तकृताःसुघोरा ः ॥

अर्थ...उपर कहेहुए व्यतिक्रमसे उदावर्त्त रोग के होनेपर वस्ति, हृदय, कूख, और उदर में निरन्तर वेदना होती है । पीठ और पसलियों में दारुणशूल होने लगता है । तथा आध्मान, हृल्लास, विकर्तिका (ऐंठा) तोद, विपाक, और वस्तिशोथ उपस्थित होते हैं और वढेहुए दोष, जठर में गण्ड और ऊर्ध्ववात को प्रवृत्त करते हैं जो दस्त होता भी है तो पतला, रूखा, शीतल, कठिनतासे, देरमें सूखाहुआ थोडा थोडा होता है । तदनन्तर ज्वर, मूत्रकृच्छ्र प्रवाहिका हृद्दोष, ग्रहणीदोष, वमन, अन्धता, बहरापन शिर में जलन, वातोदर, वातष्ठीला, मनोविकार' तृष्णा, रक्तपित्त, अरुचि, गुल्म, खांसी, श्वास,, प्रतिश्याय, अर्दित, पार्श्वरोग तथा और और भी बहुत से वातजरोग उत्पन्न होते हैं ॥

वातजरोगोंमे चिकित्सा ।

तंतैलशीतज्वरनाशनोक्तं स्वेदैर्यथोक्तैः प्रविलीनदोषम् ॥ उपाचरेद्वर्त्तिनिरूहवस्ति स्नेहैर्विरेकैरनुलोमनान्नैः ॥

अर्थ—ऐसे रोगी को प्रथमही शीतज्वर नाशक तैल का अभ्यंग और यथोक्त पसीने देकर दोषों को दूरकर देवै और फिर वर्ति, निरूहणवस्ति, स्निग्धविरेचन और अनुलोमनकर्त्ता औषधियों द्वारा उपचारकरै।

उदावर्त्त में वर्ति विधि॥

श्यामात्रिवृन्मागधिकाग्निचूर्णंगोमूत्रपीतं दशभागमाषम्।सनीलिकंद्विर्लवणंगुडेन वर्तिंकरांगुष्ठनिभांविदध्यात् ॥

अर्थ—कालीनिसोथ, पीपल, चीता और नीलिका ये सब दस दस माशे लेवै और इन से दूना नमक मिलाकर गौकेमूत्र में घोट डालै फिर गुड मिलाकर अंगूठे के बराबर वत्ती बनाकर गुदा में प्रवेश करके बांधदेवै और थोडीदेर पीछे वत्ती निकालकर फेंक देवै ऐसा करने से उदावर्त्त दूर होजाताहै ।

और अधोवायु के निकालने वाले अन्य द्रव्यों के साथ भी यवान्न भक्षण करे। ऊपर से प्रसन्ना, और गौरीय शीधुका अनुपान करे ॥ यदि इन उपायों के करने पर मल मूत्रादि की विबन्धता एकवार दूर होकर फिर उत्पन्न होतो गोमूत्र, प्रसन्ना और दधिमंड के संयोग से फिर विरेचनदेवै॥

गुल्मोदरब्रध्नार्शःप्लीहोदावर्तयोनिशुक्रगदे । मेदःकफसंसृष्टेमारुतरक्तेऽवगाढे च । गृध्रसिपक्षवधादिषुविरेचनार्हेषु वातरोगेषु ॥ वातेनिबद्धमार्गेमेदःकफापित्तरक्तेन । पयसामांसरसैर्वात्रिफलारसयूषमूत्रमदिराभिःदोषानुबन्धयोगात्प्रशस्तमेरण्डजतैलम् । तद्धातानुत्स्वभावात् संयोगवशाद्विरेचनाच्चजयेत् ॥ मेदोऽसृक्पित्तकफान्मिश्रानिलवरोगजित्स्यात्

अर्थ—गुल्मरोग, उदररोग, ब्रध्न, अर्श रोग, प्लीहा, उदावर्त, योनिरोग, शुक्ररोग मेदा से संसृष्ट वा कफसे संसष्ट अवगाढ़ वातरक्त, गृध्रसी, पक्षाघात, तथा अन्य विरेचन के योग्य वातरोग, मेद वा कफवा पित्तरक्त द्वारा निवद्ध मार्गवाला वातरोग इन सब रोगों में दोष के अनुवन्ध के अनुसार दूध, मांसरस, त्रिफला का क्वाथ, यूष, गोमूत्र वा मदिरा के साथ अंडीके तैल का विरेचन देवै। यह अंडी का तेल स्वभाव से वातनाशक है और औषधियों के संयोग वश से विरेचन कर्त्ता भी है इससे यहमेदरोग रक्तपित्त और कफवातरोगोंको नष्टकर देताहै

अण्डी के तैलकी मात्राकाप्रमाण ।

बलकोष्ठव्याधिवशादापञ्चपलाभवेन्मात्रा । मृदुकोष्ठावलानांसहभोज्यंतंप्रयोज्यंस्यात् ।

अर्थ—शरीर के बल, कोष्ठ और व्याधि के प्रसंगसे अंडी के तेलकी मात्रा पांचपल पर्य्यन्त है मृदुकोष्ठवाले और दुर्वलों के लिये यह भोजन में मिलाकर देना चाहिये ॥

विरेचनकापश्चात् कर्म ॥

स्वस्थन्तुपश्चादनुवासयेत्तमूरौक्ष्यादिसङ्गो निलवर्चसोश्चेत् ॥

अर्थ—स्वस्थ होने पर विरेचन के पीछे रूक्षताके कारण यदि वातप्रकोपसेविष्टाका विवन्ध होतो अनुवासन वस्ति देवै ।

उदावर्त्तमेंचिकित्साकेमयोग

द्विरुत्तरंहिंगुवचाग्निकुष्ठासुवर्चिकाचैवविडङ्गचूर्णम् । सुखाम्बुनानानाहविषूचिकार्तिहृद्रोगगुल्मोर्द्ध्वसमीरणघ्नम् ॥ वचाभयाचित्रकयावशूकान्सपिप्पलीकातिविषान्सकुष्ठान् । उष्णाम्बुनानाहविमूढवातान्पीत्वाजयेदाशुरसौदनाशी ॥

अर्थ—हींग, वच, कूट, संचलनमक, और वायविडंग इनको उत्तरोत्तर द्विगुणले कर चूर्ण करले और गरम जल के साथ फांके तो इससे आनाह, विशूचिका, आर्त्ति हृद्रोग, गुल्म और ऊर्ध्ववात दूर होजाते है वच, हरड़, चीता, जवाखार, पीपल, अतीस और कूठ इन के चूर्ण को गरम जल के साथ फांकै तो आनाह और मूढ़ वात दूर होजाते हैं । इसपर मांसरस और चावल का पथ्य होता है ।

स्थिरादिवर्गस्यपुनर्नवायाःशम्पाकपूती-

ककरञ्जयोश्च ॥ सिद्धःकषायेद्विपलांशिकानांप्रस्थोघृतात्स्यात्प्रतिरुद्धवाते।

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूल, सांठ, श्यामाक, पूतिकंजा इनको दो दो पल लेकर काथ करै, चौथाई शेष रहनेपर उतारकर छानलेवै और इसमें एक प्रस्थ घृत डालकर पकावै यह घृत रुद्धवात में हित है ॥

फलश्चमूलञ्चविरेचनोक्तांहिंग्वर्कमूलंदशमूलमग्र्यम् । स्नुक्चित्रकौचैवपुनर्नवाच तुल्यानिसर्वैर्लवणानिपञ्च ॥ स्नेहैःसमूत्रैःसहजर्जराणिशरावसन्धौविपचेत्सुलिप्ते ॥ पक्वंसुपिष्टंलवणंतदन्नैःपानैस्तथानाहरुजघ्नमग्र्यम् ॥

अर्थ—विरेचनोक्त फलमूल, हींग, आक की जड़, दशमूल, सेंहुड़, चीता, सांठ ये सब समानभाग लेवै और इन सब के बरावर पांचों नमक मिलाकर कूटडाले इस में स्नेह और गोमूत्रादिक मिलाकर शराव संपुट में रखकर कपडमिट्टी करके फूकलेवै पक्व होनेपर पीसकर इस नमक को अन्नपान के साथ सेवन करै। यह आनाह के दूर करने में सर्वोत्कृष्ट है ॥

हृत्स्तम्भमूर्धाशयगौरवार्त्याचोद्गारसङ्गेनसपीनसेन् । आनाहमामभवञ्जयेत्तं मच्छर्दनैर्लंघनपाचनैश्च ॥

अर्थ—हृत्स्तम्भ, शिरोरोग, भारापन, डकार का वन्द होना, पीनस इन रोगों से युक्त आमसे उत्पन्न हुए आनाह रोगमें, वमन, लंघन और पाचन प्रयोग करै ॥

हिंगूग्रगन्धाविड्शुण्ठ्यजाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्ठम् । यथोत्तरंभागविवृद्धमेतत्प्लीहोदराजीर्णविसूचिकासु ॥

अर्थ—हींग, वच, विडनमक, सोंठ, कालाजीरा, हरड, पौहकरमूल, कूठ, इनसब औषधोंको उत्तरोत्तर एक एक भाग बढाकर चूर्ण बनाकर सेवन करै तौ प्लीहा, उदररोग, अजीर्ण, और विसूचिका नष्ट होजाते हैं ॥

मूत्रकृच्छ्रका निदान।

व्यायामतीक्ष्णौषधरूक्षमद्यप्रसङ्गनित्यद्रुतपृष्ठयानात् ॥ आनूपमत्स्याध्यशनादजीर्णात्स्युर्मूत्रकृच्छ्राणिनृणामिहाष्टौ॥

अर्थ—शारीरिक परिश्रम, तीक्ष्ण औषध रूक्षसेवन, मद्यप्रसंग, स्त्री संसर्ग, शीघ्रगमन उछल उछलकर चलने वाले उष्ट्रादि की पीठ पर सवारी, आनूप और मत्स्यमांस का अतिशय सेवन, अध्यशन, अजीर्ण में भोजन इत्यादि हेतुओं से मनुष्यों के आठ प्रकारके मूत्रकृच्छ्र होते हैं ॥

कृच्छ्रतासे मस्राव का कारण।

पृथङ्मलाःस्वैःकुपितानिदानैःसर्वेऽथवा कोपमुपेत्यबस्तौ । मूत्रस्यमार्गंपरिपीडयन्तियदातदामूत्रयतीहकृच्छ्रात् ॥

अर्थ—अपने अपने कारणोंसे एक एक दोष अथवा सब एक साथ कुपित होकर वस्तिमें पहुंचकर मूत्रमार्गको पीडित करते हैं तब बहुत थोडा थोडा बडी कठिनतासे मस्राव होताहै ॥

वातजमूत्र कृच्छ्र के लक्षण।

तीव्राहिरुग्वंक्षणबस्तिमेढ्रे । स्वल्पंमुहुर्मूत्रयतीहवातात् ॥

अर्थ—वातज मूत्रकृच्छ्रमें प्रस्राव करने के समय वंक्षण, वस्ति और मेढ्रमें बडी तीव्र वेदना होती है और प्रस्राव थोडा २ बडी कठिनता से उतरताहै ॥

पित्तजमूत्र कृच्छ्रके लक्षण ।

पीतान्सकृष्णंहिसरुक्सदाहं ।
कृच्छ्रान्मुहुर्मूत्रयतीहपित्तात् ॥

अर्थ—पित्तजमूत्रकृच्छ्र में पीला, लाल या काला प्रस्राव बडी वेदना और दाहके साथ वार वार होता है ॥

कफजमूत्रकृच्छ्र के लक्षण ।

वस्तेःसलिंगस्यगुरुत्वशोफौ ।
मूत्रंसपिच्छंकफमूत्रकृच्छ्रे ॥

अर्थ—कफजमूत्रकृच्छ्र में वस्ति और लिंग में भारापन और सूजन होतीहै और मूत्र गिलगिला उतरता है ॥

सन्निपातज मूत्रकृच्छ्र के लक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातात् ।
भवान्तितत्कृच्छ्रतमन्तुकृच्छ्रम् ॥

अर्थ—सन्निपातजमूत्रकृच्छ में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं यह बहुतही कृच्छ्रसाध्य होता है ॥

अश्मरीनिदान ।

विशोषयेद्वस्तिगतन्तुशुक्रंमूत्रंसपित्तंपवनः कफंवा । यदातदाश्मर्युपजायतेतुक्रमेण पित्तेष्विवरोचनागौः ॥

अर्थ—जब वायु किसी कारणसे वस्ति में पहुंचे हुए शुक्रको सुखादेती है वा पित्त सहित कफको सुखा देती है तब क्रम २ से वर्द्धमान अश्मरी [पथरी] उत्पन्न होती है जैसे गौके पित्ते में गोरोचन उत्पन्न होता है ॥

अश्मरी की आकृति ॥

कदम्बपुष्पाकृतिरश्मतुल्या॥
श्लक्ष्णात्रिपुट्यप्यथवापिमृद्वी ॥

अर्थ—अश्मरी कदम्ब के फूल के सदृश या पत्थर के तुल्य चिकनी, तिकूंटी वा कोमल भी होती है ॥

अश्मरी के कर्म ।

मूत्रस्यचेन्मार्गमुपेतिरुंधामूत्रंरुजांतस्यकरोतिवस्तौ । ससीवनीमेहनवस्तिशूलंविशीर्णधारञ्चकरोतिमूत्रम् ॥ मृद्गातिमेढ्रंसतुवेदनार्तोमुहुःशकृन्मुञ्चतिमेहतेच । क्षोभात्क्षतेमूत्रयतीहसासृक्तस्याःसुखंमेहतिचव्यवायात् ॥

अर्थ—जब अश्मरी मूत्रमार्ग में पहुंच जाती है तब मूत्रमार्ग को रोकदेती है ॥ और वस्ति में अत्यन्त वेदना उत्पन्न करती है । सीवनी से लेकर मेढ़ पर्य्यंत वस्ति में बडा शूल होता है उस समय मूत्र की धार फटजाती है और वेदना के कारण रोगी मेढ़ को पकडकर मसल डालता है और वार २ रोगी पुरीषोत्सर्ग और मूत्र करताहै ॥ मसलते २ मेढ़के भीतर घाव होजाता है तब उसमें से रुधिर आनेलगता है, तथा उसके व्यवाय से सुख पूर्वक प्रस्राव होने लगताहै ।

शर्करा के लक्षण ।

एषाश्मरीमारुतभिन्नमूर्त्तिः ।
स्याच्छर्करामूत्रपथात्सरन्ती।

अर्थ—जब यह अश्मरी वायु के कारण छिन्न भिन्न होकर मूत्रमार्ग के द्वारा निकलती है तब इसे शर्करा कहतेहैं। ÷॥

शुक्रमलाश्चेदपृथक्पृथग्वामूत्रायनस्थाः प्रतिवारयन्ति। तद्व्याहतंमेहनवस्तिशूलंमूत्रंसशुक्रंहिकरोतिवद्धम् ॥ स्तब्धश्च शूनोभृशवेदनश्चतुचेतवस्तिर्वृषणौच तस्य ॥

अर्थ—जब दोष पृथक् २ वा सब मिल कर मूत्रमार्ग का अवलम्बन करके शुक्रको निकलने से रोकदेतेहैं और वीर्यके कारण मूत्र भी रुकजाता है उस समय मेढ्र और वस्ति में अत्यन्त शूल होताहै। तथा वस्ति और मेढ्र में स्तब्धता, सूजन और अत्यन्त वेदना होतीहै और वस्ति तथा अंडकोशों में सुई छिदनेकीसी पीड़ा होती हैं॥

÷ किसी २ पुस्तक में यह पाठ अधिक हैं यथा—रेतोऽभिघाताभिहतस्य पुंसःप्रवर्त्तेयत्तस्यतुमूत्रकृच्छ्रम्। स्यात्वेदनावंक्षणवस्ति मेढ्रे तस्यातिशूले वृषणातिवृत्ते॥ शुक्रेणसंरुद्ध गतिः प्रवाहो मूत्रं सकृच्छ्रेण विमुञ्चतीह। तमाण्डयोः स्तब्धमिति ब्रुवन्ति रेतोऽभिघाते प्रवदन्ति कृच्छ्रम् ॥ अर्थात् मूत्रके अभिघात से जो अश्मरी होतीहै वह पुरुषों केही होती है और वीर्य के अभाव से स्त्री और बालकों के नहीं होती॥ इस में वंक्षण, वस्ति और मेढ्रमें अत्यन्त वेदना होतीहै॥ वीर्य से मूत्रका मार्ग रुक जाने के कारण मूत्र कठिनता से होता है। इस रेतोऽभिघात मूत्रकृच्छ्र को अण्डस्तब्ध कहते हैं॥

अन्य अश्मरीका कारण।

क्षतादिघातात्क्षतजंक्षयाद्वामकोपितंवस्तिगतंविवद्धम्। तीव्रार्तिमूत्रेणमहाल्पमल्पमायातितस्मिन्नतिसञ्चितेच ॥ आध्मातताविन्दतिगौरवञ्चवस्तेर्लघुत्वञ्चवि-निःसृतेऽस्मिन्॥

अर्थ—मेढ्र के भीतर घाव होने से वस्ति में चोट लगने से, अथवा रसादि धातुओं के क्षीण होने से रक्तादि द्रव्योंको कुपित करके वस्ति में लेजाकर रोकदेते हैं और तब अत्यन्त वेदना से युक्त होकर मूत्र के साथ धीरे धीरे बाहर निकलती हैं, और जो यह भीतर बहुत संचित होजाय तो वस्ति में आध्मान और भारापन होता है और जो निकलजाय तो हलकापन रहता है (गंगाधर शास्त्री ने 'महाल्पमल्पमायाति, की जगह "महाश्मरीत्वमायाति' ऐसा पाठ किया है परन्तु प्रसंग विरुद्ध मालूम पड़ताहै॥

वातजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहवस्ति स्नेहोपनाहोत्तरवस्तिसेकान्। स्थिरादिभिर्वातहरैश्चसिद्धान् कुर्याद्रसांश्चानिल मूत्रकृच्छ्रे ॥ पुनर्नवैरण्डशतावरीभिः पत्तूरवृश्चीरबलाश्मभिद्भिः। द्विपञ्चमूलेनकुलत्थकोलै यवैश्चतोयोत्क्वथितेकषाये ॥ तैलंवराहर्क्षवसाघृतञ्च रेकैकशस्तैश्चसमस्तमेवम्। तत्पानमभ्य- मतिहन्तिवातं शूलान्वितं चानिलमूत्र- कृच्छ्रम् ॥

अर्थ—वातजमूत्रकृच्छ्रमें अभ्यंजन,स्नेह, निरूहणवस्ति, स्नेहोपनाह, उत्तरवस्ति, परिषेक तथा शालिपर्णीसे आदि लेकर वा तनाशक द्रव्योंसे सिद्ध किये हुए मांसरसों का प्रयोग करै ॥ पुनर्नवा, ऐरण्ड, शतावरी, पत्तूर, वृश्चीर, खरैटी, पाखानभेद, दशमूल, कुलथी, वेर, जौ इन सब के क्वाथ में इन्हीं का कल्क और पांचों नमक डालकर तेल, वराह की चर्वी, रीछकी चर्वी और घीको सिद्ध करै। इसका मात्रावत् सेवन करने से शूलान्वित वातज मूत्रकृच्छ्र शीघ्रही दूर होजाता है ॥ यहां गंगाधर शास्त्री यह लिखतेहै कि पुनर्नवादि पहिले तीन द्रव्यों में उनही का कल्क और पांचोंनमक डालकर घी, वसाआदि सिद्ध करै ॥ दूसरा घृत पत्तूरादि चार द्रव्यों से करै। तीसरा दशमूल में सिद्ध करै और चौथा कुलथादि शेष द्रव्योंमें करै ॥

एतानिचान्यानिवरौषधानि । सर्वाणि शस्तान्यपिचोपनाहे॥ स्थूलाभितस्तैलफलानिचैवस्नेहाम्लयुक्तानिसुखोष्णवन्ति॥

अर्थ—उपर कही हुई औषधें तथा अन्य उत्तम उत्तम औषधों को तैलफल (तिल वा अलसी) स्नेह और अम्लद्रव्योंके साथ पीसकर गरम २ उपनाहमें प्रयोग करै ॥

पित्तजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा ॥

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा ग्रैष्मोविधिर्वस्तिपयोविरेकाः ॥ द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्च कृच्छ्रेषुपित्तप्रभवेषुकार्याः॥ शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्रा विदारिशालीक्षुकशेरुकाणाम्॥क्वाथंसुशीतंमधुशर्कराभ्यां युक्तंपिवेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्री ॥ पित्तकषायंकमलोत्पलानां शृंगाटकानामथवाविदार्याः ॥ दण्डोत्पलानामथवापिमूलं पूर्वेणकल्केनतथासुशीतम् ॥ एर्वारुबीजत्रपुषात्कुसुम्भान्सकुंकुमंस्याद्वृषकदचपेयः॥ द्राक्षारसेनाश्मरिशर्करासु सर्वेषुकृच्छ्रेषुप्रशस्तएषः ॥ एर्वारुबीजं मधुकंसदार्वि पैत्तेपिवेत्तण्डुलधावनेन ॥ दार्वीतथैवामलकीरसेन समाक्षिकांपित्तकृतेतुकृच्छ्रे ॥

अर्थ—पित्तजमूत्रकृच्छ्र में सेक, अवगाह, शीतल प्रदेह, ग्रैष्मिक क्रिया, तथा दाख, विदारीकन्द का रस, ईखकारस और घृत द्वारा वस्ति प्रयोग, दूध और विरेचन देवे ॥ सितावर, कांस, कुशा, गोखरू, विदारीकन्द, ईख और कसेरू इन के क्वाथ को ठंडा करके शहत और शर्करा मिलाकर पीने से पैत्तिकमूत्रकृच्छ्र अच्छा होजाता है । कमल और नीलकमल का काथ अथवा सिंघाडे का क्वाथ अथवा विदारीकन्द का काथ अथवा दंडोत्पलकी जडका कषाय ठंडा होने पर शहत और चीनी डालकर पान करै । ककडी के बीज, खीराके बीज कसूम के बीज, कुंकुम और अडूसा इनको पीसकर दाख के रस के साथ सेवन करै तो अश्मरी शर्करा तथा सब प्रकार के मूत्रकृच्छ्र दूर होजाते हैं । ककडी के बीज, मुलहटी और दारुहलदी इनको पीसकर तंडुल जल के साथ पान करै । दारुहलदीको

पीसकर आंवले के रस के साथ शहत मिलाकर पीवै तौ पित्तज मूत्रकृच्छ्र दूर होजाताहै।

कफजमूत्रकृच्छ्र में चिकित्सा।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानंस्वेदोयवान्नंवमनंनिरूहः। तक्रंसतिक्तौषधसिद्धतैलमभ्यङ्गपानंकफमूत्रकृच्छ्रे॥ व्योषंश्वदंष्ट्रात्रुटिसारसास्थिकोलप्रमाणोमधुमूत्रयुक्तम्। पिबेत्त्रुटिंक्षौद्रयुतांकदल्यारसेन कैडर्यरसेनवापि॥ तक्रेणयुक्तंसितमारकस्यबीजंपिबेत्कृच्छविनाशहेतोः। पिबेत्तथातण्डुलधावनेनप्रवालचूर्णंकफमूत्रकृच्छ्रे॥ सप्तच्छदारग्वधकेम्बुकैलाधवंकरञ्जंकुटजंगुडूचीम्। पक्त्वाजलेतेनपिबेद्यवागूंसिद्धंकषायंमधुसंयुतंवा॥

अर्थ—कफज मूत्रकृच्छ्र में क्षार उष्ण और तीक्ष्ण औषध, उष्ण और तीक्ष्ण अन्नपान, स्वेदन, जौ का अन्न, वमन, निरूहण, तक्र तथा तिक्त औषधियों से सिद्ध कियेहुए तेल का अभ्यंग और पान हित है। त्रिकुटा गोखरू, छोटी इलायची, कमलगट्टाकी मिंगी इनको एक एक तोले लेकर शहत और गोमूत्र के साथ पान करै। अथवा छोटी इलायची और शहत को केला के रस के साथ अथवा केवटी मोथा के रस के साथ पान करै। अथवा शालिंचकेबीजों को तक्र के साथ पान करै अथवा तंदुल जल के साथ मूंगाकी भस्म को पान करै। सप्तपर्ण, अमलतास का गूदा, केवुक, छोटी इलायची, धव, कंजा, कुड़ाकी छाल और गिलोय इन सबके क्वाथमें यवागू सिद्ध कर के सेवन करै अथवा इन के कषाय में शहत डालकर पीवै।

सान्निपातिकमूत्रकृच्छ्रमेंचिकित्सा।

सर्वत्रिदोषप्रभवेतुवायोःस्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्यकार्यम्। त्रिभ्योऽधिकेप्राग्वमनंकफेतुपित्तेविरेकःपवनेतुवस्तिः॥

अर्थ—सान्निपातिक मूत्रकृच्छ्रमें जो तीनों दोष समान हों तौ वायु को प्रधान समझकर चिकित्सा करै। यदि तीनों दोषोंमें कफकी अधिकता हो तौ प्रथम वमन करावै। पित्त की अधिकतामें विरेचन और वातकी अधिकता में वस्ति देवै॥

क्रियाहितास्त्वश्मरिशर्कराभ्यांकृच्छ्रेयथैवेहकफानिलाभ्याम्। कफाश्मनांभेदनिपातनायविशेषयुक्तंशृणुकर्मसिद्धम्॥

अर्थ—कफवात के मूत्रकृच्छ्र में जो जो चिकित्सा कही गई है वेही अश्मरी और शर्करा में हित होती है अब कफजन्य अश्मरी के टुकड़े करके निकालने के लिये जो विशेष युक्तियां हैं उनको वर्णन करतेहैं।

अश्मरी में चिकित्सा।

पाषाणभेदंवृषकंश्वदंष्ट्रापाठाभयाव्योषशटीनिकुम्भाः। हिंस्राखराश्वासितिमारकाभ्यामेर्वारुकाणांत्रपुषस्यबीजम्॥ उकुम्भिकाहिंगुसवेतसाम्लं स्याद्द्वेबृहत्यौहपुषावचाच। चूर्णंपिबेदश्मभिदाविपक्वं सर्पिश्चगोमूत्रचतुर्गुणन्तैः॥

अर्थ—पाखान भेद, अडूसा, गोखरू, पाठा, हरड, त्रिकुटा, कचूर, दन्ती, हिंस्रा खुरासानी अजवायन, शालिंचबीज, ककड़ी

के तैलकी वस्ति देवे । जो जो चिकित्सा पित्तजमूत्रकृच्छ्र में वर्णन कीगई हैं वेही सब रक्तज मूत्रकृच्छ्र में भी हित हैं ॥

मूत्रकृच्छ्रमेंवर्जितकर्म ।

व्यायामसन्धारणशुष्करूक्ष पिष्टान्नवातार्ककरव्यवायान् ॥ खर्जूरशालूककपित्थजम्बु विषंकषायंचरुसंभजेन्ना ॥

अर्थ—व्यायाम, मलमूत्रादि वेगधारण, शुष्क, रूक्ष, पिष्टान्न, वातसेवन, धूप, व्यवाय, खिजूर, शालूक, कैथ, जामन, विष और कषाय रस ये सब उक्तरोगों में निषेध किये गये हैं ॥

हृद्रोगकीउत्पत्तिकाकारण ।

व्यायामतीक्ष्णातिविरेकवस्तिछर्द्यामसंधारणकर्षणानि । हृद्रोगकारीणितथाभिघातः चिन्ताभयत्रासमदाभिचाराः ॥

अर्थ—व्यायाम, तीक्ष्णविरेचन, तीक्ष्णवस्ति, वमन, मलवेग का रोकना, उपवासादि कर्षण, अभिघात, चिन्ता, भय, त्रास, मत्तता और अभिचार ये सब हृद्रोगों की उत्पत्ति के कारण हैं ॥

हृद्रोगके उपद्रव ।

वैवर्ण्यमूर्च्छाज्वरकासहिकाश्वासास्यवैरस्यतृषाःप्रमोहाः ॥ छर्दिःकफोत्क्लेशरुजोरुचिश्च हृद्रोगजाःस्युर्विविधास्तथान्ये ॥

अर्थ—हृद्रोग से विवर्णता, मूर्च्छा, ज्वर, खांसी, हिचकी, श्वास, मुखका जायका बिगड़ना, तृषा, प्रमोह, वमन, कफोत्क्लेश वेदना, अरुचि तथा और भी ऐसेही बहुत से अन्य उपद्रव उत्पन्न होते हैं ।

वातज हृद्रोगके विशेष लक्षण ॥

हृच्छून्यभावद्रवशोषभेद । स्तम्भःसमोहःपवनाद्विशेषः ॥

अर्थ—वातजहृद्रोगमें हृदयमें शून्यता धक धक, शोष, भेद, स्तम्भता और मोह ये विशेष लक्षण होते हैं ॥

पित्तज हृद्रोग के लक्षण ॥

पित्तात्तमोदूयनदाहमोह । सन्त्रासतापज्वरपीतभावाः॥

अर्थ—पित्तज हृद्रोगमें अन्धकार दिखाई देना, ग्लानि, दाह, मोह, त्रास, सन्ताप, ज्वर और वस्तुओंका पीला दिखाई देना ये लक्षण होते हैं ॥

कफज हृद्रोगके लक्षण ।

स्तब्धंगुरुस्यात्स्तिमितश्चमर्म । कफात्प्रसेकज्वरकासतन्द्राः ॥

अर्थ—कफज हृद्रोगमें स्तब्धता, भारापन, मर्ममें स्तिमिता, लालास्राव, ज्वर, खांसी और तन्द्रा ये लक्षण होते हैं ॥

सान्निपातिक हृद्रोग के लक्षण ।

विद्यात्त्रिदोषन्त्वपिसर्वलिङ्गं । तीव्रार्तिभेदंकृमिजंसकण्डूम् ॥

अर्थ—सान्निपातिक हृद्रोगमें तीनों दोषों के लक्षण होते हैं तथा कृमिज हृद्रोग में तीव्र वेदना, भेद और खुजली होती है ।

वातज हृद्रोग में चिकित्सा ।

तैलंससौवीरकमस्तुतक्रंवातेमपेयंलवणंसुखोष्णम् । मूत्राम्बुसिद्धंलवणैश्चतैलमानाहगुल्मार्तिहृदामयघ्नम् ॥ पुनर्नवादारुसपञ्चमूलारास्नांयवान्बिल्वकुलत्थ

कोलम्॥पक्त्वाजलेतेनाविपाच्यतैलमभ्य
ङ्गपानेऽनिलहृद्गदघ्नम् ॥

अर्थ—सौवीर, दही का तोड और मठा इनके साथ तेल पीवै अथवा गोमूत्र और जल के साथ नमकको सिद्ध करके सुहाता हुआ गरम पीवै अथवा पांचों नमकके साथ सिद्ध कियाहुआ तेल पीवै। इसके पीने से वातज हृद्रोग, आनाह और गुल्म दूर होजाते हैं। सांठ, देवदारु, पंचमूल, रास्ना, जौ, वेल की छाल, कुलथी और बेर इनका क्वाथ करै, चौथाई शेष रहनेपर उतारकर छान लेवै और इसमें तेल को पकाकर अभ्यंग और पानमें प्रयुक्त करै तौ वातजहृद्रोग जाता रहता है ॥

हरीतकीनागरपुष्कराह्वैर्वयःकयस्थालव
णैश्चकल्कैः। सहिंगुभिःसाधितमग्र्यस
र्पिर्गुल्मेसहृत्पार्श्वगदेऽनिलोत्थे ॥ सपु
ष्कराह्वफलपूरमूलंमहौषधंशठ्यभयाच
कल्काः। क्षाराम्बुसर्पिःलवणैर्विमिश्राः
स्युर्वातहृद्रोगविकर्तिकाघ्नाः ॥

अर्थ—हरड,सोंठ, पौहकरमूल,काकोली, छोटी इलायची, सेंधानमक और हींग इन के कल्कके साथ चौगुना जल चढाकर घृत पकावै, इस घृतके सेवन करनेसे वातज गुल्म हृद्रोग और पसलीका दर्द दूर होजाता है। पौहकरमूल, बिजौरे की जड, सोंठ, कचूर, हरड, इन सब का कल्क, जवाखार का जल, घी और सेंधानमक इन सबको पकाकर सेवन करने से वातज हृद्रोग और विकर्तिका का नाश होजाता है ॥

क्वाथःकृतःपौष्करमातुलुङ्गपलाशभूतीक
शटीसुराह्वैः। सशुण्ठ्याजाजीद्विवचाय
मानिःसक्षारउष्णोलवणश्चपेयः॥ पथ्या
शटीपुष्करपञ्चकोलान्समातुलुङ्गायमके
नकल्कः ॥ गुडप्रसन्नालवणैश्चभृष्टोहृत्
पार्श्वगुल्मोदरयोनिशूले ॥

अर्थ—पुष्करमूल, बिजौरा, पलास, अजवायन, कचूर, देवदारु इनका क्वाथ कर के इसमें सोंठ, कालाजीरा, दोप्रकार की वच,अजवायन, जवाखार और नमक डाल कर गरम गरम पीने से वातजहृद्रोग दूर होजाते हैं ॥ हरड, कचूर, पौहकरमूल, पंचकोल और बिजौरा इनका कल्क इसमें गुड, प्रसन्ना और नमक डालकर घी और तेलमें भूनकर सेवन करने से हृत्शूल, पार्श्वशूल, गुल्म, उदररोग और योनिशूल दूर होजाते हैं ॥

त्र्यूषणादि घृत।

स्यात्त्र्यूषणंद्वेत्रिफलेसपाठेनिदिग्धिका
गोक्षुरकौबलेद्वे। ऋद्धिस्त्रुटिस्तामलकी
स्वगुप्तामेदेगधूकंमधुकंस्थिराच ॥ शता
वरीजीवकपृश्निपर्ण्यौ द्रव्यैरिमैरक्षसमैः
सुपिष्टैः ॥ प्रस्थंघृतस्येहपचेद्विधिज्ञःप्रस्थे
नदद्यात्त्वथमाहिषस्य ॥ मात्रांपलंचार्द्ध
पलंपिबुम्वाप्रयोजयेन्माक्षिकसंप्रयुक्तम्
श्वासेसकासेत्वथपाण्डुरोगेहलीमकेहृद्ग्र
हणीप्रदोषे ॥

अर्थ—त्रिकुटा, दोनों प्रकारकी त्रिफला (एकहरड बहेडा, आंवला) दूसरी (दाख गंभारी और फालसा] पाठा,कटेरी, गोखरू बला, अतिबला, ऋद्धि, छोटी इलायची,

भूय आंवला, कौंच, मेदा, महामेदा, मुलहटी शालिपर्णी, सितावर, जीवक और पृश्निपर्णी इन सब द्रव्योंको दो दो तोले लेकर महीन पीसले इस में भैंस का घी एक प्रस्थ और दही एक प्रस्थ डालकर पाक करै। इस घृतकी मात्रा बलके अनुसार एकपल आधा पल वा एक तोला प्रतिदिन सेवन करनेसे श्वास, खांसी, पांडुरोग, हलीमक, हृद्रोग और ग्रहणीदोष दूर होजाते हैं।

पित्तजहृद्रोगमेंचिकित्सा।

शीताःप्रदेहाःपरिषेचनञ्च। तथाविरेकोहृदिपित्तदुष्टे॥ द्राक्षासिताक्षौद्रपरूषकैः स्यात्शुद्धेतुपित्तापहमन्नपानम्॥ यष्ट्याह्विकातिक्तकरोहिणीभ्यां। कल्कंपिबेच्चापिसिताजलेन॥ क्षतेपुसर्पींषिचतद्गुडाश्च॥येतेचशस्ताहृदिपित्तदुष्टे॥ दद्यात्भिषग्धन्वरसांश्चगव्यक्षीराशिनाञ्चप्रसमीक्ष्यसम्यक्॥

अर्थ— पित्तज हृद्रोग में शीतल प्रदेह परिषेचन और विरेचन देना हित है। इस तरह शुद्ध होनेपर दाख, मिश्री, शहत और फालसे के साथ अन्नपान देवै। मुलहटी और कुटकी को घोटकर मिश्री के जल में छानकर पीने से भी पित्तज हृद्रोग दूर होजाते हैं। क्षतरोग में जो जो घृत और गुड़ वर्णन किये हैं वे सब रोगकी परीक्षा करके पित्तज हृद्रोगमें भी हित हैं परन्तु इनके साथमें रोगी को धन्वज मांसरस और गौके दूध का सेवन कराता रहै॥

द्राक्षाबलाश्रेयसिशर्कराभिःखर्जूरवीरर्षभकोत्पलैश्च। काकोलिमेदायुगजीवकैश्चक्षीरेचसिद्धंमहिषीघृतंस्यात्॥ कशेरुकाशैवलशृङ्गवेरप्रपुण्डरीकंमधुकंबिसस्य। ग्रन्थिश्चसर्पिःपयसापचेत्तैःक्षौद्रान्वितपित्तहृदामयघ्नम्॥ स्थिरादिकल्कैःपयसाचासिद्धंद्राक्षारसेनेक्षुरसेनवापि सर्पिर्हितंस्वादुफलेक्षुजाश्चरसाःसुशीताः हृदिपित्तदुष्टे॥

अर्थ—दाख, खरैटी, गजपीपल और शर्करा। अथवा खिजूर, क्षीरकाकोली, ऋषभक और नीलकमल अथवा काकोली, मेदा, महामेदा और जीवक इन तीन प्रयोगों में से किसी एकके कल्कके साथ गौके दूध में भैंस का घी सिद्ध करकेदेवें। कसेरू, शैवल, अदरख, पुंडरिया, मुलहटी, कमलनाल की गांठ इन के कल्कको चौगुने दूध में चढ़ाकर इसके साथ घृतपाककर के शहत मिलाकर सेवन करनेसे पित्तज हृदयरोग शान्त होजातेहैं शालिपर्ण्यादि के कल्क के साथ दूध में घृतको पकाकर अथवा दाख के रस वा ईखके रसके साथ पकाकर सेवन करना पित्तज हृदयरोग में हित है अथवा द्राक्षादि मिष्टफलों का क्वाथ भी शीतल करने पर हित होता है।

कफजहृद्रोग में चिकित्सा।

स्विन्नस्यवान्तस्यविलंघितस्यक्रियाकफघ्नीकफमर्मरोगे। कौलत्थधान्यैश्चरसैर्यवान्नैःपानानितीक्ष्णानिचशर्कराणि॥ मूत्रैश्रिताःकटूफलशृङ्गवेरपीतद्रुमध्यातिं-

विषाःप्रदेयाः॥ कृष्णाशटीपुष्करमूलरास्नावचाभयानागरचूर्णकश्चउदुम्बराश्वत्थवटार्जुनाख्ये ॥ पलाशरोहीतकखादिरचाक्काथेत्रिवृत्त्र्यूषणचूर्णसिद्धोलेहः कफघ्नोऽशिशिराम्बुयुक्तः॥

अर्थ—कफजहृदय के रोगमें स्वेदन,वमन, और लंघन क्रिया हित होती हैं। कुलथी और धनियेके क्वाथ के साथ जौ की रोटियां वा शर्कराके साथ तीक्ष्ण अन्नपान सेवन कराना हित है। कायफल,अदरख, सरलकाष्ठ, हरड़, और अतीस इनको गौमूत्रमें क्वाथ करके छानकर पीवै अथवा पीपल,कचूर पुहकरमूल,रास्ना,वच,हरडऔरसोंठ इन सब का चूर्ण बनाकर सेवन करै। गूलर,पीपल, बड़, अर्जुन, पलास, रोहेडा और खैरकी लकड़ी इनका क्वाथ कर के उसमें निसोथ और त्रिकुटा का चूर्ण डालकर पकावै। इस लेहको गरमजल के साथ सेवन करने से कफज हृद्रोग जाता रहता है ॥

सान्निपातिकहृद्रोगमें चिकित्सा।

त्रिदोषजेलंघनमादितः स्यादन्नञ्चसर्वेषुहितंविधेयम्। हीनातिमध्यत्वमवेक्ष्य चैव कार्यंत्रयाणामपिकर्मशस्तम् ॥ भुक्तेऽधिकञ्जीर्य्यतिशूलमल्पं जीर्णेस्थिरंचेत्सुरदारुकुष्ठम् ॥सातिलवर्चलवणेविडंगं उष्णाम्बुनासातिविषंपिवेत्सः॥ जत्वश्मजंवाभिषगप्रमत्तः॥ प्रयोजयेत् कल्पविधानदृष्टम् ॥ माद्यंतथागस्त्यमथापिलेहंरसायनंब्राह्ममथामलक्याः॥

अर्थ—सान्निपातिक हृद्रोग में प्रथमही लंघन कराके तीनों दोषों में कहे हुये हित पदार्थो का सेवन करावै। दोषोंकी हीनता अधिकता और मध्यता देखकर ऐसी चिकित्सा करै जो तीनों दोषों में हित हो। जो हृद्रोग भोजन करतेही अधिक और पचने के समय कम होतौ देवदारु कूठ, लोध, सेंधानमक, संचरनमक, वायविडंग और अतीस इनके चूर्ण को गरम जल के साथ पीवै। अथवा बहुत सावधानी से कल्पविधानोक्त शिलाजतु रसायन, अगस्त्यावलेह, ब्राह्मरसायन वा आमलकी रसायन का प्रयोग करना चाहिये ॥

जीर्णेऽधिकेस्नेहविरेचनंस्यात् फलैर्विरेच्योयदिजीर्य्यमाणे।त्रिष्वेवकालेष्वधिकेतुशूले तीक्ष्णंहितंमूलविरेचनंस्यात् ॥

अर्थ....जो भोजन के पचने पर हृदय में शूल अधिक हो तो स्नेह विरेचन देवै। भोजन के पचने के काल में जो शूलहो तौ फल विरेचन देवै और जो तीनों समय में ही अर्थात् भोजनके करते ही, वा भोजन पचने पर या पाचनकाल में शूल अधिक हो तौ तीक्ष्ण मूलविरेचन हित है ॥

क्रिमिजन्य हृद्रोग में चिकित्सा।

प्रायोऽनिलोरुद्धगतिःप्रकुप्यत्यामाशयेशोधनमेवतस्मात् ॥ कार्यंतथालंघनपाचनञ्च सर्वक्रिमिघ्नंक्रमिहृद्गदेच॥

अर्थ—प्रायः वायुका मार्ग रुकने पर वह आमाशय में जाकर कुपित होजाती है इसलिये प्रथम शोधन कर्म करै पीछे क्रिमिनाशक लंघन पाचन क्रिया करै। यह क्रिमिजन्य हृदयरोग की चिकित्सा है।

पीनसरोग का निदान ।

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाष्यक्रोधर्तुवैषम्यशिरोऽभितापैः ॥ प्रजागरातिस्वपनाम्बुशीतैरवश्ययामैथुनबाष्पधूमैः॥ संस्त्यानदोषेशिरसिप्रवृद्धोवायुःप्रतिश्यायमुदीरयेत्तु॥

अर्थ—मलमूत्रादि वेग संधारण, अजीर्ण, रज, अतिभाषण, क्रोध, ऋतुवैषम्य, शिरोऽभिताप, जागरण, अतिनिद्रा, शीतल जलविहार, ओस, मैथुन, वाष्प और धूंआं इन सब कारणोंसे सिरमें अत्यन्त आर्द्रता होतीहै और इसी कारणसे वायु वृद्धि पाकर प्रतिश्याय उत्पन्न करतीहै ।

वातज पीनस के लक्षण ।

घ्राणार्तितोदौष्ण्यथुर्जलाभः । स्रावोऽनिलात्सस्वरमूर्द्धरोगः ॥

अर्थ—वातज प्रतिश्यायमें नासिकामें अर्ति और सुई भेदन के समान पीड़ा, सूजन, जलके समान नाक टपकना, स्वरभंग और शिरमें दर्द ये लक्षण होते हैं ।

पित्तजपीनसके लक्षण ॥

नासाग्रपाकज्वरवक्त्रशोष । तृष्णोष्णपीतस्रवणानिपित्तात् ॥

अर्थ—पित्तज प्रतिश्याय में नासिका के अग्रभाग का पाक, ज्वर, मुखमें सूखापन, तृषा, गरम और पीलेरंग का स्राव होताहै।

कफज पीनस के लक्षण ।

कासारुचिस्रावघनप्रसेकात् । कफाद्गुरुःस्रोतसिचापिकण्डूः ॥

अर्थ—कफज प्रतिश्यायमें खांसी अरुचि, स्राव, गाढ़ाभवाद निकलना, स्रोतोंमें भारापन और खुजली होतीहै ।

सान्निपातिकपीनस के लक्षण

सर्वाणिरूपाणितुसान्निपातात् स्युःपीनसेतीव्ररुजेऽतिदुःखे ॥

अर्थ—सान्निपातिक प्रतिश्याय में तीनों दोषों के लक्षण पाये जातेहैं, इसमें तीव्रवेदना और कष्ट होता है ॥

प्रतिश्याय के दूषितहोने का कारण ।

सर्वोऽतिवृद्धाऽहितभोजनात्तु । दुष्टप्रतिश्यायउपेक्षितःस्यात् ॥

अर्थ—तीनों दोषों के अत्यन्त बढ़जाने से, अहित भोजन करने से वा उपेक्षा करने से प्रतिश्याय बिगड़जाता है ।

दूषितप्रतिश्याय के लक्षण ।

ततश्चरोगाःक्षवथुःप्रनासाशोषःप्रतीनाहपरिस्रवौच । घ्राणास्यपूतित्वमपीनसश्चसपाकशोथार्बुदपूयरक्ताः ॥ अरूंपिमूत्रश्रवणाक्षिरोगखालित्यहर्षार्जुनलोमभावाः ॥तृट्श्वासकासज्वररक्तपित्तवैस्वर्यशोषाश्चततोभवन्ति । रोधाभिघातस्रवशोषपाकैर्घ्राणंयुतंयस्यचनवेत्तिगन्धम् दुर्गन्धिचास्यंबहुशःप्रकोपिदुष्टप्रतिश्यायमुदाहरेत्तम् ॥

अर्थ—प्रतिश्याय (जुकाम) के बिगड़ने पर छींक, नाक का सूखना, प्रतीनाह [नाकका रुकजाना] परिस्राव, नाक और मुख में दुर्गंधि, अपीनस, नासापाक, सूजन, अर्बुद, पीव, रक्त, फुन्सियां, मूत्रस्राव, कर्णरोग, नेत्ररोग, खालित्य, रोमोंका पीला

वा सफेदहोना, तृषा, श्वास, खांसी, ज्वर, रक्तपित्त, स्वरभंग और शोष ये उपद्रव होते हैं। जिस रोग में नाक रुकजाती है, जिस में अभिघात, स्राव, शोष और पाक होता है जिस में गंध का ज्ञान नहीं होता है और मुख में दुर्गंध होजाती है, यह वार वार कुपित होनेवाला दुष्ट प्रतिश्याय होताहै।

छींकका कारण।

संस्पृश्यमर्माण्यनिलस्तुमूर्ध्नि। विश्वक्पथस्थःक्षवथुंकरोति॥

अर्थ—संपूर्णमर्मों का स्पर्श करके मस्तक के समस्त मार्गों में स्थितवायु क्षवथुनामक रोग को उत्पन्न करती है।

शोषकाकारण।

वलीतुसंशोष्यकफन्तुनासा। शृङ्गाटकेघ्राणविशोषणंच।

अर्थ—प्रवलहुई वायु कफ को सुखाकर नासिका के पुट और घ्राणमार्ग में शोष उत्पन्न करती है॥

प्रतीनाहलक्षण।

उच्छ्वासमार्गन्तुकफःसवातो। रुन्ध्यात्प्रतीनाहमुदाहरेत्तम्॥

अर्थ—कफवायु से मिलकर जब श्वास के मार्ग को रोकलेताहै तब उसे **प्रतीनाह** कहते हैं॥

स्रावकालक्षण।

घ्राणाद्धनःपीतसितस्तनुर्वा। दोषःस्रवेत्स्रावमुदाहरेत्तम्॥

अर्थ—नासिकासे जो गाढा, पीला, सफेद, अथवा पतला विगड़ाहुआ मल निकलताहै उसे **स्राव** कहते हैं।

अपीनसकालक्षण।

योमस्तुलुङ्गाद्धनपीतपक्वः कफःस्रवेद्गा दमपीनसःसः॥

अर्थ—मस्तक से जो घना, पीला पक और गाढा कफ निकलता है उसे **अपीनस** कहते हैं।

पूतिनासाके लक्षण।

वैवर्ण्यदौर्गन्ध्यमुपेक्षयातु। स्यात्पूतिनासंश्वयथुर्भ्रमश्च॥

अर्थ—इस रोगकी उपेक्षा करने से जो विवर्णता, दुर्गन्धि, सूजन और भ्रम होता है उसे **पूतिनासा** कहते हैं।

घ्राणपाकका लक्षण।

सदाहरागःश्वयथुःसपाकः। स्याद्घ्राणपाकोऽपिचरक्तपित्तात्।

अर्थ—जिस में दाह, राग, सूजन और पाक होता है उसे **घ्राणपाक** कहते हैं यह रक्तपित्त से भी होता है।

नासाशोथ का हेतु।

घ्राणाश्रितास्त्वक्प्रभृतीन्प्रदूष्य। कुर्वन्तिनस्तःश्वयथुंमलाश्च॥

अर्थ—जबवातादि दोष नासिकामें स्थित रक्तादि को दूषित करते हैं तब नासिका में सूजन होती है।

अर्बुदका कारण।

घ्राणेतथोच्छ्वासगतौनिरुद्ध्य। मांसासृदोषादपिचार्बुदानि॥

अर्थ—श्वास के रुक जाने से मांस और रक्त के दूषित होने से **नासिका में अर्बुदरोग** होता है॥

पूयरक्त का कारण ।

घ्राणात्स्रवेद्वाश्रवणान्मुखाद्वा ।
पित्तात्कमसन्त्वपिपूयरक्तम् ॥

अर्थ....जो नाक,कान वा मुखसे पित्तयुक्त रक्तका स्राव होता है उसे पूयरक्त कहते हैं ।

अरुःका कारण ।

कुर्यात्सपित्तःपवनस्त्वमादीन् ।
मन्दूप्यचारूंपिसपाकवन्ति ॥

अर्थ—पित्त से मिलीहुई वायु त्वचा आदि को दूषित करके जो फुन्सियों को उत्पन्न करती है उसे अरुः कहते हैं ।

शिरोरोग का निदान ।

भृशार्तिशूलेस्फुरतीह्वातात् । पित्तात्सदाहार्तिकफाद्गुरुःस्यात्॥सर्वैस्त्रिदोषं क्रिमिभिस्तुकण्डू दौर्गन्ध्यतोदार्तियुतंशिरःस्यात् ॥

अर्थ—वातज सिरके रोग में अत्यन्त वेदना, शूल और फडफडाहट होती है । पित्तज सिरके रोग में दाह और अर्त्ति होती है । कफके सिररोग में भारापन होता है । सान्निपातिक शिरोरोग मे तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण होते हैं और क्रिमिजन्य शिरोरोग में खुजली, दुर्गंधि, तोद और अर्ति होती है ।

वातज मुखरोग का लक्षण ।

मुखामयेमारुतजेतुशोष कार्कश्यरौक्ष्याणिचलारुजश्च ॥ कृष्णारुणंनिष्पतनंसुशीतंमस्रंसनस्पन्दनतोदभेदाः ॥

अर्थ—वातज मुखरोग में शोष, कर्कशता रूक्षता चलायमान वेदना, काला, लाल और शीतल स्राव, प्रस्रंसन, स्पन्दन, तोद और भेद ये उपद्रव होते हैं ॥

पित्तजमुख रोग का लक्षण :

तृष्णाज्वरस्फोटकतालुदाहा धूमायनंचाप्यवदीर्णताच ॥ पित्तात्समूर्च्छाविविधारुजश्च वर्णश्चशुक्लारुणवर्णवर्ज्याः

अर्थ—पितज मुखरोग में तृष्णा, ज्वर, स्फोटक, तालुदाह, धूंआं सा घुमडना,फटना, मूर्च्छा, अनेक प्रकार की वेदना, तथा सफेद और लाल के अतिरिक्त और रंग होजाना । ये उपद्रव होते हैं ॥

कफज मुख रोग का लक्षण ।

कण्डूर्गुरुत्वंसितविज्जलत्वं स्नेहोरुचिर्जाड्यकफप्रसेकौ । उत्क्लेशमन्दानिलताथ तन्द्रा रुजश्चमन्दाःकफवक्त्ररोगे ॥

अर्थ—कफज मुखरोग में खुजली, भारापन, सफेदाई, गिलगिलापन, चिकनाई, अरुचि, जडता, कफप्रसेक, उत्क्लेश, मन्दाग्निता, तन्द्रा और मन्दवेदना होती है ॥

सान्निपातिक मुखरोगके लक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुवक्त्ररोगे ।
भवन्तियस्मिन्सतुसर्वजःस्यात् ॥

अर्थ—जिसमें तीनों दोषों के मिले हुए लक्षण पाये जाते हैं उसे त्रिदोषज मुखरोग कहते हैं ॥

मुखरोग के अन्य भेद ॥

संस्थानदूष्याकृतिनामभेदा घेतेचतुःषष्टिविभाभवन्ति ॥ शालाक्यतन्त्रेविहितानितेषां निमित्तरूपाकृतिभेषजानि॥
अशून्यतार्थंतुचतुर्विंशस्य ॥

क्रियांप्रवक्ष्यामिमुखामयस्य॥

अर्थ—संस्थान, दूष्य, आकृति और नामभेद से मुखरोग चौंसठ प्रकार के होते हैं। इनके विशेष २ हेतुरूप, आकृति और चिकित्सा शालाक्यतंत्र में सविस्तर वर्णन की गई हैं। कुछ वर्णन किये जाने के निमित्त इस जगह वातजादि चार प्रकार के मुखरोगों की चिकित्सा वर्णन कीजायगी (इस ग्रन्थ में शालाक्यतंत्र नहीं है हमारे छापे हुए सुश्रुतग्रन्थ में इन रोगों का वर्णन है)।

अरुचि के भेद।

वातादिभिःशोकभयातिलोभ।
क्रोधाद्यहृद्याशनगन्धरूपैः॥

अर्थ—अरुचि रोग वात, पित्त, कफ और सन्निपात के कारण उत्पन्न होने से चार प्रकार का है तथा इसका एक प्रकार और भी है कि वह शोक, भय अत्यन्त लोभ, क्रोध, तथा अहृद्य भोजन, गंध और रूपादि दर्शन से होता है।

वातजअरुचिकेलक्षण।

अरोचकःकर्कशशीतदन्त।
कषायवक्त्रस्यमतोऽनिलेन॥

अर्थ—वातज अरुचि में कर्कशता, दांतों में शीतलता और मुखमें कसीलापन होताहै।

पित्तज अरुचि के लक्षण।

कट्वम्ललमुष्णंविरसंचपूति॥
पित्तेनविद्याल्लवणञ्चवक्त्रम्॥

अर्थ—पित्तज अरुचि में मुख कड़वा, खट्टा, उष्ण, विरस, दुर्गन्धयुक्त और नमकीन होजाताहै।

कफजअरुचिकेलक्षण।

माधुर्यपैच्छिल्यगुरुत्वशैत्ये।
विबन्धसंस्तम्भयुतंकफेन॥

अर्थ—कफजअरुचि में मुख मीठा, गिलगिला, भारी और शीतल होता है तथा विबन्धता और स्तम्भता भी होतीहै।

शोकादिजन्यअरुचिकेलक्षण

अरोचकेशोकभयातिलोभ क्रोधाद्यहृ
द्याशनगन्धजेस्यात्॥स्वाभाविकञ्चास्य
रसोरुचिश्च त्रिदोषजेनैकरसम्भवेत्तु॥

अर्थ—शोक, भय, लोभ, क्रोध, अहृद्य भोजन और गंध आदि से जो अरुचि होती है उसमें मुखका रस स्वाभाविक होता है और त्रिदोपज अरुचि में मुख का रस एक प्रकार का नहीं रहताहै।

वातजकर्णरोगकेलक्षण।

नादोऽतिरुक्कर्णमलस्यशोषः।
श्रावस्तनुश्चाश्रवणञ्चवातात्॥

अर्थ—वातजकर्णरोग में कानों में नाद, वेदना, मैल का सूखजाना, पतला स्राव या स्राव न होना ये लक्षण होते हैं॥

पित्तजकर्णरोगकेलक्षण।

शोफःसरागोदरणंविदाहः।
सपीतपूतिस्रवणश्चपित्तात्॥

अर्थ—पित्तजकर्णरोग में लालवर्ण की सूजन, दरण, दाह और पीले रंगकी दुर्गंधित पीव निकलती है॥

कफजकर्णरोगके लक्षण।

वैश्रुत्यकण्डूस्थिरशोफशुक्ल।

१ अश्रवणमिति गंगाधरः।

स्निग्धाश्रुतिःश्लेष्मभवेऽल्परुक्च ॥

अर्थ—कफजकर्णरोग में सुनाई न देना खुजली, कड़ी सूजन सफेद और चिकना स्राव तथा अल्पवेदना होती है ।

सान्निपातिककर्णरोगकेलक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुसन्निपातात् ।
स्रावश्चतत्राधिकदोषवर्णः :

अर्थ—त्रिदोषज कर्णरोग में तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं तथा इस में स्राव दोष और वर्णकी अधिकता होती है ।

वातजनेत्ररोगकालक्षण ॥

अल्पाश्रुरागानुपदेहताच ।
प्रस्पन्दतोदातिरुजश्चवातात् ।

अर्थ—वातजनेत्ररोग के होने से आंखों में आंसुओं का न आना, ललाई का कम होना, कम लिहसावट होना, फडकन, चब-का और तीव्र वेदना होती है ।

पित्तजनेत्ररोगकेलक्षण ॥

पित्तात्सुदाहार्तिरुजोऽतिरागाः।
पीतोपदेहःसुभृशोष्णमस्रु ॥

अर्थ—पित्तज नेत्र रोग में दाह, यातना वेदना, अत्यन्त ललाई पीतोपलिप्तता, बहुत और गरम आंसू ये लक्षण होते है ।

कफजनेत्ररोगकेलक्षण ।

शुक्लोपदेहोबहुपिच्छिलास्रु ।
नेत्रस्यखेटाद्गुरुतासकण्डूः ॥

अर्थ—कफज नेत्ररोग में शुक्लोपलिप्तता बहुत और गिलगिले आंसू, गुरुता और खुजली होती है ।

सान्निपातिकनेत्ररोगकेलक्षण ।

सर्वाणिरूपाणितुसान्निपातान्ने-
त्रामयाषण्णवतिस्तुभेदात् ॥

अर्थ—त्रिदोषज नेत्ररोग मे तीनों दोषों के लक्षण मिलते हैं । नेत्ररोग सब मिलकर छियानवें प्रकार के होते हैं ।

तेषामभिव्यक्तिरभिप्रदिष्टाशालाक्यतन्त्रेषुचिकित्सितञ्च । पराधिकारेतुनविस्तरोक्तिःशस्तेतितेनात्रननःप्रयासः ॥

अर्थ—इन रोगोंका विस्तार पूर्वक वर्णन शालाक्यतंत्र में है और चिकित्सा पराधिकार में विस्तारपूर्वक ठीक नही कही गई है, इससे हमारा यहां प्रयास नहीं है ।

खालित्यनिदान ॥

तेजोऽनिलाद्यैःसहकेशभूमिंदग्ध्वाशुकुर्यात्खलतिंनरस्य । किञ्चित्तुदग्ध्वापलितानिकुर्य्याद्धरिप्रभत्वंचशिरोरुहाणाम् ॥ इत्यूर्द्ध्वजत्र्वत्यगदैकदेशःप्रोक्तश्चिकित्सान्तुपरांनिबोध । विस्तारतःसंग्रहतश्चसम्यग्यथाक्रमंसौम्य!मयोच्यमानाम् ॥

अर्थ—वातादिक दोषों से मिलित होकर तेज केशभूमिकोजलाकर खालित्य (बालों का गिरना) रोगको उत्पन्न करता है और जो पूर्णरीति से केशभूमि दग्ध नही होती है तो सफेद वा हरे होजाते है ॥ जत्रुसे ऊपर होने वाले रोगों का वर्णन इस प्रकार से किया गया है अब हम संक्षेप और विस्तार से उनकी चिकित्सा का वर्णन करते हैं ॥

वातजपीनसमें चिकित्सा ।

वातात्मकासैवस्वर्य्येसक्षारपीनसेघृतम्॥ पिबेद्रसंपयोवोष्णः स्नेहिकंधूममेववा ॥

शताह्वात्वग्बलामूलंश्योनाकैरण्डबिल्वजम् सारग्वधांपिबेद्वात्तमधूच्छिष्टवसाघृतैः ॥ अथवासघृतान्सक्तून्कृत्वामल्लकसंपुटे॥ नवमतिश्यायवतांधूमंवैद्यः प्रकल्पयेत् ॥ शंखमूर्धललाटार्तेपाणिस्वेदोपनाहनम्॥ स्वभ्यक्तक्षवथुस्रावरोधादौसङ्करादयः ॥ घ्रेयाश्चरोहिषाजाजीवचातर्कारिचोरकाः त्वक्पत्रमरिचैलानांचूर्णावासोपकुञ्चिकाः

अर्थ—वातज पीनसमें खांसी और स्वरभंग होनेपर जवाखार मिलाहुआघी, मांस रस, गरमदूध वा स्निग्ध धूमपान हित है॥ अथवा सोंफ, दालचीनी खरैटीकी जड, श्योनाक, अरंडीकी जड और बेलकी छाल और अमलतास इनको पीस कर मोम चर्वी और घी में सान कर वती बना कर धूमपान करै ॥ अथवा नवीन प्रतिश्याय में घी और जौका सत्तू इनको चिलम में धर कर पीवै । कनपटी, मूर्द्धा और ललाट में वेदना होनेपर हाथोंको गरम करै और गरम उपनाह अर्थात् पुल्सट बांधै । जो छींक वा नाकका बहना बन्द होजाय तो शरीर पर अच्छी तरह से तैलादि मर्दन करके शंकरस्वेद देवै । अथवा रोहिषतृण, कालाजीरा, वच, तर्कारी और चोरक इन को पीसकर सूंघै अथवा दालचीनी, तेजपात, कालीमिरच, छोटी इलायची और जीरा इनके चूर्णको सूंघै ।

तैलप्रयोग ।

स्रोतःशृङ्गाटनासाक्षिशोषेतैलंसनावनम्॥ प्रभाव्याजेतिलान्क्षीरेतेन पिष्टांस्तदूष्मणा । मन्दास्विन्नान्सयष्ट्याह्वचूर्णांस्ते नैवपीडयेत् ॥ दशमूलस्यनिष्काथेरास्ना मधुककल्कवत् । सिद्धंससैन्धवंतैलंदशकृत्वाणुततस्मृतम् ॥ स्निग्धस्यास्थापनैर्दोषंनिर्हरेद्वातपीनसे ।

अर्थ—स्रोत, नासापुट, नासिका और आंखों में शोष होनेपर नीचे लिखेहुए तेल की नस्य देवै । यथा–तिलों को बकरी के दूधकी भावना देकर बकरीके दूधमें ही तिलोंको पीसलेवै और एक हांडी में दूध भरकर उसपर एक कपडा ढककर उसपर उस पिसीहुई लुगदीको रखदेवै और हांडी के नीचे आग जलावै जिससे दूधकी गरमाई से तिल सीज जांयगे । फिर उसमें मुलहटी का चूर्ण मिलाकर ऊपरवाले दूध मेंही उसे निचोड़ लेवै । इसको दशमूल के काथमें पकावै और इसमें रास्ना, मुलहटी और सेंधानमक डालकर पकावै । इसतरह दशवार सिद्ध करने से अणुतैल सिद्ध होता है रोगी को प्रथम आस्थापन देकर स्निग्ध करै फिर वातज पीनस में उक्त तैल की नस्य देवै ॥

स्निग्धाम्लोष्णैश्चलघ्वन्नंग्राम्यादीनांरसैर्हितम्॥ उष्णाम्बुनास्नानपानश्चनिवातोष्णप्रतिश्रयः । चिन्ताव्यायामवाक्चेष्टाव्यवायविरतोभवेत्॥ वातजेपीनसेधीमानिच्छन्नेवात्मनोहितम् ॥

अर्थ—स्निग्ध, अम्ल और उष्ण ग्राम्य जीवोंके मांसरस के साथ लघु अन्न देवै । स्नान करने में और पीने में उष्ण जलका

मायूर घृत ।

दशमूलबलारास्नात्रिफलामधुकैःसह ।
मयूरपक्षपित्तान्त्रशकृत्तुण्डांघ्रिवर्जितम्॥
जलेपक्त्वाघृतप्रस्थंतस्मिन्क्षीरसमंपचेत्।
मधुरैःकार्षिकैःकल्कैःशिरोरोगार्दितःपिबेत्॥
कर्णाक्षिनासिकाजिह्वाताल्वास्यगलरोगनु
त्।मायूरमितिविख्यातमूर्ध्वजत्रुगदापहम्।

अर्थ—दशमूल, खरैंटी, रास्ना, त्रिफला और मुलहटी तथा मोर के (पंख, पित्ता, आंत, बीट, चोंच और उंगलियों को छोड कर) मांस, रक्तादि इन सबका क्वाथ कर के एक प्रस्थ घी और उतनाही दूध तथा जीवनीय औषधियों का कल्क एक एक कर्ष डालकर पकावै । इस घृतके पीनेसे सिर के रोग, कानके रोग, आंखके रोग नाक के रोग, जिह्वा के रोग, तालु के रोग,मुख के रोग और गले के रोग दूर होजातेहै । यह ऊर्ध्वजत्रुगदनाशक मायूरनामक घृत है।

महामायूर घृत ।

एतेनैवकषायेणघृतप्रस्थंविपाचयेत् । चतुर्गुणेनदुग्धेनकल्कैरेभिश्चकार्षिकैः॥जीवन्तीत्रिफलामेदामधुकर्द्धिपरूषकैः । समंगाचविकाभार्गीकाश्मरीसुरदारुभिः ।
आत्मगुप्तामहामेदातालखर्जूरमस्तकैः ।
मृणालबिसशालूकशृङ्गीजीवकपद्मकैः ॥
शतावरीविदारीक्षुबृहतीशारिवायुगैः ॥
मूर्वाश्वदंष्ट्र्षभकशृङ्गाटककसेरुकैः ॥ रास्नास्थिरातामलकीसूक्ष्मैलाशटीपुष्करैः
पुनर्नवातुगाक्षीरीकाकोलीधन्वयासकैः
मधूकाक्षोटवातामपुञ्जाताभिषुकैरपि ।
द्रव्यैरेभिर्यथालाभंपूर्वकल्केनसाधितम्॥
तत्पर्कनावनेऽभ्यंगेपानेवस्तौप्रयोजयेत्।
शिरोरोगेषुसर्वेषुकासेश्वासेचदारुणे ॥
मन्यापृष्ठग्रहेशोषेस्वरभेदेतथार्दिते ॥योन्यसृक्शुक्रदोषेषुशस्तंवन्ध्यासुतप्रदम् ॥
ऋतुस्नातातथानारीपीत्वापुत्रंप्रजायते॥
महामायूरमित्येतद्घृतमात्रेयपूजितम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त कषाय के साथ एक प्रस्थ घी चारप्रस्थ दूध और नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क एक एक कर्ष डाल कर पकावै, यथा जीवन्ती, त्रिफला, मेदा, ऋद्धि, फालसा, समंगा, चव्य, भाडंगी, खंभारी, देवदारु,कैंचकेबीज,महामेदा,ताल, खजूर, मृणाल, कमलकीगांठ, शालूक, काकडासींगी,जीवक, पद्माख, सितावर, विदारीकन्द, ईख, बडी कटेरी,दोनों सारिवा,मरोडफली,गोखरू, ऋषभक, सिंघाडा, कसेरू,रास्ना, शालिपर्णी,भूय आंवला, छोटी इलायची, शठी,पुष्कर मूल, सांट बंशलोचन, काकोली जवासा, मुलहटी, अखरोट, बादाम, मुंजात, पिस्ता इन द्रव्योंमें से जितने मिलसकें उनको पूर्वोक्त कल्कके साथ पकावै।इसघृतको नस्य, अभ्यंग, पान और बस्तिद्वारा प्रयोग करै इसके प्रयोग से सम्पूर्ण प्रकारकेशिरोरोग-दारुण खांसी और श्वास, मन्यग्रह, पृष्ठग्रह, शोष,स्वरभेद, अर्दितरोग, योनिरोग, रक्तदोष शुक्रदोष,दूर होजातेहैं । इसके सेवन से वन्ध्या स्त्री के पुत्र होता है । ऋतुस्नान करके जो स्त्री इसे पीतीहै उसके पुत्र होता है । इसकी भगवान् आत्रेय ने

महामायूरघृत नामसे प्रशंसा की है ।

आखुभिःकुक्कुटैर्हंसैःशशैश्चापिहिबुद्धिमान
कल्केनानेनविपचेत्सर्पिरूर्ध्वगदापहम्॥

अर्थ....पूर्वोक्त रीति के अनुसारही मयूर मांस की जगह चूहे, हंस मुर्गे वा खगोश का मांस इस कल्क के साथ घृत पकाकर सेवन करना ऊर्ध्वजत्रुरोगों को दूर करताहै

पित्तजशिरोरोगमेंचिकित्सा ।

पैत्तेघृतंपयःसेकाःशीतालेपाःसनावनाः।
जीवनीयानिसर्पींपिपानान्नंचापिपित्तनुत् ॥ चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रनखोत्पलैः । क्षीरपिष्टैःप्रदेहःस्यात्शृतैर्वा परिषेचनम् ॥ त्वक्पत्रशर्कराकल्कःसुपिष्टस्तंडुलाम्बुना । कार्योऽत्रपीडःसर्पिश्च नस्यंतत्स्याच्चुपैत्तिके ॥ यष्ट्याह्वचन्दनानन्ताक्षीरसिद्धंघृतंशुभम्। नावनंशर्करादाक्षामधुकैर्वापिपित्तजे॥

अर्थ—पित्तज शिरोरोगमें घृत,दूध,शीतल परिषेक, शीतल लेप, नस्य, जीवनीय गणोक्त द्रव्यों से सिद्ध घृत तथा पित्तनाशक अन्नपान को सेवन करना चाहिये । रक्त चन्दन, खस, मुलहटी, खरैटी, बघनखा, नीलकमल इन सबको दूधके साथ पीसकर सिरपर लेपकरै अथवा इनका क्वाथ करके सिरपर परिषेक करै। अथवा दालचीनी, तेजपात और शर्करा इनको तडुंलजल के साथ पीसकर नाकमें निचोडैं ऊपर से घृतकी नस्य लेवै । अथवा मुलहटी, चन्दन,अनन्तमूल इनके कल्कको दूध और घी में पाक करके इस घृत की नस्य देवै। इसी तरह से शर्करा,मुलहटी और दाख इन में दूध के साथ घृत पकाकर नस्य देवै । इससे पित्तज शिरोरोग शान्त होजाते हैं ।

कफजशिरोरोगकीचिकित्सा ।

कफजेस्वेदितंधूमनस्यप्रधमनादिभिः ।
शुद्धंमलेपपानान्नैःकफघ्नैःसमुपाचरेत्॥
पुराणसर्पिषःपानस्तीक्ष्णैर्वस्तिभिरेवच।
कफानिलोत्थितेदाहःशेषयोरक्तमोक्षणम्

अर्थ—कफज शिरोरोगमें स्वेदन करके धूम, नस्य और प्रधमन आदिक प्रयोगों से शुद्ध हुए मनुष्यको कफनाशक प्रलेप तथा अन्नपानका सेवन करावै ,कफवातज शिर के रोगमें पुराने घृतका पान कराना और तीक्ष्ण वस्तियोंका प्रयोग श्रेष्ठ है शेष दोनों अर्थात् सान्निपातिक और क्रिमिज हृद्रोगों में फस्त खोलना हित है ।

उक्तरोगोंकीचिकित्सा ।

एरण्डनलदक्षौमगुग्गुलवगुरुचन्दनैः ।
धूमवर्तिःपिबेद्गन्धैःसकुष्ठतगरैस्तथा ॥
सन्निपातभवेकार्यासन्निपातहिताक्रिया।
क्रिमिजेचैवकर्त्तव्यंतीक्ष्णमूर्द्धविरेचनम्।
त्वङ्मधूकोनखोदन्तीविडङ्गंनवमालिका
अपामार्गफलंबीजंनक्तमालशिरीषयोः ।
क्षवथोश्मन्तकोबिल्वंहरिद्राहिंगुयूथिका
फणिज्झकयुतैस्तैलमाविमूत्रेचतुर्गुणे ।
सिद्धंस्यान्नावनंचूर्णंचपांप्रधमनंभवेत् ॥
फलंशिग्रुकरञ्जाभ्यांसव्योपंचावपीडकम् । कषायारुग्धराःक्षारचूर्णोकल्कोऽवपीडकः ॥

अर्थ—अरंडकी जड,खस, गूगल,अगर,

होनेपर भोजन के पीछे घृतपान करै। इस में नस्य तथा मधुर स्निग्ध और शीतल मांसरस भी हितहै। मुखपाक में शिराकर्म शिरोविरेचन और कायविरेचन देवे तथा गोमूत्र, तेल, घी, शहत और दूध के साथ कवलग्रह भी उत्तमहै। मुखपाक में त्रिफला पाठा, दाख, चमेली के पत्ते इनके क्वाथ में शहत डालकर अथवा कषाय और तिक्त शीतल क्वाथ भी मुखके धोने में उत्तम है॥

खदिरादिवटिका।

तुलांखदिरसारस्यद्विगुणामरिमेदसः ॥ प्रक्षाल्यजर्जरीकृत्यचतुर्द्रोणेऽम्भसःपचेत् द्रोणशेषंकषायन्तंपूत्वाभूयःपचेच्छनैः ॥ ततस्तस्मिन्घनीभूतेचूर्णीकृत्याक्षभागिकम्। चन्दनंपद्मकोशीरंमञ्जिष्ठाधातकीघनम्॥ प्रपुण्डरीकंयष्ट्याह्वत्वगेलापत्रकेशरम्।लाक्षारसाञ्जनंमांसींत्रिफलालोध्रवालकम्॥ रजन्यौफलिनीमेलांसमङ्गांकटफलंवचाम्।यवासागुरुपत्तङ्गगैरिकाञ्जनमावपेत्।लवंगनखकक्कोलजातिकोशान्पलोन्मितान्। कर्पूरकुडवंचापिपुनःशीतेऽवतारिते ॥ ततस्तुगुलिकाःकार्याःशुष्कास्यास्येनधारयेत्। तैलंचानेनकल्केनकषायेणचसाधयेत्॥ दन्तानांचलनंभ्रंशंशौषिर्यंक्रिमिरोगनुत्। मुखपाकास्यदौर्गन्ध्यजाड्यारोचकनाशनम् ॥ स्रावोपलेपपैच्छिल्यवैस्वर्य्यगलरोगनुत्॥ दन्तास्यगलरोगेषुसर्वेषांतत्परायणम्।

अर्थ—सफेद खैरसार एक तुला, विटखैर दो तुला इनको अच्छी तरह धोकर कूट लेवै और फिर इस सबको चार द्रोण जल में चढाकर पकावै जब एक द्रोण जल रहजाय तब इसे छानकर छने हुए को फिर धीरे २ पकावै। इसतरह पकते पकते जब गाढा पडजाय तब इसमें निम्न लिखित द्रव्यों को दो दो तोले लेकर चूर्ण करके मिलादेवै। द्रव्य यथा—रक्तचन्दन, पद्माख, खस, मजीठ, धायके फूल, मोथा, पुंडरिया, मुलहटी, दालचीनी, इलायची, तेजपात, केसर, लाख, रसौत, जटामांसी, त्रिफला, लोध, नेत्रवाला, दोनों हलदी, प्रियंगु, बड़ी इलायची, लज्जालू, कायफल, वच, जवासा, अगर, पतंग, गेरू, और अंजन ये द्रव्य डाले फिर शीतल होनेपर अग्नि के ऊपर से उतारकर लौंग, नखी, कक्कोल और जावित्री एक एक पल डालै और एक कुडव कपूर गेरै। फिर इसकी गोलियां बनाकर सुखालेवै। एक एक गोली मुख में डालता रहै। अथवा इन्हीं द्रव्यों के कल्क और कषाय में तेल को पकाकर मुख में धारण करै। इन प्रयोगों से दांतों का हिलना, टूटना, छिद्र होजाना, कीड़े लगना, मुखपाक, मुखदुर्गन्ध, जड़ता, अरुचि, स्राव, उपलेप, पिच्छिलता, विस्वरता और गलरोग दूर होजाते हैं। दांत और गले के जितने रोग हैं वे सब इसे से दूर होजाते हैं।

अरोचकचिकित्सा।

अरुचौकवलग्राहाधूमाःसमुखधावनाः॥ मनोज्ञमन्नपानञ्चहर्षणाश्वासनानिच।

अर्थ—अरुचिरोगमें कवलग्रह, धूमपान, मुखधावन, मनोज्ञ अन्नपान, हर्षण और आश्वासन कर्त्तव्य हैं।

कवलग्रहके चारप्रयोग।

कुष्टसौवर्चलाजाजीशर्करामरिचंविडम् ॥ धात्र्येलापद्मकोशीरपिप्पल्युत्पलचन्दनम् लोध्रंतेजोवतीपथ्यात्र्यूषणंसयवाग्रजम्॥ आर्द्रादाडिमनिर्यासाश्चाजाजीशर्करायुतः सतैलमाक्षिकास्त्वेतेचत्वारःकवलग्रहाः॥ चतुरोरोचकान्हन्युर्वाताद्येकजसर्वजान्॥

अर्थ—(१)कूठ,संचरनमक,कालाजीरा, शर्करा, कालीमिरच, विडनमक। [२] आंवला, छोटी इलायची,पद्माख, खस,पीपल, नीलकमल और चन्दन [३]लोध, चव्य, हरड, त्रिकुटा और जवाखार [४]अदरख और अनारका रस, कालाजीरा और शर्करा ये चार प्रकार के कवलग्रह तेल और शहत मिलाकर सेवन करने से वातज,पित्तज, कफज और सन्निपातज अरुचिको क्रमसेदूर करतेहैं।

कारवीमरिचाजाजीद्राक्षावृक्षाम्लदाडिमम्। सौवर्चलंगुडंक्षौद्रंसर्वारोचकनाशनम् वस्तिंसमीरणेपित्तेविरेकंवमनंकफे ॥ कुर्याद्हृद्यानुकूलानिहर्षणंचमनोघ्नजे।

अर्थ—कालाजीरा, कालीमिरच, दूसरा जीरा, दाख, वृक्षाम्ल दाडिम, संचलनमक गुड और शहत इन सब को समान समान भाग मिलाकर सेवन करने से सब प्रकार की अरुचि दूर होजाती हैं। वातज अरुचि में वस्तिप्रयोग, पित्तज में विरेचन और कफज में वमन करावे। एवं मन के विकार से उत्पन्न हुई अरुचि में हृदय प्रिय और मनोनुकूलहर्षणादि क्रिया करै।

वातज स्वर भेदकी चिकित्सा।

सर्पिष्युपरिभक्तानिस्वरभेदेऽनिलात्मके॥ तैलैश्चतुष्प्रयोगश्चवलारास्नामृताह्वयैः॥ वर्हितित्तिरिदक्षाणांपञ्चमूलशृतान्रसान्॥ मायूरंक्षीरसर्पिर्वापिवेत्त्र्यूषणमेववा॥

अर्थ—वातात्मक स्वर भेदमें भोजन के पीछे घृतपान करना चाहिये। इस में वला तैल, रास्ना तैल, गुरुचीतैल, तथा क्वाथ, चूर्ण, लेह और कबल ये चार प्रकार के प्रयोग करना उचित है। पंचमूल के क्वाथ के साथ सिद्ध किये हुए मोर,तीतर और मुर्गे का मांसरस पान करै अथवा मायूर क्षीर, मायूर सर्पि वा त्रिकुटादि घृत का सेवन हित है।

पित्तजस्वर भेद की चिकित्सा।

पैत्तिकेतुविरेकःस्यात्पयस्तुमधुरैःशृतम्॥ सर्पिर्गुडाद्यंतित्तंजीवनीयंवृषस्यच।

अर्थ—पित्तात्मक स्वरभेद में विरेचन, मधुर द्रव्योंसे सिद्ध किया हुआ दुग्ध सर्पिर्गुड, तिक्तक घृत, जीवनीय घृत, और वासाघृत हित हैं॥

कफज स्वर भेद में चिकित्सा।

कफजेस्वरभेदेतुतीक्ष्णमूर्द्धविरेचनम्॥वि-रेकोवमनंधूमोयवान्नकटुसेवनम्। चव्य भार्ग्यभयाव्योपक्षारमाक्षिकचित्रकान्॥ लिह्याद्वापिप्पलीपथ्येतीक्ष्णमद्यंपिवेत्चसः।

अर्थ—कफात्मक स्वरभेद में तीक्ष्णशिरोविरेचन, वमन, धूमपान, यवान्न, कटुद्रव्य

सेवन उचितहै। चव्य भाडंगी, हरड,त्रिकु-टा, जवाखार शहत और चीता इनको ले-हन करै अथवा पीपल और हरड को शह-त के साथ चाटै अथवा तीक्ष्ण मद्यपानकरै।

रक्तजस्वरभेदकीचिकित्सा ।

रक्तजेस्वरभेदेतुसघृताजांगलारसाः ॥
द्राक्षाविदारीक्षुरसाःसघृतक्षौद्रशर्कराः॥
यच्चोक्तंक्षयकासघ्नंतच्चसर्वंचिकित्सित-
म्॥ पित्तजेस्वरभेदघ्नंशिरावेधश्चरक्तजे।

अर्थ—रक्तजस्वर भेद में घृत सहित जांगलमांसरस देवै । दाखविदारीकन्द और ईख का रस घी, शहत और चीनी मिला-कर देवे तथा क्षयकास में जो जो चिकित्सा कही गई है वह भी सब हित हैं । इसरोग में पित्तजस्वर भेद नाशक चिकित्सा और शिरावेध कराना भी हित है ॥

सन्निपातजस्वरभेदकीचिकित्सा ॥

सन्निपातेहिताःसर्वाःक्रियानतुशिरोविधिः

अर्थ....सिराव्यधन, को छोडकर और सब चिकित्सा सान्निपातज स्वरभेद में उप-योगी होती हैं ॥

कर्णरोग में चिकित्साविधि।

कर्णशूलेतुवातघ्नीहितापीनसवत्क्रिया॥
प्रदेहःपूरणंनस्यंपाकस्रावेव्रणक्रियाःभोज्या
नियथादोषंकुर्यान्स्नेहांश्चपूरणान् ॥

अर्थ—कर्णशूल में पीनस के सदृश वात नाशिनी क्रिया हित होती है । इस में प्रदेह तैल से पूरण और नस्य भी देना उचित है कर्णपाक अथवा कर्णस्राव में व्रण के स-मान क्रिया कीजाती है ॥ दोष के अनुसार कर्णरोग में भोजन तथा कर्णपूरण और स्नेह हितकर होते हैं ।

कर्णपूरणप्रयोग ।

हिंगुतुम्बुरुशुण्ठीभिस्तैलंसार्षपंपचेत्॥
एतद्धिपूरणंश्रेष्ठंकर्णशूलनिवारणम् ॥

अर्थ—हींग, धनियां और सोंठ डालकर सरसोंका तेल पकाकर कान में डाले । यह कर्णशूल के दूर करने में उत्तम है ।

देवदारुवचाशुण्ठीशताह्वकुष्ठसैन्धवैः ॥
तैलंसिद्धंवस्तमूत्रेकर्णशूलनिवारणम् ॥

अर्थ—देवदारु, वच, सोंठ, सोंफ, कूठ सेंधानमक और बकरे का मूत्र इन में सिद्ध किया हुआ तेल कर्णशूलको दूर करताहै ।

वराटकान्समाहृत्यदहेत्मृद्भाजनेनवे ।
तद्भस्मच्योतयेत्तेनगन्धतैलंविपाचयेत् ॥
रसाञ्जनस्यशुण्ठ्याश्चकल्काभ्यांकर्ण-
शूलनुत् ॥

अर्थ—पीली कौडी लाकर उन्हें मिट्टी के एक नये पात्र में जला लेवै । इस भस्म को चौगुने जल में स्रावित करै । इस जल में सुगंधित तेल पकावै और इसमें रसौत और सोंठ पीसकर डाल देवै । इस तेल को कान में डालने से कर्णशूल जाता रहता है ॥

क्षार तैल ।

शुष्कमूलकशुण्ठीनांक्षारोहिंगुमहौषधम्।
शतपुष्पावचाकुष्ठंदारुशिग्रुरसाञ्जनम्।
सौवर्चलयवक्षारस्वर्जिकोद्भिदसैन्धवम्।
भूर्जग्रन्थिविडंमुस्तंमधुशुक्तंचतुर्गुणम् ।
रसश्चमातुलुङ्गस्यकदल्यारसएवच । र.
वैरेतैर्यथादिष्टःक्षारस्तैलंविपाचयेत्॥ बा

धिर्यकर्णनादश्चपूयस्रावश्चदारुणः॥ क्रिमयःकर्णशूलश्चपूरणादस्यनश्यति ॥ मुखकर्णाक्षिरोगेषुयथोक्तंपीनसेविधिम् ॥ कुर्याद्भिषक्समीक्ष्यादौदोषकालबलाबलम् ॥

अर्थ—सूखी मूली और सोंठ का खार, हींग, सोंठ, सोंफ, वच, कूठ, दारुहलदी, सहजनेकी छाल, रसौत, संचल नमक, जवाखार सज्जीखार, उद्भिद नमक, सेंधानमक, भूर्जग्रन्थि, बिडनमक और मोथा, इन सब का समान भाग कल्क और उससे चौगुना शहतका शुक्त*इतनाही बिजौरे का रस,इतनाही कदली का रस और चौथाई तेल डालकर पकावै। इस तेल को कान में डालने से बहरापन, कर्णनाद, दारुण पूयस्राव, क्रिमि, कर्णशूल दूर होजाते है। वैद्यको उचित है कि रोगी के दोष काल और बलाबल को देखकर मुखरोग, कर्णरोग और नेत्र रोगों में भी इसका प्रयोग करै ॥

नेत्ररोग में चिकित्सा क्रम।

नेत्ररोगेसमुत्पन्नेतरुणेतुबिडालकः। कार्योदाहोपदेहास्तुशोफरागानिवारणः ॥

अर्थ—नेत्ररोग के उत्पन्न होने परही बिडालक नाम लेप करनेसे जलन उपलिप्तता, सूजन और ललाई दूर होजाती है ॥

दोषानुसारनेत्रचिकित्सा ॥

नागरंसैन्धवंसार्पिमण्डेनचरसक्रिया। निघृष्टंवातिकेतद्वन्मुस्तसैन्धवगैरिकम् ॥ तथाशाबरकंरोध्रंघृतयुक्तंबिडालकः। कार्याहरीतकीतद्वद्घृतभृष्टारुजापहा । पैत्तिकेचन्दनानन्तामञ्जिष्ठाभिबिडालकः कार्यःपद्मकयष्ट्याह्वमांसीकालीयकैस्तथा गैरिकंसैन्धवंमुस्तंरोचनासारसक्रिया। कफेकार्यस्तथाक्षौद्रप्रियंगुसमनःशिलम् ॥ सन्निपातेतुसर्वैःस्याद्वहिरक्षिमलेपनम्।पक्ष्मण्यस्पृश्यताकार्यसम्पकेत्वञ्जनंत्यद्हात् ॥

अर्थ—सोंठ और सेंधानमक समानभाग लेकर घी में सानले। और इसी तरह से मोथा, सेंधानमक और गेरू इनको घी में सानले। इन दोनों प्रयोगोंको वातज नेत्र रोग में रसक्रिया के अनुसार उपयोग में लावै। इसीतरह पठानी लोध को घी में सानकर अथवा हरड के कल्क को घी में तप्त करके बिडालक देवै। पित्तज नेत्ररोग में रक्तचन्दन, अनन्तमूल और मजीठ का बिडालक देवै अथवा पद्माख, मुलहटी, जटामांसी और पीतचन्दन का बिडालक देवै। और गेरू, सेंधानमक, मोथा और गोरोचन इनकी रसक्रिया करै। कफजनेत्र रोग में शहत, प्रियंगु और मनसिल का बिडालक देवै। सान्निपातिक नेत्ररोग में तीनों दोषों की कहीहुई औषधियों का आंखों के बाहर बाहर लेप करै। रोग के पक हो-

*:—शहत का शुक्त अर्थात सिरका बनाने की यह रीति है कि बिजौरे का रस एक प्रस्थ, शहत एक कुडव, पीपल पिसीहुई एक पल इन सबको मिलाकर शहत के बर्त्तन में भरकर एक महीने तक धान के ढेर में गाड़देवै ॥

मोंजन इन सबको पीसकर आंखों में लगाने से नेत्रों को हित होता है। अथवा सेंधानमक, सूअरका दांत और निर्मली इनको पीसकर अंजन बनावै वा वत्ती बनाकर आंखों में आंजे तौ तिमिरादिरोग दूर होजाते हैं। अथवा निर्मलीफल, शख, सैंधानमक, त्रिकुटा, मिश्री, समुद्रफेन, रसौत, शहत, वायविडंग, मनसिल और मुर्गे के अंडे के छिलके इन सबको पीसकर अंजन वा वत्ती बनाकर प्रयुक्त करै तौ तिमिर पटल, कांच और मल दूर होजाते है। इस का नाम सुखावती है॥

दृष्टिप्रदावर्ती।

त्रिफलाकुक्कुटाण्डत्वक्कासीसमयसोरजः।
नीलोत्पलंविडंगानिफेनश्चसरितांपतेः।
अजिनपयसापिष्ट्वाभावयेत्ताम्रभाजने॥
सप्तरात्रंस्थितंभूयःपिष्ट्वाक्षीरेणवर्तयेत्।
एषादृष्टिप्रदावर्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः।

अर्थ....त्रिकुटा, मुर्गे के अंडों के छिलके कसीस, लोहभस्म, नीलकमल, वायविडंग, समुद्रफेन, इन सबको बकरी के दूध में पीसकर ताँवे के बरतन में बकरी का दूध भरकर सात दिवस तक भावना देवै फिर वत्ती बना बनाकर नेत्रों में लगावै तौ वह आंख जो फूटी न होगी उसका अंधापन दूर होजायगा॥

अन्यअंजन।

वदनेकृष्णसर्पस्यनिहितंमासमञ्जनम्॥
तनस्तसात्समुद्धृत्यसशुष्कंचूर्णयेत्सह।
सुमनःसारकैःशुष्कैरर्द्धांशैःसैन्धवेनच॥
एतन्नित्याञ्जनंकार्यंतिमिरघ्नमनुत्तमम्।

अर्थ—कालेसांपके सिरको काटकर उस के मुख में रसांजन भरकर एक महीनेतक धरा रहने देवै। एक महीने पीछे उसे निकालकर सुखाकर पीसलेवै। इसमें मालती का खार और सैंधानमक आधा आधा मिलाकर नेत्रों में आंजै यह अंजन तिमिर रोग के दूर करने में बहुत उत्तम है॥

सुरसःकिंशुकस्याहेर्वसाकृष्णस्यसैन्धवम्
जीर्णघृतश्चसर्वाक्षिरोगघ्नीस्यादुपक्रिया।
कृष्णसर्पवसाक्षौद्रंरसोधात्र्यारसक्रिया॥
शस्तावाताक्षिरोगेषुकाचार्बुदमलेषुच।
धात्रीरसाञ्जनक्षौद्रसर्पिर्भिस्तुरसक्रिया॥
पित्तरक्ताक्षिरोगघ्नीतैमिर्यपटलापहा।
धात्रीसैन्धवपिप्पल्यःस्युरल्पमरिचाःसमाः॥ क्षौद्रयुक्तानिहन्त्यन्ध्यंपटलञ्चरसक्रिया॥

अर्थ—पलासकी जड का रस, कालेसर्प की चर्बी, सैंधानमक और पुरानाघी इन सबको मिलाकर पीसकर नेत्रों में लगावै। इस से सम्पूर्ण प्रकार के नेत्ररोग शान्त होजाते हैं। कालेसर्प की चर्बी, शहत, और आंवले का रस इनको घोटकर आंखों में डालने से वमू वातजनेत्ररोग तथा काच अर्बुद और मल दूर होजाते हैं। आंवले का रस, रसौत, शहत और घी इसका रस क्रिया द्वारा प्रयोग करने से पित्तरक्तज नेत्ररोग, तिमिर और पटल दूर होजाते हैं आंवला, सेंधानमक, पीपल, और कालीमिरच ये सब समान भाग लेकर शहत के

साथ घोटकर रसक्रिया द्वारा प्रयुक्त करै तौ अन्धता और पटलरोग दूर होजाते हैं ॥

खालित्यचिकित्सा ।

खालित्येपलितेवल्यांहारिलोम्निच-साधितम् ॥ नस्यैस्तैलैःशिरोवक्त्रप्रलेपै श्चाप्युपाचरेत् । सिद्धंविदारिगन्धाद्यैर्जीवनीयैरथापिच ॥ नस्यंस्यादणुतैलंवाखालित्यपलितापहम् । क्षीरात्सहचराद्भृंगरजसःसौरसाद्रसात् ॥ प्रस्थैस्तुकुडवस्तैलाद्यष्ट्याह्वपलकल्कितः। सिद्धःशैलास-नेभाण्डेमेषशृंगेचसंस्थितः ॥ नस्यंस्यात् क्षीरयुक्तंवादुग्धिकाकरवरिकौ। उत्पाट्य पलितंदेयातावुभौपलितापहौ॥मार्कवस्व रसात्क्षीराद्द्विप्रस्थंमधुकात्पलम् ।तैःप-चेत्कुडवंतैलात्तन्नस्यंपलितापहम् ॥

अर्थ—खालित्य [खल्वाट] पालित्य [श्वेतकेश होना] वली [झुर्री पड़ना] और रोमोंका हरा होना इन में नस्य, तैल, शिरःप्रलेप, मुख प्रलेपादि द्वारा चिकित्सा करै । विदारीगन्धादि गण वा जीवनीयादि गण से सिद्ध किया हुआ तेल वा पूर्वोक्त अणुतैल की नस्यका प्रयोग करने से खालित्य और पालित्य दोनों रोग दूर होजाते है । दूध, सहचरीका रस, भांगरे का रस, तुलसी का रस प्रत्येक एक एक प्रस्थ लेकर, तेल एक कुडव और मुलहटी एक पल इन सबको एक साथ पका कर पत्थर वा काच के वर्तन वा मेढा के सींग में रक्खै इसकी नस्य देवै ।

सफेद बालों को उखाड कर दूध में दुद्धी पीसकर वा कनेर पीस कर सिर पर लेप करै तौ पालित्य दूर होजाता है । भांगरे का रस दो प्रस्थ, दूध दो प्रस्थ, मुलहटी एक पल, एक कुडव तैल । इन सब को एक साथ पका कर नस्य देने से पलितरोग दूर होजाता है ।

महानीलाख्यघृत ।

आदित्यवल्ल्यामूलानिकृष्णशैरेयकस्यच सुरसस्यचपत्राणिफलंकृष्णशणस्यच ॥ मार्कवः काकमाचीचमधुकंदेवदारुच ॥ पृथग्दशपलांशानिपिप्पल्यस्त्रिफलाञ्जनम् प्रपुण्डरीकंमञ्जिष्ठालोध्रंकृष्णागुरूत्पलम् आम्रास्थिकर्दमःकृष्णोमृणालीरक्तचन्दनम् ॥ नीलंभल्लातकास्थीनिकासीसमदयन्तिका । सोमराज्यसनःशस्त्रंकृष्णौपिण्डीतचित्रकौ॥ पुष्पाण्यर्जुनकाश्मर्याण्याम्रजम्बूफलानिच । पृथक्पञ्चपलांशानितैःपिष्टैराढकंपचेत् ॥ वैभीतकस्यतैलस्यधात्रीरसचतुर्गुणम् । कुर्यादादित्यपाकंवायावच्छुष्कोभवेद्रसः।लोहपात्रेततःपूतंसंशुद्धमुपयोजयेत् । पानेनस्तः क्रियायाञ्चशिरोऽभ्यङ्गेचसंयतः एतच्चक्षुष्यमायुष्यंशिरसःसर्वरोगनुत् । महानीलमितिख्यातंपलितघ्नमनुत्तमम् ॥

अर्थ—आदित्यवल्ली की जड, कृष्ण सैरेयक, तुलसी के पत्ते, कालेसन के फल, भांगरा, मकोय, मुलहटी, देवदारु, पृथक् पृथक् दस पल । पीपल, त्रिफला, रसौत पुण्डरियाकाठ, मजीठ लोध, कृष्णागुरु, नीलकमल, आमकीगुठली, कर्दम, मृणाल,

रक्तचंदन, नील, भिलायेकी गुठली, हीराकसीस, मल्लिका, सोमराजी, अशन, लोहभस्म, पीपल, मेनफल, चीता, अर्जुनकेफूल [किसी २ में पुहकरमूल अर्जुन] खंभारी के फल, आम, जामन, इन में से प्रत्येक पांच पांच पल लेकर इन सबको पीस लेवै इन के साथ एक आढक बहेडे का तेल, आंवले का रस चार आढक इनको अग्नि पर चढा कर वा सूर्यकी धूप में पका कर गाढे होनेपर छानकर लोहे के पात्र में रखदेवै इस तेलको पान नस्य और सिरपर मालिश करने में प्रयुक्तकरै ॥ यह तेल नेत्रोंको हितकारी आयुवर्द्धक, और सिरके सम्पूर्ण रोगोंकानाश करनेवाला महानील नामक है ॥ यह तेल पलित दूर करने में वहुत उत्तम है॥

प्रपुण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः ।
कार्षिकैस्तैलकुडवःद्विगुणामलकीरसः ॥
सिद्धःसपरिमर्शःस्यात्सर्वमूर्द्धगदापहः ।
क्षीरंपियालयष्ट्याह्वजीवकाद्योगणस्तिलाः
कृष्णावत्रमलेपःस्याद्धरिल्लोमनिवारणः
यष्ट्याह्वतिलाकिञ्जल्कक्षौद्रमामलकानिच
बृंहयेद्रञ्जयेच्चैतत्केशान्मूर्द्धप्रलेपनम् ॥
पचेत्सैन्धवशुक्ताम्लैरयश्चूर्णंसतण्डुलम् ॥
तेनालिप्तंशिरःशुद्धस्निग्धमुषितंनिशि ॥
तस्मात्त्रिफलाधौतंस्यात्कृष्णमृदुमूर्द्धजम्
अयश्चूर्णोऽम्लपिष्टश्चरागःसत्रिफलोवरः

अर्थ—पुण्डरियाकाठ, मुलहटी, पीपल, चन्दन, नीलकमल, प्रत्येक एक एक कर्ष, तेल एक कुडव, आंवले का रस दो कुडव इन सबको सिद्ध कर के प्रयोग करने से सिर के सम्पूर्ण रोग दूर होजाते हैं। दूध पियाल, मुलहटी, जीवनीय गणोक्त द्रव्य और काले तिल इनको पीसकर लेपकरनेसे रोमों का हरापन दूर होजाता है।

मुलहटी, तिल, पद्मकेसर, शहत और आंवला इनका मस्तकपर लेप करने से केशदृढ तथा काले होजाते है। सेंधानमक, शुक्त, कांजी, लोहचूर्ण, तंडुल, इन सबको पीसकर विना चिकनाई डाले सिरको शुद्ध कर के पहिले दिन रात में लेप करै। दूसरे दिन प्रातःकाल त्रिफला के जल से धोडालै तो बालकोमल और काले पडजाते हैं। लोहचूर्ण और त्रिफला इनको कांजी के साथ पीसकर लेप करने से बाल काले पडजाते हैं ॥

कुर्याच्छेषपुरोगप्रक्रियांस्वांस्वाच्चिकित्सिताम् ॥ शेषप्प्रादौचनिर्दिष्टासिद्धा चान्याम्प्रवक्ष्यते ।

अर्थ—जत्रु से उपर होने वाले रोगों में जो रोग है उसकी वैसीही चिकित्सा करै॥ उन में से वहुत से रोगोंकी चिकित्सा पहिले वर्णन करचुके है और शेषरोगोंकी चिकित्सा सिद्धिस्थान में वर्णन कीजायगी।

अध्यायकाउपसंहार।

वातपित्तकफान्दणांत्रस्तिहृन्मूर्द्धसंश्रयाः॥ तस्मात्तत्स्थानसामीप्याद्धतव्यावमनादिभिः। अध्यात्मलोकेवातार्धेलोकोवातरवीन्दुभिः॥पीड्यतेधार्यतेचैवविकृताविकृतैःसच। विरुद्धैरपिनत्वेतेगुणैर्घ्नन्तिपरस्परम् ॥ दोषाःसहजसात्म्यत्वाद्विषंघोरमहीनिव ।

अर्थ—वात, पित्त और कफ के प्रधान स्थान मनुष्यके वस्ति, हृदय और मूर्द्धा हैं इसलिये स्थानकी समीपताके कारण वमनादि द्वारा उनका संशोधन करै । जैसे विकृत वायु, सूर्य और चन्द्रमा संसार को पीडित करते हैं और अविकृत संसार को धारण करते हैं उसीतरह विकृत वात, पित्त, कफ, देहको पीडित करते हैं और अविकृत देहको धारण करते हैं ॥

वात पित्त और कफ ये तीनों दोष यद्यपि गुणों में परस्पर विरुद्ध हैं तथापि एक दूसरे को नष्ट नही करते हैं, क्योंकि ये साथ उत्पन्न हुएहैं और सात्म्य भी हैं। जैसे सर्पका विष सर्पको नष्ट नहीं करसक्ता है॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

त्रिमर्मजानांरोगाणांनिदानाकृतिभेषजम् विस्तरेणपृथग्दिष्टंत्रिमर्मीयेचिकित्सिते ।

अर्थ—इस त्रिमर्मीय चिकित्सित नामक अध्याय में रोगों के निदान आकृति और चिकित्सा पृथक् २ विस्तारपूर्वक वर्णन की गई हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांचिकित्सितस्थानेत्रिमर्मीयचिकित्सितंनाम षड्विंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

—।—

सप्तविंशोऽध्यायः ।

अथातऊरुस्तम्भचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम ऊरुस्तम्भ चिकित्सित नामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

श्रियापरमयाब्राह्म्यापरयाचतपःश्रिया अहीनंचन्द्रसूर्याभ्यांसुमेरुमिवपर्वतम् ॥ धीधृतिस्मृतिविज्ञानज्ञानकीर्तिक्षमालयम् अग्निवेशोगुरुंकालेसंशयंपरिपृष्टवान् ॥ भगवन्! पञ्चकर्माणिसमस्तानिपृथक्तथा। निर्दिष्टान्यामयानान्तुसर्वेषामेवभेषजम् ॥ दोषजोऽस्त्यामयः कश्चिद्यस्यैतानिभिषग्वर! । नस्युःशक्तानिशमनेसाध्यस्यक्रिययाततः ॥

अर्थ—जैसे सुमेरु पर्वत चन्द्रमा और सूर्य दोनों से सुशोभित है उसी तरह जो परा ब्राह्मी श्री और परातपः श्री इन दोनों से युक्त है और जो धी धृति, स्मृति, विज्ञान ज्ञान, कीर्ति और क्षमा का स्थान है ऐसे गुरु आत्रेयसे अग्निवेशने उचित समय पर अपने संशयको दूर करने के हेतु प्रश्न किया कि हे भगवन्! आपने वमन विरेचनादि पांचों कर्मोंका पृथक् २ वर्णन किया है और सम्पूर्ण रोगोंकी औषधियां भी कही हैं। परन्तु हे वैद्यवर! क्या कोई ऐसा भी दोषजरोग है जो साध्य होने पर भी उक्त सम्पूर्ण क्रियाओं द्वारा दूर करने में न आ सकता हो।

अस्त्युरुस्तम्भइत्युक्तेगुरुणातस्यकारणम् सलिंगभेषजंभूयःपृष्टस्तेनाब्रवीद्गुरुः ॥

अर्थ—यह सुनकर आत्रेय बोले कि ऊरुस्तम्भ एक ऐसा रोग है जो वमन विरेचनादि पंचकर्म्मों से अच्छा नहीं होसकता

है तब अग्निवेश के फिर पृश्न करने पर आत्रेयने ऊरुस्तंभ का निदान, लक्षण और चिकित्सा वर्णन की ॥

ऊरुस्तम्भका हेतु ।

स्निग्धोष्णलघुशीतानिजीर्णाजीर्णेसम–श्नतः । द्रवशुष्कदधिक्षीरग्राम्यानूपौदकामिषैः ॥ पिष्टव्यापन्नमद्यातिदिवास्वप्नप्रजागरैः । लंघनप्लवनाद्यैश्च भयवेगविधारणैः ॥ स्नेहाच्चामश्चिनंकोष्ठेवातादीन्मेदसासह । रुद्धाशुगौरवादूरुस्रोतोभियात्यधोगतः ॥ पूरयन्सक्थिजंघोरुदोपोमेदोवलोत्कटः । अविधेयपरिस्पन्दं जनयत्यल्पविक्रमम् ॥

अर्थ—स्निग्ध, उष्ण, लघु और शीतल अन्न के अत्यन्त सेवन से, विषम भोजन अजीर्ण में भोजन वा संशमनसे, पतले वा सूखे दही, दूध, ग्राम्यमांस, आनूपमांस और औदक मांसके अत्यन्त सेवनसे पिट्ठी के पदार्थों के अत्यन्त सेवन से, दूषित मद्य से, दिनमें सौने से वा रात्रि में अत्यन्त जागने से, लांघने से, कूंदने से, भयसे,वेग संधारण से, और अत्यन्त स्नेह के सेवन करने से कोष्ठ में संचित हुआ आम मेदा के साथ वातादिक दोषोंको रोककर भारापन के कारण शीघ्रही अधोगामी स्रोतों द्वारा ऊरूमें जाताहै तब दोष मेदके साथ मिलने से वलोत्कट होकर सक्थि, जंघा और ऊरू को भर देताहै और ये चलने फिरने से रहित होकर अल्प वलयुक्त होजाती हैं ॥

ऊरुस्तम्भकी उत्पत्ति ।

महासरसिगम्भीरेपूर्णेऽम्बुस्तिमितंतथा । तिष्ठतिस्थिरमक्षोभ्यंतद्वदूरुगतःकफः ॥ गौरवायाससङ्कोचदाहरुक्सुप्तिकम्पनैः । भेदस्फुरणतोदैश्चयुक्तोदेहंनिहन्त्यसून् ॥ ऊरुश्लेष्मासमेदस्कोदोषौद्वावभिभूयतु । स्तम्भयेत्स्थैर्यशैत्याभ्यामूरुस्तम्भस्ततस्तु सः ॥ वातशङ्किभिरज्ञानात्तस्यस्यात्स्नेहनात्पुनः। पादयोःसदनंसुप्तिःकृच्छ्रादुद्धरणंतथा ॥

अर्थ—जैसे वडे सरोवर के पूर्ण भरजाने पर उसमें जल ठहरजाता है उसी तरह से कफ ऊरू में जाकर स्थिर और अक्षुभित होकर ठहरजाता है । जिस ऊरुस्तम्भ में भारापन,आयास,संकोच,दाह,वेदना,सुन्नता, कम्पन, भेद, फडकन और तोद होता है उसमें प्राण शीघ्रही निकलजाते हैं । मेद से संयुक्तकफ वात और पित्तका पराभव करके स्थिरता और शीतलता के कारण ऊरुओंको स्तम्भित करदेता है । तव यह रोग ऊरुस्तम्भ कहाता है । इस रोग में वात विकारकी शंका करके अज्ञानसे मनुष्य वातनाशक तैलादि का मर्दन करते हैं, इस से पांवों में शिथिलता और न्यूनता होती है तथा पांव वडी कठिनता से उठता है ।

ऊरुस्तम्भ के लक्षण ।

जंघोरुग्लानिरत्यर्थशश्वच्चादाहवेदना। पदश्चव्यथतेन्यस्तंशीतस्पर्शनवेत्तिच ॥ संस्थानेपीडनेगत्यांचलनेचाप्यनीश्वरः। अन्यपरणेयःसम्भग्नावूरुपादौचमन्यते ॥

अर्थ—जंघा और ऊरू में अत्यन्त ग्लानि निरन्तर दाह और वेदना, पांव के धरने में व्यथा, शीतस्पर्श का मालूम न होना तथा पांव के एक जगह रक्खे रहने में, चलाने में पीडा होती है तथा यह मालूम होता है कि ऊरू और पांव दोनों टूटेजातेहैं

ऊरुस्तम्भका पूर्वरूप।

प्राग्रूपंध्याननिद्रातिस्तैमित्यारोचकज्वराः लोमहर्षश्चछर्दिश्चजंघोर्वोःसदनंतथा॥

अर्थ—ध्यान, निद्रा, अत्यन्त स्तिमिता, अरुचि, ज्वर, लोमहर्ष, वमन, जंघाका सदन वा ऊरुसदन ये ऊरुस्तम्भ के पूर्वरूप है॥

साध्यासाध्यऊरुस्तम्भका लक्षण।

यदादाहार्तितोदार्तोवेपनःपुरुषोभवेत्। ऊरुस्तम्भस्तदाहन्यात्साधयेदन्यथा नवम्॥

अर्थ—जब ऊरुस्तम्भके पुराने पडनेपर रोगी दाह, यातना और तोद से पीडित हो और उसे कम्पन भी होता हो तो ऊरुस्तम्भ असाध्य और प्राणनाशक होताहै। ऊपर कहेहुए लक्षणों से विपरीत और नवीन ऊरुस्तम्भ साध्य होता है।

ऊरुस्तम्भमें अकर्त्तव्यकर्म।

तस्यनस्नेहनंकार्यंनवस्तिर्नविरेचनम्॥ नचैववमनंयस्मात्तन्निबोधतकारणम्॥

अर्थ—ऊरुस्तम्भ में स्नेहन, वस्ति, विरेचन वा वमन नहीं कराना चाहिये। जिन हेतुओं से ये कर्म नहीं कियेजाते हैं उसका कारण यह है कि—

अकर्त्तव्यकर्म्मोंकाहेतु।

वृद्धयेश्लेष्मणोनित्यंस्नेहनंवस्तिकर्मच। तत्स्थस्योद्धरणेचैवनसमर्थविशोधनम्। कफंकफस्थानगतंपित्तंवावमनात्सुखम्॥ हन्तुमामाशयस्थौचस्रंसनाच्चावुभावपि। पक्वाशयस्थाःसर्वेचवस्तिभिर्मूलनिर्जयात् शक्यानत्वाममेदोभ्यांस्तब्धजंघोरुसंस्थिताः॥

अर्थ....स्नेहनकर्म और वस्तिकर्म कफ को सदा बढातेही हैं। तथा वमन विरेचनादि संशोधन भी ऊरूमें स्थित कफको निकालने मेंसमर्थ नहीं होते हैं कारण यह है कि वमन विरेचनका ऊरूसे कोई साक्षात् संबंध नहीं है।

कफस्थानगत कफ और पित्तस्थानगत पित्त वमन द्वारा सुखपूर्वक दूर हो सक्ता है और आमाशयस्थ पित्त और कफ दोनों स्रंसन द्वारा दूर होसक्ते है। पक्वाशय में स्थित वातपित्त कफ ये तीनों दोष वस्तिकर्म से सुखपूर्वक दूर होजाते हैं परन्तुआम और मेदा से स्तब्ध जंघा और ऊरु में स्थित दोष वस्तिकर्म से दूर नहीं होसक्तेहैं।

वातस्थानेहितेशैत्याद्गूर्वोःस्तम्भाश्चतद्गताः॥ नशक्याःसुखमुद्धर्तुंजलंनिम्नादिवस्थलात्॥

अर्थ....ऊरु और जंघा वात के स्थानहैं और वायुकी शीतलता के कारणही ऊरुस्तम्भ और जंघास्तम्भ उत्पन्न होते हैं इस से इनको दूर करदेना सहजबात नहीं है। जैसे नीचे स्थलों से जल निकालने में कठिन-

ता पडती है इसीतरह शरीरके नीचेके भाग में स्थित जंघा और ऊरु से दोषों के दूर करने में कठिनता होती है ॥

ऊरुस्तम्भमेंचिकित्साविधि ।

तस्यसंशमनंनित्यंक्षपणंशोषणंतथा ॥ युक्त्यपेक्षीभिषक्कुर्यादधिकत्वात्कफामयोः । सदारूक्षोपचारायययवश्यामाककोद्रवान् ॥ शाकैरलवणैरद्याज्जलतैलोपसाधितैः । सुनिषण्णकनिम्बार्कवेत्रारग्वधपल्लवैः ॥ वायसीवास्तुकैरन्यैस्तिक्तैश्चकुलकादिभिः । क्षारारिष्टप्रयोगाञ्च हरीतक्यास्तथैवच ॥ मधूदकस्यपिप्पल्याऊरुस्तम्भविनाशनाः॥

अर्थ....कफ और आमकी आधिकता का विचार करके युक्तिपूर्वक ऊरुस्तम्भमें संशमन क्रिया करना उचित है जिससे इस रोग का नाश और शोषहोवै । तथा सदा रूक्ष उपचार के निमित्त जौ, सोंखिया, कोदों का सेवन कराना हित है और विना नमकके जल और तेल के साथ पकायेहुए चौपातिया, नीम के पत्ते, आक के पत्ते, बेत के पत्ते, अमलतास के पत्ते, मकोय बथुआ और परवलआदि अन्य तिक्तशाकों का सेवन करै । इसीतरह क्षार, अरिष्ट, हरड़, मधूदक और पीपल ऊरुस्तम्भ को दूर करदेते हैं ।

ऊरुस्तम्भमें अन्य औषध ।

समङ्गाशाल्मलीबिल्वमधुनासहनापिवेत्। तथाश्रीवेष्टकोदीच्यदेवदारुनतान्यपि । चन्दनंधातकीकुष्ठंतालीशंनलदंतथा ॥

अर्थ—लज्जालु, सेंमरकी छाल और बेल की छाल इन के क्वाथ में शहत डालकर पान करै । तथा श्री वेष्टक, नेत्रवाला, देवदारु और तगर का क्वाथ मधु के साथ पान करै अथवा रक्तचन्दन, धाय के फूल, कूठ, तालीसपत्र और खस इनके क्वाथको मधु के साथ पान करै ।

ऊरुस्तम्भ पर पांच प्रयोग ।

मुस्तंहरीतकींरोध्रंपद्मकंतिक्तरोहिणीम् । देवदारुहरिद्रेद्वेवचांकटुकरोहिणीम् ॥ पिप्पलीपिप्पलीमूलंसरलंदेवदारुच॥चव्यचित्रकमूलानिदेवदारुहरीतकीम् ।भल्लातकंसमूलाश्चपिप्पलीपञ्चतानपिबेत् । सक्षौद्रानर्द्धश्लोकोक्तान्कल्कानूरुग्रहापहान् ॥

अर्थ—[१) मोथा, हरड़, लोध,पद्माख और कुटकी । देवदारु, दोनों हल्दी, वच और कुटकी । (३) पीपल,पीपलामूल सरलकाष्ट, देवदारु (४) । चव्य, चीते की जड, देवदारु और हरड़ [५) । भिलाया, पीपल, पीपलामूल । आधे२ श्लोकों में कहे हुए ये पांच प्रयोग हैं इन में से किसी एक का कल्क शहत डालकर पीने से ऊरुस्तम्भ का नाश होता है ।

शार्ङ्गष्टांमदनंदन्तींवत्सकस्यफलंवचाम् । मूर्वामारग्वधंपाठांकरञ्जंकुलकंतथा ॥ पिबेन्मधुयुतंतुल्यंचूर्णंवावारिणाप्लुतम् । सक्षौद्रंदधिमण्डंवाप्यूरुस्तम्भविनाशनम् ॥

अर्थ—शार्गेष्टा, मेनफल, दन्ती, इन्द्रजौ, वच, मूर्वा, अमलतास, पाठा, कंजा, परवल,

इनके क्वाथ में शहत डालकर पीवे अथवा इनके चूर्ण को जल में घोलकर शहत वा दधिमंडके साथ पीवे। इससे ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है।

मूर्वामतिविषांकुष्ठंचित्रकंकटुरोहिणीम्। पूर्ववद्वापिवेत्तोयेरात्रिस्थितमथापिवा॥ स्वर्णक्षीरीमतिविषांमुस्ततेजोवतींवचाम्। सुराह्वंचित्रकंकुष्ठंपाठांकटुकरोहिणीम्॥ लेहयेन्मधुनाचूर्णसक्षौद्रंवाजलान्वितम्। फलिंन्याघ्रनखंहेमपिवेद्वामधुसंयुतम्॥ त्रिफलांपिप्पलींमुस्तंचव्यंकटुकरोहिणीम्। लिह्याद्वामधुनाचूर्णमुरुस्तम्भार्दितो नरः॥

अर्थ—मूर्वा, अतीस, कूठ, चीता, कुटकी इनके क्वाथ वा चूर्ण को पहिले की तरह पीवे अथवा इन सब द्रव्यों को रात्रि के समय जल में भिगो देवे और प्रातःकाल इस जल को पीवे। अथवा स्वर्णक्षीरी, अतीस, मोथा, चव्य, वच, देवदारु, चीता, कूठ, पाठा और कुटकी, इनके चूर्ण को शहत के साथ अथवा शहत मिले हुए जल के साथ सेवन करै। अथवा प्रियंगु, व्याघ्रनख और नागकेशर इनके चूर्ण को शहत के साथ पीवै। अथवा त्रिफला, पीपल, मोथा चव्य, और कुटकी इनके चूर्ण को शहत के साथ चाटै।

ऊरुस्तंभके उपद्रवोंकी चिकित्सा।

अपतर्पणजेस्याद्दोषःसन्तर्पयेद्धितम्। युक्त्याजांगलजैर्मांसैःपुराणैश्चैवशालिभिः रूक्षणाद्वातकोपश्चेन्निद्रानाशार्तिपूर्वकः॥ स्नेहस्वेदक्रमस्तत्रकार्योवातामयापहः॥ पीलुपर्णीपयस्याचरास्नागोक्षुरकोवचा। सरलंगुरुपाठाश्चतैलमेभिर्विपाचयेत्॥ सक्षौद्रात्प्रसृतंतस्मादञ्जलिंवापिनापिवेत् कुष्ठंश्रीवेष्टकोदीच्यंसरलंदारुकेसरम्। अजगन्धाश्वगन्धाचतैलन्तैःसार्षपंपचेत्‌स-क्षौद्रंमात्रयातच्चाप्यूरुस्तम्भार्दितःपिवेत्

अर्थ—जो ऊरुस्तम्भ अपतर्पण से उत्पन्न हुआहो तौ उस में सन्तर्पण हित है। इस में जांगल मांस और पुराने शालिचांवल दैना उचितहै। रूक्ष व्यक्तिके यदि निद्रानाश और यातना पूर्वक वातका कोप होवै तौ वातरोग नाशक स्नेहन और स्वेदन क्रिया का अवलंबन करै। मरोडफली, क्षीरकाकोली रास्ना, गोखरू, वच, सरल, अगर और पाठ इनको डालकर तेल पकावे। इस तैल में से एक प्रसृत वा एक अंजली शहत डाल कर पीना चाहिये। अथवा कूठ, श्रीवेष्टक, नेत्रवाला, सरलकाष्ठ, देवदारु, नागकेसर, अजगंध, असगंध इनको डालकर सरसोंका तैल पकावे। इस तेल में मात्रा के अनुसार शहत डालकर पीनेसे उरुस्तम्भ दूरहो जाताहै

द्वेपलेसैन्धवात्पञ्चशुण्ठ्याग्रन्थिकचित्रका-त्‌॥द्वेद्वेभल्लातकास्थीनिविंशतिर्द्वेतथाढके॥ आरनालात्पचेत्प्रस्थंतैलस्यैतैरपत्यदम्॥ गृध्रस्यूरुग्रहार्शोर्तिसर्ववातविकारनुत्। पलाभ्यांपिप्पलीमूलनागराद्दष्टकट्वरः॥ तैलप्रस्थःसमोदध्नागृध्रस्यूरुग्रहापहः॥ इत्याभ्यन्तरमुद्दिष्टमूरुस्तम्भस्यभेषजम्‌।श्ले-ष्मणःक्षपर्णत्वन्यद्वाह्यंशृणुचिकित्सितम्॥

अर्थ——सेंधानमक दो पल, सोंठ पांचपल वच और चीता दो दो पल, भिलायेकी गुठली बीस, कांजी दो आढक, इन सब के साथ एक प्रस्थ तेल पकावे। यह तेल संतानकारक होताहै ॥ इसके सेवन करनेसे गृध्रसी ऊरुग्रह, अर्शयातना, तथा सब प्रकार के वातरोग दूर होजातेहैं ॥ पीपलामूल एकपल सोंठ एक पल, आठ प्रस्थकट्वर एक प्रस्थ तेल और एक प्रस्थ दही इन सबको पकाकर सेवन करने से गृध्रसी और ऊरुग्रह दूरहो जाते हैं ॥ इस तरह उरुस्तम्भकी आभ्यन्तर चिकित्सा वर्णनकी गईहै, अब हम यहां से श्लेष्मक्षपण बाह्य चिकित्साका वर्णनकरतेहैं।

ऊरुस्तम्भ पर लेप ।

वल्मीकमृत्तिकामूलंकरञ्जस्यफलंत्वचम्
पिष्ट्वासर्षपमूत्रेऽध्युषितंस्यात्प्रलेपनम्
इष्टकानांततश्चूर्णैःकुर्यादुत्सादनंशुभम् ॥

अर्थ—बांबी की मिट्टी, कंजाकी जड, फल और छाल और रात भर गोमूत्र में भिगोई हुई सरसों इन सबको पीस कर लेप करै अथवा ऊपर से ईंटका चूर्ण धीरे२ मसलै ॥

अन्यलेप ।

मूलैर्वाप्यश्वगन्धायामूलैरर्कस्यवाभिषक्
पिचुमर्दस्यवामूलैरथवादेवदारुणः ।
क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकाद्ययुतैर्भिषक् ॥
गाढमुत्सादनंकुर्य्यादूरुस्तंभेप्रलेपनम् ॥
द्रवन्त्यासुरसैर्दन्त्यासर्षपैश्चापिबुद्धिमान्।
तर्कारीविश्वशिग्रुसुरसवत्सकनिम्बजैः॥
पत्रमूलफलैस्तोयंमृतमुष्णञ्चसेचनम् ।
वत्सकःसुरसंकुष्ठंगन्धास्तुम्बुरुशिग्रुकौ ॥
हिंस्त्रार्कमूलवल्मीकमृत्तिकाःसकुठेरकाः।
दधिसैन्धवसंयुक्तंकार्य्यमेतैःप्रलेपनम् ॥

अर्थ—असगंध की जड, अथवा आक की जड, वा नीमकी जड, अथवा देवदारु की जड, इनके चूर्ण में शहत, सरसों, बांबीकी मिट्टी मिलाकर ऊरुस्तम्भ पर गाढा उत्सादन करै। अथवा द्रवन्ती, सुरसा, तुलसी, दन्ती और सफेद सरसोंका लेप करै अथवा जयन्ती, सोंठ, सहजना, कालीतुलसी, इन्द्रजौ इनके पत्ते, जड और फलों को औटाकर उष्णजल का ऊरुस्तम्भ पर तरेडा देवै। अथवा इन्द्रजौ, तुलसी, कूठ, असगंध, धनियां सहजना, हींसकी जड, आककी जड, बांबीकी मिट्टी और कुठेरक तुलसी इनमें दही और सैंधानमक मिलाकर लेप करै।

श्योनाकंखदिरंविल्वंवदरल्यौसरलासनौ ।
अग्निमन्थाढकीशिग्रुश्चदंष्ट्रासुरसार्जकान्
तर्कारीनक्तमालञ्चजलेनोत्क्वाथ्यसेचयेत्
प्रलेपोमूत्रपिष्टैर्वाप्यूरुस्तम्भनिवारणः ।
कफक्षयार्थसह्येपुव्यायामेष्वनुयोजयेत्॥
स्थलान्याक्रामयेत्कालशर्कराःसिकतास्तथा ॥ प्रतारयेत्प्रतिस्रोतांनदींशीतजलां शिवाम् । सरश्चविमलंशीतंस्थिरतोयंपुनः ॥ तथाकफेविशुष्केस्यशान्तिमूरुग्रहोव्रजेत् । श्लेष्मणः क्षपणंयत्स्यात्नच मारुतमावहेत् । तत्सर्वसर्वदाकार्य्यमूरुस्तम्भस्यभेषजम् ॥ शरीरंवलमग्निञ्चकार्य्यपारक्षताक्रिया॥

अर्थ—श्योनाक, खैर, वेल्लछाल, दोनों कटेरी सरल, असन, अरनी, सहजना, गोखरू, तुलसी, अर्जक, सर्कारी, और कंजा इनका क्वाथ करके गरम २ क्वाथ तरड़ा देवै अथवा इनसब औषधियों को गोमूत्र में पीसकर लेप करै तो भी ऊरुस्तम्भ दूर होजाता है। कफके क्षीण करने के लिये रोगी जितना परिश्रम सहन करसकै उतना उससे शारीरिक परिश्रम करावै। रोगीको वालू वा कंकरों के ढेरपर वा ऊंचे स्थान पर चढ़ावै। शीतलजलवाली, उपद्रव रहित नदियों के स्रोतकी तरफ तैराकर चढावै। तथा निर्मल, शीतल और ठहरेहुए जलों के सरोवरों में तैरावै। इसतरह कफके सूखने पर ऊरुस्तम्भ शान्त होजाता है। जो जो औषध कफको दूर करें और वायुको प्रकुपित न करै वे सब ऊरुस्तम्भ के दूर करने में उपयोगी होती हैं। परन्तु इस चिकित्सामें शारीरिक वल और अग्निकी रक्षा का पूर्ण विचार रक्खै।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन।

हेतुःप्राग्रूपलिंगानिकर्मायोग्यत्वमेवच। द्विविधंभेषजंचोक्तंऊरुस्तम्भचिकित्सिते॥

अर्थ—इस ऊरुस्तम्भ चिकित्सित अध्यायमें ऊरुस्तम्भ के हेतु, पूर्वरूप, लक्षण और वमनादि पांचों कर्म्मों की अयोग्यता और दो प्रकारकी चिकित्सा वर्णन की है।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांचिकित्सितस्थानेऊरुस्तम्भाचिकित्सितंनाम-सप्तविंशोऽध्यायः॥ २७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः।

अथवातव्याधिचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अबहम वातव्याधि चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

वायु की उत्कृष्टता।

वायुरायुर्बलंवायुर्वायुर्धाताशरीरिणाम्। वायुर्विश्वमिदंसर्वंप्रभुर्वायुश्चकीर्त्तितः॥ अव्याहतगतिर्यस्यस्थानस्थःप्रकृतौस्थितः। वायुःस्यात्सोऽधिकंजीवेत्वीरोगःशरदांशतम्॥

अर्थ—वायुही देहधारियोंकी आयु है, वायुही उनका वलहै, वायुही उनका विधाता है, वायुही सम्पूर्ण विश्वहै और वायुही प्रभु वर्णन कियागया है॥

जिस मनुष्यके देह में वायुकी अव्याहत (अदूषित) गतिहै और अपने स्थान में स्थित और प्रकृतिस्थहै वह मनुष्य सौ वर्ष पर्य्यन्त निरोग रहकर जीती है।

वायुके भेद॥

प्राणोदानसमानाख्यव्यानापानैःसपञ्चधा। देहंतन्त्रयतेसम्यक्स्थानेष्वव्याहतश्चरन्॥

अर्थ—प्राणवायु, उदानवायु, समानवायु, व्यानवायु, और अपानवायु, ये वायुके पांच भेद हैं। ये पांचों वायु अपने अपने स्थान में अव्याहत रीतिसे विचरण करती हुई शरीर को सम्यक्रूप से नियमित रखती हैं॥

प्राणवायुके स्थान और कर्म।

स्थानंप्राणस्यशीर्षोरःकर्णजिह्वाक्षिनासिकाः ॥ ष्ठीवनक्षवथूद्गारश्वासाहारादिकर्म्मच ॥

अर्थ—प्राणवायु के स्थान सिर, वक्षःस्थल, दोनोंकान, जिह्वा, आंख और नासिकाहैं। थूकना, छींकलेना, डकार, श्वास और आहारादि ग्रहण इसके कर्म हैं ॥

उदानवायुके स्थान और कर्म ॥

उदानस्यपुनःस्थानंनाभ्युरःकण्ठएवच। वाक्प्रवृत्तिःप्रयत्नोर्जावलवर्णादिकर्मच ॥

अर्थ—उदानवायुके स्थान नाभि, हृदय और कण्ठहैं। बोलना, शरीरसंचालन, ऊर्जा बल और वर्णादि इसके कर्म हैं ॥

समानवायुके स्थान और कर्म॥

स्वेददोषाम्बुवाहानिस्रोतांसिसमधिष्ठितः। अन्तरग्नेश्चपार्श्वस्थःसमानोऽग्निबलप्रदः ॥

अर्थ—समानवायुके स्थान स्वेदवाही, दोषवाही और अम्बुवाही स्रोतहैं। यह जठराग्नि के पसवाडे में स्थित रहकर अग्निके बलको बढाती है ॥

व्यान वायुके स्थान और कर्म ॥

देहंव्याप्नोतिसर्वंतुव्यानःशीघ्रगतिर्नृणाम्। गतिप्रसरणाक्षेपनिमेषादिक्रियासदा ॥

अर्थ—व्यान वायु मनुष्यके सम्पूर्ण देह में रहती है, इसकी गति बडी शीघ्र है। गति, प्रसारण, आक्षेपण और निमेषादि इसके कर्म हैं ॥

अपानवायुके स्थान और कर्म ॥

वृषणौवस्तिमेढ्रञ्चश्रोण्यूरूवंक्षणौगुदम् ॥ अपानस्थानमन्त्रस्थःशुक्रमूत्रशकृन्तिसः। सृजत्यार्तवगर्भौचयुक्ताःस्थानस्थिताश्चते। स्वकर्मकुर्वतेदेहंधार्यतेतेनरनामयः ॥

अर्थ—अपानवायु के स्थान अंडकोश, वस्ति, मेढ्र, श्रोणी, ऊरू, वंक्षण और गुदा हैं। इसका मुख्य स्थान आंत हैं। आंत में स्थित होकर वीर्य, मूत्र, विष्टा, रजःसम्बधी रुधिर और गर्भका परित्याग करतीहै ये पांचों प्रकारकी वायु अपने २ स्थानों में स्थित और नियुक्त रहकर अपना २ कर्म करती है और देह को स्वस्थावस्था में रखती है।

विमार्गस्थ पंचवायु के कर्म ॥

विमार्गस्थाह्ययुक्तावारोगःस्वस्थानकर्मजः। शरीरंपीडयन्त्येतेप्राणानाशुहरन्तिच ॥

अर्थ—जब ये वायु कुमार्गगामी होजाती हैं और यथावत् नियुक्त नहीं रहती है तब अपने २ स्थान और कर्मोंसे उत्पन्न होने वाले रोगों द्वारा शरीरको पीडित करती है और प्राणोंको भी शीघ्रही नष्ट कर देती है ॥

संख्यामप्यतिवृत्तानांतज्ज्ञानांहिमधानतः अशीतिर्नखभेदाद्यारोगाःसूत्रेनिदर्शिताः तानुच्यमानान्पर्यायैःसहेतूपक्रमाञ्शृणु ॥ केवलंवायुमुद्दिश्यस्थानभेदात्तथावृतम्।

अर्थ—सूत्रस्थान में असंख्य वायुरोगों में मुख्यकरके अस्सी प्रकार के नखादिरोग

वर्णन कियेगये है ॥ अब हम पर्य्यायक्रम से उनके हेतु और चिकित्साका वर्णन कर तेहैं उसे सुनो ॥ स्थान भेदसे केवल बायु का तथा आवृत वायुको उद्देश्य करके उन को वर्णन कियाजाता है ॥

सर्वाङ्गादिव्याधियों का हेतु ।

रूक्षशीताल्पलघ्वन्नव्यवायातिप्रजागरैः॥ विषमादुपचाराच्चदोषासृक्स्रवणादति लंघनप्लवनात्यध्वव्यायामातिविचेष्टितैः॥ धातूनांसंक्षयाच्चिन्ताशोकरोगातिकर्षणात् । दुःखशय्यासनात्क्रोधादिवास्वप्नाद्भयादपि ॥ वेगसन्धारणादामाभीघातादभोजनात् । मर्माबाधाद्गजोष्ट्राश्वशीघ्रयानावतंसनात् ॥ मेहेस्रोतांसिरिक्तानिपूरयित्वाऽनिलोबली । करोतिविविधान्व्याधीन्सर्वाङ्गैकांगसंश्रितान् ॥

अर्थ—रूक्ष, शीतल, अल्प और लघु अन्नके सेवन से, स्त्रीसंगम से, अत्यन्त जगनेसे, विषम उपचारोंसे, दोष और रक्तके अत्यन्त स्रावसे, कूपादि गर्तोंके लंघन से, छलांग मारनेसे, मार्ग चलने से, शारीरिक परिश्रम के करने से, अत्यन्त चेष्टा करने से धातुओंके क्षीण होने से, चिन्ता, शोक और रोग द्वारा अत्यन्त कर्षण से, दुःख देने वाली शय्या वा आसन पर बैठनेसे, क्रोधसे, दिन में सोने से, भयसे, मलमूत्रादि वेगों के रोकने से आम से, चोट खाने से, भोजन न करने से, मर्ममें आघात होनेसे, हाथी, ऊंट और घोडे पर चढकर शीघ्र गमन करने से वा हाथी घोडा आदि के ऊपर से गिर पडने से देह के स्रोत खाली होजाते हैं और इस अवकाश को पाकर वायु प्रबल होकर उनमें भरजाती है और सर्वांग संश्रित वा एकांत संश्रित अनेक प्रकार की व्याधियों को उत्पन्न करदेती है ॥

वायु के रूपादि ।

अव्यक्तंलक्षणंतेषांपूर्वरूपमितिस्मृतम् ॥ आत्मरूपंतुतद्व्यक्तमपायोलघुतापुनः ।

अर्थ—वायुका अप्रकट लक्षण उसका पूर्वरूप है व्यक्त लक्षण उसकारूप है और वायुका लघु होजाना उसका नाशहै (क्योंकि वायु सर्वथा नष्ट नहीं हो सकती है, प्रकुपित का लघु होजानाही अपाय है)

व्यक्त वायु के लक्षण ।

सङ्कोचःपर्वणांस्तम्भोभंगोऽस्थ्नांपर्वणामपि ॥ लोमहर्षःप्रलापश्चपाणिपृष्ठशिरोग्रहः। खाञ्ज्यपांगुल्यकुब्जत्वंशोषोऽङ्गानामनिद्रता ॥ गर्भशुक्ररजोनाशःस्पन्दनंगात्रसुप्तता । शिरोनासाक्षिजत्रूणांग्रीवायाश्चावहुंडनम्॥ भेदस्तोदार्तिराक्षेपमोहश्चायासएवच। एवंविधानिरूपाणिकरोतिकुपितोऽनिलः ॥ हेतुस्थानविशेषाच्च भवेद्रोगविशेषकृत् ।

अर्थ—जोडों का सुकडना और जकड जाना, हड्डी और पोरुओं में भंग होना, रोमोद्गम, प्रलाप, पाणिग्रह, पृष्ठग्रह, और शिरोग्रह, खंजता, पांगलापन, कूबडापन, अंगशोष, निद्रानाश, गर्भनाश, वीर्यनाश, आर्त्तवनाश, अंगों का फडकना, देह का शून्य पडजना, सिर नासिका आंख और ग्रीवा

का विकृत होजाना, भेद, तोद, यातना आक्षेपण, मोह और आयास तथा ऐसेही अन्यरूप वायु के कुपित होने से होते हैं । तथा हेतु भेद और स्थान भेद से इन रोगों में विशेषता होती है ॥

कोष्ठाश्रित वायु के कर्म ।

तत्रकोष्ठाश्रितेदुष्टेनिग्रहेमूत्रवर्चसोः ॥ ब्रध्महृद्रोगगुल्मार्शःपार्श्वशूलंचमारुते ।

अर्थ—कोष्ठाश्रित वायुके कुपित होने पर मलमूत्रका निग्रह, ब्रध्न, हृद्रोग, गुल्म, अर्श और पार्श्वशूल होताहै ॥

सर्वाङ्गगत वायु के कर्म ॥

सर्वाङ्गकुपितेवातेगात्रस्फुरणभञ्जनम् ॥ वेदनाभिःपरीतस्यस्फुटन्तीवास्यसन्धयः।

अर्थ—वायुके सर्वांग में कुपित होनेपर शरीर में वेदना और स्फुरण होता है वेदना के कारण देह केजोड फटतेसे माळूम होने लगते हैं ॥

गुदस्थ वायु के कर्म ॥

विण्मूत्रवातग्रहणंशूलाध्मानाश्मशर्कराः। जंघोरुत्रिकपात्पृष्ठरोगशोषागुदास्थिते ।

अर्थ—वायुके गुदामें स्थित होने पर मलमूत्र और अधोवायु रुकजाते हैं, शूल, अफरा, पथरी और शर्करा ये उपद्रव उत्पन्न हो आतेहैं जंघा, ऊरू, त्रिक, पांवऔर पीठमें वेदना और शोषये भी उत्पन्न होतेहैं

आमाशयस्थवायुकेकर्म ।

हृन्नाभिपार्श्वोदररुक्तृष्णोद्गारविसूचिकाः ॥ कासःकण्ठास्यशोषश्चश्वासश्चा माशयस्थिते ।

अर्थ—वायुके आमाशयमें स्थित होने पर हृदय, नाभि, पसली और उदरमें वेदना होतीहै, तृषा, डकार विसूचिका, खांसी, कंठशोष, मुखशोष और श्वास ये उपद्रव भी होतेहैं ।

पक्काशयस्थवायु के कर्म ।

पक्काशयस्थोऽन्त्रकूजंशूलाटोपौकरोतिच। कृच्छ्रमूत्रपुरीपत्वमानाहंत्रिकवेदनम् ॥ श्रोत्रादिष्विन्द्रियवधंकुर्य्याद्दुष्टसमीरणः।

अर्थ—वायु के पक्वाशय में स्थित होने पर आंतोंका कूजना, शूल, आटोप, मलमूत्र का कठिनता से होना, आनाह, त्रिकस्थान में वेदना श्रोत्रादि इन्द्रियोंकी शक्ति का नष्ट होना ये लक्षण होते हैं ।

त्वग्रूक्षास्फुटितासुप्ताकृशाकृष्णाचतुद्यते । आतन्यतेसदाहश्चपर्वरुक्त्वक्स्थितेऽनिले

अर्थ—वायु के त्वचामें स्थित होने पर त्वचा में रूखापन, फटना, सुप्ति, कृशता, कालापन तथा सूचीवेध के समान पीडा ये लक्षण होतेहैं । त्वचा फैलीसी होजातीहै उस में दाह होताहै और पोरुओं में वेदनाभीहोतीहै

रक्तगतवायु के कर्म ।

रुजस्तीव्राःससन्तापावैवर्ण्यंकृशताऽरुचिः गात्रेचारूंषिभुक्तस्यस्तम्भश्चासृग्गतेऽनिले

अर्थ—वायु के रुधिर में कुपित होने से तीव्रवेदना, संताप, विवर्णता, कृशता, अरुचि, देहमें फुन्सियां और भोजन करने के पीछे शरीर में स्तब्धता ये लक्षण होते हैं ॥

मांसमेदोगतवायुकेकर्म ।

गुर्वङ्गंतुद्यतेस्तब्धंदण्डमुष्टिहतंयथा ॥ सरुक्श्रमितमत्यर्थंमांसमेदोगतेऽनिले ।

अर्थ—मांस और मेद में वायु के कुपित होने से शरीर में भारापन, तोद, स्तब्धता, लाठी वा मुक्कोंकी चोट के समान वेदना तथा अत्यन्त वेदना और श्रम मालूम होता है॥

मज्जास्थिगतवायुके कर्म ॥

भेदोऽस्थिपर्वणांसन्धिशूलंमांसबलक्षयः। अस्वप्नःसन्ततारुक्‌चमज्जास्थिकुपितेनिले

अर्थ—मज्जा और अस्थि में वायुके कुपित होने पर अस्थि और संधियों में भेद संधिशूल, मांस और बलकी क्षीणता, निद्रा नाश और निरन्तर वेदना ये लक्षण होते हैं

शुक्रस्थवायु के लक्षण ॥

क्षिप्रंमुञ्चतिबध्नातिशुक्रंगर्भमथापिवा ॥ विकृतिंजनयेच्चापिशुक्रस्थःकुपितोऽनिलः

अर्थ—शुक्रस्थ कुपितवायु वीर्य वा गर्भ का शीघ्रही मोक्षण कर देती है वा उन्हें बद्ध कर देती है अथवा वीर्य और गर्भ दोनों में विकृति उत्पन्न करती है ॥

स्नायुगत वायुके कर्म ॥

बाह्याभ्यन्तरमायामंखल्लिंकुब्जत्वमेवच॥ सर्वाङ्गैकांगरोगांश्चकुर्य्यात्स्नायुगतोऽनिलः

अर्थ—स्नायुगतवायु बाह्यायाम, अभ्यन्तरायाम, खल्ली और कुबडापन उत्पन्न करती है और इसी से सर्वांगवात वा पक्षाघात उत्पन्न होते हैं ।

शिरागतवायुके कर्म ॥

शरीरंमन्दरुक्‌शोफंशुष्यतिस्पन्दतेऽपिवा॥ सुप्तास्तन्व्योमहत्योवाशिरावातेशिरागते

अर्थ—शिरागत वायु के कुपित होने पर शरीर में मन्द वेदना सूजन शोष, स्पन्दन होता है तथा सम्पूर्ण शिराओं में सुप्तता, पतलापन वा दीर्घता होती है ॥

संधिगत वायु के कर्म ॥

वातपूर्णदृतिस्पर्शःशोफःसन्धिगतेऽनिले॥ प्रसारणाकुञ्चनयोरप्रवृत्तिःसवेदना ।

अर्थ—सन्धिगत वायु के कुपित होनेपर हवा से भरी हुई मशकके समान स्पर्शवाली सूजन होती है, सन्धियों का पसारना वा सकोडना वन्द होजाता है और वेदना भी होने लगती है ।

अर्द्धांगगत वायु के कर्म ।

अतिवृद्धःशरीरार्धमेकंवायुःप्रपद्यते॥यदा तदोपशोष्यासृग्बाहुपादंचजानुच । तस्मिन्सङ्कोचयत्यर्द्धंमुखंजिह्मंकरोतिच ॥ वक्रीकरोतिनासाग्रंललाटाक्षिहनुन्तथा। ततोवक्त्रंव्रजत्यस्यभोजनंवक्रदर्शिनः ॥ स्तब्धंनेत्रंकथयतःक्षवथुश्चनिगृह्यते। दीनाजिह्मासमुत्क्षिप्ताजिह्वासज्जतिचास्य वाक् ॥ दन्ताश्चलन्तिबाध्येतेश्रवणौभिद्यतेस्वरः । पार्श्वहस्ताक्षिजंघोरुशंखश्रवणगण्डरुक् ॥ अर्धेतस्मिन्मुखार्धेवाकेवलेस्यात्तदर्दितम् ।

अर्थ—जब वायु अत्यन्त कुपित होकर शरीर के दक्षिण वा वाम अर्द्धभाग का आश्रय करती है तब उसी ओरके रुधिर, बाहु, पांव और जानु को शुष्क कर देती है और फिर वही भाग संकुचित होजाता है तथा उसी ओर का आधामुख टेढा पडजाताहै । तथा नासिका का अग्रभाग, ललाट, आंख और ठोडी भी टेढी पडजाती

है। और इस रोगी के मुख में भोजन भी टेढा कर के प्रवेश करता है। वात कहने के समय नेत्र पथरा जाते हैं। छींक रुक जाती है, जिह्वा दीन, टेढी होकर बाहर निकल आती है, वाणी रुकजातीहै, दांत चलित होजातेहैं, कान बहरे होजाते हैं, स्वर क्षीण पडजाताहै, पसली, हाथ, आंख जंघा, ऊरू, कनपटी, कान और गंडस्थल में वेदना होती है। यह रोग आधे अंग में होता है वा केवल आधे मुखहीमें होता है। इसे अर्दितरोग कहते हैं।

मन्याश्रित वायु के लक्षण।

मन्येसंश्रित्यवातोऽन्तर्यदानाडीःप्रपद्यते॥
मन्यास्तम्भंतदाकुर्यादन्तरायामसंज्ञितम्॥

अर्थ—जब वायु मन्या अर्थात् गले के भीतरकी नसों पर आक्रमण करती है तब अन्तरायाम नामक मन्यास्तंभ उत्पन्नहोताहै

अन्तरायामके लक्षण।

अन्तरायस्यतेग्रीवामन्याचस्तभ्यतेभृशम्॥
दन्तानांदशनंलालापृष्ठाक्षेपःशिरोग्रहः॥
जृम्भावदनसंगाश्चाप्यन्तरायामलक्षणम्॥

अर्थ—जब ग्रीवाके भीतर अन्तरायाम होता है तब मन्या अत्यन्त स्तब्ध होजाती है। दंतदेशन, लालास्राव, पृष्ठाक्षेप और शिरोग्रह होता हैं तथा जंभाई और मुख में स्तब्धता भी होती है ये अन्तरायाम के लक्षण हैं॥

पृष्ठमन्याश्रित वायु के लक्षण।

पृष्ठमन्याश्रितावाह्याःशोषयित्वाशिरावलीः
श्रितःकुर्याद्धनुस्तम्भंबहिरायामसंज्ञकम्।

अर्थ....वायु पीठ और मन्याका आश्रय लेकर बाहरकी नसों को सुखाकर धनुस्तम्भ नामक बहिरायाम रोगको उत्पन्न करती है॥

बहिरायाम के लक्षण।

चापवन्नाम्यमानस्यपृष्ठतोह्रीयतेशिरः।
उरउत्क्षिप्यतेमन्यास्तब्धाग्रीवाचमृद्यते॥
दन्तानांदशनंजृम्भालालाश्रावश्चवाग्ग्रहः
जातवेगोनिहन्त्येपवैकल्यंवामयच्छति॥

अर्थ—इस रोगमें शरीर पीठकी ओर से धनुषकी तरह झुक जाता है। सिरटेढा पड़जाता है। वक्षःस्थल ऊंचा होजाताहै, मन्यास्तब्ध होजाती है, ग्रीवा मृदित होती है, दांत एक दूसरे से लगजाते हैं, जंभाई लालास्राव; वाग्ग्रह होता है। यह रोग अत्यन्त उग्र होने पर मारडालता है वा अत्यन्त विकलता उत्पन्न करता है।

हनुग्रहके लक्षण।

हन्वायासोत्थितोवायुर्बन्धात्स्रंसयतेहनूम्॥ विवृतास्यत्वमथवाकुर्यात्स्तब्धमवेपनम्॥ हनुग्रहश्चसंस्तभ्यहनूसंवृतवक्त्रताम्। हनुमूलेस्थितोवायुःकरोतिबहुकष्टदम्॥

अर्थ—ठोडी के आयाससे उठीहुई वायु कुपित होकर हनुबन्धों को ढीलाकर देती है, इससे मुह खुला रहजाताहै वा कम्पन रहित स्तब्ध होजाता है। हनुके मूलमें स्थितवायु हनुको स्तम्भित करके अत्यन्त कष्ट कारक हनुग्रह वा संवृतवक्त्रता (जिसमें मुखबन्द रहजाता है) उत्पन्न करती है।

आक्षेपक के लक्षण ।

मुहुराक्षिपतिक्रुद्धोगात्राण्याक्षेपकोऽनिलः॥ पाणिपादश्चसंशोष्यशिराःसस्नायुकण्डराः ॥

अर्थ—जिसमें रोगी क्रुद्ध होकर अंगोंको बारम्बार फेंकता है और हाथ, पांव, शिरा, स्नायु और कण्डरा शुष्कहो जाती हैं उसे आक्षेपक वायु कहते हैं ॥

दण्डापतानक के लक्षण ॥

पाणिपादाशिरःपृष्ठश्रोणीःस्तभ्नातिमारुतः ॥ दण्डवत्स्तब्धगात्रस्यदण्डकःसोऽनुपक्रमः ।

अर्थ—जिस रोग में लकडी के समान हाथ, पांव सिर, पीठ और श्रोणी अकड जाती हैं उसे दण्डक कहते हैं । यह रोग दुश्चिकित्स्य होता है ॥

अर्दितरोग के लक्षण ॥

स्वस्थःस्यादर्दितादीनांमुहुर्वेगगतेगते॥ पीड्यतेपीडनैस्तैस्तैर्भिषगेतान्विवर्जयेत् ।

अर्थ—अर्दितादि वातरोगों के वेगके शान्त होनेपर रोगी स्वस्थ होजाय और वेगके आने पर वेदना होने लगै ऐसा रोगी त्याज्य होता है ।

पक्षाघातके लक्षण ॥

हत्वैकंमारुतःपक्षंदक्षिणंवाममेवच । कुर्याच्चेष्टानिवृत्तिंहिरुजंवाग्भङ्गमेवच ॥ गृहीत्वाथाशरीरार्द्धंशिराःस्नायुंविशोष्यच । पादंसङ्कोचयत्येकंहस्तंवातोदशूलकृत् ॥ एकाङ्गरोगंतंविद्यात्सर्वाङ्गंसर्वदेहजम् ।

अर्थ—वायु कुपित होकर दाहिने वा वांये किसी अंग को मारकर क्रियाहीन कर देती है इससे देह में वडी वेदना होती है और वाणी रुकजाती है । अथवा शरीर के अर्द्ध भागपर आक्रमण करके शिरा और स्नायुको सुखा देती है यदि ऊपरके भाग पर आक्रमण करतीहै तौ हाथको संकुचित करती है और यदि नीचेके भागपर आक्रमण करती है तौ एक पांवको मार देती है । इसमें सूचीवेध के समान अत्यन्त वेदना और शूल होता है । इसे एकांगरोग वा पक्षाघात कहते हैं और संपूर्ण देह में व्याप्त रोग को सर्वांगघात कहते हैं ॥

गृध्रसीके लक्षण ॥

स्फिक्पूर्वाकटिपृष्ठोरुजानुजंघापदंक्रमात् गृध्रसीःस्तम्भरुक्तोदैर्गृह्णातिस्तम्भतेमुहुः वाताद्वातकफात्तन्द्रागौरवारोचकान्वितः

अर्थ--गृध्रसी रोगमें वायु प्रथम नितम्ब स्थान पर आक्रमण करके क्रम से कटि, पीठ ऊरु जानु, जंघा और पांव पर आक्रमण करती है इन स्थानों में स्तम्भता, वेदना और तोद होता है । यह रोग केवल वात से वा वातकफसे उत्पन्न होताहै । इस में तन्द्रागौरव और अरुचि होती है ॥

खल्लीकालक्षण ।

खल्लीतुपादजंघोरुकरमूलावमोटनी ।

अर्थ—जिसरोग से पांव, जंघा, ऊरु, और करमूल में अवमोटन होता है उसे खल्लीरोग कहते हैं ॥

स्थानानामनुरूपैश्चलिङ्गैःशेषान्विनिर्दि

शेत् ॥ सर्वेष्वेतेषुसंसर्गपित्ताद्यैरुपलक्ष येत् । वायुर्धातुक्षयात्कोपोमार्गस्यावर णेनच ॥

अर्थ--शेष वात रोगोंके नाम उनके स्थान और लक्षणों के अनुसार जाने जाते हैं। इन सब वातरोगों में कफपित्त का संसर्ग होता है ॥

धातु के क्षीण होने से अथवा मार्गों के आवरणसे वायु कुपित होती है ॥

वातपित्तकफादेहेसर्वस्रोतोऽनुसारिणः। वायुरेवाहिसूक्ष्मत्वाद्द्वयोस्तत्राप्युदीरणः॥ कुपितस्तौसमुद्धूयतत्रतत्राक्षिपन्गदान्। करोत्यावृतमार्गत्वाद्रसादींश्चोपशोष- यन् ॥

अर्थ....वात, पित्त और कफ ये तीनों दोष देह के सम्पूर्ण स्रोतों में जाते हैं । परन्तु वायु अत्यन्त सूक्ष्मताके कारण दिखाई नहीं पडती है और वह कफ और पित्तको उदीर्ण करदेतीहै। कुपित हुई वायु कफपित्तको उत्तेजित करके स्रोत मार्गों में लेजाकर मार्गोंको रोक देतीहै और रसों को सुखादेती है ॥

पित्तावृत वायुमार्ग के लक्षण ॥

लिंगंपित्तावृतेदाहस्तृष्णाशूलंभ्रमस्तमः। कट्वम्ललवणोष्णैश्चविदाहःशीतका- मिता ॥

अर्थ—पित्तद्वारा वायुका अवरोध होने से दाह, शूल, भ्रम और ग्लानि होती है। तथा कटु, अम्ल, लवण और उष्ण पदार्थों के सेवन से विदाह होताहै और शीत वस्तुओं पर इच्छा होती है ॥

कफावृत वायुमार्ग के लक्षण ॥

शीतगौरवशूलानिकट्वाद्युपशयोऽधिकम्। लंघनायासरूक्षोष्णकामिताचकफावृते॥

अर्थ—कफवाही स्रोतों में वायु कफ से अवरुद्ध होकर शीत, भारापन, शूल कट्वादि द्रव्यों के सेवनसे अत्यन्त उपशय उत्पन्न करती है लंघन, परिश्रम तथा उष्ण द्रव्योंपर इच्छा भी उत्पन्न होती है ॥

रक्तावृत वायुके लक्षण ॥

रक्तावृतेसदाहार्तिस्त्वङ्मांसान्तरजोभृशम् भवेत्सरागःश्वयथुःजायन्तेमण्डलानिच॥

अर्थ—रक्तवाही स्रोतों में रक्तद्वारा वायु के रुकनेपर दाह, यातना, त्वचा और मांस के बीच में अत्यन्त दारुण रक्तवर्ण युक्त सूजन और चकत्ते उत्पन्न होते हैं ॥

मांसावृतवायुके लक्षण ।

कठिनाश्चविवर्णाश्चपिडकाःश्वयथुस्तथा। हर्षःपिपीलिकानांचसञ्चारइवमांसगे ॥

अर्थ—मांसवाही स्रोतोंमें मांसद्वारा वायु के रुद्ध होनेपर कठोर विवर्ण फुन्सियां और सूजन उत्पन्न होतीहै तथा चींटी चलने के समान देहमें सुरसुराहट होती है ॥

मेदसावृत वायुके लक्षण ।

चलःस्निग्धोमृदुःशीतःशोफोऽङ्गेष्वरुचि- स्तथा। आढ्यवातइतिज्ञेयःसकृच्छ्रोमे- दसावृतः ॥

अर्थ—मेदोवाही स्रोतोंमें मेदके द्वारा वायुके रुद्धहोने पर चचलता, स्निग्धता, मृदुता, शीतलता, अंगोंमें सूजन और अरुचि होती है । इसे आढ्यवात कहते हैं यह

गतवायु, अस्थिगतवायु, ये सब रोग अपने होने के स्थानकी गंभीरता से बहुत मयत्न करनेपर साध्य भी होजाते हैं और नहीं भी होते हैं । जो ये रोग बलवान् मनुष्य के नवीन उत्पन्न हुएहों और उपद्रव रहित भी हों तो उनकी चिकित्सा करना उचितहै अब हम वातरोगों के नाश करने वाली अत्यन्त अनुभव की हुई चिकित्सा लिखते हैं । उसे सुनो ॥

वातरोगमें चिकित्साक्रम ॥

केवलंनिरुपस्तम्भमादौस्नेहैरुपाचरेत् ॥ वायुंसर्पिर्वसातैलमज्जपानैर्नरंततः । स्नेहक्लान्तंसमाश्वास्यपयोभिःस्नेहयेत्पुनः॥ यूषैर्ग्राम्याम्बुजानूपैः रसैर्वास्नेहसंयुतैः । पायसैःकृशरैरम्ललवणै सानुवासनैः ॥ नावनैस्तर्पणैश्चान्नैःसुस्निग्धंस्वेदयेत्ततः॥ स्वभ्यक्तंस्नेहसंयुक्तैर्नाडीप्रस्तरसंकरैः ॥ तथान्यैर्विविधैःस्वेदैर्यथायोगमुपाचरेत्।

अर्थ—निरुपस्तंभ अर्थात् पित्तादि द्वारा अनावृत बातरोग में प्रथम स्नेहन देवै फिर उसे घृत, वसा, तेल और मज्जाका पान करावै । स्नेहके अत्यन्त सेवन से रोगी के क्लान्त होने पर उसे आश्वासन देकर दुग्ध द्वारा स्नेहन देवै । अथवा स्नेहयुक्त ग्राम्य, जलज और आनूप पशुओं के मांस रस वा स्नेहयुक्त यूष वा पायस, वा अम्ल-लवण युक्त कृशरा द्वारा अनुवासन और नस्य देवै तथा अन्नद्वारा तर्पित करै । इस तरह अच्छी रीति से स्निग्ध होने पर शरीर पर स्नेहमर्दन करके स्नेहयुक्त नाडी स्वेद, प्रस्तरस्वेद, वा संकर स्वेद देवै अथवा जैसा योग हो उसी के अनुसार अन्य स्वेदों द्वारा स्वेदित करै ॥

स्नेहार्द्रंःस्विन्नमङ्गन्तुवक्रंस्तब्धमथापिवा यथेष्टमानामयितुंशक्यतेशुष्कदारुवत् ॥ हर्षतोदरुगायासशोपस्तम्भग्रहादयः ॥ स्विन्नस्याशुप्रशाम्यन्तिमार्दवंचोपजायते स्नेहश्चधातून्संशुष्कान्पुष्णात्याशुप्रयोजितः॥बलमग्निबलंपुष्टिंप्राणंचाप्यभिवर्धते असकृत्तंपुनःस्नेहैःस्वेदैश्चाप्युपपादयेत्॥ तथास्नेहमृदौदेहेनतिष्ठन्त्यनिलामयाः॥ यद्यनेनसदोषत्वात्कर्मणानप्रशाम्यति॥ मृदुभिःस्नेहसंयुक्तैरौषधैस्तंविशोधयेत्॥ घृतंतिल्वकसिद्धंवासातलासिद्धमेववा ॥ पायसैरण्डतैलंवापिबेदोषहरंशिवम् ॥

अर्थ—जैसे सूखी लकडी पर तेल चुपड कर सेकने से इच्छानुकूल उसे नवा सकते हैं, इसी तरह स्नेहार्द्र मनुष्य को स्वेदन करनेके पश्चात् वह चाहै जैसा वक्र वा स्तब्ध क्यों न हो सीधा कर लिया जा सकता है । स्नेहन करने से वातरोगी के हर्ष, तोद, वेदना, आयास, शोष, स्तंभ और ग्रहादिरोग शीघ्र शान्त होजातेहैं और देह भी मृदु पडजाती है । स्नेह का प्रयोग करने से सूखी हुई धातु शीघ्रही पुष्टहो जाती है बल, अग्निबल, पुष्टि तथा प्राण भी बढते हैं । इन्हीं हेतुओं से स्नेह और स्वेद का प्रयोग बार बार करना चाहिये क्योंकि स्नेह से मृदु हुई देह में वातरोग नहीं ठहर सकते हैं । दोषों की अधिकता

के कारण यदि इस कर्म से वातरोग शान्त न हों तो स्नेह संयुक्त मृदु औषधियों द्वारा विरेचन देवै । लोध वा सातला में सिद्ध किया हुआ घी देकर विरेचन करावे अथवा दूध में अंडी का तेल मिलाकर विरेचन देवै यह दोष नाशक और उत्तम होता है।

स्निग्धाम्ललवणोष्णाद्यैराहारैर्हिमलश्चितः । स्रोतोबद्ध्वानिलंरुन्ध्यात्तस्मात्तमनुलोमयेत् ॥ दुर्बलोयोविरेच्यःस्यात्तंनिरूहैरुपाचरेत् । पाचनैर्दीपनीयैर्वाभोज्यैर्वातयुतंनरम् । शुद्धस्यचोत्थितेचाग्नौ स्नेहस्वेदौपुनर्हितौ ॥ स्वाद्वम्ललवणास्निग्धैराहारैःसततंपुनः । नावनैर्धूमपानैश्च सर्वानेवोपपादयेत् ॥

अर्थ—स्निग्ध, अम्ल, लवण और उष्णादि पदार्थों के अत्यन्त सेवन से दोष बढकर स्रोतों में बद्ध वात को रोकदेते हैं इस लिये वायु का अनुलोमन करावै ।जो विरेचन देने पर दुर्बल होजाय उसे निरुहण वस्तिदेवै। अथवा पाचनकर्त्ता वा दीपनकर्त्ता औषध देवै । संशोधन देनेके पश्चात् यदि अग्नि उठखडी होवै तो फिर स्नेहन स्वेदन देवै । सम्पूर्ण प्रकार के वातरोगो में स्वादु अम्ल, लवण और स्निग्ध आहार निरन्तर देवै तथा नस्यकर्म और धूमपान का भी प्रयोग करै ॥

विशेषतस्तुकोष्ठस्थेवातेक्षारंपिबेन्नरः ॥ पाचनैर्दीपनीयैस्तैरन्नैर्वापाचयेन्मलान्॥ गुदपक्वाशयस्थेतुकर्मोदावर्तनुद्धितम्॥आमाशयस्थेशुद्धस्ययथादोषहराःक्रियाः॥ सर्वाङ्गकुपितेऽभ्यङ्गोवस्तयःसानुवासनाः। स्वेदाभ्यंगानिवातानिहृद्यंचान्नंत्वगाश्रिते॥शीतालेपस्तुरक्तस्थेविरेकोरक्तमोक्षणम्।विरेकोमांसमेदःस्थेनिरूहाःवमनानिच वाह्याभ्यन्तरतःस्नेहैरस्थिमज्जगतंजयेत् हर्षोऽन्नपानेशुक्रस्थेवलशुक्रकरंहितम् ॥ विबद्धमार्गंदृष्ट्वावाशुक्रंदद्याद्विरेचनम् ॥ विरिक्तप्रतिभुक्तस्यपूर्वोक्तांकारयेत्क्रियाम् गर्भेशुष्केतुवातेनबालानांचापिशुष्यताम्॥ सिताकाश्मर्यमधुकैर्हितमुत्थापनंपयः ॥

अर्थ—अब विशेष चिकित्सा का वर्णन करते हैं । कोष्ठस्थ वात में विशेष कर के क्षार का पान हित है तथा पाचक और अग्निसंदीपन अन्न का प्रयोग कर के मल को पचावै । गुदस्थ वा पक्वाशयस्थ वात में उदावर्त्तनाशिनी क्रिया हितहै । आमाशयस्थ वात में संशोधन देने के पश्चात् यथा दोष चिकित्सा करना उचित है । सर्वांग कुपित वायु में अभ्यंग और अनुवासन वस्तियों का प्रयोग करै त्वगाश्रित वायु में स्वेद, अभ्यंग, निवातस्थान सेवन और हृदय प्रिय अन्न हित है ॥ रक्तस्थवात में शीतल प्रलेप, विरेचन और रक्तमोक्षण करना उचित है । मांसस्थ और मेदःस्थवात में विरेचन, निरूहणवस्ति और वमन का प्रयोग करै । अस्थिगत और मज्जागत वायुमें बाह्य और आभ्यन्तर स्नेह का प्रयोग करै । शुक्रस्थ वातमें हर्ष तथा बल और वीर्य बढानेवाला अन्न हित है । यदि शुक्र का मार्ग रुकगया होतो प्रथम विरेचन देवै और विरेचन के

क्षीराम्बुनाततःसिक्तंपुनश्चैवोपनाहितम् ॥ मुञ्चेद्रात्रौदिवाबद्धंचर्म्मभिश्चसुलोमभिः ।

अर्थ—उत्कारिका, वेशवार, दूध, उरद, चांवल, अंडीके वीज, गेहूं, जौ, वेर, शालिपर्ण्यादि पंचमूल इन सब को पीसकर स्नेह मिलाकर शरीर पर गाढा गाढा लेप करै । रात्रिके समय इस लेप पर अंडीके पत्ते बांध देवै और दूसरे दिन प्रातःकाल खोल डालै और दूध तथा जल से उसे धोकर फिर लेप करै इस दिन के लेप पर रोमयुक्त चमडा बांध देवै । इस लेपको सायंकाल के समय दूर कर देवै ॥

फालनान्तैलयोनीनामम्लपिष्टानशीतलान् ॥ प्रदेहानुपनाहांश्चगन्धैर्वातहरैरपि। पायसैःकृशरैश्चैवकारयेत्स्नेहसंयुतैः रूक्षशुद्धानिलार्त्तानामतःस्नेहान्प्रवक्ष्यते। विविधान्विविधव्याधिप्रशमायामृतोपमान् ॥

अर्थ—सरसों से आदि लेकर द्रव्यों को जिनसे तेल निकलता है पीसकर गरम करके लेप और उपनाह बनावै। तथा वात नाशक गंधद्रव्य, पायस और कृशरा इन को घृत के साथ सिद्ध करके लेप और उपनाहन करै ।

अब हम रूक्ष और शुद्ध वातरोगियों के निमित्त अनेक प्रकारकी व्याधियों को शान्त करने वाले अनेक प्रकार के अमृत के समान गुणकारक स्नेहों का वर्णन करतेहैं।

द्रोणेऽम्भसःपचेद्भागान्दशमूलांश्चतुष्पलान् । यवकोलकुलत्थानांभागःप्रस्थोन्मितैःसह ॥ पादशेषेरसेपिष्टैर्जीवनीयैःसशर्करैः । तथाखर्जूरकाश्मर्यद्राक्षाबदरफल्गुभिः ॥ सक्षीरःसर्पिषःप्रस्थःसिद्धः केवलवातनुत्। निरत्ययःप्रयोक्तव्यःपानाभ्यञ्जनवस्तिषु॥

अर्थ—दशमूलके प्रत्येक द्रव्य चारचार पल, जौ एक प्रस्थ, कुलथी एक प्रस्थ, वेर एक प्रस्थ इन सबको एकद्रोण जलमें पकावै चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानलेवै फिर जीवनीय गणके दश द्रव्य, शर्करा, खर्जूर, खंभारी, दाख, वेर और गूलर सब मिलाकर एकसेर, दूध एक प्रस्थ, घी एक प्रस्थ इन सबकोउस क्वाथ में डालकर पकावै। यह घृत पान, अभ्यंग और वस्तिद्वारा प्रयोग किया जाता है और वातरोगको जड से दूर कर देताहै ।

चित्रकादि घृत ।

चित्रकंनागरंरास्नांपौष्करंपिप्पलींशटीम् पिष्ट्वाविपाचयेत्सर्पिर्वातरोगहरंपरम् ॥

अर्थ—चीता, सोंठ, रास्ना, पुहकरमूल पीपल, कचूर इन सबको पीसकर घृत पकावै यह घृत वातरोगको नाश करनेवालाहै

बलाबिल्वशृतेक्षीरेघृतमण्डंविपाचयेत् । तस्यशुक्तिःप्रकुञ्चोवानस्यंमूर्ध्वगतेऽनिले

अर्थ—खरैटी और वेलछाल डाल कर अठगुने दूध और चौगुने जलमें पकावै जब दूध शेष रहजाय तब उतार कर छानले और उस दूधमें घृतमंड पकावै । इस घृत मेंसे चार या आठ तोलेको नस्यद्वारा प्रयोग करने पर शिरोगत वात दूर होजाताहै ॥

ग्राम्यानूपौदकानान्तुभित्वास्थीनिपचेज्ज लेतंस्नेहंदशमूलस्यकषायेणपुनःपचेत् ॥ जीवकर्षभकास्फोताविदारीकापिकच्छुना वातघ्नैर्दीपनीयैश्चकल्कैर्द्विक्षीरभागिकम् तत्सिद्धंनावनाभ्यङ्गात्तथापानानुवासनात् शिरापर्वास्थिकोष्ठस्थंप्रणुदत्याशुमारुतम् येस्युःप्रक्षीणमज्जानःक्षीणशुक्रौजसश्चये बलपुष्टिकरंतेषामेतत्स्यादमृतोपमम् ॥

अर्थ—ग्राम्य, आनूप और औदक जीवों की हड्डियां कूटकर जल में पकावै - पकने पर इसे उतार ले और धरा रहने देवै इस जलके ऊपर चिकनी २ मलाई सी जमजातीहै उसे उतार कर उसमें दुगुना दूध चौगुना दसमूल का काथ तथा चौथाई वातनाशक और जीवनीय द्रव्य यथा जीवक ऋषभक, आस्फोता, विदारी और कैंच इनका कल्क। इन सबको मिला कर पकावै। इस घृतका नस्य, अभ्यंग, पान और अनुवासन द्वारा प्रयोग करै। जिन मनुष्यों की मज्जा, शुक्र और ओज क्षीण होगये हैं उनकी पुष्टाई तथा बल बढानेके निमित्त यह घृत अमृतके समान गुण कारक है ॥

तद्वत्सिद्धावसानक्रमत्स्यकूर्मचुलूकजाः। मत्स्यगाविधिनानेननस्यपानेषुग्रस्यते ॥

अर्थ—ऊपर कही हुई रीतिसेही मगर, मछली, कछुआ और सूसकी चर्बी को पकाकर नस्य और पीनेमें प्रयोग करने से तद्वत् गुणकारक होता है।

प्रस्थःस्यात्त्रिफलायास्तुकुलत्थकुडवद्वयम् कृष्णागन्धात्वगाढक्योःपृथक्पञ्चपलंभवे त्। रास्नाचित्रकयोर्द्वेद्वेदशमूलंपलोन्मितम् जलद्रोणेपचेत्पादशेषेप्रस्थोन्मितंपृथक् ॥ सुरारनालदध्यम्लसौवीरकतुषोदकम् ॥ कोलदाडिमवृक्षाम्लरसांस्तैलवसाघृतम्। मज्जानञ्चपयश्चैवजीवनीयपलानिषट्॥ कल्कीकृत्यमहास्नेहंसम्यगेनंविपाचयेत्॥ शिरामज्जास्थिगेवातेसर्वाङ्गैकांगरोगिषु॥ वेपनाक्षेपशूलेषुतदभ्यङ्गेप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—त्रिफला एक प्रस्थ, कुलथी दो कुड़व, सहजनेकी छाल पांच पल, अड़हर की छाल पांच पल, रास्ना दोपल, चीतादो पल, दशमूलके प्रत्येक द्रव्य एक एक पल इन सबको जौ कुटकरके एक द्रोण जलमें पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले, उस काथमें सुरा, कांजी, दही, खटाई, सौवीरक, तुषोदक, बेरकारस, अनारकारस, वृक्षाम्लकारस, तेल, चर्बी, घी, मज्जा और दूध पृथक् पृथक् एक एक प्रस्थ जीवनीय गणका कल्क छः पल। इनसबको पकावै। यह महास्नेह शिरोगत, मज्जागत, अस्थिगत, सर्वांगगत, एकांगगत, कम्पन, आक्षेपण और शूल इन रोगों में अभ्यंग द्वारा प्रयोग किया जाता है।

निर्गुंडी तैल ॥

निर्गुण्ड्यामूलपत्राभ्यांगृहीत्वास्वरसंततः॥ तेनसिद्धंसमंतैलंनाडीकुष्ठानिलार्त्तिषु। हितंपामापचीनांचपानाभ्यञ्जनपूरणम्॥

अर्थ—निर्गुंडीकी जड और पत्तोंकारस निकालकर, उसके समान तेल मिलाकर पकावै। इस तेल का अभ्यंग और पान

अमृतादि तैल ॥

तुलाःपञ्चगुडूच्यास्तुद्रोणेष्वष्टास्वपांपचेत्। पादशेषेसमंक्षीरंतैलस्यद्वयाढकंपचेत्। एलामांसीनतोशीरशारिवाकुष्ठचन्दनैः। बलातामलकीमेदाशतपुष्पर्द्धिजीवकैः॥ काकोलीक्षीरकाकोलीश्रावण्यतिबलानखैः। महाश्रावणिजीवन्तीविदारीकपिकच्छुभिः॥ शतावरीमहामेदाकर्कटाख्याहरेणुभिः। वचागोक्षुरकैरण्डरास्नाकालासहाचरैः॥ वीराशल्लकिमुस्तत्वक्पत्रर्षभकवालकैः। महेलाकुंकुमस्पृक्कात्रिदशाह्वैश्चकार्षिकैः॥ मञ्जिष्ठायास्त्रिकर्षेणमधुकाष्टपलेनच। कल्कैस्तत्क्षीणवीर्याग्निबलसंमूढचेतसः॥ उन्मादारत्यपस्मारैरार्तश्चप्रकृतिंनयेत्। वातव्याधिहरंश्रेष्ठंतैलाग्र्यममृताह्वयम्॥

अर्थ—गिलोय पांच तुलाको आठद्रोण जलमें पकावै, चौथाई शेष रहने पर उतारकर छानले। तब उस शेष क्वाथ के समान दूध, दो आढक तेल और नीचे लिखहुए द्रव्योंका कल्क डालदेवै। यथा छोटी इलायची, जटामांसी, तगर, खस, शारिवा, कूट, चन्दन, खरैटी, भूआंवला, मेद, सोंफ, ऋद्धि, जीवक, काकोली, क्षीर काकोली, श्रावणी, अतिबला, नखी, महाश्रावणी, जीवन्ती, विदारीकन्द, केंच, सितावर, महामेदा, काकडासींगी, हरेणु, वच, गोखरू, अरण्ड, रास्ना, असगन्ध, सहचर, वीरा, शल्लकी, मोथा, दालचीनी, तेजपात ऋषभक, नेत्रवाला, बडी इलायची, कुंकुम स्पृका, देवदारु ये सब द्रव्य एक एक कर्ष लेवै। मजीठ तीनकर्ष, मुलहटी आठपल इन सबका कल्क डाल देवै। इस तैल के सेवन करने से वीर्य की क्षीणता, अग्निबल, मूढचित्तता, उन्माद, अरति, अपस्मार ये दूर होकर मनुष्य अपनी प्रकृति पर आजाता है यह तैल वात व्याधियोंको दूर करने में अत्यन्त श्रेष्ठ है ॥

रास्नातैल ॥

रास्नासहस्रनिर्यूहेतैलद्रोणंविपाचयेत्। गन्धैर्हैमवतैःपिष्टैरेलाद्यैश्चानिलार्तिनुत्॥

अर्थ....एक सहस्र पल रास्ना को अठगुने जल में पकाकर चौथाई शेष रहने पर उतारकर छानले इसमें पूर्वोक्त एलादि चूर्ण और एकद्रोण तेल डालकर पकावै। पकने पर उतारकर शफेद बचका चूरा बुरक दे। यह तैल वातरोग को दूर करने वाला है ॥

कल्पोऽयमश्वगन्धायांप्रसारण्यांबलाद्वये। क्वाथकल्कपयोभिर्वाबलादीनांपचेत्पृथक्।

अर्थ—असगन्ध, प्रसारिणी, दोनोंबला इनका तेल भी ऊपर कहीहुई रीति से तयार कियाजाया है। अथवा बलादि के पृथक् २ क्वाथ, कल्क, और दूध के साथ तेल पकाकर प्रयुक्तकरै ॥

मूलकादितैल ॥

मूलकस्वरसंक्षीरंतैलंदध्यम्लकाञ्जिकम्। तुल्यंविपाचयेत्कल्कैर्बलाचित्रकसैन्धवैः॥ पिप्पल्यतिविषारास्नाचविकागुरुशिग्रुकैः भल्लातकवचाकुष्ठश्वदंष्ट्राविश्वभेषजैः॥

पुष्कराह्वशठीविल्वशताह्वानतदारुभिः॥ तत्सिद्धंपीतमत्युग्रान्हन्तिवातात्मकान् गदान् ॥

अर्थ——मूलीकारस, दूध, तेल, दही, और कांजी इन सबको समान भाग तथा तेल से चौथाई खरैटी चीता, सेंधानमक, पीपल, अतीस, रास्ना, चव्य, अगर, संहजना, भिलाया, वच, कूठ, गोखरू, सोंठ पुहकरमूल, कचूर, बेलछाल, सोंफ, तगर और देवदारु इनका कल्क डालकर सबको एक साथ पकावै । इस तेल के पान करने से असन्त उग्र वातरोग भी दूर होजातेहैं॥

वृषमूलादि तैल ।

वृषमूलगुडूच्योश्चद्विशतस्यशतस्यच । अश्वगन्धाचित्रकयोःक्वाथेतैलाढकंपचेत् ॥ सक्षीरंवायुनाभग्नेदद्याज्जर्जरितेतथा ॥ प्राक्तंत्राचापिसिद्धञ्चस्यादेतद्द्विगुणोत्तरम् ॥

अर्थ——अडूसाकी जड सौपल, गिलोयसौपल, असगन्ध सौपल, चीता सौपल इन का क्वाथ करके चौथाई शेष रहनेपर उसे उतारकर उसमें एक आढक तेल पकावै,इसमें क्वाथके समानही दूधभी मिलालेवै यह तेल वायु से भग्न अथवा जर्जरित देह में प्रयोग किया जाता है । पूर्वोक्त वलादि कल्क डालकर सिद्ध किया हुआ यह तैल दुगुना गुणदायक होता है ॥

रास्नातैल ।

रास्नाशिरीषयष्ट्याह्वशुण्ठीसहचरामृताः श्योनाकदारुसम्पाकाह्यगन्धात्रिकण्टकाः ॥ एषांदशपलान्भागानकषायमुपकल्पयेत् । ततस्तेनकषायेणसर्वगन्धैश्चकार्षिकैः ॥ दध्यारनालमाषाम्बुमूलकेक्षुरसैःशुभैः । पृथक्प्रस्थोन्मितैःसार्द्धं तैलप्रस्थंविपाचयेत् ॥ प्लीहमूत्रग्रहश्वासकासमारुतरोगनुत् । एतन्मूलकतैलाग्र्यं वर्णायुर्बलवर्द्धनम् ॥

अर्थ——रास्ना, सिरस, मुलहटी, सोंठ, सहचर, गिलोय, श्योनाक, देवदारु, अमलतास, असगंध, गोखरू इन में से प्रत्येक दस दस पल लेकर क्वाथ करले। और इस क्वाथ में एक२कर्ष सर्व गंधका कल्क तथा दही, कांजी, उरदका क्वाथ, मूलीकाक्वाथ, ईखका रस प्रत्येक एक एक प्रस्थ तथा तेल एक प्रस्थ डालकर पकावै । इस तेल के सेवन करने से प्लीहा,मूत्रग्रह, श्वास, खांसी, वात रोग दूर होजाते हैं, यह मूलक तेल से भी उत्तम है, इस के सेवन से वर्ण बल और आयु बढती है ॥

यवकोलकुलत्थानांमत्स्यानांशिग्रुविल्वयोः ॥ रसेनमूलकानांचतैलंदधिपयोऽन्वितम् ॥ साधयित्वाभिषग्दद्यात्सर्ववातामयापहम् । लशुनस्वरसेसिद्धंतैलमेभिश्चवातनुत् ॥ तैलानेतान्यृतुस्नाताम् ऽनांपाययेतच ॥ पीत्वान्यतममेषांहि वन्ध्यापिजनयेत्सुतम् ॥

अर्थ——जौ, बेर, कुल्थी, मछली, सहजना बेल छाल और मूली, इनका, क्वाथ तथा दही दूध और तेल इन को एकत्र सिद्ध करके देवै तौ सम्पूर्ण प्रकार के वातरोग.

दूर होजाते हैं । अथवा ऊपर कहे हुए द्रव्यों के साथ ल्हसन के रसमें सिद्ध किया हुआ तेल भी वात नाशक है ।

इन ऊपर कहे हुए तेलों में से कोई सा तेल ऋतु का स्नान करने के पीछे स्त्रीको पान करावे तो वन्ध्या के भी सन्तान की उत्पत्ति होती है ।

यच्चशीतज्वरेतैलमगुर्वाद्यमुदाहृतम् । अनेकशतशस्तच्चसिद्धंस्याद्वातरोगनुत्॥ वक्ष्यन्तेयानितैलानिवातशोणितकेऽपिच। तानिचानिलशान्त्यर्थसिद्धिकाममयोजयेत् ॥

अर्थ—जो अगुर्वादि तैल से आदि लेकर शीत ज्वर में वर्णन किये गये हैं,वह अनेक बार सिद्ध किये जाने पर वातरोग को दूर करता है अथवा अनेक बार इस तैल का अनुभव किया गया है । इस से अतिरिक्त वातरक्त में जो तेल कहे जायगे वे भी आरोग्यता के निमित्त वातरोग के दूरकरने के लिये दिये जा सकते है ।

तैलकी उत्कृष्टता ।

नास्तितैलात्परंकिञ्चिदौषधंमारुतापहम् व्यवाय्युष्णगुरुस्नेहात्संस्काराद्बलवत्तरम् गुणैर्वातहरैस्तस्मात्शतशोऽथसहस्रशःसिद्धंक्षिप्रतरंहन्तिसूक्ष्ममार्गस्थितानगदान्॥

अर्थ—तेल से अधिक वातनाशक और कोई औषध नहीं है क्योंकि यह व्यवायी, उष्ण, गुरु और स्निग्ध है । तथा वातनाशक द्रव्यों के संस्कार से यह अत्यन्त बलवान होजाता है । तथा वातनाशक द्रव्यों के साथ शत सहस्र वार सिद्ध करने पर, यह सूक्ष्म स्रोतों में स्थित रोगों को शीघ्रही दूर करदेता है ।

क्रियासाधारणीसर्वासंसृष्टेचापिशस्यते। वातपित्तादिभिःस्रोतःस्वावृतेषुविशेषतः॥

अर्थ—केवल वायु में जो साधारणी क्रिया कही गई है वह संसृष्ट दोषों में भी हितकारी होती है और विशेष करके जब स्रोतों का मार्ग वातापित्त, वा वातकफ वा पित्तकफसे रुका होता है तब वातनाशिनी क्रिया बहुत उपयोगी होती है ॥

पित्तावृतवायुमार्ग में चिकित्सा ।

पित्तावृतेविशेषेणशीतामुष्णांतथाक्रियाम् । व्यत्यासात्कारयेत्सर्पिर्जीवनीयञ्च शस्यते ॥ धन्वमांसयवाशालियापनाः क्षीरवस्तयः । विरेकःक्षीरपानञ्चपञ्चमूलबलाश्रितम् ॥ मधुयष्टिर्बलातैलंघृतक्षीरैश्चसेचनम् । पञ्चमूलकषायेणकुर्याद्वाशीतवारिणा ॥

अर्थ—जब वायुका मार्ग पित्तसे आवृत होता है तब व्यत्यास क्रम से शीत क्रिया और उष्णक्रिया करना हित है । इस में जीवनीय गणोक्त द्रव्यों से सिद्ध किया हुआ घृत भी उपयोगी है । धन्वजमांस,जौ, शालीचांवल, यापनकर्त्ता क्षीर वस्ति, विरेचन तथा पंचमूल वा बला डालकर औटायाहुआ दूध हित है । मुलहटी का क्वाथ, बलातैल घी, दूध, पंचमूल का क्वाथ वा ठंडा जल इन से सेचन करना भी हित है ॥

कफावृतवायु मार्ग में चिकित्सा ।

कफावृतेयवान्नानिजाङ्गलामृगपक्षिणः स्वेदास्तीक्ष्णानिरूहाश्चवमनंसविरेचनम् जीर्णसर्पिस्तथातैलंतिलसर्षपजंशुभम् ।

अर्थ—कफसे वायुके रुकने पर जौ, जांगल पशुपक्षियों का मांस, स्वेद ,तीक्ष्ण निरुहण, ,वमन, विरेचन, पुराना घी, तिल का तेल और सरसों का तेल हित होता है ।

कफपित्तावृत वायुमार्ग में चिकित्सा ॥

संसृष्टेकफपित्ताभ्यांपित्तमादौविनिर्जयेत् आमाशयगतंदृष्ट्वाकफंवमनमाचरेत् ॥ पक्वाशयेविरेकन्तुपित्तेसर्वत्रगेतथा ॥

अर्थ—कफपित मिलहुए दोषों से वायु का मार्ग रुकने पर प्रथम पित्तको जीतने का उपाय करै, जो कफ आमाशयमें स्थित दिखाई दे तो वमन देवै, पक्वाशयस्थ कफ में विरेचन देवै । तथा जो पित्त सर्व देह गत दिखाईदे तोभी विरेचनही देवै ।

स्वेदैर्विष्यन्दितःश्लेष्मायदापक्वाशयाच्च्युतः । पित्तंवादर्शयेल्लिंगंवस्तिभिस्तं विनिर्हरेत् ॥

अर्थ—स्वेदनकर्म से श्लेष्मा यदि पिघल कर पक्वाशय को छोडदे और यदि पित्तके चिन्ह भी दिखाई दें तो वस्तिद्वारा उसके दूर करने का उपाय करै ॥

में क्षीरसंयुक्त निरूहण देवै तथा मधुर औषधियों से सिद्ध किये हुए तैल की अनुवासन वस्ति देवै ॥

शिरोगतवात में चिकित्सा ।

शिरोगतेतुसकफेधूमनस्यादिकारयेत् ॥

अर्थ—कफयुक्त वात के सिर में प्रवेश करने पर धूमपान और नस्यादि कर्म करै॥

उरःस्थवात में चिकित्सा ॥

हृतेपित्तेकफेयःस्याद्दुरःस्रोतोऽनुगोऽनिलः । सशेषःस्याद्वृक्रियातत्रकार्याकेवल वातिकी ॥

अर्थ—पित और कफ के दूर होने पर जो वक्षःस्थल के सोतों में वात गमन करै तौ इस में केवल वात के नाश करनेवाली चिकित्सा करै ॥

रक्तावृतवातमें चिकित्सा ।

शोणितेनावृतेकुर्याद्वातशोणितकींक्रियाम्

अर्थ— रक्तावृत वात में वातरक्तनाशक क्रिया करनी चाहिये ॥

आढ्यवात में चिकित्सा ॥

प्रमेहवातमेदोघ्नीमाढ्यवातेप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—आढ्यवात में प्रमेह,वायु और मेद को दूर करनेवाली क्रिया करनी चाहिये ॥

मांसावृत वात में चिकित्सा

अर्थ—अस्थि और मज्जा में स्थितवात में महास्नेह का प्रयोग करे और शुक्रावृत वात में भी पूर्वोक्त शुक्रस्थ वातकीसी चिकित्सा करे ॥

अन्नावृतवातमें चिकित्सा।

अन्नावृतेतदुल्लेखःपाचनंदीपनंलघु ॥

अर्थ—अन्नावृत वात में वमन, पाचन, दीपनकर्ता और लघु अन्न देना चाहिये ॥

मूत्रस्थवातमें चिकित्सा।

मूत्रलानितुमूत्रेणस्वेदाःसोत्तरवस्तयः ॥

अर्थ—मूत्रस्थ वात में मूत्रकारक औपध स्वेदन और उत्तरवस्ति का प्रयोग करे।

पुरीपस्थ वातकी चिकित्सा।

शकृतातैलमैरंडवस्तिस्नेहाश्चभेदिनः।

अर्थ—पुरीपावृत वात में अंडी का तेल और स्नेहन वस्ति तथा भेदकर्त्ता औपध श्रेष्ठ हैं ॥

स्वस्थानस्थदोप की चिकित्सा।

स्वस्थानस्थोवलीदोपःप्राक्तंस्वैरौपधैर्जयेत्।वमनैर्वाविरेकैर्वावस्तिभिःशमनेनवा।

अर्थ—यदि दोप अपने ही स्थान में स्थित हो परन्तु कुपित होजाय तव उसी दोप के शमन करने वाली औपध का प्रयोग करे। अर्थात् अपने स्थान में स्थित कफ को वमन से,पित्त को विरेचन से और वातको वस्ति से शमन करे ॥

मारुतानांहिपञ्चानामन्योन्यावरणेश्णृणु॥
लिंगंव्याससमासाभ्यामुच्यमानंमयाऽनघ

अर्थ—पूर्वोक्त पांच प्रकार की वायु जव परस्पर एक दूसरे के मार्ग को आच्छादित कर लेती हैं तव जो लक्षण उत्पन्न होते हैं उनका संक्षेपसे तथा सविस्तर वर्णन करतेहैं

पंचवायु का परस्पर आवरण ॥

प्राणोवृणोत्यपानादीन्प्राणंवृण्वन्त्यथापिते
उदानाद्यास्तथान्योऽन्यंसर्वएवयथाक्रमम्
विंशतिर्वरणान्येतान्युल्वणानांपरस्परम्॥
मारुतानांहिपञ्चानांतानिसम्यक्प्रतर्कयेत्

अर्थ—प्राणवायु अपानादि वायुओं का आवरण करती हैं और ये अपानादिक भी प्राणवायु का आवरण करती हैं, इसी तरह सम्पूर्ण उदानादिक वायु भी आपस में एक दसरे का आवरण करती हैं। इसी तरह इन पांचों वायुओं के परस्पर आवरण करने के वीस आवरण हैं अव उनका सम्यक् वर्णन करते हैं।

प्राणावृतव्यान वायु के लक्षण।

सर्वेन्द्रियाणांशून्यत्वंज्ञात्वास्मृतिवलक्षयम्
व्यानेप्राणावृतेलिङ्गंकर्मतत्रोर्ध्वजत्रुकम्॥

अर्थ—जव प्राणवायु व्यानवायुकाआवरण करलेती हैं तव सम्पूर्ण इन्द्रियां शून्यहोजाती है, स्मरण शक्ति और वल घट जाताहै, इस में उर्ध्वजत्रु क्रिया करना हित है।

व्यानावृतप्राण वायु के लक्षण।

स्वेदोऽत्यर्थंलोमहर्षस्त्वग्दोपःसुप्तगात्रता
प्राणेव्यानावृतेतत्रस्नेहयुक्तंविरेचनम् ॥

अर्थ—जव व्यानवायुप्राणवायुका आवरण करलेती है तव पसीने वहुत आतेहैं,रोमाञ्च खडे होजाते हैं, त्वचा विगड जाती है और देह सुन्न पड जाती है, इस में स्नेह युक्त विरेचन देवे ॥

प्राणावृत समानवायुके लक्षण ॥

प्राणावृतेसमानेस्याज्जडगद्गदमूकता॥ चतुष्प्रयोगाःशस्यन्तेस्नेहास्तत्रसयापनाः॥

अर्थ—जब प्राणवायु समान वायु का आवरण करलेती है तब जडता, गदगदता और मूकता होती है, इस में चार प्रकार के पान, अभ्यंग, अनुवासन और नस्य कर्म हितहैं तथा क्षीरवस्ति भी उपयोगीहोतीहै।

समानावृत प्राणवायु के लक्षण ॥

समानेनाऽवृतेप्राणेग्रहणीपार्श्ववेदना ॥ शूलेचामाशयेतत्रदीपनंसर्पिरिष्यते ॥

अर्थ—जब समानवायु प्राणवायु का आवरण कर लेती है तब ग्रहणी दोष और पार्श्ववेदना होती है, तथा आमाशय में शूल होने लगता है, इस में संदीपन घृत उपयोगी होता है।

प्राणावृतउदानवायु के लक्षण ॥

शिरोग्रहःप्रतिश्यायोनिःश्वासोच्छाससंग्रहः ॥ हृद्रोगोमुखशोषश्चाप्युदानेप्राणसंवृते । तत्रोर्ध्वभागिकंकर्मकार्यमाश्वासनंतथा ॥

अर्थ—जब प्राणवायु उदानवायु का आवरण करलेती है तब सिर में जकड़न, प्रतिश्याय, निःश्वास का रोध, उच्छ्वासका रोध, हृद्रोग और मुखशोष ये उपद्रव होते हैं, इस में वमनादि ऊर्धदेहिक चिकित्सा तथा आश्वासन हितहै।

उदानावृत प्राणवायुके लक्षण ।

कर्मौजोबलवर्णानांनाशोमृत्युरथापिवा। उदानेनावृतेप्राणेतंसनैःशीतवारिणा ॥ सिञ्चेदाश्वासयेच्चैवसुखंचैवोपपादयेत् ।

अर्थ—जब उदानवायु प्राण वायु का आवरण कर लेतीहै तब कर्म, ओज, वल और वर्ण का नाश होकर मृत्युभी होजाती है, इसमें धीरे २ शीतल जलके छींटे मारे, आश्वासन करै और सुखदायक कर्मों का उपयोग करे।

प्राणावृत अपान वायुके लक्षण ।

ऊर्ध्वगेनावृतेप्राणेछर्दिश्वासादयोगदाः॥ स्युर्वातितत्रवस्त्यादिभोज्यंचैवानुलोमनम्

अर्थ—जब प्राण वायु अपान वायु का आवरण करलेतीहै तब वमन और श्वासादिक रोग उत्पन्न होतेहैं। इसमें वास्तिकर्म और अनुलोमन कर्त्ता भोजन हितहैं ॥

अपानावृत प्राणवायुके लक्षण ॥

मोहाल्पोग्निरतीसारऊर्द्धगेऽपानसंवृते ॥ वातेस्युर्वमनंतत्रदीपनंग्राहिचाशनम् ॥

अर्थ—जब अपानवायु प्राणवायु का आवरण करलेती है तब मोह,मन्दाग्निऔर अतीसार होते है। इस में वमन तथा दीपन संग्राही भोजन हित हैं।

व्यानावृत अपान वायु के लक्षण।

वम्याध्मानमुदावर्तगुल्मार्तिपरिकर्तिका॥ लिंगव्यानावृतेपानेतंस्निग्धैरनुलोमयेत्॥

अर्थ जब व्यान वायु अपान वायुकाआवरण कर लेती है तब वमन, आध्मान,उदावर्त गुल्म अर्ति और परिकर्त्तिकादि उपद्रव होतेहैं,इसमें स्निग्ध अनुलोमन करना चाहिये।

अपानावृतव्यान के लक्षण ।

अपानेनावृतेव्यानेभवेद्विण्मूत्ररेतसाम् ॥

अतिप्रवृत्तिस्तत्रापिसर्वसंग्रहणंमतम् ।

अर्थ—अपान वायु जब व्यान वायु का आवरण कर लेती है तब विष्ठा, मूत्र और वीर्य की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है, इस में सब तरह की संग्राही औषध हित होतीहैं ॥

समानावृत व्यान वायु के लक्षण ।

मूर्च्छातन्द्राप्रलापोऽङ्गसादोऽग्न्योजोबलक्षयः ॥ समानेनावृतेव्यानेव्यायामोलघुदीपनम् ।

अर्थ—जब समान वायु व्यानवायु का आवरण करलेती है तब मूर्च्छा, तन्द्रा, प्रलाप, अंगसाद, अग्निक्षय, तेजक्षय, और बलक्षय होता है इसमें शारीरिक परिश्रम तथा लघु और दीपन भोजन हित है ॥

उदानावृत व्यान वायु के लक्षण।

स्तब्धताल्पाग्नितास्वेदश्चेष्टाहानिर्निमीलनम् ॥ उदानेनावृतेव्यानेतत्रपथ्यंमितंलघु ।

अर्थ—जब उदानवायु व्यान वायु का आवरण कर लेतीहै तब स्तब्धता, मन्दाग्नि पसीनों का बन्द होजाना, चेष्टा का नाश और निमीलन होता है, इस में थोडा और हलका भोजन हित होता है ॥

पञ्चान्योन्यावृतानेवंवातांल्लिङ्गैर्निशामयेत् । एषांस्वकर्मणांहानिर्वृद्धिर्वावरणंमतम् । यथास्थूलंसमुद्दिष्टमेतदावरणाष्टकम् ॥ सलिङ्गभेषजंसम्यग्बुधानांबुद्धिवृद्धये । स्थानान्यवेक्ष्यवातानांवृद्धिं हानिश्चकर्मणाम्॥ द्वादशावरणान्यन्यान्यभिलक्ष्याभिषग्जितम् । कुर्यादभ्यञ्जनस्नेहपानवस्त्यादिसर्वशः ॥ क्रमम्रुष्णमनुष्णंवाव्यत्यासादवधारयेत् ।

अर्थ—प्राणादिक पंचवायु जब आपस में एक दूसरे का आवरण करलेती है तब उनके ऊपर कहेहुए लक्षण होते हैं, इन पंच वायु के निज २ कर्मों की वृद्धि वा हानिही का नाम आवरण है अथवा यों कहो कि आवरणही से इनके निज कर्मों की घटती बढती होती है स्थूल रीतसे इन आठ प्रकार के आवरणों का वर्णन कियागया है तथा,पंडितों की बुद्धि की वृद्धि के लिये उनके लक्षण और चिकित्सा भी कही गई हैं।

इनके अतिरिक्त बारह आवरण और भी हैं उन में वायु के पृथक् २ स्थान और उनके कर्मों की वृद्धि वा हानि का अच्छी तरह विचार करके अभ्यंजन, स्नेहपान और बस्तिकर्म आदि सब प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिये, तथा इसकी शान्ति के लिये व्यत्यासक्रम से उष्ण और शीतल क्रियाभी करनी चाहियें ॥

उदानादि वायु में चिकित्साक्रम ।

उदानंयोजयेदूर्ध्वमपानंचानुलोमयेत् ॥ समानंशमयेचैवत्रिधाव्यानन्तुयोजयेत् ।

अर्थ—उदान वायुके आवृत होने पर वमन और नस्यादि ऊर्ध्व क्रिया कर्त्तव्य हैं अपान वायुके आवृत होने पर विरेचनादि अनुलोमन क्रिया करनी चाहिये । समान वायुकी संशमन चिकित्सा करे तथा व्यान वायुके आवृत होने पर उक्त तीनों प्रकार की चिकित्सा करनी चाहिये ॥

प्राणवायु में कर्त्तव्य ।

प्राणोरक्ष्यश्चतुर्भ्योपिस्थानेह्यस्यस्थिति ध्रुवा ॥ स्वंस्थानंगमयेदेवंवृत्तानेतान्त्रि मार्गगान् ।

अर्थ—चारों प्रकारकी वायुसे प्राणवायु की रक्षा करना अत्यन्त आवश्यकीय पहिला काम है । इसकी निज स्थान में स्थिति होना भी अत्यन्तही आवश्यकीय है । प्राण वायुकी इस तरह रक्षाकरके आवृत और विमार्गगामी शेष चारों प्रकारकी वायु को अपने अपने स्थान में लेजाने का यत्न करना चाहिये ॥

पित्तावृत प्राणवायु के लक्षण ।

मूर्च्छादाहोतमःशूलंविदाहःशीतकामिता॥ छर्दनश्चविदग्धस्यप्राणेपित्तसमावृते ।

अर्थ—जब पित्त प्राणवायु को आवृत कर लेता है तब मूर्च्छा, दाह, अंधकार दर्शन, शूल, विदाह और शीतल वस्तुओं पर इच्छा होती है तथा विदग्ध भोजन की वमन भी होती है ॥

कफावृत प्राण के लक्षण ॥

ष्ठीवनंक्षवथूद्गारनिःश्वासोच्छ्वासंग्रहः प्राणेकफावृतेरूपाण्यरुचिश्छर्दिरेवच ।

अर्थ—कफावृत प्राणवायु में थुकथुकी, छींक, डकार, निःश्वासरोध, उच्छ्वासरोध, अरुचि और वमन होते हैं ॥

पित्तावृत उदान के लक्षण ॥

मूर्च्छाद्यानिचरूपाणिदाहोनाभ्युरसोर्भ्रमः ॥ ऊर्जोभ्रंशश्चसादश्चाप्युदानेपित्त संवृते ।

अर्थ—पित्तावृत उदानवायु में मूर्च्छादिक उक्त लक्षण तथा नाभि और वक्षःस्थल में दाह भ्रम,, उर्जाभ्रंश और अंगसाद होता है ॥

कफावृत उदान के लक्षण ॥

आवृतेश्लेष्मणोदानेवैवर्ण्यंवाक्स्वरग्रहः॥ दौर्बल्यंगुरुगात्रत्वमरुचिश्चोपजायते ।

अर्थ—कफावृत उदानवायु में विवर्णता वाक्‌निग्रह, स्वरभंग, दुर्बलता, गुरुगात्रता और अरुचि होती है ॥

पित्तावृत समान वायु के लक्षण ॥

अतिस्वेदस्तृपादाहोमूर्च्छाचारुचिरेवच॥ पित्तावृतेसमानेस्युरुपघातस्तथोष्मणः ।

अर्थ—पित्तावृत समानवायु में पसीनोंका अत्यन्त आना, तृषा, दाह, मूर्च्छा, अरुचि और ऊष्माका उपघात होता है ॥

कफावृत समान वायु के लक्षण ॥

अस्वेदोवह्निमान्द्यञ्चलोमहर्षस्तथैवच ॥ कफावृतेसमानेस्युर्गात्राणांचातिशीतता।

अर्थ—कफावृत समानवायु में पसीनों का बन्दहोना, मन्दाग्नि, रोमोद्गम तथा शरीरका अत्यन्त ठंडा होना ये लक्षण होतेहैं ॥

पित्तावृतव्यान के लक्षण ॥

व्यानेपित्तावृतेतुस्याद्दाहः सर्वांगगःक्लमः गात्रविक्षेपसंगश्चससन्तापःसवेदनः ॥

अर्थ—पित्तावृत व्यान वायु में सम्पूर्ण देहमें दाह, क्लान्ति, गात्रविक्षेप, संग, संताप और वेदना होती हैं ॥

कफावृत व्यानके लक्षण ॥

गुरुतासर्वगात्राणांपर्वसन्ध्यस्थ्यग्रहः॥

व्यानेकफावृतेलिंगगतिसङ्गस्तथाधिकः।

अर्थ—कफावृत व्यान वायु में सम्पूर्ण अंगावयवों में गुरुता, पर्वावरोध, संध्यवरोध, अस्थ्यवरोध तथा अत्यन्त गतिरोध होताहै।

पित्तावृत अपानके लक्षण ।

हारिद्रमूत्रवर्चस्त्वंतापश्चगुदमेढ्रयोः॥ लिंगंपित्तावृतेऽपानेरजसःसंप्रवर्त्तनम् ॥

अर्थ—पित्तावृत अपान वायुमें मूत्र और विष्टा हलदी के से रंगका होजाता है, गुदा और मेढ़ में ताप होता है, और रज की अत्यन्त प्रवृत्ति होती है।

कफावृत अपानके लक्षण ।

भिन्नामश्लेष्मसंसृष्टगुरुवर्चःप्रवर्त्तनम् । श्लेष्मणासंवृतेऽपानेकफमेहस्यचागमः॥

अर्थ—कफावृत अपान वायु में फटा हुआ और आम कफसे मिला हुआ भारी विष्टा निकलता है तथा कफमेह का आगम होता है।

कफपित्तावृत के लक्षण ।

लक्षणानांतुमिश्रत्वंपित्तस्यचकफस्यच । उपलभ्यभिषग्विद्वान्मिश्रमावरणंवदेत् ॥ यद्यस्यवायोर्निर्दिष्टंस्थानंतत्रेतरौस्मृतौ। दोषौबहुविधान्व्याधीन्दर्शयेतांयथा-निजान् ॥

अर्थ—जब वायु पित्त और कफ दोनों से आवृत होती है तब दोनों के मिले हुए लक्षण होते हैं। जब वायु कफ और पित्त से आवृत होकर जिस जिस स्थानमें विचरण करती है उसी उसी स्थान में कफ और पित्त अपने अपने लक्षणों वाली व्याधि उत्पन्न करते हैं।

प्राणोदान वायुकी गुरुता ॥

आवृतंश्लेष्मपित्ताभ्यांप्राणंचोदानमेवच। गरीयस्त्वेनपश्यन्तिभिषजःशास्त्रचक्षुषः॥ विशेषाज्जीवितंप्राणेउदानेसंश्रितंबलम् । स्यात्तयोःपीडनाद्धानिरायुषश्चबलस्यच ॥

अर्थ—पित्त और कफसे आवृत प्राण और उदान वायु को शास्त्रज्ञ वैद्य बहुत भारी समझते हैं, कारण ये है कि जीवनप्राण वायुके आधीन है और बल उदानवायु के आधीन है। इसलिये इनके पीडित होने से आयु और बल दोनोंकी हानि होजाती है।

सर्वेऽप्येतेपरिज्ञेयाःपरिसंवत्सरास्तथा । उपेक्षणादसाध्याःस्युरथवादुरुपक्रमाः ॥

अर्थ—इन सब को अच्छी तरह समझ लेना चाहिये, क्योंकि इनकी उपेक्षा करने से ये एक बरस पीछे असाध्य वा दुश्चिकित्स्य होजाती हैं।

उपेक्षित वायुके उपद्रव ॥

हृद्रोगोविद्रधिःप्लीहागुल्मातीसारएवच । भवन्त्युपद्रवास्तेषामावृतानामुपेक्षणात् ॥

अर्थ—इन आवृत वायुकी उपेक्षा करने से हृद्रोग, विद्रधि, प्लीहा, गुल्मरोग, अतीसार आदि उपद्रव होते हैं ॥

वैद्यको उपदेश ॥

तस्मादावरणंवैद्यःपवनस्योपलक्षयेत् । पञ्चात्मकस्यवातेनपित्तेनश्लेष्मणापिवा॥ भिषग्जितैरतःसम्यगुपलक्ष्यसमाचरेत् । अनभिष्यन्दिभिःस्निग्धैःस्रोतसांशुद्धि-कारिभिः ॥

अर्थ—इसलिये वैद्यको उचित है कि वायु के आवरणों पर दृष्टि रक्खै कि ये पांचों प्रकार की वायु वात, पित्त अथवा कफ से आवृत हैं, इसका अच्छी तरह विचार करके अनभिष्यन्दी, स्निग्ध और स्रोतों के शुद्ध करनेवाली औषधियों से चिकित्साकरैं ॥

आवृत वायुमें चिकित्सा ॥

कफपित्ताविरुद्धंयद्यच्चवातानुलोमनम् ॥
सर्वस्थानावृतेप्याशुतत्कार्यंमारुतेशुभम्॥
यापनावस्तयःप्रायोमधुराःसानुवासनाः
प्रसमीक्ष्यबलाधिक्यंमृदुवास्रंसनंहितम्॥
रसायनानांसर्वेषामुपयोगः प्रशस्यते ।
शैलस्यजतुनोऽत्यर्थंपयसागुग्गुलोस्तथा।
लेहंवाभार्गवप्रोक्तमभ्यस्येत्क्षीरभुग्घ्रवम्
अभयामलकीयोक्तमेकादशसिताशतम् ।

अर्थ—सर्वस्थानावृत वायु में वह चिकित्सा करनी चाहिये जो कफपित्त के अविरुद्धहो और वात के अनुलोमन करने वाली हो । इसमें क्षीरवस्ति (यापनवस्ति) मधुरवस्ति और अनुवासन हित है तथा बल के अनुसार मृदुविरेचन देवै । इस में सम्पूर्ण रसायनिक प्रयोग भी उपयोगी होते हैं, बहुत दूध के साथ शिलाजीत और गूगल का सेवन भी हित है । केवल दुग्ध का आहार करके प्रथमाध्याय में कहे हुए च्यवनप्राशका सेवन करै अथवा ग्यारह प्रकारकी अभयामलकीयोक्त रसायन भी हितहैं

अपानावृत प्राणवायुमें चिकित्सा॥

अपानेनावृतेसर्वंदीपनंग्राहिभेपजम् । वातानुलोमनंयच्चपक्वाशयविशोधनम् ॥
इतिसंक्षेपतःप्रोक्तमावृतानांचिकित्सितम्
प्राणादीनांभिषक्कुर्याद्वितर्क्यस्वयमेवतत्

अर्थ—अपानावृत प्राणवायु में दीपन, संग्राही वातानुलोमनकर्त्ता और पक्वाशय को शुद्ध करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये ॥

इस तरह आवृतवायुकी चिकित्सा संक्षेप रीति से वर्णन कीगई है, इनमें वैद्य अपनी बुद्धि से भी अन्य औषधों का प्रयोग करै।

पित्तऔरकफावृतवायुकी चिकित्सा ॥

पित्तावृतेतुपित्तघ्नैर्मारुतस्याविरोधिभिः
कफावृतेकफघ्नैस्तुमारुतस्यानुलोमनैः॥

अर्थ—पित्तावृतवायु में पित्तनाशक और वायुके अविरोधी चिकित्सा करै । कफावृत वायु में कफनाशक और वायुका अनुलोमन करनेवाली चिकित्सा करना चाहिये ॥

लोकेवाय्वर्कसोमानांदुर्विज्ञेयायथागतिः
तथाशरीरेवायस्यपित्तस्यचकफस्यच ॥
क्षयंवृद्धिंसमत्वंचातथैवावरणंभिषक् ॥
विज्ञायपवनादीनांमुह्यतिस्वकर्मसु ॥

अर्थ....संसार में जिस तरह पवन, सूर्य और चन्द्रमा की गति समझ में नहीं आती है उसी तरह देह में वात, पित्त और कफ की गति समझ में नहीं आती है । जो वैद्य वातादिककी क्षय, वृद्धि, समता और आवरण को जानकर चिकित्सा करने में प्रवृत्त होता है वह घबडाता नहीं है ॥

अध्यायकासंक्षिप्त वर्णन ।

पञ्चात्मनःस्थानवशाच्छरीरेस्थाना–

निकर्माणिचदेहधातोः॥प्रकोपहेतुःकुपित श्चरोगान् ॥ स्थानेषुवान्येषुवृतश्च प्राणेश्वरःप्राणभृतांकरोति ॥ क्रियाचतेषामखिलानिरुक्ता ॥ तान्देशसात्म्यर्तुबलान्यवेक्ष्य प्रयोजयेच्छास्त्रमतानुसारि॥

अर्थ--इस वातव्याधि चिकित्सित अध्याय में पंचात्मक वायु के शरीर में भिन्न भिन्न स्थानादि, देह धातु के कर्म, प्रकोप के हेतु, कुपित होकर अपने स्थान में वा अन्य स्थानों में जिन २ रोगों को करती हैं, पृथक् पृथक् वायु के आवरणों के लक्षण और उनकी सब क्रिया वर्णन की गई हैं वैद्यको उचित है कि इन सब बातों को देख कर तथा देश, सात्म्य ऋतु, और बलको देखकर औषध करने में प्रवृत्त होवै ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सितस्थानेवातव्याधिचिकित्सितंनामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥ २८ ॥

—:०:—

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

अथातोवातशोणितचिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम वातरक्त नामक चिकित्सित अध्यायकी व्याख्या करेंगे ।

हुताग्निहोत्रमासीनमृषिमध्येपुनर्वसुम् ॥ पृष्टवान्गुरुमेकाग्र्यमग्निवेशोऽग्निवर्चसम्॥ अग्निमारुततुल्यस्यसंसर्गस्यानिलासृजोः॥ हेतुलक्षणभैषज्यान्यथास्मैगुरुरब्रवीत् ॥

अर्थ—अब गुरु पुनर्वसुजी अग्निहोत्रकर्म से निश्चिन्त होकर एकाग्रचित्त से ऋषियों के बीच में अग्निकी शिखा के समान विराजित होरहे थे तबही अग्निवेश ने पूछा कि हे गुरुदेव! अग्नि और वायुके समान मिलेहुए वातरक्त के हेतु, लक्षण और चिकित्सा का उपदेश कीजिये, यह सुनकर गुरुजीने उस से कहा ॥

वातरक्त के हेतु ।

लवणाम्लकटुक्षारस्निग्धोष्णाजीर्णभोजनैः । क्लिन्नशुष्काम्बुजानूपमांसपिण्याकमूलकैः ॥ कुलत्थमाषनिष्पावशाकादिपललेक्षुभिः । दध्यारनालसौवीरशुक्ततक्रसुरासवैः ॥ विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः॥प्रायशःसुकुमाराणां मिष्टान्नरसभोजिनाम् ॥ अचंक्रमणशीलानांकुप्यतेवातशोणितम् ॥अभिघातादशुद्ध्याचप्रदुष्टेशोणितेनृणाम्॥ कषायकटुतिक्ताल्परूक्षाहारादभोजनात् । हयोष्ट्रयानयानाम्बुक्रीडाप्लवनलंघनात्|उष्णेचात्यध्ववैषम्याद्व्यवायाद्वेगनिग्रहात् वायुर्विवृद्धोवृद्धेनरक्तेनावारितःपथि । क्रुद्धस्तद्दूषयेद्रक्तंतज्ज्ञेयंवातशोणितम् । खुडंवातबलासाख्यमाढ्यरोगंचनामभिः

अर्थ....नमकीन, खट्टे, कड़वे, खार,स्निग्ध, उष्ण और दुष्पाच्य द्रव्यों के अत्यन्त सेवन से गीले वा सूखे औदकमांस और आनूपमांस के अत्यन्त सेवन से, पिण्याक वा मूली के अत्यन्त सेवन से, कुलथी, उरद, चौलाआदि शाक तथा पलल और

ईख के अत्यन्त सेवन से; दही, कांजी, सौवीर, शुक्त, तक्र, सुरा और आसव के अत्यन्त सेवन से; विरुद्धभोजन, अध्यशन, क्रोध, दिवास्वप्न और अत्यन्त जागरण से; प्रायःसुकुमार और पिष्टान्न रस भोजन करनेवालों के (प्रायशःसुकुमाराणांमिथ्या हारविहारिणाम्), तथा जो डोलते फिरते नहीं है एकही जगह बैठे रहते हैं उन के वातरक्त कुपित होता है तथा चोट लगने से इकट्टे हुए मल को न निकालने से रक्त दूषित होजाता है । कषाय, कटु, तिक्त, अल्प और रूखा आहार करने से वा विना भोजन करने से, अथवा घोड़े वा ऊंटकी सवारीपर चढ़कर जाने से, वा जलक्रीड़ा, प्लवन और लंघन करने से वा गरमी के समय अत्यन्त विषम मार्ग पर चलने से, व्यवाय से, वेगनिग्रह से बढी हुई वायुमार्ग में बढेहुए रक्त से रुककर कुपित होजाती है और रक्तको दूषित करदेती है इसेही वातरक्त कहते हैं । इसीके पर्य्यायवाची नाम खुडवात, वातवलास और आढ्यवात भीहैं ॥

वातरक्त के स्थान ॥

तस्यस्थानंकरौपादावंगुल्यःपर्वसन्धयः॥ कृत्वादौहस्तपादेतुमूलंदेहेविधावति ॥

अर्थ—वातरक्त के स्थान दोनों हाथ दोनोंपांव, अंगुलियां और पर्वसंधियां हैं ॥ यह प्रथम हाथ और पांव में उत्पन्न होता है और सम्पूर्ण देह में फैलजाता है ॥

सौक्ष्म्यात्सर्वसरत्वाच्चदेहंगच्छन्शिराय नैः। पर्वस्वभिहतंक्षुब्धंवक्रत्वादवतिष्ठते॥ स्थितंपित्तादिसंसृष्टंतास्ताःसृजतिवेदनाः करोतिदुःखंतेष्वेवतस्मात्प्रायेणसन्धिषु॥

अर्थ—वायुकी सूक्ष्मता और रक्तकी सर्वत्र गमन करनेवाली शक्ति से कुपित हुए वातरक्त सम्पूर्ण देह में गमन करते हैं, परन्तु जब पोरुओं में जाते हैं तब उनकी टेढाई के कारण वहीं रुक कर ठहर जाते हैं, तब पित्तादि दोषों से मिलकर वैसी २ ही वेदना उत्पन्न करते हैं और इसीलिये उनही संधियों में अत्यन्त पीडा होती है ।

वातरक्त के पूर्वरूप ।

स्वेदोऽत्यर्थंनवाकार्श्यंस्पर्शाज्ञत्वंक्षतेऽतिरुक्। सन्धिशैथिल्यमालस्यंसदनंपिडकोद्गमः ॥जानुजंघोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु। निस्तोदःस्फुरणंभेदोगुरुत्वंसुप्तिरेवच ॥ कण्डूःसंधिषुरुग्भूत्वाभूत्वानश्यतिचासकृत्। वैवर्ण्यमण्डलोत्पत्तिर्वाता सृक्पूर्वलक्षणम् ।

अर्थ—अत्यन्त पसीने आना वा सर्वथा न आना, कृशता, स्पर्श का ज्ञान,न होना क्षत में अत्यन्त वेदना होना, संधियों में शिथिलता, आलस्य, अंगसाद, फुन्सियोंका होना, जानु, जंघा, ऊरु, कटि, कंधा,हाथ, पांव तथा देहकी संधियों में सूचीभेदन के समान पीडा होना, स्फुरण, भेद, भारापन, सुप्ति, खुजली संधियों में वेदना हो होकर मिटजाना विवर्णता चकत्तों का होना । ये सब वातरक्त के पूर्वरूप हैं ॥

वातरक्त के भेद ॥

उत्तानमथगम्भीरंद्विविधंतत्प्रचक्षते ॥

त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानंगम्भीरंत्वन्तराश्रयम्

अर्थ—वातरक्त दो प्रकार का होता है, यथा-उत्तान और गंभीर । जो त्वचा और मांस में आश्रित होता है वह उत्तान है और जो मांससे भी भीतर का आश्रय लेकर उत्पन्न होता है, वह गंभीर है ॥

उत्तान वातरक्तके लक्षण ।

कण्डूदाहरुगायासतोदस्फुरणधूपनैः ॥ अन्विताश्यावरक्तात्वग्बाह्येताम्रातथेष्यते।

अर्थ—जिसमे खुजली, दाह, वेदना, तोद स्फुरण और जलनहो और चमड़ा श्यावर्ण वाताम्रवर्ण होजाय उसे उत्तान वातरक्त कहते हैं ।

गम्भीर वातरक्तके लक्षण ।

गम्भीरःश्वयथुःस्तब्धःकठिनोऽन्तर्भृशार्तिमान् । श्यामस्ताम्रोऽथवादाहतोदस्फुरणपाकवान् ॥

अर्थ—जिसमें सूजन, स्तब्धता, कठोरता हो, जिसमें भीतर अत्यन्त वेदना हो, जिसमें त्वचा श्यामवर्ण वा ताम्रवर्ण होजाय, जिसमें दाह तोद, स्फुरण होता हो और जो पाकाभि मुख हो वह गंभीरवातरक्तहै।

रुग्विदाहान्वितोऽभीक्ष्णंवायुःसन्ध्यस्थिमज्जसु । छिन्दन्निवचरत्यन्तर्वक्रीकुर्वश्चवेगवान् ॥ करोतिखञ्जंपंगुंवाशरीरेसर्वतश्चरन् ।

अर्थ—वेदना और दाहसे मिली हुई वायु संधि, अस्थि और मज्जा में छेदनवत् पीड़ा करती हुई विचरती है और अपने वेग से उंगली आदि अंगोंको टेढा करदेती है और सम्पूर्ण शरीर में विचरती हुई खञ्जता और पांगलापन भी करदेती है ।

उभयाश्रित वातरक्त के लक्षण ।

सर्वैर्लिङ्गैश्चविज्ञेयंवातासृगुभयाश्रयम् ॥ तत्रवातेऽधिकेवास्याद्रक्तेपित्तकफेऽपिवा । संसृष्टेषुसमस्तेषुयच्चतच्छृणुलक्षणम् ॥

अथ—जिसमें उक्त दोनोंप्रकार के वातरक्त के मिले हुए लक्षण दीख पडते हैं वह उभयाश्रित वातरक्तहै । इनमें से दोनों प्रकार का वातरक्त वाताधिक, रक्ताधिक, पित्ताधिक वा कफाधिक होताहै । अथवा दो दो दोषों से मिलाहुआ वा सब दोषोंसे मिला हुआ भी होताहै अब इसके पृथक् पृथक् लक्षण सुनो ।

वाताधिक वातरक्त के लक्षण ।

विशेषतःशिरायासशूलस्फुरणतोदनम् । शोथस्यकार्श्यरूक्षत्वश्यावतावृद्धिहानयः धमन्यंगुलिसन्धीनांसङ्कोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक्कुञ्चनस्तम्भनेशीतप्रद्वेषश्चानिलेऽधिके॥

अर्थ—वाताधिक्य वातरक्त में विशेष करके शिरा में यातना, शूल, स्फुरण, तोद, शोथ में कालापन, रूक्षता, श्यावता, कभी बढाव, कभी घटाव, धमनी, उंगली और संधियों में संकोच, अंगग्रह, अत्यन्त वेदना, कुंचन, स्तंभन और शीतल वस्तु में अनिच्छा ये लक्षण होते हैं ।

रक्ताधिक वातरक्त के लक्षण ॥

श्वयथुर्भृशरुक्तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते। स्निग्धरूक्षैःशमंनैतिकण्डूक्लेदान्वितोऽसृजि ॥

अर्थ....रक्ताधिक वातरक्त में सूजना, अत्यन्त बेदना, त्वचा का ताम्रवर्ण और चिमिचिमापन होता है । किसी प्रकार की स्निग्ध वा रूक्ष औषधियों से शान्ति नहीं होती, इस में खुजली और क्लेदभी होताहै।

पित्ताधिक वातरक्त के लक्षण।

विदाहोवेदनामूर्च्छास्वेदस्तृष्णामदोभ्रमः । रागः पाकश्चभेदश्चशोफश्चोक्तान पैत्तिके ॥

अर्थ....पित्ताधिक बातरक्त में दाह, वेदना, मूर्च्छा स्वेद, तृषा, मद और भ्रम होता है इस में राग, पाक, शोफ और भेद भी होता है।

कफाधिकवातरक्तके लक्षण।

स्तैमित्यंगौरवंस्नेहःसुप्तिर्मन्दाचरुक्कफे ॥

अर्थ—कफाधिक वातरक्त में स्तिमिता, भारापन, स्निग्धता, सुन्नता, अरुचि और मन्द वेदना होती है ॥

संसृष्टवातरक्तके लक्षण ॥

हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्द्वन्द्वात्रिदोषजम् ॥

अर्थ—पूर्वोक्त हेतु और लक्षणों के संसर्ग से द्विदोषज वा त्रिदोषज वातरक्त होता है अर्थात् जिस में दो दोषों के हेतु और लक्षण मिलेहुए पाये जाते है उसे द्वंद्वज कहते हैं और जिसमें सब दोषों के मिलित लक्षण होते हैं वह सर्व दोषज होता है॥

वातरक्तकोसाध्यासाध्यत्व ।

एकदोषानुगंसाध्यंनवंयाप्यंद्विदोषजम्। त्रिदोषजमसाध्यंवायस्यचस्युरुपद्रवः ॥

अर्थ—जो वातरक्त एकदोषसे युक्त और नवीन होता है वह साध्य है, जो दो दोषों से उत्पन्न है वह याप्य है जो तीन दोषों से उत्पन्न है अथवा उपद्रवों से युक्त है वह असाध्य होता है ॥

सोपद्रववातरक्त के लक्षण ॥

अस्वप्नारोचकश्वासमांसकोथशिरोग्रहाः मूर्च्छाचमदरुक्छर्दिर्ज्वरमोहमवेपकाः ॥ हिकापांडुत्ववीसर्पपाकतोदभ्रमक्लमाः । अंगुलीवक्रतास्फोटादाहमर्मग्रहार्बुदाः ॥ एतैरुपद्रवैर्वर्ज्यंमोहेनैकेनवापियत् । संप्रस्नाविविवर्णञ्चस्तब्धमर्बुदकञ्चयत् ॥ वर्जयेद्यःससंकोचकरमिन्द्रियतापनम् ।

अर्थ—नींद न आना, अरुचि, श्वास, मांस में गलावट, शिरोग्रह, मूर्च्छा, मद, वेदना, वमन, ज्वर, मोह, कम्पन, हिचकी पाण्डुरोग (पांगुल्यमपिपाठः), विसर्प, पाक, तोद भ्रम, क्लान्ति अंगुलियों में टेढापन, फोडे, दाह, मर्मग्रह, अर्बुद, इनसब उपद्रवों के होने पर वातरक्त वर्जनीय होता है अथवा इन में से कोई उपद्रव न हो और केवल एक मोहही हो तो भी वर्जनीय हैं । जिस वातरक्त में स्राव होता हो, विवर्णता हो, स्तब्धता हो, जिस में अर्बुद संकोचता और इन्द्रियताप हो वह भी वर्जनीय है ॥

सुचिकित्स्य वातरक्त के लक्षण ।

अकृत्स्नोपद्रवंयाप्यंसाध्यंस्यानिरुपद्रवम्॥

अर्थ....जिस में उक्त सम्पूर्ण उपद्रव एक साथ नहीं होते हैं वह याप्य है और जिस

में एक भी उपद्रव नहीं होता वह साध्य होता है ॥

वायुप्रकोप में चिकित्सा ।

रक्तमार्गंनिहंत्याशुशाखासन्धिषुमारुतः निवेश्यान्योन्यमावार्यवेदनाभिर्हरेदसून् ॥ तत्रमुञ्चेदसृक्शृङ्गजलौकःसूच्यलाबुभिः । प्रच्छन्नैर्वाशिराभिर्वायथादोषंयथाबलम् ॥ रुग्दाहशूलतोदार्तादसृक्स्राव्यंजलौकसा । शृङ्गैःस्तम्भैर्हरेत्सुप्तिकण्डूचिमिचिमायनात् ॥ देशाद्देशंव्रजन्स्राव्यंशिराभिःप्रच्छनेनवा । अङ्गग्लानेनतुस्राव्यंरूक्षेवातोत्तरञ्चयत् ॥

अर्थ—वायु हाथ पांवों की संधियों में प्रवेश करके रक्तवाही मार्गों को रोक देती है, तब रक्त और वायु परस्पर एक दूसरे को रोकते हुए प्राणों को शीघ्र हरलेते हैं, ऐसे स्थल में सींग, जोक, सूची, अलाबू, पछना वा शिराव्यध (फस्त) का यथाबल प्रयोग कर के रुधिरको निकलवा डाले । वातरक्त में जो वेदना, दाह, शूल और तोद हो तो जोक लगाकर रुधिर निकाल डाले । जो सुप्ति, कण्डूपन और चिमचिमाहट हो तो सींगी लगाकर रुधिर निकाले । जो वातरक्त एकस्थान से दूसरे स्थानपर सरकजाता हो तो शिराव्यध वा पछना द्वारा रुधिर निकाले परन्तु जो देह में किसी प्रकार का क्लेश और म्लानता हो वा रूक्ष पुरुष के वाताधिक्य वातरक्त में रुधिर निकालने का निषेध है ॥

गम्भीरंश्वयथुंस्तम्भंकम्पंस्नायुशिरामयान् । ग्लानिमास्यप्रसंकोचांकुर्याद्वायुरसृक्क्षयात् ॥ खञ्जादीन्वातरोगांश्चमृत्युंवात्यपसेचितम् । कुर्यात्तस्मात्प्रमाणेनस्निग्धाद्रक्तंविनिर्हरेत् ॥

अर्थ—रक्तके अत्यन्त क्षीण होजाने से गंभीर सूजन, स्तम्भता, कम्पन, स्नायुरोग शिरारोग, ग्लानि और संकोच उत्पन्न होते हैं तथा अत्यन्त रक्तमोक्षण से खंजादिक वातरोग उत्पन्न होकर मृत्यु भी होजाती है इसी हेतु से प्रथम स्नेहन करके प्रमाण से रक्तमोक्षण करे ॥

वातरक्त में चिकित्साक्रम ।

विरेच्यःस्नेहयित्वादौस्नेहयुक्तैर्विरेचनैः । रूक्षैर्वामृदुभिःशस्तंअसकृद्बस्तिकर्मच ॥ सेकाभ्यङ्गप्रदेहान्नस्नेहाःप्रायोऽविदाहिनः।वातरक्तेप्रशस्यन्तेविशेषंतुनिबोधमे ॥

अर्थ....वातरक्त में प्रथम स्नेहन कराके स्नेहयुक्त विरेचन देवै अथवा रूक्ष वा मृदु विरेचन देवै और वस्तिकर्म भी वार वार करता रहै। वातरक्त मे प्रथम प्रायःअविदाही परिषेक, अभ्यंग प्रलेप, अन्न और स्नेहका प्रयोग करना चाहिये । अब जो विशेषता है उसका वर्णन किया जाता है ।

बाह्यवात रक्त में कर्म ।

बाह्यमालेपनाभ्यङ्गपरिषेकोपनाहनैः ॥

अर्थ—बाह्यवात रक्तमें आलेपन, अभ्यंग परिषेक और उपनाहन करना चाहिये ।

गंभीर वातरक्त में कर्त्तव्यकर्म ।

विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥

अर्थ —गंभीर वातरक्त में विरेचन, आस्थापन और स्नेहपान करना चाहिये ।

वातोत्तर वातरक्त की चिकित्सा ।

सर्पिस्तैलवसामज्जापानाभ्यञ्जनवस्तिभिः । सुखोष्णैरुपनाहैश्चवातोत्तरमुपाचरेत् ॥

अर्थ....वातोत्तर वातरक्त में घृत, तैल, वसा, मज्जा, पान, अभ्यंजन, वस्ति और सुखोष्ण उपनाह का प्रयोग करना चाहिये ।

रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में चिकित्सा ।

विरेचनैर्घृतक्षीरपानैःसेकैःसवास्तिभिः । शीतैर्निर्वापनैश्चापिरक्तपित्तोतरंजयेत् ॥

अर्थ—रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में विरेचन घृतपान, क्षीरपान परिषेक, वस्तिकर्म और शीतल निर्वापण करना उचित है ॥

कफोत्तर वातरक्त में चिकित्सा ।

वमनंमृदुनात्यर्थस्नेहसेकादिलंघनम् । कोष्णलेपाश्चशस्यन्तेवातरक्तेकफोत्तरे ॥

अर्थ—कफोत्तर वातरक्त में अत्यन्त मृदु वमन, स्नेहसेक, लंघन और सुहाता हुआ गरम लेप हित है ।

कफवातोत्तर वातरक्तमें चिकित्सा ।

कफवातोत्तरेशीतैःप्रलिप्तेवातशोणिते । विदाहशोफरुक्कण्डूविवृद्धिःस्तम्भनाद्भवेत् ॥

अर्थ—कफवातोत्तर वातरक्त में शीतल लेप करनेसे स्तम्भन होने के कारण विदाह, सूजन,वेदना और खुजली की वृद्धि होतीहै।

रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में कर्म ।

पित्तरक्तोत्तरेदाहःक्लेदोऽवदरणंभवेत् । उष्णैस्तस्माद्भिषग्दोषवलंबुद्ध्याचरेत्क्रियाम् ॥

अर्थ—रक्तपित्तोत्तर वातरक्त में उष्ण उपचार करने से दाह, क्लेद और अवदरण होता है इस से इस में दोष का वल देख कर चिकित्सा करनी चाहिये ॥

वातरक्त में वर्जितकर्म ।

दिवास्वप्नंससन्तापंव्यायामंमैथुनंतथा । कटूष्णंगुर्वभिष्यन्दिलवणाम्लंचवर्जयेत् ॥

अर्थ—दिवानिद्रा, संताप, व्यायाम, मैथुन तथा कटु, उष्ण, भारी, अभिष्यन्दी, नमकीन और खट्टे पदार्थों का सेवन उचित नहीहै॥

वातरक्तमें सेवनीयद्रव्य ।

पुराणयवगोधूमनीवाराःशालिषष्टिकाः। भोजनार्थेरसार्थेवाविष्किरप्रतुदाहिताः । आढक्यश्चणकामुद्गामसूराःसमकुष्ठकाः यूषार्थेबहुसर्पिष्काःप्रशस्तावातशोणिते॥

अर्थ—पुराने जौ, गेहूं, नीवार, शालीचांवल, साठीचांवल भोजन में हित हैं । विष्किर और प्रतुद पक्षियोंका मांसरस हितहै । अड़हर, चना, मूंग, मसूर, मोंठ इनका बहुत घी डालाहुआ यूष वातरक्त में हित है ।

सुनिषण्णकवेत्राग्रकाकमाचीशतावरीः । वास्तुकोपोदकाशाकंशाकंसौवर्चलंतथा घृतमांसरसैर्भृष्टंशाकसात्म्यायदापयेत् ॥ व्यञ्जनार्थंतथागव्यंमाहिषाजंपयोहितम्

अर्थ—जो वातरक्तवाला शाकको अधिक चाहता हो और वह उसके अनुकूल भी हो तो चौंपतिया, बेंतकी कोंपल, मकोय, सितावर, बथुआ, पोई, हुरहुल इनके शाक को घी में भूनकर मांसरस के साथ देवन

करै तथा इस रोगमें गौ, भैंस और बकरी का दूध हित है।

इतिसंक्षेपतःप्रोक्तंवातरक्तचिकित्सितम्। एतदेवपुनःसर्वंव्यासतःसंप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—यह वातरक्त की संक्षेपसे चिकित्सा कहीगई है, अब फिर इस सबको विस्तारपूर्वक कहते हैं।

श्रावण्यादि घृत।

श्रावणीक्षीरकाकोलीक्षीरिकाजीवकैःसमैः सिद्धंसर्षभकैःसर्पिःसक्षीरंवातरक्तनुत्।

अर्थ—श्रावणी, क्षीरकाकोली, क्षीरिका, जीवक और ऋषभक इन सब को समान भाग लेकर कल्क बनावे, इस से चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध डालकर पाक करै यह घृत वातरक्त नाशक है।

वलादि घृत।

वलामतिवलांमेदांआत्मगुप्तांशतावरीम्॥ काकोलींक्षीरकाकोलींरास्नामृद्धिञ्चपेषयेत्। घृतञ्चतुर्गुणंक्षीरंतैःसिद्धंवात रक्तनुत्॥ हृत्पाण्डुरोगवीसर्पकामलादाहनाशनम्।

अर्थ—वला, अतिवला, मेदा, केंच के बीज, सितावर, काकोली, क्षीरकाकोली, रास्ना और ऋद्धि इनके समान भाग कल्क में पूर्वोक्त क्रम से घी दूध डालकर पकावै। यह घृत वातरक्त, हृद्रोग, पाण्डुरोग, विसर्प, कामला और दाह इन रोगों को दूर करदेता है।

तामलक्यादि घृत।

तामलक्यद्धिकाकोल्याःपिप्पलीत्रायमाणयोः। कशेरुकाकषायेणकल्कैरेभिःपचेद्घृतम्।

अर्थ—भूम्यांवला, काकोली, क्षीरकाकोली, पीपल, त्रायमाण और कसेरू इन सब के कषाय और कल्क में घृत पाक करके सेवन करने से वातरक्त दूर होजाता है।

पारूपकघृत।

दत्वापरूपकद्राक्षाकाश्मर्येक्षुरसान्समान्॥ पृथग्विदार्याश्चरसंतथाक्षीरञ्चतुर्गुणम्। एतत्प्रायोगिकंसर्पिःपरूपकमितिस्मृतम्॥ वातरक्तेक्षतेक्षीणेवीसर्पेपैत्तिकेज्वरे।

अर्थ—फालसा, दाख, खंभारी, और ईख इन चारों का रस समान भाग विदारी का रस इन चारों के समान, इनसे चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध इन सब को पकाने से पारूपक नाम घृत बनता है इसके सेवन करने से वातरक्त, क्षतरोग, क्षीणरोग, विसर्प और पैतिक ज्वर दूर होजाते हैं।

द्विपञ्चमूलादिघृत।

द्विपञ्चमूलेयर्पाजमैरण्डंसपुनर्नवम्॥ मुद्गपर्णीमहामेदांमाषपर्णींशतावरीं। शंखपुष्पीमवाकपुष्पींरास्नामतिवलांबलाम् पृथग्द्विपलिकंक्षुण्णंजलद्रोणेविपाचयेत्। पादशेषेसमक्षीरंधात्रीक्षुच्छागलान्रसान्॥ घृताढकेनसंयोज्यशनैर्मृद्वग्निनापचेत्। कल्कानावाप्यमेदेद्वेकाश्मर्यफलमुत्पलम्॥ त्वक्क्षीरींपिप्पलींद्राक्षांपद्मवीजंपुनर्नवाम् नागरंक्षीरकाकोलींपद्मकंबृहतीद्वयम्॥

वीरांशृङ्गाटकंभव्यमुरुमाणंनिकोचकम्। बदराक्षोटवातामसुञ्जातामिपुकांस्तथा॥ एतैर्घृताढकेसिद्धेत्तोद्रंशीतेप्रदापयेत्। स-म्यक्सिद्धश्चविज्ञायस्वनुगुप्तंनिधापयेत्॥ रक्षाकर्मकृतश्चोऽसःसेवेताक्षमतःसदा। पा-ण्डुरोगंज्वरंहिक्कांस्वरभेदंभगन्दरम्॥ पार्श्वशूलंक्षयंकासंप्लीहानंवातशोणितम्। क्षतशोषमपस्मारमश्मरींशर्करान्तथा॥ सर्वाङ्गैकांगरोगांश्चमूत्रसङ्गांश्चनाशयेत्। बलवर्णकरंधन्यंवलीपलितनाशनम्॥ जीवनीयमिदंसर्पिर्वृष्यंबन्ध्यासुतप्रदम्।

अर्थ—दशमूल, सफेद सांठ, अरंडकी जड़, लालसांठ, मुद्गपर्णी, महामेदा, माषपर्णी, शतमूली, शंखपुष्पी, सौंफ, रास्ना, अतिवला और बला इन सबको दो दो पल लेकर कूट डाले और एक द्रोण जल में भरकर पकावै, जब जलते २ चौथाई रह जाय तब उतारकर छान लेवै। फिर उस क्वाथ के समानही दूध, आंवले का रस, ईखका रस और बकरे का मांसरस तथा एक आढक घृत इन सबको मिलाकरमन्दी मन्दी आग से पकावै। पकते समय इसमें नीचे लिखेहुए द्रव्यों का कल्क डाल देवै, यथा—मेदा, महामेदा, गम्भारीफल, नीलोफर, वंशलोचन, पीपल, दाख कमलगट्टा की मिंगी, सांठ, सोंठ, क्षीरकाकोली, पखाख दोनों कटेरी, काकोली, सिंघाड़ा, भव्य, उरुमाण, निकोचक, बेर, अखरोट, बादाम, मुंजात और पिस्ता, इन सबका कल्क डाल देवै, जब पकजाय तब घृत के ठंडा होने पर उस में शहत डालकर किसी घड़े में भरकर छिपाकर रखदेवै। रक्षाकर्म करने के पश्चात् इस घृत में से प्रतिदिन दो तोले सेवन करै तौ पांडुरोग, ज्वर, हिचकी, स्वरभंग, भगन्दर, पार्श्वशूल, क्षयी, खांसी प्लीहा, वातरक्त, क्षतशोष, अपस्मार, अश्मरी, शर्करा, सर्वांगरोग, एकांगरोग और मूत्रसंग दूर होजाते हैं। इसके सेवनसे बल और वर्ण बढ़ता है। वली और पलित दूर होजाते हैं। यह जीवनीय, वृष्य और धन्य है, इसके सेवन करने से वंध्या स्त्री के भी पुत्रोत्पत्ति होजाती है॥

द्राक्षादिघृत।

द्राक्षामधूकतोयाभ्यांसिद्धंवाससितोपलम्॥

अर्थ—दाख और मुलहटी के क्वाथ में सिद्ध किया हुआ घृत मिश्री मिलाकर सेवन करने से वातरक्त को दूर करता है।

गुडूच्यादिघृत॥

पिबेद्घृतंतथाक्षीरंगुडूचीस्वरसेशृतम्॥

अर्थ—गिलोयकेरसमेंदूध औरघी पकाकर के सेवन करने से वातरक्त दूर होजाताहै॥

जीवकादिघृत।

जीवकर्षभकौमेदामृष्यमोकांशतावरीम्। मधुकंमधुपर्णीञ्चकाकोलीद्वयमेवच। मुद्ग माषाख्यपर्णिन्यौदशमूलंपुनर्नवे॥ बला मृताविदार्याश्चसाश्वगन्धाश्मभेदकाः। एषांकषायकल्काभ्यांसर्पिस्तैलञ्चसाधयेत्॥

अर्थ—जीवक, ऋषभक, मेदा, कौंच के

क्षीरानुपानंत्रिवृताचूर्णंद्राक्षारसेनवा ।
काश्मर्यंत्रिवृतांद्राक्षांचूर्णंद्राक्षारसेनवा।
काश्मर्यंत्रिवृतांद्राक्षांत्रिफलांसपरूषकाम्
शृतांपिवेद्विरेकायलवणक्षौद्रसंयुताम् ॥
त्रिफलायाःकषायंवापिवेत्क्षौद्रेणसंयुतम्
धात्रीहरिद्रामुस्तानांकषायंवाकफाधिके॥

अर्थ हरड़ के क्वाथको घी में छोंककर विरेचन के लिये पीवै, ऊपर से दुग्धपान करै अथवा दाख के रस के साथ निसोथ का चूर्ण पान करै। अथवा खंभारी, निसोथ और दाख के चूर्ण को दाख के रसके साथ पीवै अथवा खंभारी, निसोथ, दाख, त्रिफला और फालसा इन के क्वाथ में सेंधानमक और शहत मिलाकर विरेचन के लिये पीवै। अथवा त्रिफला के क्वाथ में शहत मिलाकर पीवै। तथा कफाधिक वातरक्त में आंवला, हलदी और मोथा इनका क्वाथ पीवै।

योगैश्चकल्पविहितैरसकृत्तंविशोधयेत्।
मृदुभिःस्नेहसंयुक्तैर्ज्ञात्वावातंमलावृतम्॥
निर्हरेद्वामलंतस्यसघृतैःक्षीरवस्तिभिः ।
नह्यस्तिसमंकिञ्चिद्वातरक्तचिकित्सितम्।

अर्थ—जो वात मल से आवृत हो तौ कल्पस्थानोक्त मृदु योगों में स्नेह मिलाकर देवै अथवा घृत मिलाकर क्षीर वस्ति द्वारा मल को निकाले। वातरक्त में वस्तिके समान और कोई चिकित्सा नहीं हैं ।

वस्तिवंक्षणपार्श्वोरुपर्वास्थिजठरादिषु ।
उदावर्तेचशस्यन्तेनिरूहाःसानुवासनाः॥
दद्यात्तैलानिचेमानिवस्तिकर्माणिवुद्धि-
मान्। नस्याभ्यञ्जनसेकेचदाहशूलोप
शान्तये ॥

अर्थ—वातरक्त में रोगी की वस्ति, वंक्षण, पसली, ऊरू, पर्व, अस्थि और जठर के शूलोंमें या उदावर्त्त में निरूहण वस्ति देकर अनुवासन वस्ति देवै।

बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि वातरक्त के दाह और शूल की शान्ति के निमित्त वस्तिकर्म, नस्य, अभ्यंजन और परिषेक में नीचेलिखे हुए तेल देवै ॥

यष्ट्यादि तैल ।

मधुयष्ट्यास्तुलायास्तुकषायेपादशेषिते।
तैलाढकंसमक्षीरंपचेत्कल्कैःपलोन्मितैः।
शतपुष्पावरीमूर्वापयस्यागुरुचन्दनैः ॥
स्थिराहंसपदीमांसीद्विमेदामधुपर्णिभिः॥
काकोलीक्षीरकाकोलीतामलक्यृद्धिपद्म
कैः। जीवन्तीजीवकर्षभत्वक्पत्रनखवा
लकैः ॥ प्रपुण्डरीकमञ्जिष्ठाशारिवेन्द्रीवि
तुन्नकैः । चतुःप्रयोगाद्धन्तितैलंमारुत
शोणितम् । सोपद्रवंसाङ्गशूलंसर्वगात्रा
नुगंतथा ॥ वातासृक्पित्तदाहार्तिज्वर
घ्नंबलवर्द्धनम् ॥

अर्थ—एक तुला मुलहटी को अठगुने जलमें चढ़ाकर क्वाथ करै, जब चौथाई शेष रहजाय तब उतारकर छान लेवै, फिर उस में एक आढ़क तेल और उतना दूध मिलावै और एक एक पल नीचे लिखहुए द्रव्यों का कल्क मिलाकर पाककरै। द्रव्य, यथा—सौंफ, सितावर, मरोड़फली, विदारीकन्द, अगर, चन्दन, शालिपर्णी, हंसपदी, जटामांसी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकोली-क्षीरकाकोली, भूआंवला, ऋद्धि, पद्माख,

जीवन्ती, जीवक, ऋषभक,दालचीनी,तेजपात, नखी,नेत्रबाला, पुंडरिया, मजीठ,सारिवा, इन्द्रायण की जड और धनियां। ये द्रव्य डाले। इस तेल का नस्य, अभ्यंग, वस्ति और पान इन चार रीति से प्रयोग करने पर सर्व देहानुगामी सोपद्रव वातरक्त अंगशूल, पित्त, दाह, और यातना दूर होजाती है, ज्वर भी जाता रहता है। यह बल को बढानेवाला है ॥

सुकुमारकतैल ॥

मधुकस्यशतंद्राक्षाखर्जूराणिपरूषकम् ॥ मधुकौदनपाक्यौचमस्थंमुञ्जातकस्यच॥ काश्मर्य्याढकमित्येतच्चतुर्द्रोणैःपचेदयम् शेषेऽष्टभागेपूतेचतस्मिन्तैलाढकंपचेत् ॥ तथामलककाश्मर्य्यविदारीक्षुरसैःसमैः। चतुर्द्रोणेनपयसाकल्कैर्दत्वापलोन्मितम्॥ कदम्बामलकाक्षोटपद्मबीजकशेरुकम् ॥ शृङ्गाटकंशृङ्गवेरंलवणंपिप्पलींसिताम् ॥ जीवनीयैश्चसंसिद्धंक्षौद्रप्रस्थेनसंसृजेत्॥ नस्याभ्यञ्जनपानेषुवस्तौचापिनियोजयेत्। वातव्याधिषुसर्वेषुमन्यास्तम्भहनुग्रहे सर्वाङ्गैकांगवातेचक्षतक्षीणेक्षतज्वरे ॥ सुकुमारकमित्येतत्वातासामयनाशनम्॥ स्थिरवर्णकरंतैलमारोग्यबलपुष्टिदम् ॥

अर्थ—मुहलटी सौ पल, दाख एक प्रस्थ खजूर एक प्रस्थ, फालसे एक प्रस्थ, महुआ एक प्रस्थ, खरैटी एक प्रस्थ, मूज एक प्रस्थ और खंभारी एक आढक इन सबको चार द्रोण जल में पकावै,जब जलते जलते आठवां भाग रह जाय तब उतार कर छान ले फिर उस क्वाथ में आंवलेका रस,खंभारी का रस विदारीकन्द का रस, ईख का रस समान भाग मिलावै और चार द्रोण दूध मिलाकर एक आढक तेल को इन सब के साथ पकावै और नीचे लिखे हुए द्रव्यों का एक एक पल कल्क भी इस में डाल देवै, यथा कदंबकी छाल, आंवला, अखरोट, कमलगट्टा के बीज, कसेरू,सिंघाडा,अदरख नमक, पीपल और चीनी तथा जीवनीय गणकी औषध इन सबका कल्क उस में डाल देवै और पकने पर उतारकर रखलेवै जब ठंडा होजाय तब उस में एक प्रस्थ शहत मिलावै। इसका नस्य अभ्यंजन पान और वस्ति चार प्रकार से प्रयोग करै॥ इसके सेवन से सब प्रकारकी वातव्याधि मन्यास्तम्भ, हनुग्रह, सर्वांगवात, एकांगवात, क्षतक्षीण, क्षतज्वर, तथा वातरक्त संबंधी अन्य उपद्रव दूर होजाते हैं। इसका नाम सुकुमारक तैल है॥ यह तैल स्थिरकर्त्ता, वर्णोत्तेजक, आरोग्यदायक, बलवर्द्धक और पुष्टिकारक होता है।

अमृताख्य तैल ॥

गुडूचींमधुकंह्रस्वपञ्चमूलंपुनर्नवाम्। रास्नामेरण्डमूलञ्चजीवनीयानिलाभतः ॥ पलानांशतकैर्भागैर्बलापञ्चशतंतथा ॥ कोलंबिल्वंयवान्माषान्कुलत्थांश्चाढकोन्मितान्॥ काश्मर्याणांसुशुष्काणांद्रोणं द्रोणशतेऽम्भसः। साधयेज्जर्जरंधौतंचतुर्द्रोणञ्चशेषयेत्॥ तैलद्रोणंपचेत्तेनदत्वापञ्चगुणंपयः॥ पिष्ट्वात्रिपलिकञ्चै-

वचन्दनोशीरकेसरम् ॥ पत्रैलागुरुकुष्ठा नितगरंमधुयष्टिकाम् ।मञ्जिष्ठाष्टपलञ्चै वतत्सिद्धंसार्वयोगिकम् ॥ वातरक्तेक्ष तेक्षीणेभारार्त्तेक्षीणरेतसि । वेदनाक्षि प्तभग्नानांसर्वाङ्गैकांगरोगिणाम् । योनि दोषमपस्मारमुन्मादंखञ्जपंगुताम्। हन्या त्पुंसवनंचैतत्तैलाग्र्यममृताह्वयम् ॥

अर्थ—गिलोय,मुलहटी,लघुपंचमूल,सांठ, रास्ना, एरंडकी जड और जीवनीय गणकी जो जो औषध मिलसकें उनको पृथक् पृथक् सौ पल लेवै खरैटी पांच सौ पल, सूखा वेर, कच्चा विल्व, जौ, उरद और कुलथी प्रत्येक एक एक आढक, खंभारी के फल सूखे हुए एक द्रोण, इन सब को अच्छी तरह से कूटकर धोकर सौ द्रोण जल में पकावै जब चार द्रोण शेष रहजाय तब उतारकर छान ले।इस क्वाथ में एक द्रोण तेल और पचगुना दूध डालकर पकावै और नीचे लिखेहुएद्रव्यों का कल्क तीन तीन पल उस में डाल देवै, द्रव्य, यथाः- चन्दन, खस, केसर तेजपात, इलायची, अगर, कूठ,तगर,मुलहटी ये सब तीन तीन पल, मजीठ आठ पल। इस तरह इस तेल को सिद्ध करके सेवन करने से वातरक्त क्षत, क्षीण, अत्यन्त बोझ ढोने से उत्पन्न हुए रोग, क्षीणवीर्यता, वेदना, आक्षेपक, भग्नता, सर्वांग रोग, एकांगरोग,योनिदोष अपस्मार, उन्माद, खंजता और पंगुता दूर होजाते हैं। यह अमृताख्य तैल, पुंसवन उत्कृष्ट और अमृतके समान गुणकर्त्ता है॥

महापद्म तैल ।

पद्मवेतसयष्ट्याह्वफेनिलापद्मकोत्पलैः। पृथक्पञ्चपलैर्दर्भबलाचन्दनकिंशुकैः ॥ जलेश्रुतैःपचेत्तैलप्रस्थंसौवीरसम्मितम् । लोध्रपद्मोत्तरोशीरजीवकर्षभकेसरैः ॥ मदयन्तीलतापत्रपद्मकेसरपत्रकैः । प्रपुण्डरीककालीयमांसीमेदाप्रियंगुभिः ॥ कुंकुमद्विगुणैःकर्षैर्मञ्जिष्ठायाःपलेनच ॥ महापद्ममिदंतैलंवातासृग्ज्वरनाशनम् ।

अर्थ—पद्म, के फूल,वेत,मुलहटी,फेनिला (वेर) पद्माख, नीलोफर, दाभ, खरैटी, चन्दन और ढाकके फूल प्रत्येक पांचपल लेकर अठगुने जल में चढादे, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले फिर इस क्वाथ में एक प्रस्थ तैल, एक प्रस्थ सौवीर तथा नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क डालकर पाक करले । द्रव्य, यथा—लोध, पद्माख, उसीर, जीवक, ऋषभक, केसर, मल्लिका की छाल और पत्ते, कमल केसर, तेजपात, पुंडरिया काठ, कालीयक, जटामांसी, मेदा और प्रियंगु ये सब एक एक कर्ष, कुंकुम दो कर्ष और मजीठ एक पल डालकर तेल पकावै । इस तेल का नाम महापद्म तैल है इसके सेवन से वातरक्त और ज्वर दूर होजाता है ॥

खुड्डाकपद्म तैल ।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीक्वाथसाधितम्। स्यात्पिष्टैःसर्जमञ्जिष्ठावीराकाकोलिचन्दनैः । खुड्डाकपद्मकमिदंतैलंरुग्दाहनाशनम् ॥

अर्थ—पद्माख, उसीर, मुलहटी और हल्दी के काथ में राळ, मजीठ, काकोली, क्षीर काकोली और चन्दन का कल्क डाल कर तैल को पकावे यह तैल खुड्डाकपद्म कहाता है। इसका प्रयोग करने से वातरक्त में वेदना और दाह शान्त होजाती हैं।

बलादि तैल।

बलाकषायकल्काभ्यांतैलंक्षीरसमन्तथा।

अर्थ—खरैटी के काथ में उसीका कल्क और समान भाग तेल और दूध चढाकर पाक करै यह पूर्ववत् गुणकर्त्ता है॥

सहस्रपाक तैल।

सहस्रशतपाकंवावातासृग्वातरोगनुत्॥ रसायनंश्रेष्ठतममिन्द्रियाणांप्रसादनम्। जीवनंबृंहणंस्वर्य्यंशुक्रासृग्दोषनाशनम्॥

अर्थ—इस ऊपरकहे हुए तेलको सहस्र बार या सौ बार पाककरै यह वातरक्त और वातरोगों को दूर करने वालाहै। यह उत्तम रसायन और इन्द्रियों को प्रफुल्लित करने वालाहै। यह जीवन, बृहण, स्वरवर्द्धक, वीर्यदोपनाशक और रक्तदोपनाशक है॥

आरनालादि तैल।

आरनालाढकेतैलंपादसर्जरसाम्रुतम्। प्रभूतेमथितंतोयेज्वरदाहार्तिनुत्परम्॥

अर्थ—एक आढक कांजी, कांजी से चौथाई तेल, तेल से चौथाई राळ इन में बहुत सा पानी डालकर पकावे फिर रई से मथकर शरीर पर लगावे तौ ज्वर, यातना और दाह दूर होजाता है॥

पिंड तैल।

समधूच्छिष्टमाञ्जिष्टंससर्जरसशारिवम्। पिण्डतैलंतदभ्यंगाद्वातरक्तरुजापहम्॥

अर्थ—मोम, मजीठ, राळ और शारिवा इनसे चौगुना तेल और सोलह गुना जल मिलाकर पाककरै। इस पिंड तैल के लगाने में वातरक्त की वेदना दूर होजाती है॥

शतपाकमधुपर्णी तैल॥

शतेनयष्टिमधुकांसाध्यंदशगुणंपयः। तैलेचतुर्द्रोणेतस्मिन्मधुकस्यपलेनतु॥ सिद्धंमधुरकाश्मर्य्यरसैर्वावातरक्तनुत्। मधुपर्ण्याःपलंपिष्ट्वातैलप्रस्थंचतुर्गुणे॥ क्षीरेसाध्यंशतकृत्वस्तदेवमधुकाच्छृतः। सिद्धं देयंत्रिदोषेस्याद्वातासृश्वासकासनुत्। हृत्पाण्डुरोगवीसर्पकामलादाहनाशनम्॥

अर्थ—सौ पल मुलहटी को अठगुने जल में काथ करके चौथाई शेप रहनेपर छान ले फिर इसमें दसगुना दूध डालकर एक प्रस्थ तेलके साथ पकावै अथवा मुलहटी और खंभारी के रसके साथ पकावै यह वातरक्त नाशक है।

एकपल गिलोयको एक प्रस्थ तेल और चौगुने दूधके साथ सिद्ध करै फिर उस तेलको सौवार मुलहटी के क्वाथ में सिद्ध करै। यह तेल त्रिदोष, वातरक्त, श्वास, खांसी, हृद्रोग, पांडुरोग, विसर्प, कामला, और दाहको दूर करता है॥

गुडूच्यादि तैल॥

गुडूचीरसदुग्धाभ्यांतैलंद्राक्षारसेनवा। सिद्धंमधुककाश्मर्य्यरसैर्वावातरक्तनुत्॥

अर्थ—गिलोय के क्वाथ और दूध के साथ, अथवा दाख के रसके साथ अथवा

मुलहटी और खंभारी के रस के साथ सिद्ध कियाहुआ तेल वातरक्त को दूरकरता है ।

दशमूलशृतंक्षीरंसद्यःशूलनिवारणम् । परिषेकोऽनिलप्रायेतद्वत्कोष्णेनसर्पिषा। स्नेहैर्मधुरसिद्धैर्वाचतुर्भिःपरिषेचयेत् । स्तम्भाक्षेपकशूलार्तंकोष्णैर्दाहेतुशीतलैः॥ तद्वद्गव्याविकच्छागैःक्षीरैस्तैलविमिश्रितैः । निष्क्वाथैर्जीवनीयानांपञ्चमूलस्य वाभिषक् ॥ द्राक्षेक्षुरसमद्यानिदधिमस्त्व म्लकाञ्जिकम् । सेकार्थंतण्डुलक्षौद्रशर्कराम्बुचशस्यते ॥

अर्थ—दशमूलके साथ औटायाहुआ दूध तत्काल शूल नाश करनेवाला है, इसी तरह सुहातेहुए गरम घृतसे वाताधिक वातरक्त में परिषेक हित है । मधुर द्रव्यों के साथ सिद्ध कियेहुए ईषदुष्ण घृत तैल, वसा और मज्जा इन चार प्रकार के स्नेहों से परिषेक करने पर स्तम्भ, आक्षेपक, और शूलार्त्तता दूर होजाती है और दाह हो तो शीतल परिषेक हित है । इसी तरह से गौ भेड और बकरी के दूध के साथ सिद्ध कियाहुआ तेल अथवा जीवनीय औषधियों के क्वाथ के साथ अथवा पंचमूल के क्वाथ के साथ औटायाहुआ तेल हित है । वातरक्त में परिषेक के लिये दाख का रस, ईख का रस, मद्य, दहीका तोड़, कांजी, तंडुलजल शहतका जल और खांडका जल हित है ॥

कुमुदोत्पलपद्माद्यैर्मणिहारैःसचन्दनैः ॥ शीततोयानुगैर्दाहेमोक्षणंस्पर्शनंहितम् ॥ चन्द्रपादाम्बुसंसिक्तेःक्षौमपद्मदलच्छदे । शयनेपुलिनस्पर्शशीतमारुतयोगिनि ॥ चन्दनार्द्रकराग्र्यःप्रियानार्यःप्रियंवदाः। स्पर्शाच्छीतसुखस्पर्शाघ्नन्तिदाहंरुजंक्लमम् ॥

अर्थ—दाहकी शान्तिके लिये कमोदनी, नीलकमल, पद्म से आदि लेकर अन्यकमल मणियों के हार, चन्दन इनको शीतल जल में भिगोकर दाहवालेके छींटे मारता रहै या इनका उसे स्पर्श करावै ।

चन्द्रमाकी किरण और शीतल जल से संसिक्त, रेशमीवस्त्र और कमलपत्र से आच्छादित पुलिनों के बीच में ठंडी ठंडी हवा चली आती हो, शय्यापरउपर चंदनसे भीगीहुई देहवाली प्रियभाषिणी स्त्रियोंके शीतल सुखदायक स्पर्श से वातरक्त की दाह वेदना और ग्लानि दूर होजाते हैं ॥

सरागरुजेदाहेरक्तंमुक्त्वाप्रलेपयेत् । मधुकाम्लत्वचसमांसीवीरोदुम्बरशाद्वलैः॥ जलजैर्यवचूर्णैर्वायुयष्ट्याह्वपयोघृतैः । सर्पिषाजीवनीयैर्वापिष्टैर्लेपोऽनिलदाहनुत् तिलाःपियालंमधुकंबिसंमूलंचवेतसात्। सघृतःपयसापिष्टःप्रदेहोदाहरागनुत् ॥ प्रपुण्डरीकमञ्जिष्ठादार्वीमधुकचन्दनैः । सितोपलैरकासक्तुमसूरोशीरपद्मकैः ॥ लेपोदाहेविसर्पेचरागशोफनिबर्हणः । पित्तरक्तोत्तरेस्वेतेलेपावातोत्तरेशृणु ॥

अर्थ—वातरक्त में जो ललाई, दाह और वेदना हो तो रक्त निकाल कर मुलहटी, पीपल की छाल, जटामासी, क्षीरकाकोली

गूलरकी छाल, और हरी दूब का लेप करे अथवा कमल और जौकाचून अथवा मुलहटी, दूध और घी का लेपकरना चाहिये। अथवा जीवनी गणकी औषधियों को घीके साथ पीसकर लेप करनेसे भी दाह दूर हो जाताहै। तिल, पियाल, मुलहटी, कमलनाल और बेतकी जड इनको दूध और घी के साथ पीसकर लेप करै तौ दाह और ललाई दूर होजाती है। पुण्डरिया काठ, मजीठ, दारुहलदी, मुलहटी और चन्दन तथा चीनी नीलकमल, सरकंडे की जड सक्तू, मसूर, उशीर, और पद्माख इनका लेप करने से दाह विसर्प, ललाई और शोफ दूर होजातेहैं।

अब उन लेपोंका वर्णन कियाजाता है जो वातप्रधान पित्तरक्त में हित हैं।

वातघ्नैःसाधितःस्निग्धःकृसरामुद्गपायसः तिलसर्षपपिष्टाश्चाप्युपनाहारुजापहाः ॥ औदकप्रसहानूपवेपवाराःसुसंस्कृताः। जीवनीयौषधस्नेहयुक्ताःस्युरुपनाहनैः। स्तम्भतोदरुगायासशोथाङ्गग्रहनाशनाः। जीवनीयौषधैःसिद्धाःसपयस्कावसापि वा ॥ घृतंसहचरान्मूलंजीवन्तीछाग लंपयः। लेपाःपिष्टास्तिलास्तद्वद्भ्रष्टाः प यसिनिर्वृताः ॥ क्षीरपिष्टमुमालेपमरण्ड स्यफलानिवा। कुर्याच्छूलनिवृत्तयर्थंश ताह्वामनिलेऽधिके ॥

अर्थ—वातनाशक औषधियोंके साथ सिद्ध कियाहुआ कृसरा, मूंग, पायस अथवा तिल औरसरसोंके पिष्टकका उपनाह वेदना को दूर करताहै अथवा, जलज, प्रसह और आनूप इन के मांस का वेशवार अच्छीतरह मसाले डालकर तयार किया हुआ तथा जीवनीय गणोक्त औषध और स्नेह से संस्कार कियाहुआ उपनाह स्तम्भ, तोद वेदना, यातना, शोथ और अंगग्रह को दूरकरता है अथवा जीवनीय औषधों के साथ सिद्ध की हुई दूध और चर्बी भी हित है। घृत, सहचरी की जड जीवन्ती और बकरी का दूध इनका लेप भी हितकारी है। इसीतरह घी में भुनेहुए तिलों को दूध के साथ पीसकर लेप करने पर दाह शान्त होता है। इसी तरह वाताधिक वातरक्त में शूलकी शान्ति के लिये दूध में पिसीहुई अलसी, दूध में पिसेहुए अंडी के बीज अथवा दूध में पिसीहुई सौंफका लेप हितकर है ॥

दसमूलाग्रच्छैरण्डक्वाथेद्विप्रस्थिकंपृथक्। घृततैलंसमज्जासानूपंमृगपक्षिणाम् ॥ कल्कार्थेजीवनीयानिगव्यंक्षीरमथाजकम् हरिद्रोत्पलकुष्ठैलाशताह्वावरुणच्छदान्- बिल्वमात्राप्रथक्पुष्पंकाकुम्भंचापिसाध- येत्। मधूच्छिष्टपलान्यष्टौदद्यात्सिद्धे- ऽवतारिते ॥ शूलेनैपोऽहिताङ्गानांलेपः सन्धिगतेऽनिले। वातरक्तेक्षतेभग्नेखञ्जे कुब्जेचशस्यते ॥

अर्थ—अरंड की जड, डाली और पत्तों का क्वाथ दो प्रस्थ, घृत, तेल और आनूप पशुपक्षियों की वसा और मज्जा, गौ और बकरी का दूध तथा कल्क के लिये जीवनीयगणकी औषध और हलदी, नीलोफर कूठ, इलायची, सौंफ, बरनाके पत्ते, और

अर्जुनके फूल पृथक् पृथक् एक एक पल डालकर पकावै, जब पकजाय तब उतार कर उसमें आठ पल मोम डाल देवै । यह शूलार्दित अंग, संधिगत वायु,स्रावयुक्त वातरक्त, भग्न,खंज और कुब्जरोगमें हित होताहै

कफप्रधान वातरक्त में चिकित्सा ।

शोफगौरवकण्ड्वाद्यैर्युक्तेत्वस्मिन्कफोत्तरे ।मूत्रक्षारसुरापक्वंघृतमभ्यञ्जनेहितम् सिद्धंसमधुशुक्तंस्यात्सेकाभ्यङ्गःकफोत्तरे क्षीरस्तैलङ्गवांमूत्रंजलञ्चकटुकैःशृतम् । परिषेकाःप्रशस्यन्तेवातरक्तेकफोत्तरे ॥

अर्थ—कफाधिक वातरक्त में जिसमें सूजन, भारापन और खुजली आदि उपद्रव भी हों उसमें गोमूत्र क्षार और सुराके साथ सिद्ध कियेहुए घृतका परिषेक और अभ्यंग हितहै । इसरोगमें पद्माख,दालचीनी मुलहटी, और शारिवा तथा मधुशुक्त केसाथ सिद्ध किया हुआ घृत परिषेक और अभ्यगमें हितहै । दूध, तेल, गोमूत्र,और त्रिकुटा इन से औटायाहुआ जल कफप्रधान वातरक्त में परिषेक के लिये हित है ॥

लेपःसर्षपनिम्बार्कहिंस्राक्षीरातिलैर्हितः । श्रेष्टःसिद्धःकपित्थत्वग्घृतक्षीरैःसशक्तुभिः ॥ द्वेहरिद्रेवचागारधूमकुष्ठशताह्विकाः॥ प्रलेपःशूलनुद्वातरक्तेवातकफोत्तरे तगरंत्वक्शताह्वैलाकुष्ठंमुस्तंहरेणुकाः॥ दारुव्याघ्रंनखश्चाम्लापिष्टंवातकफार्तिनुत् मधुशिग्रोर्हितंतद्वद्बीजंधान्याम्लसंयुतम् मुहूर्तंलिप्तमम्लैश्चसिञ्चेद्वातकफोत्तरम् ॥ त्रिफलाव्योषपत्रैलात्वक्क्षीरंचित्रकं वचाम् । विडङ्गंपिप्पलीमूलंलोमशंवृषकत्वचम् । ऋद्धिंतामलकञ्चिव्यंसमभागानिपेषयेत् ॥ कल्कंलिप्तमयस्पात्रेमध्याह्नेभक्षयेत्ततः ॥

अर्थ—सफेद सरसों,नीमकी छाल,आक, हिंसि, दूध और तिल इनका लेप हित है, अथवा कैथ, दालचीनी और जौ का सत्तू इन के साथ में घी और दूध मिलाकर लेप करै । अथवा दोनों हल्दी, वच, धूमसा, कूठ और सौंफ इन का लेप भी वातकफोत्तर वातरक्त में शूल को दूर करता है । अथवा तगर, दालचीनी, सौंफ इलायची, कूठ, मोथा, हरेणु, देवदारु, और व्याघ्रनख इन को कांजी में पीसकर लेप करनेसेवात कफकी अधिकतावाले वातरक्त का शूल दूर होता है । अथवा लाल सहजनेके बीजों को धान्याम्ल के साथ पीसकर दो घड़ी तक लेप लगा रहने देवै पीछे कांजी से धो डालै । अथवा त्रिफला, त्रिकुटा, तेजपात, इलायची, वंशलोचन, चीता, वच, वायंविडंग, पीपलामूल, जटामांसी, अडूसेकी छाल, ऋद्धि, भूयआंवला, और चव्य इस को समान भाग लेकर पीस डालै फिर इस कल्क को एक लोहेके पात्र पर लेपकर देवै और दुपहर के समय इसको खा लेवै।

वातरक्त में पथ्य विधि ।

वर्जयेद्दधिशुक्तानिक्षारंवैरोधकानिच ॥ वातास्रेसर्वदोषेऽपिमतंशूलार्दितेपरम् ॥ बुद्ध्वास्थानविशेषांश्चदोषाणाञ्चबलाबलम् ॥ चिकित्सितमिदंकुर्य्यादूहापोहविकल्पवित् ॥

गूलरकी छाल, और हरी दूब का लेप करें अथवा कमल और जौकाचून अथवा मुलहटी, दूध और घी का लेपकरना चाहिये । अथवा जीवनी गणकी औषधियों को घीके साथ पीसकर लेप करनेसे भी दाह दूर हो जाताहै । तिल, पियाल, मुलहटी, कमलनाल और वेतकी जड इनको दूध और घी के साथ पीसकर लेप करै तौ दाह और ललाई दूर होजाती है । पुण्डरिया काठ, मजीठ, दारुहलदी, मुलहटी और चन्दन तथा चीनी नीलकमल, सरकंडे की जड सक्तू, मसूर, उशीर, और पद्माख इनका लेप करने से दाह विसर्प, ललाई और शोफ दूर होजातेहैं।

अब उन लेपोंका वर्णन कियाजाता है जो वातप्रधान पित्तरक्त में हित हैं ।

वातघ्नैःसाधितःस्निग्धःकृसरामुद्गपायसः तिलसर्षपपिष्टाश्चाप्युपनाहारुजापहाः ॥ औदकप्रसहानूपवेपवाराःसुसंस्कृताः । जीवनीयौषधस्नेहयुक्ताःस्युरुपनाहनैः । स्तम्भतोदरुगायासशोथाङ्गग्रहनाशनाः । जीवनीयौषधैःसिद्धाःसपयस्कावसापि वा ॥ घृतंसहचरान्मूलंजीवन्तीछाग लंपयः । लेपाःपिष्टास्तिलास्तद्वद्भृष्टाः प यसिनिर्वृताः ॥ क्षीरपिष्टमुमालेपएरण्ड स्यफलानिवा । कुर्याच्छूलनिवृत्त्यर्थश ताव्हामनिलेऽधिके ॥

अर्थ—वातनाशक औषधियोंके साथ सिद्ध कियाहुआ कृसरा, मूंग, पायस अथवा तिल औरसरसोंके पिष्टकका उपनाह वेदना को दूर करताहै अथवा, जलज, प्रसह और आनूप इन के मांस का वेशवार अर्थातह मसाले डालकर तयार किया हुआ तथा जीवनीय गणोक्त औषध और स्नेह से संस्कार कियाहुया उपनाह स्तम्भ, तोद वेदना, यातना, शोथ और अंगग्रह को दूरकरता है अथवा जीवनीय औषधों के साथ सिद्ध की हुई दूध और चर्बी भी हित है । घृत, सहचरी की जड जीवन्ती और बकरी का दूध इनका लेप भी हितकारी है । इसीतरह घी में भुनेहुए तिलों को दूध के साथ पीसकर लेप करने पर दाह शान्त होता है । इसी तरह वाताधिक वातरक्त में शूलकी शान्ति के लिये दूध में पिसीहुई अलसी, दूध में पिसेहुए अंडी के बीज अथवा दूध में पिसीहुई सौंफका लेप हितकर है ॥

दसमूलाग्रच्छदैरण्डक्वाथेद्विप्रस्थिकंपृथक् । घृततैलंवसामज्जासानूपंमृगपक्षिणाम् ॥ कल्कार्थेजीवनीयानिगव्यंक्षीरमथाजकम् हरिद्रोत्पलकुष्ठैलाशताव्हावरुणच्छदान्- बिल्वमात्राप्पृथक्पुष्पंकाकुम्भंचापिसाध- येत् । मधूच्छिष्टपलान्यष्टौदद्यात्सिद्धे- ऽवतारिते ॥ शूलेनैषोऽदिताङ्गानांलेपः सन्धिगतेऽनिले । वातरक्तेक्षतेभग्नेखञ्जे कुब्जेचशस्यते ॥

अर्थ—अरंड की जड, टाली और पत्तों का क्वाथ दो प्रस्थ, घृत, तेल और आनूप पशुपक्षियों की वसा और मज्जा, गौ और बकरी का दूध तथा कल्क के लिये जीवनीयगणकी औषध और हलदी, नीलोफर कूठ, इलायची, सौंफ, बरनाके पत्ते, और

अर्जुनके फूल पृथक् पृथक् एक एक पल डालकर पकावै, जब पकजाय तब उतार कर उसमें आठ पल मोम डाल देवै । यह शूलार्दित अंग, संधिगत वायु,स्रावयुक्त वातरक्त, भग्न,खंज और कुब्जरोगमें हित होताहै

कफप्रधान वातरक्त में चिकित्सा ।

शोफगौरवकण्ड्वाद्यैर्युक्तेत्वस्मिन्कफोत्तरे ।मूत्रक्षारसुरापक्वघृतमभ्यञ्जनेहितम् सिद्धंसमधुशुक्तंस्यात्सेकाभ्यङ्गःकफोत्तरे क्षीरस्तैलङ्गवांमूत्रंजलञ्चकटुकैःशृतम् । परिषेकाःप्रशस्यन्तेवातरक्तेकफोत्तरे ॥

अर्थ—कफाधिक वातरक्त में जिसमें सूजन, भारापन और खुजली आदि उपद्रव भी हों उसमें गोमूत्र क्षार और सुराके साथ सिद्ध कियेहुए घृतका परिषेक और अभ्यंग हितहै । इसरोगमें पद्माख,दालचीनी मुलहटी, और शारिवा तथा मधुशुक्त केसाथ सिद्ध किया हुआ घृत परिषेक और अभ्यंगमें हितहै । दूध, तेल, गोमूत्र,और त्रिकुटा इन से औटायाहुआ जल कफप्रधान वातरक्त में परिषेक के लिये हित है ॥

लेपःसर्षपनिम्बार्कहिंस्राक्षीरतिलैर्हितः । श्रेष्टःसिद्धःकपित्थत्वग्घृतक्षीरैःसशक्तुभिः ॥ द्वेहरिद्रेवचागारधूमकुष्ठशताह्विकाः॥ प्रलेपःशूलनुद्वातरक्तेवातकफोत्तरे तगरंत्वक्शताह्वैलाकुष्ठंमुस्तंहरेणुकाः॥ दार्व्याघ्रनखश्चाम्लपिष्टंवातकफार्तिनुत् मधुशिग्रोर्हितंतद्वद्बीजंधान्याम्लसंयुतम् मुहूर्तंलिप्तमम्लैश्चसिञ्चेद्वातकफोत्तरम् ॥ त्रिफलाव्योषपत्रैलात्वक्क्षीरीचित्रकंवचाम् । विडङ्गंपिप्पलीमूलंलोमशंवृषकत्वचम् । ऋद्धितामलकञ्चव्यंसमभागानिपेषयेत् ॥ कल्कंलिप्तमयस्पात्रेमध्याह्नेभक्षयेत्ततः॥

अर्थ—सफेद सरसों,नीमकी छाल,आक, हींस, दूध और तिल इनका लेप हित है, अथवा कैथ, दालचीनी और जौ का सत्तू इन के साथ में घी और दूध मिलाकर लेप करै । अथवा दोनों हल्दी, वच, धूमसा, कूठ और सौंफ इन का लेप भी वातकफोत्तर वातरक्त में शूल को दूर करता है । अथवा तगर, दालचीनी, सौंफ इलायची, कूठ, मोथा, हरेणु, देवदारु, और व्याघ्रनख इन को कांजी में पीसकर लेप करनेसेवात कफकी अधिकतावाले वातरक्त का शूल दूर होताहै । अथवा लाल सहजनेके बीजों को धान्याम्ल के साथ पीसकर दो घड़ी तक लेप लगा रहने देवें पीछे कांजी से धो डालै । अथवा त्रिफला, त्रिकुटा, तेजपात, इलायची, वंशलोचन, चीता, वच, वायविडंग, पीपलामूल, जटामांसी, अडूसेकी छाल, ऋद्धि, भूयआंवला, और चव्य इस को समान भाग लेकर पीस डाले फिर इस कल्क को एक लोहेके पात्र पर लेपकर देवै और दुपहर के समय इसको खा लेवै।

वातरक्त में पथ्य विधि ।

वर्जयेद्दधिशुक्लानिक्षारंवैरोधकानिच ॥ वातास्रेसर्वदोषेऽपिमतंशूलार्दितेपरम् ॥ बुद्ध्वास्थानविशेषांश्चदोषाणाञ्चबलाबलम् ॥ चिकित्सितमिदंकुर्यादूहापोहविकल्पवित् ॥

अर्थ—वातरक्त में दही, शुक्त, क्षार और विरोधकर्त्ता द्रव्यों का परित्याग कर देना चाहिये। संपूर्ण दोषों से युक्त वातरक्त और शूल में स्थान और दोषों के बलाबल की अच्छी तरह परीक्षा करके उक्तगणों में प्रयोजन के अनुसार औषधियां को घटा बढाकर चिकित्सा करने में प्रवृत्त होवे।

कुपितमार्गसंरोधान्मेदसोवाकफस्यवा ॥
अतिवृद्ध्याऽनिलेनादौशस्तंस्नेहनबृंहणम्
व्यायामशोधनारिष्टमूत्रपानैर्विशोधितैः॥
तक्राभयाप्रयोगैश्चक्षपयेत्कफमेदसी ॥
बोधिवृक्षकषायस्तुपिबेत्तंमधुनासह। वा
तरक्तंजयत्याशुत्रिदोषमपिदारुणम् ॥
पुराणयवगोधूमशीध्वरिष्टासवैस्तथा ॥
शिलाजतुप्रयोगैश्चगुग्गुलोर्माक्षिकस्यच।
पश्चाद्वातेक्रियांकुर्याद्वाचरक्तप्रसाधनीम्॥

अर्थ—मेद और कफ के मार्ग के रुकजाने से जब वायु अत्यन्त कुपित होकर अत्यन्त बढजाय तब स्नेहन वा बृंहणक्रिया हित होती है। व्यायाम, शोधन, अरिष्ट गोमूत्रपान, विरेचन तथा मठा और हरड के प्रयोगों से कफ और मेदा को दूर करने का उपाय करे। अश्वत्थ की छाल के काथ में शहत डालकर पीने से त्रिदोषजन्य दारुण वातरक्त भी दूर होजाता है।

पुराने जौ, गेंहूं, शीधु, अरिष्ट और आसव का प्रयोग करे अथवा शिलाजीत,गूगल वा शहत का प्रयोग करके कफ और मेद को शान्त करै पीछे वातरक्त को दूर करनेवाली क्रिया करै।

गम्भीरेरक्तमाक्रान्तंस्याच्चेतद्वातवर्जयेत्
रक्तपित्तातिवृद्ध्यातुपाकमाशुनियच्छति
भिन्नस्रवातिवारक्तंविदग्धंपूयमेववा ॥
तयोःक्रियाविधातव्याव्यधशोधनरोपणी
कुर्यादुपद्रवाणांचक्रियांस्वांस्वाच्चिकित्सितात्।

अर्थ—गंभीर वातरक्त में जो रक्त वायु से आक्रान्त होतो उस में चिकित्सा न करे रक्तपित्त के अधिक बढजाने से वातरक्त में तत्काल पाक होता है तब उस के भिन्न होने पर विदग्धरक्त और पीव निकलने लगता है। ऐसे समय में पके हुए को वेधन करके भिन्न में शोधन और रोपणकर्त्ता क्रिया करनी चाहिये। और इस में जो कोई उपद्रव खडे होंतो उनकी चिकित्सा रोग रोग के अनुसार करनी चाहिये॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

हेतुस्थानानिमूलञ्चयस्मात्प्रायश्चसन्धिषु। कुप्यतिप्राक्चयेरूपंद्विविधस्यचलक्षणम्॥ पृथग्भिन्नस्यलिङ्गञ्चदोषाधिक्य मुपद्रवाः॥साध्यंयाप्यमसाध्यञ्चाक्रियासाध्यस्यचाखिला॥ वातरक्तस्यनिर्दिष्टा समासव्यासतस्तथा। महर्षिणाग्निवेशा यतथैवावस्थिकीक्रिया॥

अर्थ—इस वातरक्त चिकित्सित नामक अध्याय में वातरक्त के हेतु, उत्पत्ति के स्थान, मूल, प्रायः संधियों में उत्पत्ति होने का कारण, प्राग्रूप, गंभीर और आभ्यंतर दो प्रकार के भेद, भिन्न वातरक्तके लक्षण दोषों की अधिकता, उपद्रव, साध्यता,

याप्यता और असाध्यता के लक्षण, साध्य वातरोग की सब तरह की चिकित्सा तथा अवस्थानुसार चिकित्सा आदि सब बातें संक्षेप और विस्तार दोनों प्रकार से वर्णन की गईहैं.॥ इन सब बातों का उपदेश महर्षि आत्रेयने अग्निवेश को किया है।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेशात्रेयविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सितस्थानेवातरक्तचिकित्सितंनामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

——::——

त्रिंशोऽध्यायः

अथातोयोनिव्यापच्चिकित्सितंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम योनिव्यापच्चिकित्सित नामक अध्यायकी व्याख्या करेंगे।

दिव्यौषधिजलस्वादुधातुचित्रशिलावति। पुण्येहिमवतःपार्श्वेसुरसिद्धर्षिसेविते ॥ विहरन्तंतपोयोगात्तत्त्वज्ञानार्थदर्शिनम्। कृष्णात्रेयंजितात्मानंअग्निवेशोऽनुपृष्टवान्। भगवन्! स्त्यपत्यानांमूलंनायःपरंनृणाम्। तद्विघातोगदैश्चासांक्रियतेयोनिमाश्रितैः ॥ तासांतेषांसमुत्पत्तिमुत्पन्नानाञ्चलक्षणम्। औषधंश्रोतुमिच्छामिप्रजानुग्रहकाम्यया ॥ इतिशिष्येणपृष्टस्तमोवाचर्षिवरोऽत्रिजः।

अर्थ—पुण्यवान् हिमालयके उच्चशिखर पर जहां अनेक प्रकारकी दिव्य औषधियां उगी हुईथी, मिष्टजल बह रहाथा, जहां अनेक प्रकारकी धातुमय शिला सुशोभित थीं और जहां अनेक देवता, सिद्ध और ऋषिमुनि निवास करतेथे वहां विचरतेहुए तपोयोग सम्पन्न और तत्वज्ञानार्थदर्शी, जितेंद्रिय कृष्णात्रेयसे अग्निवेशने प्रश्न किया कि हे भगवन्! मनुष्यों के लिये स्त्रियां विषयभोग और संतानोत्पत्ति का मूल कारणहैं, परन्तु जब उनकी योनियों में रोग होजाता है, तब दोनों बातों का नाश होजाता है अतएव हे प्रभो! मैं प्रजाकी भलाईके हेतु स्त्रियोंके योनिरोगोंकी उत्पत्तिके कारण, उत्पन्न हुए रोगोंके लक्षण और उनकी औषध श्रवण करनेकी इच्छा करताहूं॥

शिष्यके इस प्रश्नको सुनकर महर्षि आत्रेय ने व्याख्या करनेका प्रारम्भ किया।

योनिरोगोंकी संख्या।

विंशतिर्व्यापदोयोनेर्निर्दिष्टारोगसंग्रहे॥ मिथ्याचारेणताःस्त्रीणांप्रदुष्टेनार्तवेनच। जायन्तेबीजदोषाच्चदैवाच्चशृणुताः पृथक् ॥

अर्थ—रोगसंग्राहाध्याय में यह बात वर्णनकरचुके हैं कि योनिरोग बीस प्रकारके होतेहैं। इन सब रोगोंकी उत्पत्ति स्त्रियों के मिथ्या आहार बिहार दुष्ट आर्त्तव, बीज दोष और देवप्रकोप इन चार कारणों से होतेहैं।

वातल योनिरोगों के लक्षण।

वातलाहारचेष्टायावातलायासमीरणः। विवृद्धोयोनिमाश्रित्ययोनेस्तोदंसवेदनम्॥ स्तम्भंपिपीलकासृप्तिमिवकर्कशतांतथा॥

करोतिसुप्तिमायामंवातजांश्चापरान्गदान् ॥ सास्यास्सशब्दरुक्फेनंतनुरूक्षार्तवानिलात् ॥

अर्थ--वातल प्रकृतिवाली स्त्रीके वातोत्पादक आहार, विहार और चेष्टा करने के कारण वायु अत्यन्त कुपित होकर योनिका आश्रय लेकर योनि में वेदनायुक्त सुई छेदनेके समान पीडा उत्पन्न करतीहै तथा स्तम्भता, चींटी चलने का सा अनुभव, कर्कशता, सुप्ति, आयाम, और अन्य वातज रोग भी उत्पन्न होते हैं । तथा वात के कारण उस स्त्रीकी योनिमेंसे पतला, रूखा शब्द करता हुआ झागदार रक्तनिकलता है

पित्तल योनिरोगोंके लक्षण।

व्यापत्तथाम्ललवणक्षाराद्यैःपित्तजाभवेत्॥ दाहपाकज्वरोष्णार्तानीलपीतासितार्तवा। भृशोष्णकुणपस्रावायोनिस्यात्पित्तदूषिता

अर्थ---खट्टे, नमकीन और क्षारादि मिश्रित पदार्थो के अत्यन्त सेवन से पित्तज योनिरोग होते हैं, उनरोगोंके होने से योनिमें दाह, पाक, ज्वर, उष्णता, और यातना होतीहै तथा योनि में से नीला, पीला, काला आर्त्तव निकलता है और अत्यन्त उष्ण मुर्देकीसी गंधका स्राव होता रहता है ।

श्लैष्मिक योनिरोगों के लक्षण ।

कफोऽभिष्यन्दिभिर्वृद्धोयोनिंचेद्दूषयेत्स्त्रियाः । सशीतांपिच्छिलांकुर्यात्कण्डूग्रस्तां सवेदनाम् ॥ पाण्डुवर्णतथापाण्डुपिच्छिलार्तववाहिनीम् ।

अर्थ---अभिष्यन्दी आहार के सेवन से कफ बढकर स्त्रीकी योनि में कफज रोगोंको उत्पन्न करता है, इन रोगों के कारण योनि में शीतलता, पिच्छिलता, खुजली, वेदना और पांडुता होती है और योनि मेंसे पीला पीला गिलगिला आर्त्तव निकलता है ॥

सान्निपातिक योनिरोगोंके लक्षण

समश्नत्यारसान्सर्वान्दूषयित्वात्रयोमलाः ॥ योनिगर्भाशयस्थैःस्वैर्योनिंयुञ्जन्तिलक्षणैः ।साभवेद्दाहशूलार्ताश्वेतपिच्छिलवाहिनी ॥

अर्थ---त्रिदोषकारक आहार के सेवन से सम्पूर्ण रसों को दूषित करके योनि और गर्भाशयका आश्रय लेकर अपने २ लक्षणों को प्रकट करते हैं, इन रोगों के होने से दाह, शूल और यातना अधिक होती है तथा योनि में से सफेद और गिलगिला आर्त्तव निकलता है ।

रक्तपित्तजन्य योनिरोग ।

रक्तपित्तकरैर्नार्यारक्तंपित्तेनदूषितम् । अतिप्रवर्ततेयोन्यालब्धेबीजेऽपिसाभजाः॥

अर्थ---रक्तपित्तोत्पादक आहारादि सेवन करने से रक्त पित्त के कारण दूषित होकर योनिमें से अत्यन्त रक्त निकलने लगताहै बीजके ग्रहणकरने परभी स्त्रीके संतान नहीं होतीहै ॥

अरजस्का योनिलक्षण ।

योनिगर्भाशयस्थंचेत्पित्तंसंदूषयेतदसृक्। सारजस्कामताकार्श्यवैवर्ण्यजननीभृशम्॥

अर्थ---योनि और गर्भाशय में स्थित पित्त जब रक्त को दूषित करदेता है तब रजोधर्म होना बन्द होजाता है और स्त्री

अत्यन्त दुर्बल और विवर्ण होजाती है,ऐसी योनि को **अरजस्का** कहते हैं ।

अचरणा योनि के लक्षण ।

योन्यामधावनात्कण्डूंजाताःकुर्वन्तिजन्तवः । सास्यादचरणाकण्ड्वातयातिनरकांक्षिणी ॥

अर्थ—योनि को न धोने से उसमें एक प्रकार के अदृश्य छोटे कीडे पडकर खुजली उत्पन्न करते हैं, उस खुजली के कारण योनि पुरुषकी अत्यन्त इच्छा करती है, ऐसी योनिको **अचरणा** कहते हैं ॥

अतिचरणा योनि के लक्षण ।

पवनोऽतिव्यवायेनशोफसुप्तिरुजःस्त्रियाः करोतिकुपितोयोनौसाचातिचरणामता

अर्थ—अत्यन्त मैथुन करनेके कारण वायु कुपित होकर योनि में सूजन, सुप्ति और वेदना करदेती है ऐसी योनि को **अतिचरणा** कहते हैं ।

प्राक्चरणा योनि के लक्षण ।

मैथुनादतिबालायाःपृष्ठजंघोरुवंक्षणम् । रुजयन्दूषयेद्योनिंवायुःप्राक्चरणातुसा ॥

अर्थ—अत्यन्त बाला स्त्री के साथ मैथुन करने से उसकी पीठ, जांघ, ऊरू और वंक्षण में वेदना उत्पन्न करके वायु योनि को दूषित कर देती है, ऐसी योनि को **प्राक्चरणा** कहतेहैं (प्राक्चरणा नियमित समय से पूर्व संगम की हुई) ।

उपप्लुतायोनिके लक्षण ।

गर्भिण्याःश्लेष्मलाभ्यासाच्छर्दिःश्वासविनिग्रहात् । वायुःक्रुद्धःकफंयोनिमुपनीयमदूषयेत् ॥ पाण्डुंसतोदतमास्रावंश्वेतंस्रवतिवाकफम् । कफवातामयव्याप्तासास्याद्योनिरुपप्लुता॥

अर्थ—कफजन्य आहार के अत्यन्त सेवन करने से, तथा वमन, श्वास आदिवेगों के रोकने से गर्भिणी स्त्री के वायु दूषित होकर कफको योनि में लाकर योनि को दूषित करदेती है तब योनिमें से सुई छिदने के समान वेदना से युक्त पाण्डुवर्ण का स्राव होता है अथवा सफेद२ कफ निकलता है । कफवात रोगों से युक्त ऐसी योनिको **उपप्लुता** कहते हैं ।

परिप्लुतायोनि के लक्षण ।

पित्तलायानृसंवासेक्षवथूद्गारधारणात् । पित्तसंमूर्च्छितोवायुर्योनिंदूषयतिस्त्रियाः शूनास्पर्शाक्षमासार्तिर्नीलपीतमसृक्स्रवेत् श्रोणीवंक्षणपृष्ठार्तिज्वरार्तायाःपरिप्लुता

अर्थ—पित्तप्रकृतिवाली स्त्री के मैथुन के समय छींक या डकार आवै. और यदि वह उनको रोकले तौ पित्तयुक्त वायु कुपित होकर स्त्रीकी योनि को दूषित करदेती है उस समय योनि ऐसी सूजजाती है कि हाथ नहीं लगाया जासक्ता है और उस में से वेदनायुक्त नीला पीला स्राव होने लगताहै। तथा स्त्री की कमर, वंक्षण, और पीठ में वेदना और ज्वर होता है । ऐसी योनि को **परिप्लुता** कहते हैं ।

उदावृतायोनि के लक्षण ।

वेगोदावर्तनाद्योनिमुदावर्तयतेऽनिलः । सारुगार्तारजःकृच्छ्रेणोदावृत्तांविमुञ्चति

अर्थ—अधोवेगों के रोकने से वायु के कारण योनिका वेग ऊपरको होता है, इस से बडे कष्ट के साथ रजःसंबंधी आर्त्तव निकलता है इसे उदावृता योनि कहते हैं।

उदावर्तिनी योनि के लक्षण।

आर्तवेयाविमुक्तेतुतत्क्षणंलभतेसुखम् । रजसोगमनादूर्द्ध्वंज्ञेयोदावर्तिनीबुधैः ॥

अर्थ—आर्तवके निकलने से जिसमें तत्काल चैन पड़जाता है, उस योनि को रजके ऊपर जाने के कारण उदावर्तिनी कहतेहैं॥

कर्णिनीयोनि के लक्षण।

अकालेवाहमानायागर्भेणपिहितोऽनिलः कर्णिकाञ्जनयेद्योनौश्लेष्मरक्तेनमूर्च्छितः रक्तमार्गावरोधिन्यासातयाकर्णिनीमता।

अर्थ—छोटी अवस्था में गर्भ धारण करने से गर्भ के कारण आच्छादित वायु कफ और रक्त से मिलीहुई एक प्रकार की कर्णिका योनिके मुखमें उत्पन्न करदेती है, यह रक्त के मार्गको रोकदेती है इससे इस योनिको कर्णिनी कहते हैं ॥

पुत्रघ्नी के लक्षण।

रौक्ष्याद्वायुर्यदागर्भंजातंजातंविनाशयेत्। दुष्टशोणितजंनार्याःपुत्रघ्नीनामसामता ॥

अर्थ—जो गर्भ स्त्री के दूषित रक्त से उत्पन्न होता है उसको जब जब वह उत्पन्न होता है तब तबही वायु रूक्षता के कारण नष्ट करदेती है । ऐसी योनि को पुत्रघ्नी कहते हैं ॥

अन्तर्मुखी योनि के लक्षण।

व्यवायमतिवृप्तायाभजन्त्यास्त्वन्नपीडितः वायुर्मिथ्यास्थिताङ्गायायोनिस्रोतसिसंस्थितः । वक्रयत्याननंयोन्याःसास्थिमांसानिलार्तिभिः ॥ भृशार्तिर्मैथुनासक्ता योनिरन्तर्मुखीमता ।

अर्थ—जब स्त्री अत्यन्त पेट भरकर खाने के पीछे अन्याय रीति से पुरुष संगम में प्रवृत्त होती है तब वायु उसकी योनि के स्रोत में स्थित होकर योनि के मुखको टेढ़ा करदेती है उसको हड्डी और मांस में अत्यन्त वेदना होती है, ऐसी स्त्री मैथुन मे असमर्थ होजाती है, इसे अन्तर्मुखी योनि कहते हैं ॥

सूचीमुखी के लक्षण।

गर्भस्थायाःस्त्रियारौक्ष्याद्वायुर्योनिंप्रदूषयन् ॥ मातृदोषादणुद्वारांकुर्यात्सूचीमुखीतुसा ।

अर्थ—माताके दोष के कारण वायु रूक्ष होकर गर्भस्थ कन्याकी योनिको दूषित कर के उसके योनिद्वारको छोटा करदेती है । ऐसी योनि को सूचीमुखी कहते हैं ।

शुष्का योनि के लक्षण।

व्यवायकालेरुन्धन्त्यावेगान्प्रकुपितोऽनिलः ॥ कुर्याद्विण्मूत्रसङ्गार्तिंशोषंयोनिमुखस्यतु ।

अर्थ—मैथुन के समय जब स्त्री मलमूत्र के वेगों को रोक लेती है तब वायु कुपित होकर विष्ठा और मूत्र को रोककर योनि को शुष्क करदेती है, ऐसी योनि को शुष्का कहते हैं ॥

वामिनी के लक्षण।

षड्ढात्सप्तरात्राद्वाशुक्रंगर्भाशयंगतम् ॥

सरुजंनीरुजंवापियास्रवेत्साचवामिनी ।

अर्थ—जिस स्त्री की योनिमें से गर्भाशय में पहुंचा हुआ वीर्य वेदना से या विनाही वेदना छः सात दिन के भीतर निकल पडता है उसे वामिनी कहते हैं ॥

पण्डी के लक्षण ।

बीजदोषात्तुगर्भस्थामारुतोपहताशया ॥ नृद्वेपिण्यस्तनीचैवपण्डीस्यादनुपक्रमा ।

अर्थ—बीज दोष के कारण जिस गर्भस्थ कन्याका गर्भाशय नष्ट होजाता है वह पुरुष की इच्छा नहीं करती है, न उसके कुच निकलतेहैं, ऐसी स्त्री पण्डी वा हींजडी कहातीहै । इसकी चिकित्सा हीं नही होती है।

महायोनि के लक्षण ।

विषमंदुःखशय्यायांमैथुनात्कुपितोऽनिलः ॥ गर्भाशयस्ययोन्याश्चमुखंविष्टम्भयेत्स्त्रियाः । असंवृतमुखासार्तिरूक्षफेनास्रवाहिनी ॥ मांसोत्सन्नामहायोनिःपर्ववंक्षणशूलिनी । इत्येतैर्लक्षणैःप्रोक्ताविंशतिर्योनिजागदाः ॥

अर्थ—टूटे हुए कष्टोत्पादक पलंग पर विषमरीति से सोकर जो पुरुष संगम में प्रवृत्त होती है, उसकी वायु कुपित होकर गर्भाशय और योनिमुख को स्तंभित कर देती है, इसकारण से योनि असंवृत मुखा वेदनायुक्त, रूखा और झागदार आर्त्तव निकालने वाली और मांसोपचिता होजाती है, इस स्त्री के संधि और वंक्षण में शूल होने लगता है, यह महायोनि होती है। बीस प्रकार के योनिरोग और उन के लक्षण इस प्रकार से वर्णन किये गये हैं ॥

नशुक्रंधारयन्त्येभिर्दोषैर्योनिरुपद्रुता । तस्माद्गर्भंनगृह्णातिस्त्रीगच्छत्यामयान्बहून् ॥ गुल्मार्शःप्रदरादींश्चवाताद्यैश्चातिपीडनम् ।

अर्थ—इन दोषों से उपद्रुत योनि वीर्य धारण नहीं कर सकती है, न गर्भ को ग्रहण कर सकती है तथा गुल्म, अर्श और प्रदरादिक अनेक प्रकार के उपद्रव हो जाते हैं और वह वातरोगों से सदाही पीडित रहती है ।

योनिरोगों में दोषपरत्व ।

आसांषोडशयास्तासांमध्येद्वेपित्तदोषजे॥ परिप्लुतावमिनीचवातपित्तात्मकेमते ! कर्णिन्युपप्लुतेवातकफात्शेषास्तुवातजाः देहंवातादयस्तासांस्वैर्लिङ्गैःपीडयन्तिहि।

अर्थ—इन बीस प्रकार के योनि दोषों में पहिले चार वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातिक हैं । शेष सोलह में से पहिले दो (रक्तपित्तजा और अरजस्का) पित्तसे उत्पन्न हैं । परिप्लुता और वामिनी वातपित्तसे उत्पन्न हैं, कर्णिनी और उपप्लुता वातकफ से उत्पन्न हैं और शेष आठ केवल वात से उत्पन्न हैं । इन में से वातादिक दोष अपने अपने लक्षणों से देह को पीडित करते हैं ॥

वातजरोगों में चिकित्सा ।

स्नेहनस्वेदवस्त्यादिवातलास्वनिलापहम्।

अर्थ—वातज योनि रोगोंमें स्नेहन स्वेदन और वस्त्यादि उपचारों से वात शान्त होजाती है ।

पित्तजरोगों में क्रिया ।

कारयेद्रक्तपित्तघ्नंशीतपित्तकृतासुच ।

अर्थ--पित्तजनित योनिरोगों में रक्तपित्त नाशिनी शीतक्रिया हित है ॥

कफजयोनिरोगों में क्रिया ।

श्लेष्मलासुचरूक्षोष्णंकर्मकुर्याद्विचक्षणः॥

अर्थ--कफजयोनि रोगों में रूक्ष और उष्णकर्म करना हित है ।

सान्निपातिक योनिरोग में चिकित्सा ।

सन्निपातेविमिश्रन्तुसंसृष्टासुचकारयेत् ।

अर्थ--त्रिदोषज और द्विदोषज योनि. रोगोंमें तीनों प्रकार की मिलीहुई चिकित्सा करनी चाहिये ।

वायुजन्ययोनिरोग में चिकित्सा ।

स्निग्धस्विन्नांतथायोनिंदुःस्थितांस्थापयेत्पुनः । पाणिनानामयेज्जिह्मांनिःसृतांसंप्रवेशयेत् । वर्धयेत्संवृताश्चैवविवृतां परिवर्तयेत् । योनिःस्थानापवृत्ताहिशल्य भूतास्त्रियामता ॥

अर्थ--वायुजन्य योनिरोगो में योनिको स्निग्ध और स्वेदित करके जो योनि अपने ठीक स्थान में न हो उसे ठीक स्थानपर लावै । जो योनि टेढी हो उसे हाथ से नवावै, जो वाहर निकल आईहो उसे भीतर को फिर प्रवेश करै, सुकडी हुई योनिको चौडी करै और चौडी हुई को सुकडी करै । जो योनि अपने निज स्थान से हटजातीहै वह स्त्रियों के शल्यस्वरूप है ॥

सर्वांव्यापन्नयोनिन्तुकर्म्माभिर्वमनादिभिः । मृदुभिःपञ्चभिर्नारींस्निग्धस्विन्नामुपाचरेत् ॥ सर्वतःसुविशुद्धायाःशेषंकर्म्मविधीयते । वातव्याधिहरंकर्म्मवातार्तानांसदाहितम् ॥ औदकानूपजैर्मांसैः क्षीरैःसतिलतण्डुलैः । सवातघ्नौषधैर्नाडीकुम्भीस्वेदैरुपाचरेत् ॥ युक्तांलवणतैलेन साश्मप्रस्तरशङ्करैः । स्विन्नांकोष्णांवुसिक्तांगींवातघ्नैर्भोजयेद्रसैः ।

अर्थ--सब प्रकार के योनिरोगों में स्त्री को प्रथम स्नेहन और स्वेदन कर्म कराके मृदु वमन विरेचनादि पांचों कर्मोका प्रयोग करै, इस तरह जब योनि सब तरहसे शुद्ध होजाय तब शेष कर्मो का विधान करै । वायु से उत्पन्न योनि रोगों में सदैव वात व्याधिनाशक कर्म हित होते हैं । वातज योनि रोगमें औदक और आनूपमांस, दूध, तिल, चांवल और वातनाशक औषधियें इन सब का पाक करके नाडी स्वेद कुम्भी स्वेद द्वारा उपचार करै । अथवा, लवण और तैल का योग करके अश्मघन प्रस्तर स्वेद और संकर स्वेद द्वारा स्वेदित करके गरम जल का परिषेक करै पीछे वातनाशक मांस रसों का भोजन करावै ॥

अन्य प्रयोग ।

वलाद्रोणद्वयकाथेघृततैलाढकद्वयम् ।स्थिरापयस्याजीवन्तीवीरर्षभकजीवकैः ॥ श्रावणीपिप्पलीमूलपीलुमाषपर्णीभिः । शर्कराक्षीरकाकोलीकाकनासाभिरेवच ॥ पिष्टैश्चतुर्गुणक्षीरंतथैवचयथावलम् । वातपित्तकृतान्रोगान्हत्वागर्भंदधातितत् ॥

अर्थ—बलाके दो द्रोण काथ में घी और तेल प्रत्येक एक एक आढक डाले, तथा सालपर्णी, क्षीर विदारी, जीवन्ती, क्षीरकाकोली, ऋषभक, जीवक, श्रावणी पीपलामूल, पीलू, मांसपर्णी, शर्करा, क्षीरकाकोली, कौआटोंटी इन सबका कल्प चार सेर,और सोलैंह सेर दूध इन सब को पकावै । इस घृत तैल का यथाबल सेवन करने से वात पित्तरोगों के दूर होने पर स्त्री गर्भधारण कर लेती है ॥

काश्मर्य्यादि घृत ॥

काश्मर्यत्रिफलाद्राक्षाकासमर्दपरूपकैः ।
पुनर्नवाहरिद्राभ्यांकाकनासासहाचरैः॥
शतावर्यागुडूच्याश्चमस्थमक्षसमैर्घृतात् ।
साधितंयोनिवातघ्नंगर्भदंपरमंपिबेत् ॥

अर्थ....खंभारी, त्रिफला, द्राक्षा,कसोंदी, फालसा, सांठ, दोनों हलदी, कौआटोंटी, सहचर, सितावर और गिलोय इन सब में से प्रत्येक का कल्क दो दो तोले इन सब के समान घृत मिलाकर चौगुने जल के साथ पाककरै । यह घृत सब प्रकार वात जन्यरोगोंको दूर करके गर्भधारण करानेवालाहै

अन्यप्रयोग ।

पिप्पल्यःकुञ्चिकाजाजीवृषकंसैन्धवंवचाम् । यवक्षाराजमोदौचशर्करांचित्रकं तथा ॥ पिष्ट्वासर्पिषिभृष्टानिपाययेतम सन्नया ।योनिपार्श्वार्तिहृद्रोगगुल्मार्शो विनिवृत्तये ॥

अर्थ—पीपल, कालाजीरा, सफेद जीरा, अडूसा, सेंधानमक, वच, जवाखार, अजमोदशर्करा, चीता, इन सब का कल्क कर के घी में भूनकर प्रसन्ना के साथ सेवन करै तो योनिशूल,पार्श्वशूल, यातना,हृद्रोग गुल्मरोग और अर्श दूर होजाते हैं ।

वृषकंमातुलुङ्गस्यमूलानिमदयन्तिकाम्।
पिबेत्सलवणैर्मद्यैःपिप्पल्यःकुञ्चिकेतथा॥
श्वदंष्ट्रांवृषकंरास्नांपिबेच्छूलेपयःशृतम् ।
गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्चपरिषेचयेत् ।
सैन्धवंतगरंकुष्ठंबृहतीदेवदारुणःसमांशैःसाधितंकल्कैस्तैलंधार्यंरुजापहम् ॥

अर्थ—अडूसे की जड़,बिजौरे की जड़, मल्लिका की जड,इन को पीसकर सेंधेनमक और मद्य के साथ पान करै, इसी तरह से पीपल और जीरा पीस कर सेंधेनमक और मद्य के साथ पीवै । जो योनि में शूल होता होतौ गोखरू, अडूसा और रास्ना पीसकर दूध के साथ पाक कर के पान करै अथवा गिलोय, त्रिफला और दन्ती के क्वाथ से योनि का प्रक्षालन करै । अथवा सेंधानमक, तगर, कूठ, कटेरी,देवदारु, इनको समान भाग लेकर इनके कल्क के साथ तेल पकावै फिर इस तेल में रुईका फोआ भिगो कर योनि में रख देवै इस से वेदना जाती रहती है ।

अन्य पिचु ॥

गुडूचीमालतीव्याघ्रीश्रेयसीसुरदारुभिः।
बलाचित्रकयष्ट्याह्वयूथिकाभिश्चकार्पिकैः। तैलप्रस्थंगवांमूत्रेक्षीरेणाद्विगुणंपचेत्॥
वातार्तायैपिचुंतस्माद्योनौचमणयेत्सदा॥

अर्थ—गिलोय, मालती, कटेरी रास्ना,

देवदारु, सरैटी, चीता मुलहटी और चमेली की जड इनको एक एक कर्ष लेवै । इन के कल्क के साथ एक प्रस्थ तेल, दो प्रस्थ गोमूत्र और इतनाही दूध मिलाकर पाक करै इस तेल में एक फोआ भिजो कर वातरोग से पीडित स्त्री की योनि में रख देवै इस से योनि सदा प्रणिहित रहती है ।

अन्यप्रयोग ॥

हिंस्राकल्कन्तुवातार्ताकोष्णमभ्यज्यधारयेत् ॥

अर्थ—हिंस्रा को पीस कर घीमें सानकर उसकी लुगदी को वातार्त्ता योनि में थोडा गरम करके रख देवै ॥

कफपित्तरोगों में क्रिया ॥

पञ्चवल्कस्यपित्तार्ताश्यामादीनांकफातुरा । पित्तलानान्तुयोनीनांसेकाभ्यङ्गपिचुक्रिया ॥ शीताःपित्तहराःकार्याःस्नेहनानिघृतानिच ।

अर्थ—पित्तजयोनिरोगों में पंचवल्कलका कल्क तथा कफजन्य योनिरोगों में अनंतमूल का कल्क योनि में रक्खे। पित्तलायोनि वाली स्त्रियों की योनि में परिषेक, अभ्यंग पिचुक्रिया, पित्तनाशिनी शीतलक्रिया, तथा स्नेहनकर्ता घृतों का प्रयोग हित है ।

शतावरी घृत ।

शतावरीमूलतुलाःचतस्रःसंप्रपीडयेत् ॥
रसेनक्षीरतुल्येनपचेत्तेनघृताढकम् ॥
जीवनीयैःशतावर्यामृद्वीकाभिःपरूपकैः॥
पियालैश्चाक्षकैःपिष्टैद्वियष्टीमधुकैःपचेत् ॥
सिद्धेशीतेचमधुनःपिप्पल्याश्चपलाष्टकम् सितादशपलोन्मिश्रात्लिह्यात्पाणितलंततः
योन्यसृक्शुक्रदोषघ्नंवृष्यंपुंसवनञ्चतत् ॥
क्षतंक्षयंरक्तपित्तंकासंश्वासंहलीमकम् ।
कामलांवातरक्तञ्चवीसर्पंहृच्छिरोग्रहम्॥
उन्मादायामसंन्यासंवातपित्तात्मकंजयेत्

अर्थ—सितावरकी जड की चार तुला लेकर कूट डालै और उसे कपडे में निचोड कर रस निकाल ले। फिर इस रस में इतनाही दूध और एक आढक घृत डाल कर पकावै तथा जीवनीय गणोक्त द्रव्यों का कल्क, सितावर, किसमिस, फालसा, पियाल, दोनों प्रकार की मुलहटी सब दो दो तोले डालकर पकावै ।पकने के पीछे ठंडा होने पर इस घृत में शहत आठ पल,पीपल आठ पल और मिश्री दस पल इन सबको मिलाकर प्रति दिन दो तोले सेवन करै तौ योनिदोष, रक्तदोष, वीर्यदोष, क्षत, क्षय, रक्तपित्त, खांसी, श्वास, हलीमक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृद्रोग, शिरोग्रह, उन्माद, आयास, सन्यास और अन्य वातपित्तात्मक रोग दूर होजाते हैं । यह घृत पुष्टिकारक और पुंसवन है ।

अन्यउपाय ॥

एवमेवक्षीरसर्पिर्जीवनीयोपसाधितम् ॥
गर्भदंपित्तलानांचयोनीनांस्याद्धिपग्जितम् ॥

अर्थ—इसीतरह से जीवनीय गणके साथ सिद्ध किया हुआ दूध का घी गर्भकारक और पित्तलयोनिरोगोंको दूर करानेवालाहै ।

कफजयोनिरोगों में चिकित्सा ।

योन्याःश्लेष्मप्रदुष्टायावर्तिःसंशोधनीहि

ता॥ वाराहेवहुशःपित्तेभावितैर्नक्तकैःकृता॥ भावितंपयमार्कस्यमाषचूर्णससैन्धवम्॥ वर्तिःकृताम्रुहुर्धार्यातत्तःसेव्यासुखाम्बुना। पिप्पल्यामरिचैर्माषैःशताह्वा कुष्टसैन्धवैः॥ वर्तिस्तुल्याप्रदेशिन्याधार्यायोनिविशोधनी।

अर्थ—कफदूषित योनियों में संशोधनी बत्ती का प्रवेश करना हित है। पुराने कपड़ेकी बत्ती बनाकर उसे शूकर के पित्ते की कई भावना देकर योनि में रखदेवै॥ उरद का चून और उस के समान सेंधानमक पीसकर एक बत्ती बनावै इसको आक के दूधकी भावना देकर योनिमें थोड़ी देर रक्खै फिर उसे गरमजल से धोडालै। अथवा पीपल, कालीमिरच, उरद, सोंफ, कूठ, सेंधानमक इन सबकी तर्जनी उंगली के समान बत्ती बनाकर योनि में रखने से योनि शुद्ध होजाती है।

योनिशोधक तैल।

उदुम्बरशलाटूनांद्रोणमब्द्रोणसंयुतम्॥ सपञ्चवल्ककुलकनिम्बमालतिपल्लवम्। निशांस्थाप्यंजलेतस्मिंस्तैलप्रस्थंविपाचयेत्॥ लाक्षाधवपलाशत्वङ्निर्यासैःशाल्मलेनच। पिष्टैःसिद्धञ्चतत्तैलंपिचुयोनौनिधापयेत्॥ सशर्करैःकषायैश्चशीतैः कुर्यात्सेचनम्। पिच्छिलाविप्लुताकालन्दुष्टयोन्यथदारुणा॥ सप्ताहाच्छुद्ध्यति क्षिप्रमपत्यञ्चापिविन्दति।

अर्थ—कच्चे गूलर के एकद्रोण छिलके तथा इतनेही पञ्चवल्क, परवलके पत्ते, नीम के पत्ते, मालती के पत्ते इनसब को दूने जल में रात्रिके समय भिगोदेवै। प्रातःकाल इसे मसलकर रस छानले, इस रसमें एक प्रस्थ तैल पकावै, पकते समय इसमें लाख, धौकानिर्यास, पलासका निर्यास, सेमर का गोंद पीसकर डालदे। जब पकजाय तब इसमें रुईका एकफोआ भिगोकर योनि में रखदेवै, तदनंतर, पूर्वोक्त उदुम्बरादि द्रव्यों के शीतल क्वाथ में शर्करा मिलाकर योनि को धोवै। इस प्रयोग से पिच्छिला, विप्लुता दूषिता, दारुणा, कैसीही योनि क्यों न हो सातदिन में शुद्ध होजाती है और शीघ्र उस के सन्तान भी होती है।

अन्यप्रयोग।

उदुम्बरस्यदुग्धेनषट्कृत्वोभावितांस्तिलान्॥ तैलंकाथेचतस्यैवसिद्धंधार्यञ्च पूर्ववत्।

अर्थ—गूलरके दूधमें तिलोंको छः भावना देकर उनका तेल निकाले। इस तेल को गूलरकी छालके क्वाथमें पकावै, इसमें रुईका फोआ भिगोकर योनिके भीतर रखने से पूर्वोक्त गुण होते हैं।

धातक्यादि तैल।

धातक्यामलकीपत्रस्रोतोजमधुकोत्पलैः॥ जम्ब्वाम्रमध्यकासीसलोध्रकट्फलतिन्दुकैः॥ सौराष्ट्रिकदाडिमत्वगुदुम्बरशलाटुभिः॥ अक्षमात्रैरजामूत्रक्षीरेचद्विगुणे पचेत्। तैलप्रस्थंपिचुंतस्माद्योनौचप्रणयेत्ततः॥ कटीपृष्ठत्रिकाभ्यङ्गंस्नेहोबस्तिंचदापयेत्। पिच्छिलस्राविणीयोनिर्वि

प्लुतोपप्लुतातथा ॥ उत्तानाचोन्नता शूनासिद्धेस्तस्फोटशूलिनी।

अर्थ—धायके पत्ते, आंवलेके पत्ते, शंख नाभि, मुलहटी, नीलकमल, जामनकीमिंगी, आँमकीमिंगी, हीराकसीस, लोध, कायफल, तेंदू, सौराष्ट्रमृत्तिका, अनार के छिलके कचागूलर ये सब दो २ तोले लेकर पीसले, इनमें एक प्रस्थ तेल, बकरीका मूत्र दो प्रस्थ और चार प्रस्थ दूध डालकर पकावै। इस तेलमें एक रुईका फोआ भिगोकर योनि में रक्खे, तथा, कमर पीठ और त्रिक मे इस तेलकी मालिश करावै । स्नेहन वस्ति में इसका प्रयोग करै । इस तैल से पिच्छिलस्राविणी, विप्लुता, उपप्लुता, उत्ताना उन्नता, शोथयुक्ता, स्फोटयुक्ता, और शूल युक्तायोनि अच्छी होजाती है ।

अन्यप्रयोग ।

करीरधवनिम्बार्कवेणुकोशाम्रजाम्बवैः॥ जिङ्गिणीत्वपमूलानांकाथःमार्द्वीकशीधुभिः सशुक्तैर्धावनंमिश्रैर्योन्यास्रावविनाशनम्॥ कुर्यात्सतक्रगोमूत्रशुक्तैर्वात्रिफलारसैः ।

अर्थ—करील, धौकी लकडी, नीमकी छाल, आमकी जड़, वेणु, कोशाम्र, जामन की गुठली, मजीठ और अडूसे की जड, इन सब का काथ, दाखका मद्य और शुक्त इनको मिलाकर योनिको धोने से उस का स्राव मिटजाता है, इसी तरह से तक्र, गोमूत्र और शुक्त मिलाकर अथवा केवल त्रिफला के रससे योनि को धोवै ।

योनिरोग में अवलेह ।

पिप्पल्ययोरजःपथ्याप्रयोगामधुनाहिताः

अर्थ—योनिरोग में पीपल, लोहचूर्ण, हरड इनका चूर्ण शहत के साथ चाटने से बहुत उपयोगी होता है ॥

योनिरोग में वस्ति कर्म ।

श्लेष्मलायांकटुप्रायाःसमूत्रावस्तयोहिताः पित्तेसमधुरक्षीरावातेतैलाम्लसंयुताः ॥ सन्निपातसमुत्थायाःकर्म्मसाधारणंमतम्।

अर्थ—श्लेष्मला योनि में कटुद्रव्यों से युक्त गोमूत्रकी वस्ति हितहै । पित्तल योनि में मधुर क्षीर युक्त वस्ति तथा वातलायोनि में तेल और खटाई की वस्ति उपयोगी होती है । इसी तरह त्रिदोषज योनि रोगों में तीनों दोषोंकी मिली हुई चिकित्सा हित कर होती है ॥

रक्त प्रदर में चिकित्सा ।

रक्तयोन्यामसृग्वर्णैरनुबन्धंसमीक्ष्यच ॥ ततःकुर्याद्यथादोषंरक्तस्थापनमौषधम् ।

अर्थ—जिस योनि में से रक्त बहता हो उस में रक्तका रंग देखकर दोषके अनुसार रक्तको रोकने की औषध देवै ।

वातज रक्तप्रदरमें चिकित्सा।

तिलचूर्णदधिघृतंफाणितंशौकरीवसा ॥ क्षौद्रेणसंयुतंपेयंवातासृग्दरनाशनम् । वराहस्यरसोमेध्यःसकौलत्थोऽनिलाधिके शर्करातैलयष्ट्याह्वनागरैर्वायुतंदधि ॥

अर्थ—तिलका चूर्ण, दही, घी, राब, और शूकरकी चर्बी इनको शहतके साथ सेवन करने से वातज रक्तप्रदर दूर होजाता है । अथवा कुलथीके काथमें सिद्ध किया हुआ शूकरका मांसरस देवै अथवा चीनी, तेल,

मुलहटी और सोंठ इनके साथमें दही देवै।

पैत्तिक रक्तप्रदरमें चिकित्सा।

पयस्योत्पलशालूककाविसकालीयकाम्बुजान् ॥ सपयःशर्कराक्षौद्रं पैत्तिकेऽसृग्दरे पिबेत् ।

अर्थ—पैत्तिक रक्तप्रदरमें क्षीरकाकोली, नीलकमल, शालूक, कमलनाल, कालीयक और पद्मकमल इनके कल्क को दूध, चीनी और शहत के साथ सेवन करने से पैत्तिक रक्तप्रदर दूर होजाता है ॥

पुष्यानुगचूर्ण।

पाठाजम्ब्वाम्रयोर्मध्यं शिलाभेदं रसाञ्जनं अम्बष्ठकी मोचरसं समङ्गां वत्सकत्वचम् । वाह्लीकातिविषे बिल्वं मुस्तं लोध्रं सगैरिकम् कट्फलं मरिचं शुण्ठीं मृद्वीकां रक्तचन्दनम्। कट्वङ्गवत्सकानन्तां धातकीमधुकार्जुनम्। पुष्येणोद्धृत्य तुल्यानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्॥ तानि क्षौद्रेण संयोज्य पिबेन्नातण्डुलाम्बुना। अर्शःसु चातिसारेषु रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥ दोषागन्तुकृता ये च बालानां तांश्च नाशयेत्॥ योनिदोषरजोदुष्टं श्वेतं नीलं सपीतकम् ॥ स्त्रीणां श्यावारुणं यच्च प्रसह्य विनिवर्तयेत् । चूर्णं पुष्यानुगं नाम हितमात्रेयपूजितम्॥

अर्थ—पाठा, जामन की गुठली, आमकी गुठली, पाखानभेद, रसांजन, पाठा, मोचरस लज्जालू, कुडाकी छाल, हींग, अतीस, बेलगिरी, मोथा, लोध, गेरू, कायफल, काली मिरच, सोंठ, दाख, रक्तचंदन, श्योनाक, इन्द्र जौ, अनन्तमूल धायके फूल, मुलहटी और अर्जुन इन सबको पुष्य नक्षत्रमें इकट्ठे करके समान समान भाग मिलाकर चूर्ण बनालेवै । चूर्ण में शहत मिलाकर तंडुल जल के साथ सेवन करै । इसके सेवन से अर्श, अतिसार, जमाहुआ रुधिर, बालकोंके आगन्तुकदोष, योनिदोष, रजोदोष सफेद नीला पीला श्याव और अरुणप्रदरतौ अवश्यही दूर होजाते हैं । महर्षि आत्रेयसे प्रशंसित इस चूर्ण का नाम पुष्यानुग है ।

प्रदरमें अन्यचिकित्सा।

तण्डुलीयकमूलञ्च सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना॥ सरसाञ्जनं लाक्षं वा छागेन पयसा पिबेत् ॥ पत्रकल्कौ घृते भृष्टौ राजादनकपित्थयोः ॥ पित्तानिलहरौ पैत्ते सर्वं चैवास्रपित्तजित् ॥ मधुकं त्रिफलां लोध्रं मुस्तं सौराष्ट्रिकां मधु । मद्यैर्निम्बगुडूच्यौ तु कफजेऽसृग्दरे पिबेत् विरेचनं महातिक्तं पित्तजेऽसृग्दरे पिबेत् ॥ शुभं गर्भपरिस्रावे चोक्तं सर्वेषु कारयेत् ॥

अर्थ—चौलाईकी जडको घोटकर शहत और तंडुलजलके साथ पान करै, अथवा रसांजन और लाखको बकरी के दूधके साथ पीवै । अमलतास और कैथ के पत्तों को पीसकर घीमें भूनकर सेवन करै तौ पैत्तिक प्रदर में वात पित्त और सब प्रकार के रक्त पित्त दूर होजाते हैं । कफज प्रदरमें मुलहटी त्रिफला, लोध, मोथा, सौराष्ट्रमृत्तिका, इनके कल्क को शहत के साथ सेवन करै अथवा नीमकी छाल और गिलोय के कल्क को मद्य के साथ पान करै । पित्तज प्रदर में कुष्ठाध्यायोक्त महातिक्तक घृतसे विरेचन

देवै तथा गर्भस्राव के रोकने के लिये जो जो औषधें बर्णनकी गई हैं वेभी इसमें हितहैं।

रक्तयोन्यादि की चिकित्सा।

काश्मर्यकुटजक्वाथसिद्धमुत्तरवस्तिना। रक्तयोन्यरजस्कानांपुत्रघ्न्याश्चाहितेघृतम्॥ मृगाजाविवराहासृग्दध्यम्लफलसर्पिषा। अरजस्कापिबेत्सिद्धंजीवनीयैःपयोऽपिवा॥

अर्थ—कुडाकी छाल और खंभारी इनके क्वाथ में चौथाई घृत पकाकर उत्तर वस्ति द्वारा प्रयोग करने से रक्तयोनि, अरजस्का और पुत्रघ्नी के दोष दूर होजाते हैं। हिरण बकरा, भेड और सूअर इन के रुधिर में दही, खटाई और घी डालकर सेवन करे अथवा जीवनीय गणकी औषधियां डालकर सिद्ध किया हुआ दूध पान करने से अरज स्का योनिका दोष दूर होजाता है।

कर्णिन्यचरणाशुष्कयोनिप्राक्चरणासुतु कफवातेचयोक्तव्यंतैलमुत्तरवस्तिना॥

अर्थ—कर्णिनी, अचरणा, शुष्कयोनि, प्राक्चरणा और कफवात से दूषित योनि में वातनाशक औषधियों से सिद्ध किये हुए तेल की उत्तर वस्ति देवै।

गोपित्तमत्स्यपित्ताभ्यांक्षौमंत्रिःसप्तभावितम्। मधुनाकिण्वचूर्णवादद्यादचरणापहम्॥ स्रोतसांशोधनंकण्डूक्लेदशोफहरञ्चतत्।

अर्थ—गौका पित्ता मछली का पित्ता इन में रेशमीवस्त्र के टुकडे को इक्कीस भावना देकर योनि में रख देवै अथवा सुराबीज के चूर्ण में शहत मिलाकर योनि में रक्खै।इस से अचरणा दोष दूर होजाता है, स्रोत शुद्ध होजातेहैं तथा खुजली, क्लेद और शोथ दूर होजाता है॥

वातघ्नैःशतपाकैस्तुतैलैःप्रागभिचारणे॥ आस्थाप्येचानुवास्येचस्वेद्येचानिलम् दनैः। स्नेहद्रव्यैस्तथाहारैरुपनाहैश्चयु क्तितः॥ शताह्वायवगोधूमकिण्वकुष्ठ प्रियंगुभिः। बलासुपर्णिकाश्वाह्वैःसं- याबोधारणःस्मृतः।

अर्थ—प्राक्चरणाऔर अचरणा इनदोनों योनियों में वातनाशक शतपाक तैलोंद्वारा आस्थापन और अनुवासन वस्तिदेवै और वात नाशक द्रव्यों द्वारा स्वेदन करावै।वायु नाशक द्रव्यों का आहार तथा वायुनाशक उपनाह करना चाहिये। सोंफ, जौ, गेहूं, सुराबीज, कूठ, प्रियंगु, खैरटी, मूषिकपर्णी और असगंध इनका कल्क योनि में धरै॥

वामिनीऔरआप्लुतायोनिमेंचिकित्सा

वामिन्याप्लुतयोन्याश्चकर्तव्यःस्वेदनोऽ पिवा। क्रमःकार्यस्ततःस्नेहःपिचुभिस्त र्पणंभवेत्॥ शल्लकीजिंगिनीजम्बूधवत्व क्पञ्चवल्कलैः। कषायैःसाधितःस्नेहः पिचुःस्याद्विप्लुतापहः॥

अर्थ—वामिनी और आप्लुता योनि में प्रथम स्वेदन करके पीछे संस्कार किये हुए स्नेह का फोआ रखकर संतर्पण करै शल्लकी, मजीठ, जामनकी छाल धौकी, छाल और पंचवल्कल इन के क्वाथ में सिद्ध किये हुए तेल का फोआ विप्लुता योनि में रखने से रोग की शान्ति होती है॥

कर्णिनीयोनिमें चिकित्सा ।

कर्णिन्यांवर्तिकाकुष्ठपिप्पल्यार्काग्रसैन्धवैः
वस्तिमूत्रकृताधार्यासर्वंचश्लेष्मनुद्धितम्॥

अर्थ—कर्णिनीयोनिमें कूठ, पीपल, आक की डाली का अग्रभाग और सेंधानमक इन को बकरे के मूत्र के साथ पीसकर कल्क करलेवै, फिर इसकी वत्तीसी बनाकर योनि में रक्खै तथा इस में कफनाशक सब प्रकार की क्रिया भी हित हैं।

उदावृत्तायोनि की चिकित्सा ।

त्रैवृतंस्नेहनंस्वेदोग्राम्यानूपौदकारसाः।
दशमूलपयोवस्तिश्चोदावर्तानिलार्तिषु॥
त्रैवृतेनानुवास्याचवस्तिश्चोत्तरसंज्ञितः।
तदेवचमहायोन्यांस्रस्तायाश्चाविधीयते॥
वसाऋक्षवराहाणांघृतञ्चमधुरैःशृतम् ।
पूरयित्वामहायोनिंबध्नीयात्क्षौमनक्तकैः॥

अर्थ—वाताधिक्य उदावृत्तायोनि में निसोथ का विरेचन, स्नेहन, स्वेदन, ग्राम्य आनूप और जलज पशुपक्षियों का मांसरस और दशमूल के क्काथ में सिद्ध किये हुए दूध की वस्ति देवै। इसमें निसोथके साथ सिद्ध किये स्नेह की वस्ति और उत्तर वस्ति भी हित होती है। शिथिल हुई महायोनि में भी यही क्रिया हित होती है। रीछ और सूअर की चर्बी और घृत मधुर गणके क्काथ के साथ सिद्ध करके योनि में भरकर ऊपर सेरेशमीवस्त्रकी पट्टी बांधदेवै।

बहिःनिष्क्रान्तयोनिकीचिकित्सा ।

प्रस्थस्तांसर्पिषाभ्यज्यक्षीरस्विन्नांप्रवेश्य-
चाबध्नीयाद्वेसवारस्यपिण्डेनामूत्रकालतः।

अर्थ—जो योनिबाहर निकलआई हो उसपर घृत चुपड़कर दूध से स्वेदित करके भीतर को प्रवेश करदेवै। और वेशवारका पिण्डा उस के मुखपर रखकर बांधदेवै जिस से फिर बाहर न निकलने पावै, और मूत्र की आशंका होने पर उसे खोलदेवै॥

यद्यवातविकाराणांकर्मोक्तंतच्चकारयेत् ।
सर्वंव्यापत्सुमतिमान्महायोन्यांविशेषतः

अर्थ—वातविकारों में जो जो चिकित्सा शुभ फलदायक हैं वे सब भी इस जगह सब प्रकार के योनिरोगों में करनी चाहिये परन्तु महायोनि में वातनाशक चिकित्साका विशेष ध्यान उचित है।

नहिवातादृतेयोनिर्नारीणांसंप्रदुष्यति ।
शमयित्वातमन्यस्यकुर्याद्दोषस्यभेषजम्।

अर्थ—वातके अतिरिक्त और किसी कारण से योनिरोग नहीं हुआ करते हैं, इस से प्रथम वातको शमन करके और दोषोंकी चिकित्सा करनी चाहिये।

पांडुप्रदरमें चिकित्सा ।

मूलकल्कंतुरोहीतात्पाण्डुरेप्रदरेपिबेत् ।
जलेनामलकाद्बीजकल्कंवाससितामधु॥
मधुनामलकाच्चूर्णंरसंवालेह्येदसिते ।
न्यग्रोधत्वक्कषायेणलोध्रकल्केनवापिबेत्॥

अर्थ—पांडुप्रदर में रोहेडे की जडका कल्क करके जल के साथ पीवै, अथवा आंवले के बीजों को पीसकर चीनी और शहत के साथ पीवै, अथवा आंवले का चूर्ण वा रस शहत के साथ पीवै। अथवा बडकी छाल के क्काथ में लोध का कल्क मिलाकर पीवै॥

योनिस्राव में चिकित्सा।

आस्रावेक्षौमपट्टंवाभावितंतेऽनुधारयेत्। प्लक्षत्वक्चूर्णपिण्डंवाधारयेन्मधुनोक्षतम्। योन्यास्नेहाक्तयालोध्रप्रियंगुमधुकस्यच। धार्यामधुयुतावर्तिःकषायाणाञ्चसर्वशः॥ स्रावच्छेदार्थमभ्यक्तांधूपयेद्वाघृताप्लुतैः। सरलागुग्गुलुयवैःसतैलकटुमत्स्यकैः॥

अर्थ—योनिस्राव में वडकी छाल के क्वाथ अथवा लोध की छालके क्वाथ में रेशमी वस्त्र के एक टुकडेको भावना देकर योनि में रखकर बांधदेवे अथवा पाकडकी छाल का चूर्ण वा कल्क का पिंडा शहत के साथ बनाकर योनि में रखदेवे। अथवा योनिमें स्नेह लगाकर लोध, प्रियंगु, मुलहटी इनके कल्क को शहत में सानकर बत्ती बनाकर योनि में रखदेवे अथवा सब प्रकार के कषाय रस वाले द्रव्यो के कल्क में शहत मिलाकर योनि में रख देवे। अथवा स्राव को दूर करने के लिये सरलकाष्ठ, गूगल, जौ, कटु तेल और मछली इन के कल्क को घी में सानकर योनि में धूप देवे॥

पिच्छिलायोनिकी चिकित्सा।

कासीसत्रिफलाकाच्छीसाम्रजम्बस्थिधातकी। पैच्छिल्येक्षौद्रसंयुक्तःचूर्णोवैशद्यकारकः॥ पलाशसर्जजम्बूत्वक्समंगामोचधातकीः। सपिच्छिलपरिक्लिन्नास्तम्भनःकल्कइष्यते॥

अर्थ—पिच्छिल योनिमें कसीस, त्रिफला, अडहरकी जड,आमकी गुठली, जामनकी गुठली, धायके फूल इन के चूर्ण को शहत में सानकर रखने से विशदता होती है।

ढाककीछाल, राल, जामनकी छाल,लज्जालू मोच और धाय के फूल पीसकर योनि में रखने से गिलगिलापन और क्लिन्नता दूर होजाती है॥

योनिके अन्यदोषों की चिकित्सा।

स्तब्धानांकर्कशानाञ्चपिण्डोमार्दवकारकः। धारयेद्वेशवारंवापायसंकृसरंतथा॥ दुर्गन्धानांकषायःस्यात्तैलंवाकल्कएववा चूर्णवासर्वगन्धानांपूतिगन्धापकर्षणम्॥

अर्थ—योनि की स्तब्धता और कर्कशता दूर करने के निमित्त वेशवार, पायस वा कृशरा का गोला बनाकर योनि में रक्खे योनि की दुर्गन्धि दूर करनेके लिये सुगंधित द्रव्यों का तेल, वा कल्क वा सर्वगंध का चूर्ण लगाने से दुर्गन्धि जाती रहती है॥

योनि चिकित्साका उपसंहार।

एवंयोनिषुशुद्धासुगर्भंविन्दन्तियोषितः॥ अदुष्टेप्राकृतेबीजेजीवोपक्रमणेसति॥ पञ्चकर्म्मविशुद्धस्यपुरुषस्यापिचेन्द्रियम्। परीक्ष्यवर्णैर्दोषाणांदुष्टंतद्घ्नैरुपाचरेत्। सलिङ्गान्यापदोयोनेःसनिदानचिकित्सिताः॥ उक्ताविस्तरतःसम्यग्मुनिनातत्त्वदर्शिना।

अर्थ—इन ऊपर कहे हुए प्रयोगों से योनियों के शुद्ध होने पर तथा प्राकृतकर्म और बीज के निर्दोष होने से गर्भ में जीव का संचार होने पर स्त्रियों के गर्भ रहजाता है। इसी तरह जो पुरुषोंका वीर्य दूषित हो तो उसे वमन विरेचनादि पंचक-

मांसे शुद्ध करके विगडेहुए वीर्यके वर्णकी परीक्षा करके उस दोषके दूर करने वाली चिकित्सा करे ॥

तत्वदर्शी भगवान् पुनर्वसुने योनिके भिन्न भिन्न रोग, उनके लक्षण, निदान और चिकित्सा विस्तार पूर्वक वर्णन की हैं।

शुक्रदोष का प्रकरण ।

पुनरेवाग्निवेशस्तुपप्रच्छभिषजांवरम् ॥ आत्रेयमुपसङ्गम्यशुक्रदोषास्त्वयानघ ॥ रोगाध्यायेसमुद्दिष्टाह्यष्टौपुंसामशेषतः ॥ तेषांहेतुंभिषक्श्रेष्ठदुष्टदुष्टस्यचाकृतिम् । चिकित्सितञ्चकार्त्स्न्येनक्लैब्यंयच्चचतु र्विधम् ॥ उपद्रवेषुयोनीनांप्रदरोयश्चकीर्तितः । तेषांनिदानंलिङ्गञ्चचिकित्सां चैवतत्वतः ॥ समासव्यासयोगेनप्रब्रूहि भिषजांवर ! । तस्मैशुश्रूषमाणायप्रोवा चमुनिपुङ्गवः ॥बीजंयस्माद्व्यवायाच्चह र्षयोनिसमुत्थितम् । शुक्रंपौरुषमित्युक्तं तस्माद्वक्ष्यामितच्छृणु ॥

अर्थ---अग्निवेश ने भिषग्वर पुनर्वसुसे फिर पूछा कि हे भगवन्!आपने अष्टोदरीय रोगाध्याय में पुरुषों के आठ प्रकार के शुक्र दोष वर्णन किये थे,सो हे प्रभो!वीर्य के दूषित होने के हेतु, दूषित और निर्दूषित वीर्यकी आकृति, दूषित वीर्य की चिकित्सा, चार प्रकार के क्लैब्यरोग, तथा योनिरोगों में वर्णन किये हुए प्रदररोग का निदान, लक्षण और चिकित्सा संक्षेप और विस्तार दोनों रीति से वर्णन कर दीजिये। यह सुनकर मुनिपुंगव आत्रेयबोले कि पुरुष का बीज अर्थात् शुक्र मैथुन में हर्ष और योनि के स्पर्श से उठता है यह बात प्रथम वर्णन करदी गई है, अब जिस तरह उस वीर्यमें दोष उत्पन्न होतेहै,उसकाभ्वर्णनकरताहूं

बीजके विगडने में दृष्टान्त ।

यथाबीजमकालाम्बुकृमिकीटाग्निदूषितम् नावरोहतिसन्दुष्टंतथाशुक्रंशरीरिणाम् ॥

अर्थ—जैसे कुसमयकी वर्षा, कीडे,कीट या अग्नि के कारण बिगडा हुआ बीज अंकुरित नहीं होता है इसी तरह मनुष्यों का विगडा हुआ वीर्य भी संतान के उत्पन्न करने के योग्य नहीं रहता है।

वीर्यके दूषित होनेका कारण

अतिव्यवायाद्व्यायामादसात्म्यानाञ्चसेवनात् । अकालेचाप्ययोनौवामैथुनंनचगच्छतः॥रूक्षतिक्तकषायातिलवणाम्लोष्ण सेवनात् । मधुरस्निग्धगुर्वन्नसेवनाज्जरयातथा । चिन्ताशोकादविस्रम्भाच्छस्त्र क्षाराग्निभिस्तथा ॥ भयात्क्रोधादभीचाराद्व्याधिभिःकर्षितस्यच ॥ वेगाघातात्क्षयाच्चापिधातूनांसंप्रदूषणात् ॥ दोषाःपृथक्समस्तावाप्राप्यरेतोवहाःशिराः शुक्रंसंदूषयन्त्याशुतद्वक्ष्यामिविभागशः॥

अर्थ---अत्यन्त मैथुन, अत्यन्त शारीरिक परिश्रम, अत्यन्त असात्म्य द्रव्यों का सेवन, कुसमय मैथुन या अयोनि से मैथुन अगम्य योनि में मैथुन, रूक्ष तिक्त और कषाय द्रव्यों का अत्यन्त सेवन, अत्यन्त नमकीन, खट्टे और उष्ण पदार्थों का सेवन अत्यन्त मीठे, चिकने और भारी अन्न का

सेवन (नारीणामरसज्ञानांसरणादित्यपिपाठः) बुढापा, चिन्ता, शोक, प्रकाश स्थान में स्त्रीगमन, शस्त्रकर्म, अग्नि कर्म और क्षार कर्मका अयोग्य प्रयोग, भय, क्रोध अभिचार, रोगादि द्वारा कर्षण, मलमूत्रादि वेगों का अवरोध, धातुकी क्षीणता, तथा धातुओं का दूषित होना इन कारणों से सम्पूर्ण दोष पृथक् २ वा मिलकर वीर्यवाही शिराओं में पहुचकर शुक्र को शीघ्रहीदूषित कर देते हैं, अब उनके पृथक् २ लक्षणकहतेहैं

दूषित शुक्रके भेद ।

फेनिलंतनुरूक्षञ्चविवर्णपूतिपिच्छिलम्॥
अन्यधातूपसंसृष्टंअवसादितथाष्टमम् ॥

अर्थ—दूषित वीर्य आठ प्रकारका होता है यथा—झागदार, पतला, रूखा, विवर्ण, दुर्गन्धित, गिलगिला, अन्यधातु से मिला हुआ और अवसादी ।

वातदूषित शुक्र के लक्षण ।

वातेनफेनिलंशुष्कंकृच्छ्रेणपिच्छिलंतनु॥
भवत्युपहतंशुक्रंनतद्गर्भायकल्पते ॥

अर्थ—वातके कारण शुक्र झागदार, शुष्क, पिच्छिल, पतला और कठिनता से बाहर निकलने वाला होजाता है, वात से बिगडा हुआ शुक्र गर्भ उत्पन्न करने के योग्य नहीं होता है ।

पित्तदूषित शुक्र के लक्षण ।

सनीलमथवापीतमत्युष्णंपूतिगन्धिच ॥
दहेल्लिङ्गंविनिर्यातिशुक्रंपित्तेनदूषितम् ।

अर्थ....पित्त से बिगडा हुआ शुक्र कुछ नीला, पीला, अत्यन्त उष्ण और दुर्गंधित होता है तथा बाहर निकलने के समय बडा दाह होता है ।

कफदूषित शुक्रके लक्षण ।

श्लेष्मणावद्धमार्गंतुभवत्यत्यर्थपिच्छिलम्

अर्थ—कफदूषित वीर्य का कफके कारण मार्ग रुकजाता है और वह अत्यन्त गिल-गिला होजाता है ॥

अन्य हेतुओं से दूषित शुक्र के लक्षण

स्त्रीणामत्यर्थगमनादभीघातात्क्षयादपि।
शुक्रंप्रवर्ततेजन्तोःप्रायेणरुधिरान्वयम् ॥

अर्थ....अत्यन्त स्त्री गमनसे, अभिघात से वा क्षीण होने से जो शुक्र निकलता है उस में रुधिर मिलारहता है ॥

अवसादी शुक्रके लक्षण ।

वेगसन्धारणात्शुक्रंवायुनाविहितंपथि ।
कृच्छ्रेणयातिग्रथितमवसादितथाष्टमम्
इतिदोषाःसमाख्याताःशुक्रस्याष्टौसलक्षणाः ।

अर्थ—मल मूत्रादि के उपस्थित वेगोंको रोकने से शुक्र मार्ग में विहत होकर बडी कठिनता से गांठदार होकर निकलता है, इसे ही अवसादी शुक्र कहते हैं ॥

इस तरह शुक्र के सलक्षण आठों दोषों की व्याख्या की गई है ।

शुद्ध शुक्र के लक्षण ।

स्निग्धंघनंपिच्छिलञ्चमधुरञ्चाविदाहिच
रेतःशुद्धंविजानीयाच्छ्वेतस्फाटिकसन्निभम् ॥

अर्थ—स्निग्ध, घन, पिच्छिल, मधुर, अविदाही और स्फटिकके समानश्वेत शुक्र शुद्ध होताहै ॥

वाजीकरणयोगोक्तैरुपयोगैःसुखैर्हितैः ॥
रक्तपित्तहरैर्योगैर्योनिव्यापादिकैस्तथा ।
दुष्टंयथाभवेद्रेतःततस्तत्समुपाचरेत् ॥

अर्थ—वाजीकरण योगोक्त सुखदाई प्रयोग, रक्तपित्तनाशक योग, योनिरोगनाशक योग, इनसे जो शुक्र विगड जाताहै उसकी चिकित्सा निम्नलिखित रीति से करै ।

घृतञ्चजीवनीयंयच्च्यावनःप्राशएवच॥
गिरिजस्यप्रयोगश्चरेतोदोषानपोहति ॥
वातान्वितेहिताःशुक्रेनिरूहाःसानुवासनाः
ब्राह्ममामलकीयश्चपैत्तेशस्तंरसायनम् ॥
मागध्यमृतलोहानांत्रिफलायारसायनैः॥
कफोत्थितंशुक्रदोषंहन्याद्भल्लातकस्यच॥
अन्यधातूपसंसृष्टंशुक्रंवीक्ष्यभिषक्मैः ॥
यथादोषंप्रयोज्यंस्याद्दोषधातुभिषग्जितम्

अर्थ—जीवनीय घृत, च्यवनप्राश और शिलाजतु प्रयोग वीर्य दोषों का दूर करते हैं। वातान्वित शुक्र में निरूहण और अनुवासन वस्ति हित है । पित्तान्वित शुक्र में ब्राह्मरसायन और अभयामलकीय रसायन हित है । कफान्वित शुक्र में पिप्पली रसायन, गुडूचीलौह, त्रिफला रसायन और भल्लातक प्रयोग हित हैं। यदि शुक्रमें अन्य धातुका संसर्ग हो तो उसकी परीक्षा करके यथादोष उसकी चिकित्सा करने में प्रवृत होना चाहिये ।

शुक्रदोष में साधारण प्रयोग ।

सर्पिःपयोरसाः शालिर्यवगोधूमषष्टिकम्
प्रशस्तंशुक्रदोषेषुवस्तिकर्मविशेषतः ॥

अर्थ—शुक्र दोषों में घी, दूध, मांसरस, शालीचांवल, जौ, गेहूं और साठी चांवल हित हैं और वस्तिकर्म विशेष करके उपयोगी होता है ॥

क्लीवता के अन्यकारण ।

रेतोदोषोद्भवंक्लैब्यंयस्माच्छुद्धैवसिद्धयति । अतोवक्ष्यामितेसम्यगग्निवेश! यथातथम् ॥ वीजध्वजोपघाताभ्यांजरया शुक्रसंक्षयात् । क्लैब्यसम्भवस्तस्यशृणु सामान्यलक्षणम् ॥

अर्थ—हे अग्निवेश ! शुक्रके दोषसे जो क्लीवता होती है वह शुक्रके शुद्ध होने ही पर मिट जाती है । अब में यथा रीति से तेरे साम्हने कहता हूं । क्लीवता के चार कारण हैं, यथा वीर्यदोष,ध्वजभंग,वृद्धावस्था और वीर्यकी क्षीणता । अब में इन के समान्य लक्षणों का वर्णन करता हूं ।

क्लीवताके साधारण लक्षण।

सङ्कल्पप्रणवोनित्यंप्रियांवश्यामपिस्त्रियम् । नयातिलिङ्गशैथिल्यात्कदाचिद्याति वापुमान् ।श्वासार्तःस्विन्नगात्रश्चमोघ संकल्पचेष्टितः । म्लानशिश्नश्चनिर्बीजः स्यादेतत्क्लैब्यलक्षणम् । सामान्यलक्षणं ह्येतद्विस्तरेणप्रवक्ष्यते ।

अर्थ—यदि मनुष्य इच्छा उत्पन्न होने पर भी लिंगकी शिथिलताके कारण अपनी प्रिया और वशीभूता स्त्रीके पास भी नहीं जा सक्ता है और जो जाता भी है तो श्वास चलने लगता है पसीने आजाते हैं, उसका संकल्प व्यर्थ होजाता है, चेष्टाव्यर्थ होजाती है, शिश्नेन्द्रिय शिथिल पडजाती है

निर्बीज होजाती है, तब इसी को क्लीवता या नामर्दी कहते हैं, क्लीवताके ये सामान्य लक्षण हैं अब विस्तारपूर्वक वर्णन करतेहैं।

बीजोपघातज क्लीवता के लक्षण।

शीतरूक्षाल्पसंक्लिष्टविरुद्धाजीर्णभोजनात्। शोकचिन्ताभयत्रासात्स्त्रीणांचात्यर्थसेवनात्। अभीचारादविस्रम्भाद्रसादीनांच संक्षयात्॥ वातदीनामोजसश्चतथैवानश नाच्छ्रमात्। नारीणामरसज्ञत्वात्पञ्चकर्मोपचारतः। बीजोपघातोभवतिपाण्डुवर्णः सुदुर्बलः॥ अल्पप्राणोल्पहर्षश्चप्रमदासुभवेन्नरः। हृत्पाण्डुरोगतमककामलाश्रमपीडितः। छर्द्यतीसारशूलार्त्तःकासज्वरनिपीडितः। बीजोपघातजैक्लैब्यंध्वजभगनकृतंशृणु॥

अर्थ—शीतल, रूखा, अल्प, गृष्ट, विरुद्ध और दुष्पाच्यभोजन, शोक, चिन्ता, भय, त्रास, स्त्रियोंका अत्यन्त सेवन, अभिचार, अविस्रंभ, रसादि धातुओं की क्षीणता, वातादिक धातुओं की विषमता, ओज की क्षीणता, उपवास, श्रम, अरसज्ञस्त्रीगमन वमनादि पंचकर्मों का योगातियोग, इन कारणों से शुक्र का नाश होता है, इससे पुरुष पांडुवर्ण और अत्यन्त दुर्बल होजाता है, उसकी प्रमदा स्त्रियों में अनिच्छा और निश्चेष्टिता होती है, इससे पीछे हृद्रोग, पांडुरोग, तमकश्वास कामला और श्रम होता है। उसके वमन, अतिसार, शूल और कासज्वर की उत्पत्ति होती है। ये बीजोपघातज क्लीवता के लक्षण हैं। अब ध्वजभंग से हुई क्लीवता के लक्षण कहते हैं

ध्वजभंग के हेतु।

अत्यम्ललवणक्षारविरुद्धाजीर्णभोजनात्। अत्यम्बुपानाद्विषमपिष्टान्नगुरुभोजनात्। दधिक्षीरानूपमांससेवनाद्व्याधिकर्षणात्। कन्यानाञ्चैवगमनादयोनिगमनादपि॥ दीर्घरोम्णींचिरात्त्यक्तांतथवचरजस्वलाम्। दुर्गन्धांदुष्टयोनिंचतथैवचपरिस्तुताम्॥ ईदृशींप्रमदांमोहादतिहर्षात्प्रगच्छतः॥ चतुष्पदाभिगमनाच्छेफसश्चाभिघाततः॥ अधावनाद्वामेढ्रस्यशस्त्रदन्तनखक्षतात्। काष्ठप्रहारनिष्पेषशूकानांचातिसेवनात्॥ रेतसश्चप्रतीघाताद्ध्वजभङ्गःप्रवर्त्तते॥

अर्थ—अत्यन्तखट्टे, नमकीन, क्षारयुक्त विरुद्ध और दुष्पाच्य भोजन, अत्यन्त जलपान, विषम भोजन, पिष्टान्न भोजन, गुरु भोजन, दही दूध और मांस का अत्यन्त सेवन, व्याधिद्वारा कर्षण, कम उमरकी स्त्री से गमन, अयोनिगमन, दीर्घरोमवाली स्त्री से गमन, बहुत दिनसे जिसने पुरुषसंसर्ग त्यागदियाहो ऐसी स्त्रीसे गमन, रजस्वला से गमन, दुर्गन्धियोनि गमन, दुष्टयोनि गमन, स्रावयुक्त योनि गमन, ऐसी स्त्री में मोह वा हर्ष से गमन करना, गौ भैंस आदि चौपायों से गमन करना, लिंग में चोट लगना, लिंग का प्रक्षालन न करना, उस्तरा, दांत वा नख से घाव होना, लकड़ीकी चोटलगना निष्पेषण, (हस्त मैथुन) शूकप्रयोगों का अत्यन्त सेवन और वीर्यका नाश। इन सब कारणों से ध्वजभंग होता है।

ध्वजभंगके लक्षण।

श्वयथुर्वेदनामेढ्रेरागश्चैवोपलक्ष्यते॥स्फो

दाश्चतीव्राजायन्तेलिङ्गपाकोभवत्यपि । मांसवृद्धिर्भवेच्चास्यव्रणाःक्षिप्रंभवन्त्यपि पुलाकोदकसङ्काशःस्रावःश्यावारुणप्रभः। वलयीकुरुतेचापिकठिनश्चपरिग्रहम् ॥ ज्वरस्तृष्णाभ्रमोमूर्च्छाच्छर्दिश्चास्योप जायते ॥ रक्तंकृष्णंस्त्रवेच्चापिनीलमाविललोहितम्। अग्निनेवचदग्धस्यतीव्रो दाहःसवेदनः ॥ वस्तौवृषणयोर्वापिसीवन्यांवंक्षणेषुच । कदाचित्पिच्छिलोवापिपाण्डुस्रावश्चजायते ॥ श्वयथुश्चभवेन्मन्दस्तिमितोऽल्पपरिस्रवः । चिरात्सपाकंव्रजतिशीघ्रंवाथप्रपद्यते ॥ जायन्ते क्रिमयश्चापिविक्लिद्यतेपूतिगन्धिच । प्रशीर्यतेमणिश्चास्यमेढ्रमुष्कावथापिच ॥ ध्वजभङ्गकृतंक्लैब्यंइत्येतत्समुदाहृतम् । एवंपञ्चविधंकेचित्ध्वजभंगवदन्त्यपि ॥

अर्थ—मेढ़ में सूजन, वेदना और ललाई उत्पन्न होजाती है । बड़े तीव्र फोड़े और लिंगपाक भी होता है, लिंगका मांस बढ़जाताहै, घाव जल्दी २ होजाते हैं, पुलाक के जलके सदृश श्याव और अरुणरंग का स्राव होने लगता है, लिंग में टेढापन, कठिनता और स्तब्धता होती है, ज्वर, तृष्णा, भ्रम, मूर्च्छा, और वमन ये उपद्रव होजाते हैं । नीला, लाल, काला, मैला और लोहितवर्ण का स्राव होता है, अग्नि द्वारा जलने के समान तीव्र दाह और वेदना वस्ति, वंक्षण, अंडकोष और सीवनी में होने लगती है, कभी कभी पिच्छिल और पांडुवर्ण का स्राव भी होता है, मन्द स्तिमित और अल्पस्राववाली सूजन होती है, पाक देर में होताहै और कभी २ शीघ्र भी होजाता है, कीड़े पड़जाते हैं, सड़ीहुई गंध आनेलगती है, मणि, मेढ़ और मुष्क विशीर्ण होजाते हैं । यह ध्वजभंग की क्लीवता के लक्षण हैं । कोई कोई ध्वजभंग के पांचभेद कहते हैं ।

जरासंभवक्लीवताके लक्षण ।

क्लैब्यंजरासम्भवंहिप्रवक्ष्याम्यथतच्छृणु। जघन्यमध्यप्रवरंवयस्त्रिविधमुच्यते ॥ अथप्रवयसांशुक्रंप्रायशःक्षीयतेनृणाम् । रसादीनांसंक्षयाच्चतथैवावृष्यसेवनात्॥ बलवर्णेन्द्रियाणांचक्रमेणैवपरिक्षयात् । परिक्षयादायुषश्चाप्यनाहाराच्छ्रमात्क्रमात् ॥ जरासम्भवजंक्लैब्यंइत्येतैर्हेतुभिर्नृणाम्। जायतेतेनसोऽत्यर्थंक्षीणधातुःसुदुर्बलः ॥ विवर्णोविह्वलोदीनःक्षिप्रंव्याधिमथाश्नुते । एतज्जरासम्भवंहिचतुर्थं- क्षयजंशृणु ॥

अर्थ—अबहम वृद्धावस्था से उत्पन्नहुई क्लीवता के लक्षण कहते हैं । मनुष्य की तीन प्रकारकी अवस्था होतीहैं, यथा जघन्य (बालापन), मध्य (यौवन) और प्रवर (बुढ़ापा) । बढ़ी हुई अवस्था वाले मनुष्यों का शुक्र प्रायःक्षीण होजाता है क्योंकि रसादि धातु क्षीण होती चलीजाती हैं और पुष्टिकारक द्रव्यों का सेवन नहीं करतेहैं इस से बल वर्ण और इन्द्रियों का पराक्रम क्रम से क्षीण होता चलाजाता है । आयु के क्षीण होने से, आहारकी शक्ति न रहने से

और श्रम से जरासंभव क्लीवता होती है, इससे मनुष्य की धातु अत्यन्त क्षीण पड़जाती हैं और वह दुर्बल होजाताहै, वह विवर्ण, विह्वल हीन और शीघ्रही व्याधिग्रस्त होजाताहै, यह जरासंभव क्लीवता है अब चौथी क्षयज क्षीणता को सुनो।

क्षयज क्लीवता।

अतिप्रचिन्तनाच्चैवशोकात्क्रोधाद्भयादपि ईर्ष्योत्कण्ठादथोद्वेगात्समाविशतियोनरः ॥ कृशोवासेवतेरूक्षमन्नपानमथौषधम्। दुर्बलप्रकृतिश्चैवनिराहारोभवेद्यदि ॥ अथाल्पभोजनाच्चापिहृदयेयोव्यवस्थितः ॥ रसःप्रधानधातुर्हिक्षीयेताशु नरस्ततः। रक्तादयश्चक्षीयन्तेधातवस्तस्यदेहिनः ॥ शुक्रावसानास्तेभ्योहिशुक्रंधामपरंमतम्। चेतसोवातिहर्षेणव्यवायंसेवतेतुयः ॥ शुक्रंतुक्षीयतेतस्यततः प्राप्नोतिसंक्षयम्। घोरांव्याधिमवाप्नोति मरणंवासमृच्छति ॥ शुक्रंतस्माद्विशेषेण रक्ष्यमारोग्यमिच्छता। एतन्निदानलिंगाभ्यामुक्तंक्लैब्यंचतुर्विधम्।

अर्थ—जो मनुष्य अत्यन्त चिन्ता, शोक, भय, क्रोध, ईर्ष्या, उत्कंठा और उद्वेग से सदा ध्यानावस्थित रहताहै, जो कृश मनुष्य सदा रूक्ष अन्नपान और औषध सेवन करता रहता है, जो मनुष्य दुर्बल प्रकृतिका है, उपवास बहुत करता है, वा अल्प [वा असात्म्य] भोजन करता है उसका हृदयस्थ प्रधान धातुरस शीघ्रही क्षीण होजाताहै, इस मनुष्यके रक्तादिक शुक्र पर्य्यन्त सब धातु क्षीण होजाते हैं। और शुक्र ही सब धातुओंका तेजस्वरूप है अथवा जो मनुष्य चित्तकी अत्यन्त हर्षता से मैथुन में प्रवृत होता है, उसका शुक्र क्षीण होजाता है और क्षयरोग उपस्थित होता है, अथवा घोर व्याधियोंके होने के कारण यह मृत्युका ग्रास होजाता है।

इसी हेतुसे जो मनुष्य आरोग्यता की इच्छा करता है उसे शुक्र की अत्यन्त सावधानी से रक्षा करनी चाहिये।

इस तरह चारों प्रकारकी क्लीवता के निदान और लक्षण वर्णन किये गये हैं।

असाध्य क्लीवता।

केचित्क्लैब्यंत्वसाध्यंहिध्वजभङ्गक्षयोद्भवे॥ वदन्तिशेफसश्छेदाद्वृषणोत्पाटनेनवा ॥

अर्थ—कोई २ यह कहते हैं कि ध्वज भंगज और क्षयज क्लीवता असाध्य होती हैं और कोई यह कहते हैं कि शेफ में छिद्र होने या अंडकोशों के फटने से जो क्लीवता होती है वह भी असाध्य होती है।

अन्य क्लीवताओं को असाध्यत्व।

मातापित्रोर्बीजदोषादशुभैश्चकृतात्मनः॥ गर्भस्थस्ययदादोषाःप्राप्यरेतोवहाःशिराः शोषयन्त्याशुतन्नाशाद्रेतश्चाप्युपहन्यते। तत्रसम्पूर्णसर्वाङ्गःसभवत्यपुमान्पुमान्॥ एतत्वसाध्याव्याख्याताःसान्निपातसमुच्छ्रयात् ॥ चिकित्सितमतस्तूर्ध्वंसमासव्यासतःशृणु ॥

अर्थ—मातापिता के बीज दोष से, अपने पूर्व जन्म के किये हुए अशुभकर्मों से जब

गर्भस्थ दोष शुक्रवाही स्रोतों में पहुंच कर उन्हें शुष्क कर देते हैं और उनके शुष्क होने से शुक्र भी नष्ट होजाता है। ऐसा पुरुष सम्पूर्ण अंगोपांग समेत जन्म लेने पर भी क्लीव होता है।

यह क्लीवता सन्निपातकी उदीर्णताके कारण दुश्चिकित्स्य असाध्य होती हैं।

अब यहां से संक्षेप और विस्तार दोनों रीतिसे क्लीवताकी चिकित्साका वर्णनकरतेहैं

क्लैव्य की संक्षिप्त चिकित्सा।

शुक्रदोषेपुनिर्दिष्टंभेषजंयन्मयानघ! क्लैव्योपशान्तयेकुर्यात्क्षीणक्षतहितञ्चय त्। वस्तयःक्षीरसर्पींषिवृष्ययोगाश्चयेम ताः॥ रसायनप्रयोगाश्चसर्वानेतान्प्र योजयेत्। समीक्ष्यदेहदोषाग्निबलभे षजकालवित्॥ व्यवायहेतुजंक्लैव्यंय स्स्याद्धेतुविपर्ययात्। दैवव्यपाश्रयश्चै वभेषजश्चाभिचारजम्। समासेननदुद्दि ष्टंभेषजंक्लैव्यशान्तये। विस्तरेणप्रवक्ष्या मिक्लैव्यानांभेषजंपुनः॥

अर्थ—हे अनघ! शुक्रदोष के दूर करने के लिये जो जो चिकित्सा मैंने कही हैं तथा क्षीणक्षत में जो जो चिकित्सा उपयोगी हैं वे सब क्लीवताको दूर करनेमें उपयोगी हैं। देह, दोष, अग्नि, बल, औषध और काल का विचार करके वस्ति, दूध, घृत, वृष्ययोग और रसायन के प्रयोग करने चाहियें॥ व्यवायहेतुज विपरीतहेतुसे उत्पन्न और अभिशापज क्लीवताको दैवव्यपाश्रय औषधियोंसे दूर करनेका प्रयत्नकरै

क्लीवता दूर करने के ये संक्षिप्त उपाय वर्णन कियेगये हैं अब इसकी चिकित्सा का सविस्तार वर्णन कियाजाता है॥

बीजोपघातकीचिकित्सा।

सुस्विन्नस्निग्धगात्रस्यस्नेहयुक्तंविरेचनं मद्यान्मतिमान्वैयस्ततस्तमनुवासयेत्। पलाशैरण्डमुस्ताद्यैःपश्चादास्थापयेत्ततः॥ वाजीकरणयोगाश्चपूर्वेयेसमुदाहृताः। भिषजातेप्रयोज्याः स्युः क्लैव्येबीजोपघातजे॥

अर्थ—क्लीवरोगी को अच्छी तरह अभ्यक्त करके पसीने देवै फिर स्नेहयुक्त विरेचन देवै, तत्पश्चात अनुवासन वस्ति देवै॥ पीछे ढाक, अरंड और मोथा के क्वाथ आदि से आस्थापन देवै और पहिले जो वाजीकरण प्रयोग वर्णन करदिये गये हैं वे सब इस बीजोपघातज क्लीवता में हितहैं।

ध्वजभंग में चिकित्सा।

ध्वजभंगकृतंक्लैव्यंज्ञात्वातस्याचरेत्क्रियाम्। प्रदेहान्परिषेकांश्चकुर्याद्वारक्त मोक्षणम्॥ स्नेहपानश्चकुर्वीतसस्नेहंवा विशोधनम्। अनुवासनंततःकुर्यादथ वास्थापनंपुनः॥ व्रणवच्चक्रियाःसर्वास्त त्रकुर्याद्विचक्षणः॥

अर्थ—ध्वजभंगज क्लीवता में प्रदेह, परिषेक, रक्तमोक्षण, स्नेहपान और स्नेहयुक्त विरेचन हित है। पीछे अनुवासन और आस्थापन करके व्रणवत् क्रियाकरै।

जरासंभवक्लैव्यकीचिकित्सा।

जरासम्भवजेक्लैव्येक्षयजेचैवकारयेत्।

स्नेहस्वेदोपपन्नस्यसस्नेहंशोधनंहितम् ॥
क्षीरसर्पिर्वृष्ययोगावस्तयश्चैवयापनाः।
रसायनप्रयोगाश्चतयोर्भेषजमुच्यते ॥
विस्तरेणैतदुद्दिष्टंक्लैब्यानांभेषजंमया ॥

अर्थ—जरासंभव और क्षयज क्लीवतामें स्नेहन स्वेदन करके स्नेहयुक्त विरेचन देवै । दूध, घी, वृष्ययोग, क्षीरवस्ति और रसायन प्रयोग इन रोगों में हित हैं ।

यह क्लीवरोगोंकी विस्तारपूर्वक चिकित्सा वर्णन कीगई है ।

प्रदरवर्णन ।

यःपूर्वमुक्तःप्रदरःशृणुहेत्वादिभिस्तुतम् ॥
यात्यर्थंसेवतेनारीलवणाम्लगुरूणिच ॥
कट्वम्लविदाहीनिस्निग्धानिपिशितानिच
ग्राम्यौदकानिसेव्यानिकृसरंपायसंदधि
शुक्तमस्तुसुरादीनिभजन्त्याःकुपितोऽनिलः
रक्तंप्रमाणमुत्क्रम्यगर्भाशयगताःशिराः ।
रजोवहाःसमाश्रित्यरक्तमादायतद्रजः ॥
यस्माद्विवर्द्धयत्याशुरक्तपित्तंसमारुतम् ॥
तस्मादसृग्दरंमाहुरेतत्तन्त्रविशारदाः ॥
रजःप्रदीर्यतेयस्मात्प्रदरस्तेनसस्मृतः ॥

अर्थ--जो प्रथम प्रदररोग वर्णन किया गयाहै अब उसके हेतु आदिका वर्णन करतेहैं जो स्त्री अत्यन्त खट्टे, नमकीन और भारी पदार्थों का सेवन करती हैं, जो कटु विदाही स्निग्ध तथा ग्राम्य और औदक पशुओं का मांस सेवन करती है, जो खिचडी, खीर, दही, शुक्त और सुरा आदिका अत्यन्त सेवन करती हैं, उनकी वायु कुपित होकर रक्तको प्रमाण से अधिक निकालने लगतीहै उस समय रजोवाही शिराओं में वायु रक्तके साथ पहुंचकर रजको बढा देती है। शास्त्रज्ञ लोग इस वायुसंसृष्ट रक्तपित्तको रक्तप्रदर कहतेहैं । रजके प्रदीर्ण होनेसे इसे प्रदर कहतेहैं

प्रदरके भेद ।

सामान्यतःसमुद्दिष्टंकारणंलिङ्गमेवच ॥
चतुर्विधंव्यासतस्तुवाताद्यैःसन्निपाततः।
अतःपरंप्रवक्ष्यामिहेत्वाकृतिभिषग्जितं॥

अर्थ—प्रदर के कारण और लक्षण संक्षेप से कहेगये हैं । यह वातज, पित्तज, कफज और सान्निपातक चार प्रकार का होता है, अब इन के हेतु, लक्षण और चिकित्साका विस्तारपूर्वक वर्णन कियाजाता है ॥

वातजप्रदर के हेतु ।

रूक्षादिभिर्मारुतस्तुरक्तमादायपूर्ववत् ।
कुपितःप्रदरंकुर्याल्लिङ्गंतस्यावधारयेत् ॥

अर्थ—पूर्वोक्तरूक्षादि द्रव्योंके अत्यन्त सेवन से कुपित हुई वायु रक्त को ग्रहण करके प्रदर उत्पन्न करती है अब इसके लक्षणों को सुनो ॥

वातजप्रदर के लक्षण ।

फेनिलंतनुरूक्षञ्चश्यावंचारुणमेवच ।
किंशुकोदकसङ्काशंसरुजंवाथनीरुजम् ॥
कटीवंक्षणहृत्पार्श्वपृष्ठश्रोणिषुमारुतः ।
करोतिवेदनांतीव्रामेतद्वातात्मकंविदुः ॥

अर्थ....वातज प्रदर में रक्त झागदार, पतला, रूखा, श्यावत्वर्ण, अरुण और टेसूके फूलों के जल के समान होता है इसमें वेदना होती भी है और नहीं भी होती । इस रोग में वायु के कारण कमर, वंक्षण हृदय

पसली, पीठ और श्रोणी में तीव्र वेदना होने लगती है।

पित्तजप्रदर के हेतु।

अम्लोष्णलवणक्षारैः पित्तंप्रकुपितंयदा।
पूर्ववत्प्रदरंकुर्य्याल्लक्षणंतस्यतंशृणु ॥

अर्थ—खट्टे, गरम, नमकीन और क्षार पदार्थों के सेवन से पित्त प्रकुपित होकर जब पूर्ववत् प्रदररोग को उत्पन्न करता है तब उस के लक्षणोंको सुनो ॥

पित्तजप्रदर के लक्षण।

सनीलमथवापीतमत्युष्णमसितंतथा ।
नितान्तरक्तंस्रवतिमुहुर्मुहुरथार्तिमत् ॥
विदाहरागतृण्मोहज्वरभ्रमसमायुतम् ।
असृग्दरंपैत्तिकंतु श्लैष्मिकंतुप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—पित्तजप्रदर में नीला, पीला, अत्यन्त उष्ण काला और वेदनायुक्त वार वार वहुतसा रक्त निकलता है इसमें दाह, राग, तृषा, मोह, ज्वर और भ्रम ये उपद्रव होते हैं ये पित्तज प्रदर के लक्षण हैं अब कफज प्रदरका वर्णन कियाजाता है।

कफज प्रदरके हेतु।

गुर्वादिभिर्हेतुभिश्चपूर्ववत्कुपितःकफः ।
प्रदरंकुरुतेतस्यलक्षणंतत्त्वतः शृणु ॥

अर्थ—गुरु आदि पदार्थों के सेवन करने से कुपित हुआ कफ प्रदररोग को उत्पन्न करताहै अब इसके लक्षणोंका वर्णन करतेहैं

कफज प्रदरके लक्षण।

पिच्छिलंपाण्डुवर्णंचगुरुस्निग्धंचशीतलम्
स्रवत्यसृक्फेनेवत्तथामर्मरुजाकरम् ॥
छर्द्यरोचकहृल्लासश्वासकाससमन्वितम्।

अर्थ—कफज प्रदर में गिलगिला, पांडुवर्ण, भारी, स्निग्ध, शीतल और झागदार रक्त निकलता है, इस से मर्म स्थानों में वेदना होती है। तथा वमन, अरुचि, हृल्लास, श्वास और खांसी ये भी उस में होते हैं।

सान्निपातिक प्रदरका हेतु।

वक्ष्यतेक्षीरदोषाणांसामान्यमिहकारणम्
यत्तदेवत्रिदोषस्यकारणंप्रदरस्यतु ।

अर्थ—स्तन्यदोष के जो सामान्य कारण कहे जायगे वेही सान्निपातिक प्रदर के है

सान्निपातिक प्रदरके लक्षण।

त्रिलिङ्गसंयुतंविद्यान्नैकावस्थमसृग्दरम्॥

अर्थ—सान्निपातिक प्रदर में तीनों दोषों के मिलित लक्षण होतेहैं, इसकी एकसी अवस्था नही रहती है ॥

दुश्चिकित्स्यस्त्री।

नारीत्वतिपरिक्लिष्टायदाप्रक्षीणलोहिता
सर्वहेतुसमाचारादतिवृद्धस्तथानिलः ॥
रक्तमार्गेणसृजतिप्रत्यनीकगुणंकफम् ।
दुर्गन्धपिच्छिलंपीतंविदग्धंपित्ततेजसा॥
वसांमेदश्चयावाद्धिसमुपादायवेगवान् ॥
सृजत्यपत्यमार्गेणसर्पिर्मज्जावसोपमम् ।
शश्वत्स्रवत्यथास्रावंतृष्णादाहज्वरान्विताम्। क्षीणरक्तांदुर्वलाञ्चतामसाध्यांविवर्जयेत् ॥

अर्थ—जब स्त्री अत्यन्तरक्तस्रावके कारण परिक्लिष्ट और अत्यन्त क्षीणरक्त होजाती है तब तीनों दोष अपना प्रभाव जमालेते हैं इन में से वायु अत्यन्त कुपित होकर उक्त मार्ग द्वारा विपरीत गुण कफको निकालती

है, उस समय पित्त के तेजके कारण रक्त दुर्गन्धित, पिच्छिल, पीला और विदग्ध हो जाता है। तब बलवान् वायु शरीर की सम्पूर्ण वसा और मेद को ग्रहण करके योनि द्वारा घी, मज्जा और चर्बी के सदृश निरन्तर निकालती रहती है। इस रोग में स्त्री तृषा, दाह और ज्वर से भी पीडित रहती है। ऐसीक्षीणरक्ता और दुर्बला स्त्री चिकित्साके योग्य नहीं होती है ॥

विशुद्धऋतुके लक्षण ।

मासान्निष्पन्नदाहार्तिपञ्चरात्रानुबन्धिच नैवातिबहुनात्यल्पमार्तवंशुद्धमादिशेत् ॥

अर्थ—जो स्त्री महीने के महीने ऋतुवती होती है और ऋतुकाल में दाह वा यतना कुछ नही होता और रजोदर्शन पांचराततक रहता है और रुधिर भी न बहुत अधिक न बहुत थोडा निकलता है, उसे शुद्ध कहते हैं ॥

विशुद्धआर्तव के लक्षण ।

गुञ्जाफलसमानञ्चपद्मालक्तकसन्निभम् इन्द्रगोपकसङ्काशमार्तवंशुद्धमेवतत् ॥

अर्थ—जो रुधिर चिरमिठी, लालकमल, महावर वा बीरबहूटी के रंग के समान लाल लाल होता है वह शुद्ध आर्तव है ॥

योनीनांवातलाद्यानांयदुक्तंइहभेषजम्॥ चतुर्णांप्रदराणाञ्चतत्सर्वंकारयेद्भिषक् । रक्तातिसारिणाञ्चैवतथालोहितपित्तिना म् ॥ रक्तार्शसाञ्चतत्प्रोक्तंभेषजंतच्चकारयेत् ॥

अर्थ—वातलादि योनियों की जो जो चिकित्सा कहीगई हैं वेही चारों प्रकार के प्रदरों में करना श्रेष्ठ है। रक्तातिसार, रक्तपित्त और खूनी बवासीरमें जोजो चिकित्सा कहीगई हैं वे भी सब यहां करनी चाहिये।

धात्रीस्तनस्तन्यसम्पदुक्ताविस्तरतःपुरा। स्तन्यसञ्जननञ्चैवस्तन्यस्यचविशोधनम् वातादिदुष्टलिङ्गञ्चक्षीणस्यचचिकित्सितम् ॥ तत्सर्वमुक्तंयेत्वष्टौक्षीरदोषाःप्रकीर्तिताः । वातादिष्वेवतान्विद्याच्छास्त्रचक्षुर्भिषक्तमः ॥ त्रिविधास्तुयतःशिष्यास्ततोवक्ष्यामिविस्तरम् ।

अर्थ—जातिसूत्रीय अध्याय में धात्री के स्तनसंबंधी दूध के गुण विस्तारपूर्वक वर्णन करदिये गये हैं तथा उसीस्थलमें दूध के उत्पन्न करनेवाले और शुद्ध करनेवाले उपायभी वर्णन कियेगये हैं। वातादिदोषों से दूषित स्तन्य के लक्षण और चिकित्सा भी वर्णन कीगई हैं। तथा अष्टोदरीय अध्याय में दूधके दोषोंका वर्णन भी किया गया है। विद्वान् वैद्य स्तन्यमें वातादि दोषों को देखकर उसके अनुसारही चिकित्सा करे। परन्तु शिष्य तीन प्रकार के होते हैं, उत्तम, मध्यम और निकृष्ट अतएव इसका विस्तारपूर्वक वर्णन कियाजाता है जिससे प्रत्येक प्रकार के शिष्य को उपयोगी होवे ॥

अजीर्णासात्म्यविषमविरुद्धात्यर्थभोजनात् ॥ लवणाम्लकटुक्षारमलिन्नानाञ्च सेवनात् । मनःशरीरसन्तापादस्वप्नाभिशिचिन्तनात् । माहवेगप्रतीघातादमा-

स्रोदीरणेनच । परमान्नंगुडकृतंकृसरंद धिमत्स्यकम् ॥ अभिष्यन्दीनिमांसानि ग्राम्यानूपौदकानिच । भुक्त्वाभुक्त्वा दिवास्वप्नान्मद्यस्यातिनिषेवणात्॥ अ-नायासादभीघातात्क्रोधाच्चातङ्ककर्षणैः दोषाःक्षीराशयाःप्राप्यशिराःस्तन्यंप्रदूष्य तत् ॥ कुर्युरष्टविधंभूयोदोषास्तत्तान्नि बोधत ।

अर्थ—दुष्पाच्य, असात्म्य, विषम, विरुद्ध और अत्यन्त भोजन करने से, नमकीन, खट्टे, खार, प्रक्लिन्न अन्न के अत्यन्त सेवन से, मानसिक ताप, शारीरिक संताप, रात्रिजागरण, चिन्ता, मलमूत्र के उपस्थित वेगों का अवरोध, अप्राप्तवेगों के जोर मारकर करने का प्रयत्न, गुड़का अन्न [धानी आदि) खिचड़ी, दही, मछली, अभिष्यन्दी ग्राम्य, आनूप, और औदकजीवों का मांस, भोजन करतेही दिन में सो रहना, अत्यन्त मद्यपान, शारीरिक परिश्रम का अवरोध, चोट,क्रोध और व्याधियोंसे कृश, होना, इन संपूर्ण कारणों से दोष क्षीराशय में पहुंचकर,क्षीरवाहिनी शिराओंको दूषित करके स्तन्य को दूषित करदेते हैं । इस से आठ प्रकार के स्तन्यदोष उत्पन्न होते हैं। अब उन सबका वर्णन करते हैं ।

स्तन्यदोष के लक्षण ।

वैरस्यंफेनसंघातेरौक्ष्यंचेत्यनिलात्मकम्॥ पित्ताद्वैवर्ण्यदौर्गन्ध्येस्नेहपैच्छिल्यगौरवम् कफाद्भवतिरूक्षाद्यैरनिलैःस्वैःप्रकोपणैः॥ क्रुद्धःक्षीराशयंप्राप्यरसंस्तन्यस्यदूषयेत्।

विरसंवातसंसृष्टंकृशीभवतितात्पिबन् ॥ नचास्यस्वदतेक्षीरंकृच्छ्रेणचविवर्द्धते ।

अर्थ—वात से दूषित स्तन्य विरस, झागदार, रूखा होता है । पित्त से दूषित स्तन्य विवर्ण, दुर्गन्धयुक्त होता है, तथा कफदूषित स्तन्य चिकना, गिलगिला और भारा होता है ।

इस तरह रूक्षादि हेतुओं से वायु कुपित होकर क्षीराशय में अपना अधिकार जमाकर स्तन्यरस को दूषित करदेती है । ऐसे विरस और वात दूषित दुग्धको पीनेवाला बालक कृश होजाता है । इस बालक को दूध अच्छा नहीं लगता है और वह बडी कठिनता से बढता है ।

वातदूषित दुग्धके अवगुण ।

तथैववायुःकुपितःस्तन्यमन्तर्विलोडयन् करोतिफेनसङ्घातंतत्तुकृच्छ्रात्प्रवर्तते । तेनक्षामस्वरोबालोबद्धविण्मूत्रमारुतः॥ वातिकंशीर्षरोगंवापीनसंवाधिगच्छति। पूर्ववत्कुपितःस्तन्येस्नेहंशोषयतेऽनिलः॥ रूक्षंतत्पिबतोरौक्ष्याद्बलह्रासश्चजायते ।

अर्थ—इसी तरह से वायु कुपित होकर दूध को भीतरही भीतर विलोडित करकेदूध को झागदार करदेती हैऔर यह दूध बहुत थोडा२ बाहर निकलता है । इस दूध के पीने से बालक का शब्द क्षीण पडजाताहै, विष्टा, मूत्र और अधोवायु रुकजाते हैं, फिर वातज सिर के रोग, और पीनस रोग उत्पन्न होते हैं ॥ पूर्ववत् कुपित हुई वायु स्तन्य की चिकनाई को सोखलेती है

इस रूक्ष दूध के पीने वाले बालकका दूध की रूक्षता के कारण बल क्षीण होजाताहै

पित्तदूषित दुग्धके अवगुण ।

पित्तमुष्णादिभिः क्रुद्धंस्तन्याशयमभिप्लुतम् ॥ करोतिस्तन्यंववर्ण्यनीलपीतासितादिकम् ।विवर्णगात्रःस्विन्नःस्यात्तृष्णालुर्भिन्नविट्शिशुः॥ नित्यमुष्णशरीरश्च नाभिनन्दतितत्स्वयम् । पूर्ववत्कुपितेपित्तेदौर्गन्ध्यक्षीरमृच्छति ॥ पांड्वामयस्तद्वतःकामलाचभवेच्छिशोः॥

अर्थ—उष्णादि पदार्थों के सेवन से पित्त कुपित होकर दुग्धाशय में उत्पात कर के दूध में नीलापन, पीलापन और कालापन आदि विवर्णताओंको करताहै ॥

ऐसे दूधको पीने वाले बालकका देह विवर्ण, पसीनों से युक्त होताहै उसे तृषा बहुत लगती है,उसका मल फटजाताहै और शरीर सदा गरम रहता है और उस दूध में बालक की रुचि नहीं होती है इसी तरह पित्तके कुपित होने पर दूध में दुर्गन्ध आने लगती है और पीछे उस बालक के पांडु रोग और कामला रोग होजाते है ॥

कफदूषित दुग्ध के अवगुण ।

स्निग्धगुर्वादिभिः श्लेष्माक्षीराशयगतः स्त्रियाः ॥ स्नेहान्वितत्वाचत्क्षीरमतिस्निग्धंकरोतितु । छर्दनःकुंथनस्तेनलालालुर्जायतेशिशुः ॥ नित्योपदिग्धैःस्रोताभिर्निद्रालस्यसमन्वितः॥ श्वासकासपरीतस्तुप्रसेकतमकान्वितः ॥ अभिभूय कफःस्तन्यंपिच्छिलंकुरुतेयदा । लालालुःशूनवक्राक्षिर्जडःस्यात्तुपिबन्शिशुः॥ कफःक्षीराशयगतोगुरुत्वात्क्षीरगौरवम् । अतिस्नेहान्वितंपीत्वाबालोहृद्रोगमृच्छति अन्यांश्चविविधान्रोगान्कुर्यात्क्षीरसमाश्रितान् । क्षीरेवातादिभिर्दुष्टेसम्भवन्तितदात्मकाः ॥

अर्थ—स्निग्ध और भारी पदार्थों के सेवन करने से कफ दुग्धाशय में जाकर स्वयं स्नेहान्वित होनेके कारण दूध को अत्यन्त चिकना करदेता है । इस दूध के पीने से बालक वमन करने लगता है, किंचता है और उसकी लार टपकने लगती है । कफ के कारण बालक के स्रोतों के अत्यन्त लिहसजाने से निद्रा, आलस्य, श्वास, खांसी, प्रसेक और तमककी अधिकता होती है । जब कफ दूध को बिगाड कर गिलगिला कर देता है तब उस दूध के पीने वाले बालक के लार पडती है, उस के मुखपर सूजन होती है और आंखें पथराईसी होजाती हैं । दुग्धाशय में कफ जाकर भारी होने के कारण दूध को भारी कर देता है,उस अति स्निग्ध दूध के पीने से बालक के हृद्रोग होजाता है । तथा क्षीरसंबंधी और भी अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होजाते हैं । तथा वातादि दोषों से दूषित दुग्ध में वात से उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के उपद्रव होते हैं ॥

स्तन्यशोधनमेंवमन ।

तदादौस्तन्यशुद्ध्यर्थंधात्रींस्नेहोपपादिताम् । संस्वेद्यचघृताभ्यक्तांवमनेनोपपाद

येत् ॥वचाप्रियंगुयष्ट्याह्वफलवत्सकसर्षपैः । कल्कैर्निम्बपटोलानांक्वाथैर्वालवणैर्वमेत् ॥सम्यग्वान्तांयथान्यायंकृतसंसर्जनांपुनः ।

अर्थ—दूध के शुद्ध करने के निमित्त प्रथमही धात्री को स्निग्ध करै और फिर घृत की मालिश कराके पसीने देकर नीचे लिखी वमनकारक औषध देवै यथा वच, प्रियंगु, मुलहटी, इन्द्रजौ, सरसों, इनका कल्क अथवा नीम और परवल के क्वाथ में नमक मिलाकर गरम २ देवै । जब अच्छीतरह वमन होचुकै तब पेयादि क्रमका पालनकरै

विरेचनविधि ।

दोषकालबलापेक्षीस्नेहंपीत्वाविरेचयेत्। त्रिवृतामभयांवापित्रिफलारससंयुताम् ॥ पाययेत्मधुसंयुक्तामनयाश्चापिकेवलाम्। पाययेन्मूत्रसंयुक्तंविरेकश्चापिशास्त्रवित्॥ अथसम्यग्विरिक्तांचकृतसंसर्जनांततः ।

अर्थ—फिर दोष, काल और बल का विचार कर के स्नेहन कराके विरेचन देवै । निसोथ अथवा हरड के कल्कको त्रिफला के रस के साथ देवै अथवा केवल त्रिफला के क्वाथ में शहत मिलाकर पान करावै, अथवा केवल हरड को गोमूत्र के साथ देवै जब अच्छीतरह विरेचन होजाय तब पेयादि क्रमका पालन करावै ।

स्तन्यदोषमें पथ्य ।

ततोदोषावशेषघ्नैरन्नपानैरुपाचरेत् ॥ शालयःषष्टिकावास्युःश्यामाकोभोजने हिताः । प्रियङ्गवःकोरदूषायवावेणुयवास्तथा । वंशवेत्रकडायाश्चसस्नेहायूपसंस्कृताः । मुद्गान्मसूरान्यूपार्थेकुलुत्थांश्च प्रकल्पयेत् ॥ निम्बवेत्राग्रकुलकवार्ताकामलकैःशृतान् । सव्योषसैन्धवान्यूपान् कारयेत्स्तन्यशोधनान् ॥शशातकपिञ्जलानेणान्संस्कृतांश्चमकल्पयेत् । शार्ङ्गेष्टासप्तपर्णत्वगश्वगन्धाशृतंजलम्॥

अर्थ—तदनन्तर शेष दोषोंके दूर करने के लिये दोषनाशक अन्नपान देवै । शालीचांवल, साठी चांवल, सोंखिया इनका भोजन हितहै। प्रियंगु कोदों, जौ, वेणुयव, बांसकी कोंपल, वेतकी कोंपल इनका घी में छोंकाहुआ शाक, मूंग, मसूर और कुलथी का यूष देवै । नीम के पत्ते, बेत की कोंपल, परवल, बैंगन और आंवला इन के साथ सिद्ध किये हुए यूषोंमें सोंठ, मिरच, पीपल, और सेंधानमक डालकर सेवन करने से स्तन्य शुद्ध होता है ॥

खरगोश, तीतर और हिरण के अच्छीतरह सिद्ध कियेहुए मांसरस देवै ॥

शार्ङ्गष्टा, सप्तपर्णकी छाल और असगंध डालकर औटाया हुआ जल पीनेको देवै ॥

स्तन्यशोधकअन्यमयोग ।

पाययेताथवास्तन्यशुद्ध्येकटुरोहिणीम्। अमृतासप्तपर्णत्वक्क्वाथंचैवसनागरम् ॥ किराततिक्तकक्वाथंश्लोकपादेरितान्पिबेत्। त्रीनेतान्स्तन्यशुद्ध्यर्थमितिसामान्य भेषजम् ॥ कीर्तितंस्तन्यदोषाणांपृथगन्यंनिबोधत ।

अर्थ—स्तन्य की शुद्धि के निमित्त कु-

टकी का क्वाथ भी हित है। अथवा गिलोय और सतपर्णी की छाल के क्वाथको सोंठ डालकर पान करावै अथवा चिरायते का क्वाथ पान करावे। इसतरह आधे २ श्लोक में लिखेहुए तीन प्रयोगो मेंसे किसीको दूध के शुद्ध करने के निमित्त देवै। ये संक्षिप्त योग कहे गये हैं अब विस्तृत योगों को कहते हैं॥

स्तन्यदोषमेंविशेष चिकित्सा।

अपिबेद्विरसक्षीराद्राक्षामधुकशारिवाः॥ श्लक्ष्णपिष्टांपयस्यांञ्चसमालोड्यसुखाम्बुना॥

अर्थ—जिस स्त्री का दूध विरस हो वह दाख,मुलहटी, शारिवा अथवा क्षीरकाकोली को महीन पीसकर गरम गरम जल में मिलाकर पीवै॥

स्तन्यशोधक लेप।

पञ्चकोलकुलत्थैश्चपिष्टैरालेपयेत्स्तनौ॥ शुष्कौप्रक्षाल्यनिर्दुह्यात्तथास्तन्यंविशुद्ध्यति

अर्थ—पंचकोल और कुलथी को पीस कर स्तनों पर लेप करै, सूखने पर खूब धोकर साफ कर देवै॥

फेनिल स्तन्यका उपाय।

फेनसंघातवत्क्षीरंयस्यास्तांपाययेतच॥ पाठानागरशार्ङ्गेष्टामूर्वाःपिष्टासुखाम्बुना अञ्जनंतगरंदारुबिल्वमूलंप्रियंगवः॥ स्तनयोःपूर्ववत्कार्यलेपनंक्षीरशोधनम्।

अर्थ—झागदार दूध होवै तो पाठा, सोंठ, शार्ङ्गष्टा, मरोडफली इनको पीसकर सुहाते हुए गरम जलके साथ पान करावै। अथवा अंजन, तगर, देवदारु, बिल्वमूल और प्रियंगु इनको पीसकर स्तनों पर लेप करै।

किराततिक्तकंशुंठीममृताक्वाथयेद्भिषक्। तत्क्वाथंपाययेत्धात्रींस्तन्यदोषनिबर्हणम्। स्तनौचालेपयेत्पिष्टैर्यवगोधूमसर्षपैः।

अर्थ—चिरायता, सोंठ और, गिलोयका क्वाथ करके स्तन्य शोधन के निमित्त धात्री को पान करावै,तथा जौ, गेंहू और सरसों को पीसकर स्तनों पर लेप करे।

रूक्षतानाशक प्रयोग।

षड्विरेकाश्रितीयोक्तैरौषधैःस्तन्यशोधनैः रूक्षक्षीरापिबेत्क्षीरंतैर्वासिद्धंघृतंपिबेत्। पूर्ववज्जीवकाद्यश्चपञ्चमूलंप्रलेपनम्॥ स्तनयोःसंविधातव्यंसुखोष्णंस्तन्यशोधनम्।

अर्थ—जो दूध रूखा पडजाय तो सूत्र स्थानके षडविरेकाश्रितीय अध्याय में कही हुई स्तन्यशोधक औषधके साथ सिद्ध किया हुआ दूध वा घी पान करावे। तथा जीवकादि गणोक्त द्रव्य वा लघु पंचमूल को पीसकर सुहातेहुए गरम जल के साथ स्तनों पर लेप करै।

विवर्णतानाशक प्रयोग।

यष्टीमधुकमृद्वीकापयस्यासिन्धुवारिका॥ शीताम्बुनापिबेत्कल्कंक्षीरवैवर्ण्यनाशनम्। द्राक्षामधुककल्केनस्तनौवास्याःप्रलेपयेत्॥ प्रक्षाल्यवारिणाचैवनिर्दुह्यात्तौपुनःपुनः।

अर्थ—मुलहटी, दाख, क्षीरकाकोली और संभालू इनके कल्क को सुहाते हुए गरम

जलके साथ पान करै तौ दूधकी विवर्णता दूर होती है । इसमें दाख और मुलहटी के कल्क का लेप स्तनों पर करै और सूखने पर खूब धो डाले ।

दुर्गंधिनाशक प्रयोग ।

विषाणिकाजशृंग्यौचत्रिफलांरजनींवचाम् । पिवेत्क्षीराम्बुनापष्टाक्षीरदौर्गन्ध्य नाशनम् ॥ लिह्याद्वाप्यभयाचूर्णसव्योपंमाक्षिकाप्लुतम् । क्षीरदौर्गन्ध्यनाशार्थधात्रीपथ्याशिनीतथा ॥ शारिवोशीरमंजिष्ठाश्लेष्मान्तकसचन्दनैः । पत्राम्बुचन्दनोशीरैःस्तनौचास्याःप्रलेपयेत् ॥

अर्थ—जो दूध में दुर्गन्ध आती हो तो मेंढासिंगी, अजश्रृंगी, त्रिफला, हलदी, वच इनको दुग्ध और जलके साथ पीसकर पीवे अथवा हरड त्रिकुटा इनके चूर्ण को शहत में मिलाकर चाटै, इसमें स्त्रीको पथ्य से रहना उचित है । तथा शारिवा, खस, मजीठ, लिसोडे की जड और रक्त चन्दन अथवा तेजपात, नेत्रवाला, रक्तचन्दन और खस इनका लेप स्तनों पर करै ।

दूधकी स्निग्धताका उपाय ।

स्निग्धक्षीरादारुमुस्तपाठाःपिष्टासुखाम्बुना । पीत्वाससैन्धवाःक्षिप्रंक्षीरशुद्धिमवाप्नुयात् ॥

अर्थ—जो दूधमें चिकनाई हो तौ देवदारु, मोथा, पाठा, इनको सेंधे नमकके साथ पीसकर सुहाते हुए गरम जलके साथपीवै ॥

दूधकी पिच्छिलता का उपाय

प्रपिवेत्पिच्छिलक्षीराशार्ङ्गेष्टामभयांवचाम् । मुस्तनागरपाठाश्चपीताःस्तन्यविशोधनम् ॥ तक्रारिष्टान्पिवेदर्शसांयानि दर्शिताः । विदारीबिल्वमधुकैःस्तनौचास्याःप्रलेपयेत् ॥

अर्थ—जो दूध में पिच्छिलता हो तौ शार्ङ्गष्टा, हरड, वच, मोथा, सोंठ और पाठा इनको घोटकर पीवै । अर्शरोग में कहे हुए तक्रारिष्ट भी इस रोग में हित हैं । विदारीकंद, बेल और मुलहटी का स्तनोंपर लेप करना चाहिये ।

दूधकी गुरुताका उपाय ।

त्रायमाणामृतानिम्बपटोलत्रिफलाशृतम् गुरुक्षीरापिवेदेतत्स्तन्यदोषविशुद्धये ॥ पिवेद्वापिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् । वलानागरशार्ङ्गेष्टामूर्वाभिर्लेपयेत्स्तनौ ॥ पृश्णिपर्णीपयस्याभ्यांस्तनौचास्याः प्रलेपयेत् ॥

अर्थ—जो दूध में भारापनहो तौ त्रायमाणा, गिलोय, नीमकी छाल, परवल और त्रिफला का क्वाथ पीवे । अथवा पीपलामूल चव्य, चीता, सोंठका क्वाथ पानकरै अथवा खरैटी, सोंठ, शार्ङ्गष्टा और मूर्वा अथवा पृश्णि पर्णी और क्षीरकाकोली का लेप करै ॥

अष्टावेतेक्षीरदोषाहेतुलक्षणभेषजैः । निर्दिष्टाःक्षीरदोषोत्थास्तथोक्ताःकेचिदामयाः ॥

अर्थ—ये आठ प्रकार के क्षीर दोष हेतु, लक्षण और चिकित्सा के साथ वर्णन किये गये हैं, यथा दूषित दूध के पीने से जो बालकों के उपद्रव होते हैं, उनका वर्णन भी कियागया है ॥

वालकों की मात्रा का विचार ।

दोपदूष्यमलाश्चैवमहतांव्याधयश्चये । तएवसर्वेवालानांमात्रात्वल्पतरामता । निवृत्तिर्वमनादीनांमृदुतांपरतंत्रताम् ॥ वाक्चेष्टयोरसामर्थ्यंवीक्ष्यवालेपुशास्त्र वित् । भेपजंचाल्पमात्रन्तुयथाव्याधिप्र: योजयेत्॥ मधुराणिकपायाणिक्षीरवन्ति मृदूनिच । प्रयोजयेद्भिपग्वालेमतिमानप्र मादत: ॥

अर्थ—दोप, दूष्य, मल और वडे मनुष्योंके होनेवाली सम्पूर्ण व्याधियां वालकों के भी होती हैं परन्तु वालकको औषधकी मात्रा वहुत कम दीजाती है, क्योंकि ये कोमल और परतंत्र होते हैं । और वोलकर अपने मनका हाल प्रगट नहीं करसक्ते हैं और न किसी प्रकार की चेष्टा करसकते हैं इससे बुद्धिमान् वैद्यको उचित है कि व्याधि के अनुसार अल्पमात्रा का प्रयोग करै । चिकित्सक को उचित है कि वालकों को मधुर, कपाय और मृदु औषध दूध के साथ में अत्यन्त सावधानी से देवै ।

शिशुपक्ष में गर्हितकर्म ॥

अत्यर्थस्निग्धरूक्षोष्णमम्लंकटुविपाकिच गुरुचौपधपानान्नमेतद्वालेपुगर्हितम् ॥

अर्थ—अत्यन्त स्निग्ध,अत्यन्त रूक्ष,उष्ण, अम्ल, कटुविपाकी और भारी औषध तथा अन्नपान वालकों को देना ठीक नहीं है ।

भवतिचात्र ।

समासात्सर्वरोगाणामेतद्वालेपुभेपजम् । निर्दिष्टंशास्त्रबुद्ध्यातत्प्रविभज्यप्रयोजयेत् सलिङ्गंव्यापदोयोनेःसनिदानचिकित्सिता उक्ताविस्तरतःशम्यक्मुनिनातत्त्वदर्शिना॥

अर्थ—इस तरह वालकों के रोगों की सम्पूर्ण प्रकार की चिकित्सा वर्णन की गई है । इनका शास्त्र के अनुकूल विचार कर के प्रयोग करै ॥

इस तरह भगवान् पुनर्वसुने योनिरोगों के लक्षण निदान और चिकित्सा का सविस्तर वर्णन किया है ।

इतिसर्वविकाराणामुक्तमेतच्चिकित्सितम् स्थानमेतद्धितन्त्रस्यरहस्यंसारमुत्तमम् ॥

अर्थ—इस तरह सम्पूर्ण विकारों की चिकित्सा वर्णन कीगईहै, यह चिकित्सितस्थान इस ग्रन्थ का सारभाग और परम रहस्य स्वरूप है ॥

अस्मिन्सप्तदशाध्यायाःकल्पाःसिद्धयए वच । नासाद्यन्तेऽग्निवेशस्यतन्त्रेचरक संस्कृते ॥ तानेतान्कापिलवलिःशेपान् दृढवलोऽकरोत् । तन्त्रस्यास्यमहार्थस्य पूरणार्थंयथातथम् ॥

अर्थ—चरकप्रतिसंस्कृत अग्निवेश के रचेहुए ग्रन्थ में शेप सत्रह अध्याय और कल्पस्थान तथा सिद्धिस्थान इन दोनों के वारह वारह अध्याय नहीं हैं । इन शेपों को दृढवल ने इकट्ठे कर के इस ग्रन्थकी पूर्त्ति के लिये लगादिये हैं ॥

रोगायेऽप्यत्रनोद्दिष्टावहुत्वान्नामरूपतः तेपामप्येतदेवस्याद्दोपादीन्वीक्ष्यभेपजम् दोपदूष्यनिदानानांविपरीतंहितंध्रुवम् ॥

उक्तानुक्तानगदान्सर्वान्सम्यग्युक्तानि यच्छति ॥

अर्थ—रोगों के नाम और रूप असंख्य हैं; इससे जिन रोगोंका यहां वर्णन नहीं कियागया है उनके भी दोषादिकों को देख कर तदनुसार उनकी चिकित्सा करनी चाहिये सम्पूर्ण प्रकार के उक्त और अनुक्तरोगों में दोष दूष्य, और निदान के विपरीत औषध करना हित है ॥

पथ्यापथ्यकालक्षण॥

देशकालप्रमाणानांसात्म्यासात्म्यस्यचैव हि ॥ सम्यग्योगोऽन्यथान्येषांपथ्यमपथ्यन्यथाभवेत् ।

अर्थ—देश, काल, प्रमाण, सात्म्यऔर असात्म्य का विचार करके जो अन्नपान का सेवन किया जाता है वह पथ्य है । इस से विपरीत अपथ्य होता है ।

आस्यादामाशयस्थानाहिरोगान्नस्तःशिरोगतान् ॥ गुदात्पक्वाशयस्थांश्चहन्त्याशु तरमौषधम्

अर्थ—मुख से आमाशय तक, नासिका से मस्तक तक और गुदा से पक्वाशय तक के रोग औषध के आभ्यन्तर प्रयोगों से शीघ्र दूर होजाते हैं ।

प्रलेपादिजन्यरोग ।

शरीरावयवोत्थेषुविसर्पपिडकादिषु ॥ यथादेशंप्रदेहादिशमनंस्याद्विशेषतः ॥

अर्थ—शरीर के बाहर के अंगों में जो विसर्प और पिडकादिक उत्पन्न होते हैं उन पर उन के उत्पन्न होने के स्थान के अनुसार लेप आदिका प्रयोग करने से वे शीघ्र अच्छे होजाते हैं ।

चिकित्सा विचार ।

दिनातुरौषधव्याधिजीर्णलिंगर्त्वपेक्षणम्।

अर्थ—दिन, रोगी, औषध, व्याधि जीर्ण लक्षण और ऋतु इन सबका विचार कर के चिकित्सा करना उचित है ।

दिन विचार ।

कालंविद्याद्दिनापेक्षःपूर्वाह्णेवमनंयथा ॥

अर्थ—काल का विचार दिनापेक्ष है, जैसे पूर्वान्ह में वमनकारक औषधों का प्रयोग करना चाहिये ॥

रोगी विचार।

रोग्यपेक्ष्योयथाप्रातर्निरन्नोवलवान्पिबेत् भेषजंलघुपथ्यन्नैर्युक्तमद्यात्तुदुर्बलः ॥

अर्थ—बलवान् रोगी प्रातःकाल विना कुछ खाये ही औषधों का सेवन करै और दुर्बल मनुष्य थोडा पथ्य अन्न सेवन कर के औषध का सेवन करै ।

औषध विचार ॥

भैषज्यकालाद्भुक्तवादौमध्येपश्चान्मुहुर्मुहुः सामुद्गभुक्तसंयुक्तंग्रासग्रासान्तरेदश ॥

अर्थ—औषध सेवन के दस समयहैं, यथा-भोजन के पहिले, भोजन के बीच में भोजन के पीछे, बार बार थोडी देर ठहर के, सामुद्र, भक्तसंयुक्त [आहार के साथ मिलाकर] ग्रासग्रास में, ग्रासान्तर में विना कुछ खाये वा पथ्य में मिलाकर ।

पंचवायु में औषध सेवन ।

अपानेविगुणेपूर्वंसमानेपथ्यभोजनम् ॥

व्यानेतुप्रातराशान्तेउदानेभोजनोत्तरम्।
वायौप्राणप्रदुष्टेतुग्रासेग्रासान्तरिष्यते ॥
श्वासकासपिपासासुत्ववचार्यमुहुर्मुहुः ॥
सामुद्गंहिक्केभुक्तंलघुनान्नेनसंयुतम् ॥
सम्भोज्यंत्वौषधंभोज्यैर्विचित्रैररुचौमतम्

अर्थ—अपान वायुके दूषित होने पर भोजन से पहिले, समान वायु के दूषित होने पर भोजन के बीच में, व्यान वायु के दूषित होने पर प्रातःकाल, उदानवायु के दूषित होने पर भोजन के पीछे और प्राण वायु के दूषित होने पर ग्रासग्रास में अथवा ग्रासान्तर में औषध सेवन करै। श्वास खांसी और पिपासा रोग में औषध को बार बार मुख में धारण करै, हिचकी रोगमें हल के भोजन के साथ सामुद औषध देवै। तथा अरुचि में अनेक प्रकार के भोजनों के साथ औषध मिलाकर देवै ॥

व्याधि विचार।

ज्वरेपेयाःकषायाश्चक्षीरसर्पिर्विरेचनम्।
षडहेषडहेदेयंकालंवीक्ष्यामयस्यतु ॥

अर्थ—ज्वरमें प्रति छटे दिन पेया, कषाय दूध, सर्पि (घी) और विरेचन देवै। जैसे प्रथम दिन लंघन करा के सातवें दिन तक पेया, आठवें दिन से चौदहवें दिनतक दूध आदिका प्रयोग करै, इसी तरह व्याधि के अनुसार चिकित्सा का प्रयोग करनाचाहिये

जीर्ण लक्षण।

क्षुद्वेगमोक्षौलघुताविशुद्धिर्जीर्णलक्षणम्
तदाभेषजमादेयंस्याद्धिदोषवदन्यथा ॥

अर्थ—भूख लगना, मलमूत्र का स्वच्छ होना, शरीर में हलकापन, डकार, अधो वायु आदि का शुद्ध होना ये जीर्ण के लक्षण है। ऐसे समय में औषध देना चाहिये, इससे अन्यथा दोषोत्पादक होती है ॥

ऋतु विचार।

चयादयश्चदोषाणांवर्ज्यसेव्यञ्चतत्रयत्।
ऋतावपेक्ष्यंयत्कर्मपूर्वंसर्वमुदाहृतम् ।

अर्थ--प्रथम सूत्रस्थान में जहां ऋतुचर्या वर्णन की गई है वहां दोषों का संचय और प्रकोप तथा उनकी शांति का वर्णन हो चुका है। तथा सेवनीय और असेवनीय कर्म्मों का वर्णन भी होचुका है।

उपक्रमाणांकरणंप्रतिषेधेचकारणम् ।
व्याख्यातमबलानासविकल्पानामवेक्षणे
मुहुर्मुहुश्चरोगाणामवस्थामातुरस्यच ।
अवेक्ष्यमाणस्तुभिषक्चिकित्सायांनमुह्यति ॥

अर्थ—सुचिकित्स्य व्याधियों का कारण वर्जनीय व्याधियों का कारण, और दुर्बल रोगियों के लिये औषधों का विकल्प ये सब बातें भी प्रथम वर्णन कर दी गई हैं। जो वैद्य रोग और रोगी की अवस्था को देखकर चिकित्सा करने में प्रवृत्त होता है, वह मोह को प्राप्त नहीं होता है ॥

इत्येवषड्विधंकालमनपेक्ष्यभिषग्जितम्।
प्रयुक्तमहितायस्याच्छस्यस्यकालवर्षवत्।

अर्थ--इस तरह रोगों के विषय में इन छः कालों पर विना विचार किये जो औषध प्रयोग करता है उसकी औषध खेती में कुसमयकी वर्षाकी तरह हानिकारक होती है

कालविचार।

व्याधीनामृत्वहोरात्रवयसांभोजनस्यतु। विशेषोभिद्यतेयस्तुकालापेक्षःसउच्यते॥ वसन्तेश्लेष्मजारोगाःशरत्कालेतुपित्तजाः वर्षासुवातजाश्चैवमायःमादुर्भवन्तिहि॥ निशादौदिवसान्तेचवयोऽन्तेवातजागदाः मायः क्षपान्तेकफजास्तयोर्मध्येतुपित्त जाः॥ जीर्णान्तेवातजारोगाजीर्य्यमा णेतुपित्तजाः॥ श्लेष्मजाभुक्तमात्रेतुल-भन्तेमायशोबलम्॥

अर्थ—सब व्याधियों ऋतु, दिन, रात, अवस्था और भोजन कालकी अपेक्षा भिन्न भिन्न दोषों से उत्पन्न होती है।यथा वसन्त ऋतु में कफजरोग, शरत्काल में पित्तजरोग और वर्षामें प्रायः वातजरोग होते हैं। रात्रिके प्रथम प्रहर में, दिनके पिछले प्रहर में और बुढापेमें वातजरोग होते हैं। रात्रि के अन्तमें और प्रातः काल कफजरोग होते हैं, तथा पित्तज रोग दुपहर और आधीरात के समय होते हैं। भोजन पचने पर वातजरोग, पचनकाल में पित्तजरोग तथा भोजन करते ही कफजरोगों की वृद्धिहोती है।

औषधकी मात्राका प्रमाण।

नाल्पंहन्त्यौषधंव्याधिंयथापोऽल्पमहानलम्॥ दोषवच्चातिमात्रंस्याच्छस्यस्यात्युदकंयथा। संप्रधार्यबलंतस्मादामयस्यौषधस्यच। नैवातिबहुलात्यल्पंभैषज्यमवचारयेत्॥

अर्थ—अल्पमात्रा रोग को ऐसे दूर नहीं कर सकती है जैसे थोडासा जल बडी अग्नि को नहीं बुझा सकता है और दीर्घमात्रा दोषोंको उदीर्ण करदेतीहै जैसे बहुत जल के बरसने से खेती नष्ट होजाती है। इस लिये औषध और रोगों के बलका विचार करके न बहुत थोडी और न बहुत अधिक औषध देनी चाहिये।

औचित्याद्यस्ययत्सात्म्यंदेशस्यपुरुषस्य च॥ अपथ्यमपिनैकान्तात्त्याज्यंलभतेसुखम्॥

अर्थ—जिस देश में औषध प्रचलित है, वा जिस देशके मनुष्यों को जो वस्तु सात्म्य है॥ और यदि वह शास्त्रसे विरुद्ध भी है, उसको एक दमसे छोड देने से सुख नहीं मिलता है किन्तु स्वास्थ्य बिगड जाता है।

देशानुकूलसात्म्यद्रव्य।

वाह्लीकाःपह्लवाश्चीनाःशूलीकायवनाःशकाः। मांसगोधूममाध्वीकशस्त्रवैश्वानरोचिताः॥ क्षीरसात्म्यास्तथाप्राच्यामत्स्यसात्म्याश्चसैन्धवाः। अश्मकावन्तिकानांतुतैलाम्लंसात्म्यमुच्यते॥ शाकमूलफलंसात्म्यंविद्यान्मलयवासिनाम् सात्म्यंदक्षिणतःपेयामन्थश्चोत्तरपश्चिमे॥ मध्यदेशेभवेत्सात्म्यंयवगोधूमगोरसाः। तेषांतत्सात्म्ययुक्तानिभैषज्यान्यवचारयेत्।सात्म्यंह्याशुबलंधत्तेनातिदोषं चबह्वपि॥ योगैरेनंचिकित्सन्हिदेशाद्ज्ञोऽपराध्यति॥

अर्थ—वाल्हीक [बलख देशवासी), पह्लव,चीनी, सूलीक,यवन, शक (तातारी)

इन लोगोंको मांस, गेंहूं, मद्य, शस्त्रकर्म और अग्निकर्म सात्म्य हैं । पूर्वदेशवासियों को दूध और सिंधियों को मत्स्य सात्म्य हैं (यहां पाठ में गड़बड़ माळूम होताहै हमारी समझ में पूर्वदेश वासियों को मछली और सिंधियों को दूध सात्म्य है) पहाड़ी तथा अवन्तिका देशियों को तेल और खटाई सात्म्य है ॥ मलयवासियों को शाक फल और मूल सात्म्य है ॥ दक्षिणीयों को पेया और उत्तर पश्चिम के लोगोंकोमन्थ सात्म्य है। मध्यदेश वासियोंको जौ, गेंहू, और दुग्धादि सात्म्य हैं ॥ इन भिन्न भिन्न देशवासियों के भिन्न २ सात्म्योंको देखकर चिकित्सा करै । सात्म्यद्रव्य शीघ्रही बल को वढाते हैं और दैवात् सात्म्य द्रव्यका मात्रा से अधिक सेवन करलेना भी विशेष हानिकारक नहीं है । विना देशके विचार के जो शास्त्रलिखित औषधों से चिकित्सा करता है वह दोषों का अपराधी है ।

वयोबलशरीरादिभेदाहिबहवोमताः ॥ तथान्तःसन्धिमार्गाणांदोषाणांगूढचारिणाम् ।

अर्थ—रोगियों के वय, बल और शरीर के भेद नानाप्रकार के हैं, इसी तरह भीतर संधियों में, स्रोतों में तथा गुप्त रहने वाले दोषों में अनेक प्रकार के रोग हैं ।

शास्त्रविरुद्धक्रियाकानिर्देश ।

भवेत्कदाचित्कार्यापिविरुद्धाभिमताक्रिया ॥ अन्तर्गतंपित्तधातुंस्वेदसेकोपनाहनैः । नयन्तोवहिरुष्णेहितयोष्णंशमयन्तितम् ॥ वाह्यश्चशीतैःसेकाद्यैरूष्मान्तर्यातिपीडितः । सोऽन्तर्गूढंकफंहन्तिशीतैःशीतंतथाजयेत् । श्लक्ष्णःपिष्टघनोलेपश्चंदनस्यापिदाहकृत् ॥ त्वग्गतस्योष्मणोरोधाच्छीतकृच्चान्यथागुरुः ॥ छर्दिघ्नीमक्षिकाविष्टामक्षिकैवतुवामयेत्॥ द्रव्येपुस्विन्नदग्धेषुचैवंतेष्वेवविक्रिया । तस्माद्दोषौषधादीनिपरीक्ष्यदशतत्त्वतः । कुर्याच्चिकित्सितंप्राज्ञोनयोगैरेवकेवलैः॥

अर्थ—कभी २ शास्त्रविरुद्ध क्रिया भी हित होती है । जैसे जव पित्तकी उष्मा देह के भीतर वढजाती है तब उष्णसेक,स्वेद और उपनाह द्वारा भीतरकी ऊष्मा को वाहर लाकर शान्त करते हैं, यहां ऊष्मासे उष्मा दूर होती है । यदि यहां शीतल सेक, स्वेद और उपनाह करें तो उष्मा शरीरके भीतर घुसकर पीडा को और भी वढादेवै । दूसरी वात यह है कि व्रण के भीतर जव कफ पीव का रूप धारण कर के गुप्त रहता है तव ऊपर शीतल लेप करने से ऊष्मा भीतरको प्रवेश कर के उसे सुखादेती है यहां शीत द्वारा शीतकी शान्ति है । यदि शरीरपर चन्दन को वारीक पीसकर गाढा गाढा लेप करदें तो उस से दाह वढता है, क्योंकि वह त्वचाकी ऊष्मा को रोकलेता है । और अगर यद्यपि उष्ण है तो भी इसे वारीक पीसकर पतला लेप करने से दाह की शान्ति होजाती है । जैसे मक्खी का विष्टा वमन को रोकता है परन्तु मक्षिका के प्रयोग करने से वमन होताहै ।

इसतरह सम्पूर्णद्रव्य खिन्न और दग्ध होनेपर अन्यगुणों का अवलम्बन करलेते हैं । अत एव उक्त दस रीति से औषधादिककी परीक्षा करके चिकित्सा करै, केवल शास्त्रालिखितप्रयोगों परही भरोसा करना ठीक नहीं है (यहां चरकने 'विषस्यविषमौषधं, इस चिकित्सा की संक्षिप्त सूचनादी है । डाक्टर हैनीमान् ने इस विद्या को बहुत उन्नति दी है, यह चिकित्सा होमियोपैथी के नाम से सब भूमंडल पर अपना प्रभाव बढाती जाती है ।

निवृत्तरोगमेंऔषधसेवन ।

निवृत्तोऽपिपुनर्व्याधिःस्वल्पेनायातिहेतुना। क्षीणेमार्गीकृतेदेहेशेषःसूक्ष्मइवानलः तस्मात्तमनुबध्नीयात्प्रयोगेणानपायिना

अर्थ—निवृत्तहुई व्याधि थोडेही कारण से फिर उदय होआती है, दोष क्षीणहोने और अपने मार्गपर चलने पर भी अग्नि के पतंगकी तरह सूक्ष्मरूप में शेष रहजाते हैं । अतएव रोग के निवृत्त होने पर भी दोषों की शमन करने वाली औषधोंका कुछ कालतक प्रयोग करता रहै ॥

पथ्यान्तरविधि ।

सिद्ध्यर्थंप्राक्प्रयुक्तस्यसिद्धस्याप्यौषधस्यतु । काठिन्यादूनभावद्वादोषोन्तःकुपितोमहान् ॥ पथ्यैर्मृद्वल्पतांनीतोमृदुदोषकरोभवेत् । पथ्यमप्यश्नततस्माद्योव्याधिरुपजायते ॥ शास्त्रैर्वृद्धिमभ्यासमथवान्यस्यकारयेत् ।

अर्थ—सिद्धि के लिये जो प्रथम औषध का प्रयोग कियागया है उस के सिद्धहोने पर भी उसकी कठिनता या स्वल्पता के कारण अन्तःकुपित महान् दोष पथ्यसेवन द्वारा मृदु और अल्प होकर मृदु दोषकारक होता है । पथ्य सेवन करने पर भी जो व्याधि की वृद्धि हो तो अन्यपथ्य का सेवन करावै ॥

सातत्यात्स्वाद्वभावाद्वापथ्यंद्वेष्यत्वमागतम् कल्पनाविधिभिस्तैस्तैःप्रियत्वंगमयेत्पुनः मनसोऽर्थानुकूल्याद्धितुष्टिरूर्जारुचिर्बलम् सुखोपभोगताचस्याद्व्याधेश्चातोबलक्षयः

अर्थ—एकही वस्तु के निरन्तर सेवन करने से वा स्वादु के अभाव से जो पथ्य दोषकारक होजाय तो विविधि प्रकारकी कल्पनाओं से पथ्यका सेवन करावैजिससे रोगी को प्रिय लगे । विषयों में मनकी अनुकूलताही से तुष्टि, ऊर्ज्जा रुचि, बल, और सुखोपभोगता की वृद्धि होती है तथा व्याधि का बलक्षीण होता है ॥

अरुचिमेंपथ्यविधि ।

लौल्याद्दोषक्षयाद्व्याधेर्वैधर्म्याच्चापियारुचिः । तासुपथ्योपचारःस्याद्योगेनाद्यं विकल्पयेत् ॥

अर्थ—जिह्वा की लोलता से,वातादिदोषोंके क्षयहोने से व्याधिके विधर्म से जो अरुचि होती है उस में पथ्य वस्तुका सेवनकरै । तथा उस पथ्य को योगान्तर से संस्कृत करलेवै ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकाःविंशतिव्यापदोयोनेर्निदानं

लिङ्गमेवच । चिकित्साचापिनिर्दिष्टाशिष्याणांहितकाम्यया ॥ शुक्रदोषास्तथा चाष्टौनिदानाकृतिसाधनैः । क्लैव्यान्युक्तानिचत्वारिचत्वारःप्रदरास्तथा ॥ तेषां निदानलिङ्गञ्चभैषज्यञ्चैवकीर्तितम् । क्षीरदोषास्तथाचाष्टौहेतुलिङ्गभिषग्जितैः॥ तेषांचिकित्सानिर्दिष्टासमासव्यासतोमया ॥ रेतसोरजसश्चैवकीर्तितंशुद्धिलक्षणम् । उक्तानुक्तचिकित्साचसम्यग्योगयथैवहि ॥ देशादिगुणशंसाचकालः षड्विधएवच । देशेदेशेचयत्सात्म्यंयथा वैद्योऽपराध्यति ॥ चिकित्साचापिनिर्दिष्टादोषाणांगूढचारिणाम् ।

अर्थ—इस योनिव्यापचिकित्सित नामक अध्याय में वीस प्रकार के योनिरोग, उन के निदान, लक्षण और चिकित्सा शिष्यों के हित की इच्छा से वर्णन की हैं। आठ प्रकार के शुक्रदोष, उन के निदान, लक्षण और चिकित्सा, चार प्रकार के क्लीवरोग, चारप्रकार के प्रदररोग तथा इन के निदान, लक्षण और चिकित्सा वर्णन की गई हैं। आठ प्रकार के स्तन्यदोष, इनके निदान, लक्षण, औषध और चिकित्सा संक्षेप से और विस्तार से वर्णन कीगई हैं। वीर्य और रज की शुद्धि के लक्षण भी वर्णन कियेगये हैं। इसीतरह उक्त अनुक्त रोगोंकी चिकित्सा, सम्यक्योग, देशविशेष के गुण, छः प्रकार का काल, भिन्न भिन्न देशवासियों के सात्म्यद्रव्य, वैद्य के अपराधी होने के कारण तथा गूढचारी रोगों की चिकित्सा भी वर्णन कीगई है ।

अध्यायकाउपसंहार ।

योहिसम्यङ्नजानातिदोषंदोषार्थमेवच। नकुर्य्यात्सक्रियांचित्रमचक्षुरिवचित्रकृत्॥

अर्थ—जो वैद्य अच्छी रीतिसे दोष और दोषोंके विषयोंको (पाठान्तर"शास्त्रं शास्त्रार्थमेवच) अथवा शास्त्र या शास्त्र के विषयों को नहीं जानता है, वह अच्छी रीति से चिकित्सा करने में ऐसा असमर्थ होता है, जैसा नेत्रहीन चित्रकार अच्छे चित्रको नहीं खींचसक्ता है ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांचिकित्सितस्थानेयोनिव्यापचिकित्सितंनामत्रिंशोऽध्यायः ॥३० ॥

—:—

इतिचिकित्सितस्थानंषष्ठं समाप्तम् ॥

॥ ओ३म् ॥

॥ श्रीहरिम्वन्दे ॥

॥ श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः ॥

॥ अथकल्पस्थानम् ॥

—— ० * ० ——

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

अथातोमदनकल्पंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम मदनकल्पनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

अथखलुवमनविरेचनार्थमदनफलादित्रृतादीनांवमनविरेचनद्रव्याणांसुखोपभोग्यतमैःसहान्यैर्द्रव्यैर्विविधैःप्रकल्पनार्थं तथोगानांचक्रियाविधेःसुखोपायस्यसम्यगुपकल्पनार्थंकल्पस्थानमुपदेक्ष्यामोऽग्निवेश! ॥

अर्थ—हे अग्निवेश! वमन विरेचन कराने वाले जो मेनफल और निसोथ से आदि लेकर द्रव्य हैं उनका दिग्दर्शनमात्र वर्णन सूत्रस्थान में हो चुका है परन्तु अब इस कल्पस्थान में उन वातों का वर्णन किया जायगा कि जिन सुखोपसेवनीय द्रव्यों के इन में मिलाने से अनेक भेद होजाते हैं, और अनेक प्रकार के योग और सुखकारी चिकित्साविधि यहां वर्णन की जायगी ॥

वमनादिकी निरुक्ति ।

तत्रदोषहरणमूर्ध्वभागंवमनसंज्ञमधोभागं विरेचनसंज्ञमुभयंवाशरीरमलरेचनाद्विरेचनशब्दंलभते ॥

अर्थ—जो दोष मुखकी ओर से निकाले जाते हैं उस क्रिया का नाम **वमन** है। अधोमार्ग द्वारा दोषों के निकालने का नाम **विरेचन** है, अथवा शरीरस्थ मल के रेचन अथवा निकालने के कारण वमन विरेचन दोनों को **विरेचन** कहते हैं।

तत्रोष्णतीक्ष्णसूक्ष्मव्यवायिविकाशीन्यौषधानिस्ववीर्येणहृदयमुपेत्यधमनीरनुसृत्यस्थूलाणुस्रोतोभ्यःकेवलंशरीरगतंदोषसंघातमाग्नेयत्वाद्विष्यन्दयन्तितैक्ष्ण्याद्विच्छिन्दन्ति। सविच्छिन्नःपरिप्लवःस्नेहभावितेकायेस्नेहाक्तभाजनस्थमिवक्षौद्रमसज्जदणुप्रवणभावादामाशयमागत्योदानप्रणुन्नोग्निवाय्वात्मकत्वादूर्ध्वभागप्रभावादौषधस्योर्द्ध्वमुत्क्षिप्यते ॥ सलिलपृथिव्यात्मकत्त्वादधोभागप्रभावाच्चौषधस्याधःप्रवर्त्तते ॥ उभयतश्चोभयगुणत्वादिति लक्षणोद्देशः ॥

अर्थ—इनमें से उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, व्यवायी और विकाशी औषध अपने वीर्य के प्रभाव से सेवन करतेही हृदय में पहुंचकर वहां से धमनियों का अनुसरण करके आग्नेयत्व होने के कारण स्थूल और सूक्ष्म स्रोतों से शरीरगत केवल दोष समूहको विष्यन्दित अर्थात् पतला कर देती हैं और तीक्ष्णता के कारण उन को अपने अपने स्थानों से अलग कर देती है यदि स्नेहन कर्म करने के पश्चात् वमन विरेचन का प्रयोग किया

जाय तब वह औषधें शरीरस्थ दोषों को विच्छिन्न और द्रवीभूत करनेके पश्चात् शरीरमें इस तरह नही लगती हैं, जैसे चिकने पात्र में शहत नहीं चिपक सकता है। फिर अनुप्रवण भावसे आमाशय में पहुंचकर वमनकारक द्रव्यों के अग्निवाय्वात्मक तथा ऊर्ध्वगामी प्रभावयुक्त होने के कारण उदानवायु से प्रेरित होकर आमाशयस्थ दोषों को ऊपरके मार्गसे वमन द्वारा निकलती हैं। इसीतरहसे वैरेचनिक द्रव्य जल और पृथिव्यात्मक होने के कारण अधोगामी प्रभाव रखने के कारण दोषोंको अधोमार्ग से विरेचन द्वारा निकालते हैं। इसी तरहसे उभयगुण विशिष्ट वमन विरेचन द्रव्यों के संयोगसे वमन विरेचनदोनों होतेहैं।

तत्रफलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकुटजकृतवेधनानां, श्यामात्रिवृच्चतुरंगुलतिल्वकमहावृक्षसप्तलाशंखिनीदन्तीद्रवन्तीनाञ्च नानाविधदेशकालसम्भवास्वादुरसवीर्य्य विपाकप्रभावग्रहणाद्देहदोषप्रकृतिवयोबलाग्निभुक्तिसात्म्यरोगावस्थादीनांनानात्मकत्वाच्चविविधगन्धवर्णरसस्पर्शानामुपयोगसुखार्थमसंख्येयसंयोगानामपिसतांद्रव्याणांविकल्पमार्गदर्शनार्थंषड्विरेचनयोगशतानिव्याख्यास्यामः॥

अर्थ—इन में से मैनफल, जीमूत, कटुतुंबी, धामार्गव, कुटज और कृतवेधन, तथा श्यामनिसोथ, अमलतास, लोध, सेहुंड, सातला, शंखिनी, दंती और द्रवंती। ये औषध अनेक तरह के देशों में उत्पन्न होती हैं और अनेक प्रकार के स्वादु, रस, वीर्य, विपाक और प्रभावको धारण करती हैं तथा मनुष्यों के देह, दोष, प्रकृति, वय, बल, अग्नि, भोजन, सात्म्य रोग और अवस्था अनेक प्रकार की है, इन सब के सुख पूर्वक उपयोग में लाने के निमित्त छः सौ प्रकार के भिन्न भिन्न विरेचनों की कल्पना का वर्णन करेंगे, यद्यपि इनकेगंध, वर्ण, रस और स्पर्श तथा संयोग वे गिनतीहै

तानितुद्रव्याणिदेशकालगुणभाजनसम्पद्वीर्यबलाधानात्क्रियासमर्थतमानिभवन्ति

अर्थ—ये संपूर्ण द्रव्य देश, काल, गुण और पात्रकी उत्कर्षता और वीर्य बल के यथावत् होने से चिकित्सा में अपना प्रभाव दिखाने को समर्थ होते हैं।

देशभेद।

त्रिविधःखलुदेशोजांगलोऽनूपःसाधारणश्चेति।

अर्थ—देश तीन प्रकारके होतेहैं, यथा जांगल, आनूप और साधारण।

जांगलदेशकेलक्षण।

तत्रजांगलःपर्य्याकाशभूयिष्ठः। तरुभिरपिकदरखादिराशनाश्वकर्णधवतिनिशशल्लकीसालसोमवल्कबदरीतिन्दुकाश्वत्थवटामलकीवनगहनः। अनेकशमीककुभशिंशपाप्रायःस्थिरशुष्कपवनबलाविधूयमाननृत्यत्तरुणविटपः। प्रततमृगतृष्णाकूपोगूढस्तनुखरपरुषसिकताशर्करावहुलः॥ लावतित्तिरचकोरानुमचितभूमिभागोवातपित्तबहुलस्थिरकठिनमनुष्यप्रायोजांगलोज्ञेयः॥

अर्थ—इन में से जांगलदेश के चारों ओर भूमि विस्तृत और स्वच्छ आकाश से युक्त होता है। इस में कदर, खैर, अशन, पीतसाल, धव, तिनिश शल्लकी, साल, सोमवल्क वेर, तेंदू, पीपल, वड, आंवला इन के गहनवन होतेहैं। जगह जगह शमी, अर्जुन और शिंशपा वृक्षों की बहुतायत होती है। वृक्षों की शाखा वडी दृढ होती हैं और पवन के वल से हिलती रहती हैं, सूर्यकी तीक्ष्ण किरणोंसे शुष्कस्थल में जल दिखाई देता है, कूए वडे गहरे गहरे होते हैं, पतली, खरदरी और कर्करी वालू की अधिकता होती है, लवा तीतर, चकोर आदि पक्षी बहुत होते हैं, यहां वातपित्त की अधिकता होती है और यहां के मनुष्य दृढ और कठोर होते हैं। ये जांगल देश के लक्षण होते हैं।

आनूपदेशकेलक्षण।

अथानूपोहिन्तालतमालनारिकेलकदली वनगहनः। सरित्समुद्रपर्य्यन्तप्रायः॥ शिशिरपवनवहुलोवञ्जुलवानीरोपशोभि तोराभिःसरिद्भिरुपगतभूमिभागःअक्षि तिधरोनकुञ्जोपशोभितोमन्दपवनानुवी- जितः। क्षितिरुहगहनोऽनेकवनराजीपु ष्पितवनगहनोभूमिभागः॥ स्निग्धतरुप्र तानोपगूढहंसचक्रवाकवलाकानन्दीमुख पुण्डरीककादम्बमद्गुभृङ्गराजशतपत्रमत्त कोकिलमुदिततरुणविटपःसुकुमारपुरुषः पवनकफप्रायोज्ञेयः॥

अर्थ—आनूपदेश में हिन्ताल, तमाल नारियल और केले के गहनवन होते हैं। इसके चारों ओर समुद्र और वीच २ में वहुतसी नदियां होती हैं, शीतल पवन अधिक चलती है, वंजल और वानीर के वनों और नदियों से उपशोभित होते हैं। इस में पर्वत और कुंज नहीं होतीहै परंतु मन्द मन्द पवन से चलायमान् वृक्षों के समूह वहुत होते हैं। अनेक प्रकार के फलों से यह देश सुशोभित होता है, तरह तरहकी सचिक्कण लताओं से यह भूमि आकीर्ण होती है, यहां चकवे, वलाका, नन्दीमुख, पुंडरीक, कादम्ब, मद्गु, भृंगराज और शतपत्र पक्षियोंके समूह वृक्षों की शाखाओं में वैठे हुए आनन्द से कुहकते हैं, मतवाली कोयल नवीन वृक्षोंकी शाखाओं में वैठकर मुदितमन से अपने राग आलापती है। यहां के मनुष्यों के देह कोमल होते हैं। और उनकी प्रकृति वातकफप्राय होती है॥

साधारणदेशके लक्षण।

अनयोरेवद्वयोर्देशयोर्वीरुद्वनस्पतिवानस्प- त्यशकुनिमृगगणयुतःस्थिरसुकुमारवर्णसं- हननोपपन्नसाधारणगुणयुक्तपुरुषःसाधा रणोज्ञेयः॥

अर्थ—जिस भूमि में जांगल और आनूप दोनों देशों के लक्षण मिलते हैं उसे साधारण देश कहते हैं। इस देश में दोनो देशों के लता, वनस्पति, वानस्पत्य, पशु और पक्षी होते हैं॥ यहां के मनुष्य दृढ, सुकुमार, वर्ण और संहननयुक्त होते हैं।

उत्कृष्ट देशजात औषध ।

तत्रदेशोजाङ्गलसाधारणेवायथाकालंशिशिरातपपवनसलिलसेकसेवितेसमेशुचौप्रदक्षिणेऽश्मशानचैत्यदेवयजनागारश्वभ्रारामवल्मीकोपरविरहितेकुशरोहिषास्तीर्णेस्निग्धकृष्णसुवर्णवर्णमधुरमृत्तिकेमृदावफालकृष्टेऽनुपहतेऽन्यैर्बलवत्तद्रुमैरौषधानि जातानिप्रशस्यन्ते ।

अर्थ—इन में से नीचे लिखे हुए गणों से विशिष्ट जांगल वा साधारण देशमें उत्पन्न हुई तथा ठीक समय में लाई हुई औषधियां उत्तम होती हैं । स्थान के गुण यथा- जहां अपने अपने समय पर सर्दी गर्मी हवा और जल आते रहते हैं ॥ जहां की भूमि समान पवित्र और ठीक होती है जहां श्मशान, चैत्य देवालय, यज्ञशाला, खाई, बगीचा, बांबी और ऊसर भूमि नहीं होती है । जहां कुशा और गंध तृण बहुतायत से होते हैं । जहां की मृत्तिका चिकनी काली, पीली और मिष्ट होती है । जहां बडे बडे जंगली वृक्ष नहीं होते है, जहां की भूमि कीडों से खाई हुई नहीं है ऐसे स्थान की औषधियां उत्तम होती है ।

औषध संग्रह विधि ।

तत्रयानिकालजातान्युपगतसम्पूर्णप्रमाणरसवीर्यगन्धादिकालातपाग्निसलिलपवनजन्तुभिरनुपहतगन्धवर्णरसस्पर्शप्रभावाणिप्रत्यग्राणिउदीच्यांदिशिस्थितानितेषांशाखापलाशमचिरप्ररूढंवर्षावसन्तयोर्ग्राह्यंग्रीष्मेमूलानिशिशिरेवाशीर्णप्ररूढपर्णानांशरदित्वक्कन्दक्षीराणि हेमन्तेसाराणियथर्तुपुष्पफलमितिमङ्गलाचारःकल्याणवृत्तःशुचिःशुक्लवासाःसंपूज्यदेवताअश्विनौगोब्राह्मणांश्चकृतोपवासःप्राङ्मुखउदङ्मुखोवागृह्णीयात् ।

अर्थ—इन में से जो औषध अपने ठीक समय पर उत्पन्न हुई है, जो सम्पूर्ण प्रमाण, सम्पूर्ण रस, सम्पूर्ण, वीर्य और सम्पूर्ण गंधादियुक्त हैं । काल, आतप, अग्नि, सलिल, वायु और कीडों से जिनके गंध, वर्ण, रस, स्पर्श और प्रभाव नहीं बिगडे है, जो उत्तम और उत्तर दिशा में उत्पन्न हुई हैं। ऐसी थोडे काल की उत्पन्न हुई औषधों के शाखा और पत्ते वर्षा और वसन्त ऋतु में ग्रहण किये जाते हैं, ग्रीष्मऋतु वा शिशिर ऋतु में औषधियों की जड लावै जब उन के पत्ते पककर गिर पडें । शरद ऋतु में छाल, कन्द और दूध लावै तथा हेमन्त में निर्यास, पुष्प और फल इकट्ठे करने चाहिये । जिस दिन औषध लाने का विचार करै उसे दिन स्नानादि द्वारा पवित्र होकर मंगलाचार करके श्वेतवस्त्र धारण करै देवता अश्विनी कुमार और गौ ब्राह्मण का पूजन करके उस दिन उपवास करै, फिर पूर्व वा उत्तर की ओर मुखकरके औषधों का ग्रहण करै ।

औषधियों की रक्षाविधि ।

गृहीत्वाचानुरूपगुणवद्भाजनेसंस्थाप्यागारेपुप्रागुदग्द्वारेपुनिवातप्रवातैकदेशेपु नित्यपुष्पोपहारबलिकर्मवत्स्वग्निसलि

लोपस्वेदधूमरजोमूषिकचतुष्पदामनभिगमनीयानिस्वत्रच्छिन्नानिशिक्येष्वासज्यास्थापयेत्तानिचयथादोषंप्रयुञ्जीत।

अर्थ—ऊपर कहीहुई रीतिसे औषधियां लाकर उन्हें अपने अपने गुणके अनुरूप पात्रों में रखकर ऐसे स्थानमें जिसका मुख पूर्व वा उत्तरकी ओर हो, जिसमें वायु प्रवेश न करती हो और एक स्थान उसमें ऐसा हो जहां हवा आती हो और जिसमें नित्यप्रति पुष्प उपहार, बलि और कर्म होता हो ऊंचे छींकों पर लटका देवै और उन पात्रों को ऐसी रीति से ढकदेवै जिसमें अग्नि, जल, ताप, धूआं और रज, तथा मूसे और चौपाये आदि न पहुंचसकें।

इन औषधियों का दोष के अनुसार प्रयोग करना उचित है।

दोषानुसारप्रयोगविधि।

सुरासौवीरकतुषोदकमैरेयमेदकधान्यफलदध्यम्लादिभिर्वाते। मृद्वीकामलकमधुमधुकपरूषकफाणितक्षीरादिभिःपित्ते। श्लेष्माणितुमधुमूत्रकषायेभाविताल्यालोडितानिचैरपुदेशस्तंविस्तारेणद्रव्यदेहदोषसात्म्यादीनिप्रविभज्यव्याख्यास्यामः।

अर्थ—वातरोग में इन औषधोंको सुरा सौवीर, तुषोदक, मैरेय, मेदक, धान्याम्बु, फलाम्बु, दही और खटाई के साथ में देवै पित्तजरोग में दाख, आंवला, शहत, मुलहटी, फालसा, फाणित और दूध आदि के साथ देवै, तथा कफ रोगों में शहत, गोमूत्र और काथों में मिलाकर देवै। अब इन्हीं का द्रव्य, देह, दोष और सात्म्यादिक के अनुसार विभाग करके विस्तार पूर्वक वर्णन करते हैं।

मेनफलकावर्णन।

वमनद्रव्याणांमदनफलानिश्रेष्ठानिआचक्षतेऽनपायित्वात्तानिवसन्तग्रीष्मयोरन्तरेपुष्याश्वयुग्भ्यांमृगशिरसावागृह्णीयात्मैत्रेमुहूर्तेयानिपक्वानिप्रहरितानिपाण्डून्यक्रिमीण्यकुशान्यहूस्वानिअजग्धानितानिप्रमृज्यकुशपुटेबद्ध्वागोमयेनालिप्ययवतुषमाषशालिव्रीहिकुलत्थमुद्गपर्णानामन्यतमेनिदध्यादष्टरात्रमतऊर्द्धंमृदुभूतानिमधिवृष्टगन्धान्युद्धृत्यशोषयेत्। सुशुष्कंतुफलपिप्पलीरुद्धरेत्तासांदधिमधुपललविमृदितानांपुनःशुष्काणांनवकलशंसुप्रमृष्टवालुकमरजस्कमाकण्ठंपूरयित्वास्वावच्छन्नमनुगुप्तंशिक्येऽवसज्यस्थापयेत्।

अर्थ—वमनकारक द्रव्यों में मेनफल सब से उत्तम होता है क्योंकि यह किसी प्रकार की हानि नहीं पहुंचाता है। इसको वसन्त और ग्रीष्मऋतुओं के संधिकाल में पुष्य, अश्विनी, मृगशिरा नक्षत्र में मैत्री मुहूर्त में लाना चाहिये। इन में से जो जो फल पककर हरे वा पांडुवर्ण के होगये हों, जिस में कीड़े न लगे हों, जो पिचके हुए वा छोटे न हों वा किसी पक्षी ने न बिगाड़े हों उनको लाकर कुशा में लपेट कर बांध देवै ऊपरसे गोबर लपेटदेवै फिर

उसे जौ का भुस, उरद का ढेर, शाली वा व्रीहि चांवल का ढेर कुलथी वा मूंगके पत्तोंके ढेर में से किसी एक में आठ दिन तक गढ़ा रहने देवे। फिर यह जब मुलायम पड़जाय वा इस में मीठी२ उत्तम गंध आनेलगे तब निकालकर सुखाले। अच्छी तरह सूखने पर फलों के बीज बाहर निकाल लेवे और दही, मधु वा तिल कल्क के साथ फिर मर्दन करके फिर सुखाकर वालू वा रेतसे अच्छीतरह मंजेहुए स्वच्छ नवीन कलसे में कंठ तक भरदेवे और अच्छी तरह ढक दावकर छीके पर लटका देवे॥

वमनकरानेकीविधि।

अथच्छर्दनीमातुरंद्व्यहंत्र्यहंवास्नेहस्वेदोपपन्नश्चछर्दयितव्यइति। ग्राम्यानूपोदकभृतमांसरसक्षीरदधिमाषतिलशाकादिभिः समुत्क्लेशितश्लेष्माणंव्युषितंजीर्णाहारंपूर्वाह्णेकृतवलिहोममङ्गलप्रायश्चित्तं निरन्नमनतिस्निग्धंयवाग्वाघृतमात्रांपीतवन्तम्। तासांफलपिप्पलीनामन्तर्नखमुष्टिं यावद्वासाधुमन्यतेजर्जरीकृत्ययष्टीमधुककषायेणकोविदारकर्बुदारनीपविदुलविम्बीशणपुष्पीसदापुष्पीप्रत्यक्पुष्पीकषायाणामन्यतमेनवारात्रिमुषितंविमृद्यपूतंमधुसैन्धवयुक्तंसुखोष्णंकृत्वापूर्णशरावमन्त्रेणानेनाभिमन्त्रयेत्।

अर्थ—वमन कराने के योग्य रोगी कोवमन करानेसे दो तीन दिन पहिले स्नेहन स्वेदन कराके वमन करावे। वमन करानेकी विधि यह है कि ग्राम्य, आनूप और औदक जन्तुओं का मांसरस, दूध, दही, उरद तिल आदिके भक्षण से कफ को उत्क्लेशित करावे दूसरे दिन आहार पचने पर दुपहरसे पहिले बलि होम, मंगलाचार और प्रायश्चित करा- के विना भोजन करायेही अनतिस्निग्ध पुरुषको यवागू के साथ घृत की मात्रा का सेवन करावे। वमन करानेकी रात्रिको अन्तर्नखमुष्टि मेनफलके बीजोंको महीन पीसकर मुलहटी के क्वाथ के साथ अथवा कोविदार (लालकचनार) कर्बुदार (स्वेतकचनार) कदम्ब, वेत, कंदूरी, शणपुष्पी आक, वा ओंगा में से किसी के क्वाथ में भिगोदेवे। प्रातःकाल होतेही सवको मसल कर छानलेवे फिर इसमें शहत और सेंधा नमक मिलाकर गुनागुना कर के प्याले में भरकर नीचे लिखे हुए मंत्र से अभिमंत्रित करै॥

वमन कराने के मंत्र।

ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानलाः ऋषयःसौषधिग्रामाभूतसंघाश्चपान्तुते॥ रसायनमिवर्षीणांदेवानाममृतंयथा। सुधेवोत्तमनागानांभैषज्यमिदमस्तुते॥

अर्थ....ब्रह्मदेव, दक्ष, अश्विनीकुमार रुद्र इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य अग्नि, वायु, ऋषिगण, औषध समूह और भूत समूह तेरी रक्षाकरें। जैसे ऋषियोंको रसायन, देवताओंको अमृत और नागों को सुधा गुणकारक है इसी तरह यह औषध तुझ को फलप्रद होवे।

इत्येवमभिमन्त्र्योदङ्मुखमातुरंपाययेत्।

श्लेष्मज्वरगुल्मप्रतिश्यायान्तंविशेषणेपु-
नरापित्तागमनात्तेनसाधुवमति।

अर्थ—इस तरह मंत्र पढकर रोगी का मुख उत्तर की ओर कराके औषध पान करावै। विशेष करके कफज्वर, गुल्मरोग और प्रतिश्याय में यह वमन कराई जाती है। इस में पित्तका आगमन होवै तौ समझना चाहिये अच्छी होती है।

हीनवेगंतुपिप्पल्यामलकसर्षपकल्कलवणोष्णोदकैःपुनःपुनःप्रवर्तयेदित्येपसर्वछर्दनयोगविधिः। सर्वेषुतुमधुसैंधवंकफविलायनच्छेदार्थंवमनेषुविदध्यात्॥ नचोष्णविरोधोमधुनश्छर्दनयोगयुक्तस्याविपक्वप्रत्यागमनाद्दोपहरणाच्च।

अर्थ—जो वमन का हीनवेग हो तौ पीपल, आंवला और सरसों इन के कल्क में सेंधानमक डालकर गरम जल के साथ वार वार पान करावै। इस से वमन का वेग वढ जायगा। यह काम हर प्रकारकी वमन में करना ठीक है। कफके पतले करने और दूर करनेके निमित्त सव प्रकारकी वमनों में शहत और सेंधानमक देना चाहिये। इस स्थल में शहत को उष्ण द्रव्य के साथ दैने में कोई दोपापत्ति नहीं है, क्योंकि शहत पाकको प्राप्त होने से पहिलेही दोषों को निकालता हुआ आप भी निकलजाताहै

फलपिप्पलीनांद्वौभागौकोविदारादिकषायेणत्रिःसप्तकृत्वःभावयेत्तेनरसेनतुतीयंभागंपिष्ट्वामात्राहरीतकीभिर्विभीतकैरामलकैर्वातुल्यांवर्त्तयेत्तासामेकांद्वेवापूर्वोक्तानांकपायाणामन्यतमस्याञ्जलिमात्रेणप्रमृद्यवलवत्श्लेष्मप्रसेकग्रन्थिज्वरोदरारुचिपुपाययेत्तेतिसमानंपूर्वेण।

अर्थ—मैनफल के वीज दो भाग, इनको पीसकर कोविदारादि आठ द्रव्योंमेंसे किसी एक के क्वाथकी इकीस भावना देवै। फिर एक भाग और लेकर उसी क्वाथमें पीसकर उस को पूर्वोक्त चूर्ण से मिलावै। फिर इस में से हरड वहेडे और आंवले की वरावर गोली वना कर तयार करले फिर इस में एक वा दो गोलियों को पूर्वोक्त कोविदारादि के क्वाथों में से किसी एक के आध सेर क्वाथ के साथ सेवन करे। इस के द्वारा वमन करानेसे कफप्रसेक, ग्रन्थि, ज्वर, उदररोग और अरुचि ये रोग दूर होजातेहैं। शेष क्रिया पूर्व के समान हैं॥

फलपिप्पलीक्षीरंतेनवाक्षीरयवागूमधोभागेरक्तपित्तेहृद्दाहेतज्जस्यत्वादध्नउत्तरकंकफछर्दिस्तमकप्रसेकेपुतस्यैवपयसःशीतःससन्तानिकाञ्जलिपित्तेप्रकुपितेउरःकण्ठहृदयेतनुकफोपदिग्धइतिसमानंपूर्वेण

अर्थ—मैनफलके वीज डालकर औटाया हुआ दूध अथवा उस दूधकी यवागू अधोगामी रक्तपित्त और हृद्दाह में देवै। और उसी दूध को दही पर से मलाई उतारकर कफकी वमन, तमकश्वास और कफप्रसेक में देना चाहिये। उसी दूध को ठंडाकरके उसकी मलाई उतार कर एक अंजली भर प्रकुपित पित्तमें देवै। तथा जो वक्षःस्थल, कंठ और हृदय में पतला कफ लिप्त होरहा हो तौ उक्त संतानिका पान कराके वमन करावै। शेषक्रिया पूर्व के समान है॥

मेनफल का घृत ।

फलपिप्पलीक्षीरान्नवनीतमुत्पन्नंफलादि कल्ककषायसिद्धंकफाभिभूताग्निविशुष्कदेहश्चमात्रयापाययेतेतिसमानंपूर्वेण ।

अर्थ—मेनफल के बीज के साथ सिद्ध किये हुए दूध का मक्खन निकालकर मेन फलादिके कल्कके साथ सिद्ध करके मात्रानुसार पान करावै । इस विरेचनसे कफाभिभूत अग्नि और विशुष्क देह शुद्ध होजाते हैं । शेषक्रिया पूर्व के समान है ।

फलपिप्पलीनांफलादिकषायेणत्रिःसप्तकृत्वःपरिभावितेनपुष्परजःप्रकाशेनचूर्णेनसरसिजहस्तसरोरुहंसायाह्नेऽवचूर्णयेच्च द्रात्रिमुषितंप्रभातेपुनरवचूर्णितमुद्धृत्य हरिद्राकृसरक्षीरयवागूनामन्यतमंसैन्धवगुडफाणितयुक्तमाकण्ठंपीतवन्तमाघ्रापयेत् । सुकुमारमुत्क्लिष्टपित्तकफमौषधद्विषमितिसमानंपूर्वेण ॥

अर्थ—मेनफलके बीजों को मेनफलादि द्रव्यों के क्वाथकी इक्कीस भावना देकर फूलकी रजके समान महीन चूर्ण करले,फिर इस चूर्णको सायंकालके समय तलावमें एक बडे से कमलके फूलमें रखदेवै। प्रातःकाल इस चूर्णको लाकर हल्दी, कृशरा, दूध और यवागू इनमेंसे किसी एक के साथ सेंधानमक,गुड और राव मिलाकर कंठ पर्य्यन्त पान करै और उस फूल को सूंघै। इस रीतिसे वमन करना सुकुमार, उत्क्लिष्ट कफ और पित्तवाले और औषध सेवन से द्वेष रखनेवाले को हित है । शेष क्रिया पूर्वके समान है ।

फलपिप्पलीनांभल्लातकविधिपरिस्रुतंस्वरसंपक्त्वाफाणितमावर्त्तूलीभावाल्लेहयेदातपशुष्कंवाचूर्णीकृतंजीमूतादिकषायेणपित्तकफस्थानगतेपाययेतेतिसमानंपूर्वेण । फलपिप्पलीचूर्णानिपूर्ववत्फलादीनांषण्णामन्यतमकषायस्रुतानिवर्तिक्रियाःफलकषायोपसर्जनाःपेयाइतिसमानंपूर्वेण ॥

अर्थ—भिलायेकी तरह मेनफल के बीजों का रस निकालकर राव के सदृश पकाकर चाटै । अथवा इन बीजों को धूप में सुखाकर जीमूतादि के क्वाथके साथ पान कराके उस समय वमन करावै जब पित्त कफके स्थान में चलागया हो । अथवा मेनफलके बीजों को मेनफलादि छः द्रव्यों में से किसीएक के क्वाथ के साथ परिस्रुत कर के वटिका बनावै, इन वटिकाओं को पूर्वोक्त कषायों के साथ पानकरै ।

फलाद्यवलेह।

फलपिप्पलीप्वारग्वधद्व्सकस्वादुकण्टकपाठापाटलीशार्ङ्गष्टामूर्वासप्तपर्णनक्तमालपिचुमर्दपटोलसुषवीगुडूचीसोमवल्कद्वीपिकानांपिप्पलीमूलहस्तिपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेराणांचान्यतमकषायेणसिद्धोलेहइतिसमानंपूर्वेण ।

अर्थ—अमलतास, इन्द्रजौ, स्वादुकंटक पाठा, पाटला, शार्ङ्गष्टा मरोडफली, सप्तपर्णी, कंजा, नीम, परवल, सुषवी, गिलोय सफेदखैर, अजवायन की जड, पीपल, पीपलामूल, गजपीपल, चीता और सोंठ इन

बीस द्रव्यों में से किसी एक के क्वाथ के साथ मेनफल के बीजों को सिद्ध करके लेह बनावै। शेष क्रिया पूर्वके समान हैं ॥

फलपिप्पलीष्वेलाहरेणुकाशतपुष्पाकुस्तुम्बुरुतगरकुष्ठत्वक्चोरकमरुवकागुरुगुग्गुलुवालकश्रीवेष्टकपरिपेलवमांसीशैलेयकस्थौणेयकसरलपारावतपद्यशोकरोहिणीनांविंशतेरन्यतमस्यकषायेणसाधितोत्कारिकाकल्पेनयथामोदकोवामोदककल्पेनयथादोषरोगविभक्तिप्रयोज्यइतिसमानंपूर्वेण।फलपिप्पलीस्वरसकषायपरिभावितानितिलशालितण्डुलपिष्टानितत्कषायोपसर्ज्जनानिपष्कुलीकल्पेनवापूपा इतिसमानंपूर्वेण॥

अर्थ—छोटी इलायची, हरेणु, सौंफ, धनियां, तगर, कूठ, दालचीनी, चोरक, मरुआ, अगर, गूगल, नेत्रवाला, श्रीवेष्टक मोथा, जटामांसी, शैलेय, थूनेर सरलकाष्ट, पारावतपदी, अशोक और कुटकी इनबीसद्रव्यों में से किसी एक के क्वाथकेसाथ मेनफल के दानों की उत्कारिका वा मोदक बनावै। इनको रोग के अनुसार वमन कराने में देवै शेष क्रिया पूर्व के समान हैं।

मेनफल के रस और उस के बीजों के क्वाथ में तिल और शाली चावल के चूर्ण की भावना देकर मेनफल के क्वाथ के साथ पूरी वा पूए बनावै। शेष क्रिया पूर्व के समान हैं।

एतेनैवचकल्पेनसुमुखसुरसकुठेरकगण्डीरकालमालकपर्णासकक्षवकफणिज्जकशृङ्गवेरगृञ्जनभूस्तृणककासमर्दभृङ्गराजानामिक्षुवालिकाकतकेक्षुकाण्डेक्षूणांचान्यतमस्यकषायेणकारयेत्।तथावदरषाडवरागलेहमोदकोत्कारिकातर्पणपानकमांसरसयूषमद्यानांमदनफलान्यन्यतमेनोपसृज्यतंथादोषरोगदोषभक्तिदद्याचैःसाधु वमतीति।

अर्थ—इसीतरह सुमुख, सुरस, कुठेरक, गंडीर, कालमालक, पर्णास, फणिज्झक [ये सब तुलसी के भेद हैं] गाजर, सोंठ, गंधतृण, कसोंदी, भांगरा, इक्षुवालिका, ईख और काण्डेक्षु इन सत्रह द्रव्योंमेंसे किसी एक के क्वाथ के साथ मेनफल के बीजों की पूरी या पूए बनावै॥

इसीतरह से षाडव, राग, लेह, मोदक, उत्कारिका, तर्पण, पानक, मांसरस, यूष और मद्य मेनफल के साथ पाक करके उसीके क्वाथके साथ दोषके अनुसार पान करावै। तो अच्छी तरहसे वमन होतीहै॥

मेनफल के नामान्तर ।

मदनःकरहाटश्चराठःपिण्डीतकःफलम्।
श्वसनश्चेतिपर्यायैरुच्यतेतस्यकल्पना ॥

अर्थ—मदन, करहाट, राठ, पिंडीतक, फल और श्वसन ये मेनफल केनामान्तर हैं॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ।

नवयोगाःकषायेषुवर्तिस्वाष्टौपयोघृते।प
श्चफाणितचूर्णेद्वौप्रियोवस्तिक्रियासुषट्॥
विंशतिर्विंशतिर्लेहमोदकोत्कारिकासुच
पष्कुलीयूपयोश्चोक्तायोगाःषोडषषोडश॥
दशान्येषाडवान्येषुत्रयस्त्रिंशदिमंत्रवम्।

योगानांविधिवद्दृष्टंकफकल्पेमहर्षिणेति ॥

अर्थ—इस अध्याय में क्वाथ के नौ वर्ति आठ, दूध के पांच, फाणित का एक चूर्ण का एक, सूंघने का एक, वर्तिक्रिया के छः, लेह्यबीस, मोदक बीस, उत्कारिका वीस, पूरी के सोलह, पूये के सोलह, और पाडवादि में दस। इस तरह सब मिलकर मेनफल के एकसौ तेतीस कल्प हैं।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने मदनकल्पो नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

। द्वितीयोऽध्यायः ।

अथातोजीमूतकल्पंव्याख्यास्याम इतिहस्माभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम जीमूतकल्पकी व्याख्या करेंगे।

जीमूत के पर्याय शब्द।

कल्पंजीमूतकस्येमंफलपुष्पाश्रयंशृणु ॥ खरागरीचवेणीचतथास्याद्देवतालकः

अर्थ—जीमूतके पुष्प और फल दोनों वमन कराने में प्रयुक्त किये जाते हैं॥ खरा, गरी, वेणी और देवताल्क ये इसके पर्य्यायवाची नाम हैं।

जीमूत के गुण।

जीमूतकंत्रिदोषघ्नंयथास्वौपधकल्पितम्। प्रयोक्तव्यंज्वरश्वासाहिक्काद्येष्वामयेषुच॥

अर्थ—यथानुरूप औषधों के साथ कल्पना किया हुआ जीमूत त्रिदोषनाशक तथा ज्वर, श्वास और हिचकी रोगों में हित है।

जीमूत के प्रयोग।

यथोक्तगुणयुक्तानांदेशजानांयथाविधि पयःपुष्पेस्यानिर्वृत्तेफलेपेयापयश्रृता॥लो मनेक्षीरसन्तानंदध्युत्तरमलोमने। शृते पयसिदध्यम्लंजातेहरितपाण्डुके ॥

अर्थ—(१) यथोक्त गुण वाले देशों में उत्पन्न हुए जीमूत के पुष्पों को दूध में औटाकर पान करे। [२)इसके फलों को दूध में औटाकर पीवे । ३ । दोषों के अनुलोम में जीमूत डालकर औटायेहुए दूध की मलाई देवे (४) दोषों का प्रतिलोम होने पर जीमूत द्वारा सिद्ध दूध का दही देवे। (५) हरितपाण्डु में जीमूत डालकर औटाये हुए दूधका अम्ल दही देवे।

अन्य प्रयोग।

जीर्णानांचसुशुष्काणांन्यस्तानांभाजने शुचौ। चूर्णस्यपयसाशुक्तिवातपित्तार्दितःपिवेत् ॥ आप्लुत्यचसुरामण्डेमृदित्वा प्रस्रुतंपिवेत्। कफजेऽरोचकेकासेपाण्डुरोगेसयक्ष्मणि॥ द्वेवापोष्याथवात्रीणि गुडूच्यामलकस्यवा। कोविदारादिकानांवानिम्बस्यकुटजस्यवा। कषायमासुतंपूत्वातेनैवविधिनापिवेत् ॥ अथवारग्वधादीनांसप्तानांपूर्ववत्पिवेत् ॥ एकैकशःकषायेणपित्तश्लेष्मज्वरार्दितः ॥

अर्थ— (६) अच्छी तरह पके हुए और सूखे हुए जीमूत के फलों को एक स्वच्छ पात्र में रक्खे। इनका आधे पल चूर्ण दूध के साथ फांकने से वातपित्तरोग दूर होजाता है। [७] जीमूत के फलों

को सुरामण्ड में भिगोकर उन्हें सुरा में मर्दन कर के छान कर पीले तो इससेकफज अरुचि, खांसी, पाण्डुरोग और यक्ष्मा दूर होजाते हैं। [८] जीमूत के दो वा तीन फलों को कूटकर गिलोय, आंवला, कोविदारादिगण, नीम वा कुडा इन द्रव्यों में से किसी के क्वाथ में भिगोकर मर्दन करे और फिर छानकर पीवे तो पूर्वोक्त गुण करने वाला है। [९]अथवा आरग्वधादि सात द्रव्यों में से किसी एक के क्वाथ में पूर्ववत् फलों को भिगोकर और छानकर पीवे इस से पित्तकफ ज्वर दूर होजाता है।

अन्यप्रयोग।

वर्त्तयःफलवच्चाष्टौकोलमात्रास्तुतामताः
जीमूतकस्यवाकल्कंचूर्णवाशिशराम्बुना।
ज्वरेपित्तभेववातदुष्टश्लेष्माणिचानुगे ॥
जीवकर्षभकेक्षूणांशतावर्यारसेनवा ॥
पित्तश्लेष्मज्वरेदद्याद्वातपित्तज्वरेऽथवा॥
तथाजीमूतकक्षीरासमुत्पन्नंपचेद्घृतम्॥
फलादीनांकषायेणश्रेष्ठंतद्वमनमतम्।

अर्थ—(१०) मेनफल के सदृश कोविदारादि गण के क्वाथ के साथ आठ प्रकार की वर्त्तियां प्रस्तुत करे। (११) जीमूत के कल्क या चूर्ण को ठंडे जल के साथ वृद्ध पित्त, वात मध्यम और हीन कफ के ज्वर में पान करे। [१२] जीमूतके कल्क को जीवक, ऋषभक, ईख वा सितावर के रस में सेवन करने से पितकफज्वर वा वात पित्तज्वर दूर होजाता है। [१३] जीमूत डाल कर औटाये हुए दूधको जमा कर घी निकाले। इस घीको मेनफलादि के कषाय के साथ पान करे तो वहुत उत्तम वमन होती है।

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन।

षट्क्षीरेमदिरायोगएकद्वादशचापरे ॥
सप्तचारग्वधादीनांकषायेऽष्टौचवर्त्तिषु।
जीवकादिषुचत्वारोघृतश्चैकमकीर्त्तितम्॥
कल्पेजीमूतकानांयेयोगास्त्रिंशन्नवाधिकाः

अर्थ—जीमूत के उन्तालीस कल्प इस तरह वर्णन किये गये हैं, यथा—दूध के छः मदिरा का एक, आसुत के बारह, आरग्वधादि के सात, वर्त्ती आठ जीवकादि के चार और जीमूत का घृत एक प्रकार का।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायां कल्पस्थाने जीमूतकल्पो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः।

अथातइक्ष्वाकुकल्पंव्याख्यास्यामः।
इतिहस्माहभगवानात्रेयः

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम इक्ष्वाकुकल्पकी व्याख्या करेंगे॥

सिद्धंत्वक्ष्याम्यथेक्ष्वाकुकल्पंयेषांप्रशस्यते। पञ्चचत्वारिंशदुक्तायोगाअस्मिन्महर्षिणा ॥

अर्थ—कटुतुम्बी के कल्प सिद्ध हैं इन में महर्षि आत्रेय ने उत्तम उत्तम पेंतालीस योगों का वर्णन किया है॥

इक्ष्वाकुकेपर्य्यायशब्द ।

लम्बापिण्डफलातुम्बीकटुकालावुनीचतत्
इक्ष्वाकुःफलिनीचैवमोच्यनेतस्यकल्पना

अर्थ--इक्ष्वाकुके पर्य्यायवाची शब्द ये हैं, यथा--लम्बा, पिण्डफला, तुम्बी, कटुका अलावू, इक्ष्वाकु और फलिनी ।

इक्ष्वाकुकेगुण ॥

कासश्वासविषच्छर्दिर्ज्वरार्तेकफकाशिते
प्रताम्यतिनरेचैववमनार्थतदिष्यते ।

अर्थ—खांसी, श्वास, विष, वमन, ज्वर और कफ में तथा पित्तज मूर्च्छा में इस की वमन हित है ।

इक्ष्वाकुकेकल्प ।

अपुष्पस्यप्रवालानांमुष्टिंमादेशसंमिताम्।
क्षीरप्रस्थेशृतंदद्यात्पित्तोद्रिक्तेकफज्वरे ।
पुष्पादिषुचचत्वारःक्षीरेजीमूतकेयथा॥
योगाहरितपाण्डूनांसुरामण्डेनपञ्चमः ।
फलस्वरसभागश्चत्रिगुणक्षीरसाधितम्॥
उरःस्थितेकफेदद्यात्स्वरभेदेसपीनसे ।
जीर्णेमध्योद्धृतेक्षीरेमाक्षिपेत्तद्यदादधि ॥
जातंस्यात्कफजेकासेश्वासेवम्याश्चतत्पिबेत् ।

अर्थ—कटुतुंबी की लताकी जिस में फूल न आये हों नवीन बारह बारह अंगुल की टहनी एक पल लेकर एक प्रस्थ दूध में औटावै । इस दुग्ध के पान करने से पित्तोल्बण कफज्वर दूर होजाता है । जिस तरह जीमूत के फल पुष्प संबंधी दूध के चार प्रयोग हैं । उसी तरह इस के भी चार प्रयोगहैं इनचार प्रयोगोंसे हरितपांडु आदि रोग अच्छे होजातेहैं । जिस तरहसुरा-मंडमेंजीमूत भिगोकर एककल्प बनता है इसी तरह एक प्रयोग इसका भी है । इक्ष्वाकु के फल का रस निकालकर तिगुने दूध के साथ औटाकर पीने से हृदय में स्थित कफ, स्वर भेद और पीनस दूर होजाती है । एक कटुतुम्बी के बीच का गूदा निकालकर पोली करले और उसमें दूध भर देवै, जब उसका दही जमजाय तब कफज खांसी श्वास और वमन में इस दही के द्वारा वमन करावै।

अजाक्षीरेणबीजानिभावयेत्पाययेतच॥
विषगुल्मोदरग्रन्थिगण्डेपुश्लीपदेषुच ।
दधिमण्डैःफलान्मध्यंपाण्डुकुष्ठज्वरार्दितः।
तेनतक्रंविपक्वंवासक्षौद्रलवणंपिबेत् ।
तुम्ब्याःफलरसैःशुष्कैःसपुष्पैरवचूर्णितम्
छर्दयेन्माल्यमाघ्रायगन्धसम्पत्सुखोचित
मुःभक्षयेत्फलमध्यंवागुडेनपललेनचा॥
इक्ष्वाकुफलतैलंवासिद्धंवापूर्ववद्घृतम् ।

अर्थ—कटुतुंबी के बीजोंको बकरी के दूध कीभावना देकर चूर्ण बनालेवै । इस चूर्णका सेवन कराने से विषरोग, गुल्मरोग उदर-रोग, ग्रन्थि, गंडमाला और श्लीपद दूर होजाते हैं । कटुतुम्बीकी गिरिको दही के तोडके साथ पकाकर पान करनेसे पांडुरोग, कुष्ठ और विष दूरहोजाते हैं । अथवा उसी के साथ तक्र को पकाकर सेंधानमक और शहत डालकर पीना चाहिये । कटुतुंबी के पुष्पों को तूंबी ही के रसकी भावना देकर सुखाकर चूर्णकर लेवै । फिर इस चूर्ण को सुगंधित पुष्प में लपेट कर सूंघने से सुख-

पूर्वक वमन होती है। कटुतुंबी के गूदे को गुड अथवा तिलके कल्क के साथसेवन करै अथवा कटुतुंबी डालकर सिद्ध किया हुआ तेल अथवा जीमूत की तरह सिद्ध किया हुआ घृत सेवन करने से वमन होती है।

पश्चाशदशद्वद्धानिफलादीनांयथोत्तरम्॥ पिवेद्विमृद्यवीजानिकषायेष्वासुतंपृथक्। यष्ट्याह्वकोविदाराद्यैर्मुष्टिमन्तर्नखंपिवेत्॥ कषायैःकोविदाराद्यैर्मात्राश्चफलवत्स्मृताः॥

अर्थ—मेनफलादिक वमनकारक द्रव्यों के क्वाथ में कटुतुम्बी के बीजों को मर्दन करके और छानकर नीचे लिखे क्रम से पान करै,यथा—पहिले दिन दस बीज,दूसरे दिन बीस, तीसरेदिन तीस, चौथे दिन चालीस और पांचवें दिन पचास बीज लेवै। कटुतुम्बी के अन्तर्नख मुष्टि [अंगूठे का नख भीतर करके भरी हुई मुट्ठी] बीज लेकर मुलहटी और कोविदारादि आठ द्रव्यों के क्वाथ में पीसकर मेनफल के सदृश मात्रा का प्रयोग करै॥

विल्वमूलकषायेणतुम्वीवीजाञ्जलिंपचेत्। पूतस्यास्यत्रयोभागाःचतुर्थःफाणितस्यतु। सघृतंवीजभागश्चापिष्टमर्धांशिकांस्तथा॥ महाजालिनिजीमूतकृतवेधनवत्सकान्। लेहयेत्साधयेद्दर्व्याघट्टयन्मृदुनाग्निना॥ यावत्स्यात्तन्तुमत्तोयेपतितंचनशीर्यते॥ तंलिह्यान्मात्रयालेहंमन्थंचापिपिवेदनु॥

अर्थ—बेलकी जड के क्वाथ में एक अंजली भर तूंबी के बीजों को पकावै। फिर इस को छानकर तीन भागलेवै, एक भाग फाणित,एक भाग घृत तथा अर्द्धभग तोरई जीमूत, घीयातोरई और इन्द्रजौ इनके बीजों को पीसकर डालदे और मन्दी मन्दी अग्निसे पकावै और करछीसे चलाता रहै, जब इस में तार से छूटने लगें और पानी में डालने से यह शीर्णनहो तब तक पकाता रहै पीछे उतार कर मात्राके अनुसार इसका पान करै ऊपरसे मन्थ पीवै।

कल्पएषोऽग्निमन्थादौचतुष्केपृथगुच्यते। शक्तुभिर्वापिवेन्मंथंतुम्वीस्वरसभावितैः कफजेऽथज्वरेकासेकण्ठरोगेष्वरोचके। गुल्ममेहप्रसेकेचकल्कंमांसरसैःपिवेत्॥ नरःसाधुवमत्येवंनचदौर्वल्यमश्नुते।

अर्थ—इसी तरह अग्निमन्थादि अवलेह की चार कल्पना हैं। अथवा तूंबी के रस की भावना देकर जौ के सत्तू का मन्थपान करै। कफज ज्वर,खांसी, कंठरोग, अरुचि, गुल्म, प्रमेह, लालास्राव आदि रोगोंमें इस के कल्क को मांसरस के साथ पान करै। इससे वमन बहुत अच्छी होती है और दुर्बलता भी नहीं होने पाती है।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

पयस्यग्रेसुरामण्डेमस्तुतक्रेचतेत्रयः॥ ग्रेयंसपललंतैलंवर्द्धमानाःफलेषुषट्॥ घृतमेकंकषायेपुनदान्येमधुकादिषु। अग्रौवर्तिक्रियालेहाःपञ्चमन्थोरसस्तथा योगाइक्ष्वाकुकल्पेतेचत्वारिंशच्चपञ्चच। उक्तामहर्षिणासम्यक्प्रजानांहितकाम्यया

अर्थ—इस अध्याय में महर्षि पुनर्वसुने

प्रजा की भलाईके लिये इक्ष्वाकु के पैंतालीस प्रयोग वर्णन किये हैं ॥ यथा दूध के आठ सुरामंड, दही के तोड और तक्र के एक एक, सूंघने का एक, गुड, तिलकल्क, तेल और घी के एक एक,वर्द्धमान् छः मुलहटी आदि के क्वाथ के नौ, आठ प्रकार की वर्ति, पांच प्रकार के अवलेह, मन्थानुपान का एक और मांसरस का एक ।

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने इक्ष्वाकुकल्पो नाम तृतीयोऽध्यायः॥ ३॥

—*—

चतुर्थोऽध्यायः ।

अथातोधामार्गवकल्पंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम धामार्गव कल्पकी व्याख्या करेंगे ।

धामार्गव के पर्य्यायवाची शब्द ।

कर्कोटकीकटुफलामहाजालिनिरेवच । धामार्गवस्यपर्य्यायाराजकोशातकीतथा॥

अर्थ—कर्कोटकी, कटुफला, महाजालिनी, धामार्गव और राजकोशातकी ये धामार्गव के पर्य्यायवाची शब्द हैं। इसे भाषामें घीयातोरई कहते हैं।

धामार्गव के गुण ।

गरेगुल्मोदरेकासेवातश्लेष्मामयस्थिते । कफेचकण्ठवक्त्रस्थेकफसञ्चयजेषुच ॥ रोगेष्वेतत्प्रयोज्यंस्यात्दिराःस्युर्गुरवश्चये

अर्थ—गरदोष, गुल्मरोग, उदररोग, खासी, वातरोग, कफरोग, कंठस्थ या मुखस्थकफ तथा अन्य कफसंचय कारकरोगों में एवं बद्धमूल और गुरुरोगोंमें धामार्गव के प्रयोगों से वमन करना हित है ।

धामार्गवकीकल्पना ।

फलंपुष्पंप्रवालञ्चविधिनातस्यसंहरेत् ॥ प्रवालस्वरसंशुष्कंकृताश्चगुलिकाःपृथक् कोविदारादिभिःपेयाकषायैर्मधुकस्यच। पुष्पादिषुपयोयोगाःचत्वारःपञ्चमीसुरा पूर्ववज्जीर्णशुष्काणामतःकल्पःप्रवक्ष्यते॥ मधुकस्यकषायेणबीजकण्टोद्धृतंफलम्॥ सगुडञ्युषितंरात्रिंकोविदारादिभिस्तथा दद्याद्गुल्मोदरार्तेभ्योयेचाऽप्यन्येकफामयाः ॥ दद्यादम्लेनवायुक्तोछर्दिहृद्रोग शान्तये ।

अर्थ—धामार्गव के फूल, फल और पत्तों को विधि पूर्वक लावे । धामार्गव के पत्तों के रस को सुखा कर गोली बना लेवै, इस गोली को विदारादि आठ द्रव्यों से पृथक् २ और मुलहटी इन के काथ के साथ पान करै । पूर्वोक्त विधि से धामार्गव के पुष्पादि कों के दूध के साथ चार प्रयोगहैं। पांचवां सुरा में भिगोकर मसलकर उसको पान करना है । इन प्रयोगों में पकेहुये फल सुखा कर काम में लाये जाते हैं । धामार्गव के बीज, छिलके आदि दूर कर के मुलहटी के क्वाथ में अथवा कोविदारादि आठ द्रव्यों के क्वाथ में से किसी एक में भिगो देवै । प्रातःकाल इसको छान कर थोडा सा गुड

डालकर पीवै, इस से गुल्मरोग, उदररोग, या अन्य कफरोग दूर होजाते हैं। अथवा इस में खटाई मिलाकर देने से वमन और हृद्रोग शान्त होजाते हैं॥

चूर्णवाप्युत्पलादीनिभावितानिप्रभूतशः रसक्षीरयवाग्वादितृप्तोघ्रात्वावमेत्सुखम् चूर्णीकृतस्यवार्तेवाकृत्वायदरसाम्भिसाध् विनीयाञ्जलिमात्रतुपिवेद्रोशकृतोरसे। पृषतर्क्षकुरङ्गाश्वगजोष्ट्रश्वतराविके ॥ श्वदंष्ट्रीखरखड्गानांचैवंपेयाशकृद्रसे॥ जीवकर्षभकौक्षीरात्मगुप्ताशतावरीम् काकोलींश्रावणींमेदांमहामेदांमधूलिकाम्। एकैकशोऽभिसंचूर्ण्यसहधामार्गवेण तु॥शर्करामधुसंयुक्तालेह्याहृदाहकासिनाम्

अर्थ—धामार्गव के चूर्ण में नीलकमल आदि के पुष्पों को खूब धरा रहने देवै। मांसरस, दूध और यवागू आदि की तृप्ति पर्य्यन्त भोजन करके इन पुष्पों के सूंघने से बहुत सुख से वमन होती है। अथवा सोले भर धामार्गव के फूल के चूर्णको गौ के गोबर के एक अंजली रसके साथ पान करै। इसी तरह चितकबरा हिरन, रीछ, कालाहिरन, घोडा, हाथी, ऊंट, खिच्चर, भेडा, श्वदंष्ट्रा, गधा और गेंडा इन में से किसी के विष्टा के रस के साथ धामार्गव का चूर्ण पान करै। अथवा जीवक,ऋषभक क्षीरकाकोली, आत्मगुप्ता, सितावर,काकोली श्रावणी, मेदा, महामेदा और मुलहटी इन में से किसी एक के चूर्ण को धामार्गव के चूर्ण के साथ मिलाकर शहत और मिश्री के साथ चाटने पर हृदय का दाह और खांसी दूर होजाती है।

सुखोदकानुपानाःस्युःपित्तोष्मसहितेकफे धान्यतुम्बुरुयूपेणकल्कःसर्वविषापहः। जात्यासौमनसायिन्यारजन्याश्चोरकस्य दा॥पुनर्नवाकासमर्दविम्बीहैमवतस्यच महासहाक्षुद्रसहाव्रश्चीराणांपृथक्पृथक्॥ एकंधामार्गवंद्वेवाकषायेपरिमृद्यतु ॥पूतंमनोविकारेषुपिवेद्वमनमुत्तमम्॥ तच्छृतंक्षीरजंसर्पिःसाधितंवाफलादिभिः॥

अर्थ—पित्तकीऊष्मायुक्त कफमेंधामार्गव का चूर्ण फांककर ऊपरसे गरम जल पीवै। धनियां, तुम्बरू धनियां और यूषके साथ पान करै तो सब प्रकार के विष दूर होजाते हैं। मालती के फूल,हलदी,चोरक, पुनर्नवा कसोंदी, कंदूरी, वच, महासहा, क्षुद्रसहा और रक्त पुनर्नवा इन के पृथक् पृथक् कषाय में एक वा दो धामार्गव को मसल कर छानकर पीवै। अथवा उस के साथ औटाये हुए दूध के घी को मैनफलादि के कल्कके साथ सिद्ध करके सेवन करने से उत्तम वमन होती है।

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन।

पल्लवेनचचत्वारःक्षीरएकःसुरासवे। कषायाःविंशतिःकल्कौदशद्वौचशकृद्रसे। अन्नएकस्तथाघ्रेयेदशलेहास्तथाघृतम्। कल्पेधामार्गवस्योक्ताःषष्टियोगामहर्षिणा

अर्थ—इस अध्यायमें धामार्गवपत्तोंकेचार प्रयोग, दूध का एक प्रयोग, सुरासवका एक, क्वाथ के बीस, गौ आदिके पुरीषरस

के बारह, अन्न का एक, सूंघने का एक अवलेह दस तथा घृत के दस। इस तरह धामार्गवके साठ प्रयोग वर्णन कियेगये हैं।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायां कल्पस्थाने धामार्गवकल्पोनाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

——०*०——

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथातोवत्सककल्पंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवनात्रेयः।

अर्थ— तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम वत्सककल्प की व्याख्या करेंगे।

अथवत्सकनामानिभेदंस्त्रीपुंसयोस्तथा।
कल्पश्चास्यमवक्ष्यामिविस्तरेणयथातथम्।

अर्थ—अब हम वत्सक के नाम तथा उस के स्त्रीजाति और पुरुषजाति के भेद तथा इस के कल्पों की व्याख्या करेंगे ॥

वत्सक के नाम।

वत्सकःकुटजश्चैववृक्षकोगिरिमल्लिका।
बीजानीन्द्रयवास्तस्यतथोच्यन्तेकालिङ्गकाः ॥

अर्थ—वत्सक, कुटज, वृक्षक, गिरिमल्लिका इस के पर्य्यायवाची नाम हैं। इस के बीजों को इन्द्रजौ और कालिंग भी कहते हैं ॥

वत्सक के भेद।

बृहत्फलःश्वेतपुष्पःस्निग्धपत्रःपुमान्भवेत्। श्यावारुणाचपुष्पीस्त्रीफलवृन्तैस्तथाणुभिः ॥

अर्थ—जिस वत्सक के बड़े फल, सफेद फूल और चिकने पत्ते होते हैं वह पुरुष जाति है जिस के फल काले या लाल और जिस के फल और वृन्त छोटे होते हैं वह स्त्री जाति हैं ॥

वत्सककेगुण।

रक्तपित्तकफघ्नस्तुसुकुमारेष्वनत्ययः।
हृद्रोगज्वरवातास्रग्विसर्पादिषुशस्यते ॥

अर्थ—वत्सक रक्तपित्त नाशक, कफनाशक, सुकुमारों को अनुपद्रवकर्त्ता, हृद्रोग, ज्वर, वातरक्त और विसर्प आदिरोगोंमें हित होता है ॥

वत्सक के कल्प।

कालेफलानिसंगृह्यतयोर्वेश्मनिनिक्षिपेत्।
तेषामन्तर्नखंमुष्टिंजर्जरीकृत्यवामयेत् ॥
मधुकस्यकषायेणकोविदारादिभिस्तथा।
निशिस्थितंतुमामृद्यलवणक्षौद्रसंयुतम् ॥
पित्तेतद्वमनंश्रेष्ठंपित्तश्लेष्मनिबर्हणम्।
अष्टाहंपयसार्केणतेषांचूर्णानिभावयेत् ॥
जीवकस्यकषायेणततःपाणितलंपिबेत्।
फलजीमूतकेक्ष्वाकुजीवन्तीनांपृथक्तथा ॥
सर्षपाणांमधूकानांलवणस्याथवाम्बुना।
कृशरेणाथवायुक्तंविदध्याद्वमनंभिषक् ॥

अर्थ—ठीक समयपर दोनों प्रकार के वृक्षों के फल लाकर सुखाकर घर में रख लेवै। इनमें से अन्तर्नख मुष्टि लेकर चूर्ण करले। इस चूर्णको मुलहटी अथवा कोविदारादि आठ द्रव्यों के क्वाथ में से किसी एक के साथ रात्रि में भिगो देवै, प्रातःकाल इसे मसलकर छानले और इसमें सेंधानमक

और शहत मिलाकर पीवै पित्तरोग में इस की वमन बहुत अच्छी होती है और यह पित्त कफको नष्ट भी करता है। अथवा इन के चूर्ण को आठ दिनतक आकके दूध की भावनादेवै और फिर इसमेंसे दो तोले जीवक के कषाय के साथ पीवै। अथवा आक के दूध में भावना किया हुआ उक्त चूर्ण मेनफल, जीमूत, इक्ष्वाकु वा जीवन्ती के क्वाथ के साथ पानकरै अथवा सरसोंका क्वाथ, वा मुलहठी का क्वाथ, वा लवणका जल, वा कृशरा के साथ इन्द्रजौ के कल्क का पान करै तौ वमन होवै॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन।

तत्रश्लोकः। कषायैर्नवचूर्णैश्चपञ्चोक्ताः सलिलैस्त्रयः। कृशराष्टादशायोगावत्स कस्यनिदर्शिताः॥

अर्थ—इस अध्याय में क्वाथ के नौ, चूर्ण के पांच, जल के तीन वा कृशरा का एक इस तरह वत्सक के अठारह कल्प वर्णन किये गये हैं॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांआग्निवेश विरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने वत्सक कल्पो नाम पञ्चमोऽध्यायः॥ ५॥

—:•*•:—

षष्ठोऽध्यायः।

अथातःकृतवेधनकल्पंव्याख्यास्यामः। इतिहस्माहभगवानात्रेयः॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम कृतवेधन कल्प की व्याख्या करेंगे॥

कृतवेधन के पर्य्यायवाचीनाम।

कृतवेधननामानिकल्पञ्चास्यनिबोधत। क्ष्वेडःकोशातकीचोक्तंमृदङ्गफलमेवच॥

अर्थ—अब हम कृतवेधन के नाम और उस के कल्पों की व्याख्या करते हैं। नाम यथा, क्ष्वेड, कोशातकी और मृदंगफल ये कृतवेधन के नाम हैं, भाषा में इसे तोरई कहते हैं॥

कृतवेधनके गुण॥

अत्यन्तकटुतीक्ष्णोष्णगाढेष्विष्टङ्गदेषुतु। कुष्ठपाण्ड्वामयप्लीहशोफगुल्मगरादिषु॥

अर्थ—तोरई अत्यन्त कटु, तीक्ष्ण और उष्ण होती है, । यह गाढरोगों में उपयोगी होती है, कुष्ठ, पाण्डुरोग, प्लीहा, शोफ, गुल्मरोग और विषरोग इस के सेवन से दूर होजाते हैं॥

कृतवेधन के कल्प॥

क्षीरादिकुसुमादीनिसुराचैतेपुपूर्ववत्। सुशुष्काणान्तुजीर्णानामेकद्वेवायथाबलम्॥ कषायैर्मधुकादीनांनवभिःफलवत्पिबेत्। क्वाथयित्वाफलंतस्यपूर्वालेहंनिधापयेत्॥ कृतवेधनकल्काक्षंफलाद्यर्द्धांशसंयुतम्॥ पृथक्कारग्वधादीनांत्रयोदशभिरासुतम्॥ शाल्मलीमूलवृन्तानांपिच्छाभिर्दशभिस्त था। वर्तिक्रियापट्फलवत्फलादीनांघृ ततथा॥

अर्थ—कृतवेधन के पत्ते, फूल और फल आदि के साथ दूध पकाकर वमन के लिये दिया जाता है, इसके पुष्प फलादिकों को रात्रि में सुरा में भिगोकर प्रातःकाल

छानकर पीने से वमन होती है । कृत. वेधनके एक या दो पकेहुए सूखेबीज मुलहटी और कोविदारादि आठ द्रव्यों के काथ में किसी के साथ मेनफल की तरह लेवे । कृतवेधन का क्वाथ करके छान लेवे और फिर उसे लेह की तरह पकाकर सेवन करे कृतवेधन का कल्क दो तोले इस में मेनफल का कल्क एक तोले मिलाकर सेवन करे । आरग्वधादि तेरह द्रव्यों के भिन्न भिन्न क्वाथ में कृतवेधन को भिगोकर और छान कर सेवन करे। सेमर की जड और डंठल का पिच्छा आदि दस द्रव्यों के साथ पृथक् पृथक् सिद्ध करके सेवन करे । इसी तरह कोविदारादि भिन्न २ छः द्रव्यों के साथ कृतवेधन की छः प्रकार की वर्त्ती बनाई जातीहै ॥ तथा मेनफल के सदृश ही कृत-वेधन का घृत भी तयार किया जाता है ।

कोशातकानिपञ्चाशत्कोविदाररसेपचेत्। तद्कषायेफलादीनांकल्कैर्लेहंहिसाधयेत्॥ क्ष्वेडस्यतत्रभागःस्याच्छेषाण्यर्द्धांशिक-स्यच ॥ कषायैःकर्बुदाराद्यैरेवन्तरकल्प येत्पृथक् ॥ कषायेपुफलादीनांमानूपंपि-शितपृथक् ॥ कोशातकीफलंपक्त्वातद्र संलवणंपिवेत् ॥ फलादिपिप्पलीतुल्य न्तद्वत्क्ष्वेडरसंपिवेत् । क्ष्वेडंकाथेभवेरसि द्धंमिश्रमिक्षुरसेनच॥

अर्थ—पचास कृतवेधन फलोंको को-विदारके रसमें पकावे । इसक्वाथमें मदन फलादि द्रव्यों का कल्क डालकर लेह ब-नावे । जितनी कृतवेधन डाली जाय उस से आधे अन्य द्रव्य डालने चाहिये । फिर इन सबको कोविदारादि द्रव्योंके पृथक् २ क्वाथमें पकाकर सेवन करे । मेनफलादि के क्वाथमें आनूपमांस और कोशातकीको पकाकर उस रसको नमकके साथ पीना चाहिये । उक्त कोशातकी और आनूपमांस इनके पकेहुए रसको मेनफलादि पीपल प-र्य्यन्त द्रव्यों के क्वाथ में पकाकर सेवन करे अथवा मेनफलादि के क्वाथ में सिद्ध कीहुई कोशातकी को ईखके रसके साथ पीना चाहिये ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

क्षीरेद्वौद्वौसुराचैकाक्वाथाद्वाविंशतिस्तथा दशपिच्छाघृतंचैकंपट्चवर्तिक्रियाःशुभाः। लेहेऽष्टौमत्समांसेचयोगेक्षुरसेऽपरः॥ कृत वेधनकल्पेऽस्मिन्षष्टियोगाःप्रकीर्तिताः

अर्थ—इस अध्याय में दूध के चार सुरा का एक,क्वाथके बाईस,पिच्छाके दस, घी का एक, वर्ति छः, लेह आठ, मांस के सात और ईख के रस का एक इस तरह कोशातकीके साठ प्रयोग वर्णन कियेगये है।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेश विर-चितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहिता यांकल्पस्थानेकृतवेधनकल्पोनाम षष्टोऽध्यायः ॥ ६ ॥

सप्तमोऽध्यायः ।

अथातःश्यामात्रिवृत्कल्पंव्याख्यास्यामः॥ इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अबहम श्यामात्रिवृतकल्पकी व्याख्या करेंगे

विरेचनेत्रिवृन्मूलंश्रेष्ठमाहुर्मनीषिणः ॥
तस्याःसंज्ञागुणःकर्मभेदाःकल्पश्चवक्ष्यते

अर्थ—पण्डितोंने विरेचनके लिये निसोथ की जड बहुत उत्तम कही है इसी से अब हम उस के नाम, गुण, क्रियाभेद और कल्पों की व्याख्या करते हैं ॥

त्रिवृताकेनाम।

त्रिभाण्डीत्रिवृताश्यामासुवहाकोटारातथा
त्रिवृत्सर्वानुभूतिश्चशब्दैःपर्यायवाचकैः।

अर्थ—त्रिभंडी, त्रिवृता, श्यामा, सुवहा कोटरा [कुटरणा] और सर्वानुभूति ये इस के पर्य्यायवाची शब्द हैं, इसे भाषामें निसोथ कहते हैं।

निसोथकेगुण।

कषायामधुरारूक्षाविपाकेकटुकाचसा।
कफपित्तप्रशमनीरौक्ष्याच्चानिलकोपनी॥
सेदानीमौषधैर्युक्तावातपित्तकफापहैः॥
कल्पावशेष्यमासाद्यसर्वरोगहराभवेत्।

अर्थ—निसोथ कसीली, मिष्ट, रूक्ष और कटुपाकी होती है यह कफपित्तको दूर करतीहै, रूखी होनेके कारण वात को प्रकुपित करतीहै। परन्तु वात, पित्त तथा कफनाशक औषधियोंके योगसे अनेक कल्पनाओं के द्वारा सम्पूर्ण प्रकार के रोगोंको दूर करतीहै।

निसोथकेभेद।

मूलन्तुद्विविधंतस्याःश्यामंचारुणमेवच ॥
तयोर्मुख्यतरंविद्धिमूलंयदरुणप्रभम् ॥

अर्थ—निसोथ की जड़ लाल और काली दो तरह की होतीहै, इनमें से लालजड़ वाली निसोथ बहुत उत्तम होतीहै। यह सुकुमार, बालक, वृद्ध और मृदु कोष्ठ वालोंके लिये उत्तम होती है।

श्यामात्रिवृतकेगुण ॥

सुकुमारेशिशौवृद्धेमृदुकोष्ठेचतच्छुभम्।
मोहयेदाशुकारित्वाच्छयामाकण्ठंक्षिणोत्यपि। तैक्ष्ण्यात्कर्षतिहृत्कण्ठमाशुदोषंहरत्यपि॥ शस्यतेबहुदोषाणांक्रूरकोष्ठाश्चयेनराः।

अर्थ—श्यामानिसोथ आशुकारी होने से मोह और कंठमें क्षीणता करती है तीक्ष्ण होनेसे हृदय और कंठको कर्षित करती है, तथा दोषको शीघ्रही दूर करदेती है। यह निसोथ बहुत दोषवाले और कडे कोठे वालों के पक्ष में हित है।

गुणवत्यन्तयोर्भूमौजातंमूलंसमुद्धरेत् ॥
उपोष्यप्रयतःशुक्लेशुक्लवासाःसमाहितः।
गम्भीरानुगतंश्लक्ष्णंअतिर्यग्विसृतञ्चयत्
गृहीत्वाविसृजेत्काष्ठंत्वचंशुष्कांनिधापयेत् ॥

अर्थ—श्रेष्ठ गुणवाली भूमिमें उत्पन्न हुई दोनों प्रकारकी निसोथकी जड़ लावे,लानेके दिन उपवास करै और पवित्रता से स्वच्छ वस्त्र धारण कर के शुक्लपक्ष में लाने का प्रयत्न करै। निसोथकीजड जो सीधी और फैलती हुई बहुत नीचे को चली गई हो और चिकनी हो उसे निकाल कर छालको सुखाकर रखलेवै और काठको त्याग देवै

निसोथकी मात्रा।

स्निग्धस्विन्नोविरेच्यस्तुपेयामात्राशितः सुखम्। अक्षमात्रन्तयोःपिण्डंविनीयाम्लेननापिबेत्॥ गोव्यजामहिषीमूत्रसौवीरकतुषोदकैः। प्रसन्नयात्रिफलयाशृतयाचपृथक्पिबेत्॥ एकैकंसैन्धवादीनां द्वादशानांसनागरम्। त्रिवृद्विगुणंसंयुक्तंचूर्णमुष्णाम्बुनापिबेत्॥

अर्थ—जिसको विरेचन देना हो उसे स्निग्ध और स्वेदित करके दोनों प्रकारकी निसोथ में से किसी को तोले भर कांजी में मिलाकर पीवै विरेचन के पीछे पेया आदि का सेवन करै। इसी तरह से तोले भर निसोथ की जड को गौ, भेड, बकरी भैंस का मूत्र, सौवीर, तुषोदक, प्रसन्ना वा त्रिफला के काथ के साथ पीवै। अथवा चार सैंधवादिक और आठ प्रकार के मूत्र इन में से किसी के साथ, निसोथ से दुगुनी सोंठ डालकर पीवै ऊपर से गरमजल पीलेवै॥

मरिचंपिप्पलीमूलंपगधागजपिप्पली॥ सरलःकिलिमंहिङ्गुभार्गीतेजोवतीतथा मुस्तंहैमवतीपथ्याचित्रकोरजनीवचा॥ स्वर्णक्षीर्यजमोदाचशृङ्गवेरञ्चतैःपृथक्॥ एकैकार्धांशसंयुक्तंपिबेद्गोमूत्रसंयुतम्॥ मधुकार्द्धांशसंयुक्तंशर्कराम्बुयुतंपिबेत्॥

अर्थ—कालीमिरच, पीपलामूल, पीपल, गजपीपल, सरलकाष्ट, देवदारु, हींग, भाडंगी, चव्य, मोथा, बच, हरड़, चीता, हल्दी, घच, स्वर्णक्षीरी, अजमोद, और सोंठ इन सब द्रव्यों से दूनी निसोथ मिलाकर गोमूत्र के साथ पान करे। अथवा एक भाग मुलहटी और दो भाग निसोथ मिला कर शर्करा के जल के साथ पीवै॥

कर्कटाख्यश्रावणीचमेदर्षभकजीवकौ॥ मुद्गमापाख्यपर्णीचमहतींश्रावणींतथा॥ काकोलींक्षीरकाकोलींछत्रांछिन्नरुहांतथा क्षीरशुक्लांपयस्याञ्चयष्ट्याह्वांविधिना पिबेत्॥ वातपित्तहितान्येतान्यन्यानि तुकफानिले।

अर्थ—काकड़ा सींगी, श्रावणी, मेदा, ऋषभक, जीवक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, महाश्रावणी, काकोली, क्षीरकाकोली, छत्रा, गिलोय, क्षीरशुक्ला, विदारीकन्द और मुलहटी इन के समान निसोथ मिलाकर पीवै। ये प्रयोग वातपित्त में हित हैं तथा अन्य प्रयोग वातकफ में हित हैं।

क्षीरमांसेक्षुकाश्मर्यद्राक्षापीलुरसैःपृथक् सर्पिषावातयोश्चूर्णमभयार्धांशिकंपिबेत् लिह्याद्वामधुसर्पिर्भ्यांसंयुक्तंससितोपलम् अजगन्धातुगाक्षीरीविदारीशर्करात्रिवृत् चूर्णितंक्षौद्रसर्पिर्भ्यांलीढ्वासाधुविरिच्यते सन्निपातज्वरस्तम्भदाहतृष्णार्दितोनरः

अर्थ—दूध, मांसरस, ईख का रस, खंभारी, दाख, पीलू का रस वा घी के साथ आधा भाग हरड का मिलाकर दोनों प्रकार की निसोथ में से कोई सी पीवै। अथवा निसोथ के चूर्ण में शहत, घी और चीनी मिलाकर चाटै। अजगन्ध, वंशलोचन, विदारीकन्द, चीनी और निसोथ इन के चूर्ण को शहत और घी में सानकर चाटने से

अच्छी तरह विरेचन होता है। सन्निपातज ज्वर, स्तम्भ, दाह और तृष्णा में यह विरेचन हित होता है।

श्यामात्रिवृत्कषायेणकल्केनचसशर्करम्॥ साधयेद्विधिवल्लेहंलिह्यात्पाणितलंततः। सक्षौद्रांशर्करांपक्त्वाकुर्यान्मृद्भाजनेनवे॥ क्षिपेच्छीतंत्रिवृच्चूर्णत्वक्पत्रमरिचैःसह। मात्रयालेहयेदेतदीश्वराणांविरेचनम्। कुडवांशान्रसानिक्षुद्राक्षापीलुपरूपकात् सितोपलापलेक्षौद्रात्कुडवार्द्धञ्चसाधयेत्। तंलेहंयोजयेच्छीतंत्रिवृच्चूर्णेनशास्त्रवित्। एतदुत्सन्नपित्तानामीश्वराणां विरेचनम्॥

अर्थ—श्यामा निसोथ का क्वाथ, कल्क और चीनी मिलाकर लेह की तरह पकावे और इस में से दो तोले चाटे। शर्करा को पकाकर ठंडा होने पर शहत मिलाकर मिट्टी के नये पात्र में रखदेवै इसी में निसोथका चूर्ण, दालचीनी, तेजपात, काली मिरच इनका चर्ण भी उस में डाल देवै इसको मात्रावत् सेवन करै। यह विरेचन सेठसाहूकार राजा महाराजाओंको उपयोगी है। अथवा ईख का रस, दाख का रस, पीलूका रस और फालसे का रस एक एक कुडव और चीनी दो पल इन सबको पका कर ठंडा करले ठंडा होने पर आधा कुडव शहत मिलाकर धर लेवै इस लेह में निसोथ का चूर्ण मिलाकर सेवन करै। यह विरेचन धनवान् उदीर्ण पित्तवालों के लिये हितकर है।

पैत्तिक प्रकृति वालों का विरेचन॥

शर्करामोदकान्वर्तिर्गुलिकामांसपूपकान्॥ अनेनविधिनाकुर्यात्पैत्तिकानांविरेचनम्॥

अर्थ—पित्तप्रकृति वालों के लिये निसोथ के बूरे के लड्डू, वर्ति, गुलगुला, मांसके पूआ आदि बनाकर विरेचन के लिये देवै।

कफप्रकृति के लिये विरेचन।

पिप्पलींनागरंक्षारंश्यामांत्रिवृतयासह। लेहयेन्मधुनासार्द्धंश्लेष्मलानांविरेचनम्॥

अर्थ—कफप्रकृति वालों के लिये पीपल सोंठ, क्षार और श्यामात्रिवृत इनको शहत के साथ चटाने से विरेचन होता है॥

कफाधिक्य में राजाओंके योग्य विरेचन

मातुलुङ्गाभयाधात्रीश्रीपर्णीकोलदाडिमात्॥ सुभृष्टान्स्वरसांस्तैलेसाधयेत्तत्रचावपेत्॥ सहकारान्कपित्थांश्चसाध्यमम्लश्चयत्फलम्। पूर्ववद्वहलीभूतेत्रिवृच्चूर्णं समावपेत्॥ त्वक्पत्रकेसरैलानांचूर्णञ्च मधुमात्रया। लेहोऽयंकफमूलानामीश्वराणांविरेचनम्॥

अर्थ—बिजौरा, हरड, आंमला, श्रीपर्णी, बेर और अनार इन सबका समान भाग रस और इतनीही शर्करा लेकर मिला देवे और पाक करै। पीछे इसे तेलमें भूनलेवै। और फिर इस में निसोथ डाल देवै। इसी तरह से आम, कैथ, तथा अन्य खट्टे फलों के क्वाथ को पकाकर गाढा करले और फिर उस में निसोथका चूर्ण डाले और दालचीनी, तेजपात, केसर और इलायची इन में डालदेवै, फिर इस को शहत के

साथ चाटे। यह विरेचन कफप्रधान राजा महाराजाओं के लिये बहुत हित है।

पानकानिरसान्यूपान्मोदकान्रागषाडवान्। अनेनविधिनाकुर्याद्विरेकार्थेकफाधिके॥ त्वगेलाभ्यांसमंनीतंतैस्त्रिवृच्चश्शर्करा। चूर्णफलरसक्षौद्रशक्तुभिस्तर्पणंपिवेत्॥ वातपित्तकफोत्थेषुरोगेष्वल्पानलेषुच। नरेषुसुकुमारेषुनिरपायंविरेचनम्॥ शर्करात्रिफलाश्यामात्रिवृन्मागधिकेमधु। मोदकःसन्निपातोर्ध्वरक्तपित्तज्वरापहः॥

अर्थ—इसी तरह से पानक, रस यूष मोदक और रागषाडव बनाकर कफाधिक व्यक्तियों के लिये विरेचन के निमित्त देवै एक भाग दालचीनी, एक भाग इलायची दो भाग निसोथ और चार भाग चीनीको मिलाकर अम्लफल के रस, शहत और जौ के सत्तू के साथ तर्पण पान करै। यह विरेचन वात, पित्तऔर कफके रोगों में, मन्दाग्नि में और सुकुमार मनुष्यों के लिये हित है। अथवा चीनी, त्रिफला, दोनों प्रकार की निसोथ, पीपल और शहत इन सबके मोदक बनावै। ये मोदक सन्निपात ऊर्धगामी रक्तपित्त और ज्वर को दूर करताहै

त्रिवृच्छाणामृतास्तिस्रस्तिस्रश्चत्रिफलात्वचः॥ विडङ्गपिप्पलीक्षारशाणास्तिस्रश्चचूर्णिताः। लिह्याद्वसर्पिर्मधुभ्याश्चमोदकंवागुडेनच॥ भक्षयेन्निष्परीहारमेतच्छोधनमुत्तमम्। गुल्मंप्लीहोदरंश्वासंहलीमकमरोचकम्॥ कफवातकृतांश्चान्यान्व्याधीनेतद्व्यपोहति॥

अर्थ—निसोथ तीन शाण, गिलोय तीन शाण, त्रिफलाकी छाल तीन शाण, वायविडंग एक शाण, पीपल एक शाण और जवाखार एक शाण इनका चूर्ण करके घी और शहत के साथ चाटै अथवा इसमें गुड मिलाकर मोदक बनालेवै। इन मोदकोंके सेवनमें आहारादि के त्यागने की कुछ आवश्यकता नहीं है, यह विरेचन बहुत उत्तम है इस से गुल्म, प्लीहा, उदररोग, श्वास, हलीमक, अरुचि, तथा कफवातकृत अन्य व्याधियां दूर होजाती हैं।

कल्याणक गुटिका।

विडङ्गपिप्पलीमूलत्रिफलाधान्यचित्रकम्॥ मरिचेन्द्रयवाजाजीपिप्पलीहस्तिपिप्पली। लवणान्यजमोदाच्चचूर्णितंकार्षिकंपृथक्॥ तिलतैलत्रिवृच्चूर्णभागौचाष्टपलोन्मितौ। धात्रीफलरसप्रस्थांस्त्रीनगुडार्द्धतुलान्तथा पक्त्वामृद्वग्निनाखादेद्बदरोदुम्बरोपमान्। गुडान्कृत्वानचास्यस्याद्विहाराहारयन्त्रणा कुष्ठार्शःकामलामेहगुल्मोदरभगन्दरम्॥ ग्रहणीपाण्डुरोगांश्चहन्युःपुंसवनाश्चते॥ कल्याणकाइतिख्याताःसर्वेष्वृतुषुयौगिका

अर्थ—वायविडंग, पीपलामूल, त्रिफला, धनियां, चीता, कालीमिरच, इद्रजौ, जीरा, पीपल, गजपीपल, सेंधानमक, अजमोद, इन में से प्रत्येक एक एक पल लेकर चूर्ण कर लेवै तथा तिलका तेल आठ पल, निसोथ का चूर्ण आठ पल, आंवले का रस तीन प्रस्थ और पुराना गुड आधीतुला, इकट्ठे करै। प्रथम आंवले के रस में गुडकी चासनी करै

फिर इस में उक्त द्रव्योंका चूर्ण और सुपक तैल डालदेवै फिर इसमें से वेर वा गूलर की बराबर गोलियां बनावै । इन गोलियों के सेवन करने में किसी प्रकार के आहार विहार का निषेध नहीं है । इसके सेवन से कुष्ठ, अर्श, कामला, प्रमेह, गुल्म, उदररोग, भगन्दर, गृहणी रोग, पाण्डुरोग दूर होजातेहैं । यह पुंसवनभी है । इसका नाम कल्याणक गुटिका है । यह संपूर्ण ऋतुओंमें उपयोगी होती है ।

व्योषादि विरेचन ॥

व्योषत्वक्पत्रमुस्तैलाविडङ्गामलकाभयाः समभागाभिपद्द्याद्द्विगुणञ्चमुकूलकम्॥ त्रिवृतोऽष्टगुणंभागंशर्करायाश्च षड्गुणम् ॥ चूर्णितंगुलिकान्कृत्वाक्षौद्रेणपलसम्मितान् । भक्षयेत्कल्पमुत्थाप्यशीतं चानुपिवेज्जलम् ॥ मूत्रकृच्छ्रेज्वरेवम्यां कासेश्वासेभ्रमेक्षये । तापेपाण्डवामयेऽल्पेऽग्नौशस्तानियन्त्रिताशिन॥ योगः सर्वविषाणाश्चमतःश्रेष्ठंविरेचनम् ।

अर्थ—त्रिकुटा, दालचीनी, तेजपात, मोथा, इलायची, वायविडंग, आंवला, हरड़, इन सबकाचूर्ण समानभागलेवै, दंतीदोभाग लेवै, निसोथ आठ भाग और शर्कराछःभाग इनसबका चूर्णकरके शहतमें सानकर एक २ पल की गोली बनावै। इन में से प्रातःकाल एक गोली को खाकर ऊपरसे ठंडा जल पीलेवै।इसके सेवनसे मूत्रकृच्छ्र, ज्वर, वमन खांसी, श्वास, भ्रम, क्षयरोग, ताप, पांडुरोग और मन्दाग्नि दूर होजाते हैं, इसमें आहार विहार की कुछ यंत्रणा नहीं है । यह सब प्रकार के विषरोग में भी श्रेष्ठ है ।

दशमोदकोंका प्रयोग ।

त्रिवृत्पलंद्विप्रसृतंपथ्याधान्यरुबूकयोः । दशैतान्मोदकान्कुर्य्यादीश्वराणांविरेचनम् ॥

अर्थ—निसोथ एक पल, हरड, धनियां और अरंड की जड दो प्रसृत इन सबको चूर्ण बनाकर शहत वा गुड के साथ दस मोदक बनावै । यह विरेचन राजा वा धनी लोगों के पक्ष में बहुत हित है ।

त्रिवृद्धैमवतीश्यामानीलिनीहस्तिपिप्पली समूलापिप्पलीमुस्तमजमोददुरालभा । अर्द्धांशिकंपलंशुण्ठ्यागुडस्यपलविंशतिम् चूर्णितंमोदकान्कुर्यादुदुम्बरफलोपमान्। हिंगुसौवर्चलव्योषयवानीबिडजीरकैः ॥ वचाजगन्धात्रिफलाचव्यचित्रकधान्यकैः मोदकान्वेष्टयेच्चूर्णैस्तान्सतुम्बुरुदाडिमैः त्रिकुवंक्षणहृद्बस्तिकोष्ठार्शःप्लीहशूलिनाम्। हिक्काकासारुचिश्वासकफोदावर्तिनांशुभाः

अर्थ—लाल निसोथ, सफेदवच, श्यामानिसोथ, नीलिनी, गजपीपल, पीपल, पीपलामूल, मोथा, अजमोद, जवासा, ये सबआधे आधे पल लेवै । सोंठ एक पल और गुड बीस पल इन सबका चूर्ण करके गूलर के बराबर मोदक बनालेवै । पीछे हींग, संचरनमक, त्रिकुटा, अजवायन, वाय विडंग, जीरा. वच, अजगंध, त्रिफला, चव्य, चीता, धनियां इन सब का चूर्ण करके ऊपरके मोदकोंको इस चूर्ण में लपेट देवै, अथवा

तुम्बरू और अनार के छिलके के चूर्ण में लपेट देवे। इसके सेवन करने से त्रिक, वंक्षण, हृदय, वस्ति, कोष्ठ, अर्श और प्लीहा इनका शूल दूर होजाता है। हिचकी खांसी, अरुचि, श्वास, कफ और उदावर्त्त वालों के लिये भी ये हित है।

शुण्ठीमरिचपिप्पल्यःकार्षिकाःस्युःपृथक् पृथक्॥ द्विगुणेशर्करैलेचसातलास्याच्चतुर्गुणा।नीलिनीमष्टगुणितांद्विरष्टगुणितां तथा॥ दन्तींद्रवन्तींत्वक्छाणमेकंचात्र प्रदापयेत्। अस्मादर्द्धपलंचूर्णाल्लिह्यात्माक्षिकसंयुतम्॥ शीतोदकानुपानन्तुनिरपायंविरेचनम्।

अर्थ—सोंठ, कालीमिरच, पीपल, ये तीनों एक २ कर्ष लेवे, शर्करा दो कर्ष इलायची दोकर्ष, सातला चार कर्ष, नीलिनी आठ कर्ष, दन्ती बत्तीसकर्ष, द्रवन्ती और दालचीनी एक एक शाण लेकर सब का चूर्ण बनालेवे, इस चूर्ण में से आधापल शहत के साथ सेवन करे, ऊपर से ठंडा पानी पीले तौ उपद्रव रहित विरेचन होताहै

भिन्न भिन्न ऋतु के विरेचन।

त्रिवृतांकोटजंबीजंपिप्पलीविश्वभेषजम् समार्द्वीकरसक्षौद्रंवर्षास्वेतद्विरेचनम्॥ त्रिवृद्दुरालभामुस्ताशर्करोदीच्यचन्दनम् द्राक्षाम्बुनासयष्ट्याह्वशीतलंजलदात्यये। त्रिवृतांचित्रकंपाठांअजाजींसरलंवचाम्॥ स्वर्णदुग्धींचहेमन्तेपिष्ट्वातूष्णाम्बुना पिबेत्। शर्करात्रिवृतातुल्याग्रीष्मकाले विरेचनम्। दुस्पर्शासश्चांश्यामांद्रवन्तीकटुरोहिणीम्। स्वर्णक्षीरींश्चसंचूर्ण्यगोमूत्रेभावयेत्त्र्यहम्॥ एषसर्वर्तुकोयोगःस्निग्धानांमलदोषहृत्॥

अर्थ—निसोथ, इन्द्रजौ, पीपल, सोंठ इनके चूर्ण को दाख के रस और शहतके साथ लेवे यह विरेचन वर्षा ऋतु में हित है निसोथ, जवासा, मोथा, शर्करा, नेत्रवाला, रक्तचन्दन, और मुलहटी इनके चूर्ण को द्राक्षा के शीतल कषाय के साथ पानकरे तौ शरदऋतु में अच्छा विरेचन होता है। हेमन्तऋतु मे निसोथ, चीता, पाठा, जीरा, सरलकाष्ट, वच और स्वर्णक्षीरी इनके चूर्ण को गरमजल के साथ पानकरे। ग्रीष्मऋतु मे विरेचन के लिये निसोथ और चीनीको समानभाग मिलाकर देवै। हाउबेर, सातला, श्यामनिसोथ, द्रवन्ती, कुटकी और स्वर्णक्षीरी इन सब का चूर्ण कर के तीन दिनतक गोमूत्र में भिगो देवे। इस का सेवन सब ऋतुओं में होसक्ता है, स्निग्ध कर के इस विरेचनको देनै से मलके दोष दूर होजाते हैं॥

त्रिवृच्छ्यामेदुरालम्भावत्सकंहस्तिपिप्पली। नीलिनीत्रिफलामुस्तंकटुकाचसुचूर्णितम्॥ सर्पिर्मांसरसोष्णाम्बुयुक्तंपाणितलंततः। पिबेत्सुखतमंह्येतद्रूक्षाणामपिशस्यते॥ त्र्यूषणंत्रिफलाहिंगुकार्षिकंत्रिवृतापलम्। सौवर्चलार्द्धकर्षञ्चपलांशंचाम्लवेतसात्॥ तच्चूर्णंशर्करातुल्यंमद्येनाम्लेननापिबेत्॥गुल्मपार्श्वार्तितुत्सिद्धंजीर्णेचाद्यात्रसौदनम्॥

अर्थ—दोनों प्रकारकी निसोध, जवासा, इन्द्रजौ, गजपीपल, नीलिनी, त्रिफला मोथा और कुटकी इन सब का चूर्ण करके, घृत मांसरस वा उष्णजलके साथ दो तोले सेवन करै। यह विरेचन रूक्ष व्यक्तियों को भी सुखपूर्वक होता है। त्रिफला, त्रिकुटा और हींग एक २ कर्ष निसोथ एक पल, संचल नमक आधाकर्ष, अम्लवेत आधा पल, इस सबके बराबर चीनी मिलाकर मद्य वा अम्ल के साथ पानकरै। इस के सेवन से गुल्म-रोग और पार्श्ववेदना दूर हो जाती है। औषध के पचनेपर मांसरस और भातका भोजन करै॥

सप्तलांत्रिफलांदन्तींत्रिवृतांव्योषसैन्धवे। कृत्वाचूर्णंतुसप्ताहंभाव्यमामलकीरसे॥ तद्योज्यंतर्पणेयूषेपिशितेरागयुक्तिषु॥ तुल्याम्लंत्रिवृताकल्कंसिद्धंगुल्महरंघृतम्। मूलंश्यामात्रिवृतयोःपचेदामलकैःसह॥ जलेतेनकषायेणपक्त्वासर्पिःपिबेन्नरः। निर्यूहेणतयोर्युक्त्वासिद्धसर्पिःपिबेत्तथा। साधितंवापयस्ताभ्यांसुखेनविरिच्यते॥

अर्थ—सातला, त्रिफला, दन्ती निसोथ त्रिकुटा, सेंधानमक इनका चूर्ण करके सात दिवसतक आंवले के रस में भिगोवै। इसका तर्पण, यूष, मांस और रागषाडवादि द्वारा प्रयोग करे। कांजी और घृत समान भाग तथा चतुर्थांश निसोथ मिलाकर पाक करै यह घृत गुल्मनाशक है। दोनों प्रकार की निसोथ को आंवलों के साथ अठगुने जल में पाक करै चौथाई शेष रहने पर छान कर उस क्वाथ में घृत पकावै। अथवा इन दोनों के निर्यूह में केवल दूध वा घी पकाकर सेवन करने से सुखपूर्वक विरेचन होता है।

जलद्रोणेपचेदष्टौत्रिवृन्मुष्टीःसनखात्॥ पादशेषंकषायंतंशीतंगुडतुलायुतम्। स्निग्धेस्थाप्यंघटेक्षौद्रपिप्पलीफलचित्रकैः॥ प्रलिप्तेविधिनामासज्जातंतन्मात्रयापिबेत्। ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नंगुल्मश्वयथुनाशनम्॥

अर्थ—नखसहित आठ मुट्ठी निसोथ को एक द्रोण जल में पकावै, जब चौथाई शेष रह जाय तब छानले। जब यह क्वाथ ठंडा होजाय तब उस में एक तुला गुड मिलावै। फिर एक चिकने घडे के भीतर शहत, पीपल, मैनफल और चीते का लेप करके उस में इसे भर दे एक महीने पीछे मात्राके अनुसार इसका सेवन करै तो ग्रहणी पांडुरोग, गुल्म और सूजन दूर होजातीहै।

सुरांवात्रिवृतांपादकिण्वांतत्कायसंपुनाम् यवैःश्यामात्रिवृत्क्वाथेस्विन्नैःकुल्माषमम्भ सा॥आसुतंषडहंपल्वेजातंसौवीरकंपिबेत्। भृष्टान्वासतुषान्शुद्धान्यवांस्तच्चूर्णसंयु तान्॥ आसुतानम्भसातद्वत्पिबेज्जातंतु षोदकम्। तथामदनकल्पोक्तान्षाडवादीन्पृथग्दश॥ त्रिवृच्चूर्णेनसंसृज्यविरे कार्थंप्रयोजयेत्॥

अर्थ—सुरा, त्रिवृता और चतुर्थांश सुराबीज इनको पकाकर सेवन करै। अथवा दोनों प्रकार की निसोथके क्वाथमें जौओं को अच्छी तरह सिजाकर छानलेवै फिर

इस क्वाथमें कुल्माष मिलाकर छःराततक जौके ढेर में गाढ देवै । यह सौवीर विरेचन से हित होता है । अथवा छिल्कों समेत जों को भुनवाकर इतनीही निसोथ मिलाकर जल में भरकर जौ के ढेरमें गाढ देवै । छः दिन पीछे ये तुषोदक तयार होता है । इसी तरह मदन कल्पोक्त दस प्रकार के षाडवादि निसोथ के चूर्ण में मिलाकर विरेचन के लिये देवै । वे ये हैं यथा षाडव राग, अवलेह, मोदक, उत्कारिका, तर्पण, पानक, मांसरस, यूष और मद्य ।

उपसंहार ।

त्वक्केसराम्रातकदाडिमैलासितोपलामाक्षिकमातुलुङ्गैः । मद्यैस्तथान्यैश्चमनोऽनुकूलैर्युक्तानिदद्याद्विरेचनानि॥शीताम्बुनापीनवतश्चतस्यसिञ्चेन्मुखंछर्दिविघातहेतोः ॥ घ्रायांश्चमृत्पुष्पफलप्रवालादम्लं चदद्यादुपजिघ्रणार्थम् ॥

अर्थ....दालचीनी, नागकेशर, आमडा, अनार, इलायची, चीनी, शहत, बिजौरा और मद्य अथवा अन्य मनोऽनुकूल द्रव्यों में मिलाकर विरेचन देना चाहिये । विरेचन कारक द्रव्य के पान करने से पीछे वमन न होने पावे, इसलिये ठंडे जलसे मुख को धोता रहै । तथा सूंघनेके लियें हृदय प्रिय मिट्टी फूल, फल और पत्ते देता रहै॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

एकोम्लादिभिरष्टौचदशद्वौसैन्धवादिभिः मूत्रेऽष्टादशयष्ट्यांद्वौजीवकादौचतुर्दश ॥ क्षीरादौसप्तलेहेऽष्टौचत्वारःसितयापिच । पानकादिषुपञ्चैवषड्ऋतौपंचमोदकाः ॥ चत्वारश्चघृतक्षीरेद्वौचूर्णेतर्पणेतथा । द्वौमद्येकाञ्जिकेद्वौचदशान्येषाडवादिषु॥ श्यामायास्त्रिवृतायाश्चकल्पेऽस्मिन्समुदाहृतम् । शतंदशोत्तरंसिद्धंयोगानांपरमर्षिणा ॥

अर्थ....इस अध्याय में निसोथ के एक सौ दस कल्पवर्णन किये है । अम्लादि के नौ, सेंधवादिके बारह, मूत्र के अठारह, मुलहठी के दो, जीवकादि के चौदह, क्षीरादि के सात, लेह आठ, शर्करा के चार, पानकादि के पांच, ऋतुओं के छः, मोदक पांच, घृत और दूध चार, चूर्ण और तर्पण दो, मद्य के दो और कांजी के दो और षाडवादि के दस॥ इस तरह एक सौ दस प्रयोग वर्णन किये गये हैं॥

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने श्यामात्रिवृत्कल्पो नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातश्चतुरंगुलकल्पंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम चतुरंगुल कल्पकी व्याख्या करेंगे ।

चतुरंगुलके अन्यनाम ।

आरग्वधोराजवृक्षःशम्पाकश्चतुरंगुलः

मग्रहःकृतमालश्चकर्णिकारोऽवघातकः॥

अर्थ—आरग्वध, राजवृक्ष, शम्पाक चतुरंगुल, प्रग्रह, कृतमाल, कर्णिकार और अविघातक ये अमलतास के संस्कृत नामहैं

अमलतास के गुण ॥

ज्वरहृद्रोगवातासृगुदावर्तादिरोगिषु ॥ राजवृक्षोऽधिकंपथ्योमृदुर्मधुरशीतलः । बालेवृद्धेक्षतेक्षीणेसुकुमारेचमानवे ॥ योग्योमृद्वनपायित्वाद्विशेषाच्चतुरंगुलः ।

अर्थ....ज्वर, हृदयरोग वातरक्त और उदावर्तादि रोगों में राजवृक्ष अधिकपथ्य है, यह मृदु, मधुर और शीतल है। यह मृदु और अनपायी (निरुपद्रवकर्त्ता) है इस से इसका विरेचन बालक,वृद्ध,क्षतक्षीण और सुकुमारों के लिये बहुत हित है ॥

अमलतासके रखनेकी विधि

फलकालेफलंतस्यग्राह्यंपरिणतञ्चयत्। एपांगुणवतांभारंसिक्तासुनिधापयेत् । सप्तरात्रात्समुद्धृत्यशोषयेदातपेभिषक् । ततोमज्जानमुद्धृत्यशुचौभाण्डेनिधापयेत्

अर्थ—जिस ऋतु में इसके फल लगते हों उस में पके हुए फलों को लाकर बालू में गाढ देवै । सात दिन पीछे निकाल कर धूपमें सुखालेवै तदनन्तर इनका गूदा निकाल कर एक शुद्ध पात्र में भर देवै ॥

अमलतासके कल्प ॥

द्राक्षारसयुतांदेयोदाहोदावर्त्तपीडिते ॥ चतुर्वर्षसुखेबालेयावद्द्वादशवार्षिके । चतुरंगुलमज्जस्तुप्रसृतंवाथवाञ्जलिम् ॥ सुरामण्डेनसंयुक्तमथवाकोलशीधुना ॥ दधिमण्डेनवायुक्तंरसेनामलकस्यवा ॥ कृत्वाशीतकषायंतंपिबेत्सौवीरकेणवा । त्रिवृन्मज्जस्तथाकल्कंतत्कषायेणवापिबेत् तथाबिल्वकषायेणलवणक्षौद्रसंयुतम्॥

अर्थ—दाह और उदावर्त्त से पीडित चार वर्ष के बालकसे लेकर बारह वर्ष के बालक तक द्राक्षारस के साथ सिद्ध किया हुआ अमलतास का गूदा बहुत हित है। अमलतासके दो पल वा आधसेर गूदे को सुरामण्ड, वा कोलशीधु, वा दधिमण्ड वा आंवले के रसके साथ पान करै । अथवा इस के शीतकषाय को सौवीरक के साथ पान करै । अथवा अमलतास के गूदे को घोटकर उस के क्वाथ के साथ पीवै । अथवा बेलके क्वाथ के साथ सैंधानमक और शहत मिलाकर पीवै ॥

कषायेणाथवातस्यत्रिवृच्चूर्णंगुडान्वितम्॥ साधयित्वाशनैर्लेह्यंलेहयन्मात्रयानरम् ॥ चतुरंगुलसिद्धाद्वाक्षीराद्वादधियाद्घृतम् मज्जःकल्केनधात्रीणांरसेतत्साधितंपिबेत् तद्वदशमूलस्यकुलत्थानांयवस्यच ॥ कषायेसाधितंकल्कैःसर्पिःश्यामादिभिः पिबेत्॥ दन्तीक्वाथोञ्जलिमज्जःशम्पाकस्यगुडस्यच॥ कृत्वामासार्धमासंस्थमरिष्टंपाययेत्तच॥पस्यपरपानगन्नञ्चदृष्टंस्याद्विपाकदु ॥ लवणंवाभवेत्तत्रयुक्तंदद्याद्विरेचनम् ॥

अर्थ—अमलतास के क्वाथ में निसोथ का चूर्ण और गुड डालकर लेहवत् धीरे धीरे

पाक करके चटावे। अमलतास से अठगुना दूध और चौगुना जल मिलाकर पाक करै जब पानी जलजाय तब उतारकर छान लेवे और इस दूध को जमादेवे फिर इसका घी निकाल कर अमलतास के गूदे और आंवले के रस के साथ सिद्ध कर के पान करै ॥ अथवा उसी घृतको दशमूल, कुलथी और जौ के काथ में श्यामादि निसोथ का कल्क डालकर सिद्ध करके पान करै। अथवा दन्ती का काथ एक अंजली, अमलतासका गूदा और गुड इनको मिलाकर पन्द्रह दिन तक एक पात्र में भरा रहने दे फिर इस अरिष्ट को पान करावे। जिस मनुष्य को जैसा अन्नपान मधुर, कटु वा नमकीन अच्छा लगता हो, उसका उसी में मिला कर विरेचन देना चाहिये।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकाः ॥

द्राक्षारसेसुराशीध्वोर्दधिनचामलकीरसे। सौवीरकुकषायाभ्यांविल्वशम्पाकयोस्त था ॥ लेहोऽरिष्टोघृतेद्वेचयोगाद्वादशकी र्तिताः चतुरंगुलकल्पेऽस्मिन्सुकुमाराः मकीर्तिताः

अर्थ—इस अध्याय में अमलतास के बारह कोमल प्रयोग वर्णन किये गये हैं, यथा दाख के रस, सुरा, कोलशीधु, दही आंवले का रस, सौवीरक, निसोथ, विल्व और शम्पाक इनके एक एक कल्प, लेह एक अरिष्ट एक और घृत दो। इस तरह ये बारह कल्प है ॥

इतिश्री भाषाटीकान्वितायां अग्निवेशविरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने चतुरंगुलकल्पो नामा एमोऽध्यायः॥ ८ ॥

—*—

नवमोऽध्यायः ।

अथातस्तिल्वककल्पंव्याख्यास्यामः । इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम तिल्वक कल्पकी व्याख्या करेंगे।

लोधकेनाम ।

तिल्वकस्तुमतोरोध्रोबृहत्पत्रस्तिरीटकः ॥

अर्थ—तिल्वक लोध या रोध्र, बृहत्पत्र और तिरीटक ये लोध के संस्कृतनाम हैं।

लोधकेकल्प ।

तस्यमूलत्वचंशुष्कामन्तर्वल्कलवर्जिताम्। चूर्णयेत्त्रिधाकृत्वाद्वौभागौस्त्योतयेत्ततः लोध्रस्यैवकषायेणतृतीयंतेनभावयेत् । भागंतंदशमूलस्यपुनःक्वाथेनभावयेत् । शुष्कंचर्णपुनःकृत्वाततऊर्द्धमयोजयेत् ॥ दधितक्रसुरामण्डमूत्रैर्वदरशीधुना ॥ रसेनामलकानांवाततःपाणितलंपिवेत् ॥

अर्थ—लोधकी जडमें से काठ को छोड कर केवल छाल निकालकर उसके तीन भाग करै। एक भाग को सुखाकर चूर्ण करलेवे, और शेष दो भागों का क्वाथकरै फिर इस काथ की उक्त चूर्ण में भावना देवे। फिर दशमूल के क्वाथ की भावना देवे। फिर इसको सुखाकर चूर्ण बनाकर रखछोडे इसमें से दो तोले दही,मठा, सुरा-

सुरामन्ड, गोमूत्र, कोलशीधु वा आंवले के रस के साथ पानकरै ॥

मेपशृंग्यभयाकृष्णाचित्रकैःसलिलेश्शृते॥ मरूजानसुनुयात्तचजातंसौवीरकंयदा॥ भवेदञ्जलिनातस्यलोध्रकल्कंपिवेत्तदा। सुरांलोध्रकषायेणजातांपक्षस्थितांपिवेत् दन्तींचित्रकयोर्द्रोणेसलिलस्याढकंपृथक् समुत्काथ्यगुडस्यैकांतुलांरोध्रस्यचाञ्जलिम्।आवपेत्ततरंपक्षान्मद्यपानाद्विरेचनम्॥

अर्थ—मेंढासिंगी, हरडं, पीपल और चीता इन के क्वाथ मे जौ को उबालकर टपका ले इससे सौवीरक बनताहै। यह सौवीरक आधसेर तथा इसमें मात्राके अनुसार लोध मिलाकर पानकरै अथवा सुरा और लोध का क्वाथ मिलाकर पन्द्रह दिनतक धरा रहने देवैं। पीछे इसका सेवन करै। अथवा एक एक आढक दन्ती और चीतेको अलग अलग एक एक द्रोण जल में क्वाथ करै, फिर इस क्वाथ में एक तुला गुड और आधसेर लोध मिलाकर धरारहने दे इस मद्य के पान करनेसे विरेचन होता है।

तिल्वकस्यकषायेणदशकृत्वः सुभाविताम् मात्रांकम्पिल्लकस्यैवकषायेणपुनःपिवेत्॥ चतुरंगुलकल्पेनलेहोऽन्यःकार्यएवच । त्रिफलायाःकषायेणससर्पिर्मधुफाणितः॥ लोध्रचूर्णयुतःसिद्धोलेहःश्रेष्ठंविरेचनम् । अष्टाष्टौत्रिवृतादीनांपृथङ्मुष्टींस्तुसमखान् द्रोणेऽपांसाधयेत्पादशेषेमस्थंघृतात्पचेद् पिष्टैस्तैरेवविल्वांशैःसमूत्रलवणैरथ ॥ ततोमात्रांपिवेत्कालेश्रेष्ठमेतद्विरेचनम्। लोध्रकल्केनमूत्राम्ललवणैश्चपचेद्घृतम्। चतुरंगुलकल्पेनसर्पिर्पीद्वेचसाधयेत् ॥

अर्थ—लोध के क्वाथ में लोध के चूर्ण को दस भावनादेवै फिरइसी चूर्ण में कबीले के क्वाथ की दस भावना देवै फिर इसे पान करै। अथवा अमलतास के लेह की तरह इस का भी लेह बनाकर चाटै। अथवा त्रिफला के क्वाथ में घी, शहत, राव और लोध का चूर्ण डालकर लेह बनालेवै। यह विरेचन बहुत अच्छा है। तृवृतादि द्रव्यों की सनख आठ आठ मुट्ठी लेकर एक द्रोण जल में पकावै चौथाई शेष रहने पर इस क्वाथ में घृत पकावै। अथवा उनही तृवृतादि द्रव्यों को एक एक तोले पीसकर गोमूत्र और सेंधे नमकके साथ सिद्ध करके पान करै। अथवा चतुरंगुलकी तरह लोधका कल्क, गोमूत्र,खटाई और नमकके साथ दो रीति से पाक करै [अमलतास के कल्कका पिछला प्रकरण देखो]।

तिल्वकस्यकषायेणकल्केनचसशर्करः॥ सघृतःसाधितोलेहःसचश्रेष्ठंविरेचनम्॥

अर्थ—लोधका कल्क और क्वाथ, मिश्री और घी इनको एकत्र पकाकर लेह बनावै यह सर्वोत्तम विरेचन है।

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

पञ्चद्रव्यादिभिस्त्वेकःसुरासौवीरकेणच एकोऽरिष्टस्तथायोगएकःकम्पिल्लकेनच लेहस्त्रयोघृतेनापिचत्वारःसम्पदर्शिताः। योगास्तेलोध्रमूलानांकल्पेषोडशसंमताः

अर्थ—इस अध्याय में लोध के सोलह

कल्प वर्णन किये गये हैं, यथा दही तक्र सुरामण्ड, गोमूत्र, कोलशीधु और आंवलेके रस का एक एक, सुराका एक सौवीर का एक, अरिष्ट का एक, कत्रीले का एक, लेह के तीन और घी के चार।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेश विरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने लोध्र कल्पो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

——○※○——

दशमोऽध्यायः ।

अथातोमहावृक्षकल्पंव्याख्यास्यामः ।
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि-अब हम महावृक्ष कल्प की व्याख्या करेंगे॥

विरेचनानांसर्वेषांसुधातीक्ष्णतमामता॥
संघातंतुभिनत्याशुदोषाणांकष्टविभ्रमा॥
तस्मान्नपामृदौकोष्ठेप्रयोक्तव्याकदाचन
नदोषेनिचयेचाल्पेसतिवान्यपरिक्रमे ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकार के विरेचनकर्त्ता द्रव्योंमें सेंहुड अत्यन्त तीक्ष्ण है। यह दोषों के संघात को शीघ्रही नष्ट करदेता है यह अत्यन्त कष्टकारक विभ्रम उत्पन्न करता है, इस लिये इसे मृदु कोष्ठ वाले को कभी न देना चाहिये, अल्पदोषों में भी इसका देना ठीक नहीं है जो रोग अन्य विरेचन से साध्य हैं उनमें भी इसका देना ठीकनहींहै

सेंहुड साध्य रोग ॥

पाण्डुरोगोदरेगुल्मकुष्ठेदूषीविषार्दिते ॥
श्वयथौमधुमेहेचदोषविभ्रान्तचेतसि ॥
रोगैरेवंविधैर्ग्रस्तंज्ञात्वाप्राणमातुरम् ॥
प्रयोजयेन्महावृक्षंसम्यक्सद्यवचारितः ॥
सद्योनुदतिदोषाणांमहान्तमपिसञ्चयम्॥

अर्थ—पांडुरोग, उदररोग, गुल्म, कुष्ट, दूषीविषरोग, सूजन, मधुमेह, उन्माद, तथा ऐसेही अन्यरोगों से पीडित मनुष्य यदि बलवान् होतो सेंहुंड का प्रयोग करे ॥ सेंहुड के अच्छी तरह प्रयोग किये जाने पर दोषों का बडा संचय भी शीघ्रही दूर हो जाता है।

सेंहुड के भेद ।

द्विविधःसमतांयेश्चबहुभिश्चैवकण्टकैः ॥
सुतीक्ष्णैःकण्टकरल्पैःप्रवरोबहुकण्टकः ॥

अर्थ—सेंहुड दो तरह का होता है एक प्रकार का बहुत कांटों से युक्त होता है, दूसरी तरह के में बहुत पैने थोडे कांटे होते हैं, परन्तु इन दोनों में बहुत से कांटों से युक्त अच्छा होता है।

सेंहुडकेनाम ॥ -

सनामास्नुगुडानन्दासुधानिस्त्रिंशपत्रक

अर्थ—स्नुक, गुडा, नन्दा, सुधा और निस्त्रिंशपत्र ये सेंहुड के संस्कृत नाम हैं॥

सेंहुडकेलानेकीविधि ।

तंविपाट्याहरेत्क्षीरंशस्त्रेणमतिमान्भिषक्
द्विवर्षंवात्रिवर्षंवाशिशिरान्तेविशेषतः
विल्वादीनांबृहत्यावाकण्टकार्यापिचेकशः
कषायंतंसमांशेनकृत्वाङ्गारेपुशोषयेत् ॥
ततःकोलसमांमात्रांपिवेत्सौवीरकेणवा।
तुषोदकेनकोलानांरसेनामलकस्यवा ॥
सुरयादधिमण्डेनमातुलुङ्गरसेनवा ।

अर्थ—दो या तीन वर्ष के पुराने सेंहुड को शस्त्र से चीरकर उसमें से दूध निकाले । दूध निकालने का समय विशेष करके शिशिरऋतु का अन्त है । दूध को निकाल कर बेल, बृहती और कटेरी क्रम से इन के क्वाथ में उसका समानभाग मिलाकर अंगारों पर सुखावै । पीछेसे इसमें से झाडबेर की बराबर सौवीरकके साथ पानकरै,अथवा तुषोदक, या बेर के रस वा आंवले के रस के साथ पान करै, अथवा सुरा दधिमंड वा बिजौरे के रस के साथ पान करे ।

सातलाकाञ्चनक्षीरीश्यामादीनिकटुत्रिकम् ॥ यथोपपत्तिसप्ताहंसुधाक्षीरेणभावयेत् । कोलमात्रंघृतेनातःपिबेन्मांसरसेनवा ॥ यूपणत्रिफलादन्तीचित्रकंत्रिवृतांतथा । स्नुक्क्षीरभावितंसम्यग्विदध्याद्गुडपानके ॥ त्रिवृतारग्वधंदन्तींशङ्खिनींसप्तलांसमाम् । गोमूत्ररजनीकृत्वाशोषयेदातपेततः ॥ सप्ताहंभावयित्वैवंस्नुक्क्षीरेणापरंपुनः । सप्ताहंभावयेत्शुष्कं ततस्तेनापिभावितम् ॥ गन्धमाल्यंतदाघ्रायप्रावृत्यपटमेवच । सुखमाशुविरिच्यन्तेमृदुकोष्ठानराधिपाः॥

अर्थ—सातला, स्वर्णक्षीरी, श्यामादि द्रव्य और त्रिकुटा इनको विधिपूर्वक सात दिनतक सेंहुड के दूध की भावनादेवै । फिर बेर की बराबर उस में से गोली बनाकर घी वा मांसरस के साथ पानकरै । अथवा त्रिकुटा, त्रिफला, दन्ती, चीता, निसोथ इनको सेंहुड के दूध की भावना देकर गुड़ के शरबत के साथ पान करावै। अथवा निसोथ, अमलतास, दंती, शंखिनी और सातला इन सबको समानभाग लेकर रात्रिके समय गोमूत्र में भिगो देवै । प्रातः काल धूप में सुखालेवै। इस तरह सातदिन तक भावना देकर पीछे सात दिवस तक सेंहुड के दूधकी भावना देवै इस चूर्ण को सुगंधित फूल में रखकर सूंघै,सूंघते समय शरीर पर मोटा वस्त्र धारण करले । इस के सेवन से कोमल कोष्ठवाले राजालोगों को भी सुखपूर्वक विरेचन होता है ।

श्यामात्रिवृत्कषायेणस्नुक्क्षीरघृतफाणितैः । लेहंपक्त्वाविरेकार्थंलेहयेन्मात्रया नरम् ॥ पाययेत्सुधाक्षीरंयूपैर्मांसरसैर्घृतैः भावितान्शुष्कमत्स्यान्वामांसंवाभक्षयेन्नरः ॥ क्षीरेणामलकैःसर्पिश्चतुरंगुलवत्पचेत् । सुरांवाकारयेत्क्षीरंघृतंवापूर्ववत्पचेदिति ॥

अर्थ—श्यामानिसोथ के क्वाथ में सेंहुड का दूध, घी और राब पकाकर मात्राके अनुसार लेहन करै तो विरेचन होता है । सेंहुड के दूध को घी,मांसरस वा यूष के साथ पान करै अथवा सेंहुड के दूधकी सूखी मछली वा मांस में भावना देकर सेवन करै । अथवा अमलतास की तरह सेंहुड के साथ पकायेहुए दूध का घी निकालकर उस में चौथाई सेंहुड का दूध, और चौगुना आंवले का रस मिलाकर पकावे । अथवा सेंहुडका दूध और सुरा समान भाग मिलाकर रक्खै अथवा पूर्वकी तरह घृत पकाकर सेवन करे ॥

कल्प वर्णन किये गये हैं, यथा दही तक्र सुरामण्ड, गोमूत्र, कोलशीधु और आंवलेके रस का एक एक, सुराका एक सौवीर का एक, अरिष्ट का एक, कवीले का एक, लेह के तीन और घी के चार।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेश विरचितायां चरकप्रति संस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने लोध्र कल्पो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

———○※○———

दशमोऽध्यायः ।

अथातोमहावृक्षकल्पंव्यारुयास्यामः ।
इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि-अब हम महावृक्ष कल्प की व्याख्या करेंगे॥

विरेचनानांसर्वेषांसुधातीक्ष्णतमामता॥
संघातंतुभिनत्याशुदोषाणांकष्टविभ्रमा॥
तस्मान्नैषामृदौकोष्ठेप्रयोक्तव्याकदाचन
नदोषनिचयेचाल्पेसतिवान्यपरिक्रमे ॥

अर्थ—सम्पूर्ण प्रकार के विरेचनकर्त्ता द्रव्योंमें सेंहुड अत्यन्त तीक्ष्ण है। यह दोषों के संघात को शीघ्रही नष्ट करदेता है यह अत्यन्त कष्टकारक विभ्रम उत्पन्न करता है, इस लिये इसे मृदु कोष्ठ वाले को कभी न देना चाहिये, अल्पदोषों में भी इसका देना ठीक नहीं है जो रोग अन्य विरेचन से साध्य हैं उनमें भी इसका देना ठीकनहींहै

सेंहुड साध्य रोग ॥

पाण्डुरोगोदरगुल्मकुष्ठदूषीविषार्दिते ॥
श्वयथौमधुमेहेचदोषविभ्रान्तचेतसि ॥
रोगैरेवंविधैर्ग्रस्तंज्ञात्वासप्राणमातुरम् ॥
प्रयोजयेन्महावृक्षंसम्यक्सक्षवचारितः ॥
सद्योनुदतिदोषाणांमहान्तमपिसञ्चयम्॥

अर्थ—पांडुरोग, उदररोग, गुल्म, कुष्ट, दूषीविषरोग, सूजन, मधुमेह, उन्माद,तथा ऐसेही अन्यरोगों से पीडित मनुष्य यदि बलवान् होतो सेंहुड का प्रयोग करे॥ सेंहुड के अच्छी तरह प्रयोग किये जाने पर दोषों का बडा संचय भी शीघ्रही दूर हो जाता है।

सेंहुड के भेद ।

द्विविधःसमतांयेश्चबहुभिश्चैवकण्टकैः ॥
सुतीक्ष्णैःकण्टकरल्पैःप्रवरोबहुकण्टकः ॥

अर्थ—सेंहुड दो तरह का होता है एक प्रकार का बहुत कांटों से युक्त होता है, दूसरी तरह के में बहुत पैने थोडे कांटे होते हैं, परन्तु इन दोनों में बहुत से कांटों से युक्त अच्छा होता है।

सेंहुडकेनाम ॥

सनामास्नुग्गुडानन्दासुधानिस्त्रिंशपत्रक

अर्थ—स्नुक, गुडा, नन्दा, सुधा और निस्त्रिंशपत्र ये सेंहुड के संस्कृत नाम हैं॥

सेहुंडकेलानेकीविधि ।

तंविपाट्याहरेत्क्षीरंशस्त्रेणप्रतिमान्भिषक्
द्विवर्षंवात्रिवर्षंवाशिशिरान्तेविशेषतः
बिल्वादीनांबृहत्यावाकण्टकार्यापिचैकशः
कषायंतंसमांशेनकृत्वाङ्गारेपुशोषयेत् ॥
ततःकोलसमांमात्रांपिबेत्सौवीरकेणवा।
तुषोदकेनकोलानांरसेनामलकस्यवा ॥
सुरयादधिमण्डेनमातुलुङ्गरसेनवा ।

अर्थ—दो या तीन वर्ष के पुराने सेहुंड को शस्त्र से चीरकर उसमें से दूध निकाले । दूध निकालने का समय विशेष करके शिशिरऋतु का अन्त है । दूध को निकाल कर बेल, वृहती और कटेरी क्रम से इन के क्वाथ में उसका समानभाग मिलाकर अंगारों पर सुखावै । पीछेसे इसमें से झाडबेर की बराबर सौवीरकके साथ पानकरै, अथवा तुषोदक, वा बेर के रस वा आंवले के रस के साथ पान करै, अथवा सुरा दधिमंड वा बिजौरे के रस के साथ पान करै ।

सातलांकाञ्चनक्षीरींश्यामादीनिकटुत्रिकम् ॥ यथोपपत्तिसप्ताहंसुधाक्षीरेणभावयेत् । कोलमात्रंघृतेनातःपिबेन्मांसरसेनवा ॥ व्यूषणंत्रिफलांदन्तींचित्रकंत्रिवृतांतथा । स्नुक्क्षीरभावितंसम्यग्दिद्या द्गुडपानके ॥ त्रिवृतारग्वधंदन्तींशङ्खिनीसप्तलांसमाम् । गोमूत्ररजनीकृत्वाशोषयेदातपेततः ॥ सप्ताहंभावयित्वैवंस्नुक्क्षीरेणापरंपुनः । सप्ताहंभावयेत्शुष्कं ततस्तेनापिभावितम् ॥ गन्धमाल्यंतदाघ्रायप्रावृत्यपटमेवच । सुखमाशुविरिच्यन्तेमृदुकोष्ठानराधिपाः ॥

अर्थ—सातला, स्वर्णक्षीरी, श्यामादि द्रव्य और त्रिकुटा इनको विधिपूर्वक सात दिनतक सेंहुड के दूध की भावना देवै । फिर बेर की बराबर उस में से गोली बनाकर घी या मांसरस के साथ पानकरै । अथवा त्रिकुटा, त्रिफला, दन्ती, चीता, निसोथ इनको सेंहुड के दूध की भावना देकर गुड़ के शरवत के साथ पान करावै। अथवा निसोथ, अमलतास, दंती, शंखिनी और सातला इन सबको समानभाग लेकर रात्रिके समय गोमूत्र में भिगो देवे । प्रातःकाल धूप में सुखालेवै। इस तरह सातदिन तक भावना देकर पीछे सात दिवस तक सेंहुड के दूधकी भावना देवै इस चूर्ण को सुगंधित फूल में रखकर सूंघै, सूंघते समय शरीर पर मोटा वस्त्र धारण करले । इस के सेवन से कोमल कोष्ठवाले राजालोगों को भी सुखपूर्वक विरेचन होता है ।

श्यामात्रिवृत्कषायेणस्नुक्क्षीरघृतफाणितैः । लेहंपक्त्वाविरेकार्थंलेहयेन्मात्रया नरम् ॥ पाययेत्सुधाक्षीरंयूषैर्मांसरसैर्घृतैः भावितान्शुष्कमत्स्यान्वामांसंवाभक्षयेन्नरः ॥ क्षीरेणामलकैःसर्पिश्चतुरंगुलवत्पचेत् । सुरांवाकारयेत्क्षीरंघृतंवापूर्ववत्पचेदिति ॥

अर्थ—श्यामानिसोथ के क्वाथ में सेंहुड का दूध, घी और राव पकाकर मात्राके अनुसार लेहन करै तौ विरेचन होताहै । सेंहुड के दूध को घी, मांसरस वा यूष के साथ पान करै अथवा सेंहुड के दूधकी सूखी मछली वा मांस में भावना देकर सेवन करै । अथवा अमलतास की तरह सेहुंड के साथ पकायेहुए दूध का घी निकालकर उस में चौथाई सेंहुड का दूध, और चौगुना आंवले का रस मिलाकर पकावै । अथवा सेंहुडका दूध और सुरा समान भाग मिलाकर रक्खै अथवा पूर्वकी तरह घृत पकाकर सेवन करै ॥

अध्यायका संक्षिप्त वर्णन ॥

सौवीरकादिभिःसप्तसर्पिपाचरसेनच । पानकंघ्रेयलेहौचयोगायूपादिभिःस्त्रयः द्वौशुष्कमत्स्यमांसानांसुरैकाद्वेचसर्पिर्षा। महावृक्षस्ययोगास्तेविंशतिःसमुदाहृताः॥

अर्थ—इस अध्याय में सेहुडके वीस प्रयोग वर्णन किये गये हैं। सौवीरक के सात, घीकाएक, मांसरका एक, गुडपानकका एक, सूंघने का एक, लेहका एक, यूप के तीन, सूखी मछली और मांस के दो तथा घी के दो, इस तरह सब मिलकर वीस कल्प हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशत्रिरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांकल्पस्थानेमहावृक्षकल्पोनाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातःसप्तलाशंखिनीकल्पंव्याख्यास्यामः ॥ इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम सप्तलाशंखनी कल्पकी व्याख्या करेंगे ॥

सप्तलाशंखनी के नामान्तर ॥

शंखिनीतिक्तलाचैवयवतिक्ताक्षिपीडकः सप्तलाचर्मसाह्वेचवहुफेनरसाचसा ॥

अर्थ—शंखनी, तिक्तला, यवतिक्ता, अक्षपीडिक ये शंखनीके नाम हैं। तथा सप्तला चर्मसाह्वा और बहुफेनसा ये सप्तला के नाम हैं ॥

तेगुल्मगरहृद्रोगकुष्ठशोफोदरादिषु । विकासितीक्ष्णरूक्षत्वाद्योज्येश्लेष्माधिकेषुतु ।

अर्थ—सातला और शंखनी विकाशी, तीक्ष्ण और रूक्ष होने के कारण गुल्मरोग गरदोप, हृद्रोग, कुष्ट, शोफ और उदर रोगोंको नष्ट करती हैं तथा कफाधिक रोगों में ये बहुत गुणकारी होती हैं ॥

उक्तदोनोंकीकल्पना ।

नातिशुष्कंफलंग्राह्यंशंखिन्यानिस्तुपीकृतम् ॥ सप्तलायाश्चमूलानिगृहीत्वाभाजनेक्षिपेत् । अक्षमात्रंतयोःपिण्डंप्रसन्नां लवणायुतम् ॥ हृद्रोगेकफवातोत्थेगुल्मेचैवप्रयोजयेत् । पियालपीलुकर्कन्धुकोलाम्रातकदाडिमैः ॥ द्राक्षापनसखर्जूरवदराम्लपरूपकैः । मैरेयदधिमण्डेऽम्ले सौवीरकतुपोदके ॥ शीधौचाप्येपकल्पः स्यात्सुखंशीघ्रविरेचनः ।

अर्थ....शंखिनी फलोंके छिलके दूर करके ऐसे फल लेवै जो वहुत सूखेहुए नहीं और सातलाकी जड लाकर दोनों को एक पात्र में रखदेवै। फिर इनमें से दो तोले प्रसन्ना वा सेंधे नमकके साथ हृद्रोग तथा कफवात जनित गुल्मरोगमें सेवन करै अथवा पियाल पीलू, वेरकारस, अंबाडा, खट्टाअनार, दाख, पनस, खजूर, वेरकाक्वाथ, फालसा, मैरेय, दधिमंड, कांजी, सौवीरक तुपोदक वा शीधूके साथ सेवन करै। इससे सुखपूर्वक शीघ्र विरेचन होता है।

तैलंविदारिगन्धादिपयसापीडितंपचेत्॥ सप्तलाशंखिनीकल्केत्रिवृत्श्यामार्द्धभागिके। दधिमण्डेनसञ्जीयसिद्धन्तम्पाययेत्तच॥शंखिनीचूर्णभागौद्वौनीलीचूर्णस्य चापरः। हरीतकीकषायेणतैलंतत्पीडितंपिबेत्॥ अतसीसर्षपैरण्डकरंजेष्वेषसम्विधिः। शंखिनीसप्तलासिद्धाक्षीरात्यदुदियांघृतम्। कल्कभागंतयोरेवत्रिवृत्श्यामार्द्धसंयुतम्। क्षीरेणालोड्यसम्पक्वंपिबेत्तच्चविरेचनम्॥

अर्थ—तेल चार सेर, शालिपर्ण्यादि पंच मूल के साथ सिद्ध किया हुआ दूध सोलह सेर, इसी तरह सातला, शंखिनी और दोनों प्रकार की निसोथ का कल्क एकत्र पाक करके तेल तयार करै इस तेलको दधिमंडमें मिलाकर पान करै। अथवा शखिनी का चूर्ण दो भाग, नीलिनी का चूर्ण एक भाग इनको मिलाकर कोल्हू में पिलवा कर तेल निकलवा लेवै। इस तेलको हरड के क्वाथके साथ पान करै। इसी तरह से अलसी, सरसों, अरण्ड और कंजा कीमींगी मिलाकर तेल निकलवाकर हरडके क्वाथ के साथ पीते हैं। शंखनी और सप्तला डालकर सिद्ध किये हुए दूध में से घी निकालकर उन्हीं दोनों का कल्क दोनों प्रकार की निसोथका कल्क और चौगुना दूध मिलाकर पाक करै यह घृत विरेचक होताहै।

तथादन्तीद्रवन्त्योःस्यादजमृंगयजगन्धयोः क्षीरिण्यानीलिकायाश्चतथैवचकरञ्जयोः मसूरविदलायाश्चप्रत्यक्श्रेण्यास्तथैवच॥ विडङ्गार्द्रांशकल्केनतद्वत्साध्यंघृतंपुनः। शंखिनीसप्तलाधात्रीकषायेसाधयेद्घृतम्॥ त्रिवृत्कल्केनसर्पिश्चत्रयोलेहाश्चलोध्रवत्। सुराकम्पिल्लयोर्योगःकार्योलोध्रवदेवच॥ दन्तीद्रवन्त्योःकल्केनसौवीरकतुषोदके। अजगन्धाजमृंग्योश्चतद्वत्स्यातांविरेचने॥

अर्थ—इसी रीति से दन्ती द्रवन्ती के साथ औटाये हुए दूधका घी निकाल कर दन्ती, द्रवन्ती और दोनों प्रकार की निसोथ का कल्क और दूध मिलाकर पाक करे। इसी तरह से शंखनी और सातला के साथ सिद्ध कियेहुए दूध का घी निकाल कर इन्हीं दोनों का कल्क दो भाग, तथा मेंढासिंगी और अजगंध का कल्क एक भाग मिलाकर तथा दूध डालकर घी पकावे, इसीतरह उक्त दुग्धोद्धृत घृतमें क्षीरिणी और नीलिनी का कल्क मिलाकर अथवा दोनों प्रकारके कंजोंका कल्क मिलाकर घी सिद्ध करै। इसीतरहसे मसूर की दाल प्रत्यक् श्रेणी वा वायविडंग का कल्क डाल कर घृत सिद्ध करै। अथवा शंखनी, सातला और आंवलेके रसमें घृत पाक करै। सप्तला और शंखनीके साथ तीन प्रकार के घी निसोथ की तरह तयार करै और लोधकी तरह लेह बनावै। तथा लोध की ही तरह सुरा और कबीले के कल्क तयार करै। यथा दन्ती, द्रवन्ती के कल्पकी तरह अजगंध और मेढासिंगी के सौवीर और तुषोदक बनाकर सेवन करै॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

कषायादशपट्चैवपट्तैलेऽष्टौचसर्पिषि।

पञ्चमद्येत्रयोलेहायोगःकम्पिल्लकेतथा॥ सप्तलाशंखिनीभ्यांतेत्रिंशदुक्तानवाधिका योगाःसिद्धाःसमस्ताभ्यामेकशोऽपिच तेहिताः ।

अर्थ—इस अध्यायमें सप्तला और शंखनी के उन्तालीस योग वर्णन कियेगये हैं। यथा, क्वाथ के सोलह, तेल के छः, घीके आठ, मद्यके पांच, लेह तीन और कम्पीलेका एकाये सब योग सिद्ध कियेहुए हैं।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायां अग्निवेश विरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायां कल्पस्थाने सप्तला शंखनी कल्पो नाम एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

—*—

द्वादशोऽध्यायः ॥

अथातोदन्तीद्रवन्तीकल्पंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम दन्ती, द्रवन्ती के कल्पकी व्याख्या करेंगे ।

दन्ती द्रवन्ती के नामान्तर।

दन्त्युदुम्बरपर्णीस्यान्निकुम्भोऽथमुकूलकः॥ द्रवन्तीनामतश्चित्रान्यग्रोधामूषिका ह्वया ॥

अर्थ—उदुम्बरपर्णी, निकुम्भ और मुकूलक ये दन्ती के नामान्तरहैं। चित्रा न्यग्रोधा और मूषिकाह्वया द्रवंती के नामहैं ।

उक्त द्रव्यों के कल्प।

तयोर्मूलानिमंगृह्यस्थिराणिबहलानिच। हस्तिदन्तप्रकाराणिश्यावताम्राणिबुद्धिमान् । पिप्पलीमधुलिप्तानिस्वेदयेत्मृत्कुशान्तरे ॥ शोषयेदातपेऽग्न्यर्कौहते ह्यपांविकापिताम् । तीक्ष्णोष्णान्याशुकारीणिविकाशीनिगुरूणिच ॥ विलापयन्तिदोषौद्वौमारुतंकोपयन्तिच ।

अर्थ—दन्ती द्रवन्ती की जड जो दृढ, पुष्ट, हाथी के दांतके सदृश हो तथा श्याववर्ण वा ताम्रवर्ण हो उसे लाकर शहत और पीपल में लपेट दवै और उस के ऊपर कुशा बांधकर कपडमिट्टी करदे इसको धूप में सुखाकर अग्नि में स्वेदित करै। ऐसा करने से इसकी तीव्रता दूर होजावेगी । दन्ती और द्रवन्ती तीक्ष्ण, उष्ण, आशुकारी, विकाशी और भारी होतीहैं ये दोनों कफ और पित्त को विलीन करतीहैं और वायु को प्रकुपित करतीहैं (वायुकारक होने से पेटमें ऐंठा उत्पन्न करतीहैं इससे निम्न लिखित द्रव्योंके साथमें इनका सेवन हितहै)

दधितक्रसुरामण्डैःपिण्डमक्षरसमन्तयोः॥ पियालकोलबदरपीलुशीधुभिरेवच ॥ पिबेद्गुल्मोदरीदोषैराभिष्यन्दश्चयोनरः गोमृगाजरसःपाण्डुःक्रिमिकुष्ठीभगन्दरी। तयोःकल्केकषायेचदशमूलरसायुते ॥ कक्ष्यालजीविसर्पेपुदाहेचविपचेद्घृतम् ॥ तैलंमेहेचगुल्मेचसोदावर्तेकफानिले ॥ चतुःस्नेहंशकृच्छ्रवातसङ्गानिलार्तिपु॥ रसोदन्त्यजशृंग्योश्चगुडक्षौद्रघृतान्वितः॥ लेहःसिद्धोविरेकार्थदाहसन्तापमेहनुत् ॥ वाततर्पज्वरेपैत्तेस्यात्सएवाजगन्धया ॥

अर्थ—दन्ती द्रवन्तीका कल्क दो तोले दही, तक्र, सुरामण्ड, पियाल, बेर, झाडी बेर, पीलू, शीधु, इनके साथमें पीनेसे गुल्मरोग, उदररोग, अभिष्यन्दरोग दूर होजाते हैं, तथा गौ, हिरन और बकरे के मांसरस के साथ पीने से पांडुरोग, क्रिमिरोग, कुष्ठ और भगन्दर जाते रहतेहैं। दन्ती द्रवन्ती का कल्क एक सेर, क्वाथ आठ सेर, दशमूलका क्वाथ आठ सेर और घृत चार सेर इनको पकाकर घृत तयार करै। यह घृत कखराई, विसर्प और दाहमें हित होता है। अथवा घृत की जगह तेल चार सेर पकानेसे यह तेल गुल्म, उदावर्त्त और वातकफ में हितहै अथवा घृत वा तेल दोनों के बदले में चार प्रकारके स्नेह पकाकर सेवन करनेसे मलबद्धता, वीर्यबद्धता, वायुविबन्ध और वायुरोग दूर होजाते हैं। अथवा दंती और मेंढासिंगी की जड़ समानभाग लेकर आठ गुने जलमें पकावै जब चौथाई शेष रहजाय तब गुड और घृत के साथ पकाकर लेह करले फिर ठंडा होनेपर शहत मिलाकर पास रखछोडे। इसके सेवनसे विरेचन द्वारा दाह, संताप और प्रमेह दूर होजाते हैं। इसीरीतिसे अजगंध और दन्तीकिजड़ समान भाग लेकर अठगुने जल में क्वाथ करै चौथाई शेष रहनेपर छानकर चतुर्थांश घी, गुडके साथ पकाकर लेह करै। उस में शहत मिलाकर रख छोडे, इसकासेवन करने से तृषा और पित्तज्वर शान्त होजाते है।

मूलंदन्तीद्रवन्त्योश्चपचेदामलकीरसे। त्रींस्तस्यचकषायेऽस्यभागान्द्वौफाणितस्यच ॥ तप्तेसर्पिषितैलेवाभर्जयेत्तत्रचावपेत्। कल्कंदन्तीद्रवन्त्योश्चश्यामादीनाञ्चभागशः॥ तत्सिद्धंमात्रयालेहंसुखंतेनविरिच्यते। रसेचदशमूलस्यतथावैभीतकेरसे॥ हरीतकीरसेचैवलेहानेवपचेत्पृथक्। तयोर्बिल्वसमंचूर्णतद्रसेनैवभावितम्॥ अस्यविषवातोत्थेगुल्मेचाम्लयुतंशुभम्।

अर्थ—दंती द्रवन्तीकी जडको आंवले के रसमें पकावै चौथाई शेष रहनेपर यह क्वाथ तीन भाग, फाणित दोभाग मिलाकर तप्त घी वा तैलमें छौंक देवै। पीछे इसमें दन्ती द्रवन्ती और अपामार्ग तंडुलीय अध्यायोक्त त्रिवृतादि पन्द्रह द्रव्योंका कल्क पूर्वोक्त कषाय और फाणितसे चतुर्थांश डालै। इस लेहको पान करनेसे सुखपूर्वक विरेचन होता है। अथवा इसी तरह से आंवलेके रसकी जगह दशमूल का क्वाथ, बहेडे का क्वाथ वा हरड का क्वाथ इनमें दंती द्रवन्तीकी जड को पकाकर पूर्वोक्त त्रिवृतादि द्रव्यों को डालकर लेह तयार करै। दंती द्रवन्तीकी जड का एक पल चूर्ण में इनहीके क्वाथ की भावना देकर कांजीके साथ सेवन करै तौ मलका विबंध और वातजगुल्म दूर होजातेहैं।

पाटयित्वेक्षुकाण्डंवाकल्केनालिप्यचान्तरा॥ स्वेदयित्वाततःखादेत्सुखंतेनविरिच्यते। मूलंदन्तीद्रवन्त्योश्चसहस्रैर्विपा

चयेत् । लाववर्त्तीरकाणांचतेरसाःस्युर्वि रेचनम् । तयोर्वापिकषायेणयवागूर्जांग लंरसम् ॥ माषयूपांश्चसंस्कृत्यदद्यात्ते नविरिच्यते । तत्कषायात्त्रयोभागाद्वौ सितायास्तथैवच ॥ एकोगोधूमचूर्णा न्नाकार्यचोत्कारिकाशुभा । मोदकोवा स्वकल्केनकार्यस्तच्चविरेचनम् ॥ तयो र्वापिकषायेणमद्यान्यस्यविकल्पयेत् ॥ दन्तीक्वाथेनचालोड्यदन्तीतैलेनसाधि तम् ॥ गुडलावणिकानभक्ष्यानविविधा न्भक्षयेन्नरः ।

अर्थ—ईखकी एक पोईको बीच में से चीर कर उसमें दन्ती द्रवन्तीके कल्क को भरदे फिर उसका मुह बन्द करके डोर से बांध देवे । फिर उस पोईको अग्नि में गरम करके चूसले तो सुखपूर्वक विरेचन होता है दन्ती और द्रवन्ती की जड समान भाग मूंग के साथ या बटेर के मांसरस के साथ पाक करके पीवै तो विरेचन होता है अथवा दन्ती द्रवन्ती की जडके क्वाथ के साथ यवागू, वा जांगल मांसरस वा उरद के यूप के साथ संस्कार करके दैने से वि- रेचन होता है । अथवा दन्ती द्रवन्तीकी जड का क्वाथ तीन भाग चीनी दो भाग और गेहूं का चून एक भाग मिलाकर मोहनभोग वा मोदक बनावै । इनके सेवन से विरेचन होता है । अथवा इनही दोनों के क्वाथ से मद्य बनाकर सेवन करै। दन्ती के क्वाथ में सानकर गुड और सेंधानमक डालकर बनाये हुए भक्ष्य पदार्थ दन्ती के तेलही में सेक कर सेवन करने से सुख पूर्वक विरेचन होता है ॥

वैरेचानिकचूर्ण ।

द्रवन्तीमरिचंदन्तीयवानीमुपकुञ्चिकाम् नागरंहेमदुग्धीञ्चचित्रकंचेतिचूर्णितम् । सप्ताहंभावयेन्मूत्रेगवांपाणितलंततः ॥ पिबेद्घृतेनजीर्णेतुविरिक्तश्चापितर्पणम्। सर्वरोगहरंमुख्यंसर्वेष्वृतुषुशोभनम् ॥ चूर्णंतदनपायित्वाद्बालवृद्धेषुपूजितम् ॥ दुर्भुक्ताजीर्णपार्श्वार्तिगुल्मप्लीहोदरेषुच। गण्डमालासुवातेचपाण्डुरोगेचशस्यते ।

अर्थ—द्रवन्ती, कालीमिरच, दन्ती, अ- जवायनकी जड, कालाजीरा, सोंठ, स्व- र्णक्षीरी और चीता इनका चूर्ण करके सात दिन तक गोमूत्रकी भावना देवै । फिर इसका चूर्ण करके दो तोले घी में मिलाकर चाटै, विरेचन के पीछे तर्पण सेवन करै। यह योग सम्पूर्ण रोगों को दूर करनेवाला और सम्पूर्ण ऋतुओं में हित है ॥यह चूर्ण किसी प्रकार का उपद्रव नहीं करताहै इस से वृद्ध और बालकों कोभी उपयोगी है इस के सेवन से विपरीत भोजन के कारण उत्पन्न हुआ अजीर्ण, पार्श्वशूल, गुल्मरोग प्लीहा, उदररोग, गंडमाला वातरोग और पांडुरोग दूर होजाते हैं ॥

पलंचित्रकदन्त्योश्चहरीतक्याश्चविंशतिः पिप्पलीत्रिवृताक्षौद्रगुडस्याष्टपलेनतत् ॥ विनीयमोदकान्कुर्याद्दशैकंभक्षयेत्ततः ॥ उष्णांबुचपिबेच्चानुदशमेदशमेऽन्हिच एतेनिष्परीहाराःस्युःसर्वरोगनिबर्हणाः॥

ग्रहणीपाण्डुरोगार्शःकण्डूकोठानिलापहाः

अर्थ—चीता एक पल, दन्ती एक पल, हरड नग वीस, पीपल दो तोला, निसोथ दो तोला, और गुड आठ पल इन सबको पाककर दशमोदक बनावै। इन मोदकों को उष्ण जल के साथ दसवें २ दिन एक एक खाय। इन मोदकोंके सेवन करते समय आहार विहारकी विशेष यंत्रणा नहींहै। यह सर्व रोगोंका दूर करने वाला है और विशेष करके इसके सेवन से ग्रहणी, पाण्डुरोग, अर्श, खुजली, कोढ और बायुरोग नष्ट होजाते है ॥

दन्तीद्विपलनिर्यूहोद्राक्षार्द्धप्रस्थसाधितः ॥ शोधनंपित्तकासेचपाण्डुरोगेचशस्यते । दन्तीकल्कंसमगुडंशीतवारियुतंपिवेत् ॥ विरेचनंमुख्यतमंकामलाहरमुत्तमम् ।

अर्थ—दन्तीकी जडको अठगुने जल में क्वाथ करके चौथाई शेष रहने पर इस मिले हुए द्रव्यको लेह की तरह पाक करके सेवन करै तो पित्तज कास और पाण्डुरोग दूर होजातेहैं। अथवा दन्तीके कल्कमें बराबर का गुड मिलाकर शीतल जलके साथ पान करै तो उत्तम विरेचन होताहै। इससे कामलारोग दूर होजाताहै।

श्यामादन्तीरसेगौडःपिप्पलीफलचित्रकैः ॥ लिप्तेऽरिष्टोऽनिलकफप्लीहपाण्डूदरापहः। तथादन्तीद्रवन्त्योश्चकषायेणाजगन्धया ॥ गौडःकार्योऽजशृंग्यावारसैःसुखविरेचनः।तच्चूर्णक्वाथिमापाम्बुकिण्वतोयतुरोद्भवः॥ मदिराकफगुल्माग्निपार्श्वकटिग्रहे। अजगन्धाकषायेणसौवीरकतुषोदके ॥ सुराकम्पिल्लकेयोगालोध्रवच्चतयोःस्मृताः ॥

अर्थ—एक पात्रके भीतर पीपल, मैनफल और चीते का लेप करके कालीनिसोथ और दन्ती का क्वाथ तथा गुड भरकर रखदे। एक महीन पीछे अरिष्ट बननें पर सेवन करने से वात कफ, प्लीहा, पाण्डुरोग, और उदररोग दूर होजाते हैं। इसी तरह से दन्ती द्रवन्तीकी जड और अजगन्धके क्वाथ में गुड डालकर अरिष्ट तयार करै। इसी तरह से मेढाशिंगी और दंती द्रवन्ती के क्वाथ में गुड डालकर सुखपूर्वक विरेचन देवै। दन्ती द्रवन्ती का चूर्ण और क्वाथ, उरद का क्वाथ, सुराबीज और जल इनको एक पात्र में भरदेवैं। यह मद्य कफज गुल्मरोग मन्दाग्नि, पार्श्वग्रह और कटि रोग दूर करता है। अजगन्ध के क्वाथके साथ दन्ती द्रवन्ती के सौवीरक और तुषोदक तथा लोध के समान सुरा और कम्पिल्लक योग प्रस्तुत करके सेवन करै। (सौवीरक और तुषोदक बनाने की यह रीति है कि अजगन्ध का क्वाथ, विना छिलके के जौ और इतनी ही दन्ती द्रवन्ती का कल्क और कांजी एक पात्र में छः दिनतक धरे रखने से सौवीरक बनताहै। तथा छिलके समेत जौ और भुनेहुए जौ ओं को कूट कर उक्त रीति से मिश्रित करने पर तुषोदक होता है)। दन्ती द्रवन्ती के क्वाथ और समान भाग सुरा को मिलाकर पन्द्रह दिवस तक धरा रखने से सुरा बनती

है । दन्ती द्रवन्तीके कल्क में दन्ती द्रवन्ती के चूर्ण को दस वार भावना देकर फिर दस वार कवीले के क्वाथ की भावना देने से काम्पिल्लक योग बनता है ॥

दन्तीद्रवन्तीकल्पका संक्षिप्तवर्णन ।

दध्यादिपुत्रयःपञ्चपियालाद्यस्त्रयोरसे । स्नेहेपुत्रैत्रयोलेहाःषट्चूर्णेत्वकएवच ॥ ईक्षावेकस्तथामुद्गमांसानाञ्चरसास्त्रयः। यवाग्वाद्यैत्रयश्चैवउक्तउत्कारिकाविधौ एकश्चमोदकेमद्येचैकंतत्क्वाथतैलिके । चूर्णमेकंपुनश्चैकोमोदकःपञ्चासवे । एकःसौवीरकेऽथैकयोगःस्यात्तुपोदके ॥ एकासुराकम्पिल्लकश्चैकःपञ्चघृतस्मृताः॥ दन्तीद्रवन्तीकल्पेऽस्मिन्प्रोक्ताःपोडशकास्त्रयः। नानाविधानांयोगानांभुक्तिदोषामयान्प्रति ॥

अर्थ—इस अध्याय में दहीके तीन पियाल के पांच, क्वाथके तीन, स्नेहके तीन लेह छः, चूर्ण एक, ईख का एक, मुद्गमांस रस के तीन, यवागू के तीन, उत्कारिका का एक, मोदक एक, मद्य का एक, क्वाथ और तेल का एक, चूर्ण का फिर मोदक एक, आसव पांच, सौवीरक एक, सुरा एक कम्पिल्लक एक, और घृत पांच । इस तरह सब अडतालीस योग है । इन प्रयोगों से अनेक प्रकार के भोजन के दोष और रोग शान्त होजाते हैं ॥

त्रिशतंपञ्चपञ्चाशत्योगानांवमनेस्मृतम्॥ द्वेसतेनवकाःपञ्चयोगानान्तुविरेचने । ऊर्द्धानुलोमभागानामित्युक्तानिशतानि पट्॥ प्राधान्यतःसमाश्रित्यद्रव्याणिदश पञ्चच । यद्द्रियेनप्रधानेनद्रव्यंसमुपसृज्यते ॥ तत्संज्ञकःससंयोगोभवतीति विनिश्चितम् । फलादीनांप्रधानानांगुणभूताःसुरादयः ॥ तेहितान्यनुवर्तन्तेमनुजेन्द्रमिवेतरे ॥

अर्थ—इस कल्पस्थान में तीनसौ पचपन वमनयोग और दोसौ पैंतालीस विरेचन के योग वर्णितहै । इसतरह त्रिवृतादि पन्द्रह द्रव्यों का आश्रय लेकर वमन और विरेचन के सब मिलकर छःसौ प्रयोग हैं । जो द्रव्य जिस प्रधान द्रव्य से संयोजित कियाजाता है उस प्रयोगमें उसी के गुण प्रधान होते है जैसे मेनफलादि प्रधान द्रव्य के गुण से युक्त सुरादिक मेनफलादि के गुणोंकाही अनुवर्त्तन करती हैं जैसे प्रजा राजा की अनुगामिनी होती है ॥

विरुद्धवीर्यमप्येषांप्रधानानामबाधकम् ॥ अधिकेतुल्यवीर्येऽपिक्रियासामान्यमिष्यते । इष्टवर्णरसस्पर्शगन्धार्थप्रतिचामयम् ॥ अतोविरुद्धवीर्याणांप्रयोगइतिनिश्चितम् ॥

अर्थ—अप्रधान द्रव्य वीर्य विरुद्ध होने पर भी प्रधान द्रव्यके गुण का बाधक नहीं होसक्ताहै । तथा समान वीर्यवाला अप्रधान द्रव्य भी प्रधान द्रव्य के वीर्यको बढाताहै, क्योंकि उनकी क्रिया समान है । मनोऽनुकूल वर्ण, रस स्पर्श और गंध के कारणही विरुद्ध वीर्य द्रव्यों का संयोग कियाजाताहै तथा रोग के अनुसार भी विरुद्धवीर्य द्रव्य मिलायेंजाते हैं ॥

स्वरससे भावित करनेका कारण ।

भूयश्चैषां बलाधानं कार्यं स्वरसभावनात्॥ सुभावितं ह्यल्पमपि द्रव्यं स्याद्बहुकर्म्मकृत् । स्वरसैस्तुल्यवीर्यैर्वा तस्माद्द्रव्याणि भावयेत्

अर्थ—एक द्रव्य को उसी के रस की भावना देने का कारण यहहै कि उस द्रव्य का बल अधिक बढजाता है । अल्पवीर्य वाला वा अल्प द्रव्य भी अच्छी तरह भावना दियेजाने पर बहुत से कर्मों का करने वाला होजाता है । इसलिये उसीद्रव्यके रस से अथवा समान वीर्यवाले अन्य द्रव्यके रस से भावना देनी चाहिये ॥

अल्पस्यापि महार्थत्वं प्रभूतस्यापि कर्म्मताम् । कुर्यात्संयोगविश्लेषकालसंस्कारयुक्तिभिः ॥

अर्थ--संयोग, वियोग, काल और संस्कार द्वारा अल्पद्रव्य का महार्थत्व और प्रभूतद्रव्य का अल्पार्थत्व होजाता है ॥

प्रदेशमात्रमेतावद्द्रव्याणामिह षट्शतम् । सुबुद्धिश्चैव सहस्राणि कोटिर्वापि प्रकल्पयेत् ॥ बहुद्रव्यविकल्पत्वाद्योगसंख्या न विद्यते । तीक्ष्णमध्यमृदूनां तु तेषां शृणुत लक्षणम् ॥

अर्थ—इस जगह छः सौ प्रकार के वमन विरेचनों का आंशिक वर्णन किया गया है। अच्छी बुद्धिवाला वैद्य इन को सहस्र क्या करोड प्रकार से देसक्ता है । बहुत द्रव्यों से विकल्प होने के कारण इनकी संख्या नहीं हो सकती हैं ।

अब हम तीक्ष्ण, मध्यम और मृदु भेद से वमन विरेचनों के लक्षण कहते हैं ।

तीक्ष्ण विरेचन के लक्षण ।

सुखं क्षिप्रं महावेगमसक्तं यत्प्रवर्तते । नातिग्लानिकरं पायौ हृदये न च रुक्करम् ॥ अन्तराशयमक्षिण्वन्कृत्स्नं दोषं निरस्यति विरेचनं निरूहो वा तत्तीक्ष्णमिति निर्दिशेत्॥

अर्थ—जिसके प्रयोग करने से मल अशक्त होकर बडे वेग से निकलने लगता है जो ग्लानि बहुत नहीं करता है परन्तु मल के निकलने के समय गुदा और हृदय में वेदना करने लगता है और आमाशयको क्षीण करके सम्पूर्ण दोष को दूर कर देता है उस विरेचन वा निरूहको तीक्ष्णकहतेहैं ।

औषध की तीक्ष्णता का कारण ।

जलाग्निकीटैरस्पृष्टं देशकालगुणान्वितम्। ईषन्मात्राधिकं युक्तं तुल्यवीर्यैः सुभावितम्॥ स्नेहस्वेदोपपन्नस्य तीक्ष्णत्वं याति भेषजम्।

अर्थ—जो औषध जल, अग्नि वा कीडे से दूषित नहीं हुई है, जो देश और काल के गुण से युक्त है । जो समान वीर्य वाली औषधों से भावना दीगई है और मात्रासे कुछ अधिक दी भी गई है तथा स्नेहन और स्वेदन कर्मों के पश्चात् प्रयुक्त हुई है वह औषध तीक्ष्ण होजाती है

मध्य औषधके लक्षण।

किञ्चिदेभिर्गुणैर्हीनं पूर्वोक्तैर्मात्रया तथा । स्निग्धस्विन्नस्य वा सम्यङ्मध्यं भवति भेषजम्

अर्थ—जो औषध ऊपर कहे हुए गुणों से कुछ कम गुणवाली होती है वा उक्त मात्रासे कम स्नेहन स्वेदन के पश्चात् दीजाती है वह मध्यबल वाली होती है ।

हीन औषध का लक्षण ॥

मन्दवीर्यविरूक्षस्यहीनमात्रन्तुभेषजम् ॥ अतुल्यवीर्यैःसंयुक्तंमृदुस्यान्मन्दवेगवत् । अकृत्स्नदोषहरणादशुभंतद्बलीयसाम् ॥ मध्यावरबलानान्तुप्रयोज्यंसिद्धिमिच्छता

अर्थ—रूक्षरोगी को मन्दवीर्यवाली औषध अतुल्य औषधों के संयोगमें हीन मात्रासे प्रयोग की जाती है वह मृदु और मन्द वेग वाली होती है। ऐसी औषध दोषों को अच्छी तरह दूर नहीं कर सकती है इस से अगर इसका प्रयोग बलवान् मनुष्य के साथ किया जाय तो अशुद्धि को बढाती है। इस हेतु से जो इस औषध को सिद्ध किया चाहै उन्हें उचित है कि मध्यबल और हीनबल वालों को यह औषधी देवै ।

तीक्ष्णोमध्योमृदुर्व्याधिःसर्वमध्याल्पलक्षणः ॥ तीक्ष्णादीनिबलापेक्षीभेषजान्येपुयोजयेत्॥

अर्थ—सर्वलक्षणयुक्त व्याधि तीक्ष्ण, मध्यलक्षणवाली मध्य और अल्पलक्षण वाली मृदु होती है। इन सब का विचार कर तीक्ष्णादि औषधादि का प्रयोग करे।

देयन्त्वनिर्हृतेपूर्वंपूतपश्चात्पुनःपुनः । भेषजंवमनार्थायमायआपित्तदर्शनात् ॥ बलंभिव्याधिमालम्ब्यदोषाणामातुरस्यच। पुनःप्रयोज्यभैषज्यंसर्वशोहिविवर्जयेत् ॥

अर्थ—यदि वमनकारक औषध के सेवन करने परभी दोष न निकलें तो जब तक पित्त न निकले तब तक बार बार औषध पान कराता रहे। रोग और रोगी के तीनों प्रकार के बलों की विवेचना करके बार बार औषध का प्रयोग करे और जो समय न रहा हो तो सर्वथा औषध न देवै ।

निर्हृतेवापिजीर्णेवादोषानिर्हरणेबुधः ॥ भेषजेऽन्यत्प्रयुञ्जीतप्रार्थयन्सिद्धिमुत्तमम् ॥ अपक्वंवमनंदोषात्पच्यमानंविरेचनम्। निर्हरेद्वमनस्यातःपाकंनप्रतिपालयेत् पीतेभ्रंसनेदोषान्निर्हरत्यजराङ्गते । वामितेचौषधेधीरःपातयेदातुरंपुनः ॥

अर्थ—जो वमनकारक औषध निकल गई हो, वा पचगई हो वा दोष को न निकालसक्ती हो तो सिद्धि की इच्छा करनेवाला वैद्य फिर औषधदेवै । वमन औषध पचने से पहिले दोषों को निकालदेती हैं और विरेचक औषध पचनावस्था तक दोषों को निकालती है। इस से वमन औषध के पाक की प्रतीक्षा न करे। विरेचक औषध के पीने पर वह दोषों को बिना निकाले हुएही पचगई हो वा उसकी वमन होगई हो तो फिर औषध पान करावै ॥

सुखासुखसाध्यरोगी ॥

दीप्ताग्निबहुदोषश्चदृढस्नेहगुणंनरम् । दुःशोध्यंतदहर्भुक्तंस्वोभूयःपाययेत्तत् ॥ दुर्बलोबहुदोषश्चदोषपाकेनयोनरः। विरिच्यतेसरैर्भोज्यैर्भूयस्तमनुसारयेत् ॥ वमनैश्चविरेकैश्चविशुद्धस्याप्रमाणतः । भोजनान्तरपानाभ्यांदोषशेषंशमंनयेत्

अर्थ—दीप्ताग्निवाला, बहुत दोषों से युक्त और अतिशय स्निग्ध मनुष्य का शोधन कठिनता से होता है, क्योंकि दीप्ता

ग्नि के कारण औषध को वह शीघ्रही पचालेता है बहुदोप युक्त होने के कारण अल्प औषध कुछ काम नहीं करसक्ती है तथा वमन द्रव्य रूक्ष होनेके कारण अतिस्निग्ध मनुष्यपर कुछ काम नहीं करसक्ती हैं। इससे जो वमनकारक औषध के पान कराने पर उसे वमन न हुई हो तौ उस दिन भोजनादि करा के दूसरे दिन फिर वमनकारक औषपान करावै॥

बहुत दोषो से युक्त दुर्वल मनुष्य का मल सहजही में नहीं निकलसक्ता है। किन्तु दोष के पचने पीछे मल निकलता है। ऐसे रोग को विरेचन औषध देनेपर भी विरेचन न हो तौ फिर विरेचन न देवै परन्तु दस्तावर आहर देकर मलको निकाले

जो रोगी वमन विरेचन द्वारा यथा प्रमाण शुद्ध न हुआ हो तौ फिर ममन विरेचन न देकर पान भोजन के किसी प्रकारान्तर से शेष दोषों का निवारण करै।

मृदुऔषधकाविधान।

दुर्वलंशोधितंपूर्वमल्पदोषश्चमानवम्। अपरिज्ञातकोष्टश्चपाययेतौषधंमृदु॥ श्रेयोमृद्वसकृत्पीतमल्पवाधंविरेचनम्। नचातितीक्ष्णंयत्क्षिप्रंजनयेत्माणसंशयम्॥

अर्थ—जो मनुष्य दुर्वलहो, वा पूर्व में शुद्ध कियाहुआ हो, वा अल्प दोष युक्त हो वा जिस के कोष्ट का हाल मालूम न हो उसे मृदु औषध पान करावै। थोड़ी थोड़ी औषध का वार २ पीना अच्छा है जिससे किसी प्रकार की बाधा या अपकार न हो अत्यन्त तीक्ष्ण औषधका पान कराना ठीक नहीं है जो शीघ्रही प्राणोंको हरणकरलेवै।

दुर्वलोऽपिमहादोषोविरेच्योबहुशोऽल्पशः। मृदुभिर्भेषजैर्दोषान्हन्युर्येनमनिर्हृताः॥ यस्योर्द्ध्वंकफसंसृष्टंपीतंयात्यनुलोमिकम्। वमितंकवलैःशुद्धैर्लङ्घितंपाययेत्तम्॥ निवद्धेऽल्पेचिराद्दोषेस्रवत्युष्णंपिवेज्जलम्। तेनाध्मानंसतृट्छर्दिर्विवन्धश्चैवशाम्यति॥ भेषजंदोषरुद्धंचेन्नोर्द्ध्वंनाधःप्रवर्तते। सोद्गारंसांगशूलंवास्वेदंतत्रावचारयेत्॥ सुविरिक्तस्तुसोद्गारमाद्येवौषधमुल्लिखेत्। अतिप्रवर्तनजीर्णेसुशीतैस्तम्भयेद्भिषक्॥

अर्थ....महा दोष वाले दुर्वल रोगीको थोड़ा २ विरेचन कई वार करके पान करावै। क्योंकि औषध की मृदुता के कारण दोष न निकल कर प्राणों को नष्ट कर देते हैं॥ ऊर्ध्व मार्गके कफावृत होनेसे वेग ऊपरको न जाय और अनुलोमगती को प्राप्त हो तौ कवल द्वारा वमन की इच्छाको रोककर लंघन करा के कफके क्षीण होनेपर वमन करावै। जो दोष थोड़ा २ विवद्धतासे वा देरमें निकलै तौ उष्ण जलका पान करावै। इससे अफरा, तृषा, वमन और विवन्ध सब दूर होजाते हैं।

दोषों से रुकी हुई औषध जो न ऊपरको जा सके न नीचे को जा सकै तथा डकार और अंगशूल होने लगै तौ पसीने देवै। अच्छी तरह विरेचन होने के पीछे जो डकार में औषधकी गंध आती हो तो शीघ्र

ही आमाशयस्थ औषधको वमन द्वारा निकालदे जो औषध के पचने पर अधिक दस्त आने लगें तो शीतल क्रिया से शान्त करे

कदाचित्श्लेष्मणारुद्धंतिष्ठत्युरसिभेषजम् । क्षीणेश्लेष्मणिसायाह्नेरात्रौवातत्प्रवर्तते ॥ रूक्षानाहारयोर्जीर्णेविष्टभ्योर्द्ध्वगतेऽपिवा । वायुनाभेषजेत्वन्यत्सस्नेहलवणंशृतम् ॥ तृण्मोहभ्रममूर्च्छाद्याःस्युर्जीर्यतिहिभेषजे । पित्तघ्नंस्वादुशीतञ्च भेषजंतत्रशस्यते ॥

अर्थ—यदि औषध कफसे रुककर वक्षःस्थलमें ठहर जाय और सन्ध्या के समय वा रात्रि में कफके क्षीण होने पर निकले रूक्षता के कारण वा भोजन न करने के कारण, औषध के जीर्ण होने पर वा विना जीर्ण हुएही गुडगुडाहट करके वायुके कारण ऊ॰ को जाय तो फिर उसी औषध को स्नेह और लवण के साथ पान करावै । औषध के पचने पर यदि तृषा, मोह, भ्रम और मूर्च्छादिक हों तो स्वादु शीतल और पित्तनाशक औषध पान करावे ।

लालाहृल्लासविष्टम्भशीतहर्षाःकफावृते भेषजेतत्रतीक्ष्णोष्णंकटवादिकफनुद्धितम् सुस्निग्धंक्रूरकोष्ठञ्चलंघयेदविरेचितम् । तेनास्यस्नेहजःश्लेष्मासंगश्चैवोपशाम्यति

अर्थ—कफावृत रोग में लालास्राव, हृल्लास, विष्टंभता, रोमहर्षण और शीतहो तो तीक्ष्ण, उष्ण और कफनाशककट्वादि औषध देवे । अच्छी तरह से स्निग्ध हुए मनुष्य को विरेचन न देकर लंघन करावे इस से उसका स्नेहजन्य कफ और मल की विबन्धता दूर होजायगी ।

वस्तिकर्मके योग्यरोगी ॥

रूक्षबह्वनिलक्रूरकोष्ठव्यायामशूलिनाम् दीप्ताग्नीनाञ्चभेषज्यमविरेच्यैवजीर्यति॥ तेभ्योवस्तिपुरादत्वापश्चाद्दद्याद्विरेचनं वस्तिप्रवर्तितंदोषंहरेच्छीघ्रंविरेचनम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य रूक्ष, अत्यन्त वात प्रकृतिवाला, क्रूरकोष्ठ, व्यायामशील[कसरत कुश्ती करनेवाला] शूलरोगी और दीप्ताग्निवालाहो तो विरेचनकर्त्ता औषध उस को विना विरेचन कराये ही पचजाती है इसलिये उसे पहिले वस्तिकर्म करा के पीछे विरेचन देवे । वस्तिसे प्रवृत्त हुएदोषों को विरेचन शीघ्रही निकाल देता है ॥

स्नेहन के योग्य रोगी ॥

रूक्षाशनाःकर्मनित्यायेनरादीप्तपावकाः तेषांदोषा क्षयंयान्तिकर्मवातातपाग्निभिः । विरुद्धाध्यशनाजीर्णदोषानपिस हन्तिते॥ स्नेह्यास्तेमारुताद्रक्ष्यानान्या धौतान्विशोधयेत् ॥

अर्थ—रूक्षभोजी, नित्यप्रति परिश्रम करने वाले,दीप्ताग्नि वाले मनुष्यों के दोष, परिश्रम, वायु, धूप और अग्निसे क्षय होजाते हैं । तथा इन्हीं कारणों से विरुद्ध भोजन, अध्यशन और अजीर्ण भोजनादि से उत्पन्न हुए दोष भी मिटजाते हैं । ऐसे मनुष्यों को स्नेहन देना उचित है क्योंकि वायु से इनकी रक्षा कर्त्तव्य है । तथा किसी विशेष रोग के बिना हुए विरेचन देना भी ठीक नहीं है ॥

नातिस्निग्धशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम्।
स्नेहोत्क्लिष्टशरीरायरूक्षंदद्याद्विरेचनम्।

अर्थ—जिसका शरीर अति स्निग्ध नहो अर्थात् रूक्षहो उसे स्नेह विरेचन देवै अथवा यों कहो कि अति स्निग्ध देह वाले को स्नेह विरेचन न देवै। जो स्नेह से उत्क्लिष्ट हो उसे रूक्ष विरेचन देवै॥

एवंज्ञात्वाविधिंधीरोदेशकालप्रमाणवित्॥
विरेचनंविरेच्येभ्यःप्रयच्छन्नापराध्यति
विभ्रंशोविषवद्यस्यसम्यग्योगोयथामृतम्
कालेऽवश्यंपेयश्चतस्माद्यत्नात्प्रयोजयेत्

अर्थ—इन सब ऊपर लिखी हुई बातों को अच्छी तरह समझकर देश काल और प्रमाण के अनुसार जो वैद्य विरेचन के योग्य मनुष्य को विरेचन देता है वह अपराध का भागी नहीं होता है।

जो औषध अन्यथा प्रयुक्त किये जाने पर विषके समान और सम्यक् प्रयोग किये जाने पर अमृत के समान फल दिखाती है ऐसी औषध को ठीक समय पर बहुत सोच विचार के साथ पान करना चाहिये।

उपसंहार।

द्रव्यप्रमाणन्तुयदुक्तमस्मिन्मध्येषुतत्कोष्ठवयोबलेषु।तन्मूलमालम्ब्यभवेद्विकल्प्यं तेषांविकल्प्योऽभ्यधिकोनभावः॥

अर्थ—इस ग्रन्थ में जिस द्रव्य का जो प्रमाण कहा गया है। कोष्ठ, वय और बल के अनुसार उसका प्रयोग करना चाहिये इसी कोष्ठ, वय और बलके भेद से मात्रा में घटा बढी होती है।

मान परिभाषा॥

षड्वंश्यस्तुमरीचिःस्यात्षण्मरीच्यस्तुसर्षपः॥अष्टौतेसर्षपारक्तिस्तण्डुलश्चापितद्द्वयम्।धान्यमाषोभवेदेकोधान्यमाषद्वयंयवः
अण्डिकास्तेतुचत्वारस्ताश्चतस्रस्तुमाषकः
हेमश्चधानकश्चोक्तोभवेच्छाणस्तुतेत्रयः॥
शाणौद्वौद्रंक्षणंविद्यात्कोलंबदरमेवच ।
विद्यात्द्वौद्रंक्षणंकर्षंसुवर्णंचाक्षमेवच ॥
विडालपदकन्तचपिचुम्पाणितलन्तथा ।
तिन्दुकञ्चविजानीयात्कवलग्रहमेवच ॥
द्वेसुवर्णेपलार्धंस्याच्छुक्तिरष्टमिकातथा ।
द्वेपलार्धेपलंमुष्टिःप्रकुञ्चोऽथचतुर्थिका ॥
बिल्वंषोडशिकश्चाम्रद्वेपलेप्रसृतम्विदुः ।
अष्टमानन्तुविज्ञेयंकुडवौद्वौतुमानिका॥
पलञ्चतुर्गुणंविद्यादञ्जलिंकुडवन्तथा
चत्वारःकुडबाःप्रस्थश्चतुष्प्रस्थमथाढकम्
पात्रंतदेवविज्ञेयंकंसःप्रस्थाष्टकन्तथा॥
कंसश्चतुर्गुणोद्रोणःचार्मणंलल्वनञ्चतत्।
सएवकलशःख्यातोघटमुन्मानमेवच ॥
घटन्तुद्विगुणंसूर्पोविज्ञेयःकुम्भएवच ॥
गोणीशूर्पद्वयंविद्यात्खारींभारीन्तथैवच
द्वात्रिंशत्विजानीयाद्वाहंशूर्पाणिबुद्धिमान्
तुलांशतपलंविद्यात्परिमाणविशारदः ।
शुष्कद्रव्येष्विदंमानमेवमादिप्रकीर्तितम्
द्विगुणंतद्द्रवेष्विष्टंतथासद्योद्धृतेषुच ॥
यद्विमानन्तुलाप्रोक्तापलंवातत्प्रयोजयेत्
अनुक्तेपरिमाणेतुतुल्यंमानंप्रकीर्तितम् ॥

अर्थ—छः वंशी की एक मारीचि होती है (घर के जाली झरोखों में जो धूप आती है उस धूप में जो रज के कण से

उडते दिखाई देते हैं उसे वंशी वा त्रसरेणु कहते हैं, तीस परिमाणु की एक वंशी वा त्रसरेणु होता है) छः मरीची की एक सरसों होती है । आठ सरसों की एक रत्ती वा तण्डुल । दो तण्डुल का एक धान्य माषक, दो धान्य माषक का एक जौ, चार जौ का एक अण्डका, चार अंडका का एक मासा वा हेम, वा धानक होता है ॥ तीन माषक का एक शाण, दो शाण का एक द्रंक्षण, वा कोल वा वदर होता है । दो द्रंक्षण का एक कर्ष वा सुवर्ण, वा अक्ष, वा विडालपदक वा पिचु वा पाणितल, वा तिंदुक, वा कवलग्रह होता है ॥ दो सुवर्ण का एक पलार्द्ध, वा शुक्ति वा अष्टमिका होता है । दो पलार्ध का एक पल या मुष्टि, वा प्रकुञ्च, वा चतुर्थिका, वा विल्व, वा षोडशिका, वा आम्र होता है । दो पलका एक प्रसृत, दो प्रसृत का एक अष्टमान वा कुडव, दो कुडव का एक मानिका, चार पलका एक अञ्जली वा कुडव, चार कुडवका एक प्रस्थ चारप्रस्थका एक आढक, वा पात्र, आठ प्रस्थ का एक कंस चार कंस का एक द्रोण, वा अर्मण, वा लल्वन, वावट या कलश, वा उन्मान होताहै। दो घटका एक सूर्प वा कुम्भ होताहै । दो सूर्प का एक गोणी, वा खारी, वा भारी होता है । बत्तीस सूर्प का एक वाह और सौपल की एक तुला होती है ॥

यह शुष्क द्रव्यों का मान वर्णन किया गया है द्रव अथवा ताजी लिये हुए द्रव्य इस तोल से दुगुने लिये जाते हैं । परन्तु जिनकी तोल पल से तुला पर्य्यन्त लिखी है वे उतनीही ली जाती है जहां द्रव्यों का परिमाण नहीं लिखा गया है वहां औषध समान भाग लेनी चाहिये । [एक कुडव अर्थात् आधसेर तक गीले द्रव्योंका द्विगुण ग्रहण न करे । कुडव से ऊपर गीले द्रव्य दूने लेने चाहिये । घी, खांड, गुड, शहत, दूध, तैल, और मद्य आदि के पक्षमें कुडव आठ पलका ग्रहण किया जाता है ना- रियल के सम्बन्ध में भी यह बात है)

द्रवकार्येऽपिचानुक्तेसर्वत्रसलिलंस्मृतम्।
यतश्चपादनिर्देशश्चतुर्भागस्ततश्चसः ॥
जलस्नेहौषधानान्तुप्रमाणंतत्रनेरितम् ॥
तत्रस्यादौषधात्स्नेहः स्नेहात्तोयंचतुर्गु-
णम्॥

अर्थ—पाचनादि स्थल में जो द्रव द्रव्यों का नाम न लिखा गया हो तो जल ग्रहण करना चाहिये । पादनिर्देश से चौथाई ग्रहण किया जाता है । जिस स्थान पर जल, औषध और स्नेह का प्रमाण न दिया गया हो वहां औषध से चौगुनास्नेह और स्नेह से चौगुना जल डाले ॥

स्नेहपाक के भेद ॥

स्नेहपाकस्त्रिधाज्ञेयोमृदुर्मध्यःखरस्तथा।
तुल्येकल्केननिर्य्यासेभेषजानांमृदुःस्मृतः॥
सम्पाकइवनिर्य्यासेमध्योदर्वींविमुञ्चति
शीर्य्यमाणेतुनिर्य्यासेयवर्त्तमानेखरस्तथा॥

अर्थ—स्नेह पाक तीन प्रकारका होता है, यथा—मृदु, मध्य और खर । जहां

स्नेह की गाद कल्ककी तरह पतली होती है, वह मृदुपाक होता है । जहां स्नेह की गाद अमलतास के गूदे के सदृश गाढी होती हैं वह मध्यपाक है । जो गाद कलछी से दूर होजाय परन्तु कुछ चिप चिपाहट सा रहे वह खरपाक है ।

स्नेहपाकोंकी प्रयोग विधि ।

खरोऽभ्यङ्गेस्मृतःपाकोमृदुर्नस्तःक्रियासु च॥ मध्यपाकन्तुपानार्थेवस्तौचविनियोजयेत् ।

अर्थ—स्नेह का खरपाक अभ्यंगमें, मृदुपाकनस्यक्रियामें और मध्यपाक पीने और वस्तिकर्म में प्रयुक्त किया जाता हैं ॥

मान के भेद ।

मानञ्चद्विविधंप्राहुःकालिङ्गंमागधंतथा कालिङ्गान्म गधंश्रेष्ठमेवंमानाविदोविदुः ॥

अर्थ....मान दो प्रकारका होताहैं । यथा कालिंग और मागध । परन्तु इन दोनों में मागध मान श्रेष्ठ है ॥

इस ग्रन्थमें कालिंगमान नहीं लिखाहैं इसे हम भावप्रकाश से उद्धृत करते हैं ॥

कालिंग मान ।

यवोद्वादशभिर्गौरसर्षपैःप्रोच्यतेबुधैः । यवद्वयेनगुंजास्यात्त्रिगुंजोवल्यउच्यते ॥ मापोगुंजाभिरष्टाभिःसप्तभिर्वाभवेत्क्वचित् । चतुर्भिर्मापकैःशाणःसनिष्कष्टंक एवच । गद्याणोमापकैःपड्भिःकर्पःस्याद्दशमापकः॥ चतुःकर्षैपलंप्रोक्तंदशशाणामितंबुधैः ॥ चतुःपलश्चकुडवःप्रस्थाद्याःपूर्ववन्मताः ।

अर्थ—बारह सफेद सरसों का एक जौ होता है । दो जौ की एक गुंजा या रत्ती होती हैं । तीन रत्ती की एक वल्ली, आठरत्तीका एक मापा, तथा कोई २ सातरत्ती का भी मापा मानतेहैं । चार मासेका एक शाण होता हैं उसी को निष्क या टंक भी कहते हैं । छः मासेका एक गद्याणक होता है । दस मासे का एक कर्ष, चार कर्ष का एक पल अर्थात् दस शाण होते हैं । तथा चार पलका एक कुडव होता है । प्रस्थ से ऊपर की तोल मागध परिभापा के सदृश होती है ॥

कल्पस्थान का संक्षिप्तवर्णन ।

कल्पार्थःशोधनसंज्ञापृथग्घेतुःप्रवर्तने । देशादीनांफलादीनांगुणायोगशतानिपट् विकल्पहेतुर्नामानितीक्ष्णमध्याल्पलक्षणम् । विधिश्चावस्थिकोमानंस्नेहपाकञ्च दर्शितम् ॥

अर्थ—इस कल्पस्थान में कल्प के विषय, शोधनकी संज्ञा, शोधन के पृथक् २ हेतु, देशादि के गुण, मेनफलादि द्रव्यों के गुण, विरेचन के छःसौ योग, विकल्प के हेतु, नाम, तीक्ष्ण, मध्य और अल्प विरेचन के लक्षण, आवस्थिक विधि, द्रव्योंका मान तथा स्नेहपाक का वर्णन किया गया है॥

इतिश्रीभापाटीकान्वितायांअग्निवेश विरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायां कल्पस्थानेदन्तीद्रवन्तीकल्पोनाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इतिकल्पस्थानं समाप्तम् ॥

॥ श्रीहरिर्वन्दे ॥

॥श्रीवृन्दावनविहारिणेनमः॥

॥अथसिद्धिस्थानम्॥

॥प्रथमोऽध्यायः

अथातःकल्पनासिद्धिंव्याख्यास्यामं इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम कल्पनासिद्धिनामक अध्याय की व्याख्या करेंगे ।

अग्निवेश का प्रश्न ।

काकल्पनापञ्चसुकर्मसूक्ता क्रमश्चकःकिञ्चकृताकृतेषु ॥ लिङ्गंतथैवातिकृतेषुसंख्याकाकिंगुणाःकेपुचकाचवस्तिः ॥ किंवर्जनीयं प्रतिकर्मकाले कृते क्रियान्वापरिहारकालः । प्रणीयमानश्चनयातिवस्तिःकेनेतिशीघ्रंसुचिराच्चकेन ॥ साध्या गदाःस्वैःशमनैश्चकेचित् कस्मात्प्रयुक्तैर्नशमं व्रजन्ति ॥ प्रचोदितःशिष्यवरेणसम्यक् इत्यग्निवेशेनभिषग्वरिष्टः ॥ पुनर्वसुस्तन्त्रविदाहतस्मै सर्वप्रजानांहितकाम्ययेदं ॥

अर्थ....अग्निवेशने नीचे लिखे हुए बारह प्रश्न आत्रेय भगवान् से किये, यथा—(१) वमन, विरेचन, स्वेदन, नस्य और वस्ति इन पांचकर्मोंकी प्रक्रियाक्याहैः (२) इन सब कर्मोंमें आहारादि का नियम क्या है? (३) सम्यक् प्रयुक्त असम्यक् प्रयुक्त अतिप्रयुक्त पंचकर्मों के लक्षण क्या हैं? (४) संख्या क्या है ? (५) गुण क्या हैं ? (६) वस्ति क्या है ? (७) प्रतिकर्म काल में वर्जनीय क्या है ? (८) वमन विरेचन के पीछे स्वाभाविक आहार विहारका कितने दिन तक परित्याग करना चाहिये? (९) वस्ति किस तरह से प्रवेश नहीं कर सक्ती है ? (१०) वस्तिकिसतरह शीघ्र प्रत्यागमन करती है ? (११) किसतरह देर में प्रत्यागमनकरती है? (१२) कौन कौन से साध्यरोग उनके नष्ट करने वाली औषधियों से भी शान्त नहीं होते हैं ? ॥

अग्निवेश के इन प्रश्नों को सुनकर महर्षि आत्रेय ने संसारके हितकी कामना से नीचे लिखा हुआ उत्तर दिया ।

स्वेदनकालका निर्णय ।

त्र्यहावरंसप्तदिनंपरन्तुस्निग्धोनरःस्वेदयितव्यउक्तः ॥ नातःपरंस्नेहनमादिशन्ति सात्म्योभवेत्सप्तदिनात्परन्तु ॥

अर्थ—यह बात सूत्रस्थान के स्नेहाध्याय में वर्णन करदी गई है कि मृदु कोष्ठ वाला मनुष्य थोडासाही स्नेह सेवन करने से तीन दिन में स्निग्ध होजाता है, यह स्नेह मात्रा अधम है । तथा क्रूर कोष्ठवाला मनुष्य सात दिन तक स्नेह सेवन करने से स्निग्ध होता है यह स्नेह की उत्तम मात्रा है । सात दिवस से पीछे रोगी को स्वेदन देना चाहिये इससे पीछे स्नेहन कर्म करना ठीक नहीं है क्योंकि सात दिन पीछे स्नेह सात्म्य होजाता है

स्नेहन स्वेदन का फल ॥

स्नेहोऽनिलंहन्तिमृदुंकरोतिदेहंमलानांविनिहन्तिसङ्गम्॥स्निग्धस्यसूक्ष्मेष्वयनेषुलीनंस्वेदस्तुदोषंनयतिद्रवत्वम् ॥

अर्थ—स्नेह वातको नष्ट करता है, देह को मृदु करता है, और मलकी विबद्धता को दूर करता है। स्वेदन स्निग्ध व्यक्ति के सूक्ष्म स्रोतःसमूहों में लीन दोषों को द्रव कर देता है ॥

ग्राम्योदकानूपरसैःसमांसैरुत्क्लेशनीयःपयसाचवम्यः ॥रसैस्तथाजाङ्गलजैःसयूषैःस्निग्धःकफावृद्धिकरैर्विरेच्यः ॥श्लेष्मोत्तरश्छर्दयतिह्यदुःखंविरिच्यतेमन्दकफस्तुसम्यक्॥अधःकफेऽल्पेवमनंनियच्छेद्विरेचनंवृद्धकफेतथोर्ध्वम्

अर्थ—जिसको वमन करानी हो उसे पहिले ग्राम्य, औदक, और आनूप मांस और मांसरस तथा दूध का सेवन करा के कफको उत्क्लेशित करना चाहिये जिससे अपने आप वमन होजाय। इसी तरह जिसे विरेचन देना हो उसे कफको न बढानेवाले जांगल मांसरस और यूषद्वारा स्निग्ध करना चाहिये। क्योंकि ग्राम्यादिके मांस सेवन से कफ के बढ जाने के कारण वमन सहज में होजाती है और मन्द कफवाले को विरेचन सहज में हो जाता है कफके थोडे होने पर वमन कारक औषध नीचे को जाती है इसी तरह से कफ के अधिकहोने पर विरेचनकर्ता औषध ऊपर को जाती है ॥

स्निग्धायदेयंवमनंयथोक्तंवान्तश्चपेयादिरनुक्रमश्च । स्निग्धस्यचस्विन्नवतश्चकार्यंविरेचनंयोग्यतमंततश्च ॥

अर्थ—जिस मनुष्य को वमन देना होय उसको प्रथम स्निग्ध करले पीछे अच्छी तरह वमन होने पर पेयादि क्रम का पालन करावै। इसी तरह जिसको विरेचन देना होय उसे प्रथम स्नेहन और पीछे स्वेदन देकर योग्यतम विरेचन देवै ॥

पेयांविलेपीमकृतंकृतंचयूषंरसंत्रीर्द्विरथैकशश्च । क्रमेणसेवेतविशुद्धकायःप्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्धः ॥

अर्थ—उत्तम, मध्यम, और अधम तीन प्रकार का शोधन होता है। इन तीनों प्रकार से शुद्ध शरीर वाला मनुष्य क्रम से पेया, विलेपी, कृताकृत यूष और मांसरस का तीन बार, दोवार, वा एकवार करके सेवन करै ॥

पेयादि से अन्तराग्नि की ॥
वृद्धि का दृष्टान्त ॥

यथाणुरग्निस्तृणगोमयाद्यैःसन्धुक्ष्यमाणोभवतिक्रमेणमहान्स्थिरःसर्वसहस्तथैवशुद्धस्यपेयादिभिरन्तराग्निः ।

अर्थ—जैसे अणुमात्र अग्नि प्रथम तिनुके, फिर उपले और फिर काठ में लग कर महान् दृढ और सर्वसह होजाती है उसी तरह शुद्ध मनुष्य की अन्तराग्नि क्रम से पेयादि द्वारा वढाई हुई महान् दृढ और सबको पचाने वाली होजाती है ('सर्वसहः, और' सर्वपचः, दोनों पाठहैं)

वमन विरेचन के वेग ॥

जघन्यमध्यमवरेतुवेगाःचत्वारइष्टावमने षडष्टौ । दशैवतेद्वित्रिगुणाविरेकेप्रस्थस्तथाद्वित्रिचतुर्गुणश्च ।

अर्थ—वमन के अधम वेग चार, मध्यम छः और उत्तम वेग आठ होते हैं, इसी तरह विरेचन के अधम वेग दस, मध्यम बीस और उत्तम तीस वेग होते हैं, वान्त द्रव्य का प्रमाण एक प्रस्थ होने से उत्तम, पौन प्रस्थ होने से मध्यम और आधा प्रस्थ होने से अधम मात्रा होती है । इसी तरह विरेचन द्वारा निकले हुए मलका प्रमाण दो प्रस्थ हो तौ अधम, तीन हो तौ मध्यम और चार प्रस्थ हो तौ उत्तम होता है [शिवदास लिखते हैं कि प्रस्थ साढे तेरह पल का होताहै]

वमनविरेचनकीअवधि ॥

पित्तान्तमिष्टंवमनंतथोर्ध्वमधःकफान्तंचविरेकमाहुः ॥

अर्थ—जवतक वमन में पित्त न आने लगे तवतक वमन कराना ठीक है और जवतक मल में कफ का दर्शन न हो तब तक विरेचन कराना उचित है ।

वमनविरेचनमेंप्रथमवेगोंकानिषेध ।

द्वित्रीनसविट्कानपनीयवेगान् ॥ पेयंविरेकेवमनेतुपीतम् ॥

अर्थ—विरेचन के वेगोंको उक्त संख्या में औषध के पीतेही जो दो तीन वेग होते हैं वे गिनेनही जाते हैं इसीतरह वमनवेगों मे भी पहिले दो तीन वेग नहीं गिनेजाते हैं जिन में पीहुई औषध निकलती है ।

सम्यग्वामितकेलक्षण ।

क्रमात्कफःपित्तमथानिलश्च यस्यैतिसम्यग्वमितःसतुस्यात् ॥ हृत्पार्श्वमूर्धेन्द्रियमार्गशुद्धौतथालघुत्वेऽपिचलक्ष्यमाणे ॥

अर्थ—क्रम से कफ, पित्त और डकार आवें तौ समझना चाहिये कि वमन ठीक हुई है । तथा वमन के ठीक होनेपर हृदय पसली, मूर्द्धा, इन्द्रियगण और स्रोतःसमूह शुद्ध होजातेहैं और देहभी हल्की होजातीहै ।

असम्यग्वमनके लक्षण ।

दुश्छर्दितेस्फोटककोठकण्डू । हृत्खाविशुद्धिर्गुरुगात्रताच ॥

अर्थ—जो वमन ठीक नहीं हुई हो तो फोडे, पित्ती, खुजली, हृदय की अशुद्धि, इन्द्रियों की अशुद्धि और देहमें भारापन होताहै

अतिवमन के लक्षण ।

तृण्मोहमूर्च्छानिलकोपनिद्रा ॥ बलादिहानिर्वमनेऽतिचस्यात् ॥

अर्थ—वमन के अत्यन्त होने से तृषा मोह, मूर्च्छा, वातकोप, निद्रा हानि, और बलहानि ये लक्षण होते हैं ॥

सम्यग्विरिक्त के लक्षण ॥

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसंप्रसादौलघुत्वमूर्जोऽग्निरनामयत्वम् ॥ प्राप्तिश्चविट्पित्तकफानिलानाम् । सम्यग्विरिक्तस्यभवेत्क्रमेण ॥

अर्थ—सम्यग्विरेचन होने पर स्रोतःसमूह की विशुद्धि, इन्द्रियों में प्रफुल्लता, देह

में हलकापन, बलवृद्धि, अग्निकी तीक्ष्णता, अनारोग्यत्व, तथा विष्ठा, पित्त, कफ और अधोवायु का अच्छी तरह निःसरण होताहै

असम्यग्विरिक्तके लक्षण।

स्यात्श्लेष्मपित्तानिलसंमकोपः सादस्तथाग्नेर्गुरुताप्रतिश्या। तन्द्रातथाछर्दिररोचकश्च वातानुलोम्यंनचदुर्विरिक्ते।

अर्थ—सम्यग्विरेचन न होने पर कफ पित्त और वात का प्रकोप होता है। अग्नि की मन्दता, देह का भारापन, प्रतिश्याय तन्द्रा, वमन अरुचि, और वात का प्रतिलोम होता है।

अतिविरिक्तके लक्षण।

कफास्रपित्तक्षयजाऽनिलोत्थाः सुप्त्यङ्गमर्दक्लमवेपनाद्याः॥ निद्रावलाभावतमःप्रलापःसोन्मादहिक्काश्चविरेचिते ऽति॥

अर्थ—अत्यन्त विरेचन होने पर कफ, रक्तपित्त, क्षय और वात से उत्पन्न होने वाले रोग होते हैं। तथा सुप्ति, अंगमर्द, क्लान्ति, कम्पन, निद्राभाव, बलाभाव, तमः प्रवेश, उन्माद और हिचकी ये उपद्रव होतेहैं।

संसृष्टभक्तंनवमेऽह्निसर्पिस्तंपाययेताप्युत्वासयेद्वा। द्द्यात्र्यहात्त्रातिवुभुक्षिताय तैलाक्तगात्रायततोनिरूहम्॥ प्रत्यागते मांसरसेनभोज्यःसमीक्ष्यदोषवलंयथाईम्॥नरस्ततोनिश्यनुवासनार्होनात्याशितःस्यादनुवासनीयः॥

अर्थ—सम्यक् वमन विरेचन के पीछे क्रम से पेयादि का सेवन कराके नवें दिन भात का भोजन कराके घृत पान करावै अथवा अनुवासन देवै। तदनन्तर तीन दिन पीछे शरीर को अच्छी तरह से तैल से सिक्त करके कुछ खवाकर निरूहण वस्ति देवै। निरूहण के प्रत्यागमन करने पर दोष और बलकी परीक्षा करके जांगल मांसरस का भोजन करावे। और अनुवासन के योग्य होने पर उसीदिन रात्रि के समय थोडा भोजन कराके अनुवासन वस्ति देवै॥

शीतेवसन्तेचदिवानुवास्योरात्रौशरद्ग्रीष्मघनागमेषु।तानेवदोषान्परिरक्षितायोस्नेहस्यपानेपरिकीर्तिताःप्राक्॥

अर्थ—शीत और वसन्त ऋतु में दिनके समय और शरद, ग्रीष्म और वर्षा में रात्रि के समय अनुवासन देनी चाहिये। स्नेहपान में जो २ दोष निरूपण कियेगये हैं वेही सब अनुवासन में भी लागने चाहिये॥

प्रत्यागतचाप्यनुवासनीयेदिवाप्रदेयंव्यपितायभोज्यम्।सायञ्चभोज्यंपरतस्त्र्यहेवाऽत्र्यहेऽनुवास्योऽहनिपञ्चमेवा॥

अर्थ—अनुवासनीय तेल के प्रत्यागमन करने पर रात्रि में उपवास कराके प्रातः काल भोजन करावै। और अनुवासनीय तैल के दिन में प्रत्यागमन करने पर रात्रि में भोजन करावे, पश्चात् तीन दिन पीछे वा पांच दिन पीछे अनुवासन देवै॥

त्र्यहेत्र्यहेवाप्यथपञ्चमेवाद्द्यान्निरूहादनुवासनंवा। एकंतथात्रीनकफजेविकारेपित्तात्मकेपञ्चतुसप्तवापि॥ वातेनवैकादशवापुनर्वावस्तीनयुग्मानकुशलोविदध्यात्

अर्थ—इस तरह दोषों के अनुसार निरूहण से दो दिन पीछे, तीन दिन पीछे अथवा पांच दिन पीछे, अनुवासन वस्ति देवे। कफज विकार में एक वा तीन वस्ति, पित्तज विकार में, पांच वा सात, वातज विकार में नौ वा ग्यारह वस्ति देवै। इस तरह ऊना वस्ति देवे जैसे एक, तीन, पांच, सात। परन्तु दो चार, छः आठ आदि न देवै।

नरोविरिक्तस्तुनिरूहदानम्। विवर्जयेत् सप्तदिनान्यवश्यम्॥ शुद्धोविरेकेनानिरूहदानम्। तञ्चास्तशून्यंविकृषेच्छरीरम्

अर्थ—विरेचन कराने के पीछे सात दिन तक निरूहण वस्ति देना ठीक नहीं है क्योंकि विरेचन द्वारा शुद्ध हुए मनुष्य को निरूहण का देना उस के शून्य शरीरका आकर्षण कर लेता है।

वस्ति के गुण॥

वस्तिर्वयस्थापयितासुखायुर्बलाग्निमेधास्वरवर्णकृच्च। सर्वार्थकारीशिशुवृद्धयूनाम्। निरत्ययःसर्वगदापहश्च। विट्श्लेष्ममूत्रानिलपित्तकर्षी स्थिरत्वकृत् शुक्रसुतप्रदश्च॥

अर्थ—वस्ति वय को स्थापित करती है सुख, आयु, बल, अग्नि, मेधा, स्वर और वर्ण को बढाती है। बालक, वृद्ध और युवा पुरुषों के सम्पूर्ण कार्य करनेवाली है। इसमें कोई उपद्रव नहीं होता है यह सम्पूर्ण रोगों के नाश करनेवाली है। विष्टा पित्त, मूत्र, वायु और कफ को निकालती है दृढता बढाती है, वीर्य और सन्तान के देनेवाली होती है॥

निरूहणवस्तिके गुण।

विद्वत्कृस्थितदोषचयंनिरस्य। सर्वान्विकारानशमयेन्निरूहः॥ देहेनिरूहेणविशुद्धमार्गेसस्नेहनंवर्णबलप्रदं

अर्थ—निरूहवस्ति संपूर्ण देहके दोषों को निकालकर सम्पूर्ण विकारों को शान्त करदेती है। निरूहण द्वारा स्रोतःसमूह के शुद्ध होने पर स्नेहन कर्म कियेजानेपर वर्ण और बल बढता है।

अनुवासन के गुण।

नान्वासनात्किञ्चिदिहास्तिकर्मपरंविशेषेणसमीरणान्ते। स्नेहनरौक्ष्यंलघुतांगुरुत्वादौष्ण्याच्चशैत्यंपवनस्यहत्वा॥ तैलंददत्याशुमनःप्रसादंवीर्यंबलंवर्णमथाग्निपुष्टिम्। मूलेनिषिक्तोहियथाद्रुमःस्यान्नीलच्छदःकोमलपल्लवाग्रःकालेमहान् पुष्पफलप्रदश्चतथानरः स्यादनुवासनेन॥

अर्थ—वायु के दूर करने के लियेअनुवासन से अधिक और कोई उत्तम कर्म नहींहै।क्योंकि तेल की चिकनाई से वायुकी रूक्षता, भारापन से लघुता और उष्णता से शीतलता दूर हो जाते हैं॥ तेल शीघ्रही मन को प्रसन्न करता है और वीर्य बल, अग्नि पुष्टाई को बढाता है। जैसे वृक्षकी जड में जल सींचने से उसके पत्ते हरे, शोभायुक्त और पत्तों के अग्रभाग

कोमल होजाते हैं और समय पाकर बड़ी होकर बहुत से फल पुष्प देने लगता है इसीतरह मनुष्यों के लिये अनुवासन क्रियाहैं

स्तब्धाश्चयेसंकुचिताश्चयेऽपि येपङ्गवा येऽपिचरुग्णभग्नः॥ येषांचशाखासुचरन्तिवाताः शस्तोविशेषेणचतेषुवस्तिः॥ आध्मापनेविग्रथितेपुरीषे शूलेचभक्ताभिनन्दनेच। एवंप्रकाराश्चभवान्तिकुक्षौ येचामयास्तेषुचवस्तिरिष्टः।

अर्थ—जो मनुष्यवायुसे स्तब्ध, संकुचित पंगु तथा रोगों से भग्न हैं, जिनके हाथ पावों में वायुविचरती है, उन के लियेवस्ति बहुत हितकारी होती है। जिसको अफरा हो, जिसके विष्टा में गुठले पड गये हों, जिसके शूलहो, जिसकी भोजन में अरुचि हो, तथा जिसकी कुक्षि में अन्यवातज रोग हों उन सब के लिये वस्ति अत्यन्त हित हैं

याश्चस्त्रियोवातकृतोपसर्गाद्गर्भनगृह्णन्तिनृभिःसमेताः॥ क्षीणेन्द्रियायेचनराः कृशाश्चवस्तिःप्रशस्तःपरमश्चतेषु। उष्णाभिभूतेषुवदन्तिशीतान् शीताभिभूतेषुतथासुखोष्णान्॥ तत्प्रत्यनीकौषधसंप्रयुक्तान् सर्वत्रवस्तीनमविभज्ययुञ्ज्यात्॥

अर्थ....जिन स्त्रियों के वातजरोगों के कारण पुरुष के सहवास से गर्भ नही रह सकता है और जो पुरुष क्षीणेन्द्रिय और कृश हैं, उन के लिये वस्ति बहुतही हित है। उष्ण प्रधानरोगों में शीत वीर्य वाली औषधों के योग से और शीताभिभूत रोगों में उष्ण औषधों के योग से वस्ति देवै। अर्थात् जैसा रोग हो उसके प्रतिकूल औषधों के संयोग से वस्ति देवै।

बृंहणवस्ति के अयोग्यव्यक्ति॥

नबृंहणीयान्विदधीतवस्ती न्विशोधनीयेषुगदेषुवैद्यः॥ कुष्ठप्रमेहादिषुमेदुरेषु नरेषुयेचापिविशोधनीयाः॥

अर्थ....वैद्य को उचित है कि जो रोग संशोधन के योग्य हैं उन में बृंहण वस्ति न देवै॥ कुष्ठ और प्रमेहादि रोगों में मेद संसृष्टरोग में तथा अन्य संशोधनीय रोगों में बृंहण वस्ति न देवै॥

संशोधन वस्ति का निषेध।

क्षीणक्षतानाञ्चविशोधनीया नशोषिणांनोभृशदुर्बलानाम्॥ नमूर्च्छितानांविशोधितानाम् येषांञ्चदोषेपुनिबद्धवायु

अर्थ....क्षीणक्षत रोगी, शोषरोगी अत्यन्त दुर्बल, मूर्च्छाग्रस्तरोगी, तथा संशोधित मनुष्य को संशोधन वस्ति न देवे॥ तथा जिनके दोषों में वायु निबद्धहो, उन्हें भी संशोधन वस्ति न देवै॥

वायुजन्य रोगों में वस्तिकीप्रधानता।

शाखागताःकोष्ठगताश्चरोगा। मर्मोर्ध्वसर्वावयवांगजाश्च। येसन्तितेषांनतुकश्चिदन्यो। वायोःपरंजन्मनिहेतुरस्ति॥ विण्मूत्रपित्तादिमलाशयानाम्। विक्षेपसंहारकरःसयस्मात्। तस्यातिवृद्धस्यशमायनान्य द्वस्तेर्नृतेभेषजमस्तिकिञ्चित्तस्माच्चिकित्सार्द्धमितिबुवन्ति॥ सर्वांचिकित्सामपिवस्तिमेके।

अर्थ—जो रोग हाथ पांवों में होते हैं जो रोग कोष्ठ में है, जो मर्म स्थान में है, जो ऊर्ध्वगामी हैं, जो संपूर्ण अंगों में होते है वा अवयवों में होते हैं, ऐसे सब रोगों की उत्पत्ति का कारण वायु ही हैं। वायुही विष्ठा, मूत्र और पित्तादि दोषों का संचय और विक्षेप करती है। इस वढी हुई वायु के शमन करने के लिये वस्तिके अतिरिक्त और कोई औषध ही नहीं है, इस लिये वस्ति को चिकित्सार्द्ध कहते हैं किसी किसी के मत में वस्ति को सम्पूर्ण चिकित्साही कहते हैं।

सम्यक् प्रयुक्त वस्ति के लक्षण।

नाभिप्रदेशंकटिपार्श्वकुक्षिंगत्वाशकृद्दोषचयंविपोत्थ्य। संस्नेह्यकायंसपुरीपदोषः सम्यक्सुखेनेतिचयःसवस्ति॥

अर्थ—नाभि प्रदेश में कमर, पसली और कूख में जाकर मलदोषके समूह को मथित करके तथा शरीर को स्निग्ध करके पुरीष दोष को साथ लेकर लौटती है उसे असम्यक् प्रयुक्त वस्ति कहते हैं। (यहां पाठान्तर भी है) नाभिप्रदेशंचकटीञ्चगत्वा कुक्षिं समालोड्य पुनश्चपार्श्वम्। संस्नेह्य कायं शिथिलांश्चकृत्वा दोषान्पुरीषं प्रथितं विमथ्य॥ स्वसक्तवेगःसपुरीष दोषःप्रत्यागतो वस्तिरतिप्रशस्तः।)

सम्यक्प्रयुक्तनिरूहकेलक्षण।

प्रसृष्टविण्मूत्रसमीरणत्वं। रुच्यग्निवृद्ध्याशयलाघवानिरोगोपशान्तिःप्रकृतिस्थता चबलञ्चतत्स्यात्सुनिरूढलिङ्गम्॥

अर्थ—निरूहणवस्ति के सम्यक् प्रयोग होनेपर मल, मूत्र और अधोवायु का परित्याग होता है रुचि और अग्निकी वृद्धि होती है। आमाशय, ग्रहणी, मलाशय और मूत्राशय में हलकापन होता है॥ रोगों की शान्ति होती है, दोष प्रकृतिस्थ होजाते है और बल भी बढता है॥

असम्यक्निरूहितकेलक्षण।

स्याद्रुक्शिरोहृद्गुदकुक्षिलिङ्गेशोफःप्रतिश्यायविकर्त्तिकाच। हृल्लासिकामारुतमूत्रसंगः॥ श्वासोनसम्यक्चनिरूहितस्य॥

अर्थ—निरूहणवस्तिका सम्यक् प्रयोग न होनेपर शिर, हृदय, गुदा, कूख और लिंग में शूल होता है। सूजन, प्रतिश्याय और विकर्त्तिका होती है। तथा हृल्लास, वातविबन्ध, मूत्रविबन्ध, और श्वास भी उत्पन्न होते हैं,

अतिनिरूहितकेलक्षण।

लिंगंयदेवाभिविरेचितस्य भवेत्तदेवातिनिरूहितस्य॥

अर्थ—जो लक्षण विरेचन के अतियोग के होते हैं, वेही अत्यन्त निरूहित के होते हैं॥

सम्यक्अनुवासितकेलक्षण।

प्रत्येत्यसक्तंसशकृच्चतैलंरक्तादिशुद्धीन्द्रियसंप्रसादः। स्वप्नानुवृत्तिर्लघुताबलञ्चसृष्टाश्चवेगाःस्वनुवासितेस्युः।

अर्थ—सम्यक् अनुवासन होनेपर तेल विना रुकावट के विष्टा को लेकर बाहर

आजाता है । रक्तादिधातु और पांचों बुद्धीन्द्रिय प्रफुल्लित होजाती हैं, निद्रा आजाती है । देह में हलकापन और बल बढता है और मलमूत्रादिकी प्रवृत्ति अच्छी रीति से होती है ॥

असम्यक्अनुवासितकेलक्षण ।

अधःशरीरोदरबाहुपृष्ठपार्श्वेपुरुग्रूक्षखरश्च गात्रमुग्रहाश्चाविण्मूत्रसमीरणानामुअस म्यगेतान्यनुवासितस्य ॥

अर्थ—अनुवासनवस्ति के ठीक न होने पर शरीर के नीचे के भाग में, उदर में बाहु में, पीठ में, और पसलियों में दर्द होता है । शरीर रूखा और खरदरा होजाता है । विष्टा, मूत्र और वायु का विबन्ध होता है ॥

अत्यनुवासितकेलक्षण ॥

हृल्लासमोहक्लमसादमूर्च्छा विकर्त्तिकाचात्यनुवासितस्य ।

अर्थ—अनुवासन वस्ति का अतियोग होने से हृल्लास, मोह, क्लान्ति, अवसाद, मूर्च्छा और पेट में मरोड़ा होता है ॥

यस्येहयामाननुवर्ततेत्रीन्स्नेहान्नरःस्यात् सविशुद्धदेहः।आश्वागतोऽन्यस्तुपुनर्विधेयःस्नेहान्नसंस्नेहयतेह्यतिष्ठन् ॥

अर्थ—अनुवासन का तेल शरीरमें तीन पहर तक रहने से देह शुद्ध होतीहै । तेल के शीघ्र निकल आने पर फिर अनुवासन देना चाहिये, जो तेल शरीर में नहीं ठहरता है वह स्निग्ध नहीं करसक्ता है ।

वस्तियों की संख्या ॥

त्रिंशत्स्मृताःकर्म्मसुवस्तयोहिकालस्ततोऽर्द्धेनततश्चयोगः । सान्वासनाद्वादशवैनिरूहाःप्राक्स्नेहएकःपरतश्चपञ्च ॥ कालेत्रयोन्तःपुरतस्तथैकःस्नेहानिरूहान्तरिताश्चषट्स्युः।योगेनिरूहास्त्रयएवदेयाःस्नेहाश्चपञ्चैवपरादिमध्याः ॥

अर्थ—कर्मवस्ति तीस हैं कालवस्ति पन्द्रह हैं । अनुवासन और निरूहण बारह २ हैं इनवस्तियों के देने का क्रम यह है कि ये वस्तियां स्वेदन, वमन, विरेचन और नस्य कर्म के भीतरही इस रीति से दी जाती हैं कि स्नेहन और स्वेदन के पीछे एक स्नेह वस्ति देकर वमन करावै, फिर एक स्नेहन वस्ति देकर विरेचन करावै पीछे एक वार स्नेह वस्ति और एक वार निरूहवस्ति देकर इस क्रम से बारह निरूह वस्ति और बारह स्नेह वस्ति देकर नस्यकर्म करावै । पीछे पांच स्नेहन वस्ति देवै तथा एक स्नेहन वस्ति पहिलेदी गई थी इसतरहसब मिलकर तीसवस्ति हुई इनको कर्मवस्ति कहतेहैंवस्ति के ऊपर वस्ति न देनी चाहिये, एक २ वस्ति के पीछे पेयादि क्रम का पालन कराता रहै । कालवस्ति पन्द्रह होती हैं, ये वर्षा ऋतु में वायु की शान्ति के लिये दी जातीहैं।कालवस्तिके प्रयोगकी यह रीति है कि प्रथमही एक स्नेह वस्ति देवै,फिर एक निरूह इसी क्रम से बारह वस्ति देवै, अन्त में तीन स्नेहन वस्ति एक के ऊपर एक देवै । योग वस्ति आठ

होती हैं, ये खाली कारण के लिये दी जाती हैं। इस में पहिले और पीछे एक एक अनुवासन वस्ति देवै बीच में तीन निरूहण और तीन अनुवासन देवै ॥

त्रीन्पञ्चवाप्युश्चतुरोऽथषड्वावाताधिके भ्यस्त्वनुवासनीयान्। स्नेहान्प्रदाया शुभिषग्विदध्यात्स्रोतोविशुद्ध्यर्थमतो निरूहम् ॥

अर्थ– वाताधिक्य रोगों में तीन, पांच, चार या छः अनुवासन वस्ति देकर स्रोतों के शुद्ध करने के लिये निरूहण वस्तिदेवै।

शिरोविरेचन की विधि ॥

विशुद्धकायस्यततःक्रमेणास्निग्धंतुतैस्त्वेदितमुत्तमांगम्। विरेचयेत्रिर्द्विरथैकशोवाबलंसमीक्ष्यत्रिविधंमलानां ॥

अर्थ—वमन विरेचनादि से शरीर के शुद्ध होने पर शिरोविरेचन के लिये पूर्वोक्त तेल से मस्तक को स्निग्ध और स्विन्न करै, इस तरह रोगी का बल और तीनों दोषों को देखकर तीन, दो वा एक वार शिरोविरेचन देवै ॥

सम्यक् प्रयुक्त शिरोविरेचन के लक्षण॥

उरःशिरोलाघवमिन्द्रियाणाम्।
स्रोतोविशुद्धिश्चभवेद्विशुद्धे॥

अर्थ—सम्यक् रीतिसे शिरोविरेचन होने पर वक्षःस्थल, सिर और इन्द्रियों में हलकापन होताहै और सब स्रोत शुद्ध होजातेहैं

असम्यक् शिरोविरेचन के लक्षण॥

गलोपलेपःशिरसोगुरुत्वं।
निष्ठीवनंचाप्यथदुर्विरिक्ते॥

अर्थ—अच्छी तरह शिरोविरेचन न होने पर कंठ में कफकी लिहसावट, सिर में भारापन और मुख में थूक भरना यह लक्षण होते हैं ॥

शिरोविरेचन का अति योग॥

शिरोऽक्षिशंखश्रवणार्त्तितोदा।
दत्यर्थशुद्धस्तिमिरंचपश्येत्॥

अर्थ—शिरोविरेचन का अतियोग होने पर माथा, आंख, कनपटी और कान में सुई छिदने की सी पीडा होती है और रोगी की आखों के साम्हने अँधेरा सा छाजाता है ॥

वस्तिप्रयोग के अन्य नियम।

स्यात्तर्पणंतत्रमृदुद्रवश्चस्निग्धस्यतीक्ष्णन्तु पुनर्नयोगे। इत्यातुरस्वस्थसुखप्रयोगेः वलायुषोर्वृद्धिकृदामयघ्नः॥ कालस्तुवस्त्यादिपुयातियावां स्तावान्भवेद्द्विः परिहारकालः॥

अर्थ—शिरोविरेचनके अतियोगादि में रोगी को स्निग्ध करके मृदु और द्रव तर्पण देवै। इस में तीक्ष्ण द्रव्योंका संयोग न करै रोगी और स्वस्थ पुरुष को ऐसे प्रयोग होने से बल और आयुकी वृद्धि होती है और रोग का नाश होजाता है। वस्त्यादि कर्मों में जितना समय लगता है उस से दुगुना काल पेयादि क्रमके पालन में लगना चाहिये ॥

पंचकर्म के पीछे वर्जित कर्म।

अत्याशनंस्थानवचांसियानम् स्वप्नंदिवामैथुनवेगरोधान्। शीतोपचारातपशो-

करोषां स्त्यजेदकालाहितभोजनञ्च ॥

अर्थ—पंचकर्मसे पीछे अति भोजन, अत्यन्त वैठना अत्यन्त बोलना, अत्यन्त चलना दिनमें सोना, मैथुन, मलमूत्रादिके उपस्थित वेगों का अवरोध, शीतोपचार, धूप, शोक, रोग अकाल भोजन और अहित भोजन ये सब त्याग देनै चाहिये ॥

वद्धेमणीतेविपमेचनेत्रे ।
मार्गेतथार्शःकफविड्विवन्धे ॥
नयातिवस्तिनसुखंनिरेति ।
दोषावृतोऽल्पोयदिवाल्पवीर्यः ॥

अर्थ—वस्तिके नल का मुख वद्ध वा विषम प्रणीत हो अथवा अर्शका मार्ग कफ या विष्टा से वन्दहो, उस में वस्ति न सहज में प्रवेशही कर सकती है और न आही सकती है। वस्ति का मार्ग यदि दोनों से आवृत हो वा वस्ति का द्रव्य अल्प वा निर्वीर्य तैलादि से वनाहो तौ भी उपर कही हुई दशा होती है ॥

मार्गेतुवर्चोऽनिलमूत्रवेगे वातेविवृद्धेऽल्प वलेगुदेवा । अत्युष्णतीक्ष्णश्चमृदौमको ष्ठे मणीतमात्रःपुनरेतिवस्तिः ॥ मेदः कफाभ्यामनिलोनिरुद्धः शूलांगसुप्ति श्वयथूनकरोति ॥ स्नेहन्तुयुञ्जन्नबुधस्तु तस्मै सम्वर्धयत्येवहितान्विकारान् ॥

अर्थ—विष्टा, अधोवायु और मूत्रका वेग उपस्थित हो, वायुकी वृद्धि हो, गुदा अल्प वलयुक्त हो कोष्ठ मृदु हो और वस्तिद्रव्य अत्यन्त उष्ण और तीक्ष्ण हो तो वस्ति प्रवेश करते ही लौट आती है। मेद और कफसे रुकी हुई वायु शूल 'अंगसुप्ति (सुन्नता] और सूजन उत्पन्न करती है। इस को अबुध वैद्य वात विकार समझ कर अनुवासनादि प्रयोग करता है। तौ इससे रोगों की वृद्धिही होती है ॥

रोगास्तथान्येऽप्यवितर्क्यमाणाः परस्परेणावगृहीतमार्गाः॥सन्दूषिताधातुभि रेवचान्यैः॥ स्वैर्भेषजैर्नोपशमंव्रजन्ति ॥ सर्वश्चरोगप्रशमायकर्म्म हीनातिमात्रं विपरीतकालम् । मिथ्योपचारश्चनतांविकारं । शान्तिनयेत्पथ्यमपिप्रयुक्तमिति

अर्थ इस तरह एक दोष द्वारा दूसरे दोष का मार्ग रुक जाने पर अन्य २ रोग प्रकट होजाते हैं। अन्य धातुओं से दूषित दोष रुद्ध मार्ग होकर अपनी २ औषधों से शान्त नहीं होते हैं। रोगी के पथ्य सेवन करने पर भी यदि रोग की औषध अच्छी तरह से प्रयुक्त न हुई हो, हीन, या अधिक वा मिथ्या प्रयुक्त हुई हो या विपरीत कालमें प्रयुक्त हुई हो तौ रोगकी शान्ति नहीं होतीहै

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन ।

प्रश्नानिमान्द्वादशपञ्चकर्माण्युद्दिश्यसि द्धाविहकल्पनायाम् ।प्रजाहितार्थंभगवान् महार्थान् सम्यक्जगादर्षिवरोऽत्रिपुत्रः ।

अर्थ—इस कल्पना सिद्धि नामक अध्याय में भगवान् आत्रेय ने प्रजा के हित के लिये वमन विरेचनादि पंच कर्म सम्वन्धी बारह गूढ प्रश्नों का उत्तर दिया है ॥

इतिश्री चरकसंहितायां सिद्धिस्थाने
प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथातःपञ्चकर्मीयांसिद्धिंव्याख्यास्यामः इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम पञ्चकर्मीय सिद्धिकी व्याख्या करेंगे ।

येषांयस्मात्पञ्चकर्माण्यग्निवेशनकारयेत् येषांचकारयेद्यानितत्सर्वंसंप्रवक्ष्यते ॥

अर्थ—हे अग्निवेश ! जिन के विषयमें पंचकर्म करने के योग्य नहीं है और जिन के विषय में पंचकर्म करने के योग्य हैं अब हम उनकी व्याख्या करेंगे ।

पंचकर्मकेअयोग्यव्यक्ति ॥

चण्डःसाहसिकोभीरु कृतघ्नोव्यग्रएवच सद्वैद्यनृपतिद्वेष्टाताद्विष्टःशोकपीडितः ॥ यादृच्छिकोमुमूर्षुश्चविहीनःकरणैश्चयः वैरीवैद्यविदग्धश्चश्रद्धाहीनःसुशङ्कितः ॥ भिषजामविधेयश्चनक्रम्याहिभिषग्विदा एतानुपाचरन्वैद्योबहून्दोषानवाप्नुयात्॥ एभ्योऽन्येसमुपक्रम्यानराःसर्वैरुपक्रमैः॥ अवस्थांप्रविभज्यैषांवर्ज्यंकार्यंचवक्ष्यते॥

अर्थ—चण्ड, साहसी, भीरु, कृतघ्न, व्यग्र, सद्वैद्यद्रोही, राजद्रोही, विद्विष्ट, शोकपीडित यदृच्छाचारी, मुमूर्षु, करणहीन, वैरी, वैद्याभिमानी, श्रद्धाहीन, शंकितचित्त, वैद्य की बताई हुई बात का न करनेवाला ये सब पंचकर्मके योग्य नहीं है । ऐसों की चिकित्सा करनेसे वैद्य अत्यन्त पापका भागी होताहै। इनको छोडकर अन्य मनुष्य सम्पूर्ण चिकित्साओं के योग्य होते हैं । इनमें अवस्था भेद से जो जो कार्य वर्जनीय हैं उनकी व्याख्या करते हैं ।

वमनकेअयोग्यव्यक्ति ।

अच्छर्दनीयास्तावत्क्षतक्षीणातिस्थूलकृशबालवृद्धदुर्बलश्रान्तपिपासितक्षुधितकर्मभाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्यायामचिन्ताप्रसक्तक्षामगर्भिणीसुकुमारसंवृतकोष्ठदुश्छर्दनोर्ध्वरक्तपित्तप्रसक्तच्छर्दिनूर्ध्ववातास्थापितानुवासितहृद्रोगोदावर्तमूत्राघातप्लीहगुल्मोदराष्ठीलास्वरोपघाततिमिरशिरःशंखकर्णाक्षिपार्श्वशूलार्ताः

अर्थ—क्षतक्षीण, अतिस्थूल, कृश, बालक, वृद्ध, दुर्बल, श्रान्त, तृषार्त, क्षुधार्त्त, परिश्रम से थकाहुआ, बोझ से थका हुआ, मार्ग से थका हुआ, उपवाससेक्लान्त मैथुन, अध्ययन, व्यायाम, चिन्ता इन से थकाहुआ, क्षाम, गर्भिणी, सुकुमार, संवृतकोष्ठ (जिसको सहज में वमन न होसक्ती हो, दुश्छर्दनीय, ऊर्ध्वगामी रक्तपित्त से पीडित, वमनरोगी, ऊर्ध्ववातरोगी, आस्थापित [जिसको आस्थापन वस्ति दीगई हो] अनुवासित, हृद्रोगी, उदावर्तरोगी, मूत्रघातग्रस्त, प्लीहारोगी, गुल्मरोगी, उदररोगी अष्ठीलारोगी, स्वरभंगरोगी, तिमिर रोगी, शिरोरोगी, कनपटी के रोगवाला, कर्णरोगी नेत्ररोगी और पसली के दर्दवाला । ये सब वमन कराने के अयोग्य होते है ।

उक्तरोगियोंकेअवम्यहोनेकाहेतु ॥

तत्रक्षतस्यचभूयःक्षणनात्रक्तातिप्रवृत्तिः स्यात् । क्षीणातिस्थूलकृशबालवृद्धदुर्ब

लानामौषधवलासहत्वात्प्राणोपरोधः ॥ श्रान्तपिपासितक्षुधितानांचतद्वत् । कर्मभाराध्वहतोपवासमैथुनाध्ययनव्यायामचिन्ताप्रसक्तक्षामाणांरौक्ष्याद्वातरक्तच्छेदक्षतक्षयभयंस्यात् । गर्भिण्यागर्भव्यापदामगर्भभ्रंशाच्चदारुणरोगमाप्तिः । सुकुमारस्यहृदयविकर्पणादूर्द्धमधोवारुधिरातिप्रवृत्तिः । संवृतकोष्ठदुश्छर्दनयोरतिमात्रप्रवाहनाद्दोषाःसमुत्क्लिष्टाःकोष्ठे जनयन्त्यन्तर्विसर्पस्तम्भजाड्यवैचित्यमरणंवा । ऊर्द्धरक्तपित्तिनमुदानमुत्क्षिप्यमाणानहरेद्रक्तंचातिप्रवर्तयेत् । प्रसक्तछर्दिपस्तद्वदूर्द्धवातास्थापितानुवासितानामूर्द्धवातातिप्रवृत्तिः । हृद्रोगिणेहृदयोपरोधः । उदावर्तिनांघोरतरउदावर्तःस्याच्छीघ्रतरहन्ता । मूत्रघातादिभिरार्तानांतीव्रतरःशूलप्रादुर्भावः तिमिराणांतिमिरातिवृद्धिः । शिराःशूलादिषुशूलातिवृद्धिः। तस्मादेतेनवम्याः ।

अर्थ....क्षतरोगी को वमन कराने से उरःक्षत और भी अधिक वढजाता है जिस से रक्त अधिक निकलने लगता है क्षीण, अतिस्थूल, कृश, वालक, वृद्ध और दुर्वल वमन के वेगको सहनहीं सक्ते है, इस से इनको वमन कराने से प्राणों का अवरोध होता है । श्रान्त, पिपासित और क्षुधितको भी इनहीं कारणोंसे वमन नहीं कराईजाती है । परिश्रमसे व्यथित, भारवहन से थकित, मार्ग से थकित, उपवासहत, मैथुन शील, अध्ययनशील, व्यायामशील, चिन्ता भरत, और क्षामरोगियों को वमन करानेसे रूक्षता के कारण वात और रक्त प्रकुपित होते हैं। कण्ठनाली आदिमें छिद्र होना और उरःक्षत होना इनका भय रहता है । गर्भिणी को वमन कराने से गर्भव्यापत् गर्भस्राव तथा गर्भसंबंधी अन्य अन्य रोगभी होते हैं । सुकुमार को वमन करानेसे उसका हृदय विकर्पित होजाता है इससे ऊर्ध्वमार्ग वा अधोमार्गसे रुधिर अत्यन्त निकलने लगता है । संवृत कोष्ठ और दुश्च्छर्दनीय मनुष्यको वमन करानेसे वमन तो ठीक होती नहींहै और वह जोर मारकर वमन करनेकी चेष्टा करता है इससे दोष कोष्ठ को उत्क्लेशित करके विसर्प, स्तम्भता, जडता, वैचित्ति [मन में उद्वेग] और मृत्यु आदि रोग उत्पन्न करते हैं । उर्ध्वगामी रक्त पित्तवाले को वमन करानेसे उदानवायु ऊपरको उठती है और उससे प्राणों का नाश और रक्तकी अत्यन्त प्रवृति होती है । जिसको वमनरोग हो उसको वमन करानेसे भी उक्त दशा होती है । ऊर्ध्व वात रोगी, अनुवासित और आस्थापितको वमन कराने से ऊर्ध्ववात की अत्यन्त प्रवृति होती है । हृद्रोगी को वमन कराने से हृदय का उपरोध होता है ॥

उदावर्त रोगी को वमन कराने से घोर तर उदावर्त होता है जिससे रोगी शीघ्रही मरजाता है । मूत्राघात, प्लीहा, गुल्म, उदर, अष्ठील और स्वर भंग वाले को वमन कराने से अत्यन्त तीव्र शूल उत्पन्न

होता है। तिमिर रोगीको वमन कराने से तिमिर की वृद्धि होती है ॥ शिरःशूल शंखशूल, और पार्श्वशूलवालेको वमन कराने से शूल की अत्यन्त वृद्धि होती है इससे ऊपर लिखे सब रोगों में वमन कराने का निषेध है।

वमनका अप्रतिषेध॥

सर्वेष्वपिखल्वेतेष्वपिविषगरविरुद्धाभ्यवहारामकृतेष्वप्रतिसिद्धं शीघ्रतरकारित्वादेषाम्॥

अर्थ—ऊपर लिखेहुए सम्पूर्ण रोगों के होने पर भी यदि विषजनित, विरुद्ध भोजन जनित, गर जनित वा आमदोषजनित उपद्रव का प्रादुर्भाव होतो वमन करानेका निषेध नहीं है। कारण ये हैं कि ये रोग आशुकारी होते हैं॥

वमनीय व्यक्ति॥

शेषास्तुवम्याःपीनसकुष्ठनवज्वरराजयक्ष्मकासश्वासगलग्रहगलगण्डश्लीपदमेहमन्दाग्निविरुद्धजीर्णान्नविशूचिकालसकविषगरपीतदष्टदिग्धविद्धाधःशोणितपित्तप्रसेकहृल्लासारोचकाविपाकापच्यपस्मारोन्मादातिसारशोफपाण्डुरोगमुखपाकदुष्टस्तन्यादयःश्लेष्मव्याधयो विशेषेणरोगाध्यायोक्ताश्चैतेषुहिवमनंप्रधानतममित्युक्तंकेदारसेतुभेदेशाल्यादिशोषदोषविनाशवत्।

अर्थ—ऊपर कहेहुए रोगियों से अन्य वमनके योग्य होते हैं। पीनस, कोढ, नवीन ज्वर, राजयक्ष्मा, खांसी, श्वास, गलग्रह, गलगण्ड, श्लीपद, मेह, मन्दाग्नि, विरुद्ध भोजन, दुष्पाच्यभोजन, विसूचिका, अलसक, विषपान, गरपान, काटने का विष, दिग्ध शिराआदि का व्यध, अधोगत रक्तपित, कफप्रसेक, अर्श, हृल्लास, अरुचि, अविपाक,अपची,अपस्मार, उन्माद, अतिसार, सूजन, पांडुरोग, मुखपाक, दुष्टस्तन्यादि धात्रीरोग, और विशेष करके महारोगाध्याय में कहेहुए बीस प्रकार के कफविकार। ये सब वमन साध्य हैं। जैसे खेत की मेंढ तोड देने से जल के निकल जाने के कारण खेती सूख जाती है, इसी तरह से वमन द्वारा दोषों के निकल जाने के कारण सब रोग नष्ट होजाते हैं॥

अविरेच्य रोगी॥

अविरेच्यास्तुसुभगक्षतगुदमुक्तनालाधोभागरक्तपित्तविलंघितदुर्बलेन्द्रियाल्पाग्निनिरूढकामादिव्यग्राजीर्णिनवज्वरमदात्ययिताध्मानशल्यार्दिताभिहतातिस्निग्धरूक्षदारुणकोष्ठाःक्षतादयश्चगर्भिण्यन्ताः॥

अर्थ—नीचे लिखे हुए रोगी विरेचन के योग्य नहीं होते हैं। यथा—सुकुमार, क्षतगुद [जिनकी गुदा में घावहो], मुक्तनाल [जिनका मलद्वार शिथिल होगया हो], अधोगामी रक्तपित रोगी, उपवास कर्षित, दुर्बलेंद्रिय, मन्दाग्नि, निरूहित [जिसे निरूहवस्ति दीगई हो], जो कामादि हेतुओं से व्यग्रमन हो, जो अजीर्ण रोग से पीडित हो, जिसको न-

वीन ज्वर हो, जिसको मदात्यय रोग हो जिसको अफरा हो, जो शल्य से पीडितहो जिसके चोट लगीहो, जो अतिस्निग्ध वा अतिरूक्षहो, जिसका कोष्ठ दारुणहोतथा वमन प्रकरणमें कहे हुए क्षतसें गर्भिणी पर्य्यन्त अर्थात् क्षतरोगी, क्षीणरोगी, अतिस्थूल, अतिकृश, बालक, वृद्ध, दुर्वल, थकित, पिपासित, क्षुधित, श्रमक्लान्त, भाराक्रान्त, मार्गक्लान्त उपवास कर्षित, मैथुनरत, अध्ययनरत, व्यायामशील, चिन्ताग्रस्त, क्षाम और गर्भिणी इन सबको विरेचन न देना चाहिये।

उक्तव्यक्तियोंकेअविरेच्यहोनेकाकारण

तत्रसुभगस्यसुकुमारोक्तोदोपःस्यात् ॥ क्षतगुदस्यक्षतेगुदेवायुःप्राणोपरोधकरींघरांरुजांजनयेत्। मुक्तनालमतिप्रवृत्त्या हन्यात्। अधोभागरक्तपित्तिनांतद्वदेव॥ विलंघितदुर्वलेन्द्रियाऽल्पाग्निनिरूढाऔपधवेगंनसहेरन्। कामादिव्यग्रमनसो नप्रवर्ततेकृच्छ्रेणवाप्रवर्तमानमधोगदोपान्कुर्यात्। अजीर्णिनआमदोपःस्यात् नवज्वरस्याविपक्कान्दोपान्ननिर्हरेत्वातमेवचकोपयेत्। मदात्ययितस्यमद्यक्षीणेदेहेवायुःप्राणोपरोधंकुर्य्यात् ॥ आध्मातस्यध्मायमानस्यवापुरीपकोष्ठेनिचितोवायुर्विसर्पनसहसानाहंतीव्रतरंमरणंवाजनयेत्॥ सशल्यार्दिताभिहतयोः क्षतेवायुराश्रितोजीवितंहिंस्यात् ॥ अतिस्निग्धस्यातियोगभयंभवेत् ॥ रूक्षस्य वायुरंगग्रहंकुर्य्यात् ॥ दारुणकोष्ठस्य विरेचनोद्धतादोपाहृच्छूलपर्वभेदानाहाङ्गमर्दछर्दमूर्च्छाक्लमान्जनयित्वाप्राणान्हन्युः ॥ क्षतादीनांगर्भिण्यन्तानांछर्दनोक्तोदोपःस्यात्॥ तस्मादेतेनविरेच्याः

अर्थ—सुकुमार मनुष्य को विरेचन देने से हृदय कर्षित होता है। गुदा में घाव वाले को विरेचन देनेसे प्राणोपरोधकारी अत्यन्त तीव्र वेदना होती है मुक्तनाल मनुष्यको अत्यन्त विरेचन देनेसे प्राणो की हानि होती है। अधोगामी रक्तपित्त वाले को विरेचन देने से रक्तकी अत्यन्त प्रवृत्ति होती है। उपवास कर्षित, दुर्वलेन्द्रिय मन्दाग्नियुक्त और निरूहित औषध के वेग को नहीं सह सकते हैं। जो मनुष्य कामादि वेगों से दुश्चित्त हो रहे हैं उनको विरेचन से दस्तनहीं आतेहैं और जो काठिनता से दस्त आते हैं। तौ अधोमार्ग में संपूर्ण दोप कुपित होजाते हैं अजीर्ण वाले को विरेचन देनै से आमदोप की उत्पत्ति होती है॥ नवीन ज्वर में विरेचन देने से आमदोप नहीं निकलते हैं किन्तु वात कुपित होजाती है मदात्ययरोगी की मद्य से क्षीण देह में विरेचन देने से वायु प्राणों को रोक देती है जिसके अफरा हो वा जो आध्मायमानहो उसे विरेचन देने से मलाशय में संचित वायु फैलकर शीघ्रही अत्यन्त तीव्र आनाह वा मृत्यु को उपस्थित करती है।शल्यार्दित और आहत व्यक्ति के घावमें वायु रहती है उस दशा में यदि विरेचन दियाजाय तौ प्राणनष्टहोजाते हैं। अत्यन्त स्निग्ध मनुष्य को विरेचन देने से उसका

अति योग होता है । रूक्ष व्यक्ति को विरेचन देने से वायु अंग को पकड लेती है । कडे कोठेवाले को विरेचन देने से दोष उदीर्ण होकर हृदय में शूल, पर्वभेद आनाह, अंगमर्द, वमन मूर्च्छा और क्लान्ति उत्पन्न करके प्राणों को नष्ट कर देते है । क्षतरोगी से लेकर गर्भिणी पर्य्यन्त को विरेचन देने से वमन प्रकरण में कहे हुए रोग होते हैं । इससे ये सब विरेचनके अयोग्यहैं

विरेचन के योग्य व्यक्ति ।

शेपास्तुविरेच्याः । कुष्ठज्वरमेहोर्द्धरक्तपित्तभगन्दरोदरार्शोबर्ध्मप्लीहगुल्मार्बुदगलगण्डग्रन्थिविसूचिकालसकमूत्राघातक्रिमिकोष्ठविसर्पपाण्डुरोगशिरपार्श्वशूलोदावर्तनेत्रास्यदाहहृद्रोगव्यङ्गनीलीकानेत्रनासिकास्यश्रवणरोगहलीमकश्वासकासकामलापस्मारोन्मादवातरक्तयोनिरेतोदोषतैमिर्यारोचकाविपाकच्छर्दिश्वयथ्वपचीविस्फोटकादयः पित्तव्याधयोविशेषणरोगाध्यायोक्ताश्चएतेपुहिविरेचनंप्रधानतममित्युक्तमग्न्युपशमेऽग्निगृहवत् ।

अर्थ....ऊपर कहे हुए रोगियों को छोड कर शेष सब रोगी विरेचन के योग्य होते हैं । कोढ, ज्वर, प्रमेह, ऊर्ध्वरक्तपित्त, भगन्दर, उदररोग, अर्श, ब्रध्न, प्लीहा, गुल्मरोग, अर्बुद, गलगण्ड, ग्रन्थि, विसूचिका, अलसक, मूत्राघात, क्रिमिकोष्ठ, विसर्प, पाण्डु रोग, शिरो वेदना, पार्श्वशूल, उदावर्त्त, नेत्रदाह, मुखदाह, हृद्रोग, व्यंग, नीलीका, नेत्ररोग, नासिका रोग, मुखरोग, कर्णरोग हलीमक, श्वास, खांसी, कामला, मृगीरोग, उन्माद, वातरक्त, योनिदोष, शुक्रदोष, तिमिर, अरुचि, अविपाक, वमन, सूजन, उदररोग, विस्फोटकादिरोग, तथा महारोगाध्याय में कही हुई चालीस प्रकार की पित्तज व्याधियां विशेष करके विरेचन से दूर हो जाती हैं । इन सब रोगों में विरेचन ही प्रधान है । जैसे अग्निके बुझने से घर अपने आप शान्त होजाता है इसी तरह विरेचन द्वारा दोषों के निकलने से शरीर के रोग अपने आप शान्त होजाते हैं ॥

अनास्थाप्यरोग ।

अनास्थाप्यस्तुअजीर्णयतिस्निग्धपीतस्नेहोत्क्लिष्टदोषाल्पाग्नियानक्लान्तातिदुर्बलक्षुत्तृष्णाश्रमार्तातिकृशभुक्तभक्तपीतोदकवमितविरिक्तक्षतकृतनस्तःकर्म्मक्रुद्धभीतमत्तमूर्च्छितप्रसक्तछर्दिनिष्ठीविकाश्वासकासहिक्काबद्धछिद्रोदकोदराध्मातालसकविसूचिकाप्रमनामातिसारमधुमेहकुष्ठाः ॥

अर्थ—नीचे लिखे हुए रोगी आस्थापन के योग्य नहीं होते हैं । यथा— अजीर्ण रोगी, अतिस्निग्ध, पीतस्नेह, उत्क्लिष्टदोष, मन्दाग्नि, यानक्लान्त, (सवारीसे थकहुआ) अतिदुर्बल, क्षुधार्त्त, तृषार्त्त, श्रमार्त्त, अत्यन्तकृश, भुक्तभक्त (जिसने भात खायाहो) पीतोदक, वमित, विरिक्त, क्षत, कृतनस्यकर्मा [जिसने नस्यकर्मका सेवन कियाहो] क्रुद्ध, डराहुआ, मतवाला, मूर्छित, वमनरोगी, जिसके मुहमें थूक भरताहो, श्वा-

सरोगी, कासरोगी, हिक्कारोगी, बद्धोदरी, छिद्रोदरी, दकोदरी, अलसकरोगी विसूचिका रोगी, आमगर्भा [जिसका गर्भ सातमहीने के भीतरहो) अतिसारी, मधुमेही और कुष्ठरोगी ये सब आस्थापन के योग्य नहींहैं

अनास्थापनकाकारण।

तत्राजीर्ण्यतिस्निग्धपीतस्नेहानांदूष्योद रंमूर्च्छाश्वयथुर्वास्यात्। उत्क्लिष्टदोप मन्दाग्न्योररोचकस्तीव्रः। यानक्लान्त स्यक्षोभमापन्नोवस्तिराशुदेहंशोपयेत्॥ अतिदुर्वलक्षुत्तृष्णाश्रमार्तानांपूर्वोक्तोदो पःस्यात्। अतिकृशस्यकार्श्यपुनर्जनये त्। पीतोदकभुक्तभक्तेभ्योत्क्लेश्योर्द्ध मधोवावायुर्वस्तिमुत्क्षिप्यक्षिप्रंवस्तौघो रान्विकारान्जनयेत्॥ वमितविरिक्त योस्तुरूक्षशरीरनिरूहःक्षतक्षारइवदहेत्। कृतनस्तः कर्म्मणोविभ्रंशंभृशसंरुद्धस्रोत सःकुर्यात्। क्रुद्धभीतयोर्वस्तिरूर्द्धमुपप्लु वेत्। मत्तमूर्च्छितयोर्भृशंविचलितायां संज्ञायांचित्तोपघाताद्व्यापत्स्यात् प्रसक्त छर्दिनिष्ठीवकाश्वासकासहिक्कार्त्तानामू र्द्धीकृतोवायुरूर्द्धंवस्तिंनयेत्। बद्धाछि द्रोदकोदराध्मातानांभृशतरमाध्मावस्तिः प्राणान्हिंस्यात्। अलसकविसूचिका मप्रजातिसारिणामामकृतोदोपःस्यात्। मधुमेहकुष्ठिनोव्याधेःपुनर्वृद्धिःतस्मादेते नास्थाप्याः॥

अर्थ····इनमें से अजीर्णरोगी, अति स्निग्ध और पीतस्नेह वाले रोगियों को आस्थापन देनेसे उदररोग मूर्च्छा और सूजन उत्पन्न होती है उक्लिष्ट दोप और मन्दाग्नि वालेको आस्थापन देनेसे तीव्र अरुचि होती है। सवारीसे थके हुएको आस्थापन देनेसे क्षोभको प्राप्त हुई वस्ति शीघ्रही उसके देहको सुखा देती है। अति दुर्वल, क्षुधार्त्त, तृषार्त्त और श्रमार्त्त को आस्थापन वस्ति देने से पूर्वोक्त दोप होते हैं। अत्यन्त कृशको वस्ति देनेसे और भी कृशता हो जाती है। जल पीने और भोजन कर लेने के पीछे वस्ति देने से उसकी वायु ऊपर वा नीचे उत्क्लेशित होकर और वस्ति को उत्क्षिप्त कर के शीघ्रही वस्ति में घोर विकारों को उत्पन्न कर देती है। वमित और विरिक्त का शरीर पहिलेही रूक्ष होता है, इस पर भी यदि निरूह दी जाय तो क्षतक्षार की तरह दग्ध कर देता है जिस मनुष्य ने नस्यकर्म किया है उसको आस्थापन देने से स्रोतःसमूह रुककर नस्यकर्मके फलको नष्ट कर देते हैं। क्रुद्ध और भीत को आस्थापन वस्ति देने से वस्ति ऊपरको चली जाती है। मत्त और मूर्च्छित को अत्यन्त विगडी हुई दशा में देने से चित्तोपघात होता है। वमनरोग, श्वास, खांसी और हिचकी वाले को आस्थापन देने से आस्थापन को वायु ऊपरको लेजाती है। बद्धोदर, छिद्रोदर, दकोदर और आध्मान में वस्ति देने से उदर में बहुत अफरा उत्पन्न होता है और प्राण जाते रहते हैं। अलसक, विसूचिका, आमगर्भा और अतिसारमें आ-

स्थापन देने से आमकृत दोष होते हैं। मधुमेह और कुष्ठ में आस्थापन देनेसे रोग की वृद्धि होती है, इस से ऊपर लिखे हुए रोगों में आस्थापन वस्ति न देनी चाहिये।

आस्थाप्यरोग।

शेषास्त्वास्थाप्याःसर्वाङ्गैकांगकुक्षिरोगवातवर्चोमूत्रशुक्रसंगवलवर्णमांसरेतःक्षयदोषाध्मानांगसुप्तिक्रिमिकोष्ठोदावर्तातिसारपर्वाभितापप्लीहगुल्महृद्रोगभगन्दरोन्मादज्वरवर्ध्मशिरःकर्णशूलहृदयपार्श्वपृष्ठकटीग्रहवेपनाक्षेपकगौरवातिलाघवरजःक्षयानार्तवविषमाग्निस्फिग्जानुजंघोरुगुल्फपार्ष्णिप्रपदयोनिवाह्वंगुलितलांसदन्तपार्श्वास्थिशूलशोषस्तम्भान्त्रकूजनपरिकर्तिकादयःवातव्याधयोविशेषेण रोगाध्यायोक्ताश्चाएतेष्वास्थापनंप्रधानतममित्युक्तंवनस्पतिमूलच्छेदवत्।

अर्थ—ऊपर कहे हुए रोगों से अन्यरोग आस्थापन के योग्य होतेहैं। यथा—सर्वांग वात, एकांग वात, कुक्षिरोग, अधोवायु,मूत्र और वीर्य के विबन्ध, बलक्षय, वर्णक्षय, मांसक्षय, वीर्यक्षय, आध्मान, अंगसुप्ति, क्रिमिकोष्ठ, उदावर्त, अतिसार, हडफूटन प्लीहा, गुल्म, हृद्रोग, भगन्दर, उन्माद,ज्वर, ब्रध्न, शिरःशूल, कर्णशूल, हृदयग्रह, पार्श्वग्रह, पृष्ठग्रह, कटिग्रह, कम्पन, आक्षेप, अंगगौरव, देह का अत्यन्त हलकापन,रजक्षय, रजस्वला होने का अभाव, विषमाग्नि, नितम्बशूल, जानुशूल, जंघाशूल, ऊरुशूल, टकने का दर्द, ऐडी का दर्द, पंजे का दर्द, योनिशूल, वाहुशूल, अंगुलिशूल, पार्श्वशूल अस्थिशूल, शोष, स्तम्भ, अन्त्रकूजन, परिकर्तिका, तथा विशेष करके महारोगाध्याय में कही हुई अस्सी प्रकार की वात व्याधियां आस्थापन से दूर होजाती हैं। इन रोगों में आस्थापन प्रधान है, जैसे जड काट डालने से वनस्पति एक साथही नष्ट होजाती है उसी तरह आस्थापन देने से भी सम्पूर्ण रोग जड से मिटजाते हैं।

अनुवासन के अयोग्य रोगी॥

यएवानास्थाप्यास्तएवानुवास्याः।विशेषतस्त्वभुक्तभक्तनवज्वरपाण्डुरोगकासकामलाप्रमेहार्शःप्रतिश्यायारोचकमंदाग्निदुर्वलप्लीहकफोदरोरुस्तम्भवर्चोभेदविषगरपीतकफाभिष्यन्दगुरुकोष्ठश्लीपदगलगण्डापचिक्रिमिकोष्ठिनः।

अर्थ—जो जो रोग आस्थापन योग्य वर्णन नहीं किये हैं उनहीं में अनुवासन भी न देवै। विशेष करके अभुक्तभक्त, नवज्वर, पांडुरोग, खांसी, कामला, प्रमेह, अर्श, प्रतिश्याय, अरुचि, मन्दाग्नि, दुर्बलता, प्लीहा, कफोदर, उरुस्तम्भ, मलभेद, पीत विष, पीतगर, कफाभिष्यन्द, भारी कोष्ठ श्लीपदरोग,गलगंडरोग, अपची और क्रिमिकोष्ठ। इन सब रोगों में अनुवासन न देनी चाहिये।

उक्तरोगों में अनुवासनकेन देनेकाकारण

तत्राभुक्तभक्तस्यानावृतमार्गत्वादूर्द्धमतिवर्ततेस्नेहो ॥ नवज्वरपाण्डुरोगकामलाप्रमेहिणांदोषानुत्क्लेश्योदरंजनयेद

शस्यर्शास्यभिष्यन्द्याध्मानमरोचकार्त स्यान्नवृद्धिपुनर्हन्यात् । मन्दाग्निदुर्बल योर्मन्दतरमग्निंकुर्यात् ॥ प्रतिश्यायप्ली हादिमतांभृशंचोत्क्लिष्टदोषाणांभूयए वदोषंवर्द्धयेत्तस्मादेतेनानुवास्याः ॥

अर्थ—बिना भोजन कराये अनुवासन देने से वस्तिका मार्ग खुला रहनेसे तेल ऊपरको चला जाता है । नवज्वर, पांडुरोग, कामला और प्रमेह में अनुवासन देने से दोष उत्क्लेशित होकर उदररोग उत्पन्न करते हैं । अर्शरोग में अनुवासन देने से स्नेहन अर्श को अभिष्यन्दी करके आध्मान उत्पन्न करता है । अरुचि में अनुवासन देने से अन्नवृद्धि होकर प्राणों को नष्ट कर देती है (अन्न में अनिच्छा होती है ऐसा पाठभी है) मन्दाग्नि और दुर्बल को अनुवासन देने से अग्नि अत्यन्त मन्द होजाती है । प्रतिश्याय और प्लीहा में अनुवासन देने से सम्पूर्ण दोष और भी बढ जाते हैं । इसलिये इन सम्पूर्ण रोगों में अनुवासन न देना चाहिये ।

अनुवासन के योग्य व्यक्ति ।

यएवास्थाप्यास्तएवानुवास्याः । विशेषतस्तुरूक्षतीक्ष्णाग्नयःकेवलवातरोगार्त्ताश्च । एतेषुह्यनुवासनंप्रधानतममित्यु क्तंवनस्पतिमूलच्छेदनवत्मूलेद्रुमसिक्तवच्च ॥

अर्थ—जिन जिन रोगों में आस्थापन दी जाती है उन्हीं में अनुवासन भी दी जाती है । विशेष करके रूक्ष,तीक्ष्णाग्नि और केवल वातरोग पीडितको तो अवश्य ही अनुवासन देना चाहिये । इन सब रोगों में अनुवासन ही प्रधान औषध है । जैसे जड के काटने से वनस्पति नष्ट होजाती है वैसेही अनुवासन से सब रोग जडसे मिट जाते हैं और जैसे वृक्षकी जड में जल देने से वह ऊपरसे नीचे तक हरा होजाता है उसी तरह अनुवासन देने से उसकी सब धातु पुष्ट होजाती हैं ।

शिरोविरेचन के अयोग्यरोगी ।

अशिरोविरेचनार्हाःअजीर्णिभुक्तभक्तपीतस्नेहमद्यतोयपातुकामःस्नातशिरःस्नातुकामःक्षुत्तृष्णाश्रमार्तमत्तमूर्छितशस्त्रदंडाहतव्यवायव्यायामपानक्लान्तवलांतनवज्वरशोकाभितप्तविरक्तानुवासितगर्भिणीनवप्रतिश्यायार्ताःअनृतुदुर्दिनेच ।

अर्थ—नीचे लिखेरोगी शिरोविरेचन के योग्य नहीं होते है । यथा – अजीर्ण रोगी भुक्तभक्त, पीतस्नेह, मद्यपान वा जलपान की इच्छारखने वाला, स्नातशिरः (सिरस मेतन्हानेवाला,] स्नातुकाम [स्नानकी इच्छारखनेवाला), क्षुधार्त्त, तृषार्त्त, श्रमार्त्त मूर्च्छित, शस्त्राहत, दंडाहत, मैथुनक्लान्त, व्यायामक्लान्त, मद्यपान से थका हुआ, नव ज्वर पीडित, शोकाभितप्त, विरिक्त, अनुवासित, गर्भिणी, और नवीन प्रतिश्यायसे पीडित । इन को शिरोविरेचन न देवे । इसके अतिरिक्त कुऋतु और जिस दिन बादल हो रहे हों उस दिन भी शिरोविरेचन न देवे ॥

शिरोविरेचन न देने का कारण।

तत्राजीर्णिभुक्तभक्तयोर्दोषऊर्द्ध्ववाहानिस्रोतांस्यावृत्यकासश्वासछर्दिंप्रतिश्यायान्जनयेत्। पीतस्नेहमद्यतोयपातुकामानांकृतेचपिबतांमुखनासास्रावाक्ष्युपदेहतिमिरशिरोरोगान्जनयेत्स्नातशिरसःकृतेचस्नानाच्छिरसःप्रतिश्यायं॥ क्षुधार्तस्यवातप्रकोपं। तृष्णार्तस्यपुनस्तृष्णाभिवृद्धिंमुखशोषञ्च। श्रमार्तमत्तमूर्छितानामास्थापनोक्तंदोषं। शस्त्रदण्डहतस्यतीव्रतरांरुजंजनयेत्। व्यवायग्लानव्यायामक्लान्तानांशिरःस्कन्धनेत्रोरःपीडनं। नवज्वरशोकाभितप्तयोरूष्मानेत्रनालीभिरनुसृत्यातिमिरंज्वरवृद्धिंचकुर्यात्। विरिक्तस्यवायुरिन्द्रियोपघातमनुवासितस्यकफःशिरोगुरुत्वकण्डूक्रिमिदोषान्। अन्तर्वत्न्यागर्भस्तम्भयेत्सकाणःकुणिःपक्षहतःपीठसर्पीवाजायेत। नवप्रतिश्यायस्यस्रोतांसिव्यापादयेदनृतुदुर्दिनेशीतदोषात्पूतिर्नासिकाशिरोदोषश्चस्यात्तस्मादेतेनशिरोविरेचनार्हाः॥

अर्थ—इन में अजीर्ण रोगी को और भुक्तभक्त को शिरोविरेचन देने से दोष ऊर्ध्ववाही स्रोतों को रोककर खांसी, श्वास, वमन और प्रतिश्याय उत्पन्न करते हैं। पीतस्नेह, जलपातुकामी और मद्यपातुकामीको शिरोविरेचन देने से मुखस्राव, नासिकास्राव आंखों में लिहसावट, तिमिर और शिरोरोग उत्पन्न होते हैं। शिरःस्नात वा न्हाये हुए मनुष्य को शिरोविरेचन देने से प्रतिश्याय होता है। क्षुधार्त्त को देने से वायुकोप, तृषार्त्त को देने से तृषाकी वृद्धि और मुखशोष, श्रमार्त्त को देने से तथा मत्त और मूर्च्छित को देने से आस्थापन में कहे हुए दोष होते हैं। शस्त्राहत और दंडाहत को देने से वेदना तीव्र होती है। व्यवाय और व्यायामसे थके हुओं को देनेसे सिर, कंधा, नेत्र और वक्षःस्थल में पीडा होती है। नव ज्वर वाले को देने से ज्वर की वृद्धि होती है। शोकपीडित को देने से दोष नेत्रकी नालियों में प्रवेश करके तिमिर रोग को उत्पन्न करते हैं। विरिक्त को देने से वायु कुपित होकर इन्द्रियों को चेष्टाहीन करती है। अनुवासितको देने से कफ बढकर सिर में भारापन, खुजली और क्रिमिरोग उत्पन्न करताहै। गर्भिणी को देने सें गर्भ बढनेसे रुकजाता है और काना, कुनख, पक्षाघाती और पांगला होजाता है। नवीन प्रतिश्यायवाले को देने से स्रोत निष्काम होजाते हैं। कुसमय वा दुर्दिन देनेसें शीत पूतिनासिका और शिरोरोग होते हैं। इस से इन रोगियों को शिरोविरेचन न देवे॥

शिरोविरेचन के योग्य रोगी।

शेषाअर्हाः। शिरोदन्तमन्याग्रहहनुग्रहपीनसगलशुण्डिकाशालूकशुक्रातिमिरवर्त्मरोगव्यंगोपजिह्विकार्धावभेदकग्रीवास्कन्धांसास्यनासिकाकर्णाक्षिमूर्धकपालरोगार्दितापतन्त्रकापतानकगलगण्डदन्तशूलहर्षचालाक्षिरागार्बुदस्वरभेदवाग्ग्रहगद्गदकथनादयऊर्द्ध्वजत्रुगतावातादिविका

राः परिपकाश्चैतेषुशिरोविरेचनमभा
नतमित्युक्तंतद्ध्युत्तमांगमनुप्रविश्य
मज्जपेषीकासक्तंदोषंविकारकरमपकर्पति

अर्थ—इन से अन्यरोगों में शिरोविरेचन देनाहितहै । यथा शिरोरोग, दन्तरोग,मन्यास्तम्भ, गलग्रह, हनुग्रह पीनस, गलशुण्डिका शालूक,शुक्र, तिमिर,वर्त्मरोग, व्यंग, उपजिह्विका, अर्द्धावभेदक, ग्रीवा रोग, स्कंधरोग आस्यरोग, नासिकारोग, कर्णरोग, नेत्ररोग मूर्द्धारोग, कपालरोग, मस्तकरोग अर्दित, अपतंत्रक, अपतानक, गलगंड, दंतशूल, दन्तहर्ष, दंतचल, अक्षिरोग, अर्बुद,स्वरभेद, वाग्ग्रह, गद्गदता, ऊर्ध्वजत्रुगतरोग, और वातादिरोग इन सब रोगों में शिरोविरेचन प्रधान है । इसकारण से शिरोविरेचन शिर में प्रवेश करके मज्जा और पेशी में स्थित विकार करने वाले दोषोंको निकाल देताहै।

नस्यकर्म विधि ।

प्रावृट्शरद्वसन्तेष्वितरेषुआत्ययिकेषुरोगेषु
नावनंकुर्याद्ग्रीष्मेपूर्वाह्णेशीतेमध्यान्हेव
पीस्वदुर्दिनेचेति ।

अर्थ....वर्षा, शरद और वसंत ऋतु में नस्यदेवै । यदि कोईआत्ययिक रोग उत्पन्न होजाय तौ ग्रीष्म ऋतु में दुपहरसे पहिले शीतऋतु में दुपहरके समय, और वर्षा में जिस दिन बादल न हो उसदिन नस्य देवै।

अध्यायकाउपसंहार ।

इतिपंचविधंकर्मविस्तरेणनिदर्शितम् ।
येभ्योयन्नहितंयस्मात्कर्मयेभ्यश्चयद्धित
म् । नचैकान्तेनानिर्दिष्टेतत्राभिनिवेशेत्
बुधः ॥ स्वयमप्यत्रवैद्येनतर्क्यंबुद्धिमता
भवेत् । उत्पद्येतहिसावस्थादेशकालब
लम्प्रति ॥ यस्यांकार्यमकार्यस्यात्कर्म
कार्यञ्चवर्जयेत् । छर्दिहृद्रोगगुल्मार्तेवम
नंस्वेचिकित्सिते ॥ अवस्थांप्राप्यनिर्दि
ष्टंकुष्ठिनाम्बस्तिकर्मच । तस्मात्सत्यपि
निर्दिष्टेकुर्यादूहंस्वयन्धिया ॥ विनावि
तर्कांद्यासिद्धिर्यदृच्छासिद्धिरेवसा ।

अर्थ—इसतरह वमन विरेचनादि पंचकर्म की विस्तारपूर्वक व्याख्या कीगई है । जिस कारण से जिसके लिये जो हितकारी और जो अहितकारी है उसका भी वर्णन कियागया है जो ये संपूर्ण नियम वर्णन कियेगये हैं वैद्य को केवल इन्हींपर भरोसा न रखना चाहिये, उसे अपनी बुद्धि भी लगानी चाहिये, यदि किसी नियममें परिवर्तन की आवश्यकता दिखाई दे तौ परिवर्तन भी करदेवै देश, काल और बलके विषयमें कभी कभी ऐसी दशा होजातीहै कि उसमें करने योग्य कामअकार्य होजाता है और न करने के योग्य काम अच्छा और करने के योग्यहो जाताहै । वमनरोग हृद्रोग और गुल्मरोग मे वमन नहीं कराई जाती है पर कभी २ ऐसा होता है कि वमन करानी ही पड़ती है । कुष्ठरोग में वस्ति नहीं दीजाती है परन्तु विशेष अवस्था में इस में भी वस्ति दीजाती है अतएव यद्यपि सम्पूर्ण नियम वर्णन किये भी गये हैं तो भी अपनी बुद्धि को काम में लाना आवश्यकीय है । अपनी बुद्धि को विना

काममें लाये जो कार्य सिद्ध होजाता है। वह यदृच्छा सिद्ध होता है ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायां सिद्धिस्थानेपञ्चकर्म्मीयासिद्धिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

—+×+—

तृतीयोऽध्यायः।

अथातोवस्तिसूत्रीयांसिद्धिंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम वस्तिसूत्रीयसिद्धिकी व्याख्या करेंगे ॥

कृतक्षणंशैलवरस्यरम्येस्थितंधनेशायतनस्य पार्श्वे। महर्षिसंघैर्वृतमग्निवेशः पुनर्वसुम्प्राञ्जलिरन्वपृच्छत् ॥ वस्तिर्नरेभ्यः किमपेक्ष्यदत्तःस्यात्सिद्धिमान्किम्मयमस्यनेत्रम् ॥कीदृक्प्रमाणाकृतिकिंगुणञ्च केनाश्चकियोनिगुणञ्चवस्तिःनिरूहकर्मप्रणिधानमात्राःस्नेहस्यकाःशमनेविधिःकः ॥ केवस्तयःकेपुमताइतीदंश्रुत्वोत्तरंप्राहवचोमहर्षिः ॥

अर्थ—हिमालय के कैलाशनामक रमणीक शिखर पर कुवेर के घरके पासही ऋषियों के समूहसे परिवेष्टित पुनर्वसु अवकाश पाकर बैठे हुए थे उस समय अग्निवेशने हाथ जोडकर पूछा कि हे भगवन्! किस अवस्था में किस तरह से वस्ति का प्रयोग करने पर सफलता हो सकती है। वस्ति नेत्र का प्रमाण क्या है। वस्ति किस द्रव्य से बनाई जाती है, इसका प्रमाण, आकृति और गुण क्या है? किस को किस द्रव्य की बनी हुई वस्ति क्या गुण करती है? निरूहण कर्म की कल्पना क्या है? अनुवासन की मात्रा कितनी है? रोगों के शमन करने के निमित्त वस्ति देने के समय कौन सी विधि ग्रहण करनी चाहिये! किस के लिये कौनसी वस्ति हितकर है? भगवान् आत्रेय अग्निवेशके इन प्रश्नोंको सुनकर कहने लगे।

समीक्ष्यदोषौषधदेशकालसात्म्याग्निसत्त्वौजवयोवलानि।वस्तिःप्रयुक्तोनियतं गुणायस्यात्सर्वकर्माणिचसिद्धिमन्ति ॥ सुवर्णरूप्यत्रपुताम्ररीतिकांस्यास्थिशस्त्रद्रुमवेणुदन्तैःनेत्राणिशृङ्गैर्मणिभिर्नलैश्च सुकर्णिकानिप्रवदन्तितज्ज्ञाः ॥

अर्थ—दोष, औषध, देश, काल, सात्म्य, अग्नि, सत्व, ओज, वय और बल की विशेष रूप से परीक्षा करके वस्ति प्रयोग करने से निश्चयही फलदायक होती है और इस तरह प्रयोग करने से सम्पूर्ण कर्मों की सिद्धि होती है। वस्ति का नेत्र सोना, चांदी, सीसा, तांवा, पीतल, कांसी, हड्डी, लोहा, काठ, वांस, दांत, सींग और मणि वा नल इनमें से किसी एक द्रव्यसे वनसकता है। वस्तिके मुखपर एककर्णिका होनीचाहिये।

वस्ति का प्रमाण ॥

षड्द्वादशाष्टांगुलसम्मितानिषड्विंशतिद्वादशवर्षजानाम्।स्युर्मुद्गकर्कन्धुसतीनवहिच्छिद्राणिवर्त्यापिहितानिचापि ॥

अर्थ—छः, वीस और वारह वर्ष की अवस्था वाले के लिये वस्ति क्रम से छः बारह और आठ अंगुल लम्बी होनी चाहिये और नल के भीतर का छिद्र मूंग, मटर और छोटे झाडी बेर के सदृश क्रम से होना चाहिये। वस्ति के छिद्र में कुछ घुसने न पावे इसलिये उस के मुखमें वत्ती लगी रहनी चाहिये।

वस्तिकी परिधि का प्रमाण॥

यथावयोऽङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यांमूलाग्रयोःस्युपरिणाहवन्तिऋजूनिगोपुच्छसमाकृतीनि श्लक्ष्णानिचस्युर्गुलिकामुखानि॥ स्यात्कर्णिकैकाग्रचतुर्थभागेमूलाश्रितेवर्त्तिनिबन्धनेद्वे। जरद्गवोमाहिषहारिणो वास्यात्सौकरोवस्तिरजस्यवापि॥ दृढस्तनुर्नष्टशिरोविगन्धःकषायरक्तःसुमृदुःसुशुद्धः॥ नृणांवयोवीक्ष्ययथानुरूपंनेत्रे युयोज्यस्तुसुवद्धसूत्रः।

अर्थ—जितनी अवस्था के मनुष्य को वस्ति देना होय, उतनीही अवस्था के मनुष्य के अंगूठे का मुटाई के समान वस्ति की नली के नीचे की परिधि होनी चाहिये और मुखकी परिधि कनिष्टका उंगली की मुटाई के समान होनी चाहिये वस्ति की नली सीधी, गौ की पूंछके समान आकृति वाली, चिकनी और गोलमुखकी होनी चाहिये। उसी नल के चौथे भागमें मुखकी ओर एक कर्णिका और नीचे की ओर दो कर्णिका होनी चाहिये। वृद्ध बैल, भैंसा, हरिण, अथवा बकरे की वस्ति (मूत्राशय) लाकर एक चौंगा बनवावै। यह बहुत दृढ, शिराहीन, गन्धरहित, कषाय वर्ण से रंगा हुआ, मृदु और शुद्ध होना चाहिये। रोगी की अवस्था का विचार करके वस्तिपुट छोटा वा बडा होनाचाहिये और यह पुटक वल के साथ डोर से अच्छी तरह बांध देना चाहिये।

वस्तेरभावेप्लवजोगलोवास्यादंकपादःसुघनःपटोवा॥

अर्थ—यदि वृषादिक की वस्ति उपलब्ध न हो तो मेंडकआदि के चमडे की वस्ति बनावै अथवा चौपाये पशुओं के भीतर का चमड़ा ग्रहण करके बनावै और जो कुछ भी न होसके तो गाढे कपड़े सेही काम चलालेवै॥

आस्थापनार्हंपुरुषंविधिज्ञःसमीक्ष्यपुण्येऽहनिशुक्लपक्षे। प्रशस्तनक्षत्रमुहूर्त्तयोगे जीर्णान्नमेकाग्रमुपक्रमेत॥

अर्थ—आस्थापन के योग्य रोगी को अन्न पचने के पिछे शुक्लपक्ष में शुभदिन नक्षत्र, मुहूर्त और योग देखकर सावधानी से आस्थापन देवै।

वलांगुडूचींत्रिफलांसरास्नांद्विपञ्चमूलेच पलोन्मितानि॥ अष्टौपलान्यर्द्धतुलां चमांसाच्छागानपचेदप्सुचतुर्थशेषम्॥ पूतंयवानीफलविल्वकुष्टवचाशताह्वाघन पिप्पलीनाम्॥ कल्कैर्गुडक्षौद्रघृतैःसतैलैर्युतंसुखोष्णंतुपिचुप्रमाणैः॥ गुडात्पलंद्विप्रसृतान्तुमात्रांस्नेहस्ययुक्त्यामधुसैन्धवादि॥ प्रक्षिप्यवस्तौमथितंखजेनसुवद्धमु-

निरूहपादांशसमेनतैलेनाम्लानिलघ्नौ षधसाधितेन । दत्वास्फिजौपाणितलेन हन्यात्स्नेहस्यशीघ्रागमरक्षणार्थं ॥ ईष त्पदांगुष्ठयुगञ्चकर्षेदुत्तानदेहस्यतलौ प्रमृज्यात्स्नेहेनपार्ष्ण्यंगुलिपिण्डिकाश्चये चास्यगात्रावयवारुगार्ताः ॥ तांश्चाव मृज्यात्सुसुखंततश्चनिद्रामुपासीतकृतो- पधानः ॥

अर्थ—निरूहकी मात्रा में चौथाई तेल अनुवासन में दिया जाता है,यह तेल कांजी और लघु औषध द्वारा सिद्ध किया जाता है । तेल शीघ्रही बाहर न आजाय इस लिये हथेलियों से चूतडों को धीरे धीरे कूटता रहै । दोनों पांवों के दोनों अंगूठों को कुछ खींचे । तथा चित्तशयन कराके पगतलियों को धीरे धीरे मलता रहै । एढी, उंगली दोनों पिंडली और पीडित अंगावयवों को तेल से मसलता रहै, जब उसको कुछ चैन सा होने लगै तब सिरके नीचे तकिया लगा दे जिस से सुखपूर्वक निद्रा आजाय॥

निरूहण द्रव्यका प्रमाण ।

भागाःकषायस्यतुपञ्चपित्तेस्नेहस्यषष्ठः प्रकृतौस्थितेच ॥ वातेविवृद्धेतुचतुर्थभा गो तथानिरूहेपुकफेऽष्टभागः ॥

अर्थ....पैत्तिकरोग में यदि वायु प्रकृतिस्थहोतो पांचभाग क्वाथ और छटाभाग स्नेहका देवै । यदि वायु वढ़ी हुई हो तो कषायसे चौथाई तेल देवै और कफमें निरूहण देनी होय तो आठवां भाग तेल डालना चाहिये ।

निरूहमात्राप्रसृतार्द्धमाद्येवर्षेततोऽर्द्धप्रसृ ताभिवृद्धिः । आद्वादशात्स्यात्प्रसृताभि वृद्धिरष्टादशाद्द्वादशतःपरंस्युः ॥ आस प्ततेस्तद्विहितंप्रमाणंबालेचवृद्धेचमृदुर्विशेषः

अर्थ —एकवर्षके बालकके लिये निरूहकी मात्रा एक पलहै, उससे आगे प्रतिवर्ष एक एक पलमात्रा अधिक बढानी चाहिये । इसतरह बारहवर्षकी अवस्थातक यही क्रम रक्खै । बारहवर्ष की अवस्थासे अठारहवर्ष की अवस्थातक प्रतिवर्ष दो २ पल वढावै। फिर अठारह वर्ष से सत्तर वर्ष की अवस्था तक यही प्रमाण होना चाहिये । बालक और वृद्ध के पक्ष में मृदु वस्ति का ध्यान रखना चाहिये । [किसी २ पुस्तक में ऐसा पाट भी है कि "अतःपरंषोडशवाद्विर्भे यम्,, यहां से आगे सोलह वर्षकी अवस्था तक जो प्रमाण होता है वह होना चाहिये अर्थात् २० पलकी वस्ति सत्तर से ऊपर की अवस्था में देवै ।

शयन का नियम ।

नात्युच्छ्रितंनात्यतिनीचपादंसपादपीठंश यनंप्रशस्तं ॥ प्रधानमृद्वास्तरणोपपन्नंप्रा क्छैरसंशुक्लपटोत्तरीयम् ॥

अर्थ—जिस मनुष्य को वस्ति दीगई हो उस के पलंग के पाये न वहुत ऊंचे और न बहुत नीचे होने चाहिये । पांव रख ने के लिये उन के नीचेभी तकिये होने चाहिये । पलंग पर वहुत कोमल विछौने विछावे, खाट का सिरहाना पूर्वकी ओर रक्खे । ओढने विछाने के कपडे सफेद होवें

भोजनादि नियम ।

भोज्यंपुनर्व्याधिमपेक्ष्यतत्तत्मकल्पयेद्यूषपयोरसाद्यैः ॥ सर्वेषुविद्याद्विधिमेतदाद्यंवक्ष्यामिवस्तीनतउत्तरीयान् ॥

अर्थ—वस्ति देने के पीछे व्याधि के अनुसार दूध,यूप और मांसरसादिक द्वारा भोजन बनाकर देवै। सब प्रकारकी वस्तियों में प्रथम नियम भोजन का यही है। अब अन्य वस्तियों का वर्णन करते हैं।

वातनाशकनिरूहण प्रयोग ॥

द्विपञ्चमूलस्यरसोऽम्लयुक्तः सच्छागमांसस्यसपूर्वपेष्यः ॥ त्रिस्नेहयुक्तःप्रवरो निरूहः सर्वानिलव्याधिहरःप्रदिष्टः ॥

अर्थ—बकरे का मांस और दशमूल इन को अठगुने जलमें सिद्ध करके चौथाई शेष रहने पर छानले तीनभाग यह क्वाथ और एक भाग तेल मिलाकर कुछ कांजी डालकर मिलाले। यह निरूहण प्रयोग सब प्रकार के वातरोगों के दूर करने में बहुत उत्तम है ॥

स्थिरादिवर्गस्यबलापटोल त्रायन्तिकैरन्डयवैर्युतस्य ॥ प्रस्थोरसश्छागरसार्धयुक्तः साध्यःपरःप्रस्थरसश्चयावत् । प्रियंगुकृष्णाघनकल्कयुक्तः सतैलसर्पिर्मधुसैन्धवश्च ॥ स्याद्दीपनोमांसबलप्रदश्च चक्षुर्बलंचापिददातिवस्तिः ॥

अर्थ—शालिपर्णादिपंचमूल,खरैटी, परवल, त्रायमाणा, अरंडकी जड और जौ इन को अठगुने जल में सिद्ध कर के चौथाई शेष रहने पर छानले। यह क्वाथ चारसेर बकरे का मांसरस दो सेर मिलाकर पाक करै जब दो सेर बच रहै, तब प्रियंगु, पीपल और मोथा इनका कल्क तथा तेल घी शहत और सेंधानमक मिलाकर अच्छी तरह से मथडाले। यह निरूहण वस्ति दीपन मांसवर्द्धक बलकारक और नेत्रों में बल को बढानेवाली है ॥

एरण्डमूलात्त्रिपलंपलानि ह्रस्वानिमूलानिचयानिपञ्च ॥ रास्नाश्वगन्धाथबला गुडूची पुनर्नवारग्वधदेवदारु ॥ भागाःपलांशामदनाष्टयुक्ता जलद्विकंसक्वथितेऽष्टशेषे । पेष्यंशताह्वाह्रपुषाप्रियंगु सपिप्पलीकंमधुकम्वचाच ॥ रसाञ्जनंवत्सकवीजमुस्तं भागाक्षमात्रंलवणांशयुक्तम् ॥ समाक्षिकस्तैलयुतःसमूत्रो वस्तिर्नृणांदीपनलेखनीयः ॥

अर्थ—अरंडकी जड तीन पल, लघु पंचमूल एक पल, रास्ना, असगंध, खरैटी गिलोय, पुनर्नवा, अमलतास, देवदारु, ये सब एक एक पल मेनफल आठ पल, इन सब को दो कंस जल में सिद्ध करके आठवां भाग रहने पर क्वाथ को छान लेवे फिर इस में सौंफ,हाऊबेर,प्रियंगु,पीपल,मुलहटी, वच, रसोत, इन्द्र जौ और मोथा दो दो तोले सेंधानमक दो तोले तथा शहत, तेल और गोमूत्र मिलाकर वस्ति देवे। यह वस्ति दीपनीय और लेखनीय होती है।

अरंडतेल की वस्ति के गुण ।

जंघोरुपादत्रिकपृष्ठशूलं कफावृतिमारुतनिग्रहंच ॥ विण्मूत्रवातग्रहणंसशूल-

माध्मातताममश्मरिशर्करंच आनाहपर्शोग्र हणीप्रदोषा नेरण्डबस्तिःशमयेत्प्रयुक्तः॥

अर्थ—अरंड के तेल की वस्ति देने से जंघा, ऊरू, पांव, त्रिक और पीठ का दर्द मिटजाता है। यह कफावृत वायु को नष्ट कर देती है। मल, मूत्र और अधोवायु का शूलयुक्त विबन्ध दूर होजाता है। आध्मान अश्मरी और शर्करा दूर हो जाती है। इसी तरह आनाह, अर्श और ग्रहणी दोष दूर होजाते हैं।

चतुष्पलेतैलघृतस्यभृष्टश्छागाच्छतार्धो दधिदाडिमाम्लः॥ रसःसपेष्योवलवर्ण मांस रेतोग्निवृद्धिमिर्यसिरोर्तिशस्तः॥

अर्थ—बकरे का मांस पचासपल अठगुने जल में पकाकर चौथाई शेष रहने पर रस को छान ले। इस मांसरस को दही और अनार रसकी खटाई डालकर दो पल तेल और दो पल घी में तलकर इस में सेंधानमक और मेनफल डालकर निरूहण देवे। इससे बल, वर्ण और मांसकी वृद्धि होती है। वीर्य और अग्नि की वृद्धि होती है। तिमिर रोग और शिरःपीडा भी दूर होजाती है।

जलद्विकंसेऽष्टपलंपलाशात् पक्त्वारसो ऽर्धाढकमात्रशेषः॥कल्कैर्वचामागधि कापलाभ्यां युक्तःशताह्वाद्विपलेनचा पि॥ ससैन्धवक्षौद्रयुतःसतैलो देयोनि रूहोबलवर्णकारीआनाहपार्श्वामयोनि दोषान्गुल्मानुदावर्तरुजंचहन्यात्॥

अर्थ—आठ पल ढाककी छाल दो कंस जल में पाक करके आधा शेष रहने पर छान लेवे पीछे वच और पीपल एक एक पल सौंफ दो पल, सेंधानमक शहत और तेल मिलाकर निरूहण वस्तिदेवे। इस से बल वर्ण बढता है। आनाह, पार्श्वशूल, योनिदोष, गुल्म, उदावर्त्त और वेदना ये सब शान्त होजाते हैं।

यष्ट्याह्वयस्याष्टपलेनसिद्धं पयःशताह्व वाफलपिप्पलीभिः॥ युक्तंससर्पिर्मधुवा तरक्त वैस्वर्यवीसर्पहतोनिरूहः॥

अर्थ—आठपल मुलहटी, अठगुना दूध और दूधसे चौगुना जल डालकर पकावै। जब दूध शेष रहजाय तब इस में सौंफ, मेनफल, पीपल, शहत और घी मिलाकर निरूहवस्ति देवै। यह वस्ति वातरक्त, स्वरभंगता और विसर्प को दूर करदेती है।

पित्तरोगनाशकनिरूहवस्ति।

यष्ट्याह्वलोध्राभयचन्दनैश्च भृतंपयो ग्र्यंकमलोत्पलैश्च॥ सशर्कराक्षौद्रयुतैः सुशीतः पित्तामयान्हन्तिसजीवनीयः॥

अर्थ—मुलहटी, लोध, हरड, रक्तचन्दन कमल और नीलोफर इनको डालकर दूध पकावै ठंडा होने पर जीवनीय गण का कल्क, चीनी और शहत डालकर पानकरै तो पित्तरोग दूर होजाते हैं॥

पित्तरोगनाशकअन्यविधि।

द्विकार्षिकांश्चन्दनपद्मकार्द्ध यष्ट्याह्व रास्नाष्टषभारिवाश्च॥सलोध्रमञ्जिष्ठब लायवाशाः स्थिराशरादिद्वयपञ्चमूलम्॥ निःक्वाथ्यतोयेनरसेनतेनभृतंपयोर्द्धाढक मम्बुहीनम्॥जीवन्तिमेदर्द्धिशतावरीभिः

वीरा।हिकाकोलिशतावरीभिःसितोपलाजीवकपद्मरेणुप्रपुण्डरीकैःकमलोत्पलैश्च ॥ लोध्रात्मगुप्तामधुकैर्विदारीमुञ्जातकैःकेशरचन्दनैश्चपिष्टैर्घृतक्षौद्रयुतैर्निरूहं ससैन्धवंशीतलमेवदद्यात् ॥ प्रत्यागतेच न्वरसेनशालीन्क्षीरेणवाधात्परिषिक्तगात्रः ॥ दाहातिसारप्रदरास्रपित्तहृत्पाण्डुरोगान्विषमज्वरंच॥सगुल्ममूत्रग्रहकामलादीन्सर्वामयान्पित्तकृतांश्चहन्ति ॥

अर्थ—रक्तचन्दन, पद्माख, ऋद्धी, मुलहटी, रास्ना, अडूसा, अनन्तमूल, लोध, मजीठ, खरैटी, जवासा, शालिपर्ण्यादि पंचमूल, तृणपचमूल इनसब द्रव्योंको दो दोकर्ष लेकर अठगुने जलमें क्काथकरै, चौथाई शेष रहने पर छान ले, फिर इस क्काथके साथ आधा आढक दूध पकावै जब जलते जलते दूध शेष रहजाय तब नीचे लिखे हुए जीवन्त्यादि द्रव्योंका कल्क, घी, शहत, और सेंधानमक डालकर ठंडा करके निरूहण वस्ति देवै। जीवन्त्यादिद्रव्य यथा जीवन्ती, मेदा, ऋद्धि, शतावर, बृहत्सतावर, काकोली, क्षीरकाकोली, सितावर, मिश्री, जीवक, पद्मरेणु, पुंडरियाकाठ, कमल, नीलोफर, लोध, कैंचकेबीज, मुलहटी, विदारीकन्द, मूज, केसर, चन्दन इन सब द्रव्यों को पीसकर उसमें डाल देवै। वस्तिके प्रत्यागत होने पर कुछ गरम जलसे देह धोकर जांगल मांसरस वा दूधके साथ शाली चांवलोंका भोजनकरै। इस वस्तिसे दाह, अतिसार, प्रदर, रक्तपित्त, हृद्रोग, पाण्डुरोग, विषमज्वर, गुल्म, मूत्रग्रह, विबन्ध, तथा कामलादिक सम्पूर्ण प्रकारकी पित्त व्याधियां शान्त होजाती हैं।

द्राक्षादिकाश्मर्यमधूकसेव्यैःसशारिवाचन्दनशीतपाक्यैः। पयःशृतंश्रावणिमुद्गपर्णीतुमात्मगुप्तामधुयष्टिकल्कैः॥ गोधूमचूर्णैश्वतथाक्षमात्रैःसक्षौद्रसर्पिर्मधुयष्टितैलैः पथ्याविदारीक्षुरसैर्गुडेनवस्तियुतंपित्तहरं विदध्यात्॥हृन्नाभिपार्श्वोत्तमदेहदाहेदाहेऽन्तरस्थेचसकृच्छ्रमूत्रे॥ क्षीणेक्षतेरेतसि चापिनष्टेपैत्तेऽतिसारेचनृणांप्रशस्तः॥

अर्थ—द्राक्षादि द्रव्य, खंभारी, महुआ, उसीर, शारिवा, रक्तचंदन, और खरैटी इनके कल्क में चौगुना जल और अठगुना दूध डालकर औटावै जब दूध शेष रहजाय तब उसमें श्रावणी, मुद्गपर्णी, कैंचके बीज, मुलहटी, का कल्क मिलादेवै। फिर इसमें दोतोले गेंहूं का चूर्ण, शहत, घी, मुलहटी का तेल, हरड, विदारीकन्द, ईख का रस और गुड मिलादेवै। यह वस्ति पित्तनाशक होती है। इससे हृदय, नाभि, पसली और मस्तक का दाह, अन्तरस्थ दाह, मूत्रकृच्छ्र की जलन, क्षीणक्षत रोग, नष्टशुक्ररोग, और पित्तज अतिसार दूर होजाते हैं।

कफनाशकवस्ति॥

कोशातकारग्वधदेवदारुशार्ङ्गष्टमूर्वाकुटजार्कपाठाः ॥ पक्त्वाकुलत्थान्बृहतींचतोये रसस्यतस्यप्रसृतादशस्युः॥ तांसर्षपैलामदनैःसकुष्ठैरक्षप्रमाणैःप्रसृतैश्चयुक्तान्॥ फलादितैलस्य समाक्षिकस्य क्षारस्य तैलस्य च सार्षपस्य । दद्यान्निरूहं

फरोगिणेऽशोमन्दाग्निषेचाप्यशतद्विषेच॥

अर्थ—कोशातकी, अमलतास, देवदारु, मरोडफली, शार्ङ्गेष्टा,कुडा की छाल,आक, पाठा, कुलथी और बडी कटेरी इनको अठगुने जलमें पकावे जब इसमें से दस प्रसृत रहजाय तब क्काथ को निकालले फिर इसमें सरसों, इलायची, मेनफल और कूट इनसब द्रव्यों का दोदोपल कल्क, मेनफल का तेल दोपल, शहतदोपल, जवाखार दोपल और सरसोंकातेल दोपल मिलाकर निरूहण वस्ति देवै। इससे कफजन्यरोग, मन्दाग्नि और अन्नमें अरुचि होना ये सब मिटजाते हैं

पटोलपथ्यामरदारुभिर्वा
सपिप्पलीकैःक्वथितैर्जलाख्यैः॥

अर्थ—परवल, हरड, देवदारु और पीपल इनका क्काथ पान कराने से भी उक्तरोग दूर होजाते हैं।

द्विपञ्चमूलेत्रिफलासविल्वाफलानिगोमूत्रयुतःकषायः॥ कलिङ्गपाठाफलमुस्तकल्कासैन्धवःक्षारमधुःसतैलः॥ निरूहमुख्यःकफजान्विकारानसपाण्डुरोगालसकामदोषान्॥

अर्थ—दोनों पंचमूल,त्रिफला, बेलगिरी और मेनफल इनका अठगुने जल में क्वाथ फरले। फिर इस क्वाथ में गोमूत्र, इन्द्रजौ, पाठा,मेनफल और मोथा का कल्क, सेंधानमक, जवाखार, शहत और तेल मिलाकर निरूहण देने से कफरोग, पांडुरोग, अलसक और आमदोष दूर होजाते हैं।

वायुनाशक वस्ति।

रास्नामृतैरण्डविडङ्गदारुसप्तच्छदोशीरसुराह्वनिम्बैः॥श्यामाकभूनिम्बपटोलपाठातिक्ताखुपर्णीदशमूलमुस्तैः॥त्रायन्तिकाशिग्रुफलत्रिकैश्चक्काथःसपिण्डीतकतोयमूत्रः॥ यष्ट्याह्वकृष्णाफलिनीशताह्वारसाञ्जनश्वेतवचाविडङ्गैः॥ कलिङ्गपाठाम्बुदसैन्धवश्चकल्कैःससर्पिर्मधुतैलमिश्रः॥अयंनिरूहःक्रिमिकुष्ठमेहब्रध्नोदराजीर्णकफातुरेभ्यः॥ रूक्षापथैरत्यपितर्पितेभ्यः ऐतेपुरोगेष्वपिसत्सुदत्तः॥ निहत्यवातंज्वलनंप्रदीप्यविजित्यरोगांश्चबलंकरोति हन्यात्तथामारुतमूत्रसङ्गमवस्तेस्तथाटोपमथापिघोरम्॥

अर्थ—रास्ना, गिलोय, अरंड की जड, वायविडंग, देवदारु,सतच्छद,खस, देवदारू, नीम की छाल,सोंखिया, चिरायता, परवल, पाठा, कुटकी, मूषकपर्णी, दशमूल, मोथा, जावित्री, सहजना और त्रिफला इन को अठगुने जल में चढादे, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छान ले। फिर इस क्वाथ में मेनफल का क्वाथ,गोमूत्र,मुलहटी,पीपल प्रियंगु,सौंफ, रसौत, सफेद वच,वायविडंग, इन्द्रजौ, पाठा, मोथा और सेंधानमक इनका कल्क तथा घी, शहत और तेल मिला देवै यह निरूह वस्ति क्रिमरोग, कुष्ठ, प्रमेह, ब्रध्न, उदररोग, अजीर्ण और कफको दूर करती है। जो रूक्ष औषधों के सेवन से अपतर्पित हुआ हो, उसको भी उपयोगी होती है इससे वायु नष्ट होती है, जठ-

राग्नि बढती है, यह रोगों को दूर कर के देह में बल बढाती है, अधोवायु और मूत्र के विबन्ध को दूर करके वस्तिके घोर आटोप को भी दूर करती है।

पुनर्नवैरण्डवृषाश्मभेदश्वदंष्ट्रभूतीकबलापलाशाः॥ द्विपञ्चमूलञ्चपलांशिकानि क्षुण्णानिधौतानिपलानिचाष्टौ॥ बिल्वंयवान्कोलकुलत्थधान्यफलानिचैवमसृतोन्मितानि॥ पयोजलद्व्याढकयोःशृतंतत्क्षीरावशेषंसितवस्त्रपूतम्॥ वचाशताह्वामरदारुकुष्ठयष्ट्याह्वसिद्धार्थकपिप्पलीनाम्॥कल्कैर्यवान्यामदनैश्चयुक्तंनात्युष्णशीतंगुडसैन्धवाक्तम्॥क्षौद्रस्यतैलस्यचसर्पिषश्चतथैवयुक्तंप्रसृतैस्त्रिभिश्च। दद्यान्निरूहंविधिनाविधिज्ञःसंसर्वसंसर्गकृतामयघ्नः॥

अर्थ—सांठ, अरंड की जड, अडूसा, पाखान भेद, सफेद सांठ, अजवायन, खरैटी ढाक, दसमूल, ये सब एक एक पल बेलगिरी आठ पल, तथा जौ, बेर, कुलथी, धनियां और मैनफल पृथक् २ दो दो पल अच्छी तरह कूटकर धोकर एक आढक जल और एक आढक दूध में कर के दूध शेष रहने पर सफेद वस्त्र में छान ले फिर उसी दूध में वच, सौंफ, देवदारू, कूठ, मुलहटी, पीपल, अजवायन और मैनफल का कल्क, गुड, सैंधानमक, शहत दो पल, दो पल तेल, और दो पल घी मिलाकर न बहुत गरम, न बहुत ठंढा कर के निरूहण देवै। यह वस्ति द्वन्द्वज रोगों को दूर करती है॥

स्निग्धोष्णएकःपवनेसमानौ। द्वौस्वादुशीतौपयसाचपित्ते॥ त्रयःसमूत्राःकटुकोष्णतीक्ष्णाःकफेनिरूहानपरंविधेयाः॥ रसेनवातेप्रतिभोजनंस्यात्क्षीरेणपित्तेतुकफेचयूषैः॥ तथानुवास्येपुचबिल्वतैलंस्याज्जीवनीयंफलसाधितंच॥

अर्थ—वातज व्याधि में एक समय में एक स्निग्धोष्ण निरूहण वस्ति देवै। पित्तज व्याधि में दूध के साथ स्वादु और शीतल दो वस्ति एक साथ देवै। कफ व्याधि में गोमूत्र के साथ कटु, उष्ण और तीक्ष्ण तीन वस्ति एक समय में देवै।

वायुरोग में निरूह देने के पीछे मांसरस पित्त में दूध और कफ में यूप के साथ पथ्य देवै। इन सब रोगोंमें अनुवासन देने के निमित्त वायुरोग में बिल्वतेल, पित्तरोग में जीवनीय गण से सिद्ध किया हुआ तेल और कफरोग में मैनफलादि से सिद्ध किया हुआ तेल देना चाहिये॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन।

इतीदमुक्तंनिखिलंयथावद्वस्तिप्रदानस्यविधानमग्र्यम्॥ योऽधीत्यविद्वानिहवस्तिकर्मकरोतिलोकेलभतेससिद्धिम्॥

अर्थ—इस तरह इस अध्याय में वस्ति देने की युक्तियां यथावत् वर्णन की गई हैं, जो विद्वान् इन को सोच समझकर वस्ति कर्म करने में प्रवृत्त होता है वह संसार में सिद्धि पाता है॥

इतिश्रीचरकसंहितायांसिद्धिस्थानेवस्तिसूत्रीयसिद्धिर्नामतृतीयोऽध्यायः॥३॥

चतुर्थोऽध्यायः।

अथातःस्नेहव्यापादिकांसिद्धिंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तरभगवान् आत्रेय बोले कि अब हम स्नेह व्यापादिका सिद्धि की व्याख्या करेंगे।

स्नेहवस्तीन्निबोधेमान्वातपित्तकफापहान्। मिथ्याप्रणिहितानाञ्चव्यापदःसचिकित्सिताः ॥

अर्थ....अबहम वात, पित्त और कफको दूर करनेवाली स्नेह वस्तियों का वर्णन करतेहैं। इन वस्तियों के मिथ्या प्रयोग से जो २ दुर्घटना होती हैं, उनका और उनकी चिकित्साओं का वर्णन भी करेंगे।

वातनाशक अनुवासन विधि।

दशमूलंवलां रास्नामश्वगन्धांपुनर्नवाम्
गुडूच्येरण्डभूतीकभार्गीवृषकरोहिषम् ॥
शतावरींसहचरंकाकनासांपलांशिकम्।
यवमाषातसीकोलकुलत्थान्प्रसृतोन्मिता।
न् ॥ चतुर्द्रोणेऽम्भसःपक्त्वाद्रोणशेषेण तेनच। पचेत्तैलाढकंक्षीरेजीवनीयैःपलोन्मितैः ॥ अनुवासनमेतद्धिसर्ववातविकारनुत् ॥

अर्थ....दशमूल, खैरटी, रास्ना, असगंध सोंठ, गिलोय, अरंडकीजड, अजवायन भाडंगी, अडूसा, रोहिषतृण, सितावर, सहचरी, कौआटोंटी, ये सब एक २ पल,जौ उरद, अलसा, बेर,कुलथी प्रत्येक दो२पल इन सबका च्यारद्रोण जलमें पकावै। पकतेर जाय एक द्रोण रहजाय तब उसे छानले फिरइस क्वाथमें एकआढकदूध, एक आढक तेल और एक २ पल जीवनीय गणके द्रव्योंका कल्क मिलाकर पकावे। इस तेलके अनुवासन वस्ति देने से सब प्रकारकी वात व्याधियां दूर हो जातीहैं।

वसाप्रयोग॥

आनूपानांवसातद्वज्जीवनीयोपसाधिता

अर्थ—उक्त दस मूलादि द्रव्यों के क्वाथ में दूध, जीवनीय गणोक्त द्रव्योंका कल्क और तेलके वदलेमें एक आढक आनूप जीवों की चर्बी पकाकर अनुवासन देने से भी वातरोग दूर होते हैं।

अन्यतैल।

शताह्वायवविल्वाम्लैःसिद्धंतैलंसमीरणे।

अर्थ—सोंफ, जौ और वेलगिरी, इनके कल्क, कांजी और तेलको मिलाकर पकावै। फिर इस तेलकी अनुवासन वस्ति देवै तो उक्तफल होता है ॥

अनुवासनीयघृत॥

सैन्धवेनाग्निवर्णेनतप्तंचानिलनुद्घृतम् ॥

अर्थ—सेंधेनमक को आगमें देकर लाल गरम करले फिर इसे घीमें डालदे। इस सुहाते हुए गरम घीकी अनुवासनवस्ति देवै तो उक्तफल होता है ॥

जीवन्तीमदनंमेदांश्रावणींमधुकंवलाम्। शताह्वर्षभकौकृष्णांकाकनासांशतावरीम् ॥ स्वगुप्तांक्षीरकाकोलींकर्कटाख्यांशटींवचाम् ॥ पिष्ट्वातैलंघृतंक्षीरेसाधयेत चतुर्गुणे ॥ बृंहणंवातपित्तघ्नंवलशुक्राग्निवर्द्धनम्। मूत्ररेतोरजोदोषान्हरेत्तदनुवासनम् ॥

अर्थ—जीवन्ती, मेनफल, मेदा, श्रावणी, मुलहटी, खरैटी, सोंठ, ऋषभक, पीपल, कौआटोंटी, सितावर, कैंच, के बीज, क्षीर-काकोली, काकडासींगी, कचूर, वच, इन सबको पीसकर मिलाहुआ तेल और घी चार सेर, दूध सोलहसेर इन सबका पाक करै यह अनुवासन बृंहणकर्त्ता, वातपित्तनाशक बल, वीर्य और अग्निको बढानेवाला है । इस से मूत्रदोष वीर्यदोष, और रजोदोष दूर होजाते हैं ॥

लाभतश्चन्दनाद्यैश्चपिष्टैःक्षीरचतुर्गुणम्। तैलपादंघृतंसिद्धंपित्तघ्नमनुवासनम् ॥

अर्थ ज्वर चिकित्सा में जो चन्दनादिक तैल के द्रव्य वर्णन कियेगये हैं उन में से जो जो मिलसके उनको पीसकर समान तेल, तेल से चौगुना घृत और घृत से चौगुना दूध डालकर पाक करै यह वस्ति पित्तरोगों को दूर करती है ।

सैन्धवंमदनंकुष्ठंशताह्वांनिचुलंबलाम् । ह्रीवेरंमधुकंभार्गींदेवदारुसकट्फलम् । नागरंपुष्करंमेदांचविकांचित्रकंशटीम् ॥ विडङ्गातिविषेश्यामांहरेणुंनीलिनींस्थिराम् । विल्वाजमोदौकृष्णांचदन्तींरास्नांच पेषयेत् ॥ साध्यमेरण्डतैलंवातैलंवाकफरोगनुत् । वर्ध्मोदावर्तगुल्मार्शःप्लीहमेहाढ्यमारुतान् ॥ आनाहमश्मरींचैवहन्याचद नुवासनम् ।

अर्थ—सैंधानमक, मेनफल, कूठ, सोंफ, हिज्जल, खरैटी, हाऊबेर, मुलहटी, भाडंगी देवदारु, कायफल, सोंठ, पौहकरमूल, मेदा, चव्य, चीता, कचूर, वायविडंग, अतीस, श्यामानिसोथ, रेणुका, नीलिनी, शालिपर्णी, विल्व, अजमोद, पीपल, दन्ती, रास्ना इन सबको समानभाग लेकर पीस लेवै । इस कल्क के साथ अरंडका तेल वा सरसों आदि का तेल सिद्ध करके अनुवासन देवै तो कफरोग, वर्ध्म, उदावर्त्त, गुल्म, अर्श, प्लीहा, प्रमेह, आढ्यवात, आनाह और अश्मरी, ये सबरोग दूर होजाते हैं

मदनैर्वाम्लसंयुक्तैर्विल्वाद्येनगणेनवा । तैलंकफहरैर्वापिकफघ्नंकल्पयेद्भिषक् ।

अर्थ—मेनफल का कल्क और कांजी अथवा विल्वादि पंचमूल का क्वाथ और कल्क अथवा कफनाशक पिप्पल्यादि गण के क्वाथ के साथ तेल पकाकर अनुवासन देने से कफ दूर होता है ।

विडंगैरण्डरजनीपटोलत्रिफलामृताः । जातिप्रवालानिर्गुण्डीदशमूलाखुपर्णिकाः निम्बपाठासहचरसम्पाककरवीरकम् । एषांक्वाथेनविपचेत्तैलमेभिश्चकल्कितैः॥

अर्थ वायविडंग, अरंडकीजड़, हल्दी, परवल, त्रिफला, गिलोय, चमेली के पत्ते, निर्गुंडी, दशमूल, मूषिकपर्णी, नीम, पाठा, सहचर, अमलतास, करवीरकी छाल इनके क्वाथ में इनही का कल्क डालकर तेल पकाकर अनुवासन देवै तो कफरोग दूर होजाते हैं ।

फलविल्वत्रिवृत्कृष्णारास्नाभूनिम्बदारुभिः । सप्तपर्णवचोशीरदार्वीकुष्टकार्लम-कैः ॥ लतापष्ठिशताह्वाग्निमुर्वाचोरक

पौष्करैः । तत्कुष्ठानिक्रमीन्मेहानर्शांसि ग्रहणीगदम्॥क्लैव्यंविषमाग्नित्वंमलदोषत्रयंतथा । प्रयुक्तंप्रणुदत्याशुपानाभ्यंगानुवासनैः ॥

अर्थ—मेनफल, बेलगिरी, निसोथ, पीपल, रास्ना, चिरायता, देवदारु, सप्तपर्णी, वच, खस, दारुहल्दी, कूठ, इन्द्रजौ, प्रियंगु, मुलहटी, सौंफ, चीता, कचूर, चोरक और पुहकरमूल इन द्रव्योंके कल्क के साथ सिद्ध किया हुआ तेल पान, अभ्यंग और अनुवासनमें देने से कोढ, क्रिमि, प्रमेह, अर्श, गृहणीरोग, क्लीवता, विषमाग्नि और त्रिदोष को दूर करता है ॥

स्नेह वस्ति के गुण ।

व्याधिव्यायामकर्माध्वक्षीणाबलानिरोजसाम् ॥ क्षीणशुक्रस्यचातीवस्नेहवस्तिर्बलप्रदः । पादजंघोरुपृष्ठस्यकट्याश्चास्थिरतांपराम् ॥ जनयेदप्रजानांचप्रजांस्त्रीणां तथानृणाम् ॥

अर्थ—जो मनुष्य व्याधि, व्यायाम, कर्म, मार्ग भ्रमण से क्षीण होगये हैं । वा और किसी कारणसे क्षीण होगये है, वा जिन के हृदय का ओजो धातु नष्ट होगया है, वा जिन का शुक्र क्षीण पडगया है उन के पक्ष में स्नेह वस्ति बहुतही बल बढाने वाली है । पांव, जांघ, ऊरू, पीठ और कमर को अत्यन्त दृढ करदेती है । जिन स्त्री पुरुषों के सन्तान नहीं होती है उन के सन्तान होने लगती है ।

स्नेहवस्ति में छः आपत्ति ।

वातपित्तकफान्यन्नपुरीषैरावृतस्यच ॥ अभुक्तेचप्रणीतस्यस्नेहवस्तेःषडापदः॥

अर्थ—यह वात, पित्त, कफ, अन्न और पांचवें पुरीष से आवृत होजाती है तथा विना भोजन किये भी इसका प्रयोग करने से आपत्ति होती है । इस तरह स्नेह वस्ति में छः विघ्न हैं ।

वस्ति में विघ्न के कारण ।

शीतोऽल्पोवाधिकेवातेपित्तेत्युष्णःकफेमृदुः ॥ अतिभुक्तेगुरुर्वर्चःसञ्चयेऽल्पबलस्तथा । दत्तस्तैरावृतःस्नेहोनयात्यभिभवादपि ॥ अभुक्तेनावृतत्वाच्चयात्यूर्द्धं तस्य लक्षणम् ।

अर्थ—अत्यन्त कुपित वात में शीतल वा अल्प वस्ति देने से वह प्रत्यागमन नहीं कर सकती है, इसी तरह पित्तकी अधिकता में अत्युष्ण वस्ति, कफकी अधिकता में अत्यन्त मृदु वस्ति प्रत्यागमन नहीं कर सकती है । बहुत भोजन करलेने पर भारी वस्ति और विष्ठा की अधिकता में अल्पवस्ति प्रत्यागमन नहीं कर सक्ती है तथा जो अभुक्त अवस्था में वस्ति दीजाती है उसका कोई रोकनेवाला नहीं होता है इस से वह ऊपरको चली जाती है ।

वातावृत स्नेहवस्ति के लक्षण ।

अङ्गमर्दज्वराध्मानशीतस्तम्भोरुपीडनैः पार्श्वरुग्वेष्टनैर्विद्यात्स्नेहंवातावृतंभिषक्

अर्थ—अंगमर्द, ज्वर, आध्मान, शीत, स्तम्भता, ऊरूओं में पीडा, पसली में दर्द

और शरीर में अंगडाई आती हो तो यह समझना चाहिये कि स्नेहवस्ति वायुद्वारा आवृत है ।

वातावृत स्नेहवस्ति में उपाय ।

स्निग्धाम्ललवणोष्णोदैस्तैरास्नापीतद्रुतिल्वकैः॥सौवीरकसुराकोलकुलत्थयवसाधितैः॥निरूहैर्निर्हरेत्सम्यक्समूत्रैःपञ्चमूलिकैः ॥ ताभ्यामेवचतैलाभ्यांसायंभुक्तेऽनुवासयेत् ॥

अर्थ—वातावृत स्नेह के निकालने के लिये रास्ना, सरल काष्ठ, लोध का कल्क तथा सौवीरक, सुरा, बेर, कुलथी और जौ इनके क्वाथ के साथ सिद्ध करके स्नेह, कांजी, सेंधानमक डालकर उष्ण निरूहण वस्ति देवै । अथवा गोमूत्र और पंचमूल के क्वाथ के साथ निरूहण देवे ॥अथवा उक्त दोनों प्रकारके द्रव्योंके साथ तेल सिद्धकर के भोजन करने के पीछे अनुवासन वस्तिदेवै

पित्तावृतवस्तिकेलक्षण ।

दाहरागतृषामोहतमकज्वरदूषणैः।विद्यात्पित्तावृतंस्वादुतिक्तैस्तंवस्तिभिर्हरेत्॥

अर्थ—स्नेहवस्ति देने के पीछे शरीर में दाह, ललाई, तृषा, मोह, तमक और ज्वर हो तौ समझना चाहिये कि स्नेह पित्तावृत है इस में स्वादु और तिक्त निरूहण देकर स्नेह को निकाल देवै ।

कफावृत वस्ति के लक्षण ।

तन्द्राशीतज्वरालस्यप्रसेकारुचिगौरवैः॥ समूर्च्छाग्लानिभिर्विद्यात्श्लेष्मणास्नेहमावृतम् ।

अर्थ—स्नेहन वस्ति के पीछे तन्द्रा, शीतज्वर, आलस्य, प्रसेक, अरुचि, भारापन, मूर्च्छा और ग्लानि हो तो स्नेहको कफावृत समझना चाहिये ॥

कफावृत वस्ति में उपाय ।

कटुतिक्तकषायोष्णःसुरामूत्रोपसाधितैः। फलतैलयुतैःसाम्लैर्वस्तिभिस्तंविनिर्हरेत् ।

अर्थ—कफावृत वस्ति में कटु, तिक्त, कषाय और उष्ण द्रव्य, तथा सुरा और गोमूत्र के साथ सिद्धकी हुई निरूहण वस्ति जिस में मेनफल का कल्क, तेल,औरकांजी मिला हो देकर स्नेह को निकाल देवै ।

अतिभोजनावृत वस्ति के लक्षण॥

छर्दिमूर्च्छारुचिग्लानिशूलनिद्रांगमर्दनैः॥ आमलिंगैःसदाहैस्तंविद्यादत्यशनावृतम् ।

अर्थ—वमन, मूर्च्छा, अरुचि ग्लानि, शूल, निद्रा, अंगमर्द, आम के लक्षण और दाह हो तो समझना चाहिये कि स्नेह अत्यन्त भोजन से आवृत है ।

उक्तरोगमेंउपाय ॥

कटूनांलवणानांचक्वाथैश्चूर्णैश्चपाचनम् विरेकोमृदुरत्रामविहिताचक्रियाहिता ।

अर्थ—इस में कटु और लवण द्रव्यों का क्वाथ और चूर्णद्वारा आमदोषका पचाना ठीक है, इसी तरह मृदु विरेचन और आमनाशक अन्य अन्य क्रिया भी हित हैं ।

पुरीषावृत वस्ति के लक्षणोपाय ।

विण्मूत्रानिलसङ्गार्तिगुरुत्वाध्मानहृद्ग्रहैः। स्नेहंविडावृतंज्ञात्वास्नेहस्वेदैःसवर्तिभिः श्यामाबिल्वादिसिद्धैश्चनिरूहैःसानुवा-

सनैःनिर्हरेद्विधिनासम्यगुदावर्त्तहरेणच

अर्थ—स्नेहन वस्ति के ग्रहण करने के पीछे जो विष्टा, मूत्र और अधोवायु का विबन्ध हो, भारापन, अफरा और हृदय में शूल होता होतो समझना चाहिये कि स्नेह विष्टा से आवृत है। उसके निकालने के लिये स्नेह स्वेद और वर्ति प्रयोग करै तथा श्यामा निसोथ की जड, और बिल्वादि पंचमूल के क्वाथ के साथ सिद्ध की हुई निरूह और अनुवासन वस्ति देवै।तथा इस में उदावर्तनाशक क्रियाओंका करनाभी हितहै

ऊर्ध्वगतवस्ति के लक्षण ॥

अभुक्तेशून्यपायौवावेगात्स्नेहोऽतिपीडितःधावत्यूर्ध्वंततःकण्ठादूर्द्ध्वेभ्यःखेभ्यएत्यपि

अर्थ विना भोजन किये वा शून्य गुदा में स्नेह वस्ति का अत्यन्त पीडन करने से स्नेह ऊपर को दौडता है तब वह कंठ से ऊपर के मार्ग मुख और नासिका द्वारा निकल पडता है ॥

ऊर्ध्वगतवस्तिमेंउपाय ।

मूत्रश्यामात्रिवृत्सिद्धोयवकोलकुलत्थवान् तत्सिद्धतैलइष्टोऽत्रनिरूहःसानुवासनः

अर्थ गोमूत्र, दोनों प्रकार की निसोथ इन को जौ, बेर, कुलथी के क्वाथ के साथ सिद्ध करके निरूह देवै अथवा उक्त द्रव्यों के साथ सिद्ध करके तेल देवै तो ऊर्ध्वगतवस्ति ठीक होजाती है ।

कण्ठादगच्छतःस्तम्भकण्ठग्रहविरेचनैः॥ छर्दिघ्नीभिःक्रियाभिश्चतस्यकार्यंनिवर्त्तनम्।

अर्थ—कण्ठ से स्नेह के निकलने पर कंठ रुककर स्नेह को रोक लेता है, इस का निवर्त्तन विरेचन और छर्दिनाशक चिकित्सा से होता है ।

उपेक्ष्य वस्ति

यस्यनोपद्रवंकुर्य्यात्स्नेहवस्तिरनिसृतः॥ सर्वोऽल्पोवृतरौक्ष्याद्वोपेक्ष्यःसहिविजानता॥

अर्थ—रूक्षताके कारण स्नेहनवस्ति विना निकले किसी प्रकार का उपद्रव न करै उसका सब वा थोडा स्नेह उपेक्षा करने के योग्य होता है।

मुक्तस्नेहका पश्चात् कर्म॥

मुक्तस्नेहंसुखोष्णंचलघुपथ्योपसेवनम्॥ भुक्तवान्मात्रयायोज्यमनुवास्यस्त्र्यहात्र्यहात्।धान्यनागरसिद्धंहितोयंदद्याद्विचक्षण । व्युषितायनिशावल्यमुष्णंवाकेवलंजलम्॥

अर्थ—आवृत स्नेह के निकल जाने के पीछे सुखोष्ण हलका पथ्य मात्राके अनुसार देवै फिर तीसरे दिन अनुवासन देवै । पीने के लिये धनिया और सोंठ डालकर औटाया हुआ जल देवै, अथवा रात्रि में भोजन न कराके प्रातःकाल केवल उष्ण जल देवै ।

उष्णोदक के गुण

स्नेहोऽजीर्णंजरयतिश्लेष्माणंतद्भिनत्ति च॥ मारुतस्यानुलोम्यंचकुर्य्यादुष्णोदकंनृणाम्॥ वमनवाविरेकेचनिरूहेसानु-

वासने ॥ तस्मादुष्णोदकंदेयंवातश्लेष्म प्रशान्तये॥

अर्थ—उष्णजल अजीर्ण स्नेह को पचाता है। कफका भेदन करता है और वायुका अनुलोमन करता है इसी से वमन, विरेचन निरूहण वा अनुवासन में वातकफकी शान्ति के लिये उष्ण जल देना चाहिये।

रूक्षनित्यस्तुदीप्ताग्निर्व्यायामीमारुताशयी वंक्षणश्रोण्युदावर्त्तवातार्त्ताश्चादिनेदिने॥ एषांचाशुजरास्नेहोयात्यम्बुसिकतास्विव

अर्थ—नित्यप्रति रूक्ष सेवन करनेवाले दीप्ताग्नि वाले, व्यायामशील, वात कोष्ठवाले, तथा जिनकी वंक्षण, श्रोणी और उदावर्त्त वातग्रस्त हों उन्हें दिया हुआ स्नेह शीघ्रही ऐसे जीर्ण होजाता है जैसे वालूरेत में डाला हुआ जल शुष्क होजाता है।

अतोऽन्येषांत्र्यहात्प्रायःस्नेहंपचतिपावकः॥नत्वामंप्रणयेत्स्नेहंसह्यभिष्यन्दयेद्गुदम् ॥

अर्थ—ऊपर कहे हुए मनुष्यों से भिन्न मनुष्यों की अग्नि तीन दिन में स्नेह को पचा सकती है॥ वस्ति द्वारा आम स्नेह का प्रयोग कदापि करनाउचित नहीं है, क्यों कि इस से गुदा अभिष्यन्दित होजाती है॥

सावशेषंचकुर्वीतवायुःशेषेहितिष्ठति ।

अर्थ—वस्ति में जितना स्नेह होता है उस सब का प्रयोग नहीं किया जाता है क्योंकि बचे हुए स्नेह के साथ वायु होती है

नचैवगुदकण्ठाभ्यांदद्यात्स्नेहमनन्तरम्॥ उभयस्मात्समङ्गच्छन्वाय्वग्नीनदूषयेत्समं

अर्थ—एक ही समय में गुदा और कंठ दोनों से स्नेह का प्रयोग करना उचित नहीं है,क्योंकि एक साथ जानेसे वायु और अग्नि को दूषित करता है।

स्नेहवस्तिनिरूहंवानैकमेवातिशीलयेत्॥ उत्क्लेशाग्निवधौस्नेहान्निरूहात्पवनाद्भयम् ॥ तस्मान्निरूढःस्नेह्यःस्यान्निरूढश्चानुवासितः॥ स्नेहशोधनयुक्त्यैववस्तिकर्मत्रिदोषनुत् ॥

अर्थ—स्नेह वस्ति और निरूह वस्ति एक साथ देना ठीक नहींहै,क्योंकि स्नेहसे उत्क्लेश और अग्निका नाश होता है और निरूह से वायुका भय होता है। इस लिये जिसको निरूह देना हो उसे प्रथम स्नेहन देवै स्नेहन और शोधन की युक्तिही से वस्तिकर्म त्रिदोषनाशक होता है।

कर्मव्यायामभाराध्वयानस्त्रीकर्षितेषुच॥ दुर्बलेवातभग्नेचमात्रावस्तिःसदामतः ह्रस्वायाःस्नेहमात्रायामात्रावस्तिःसमोभवेत् ॥ यथेष्टाहारचेष्टस्यसर्वकालंनिरत्ययः वल्यंसुखोपचर्य्यंचसुखंस्पष्टपुरीपकृत् ॥ स्नेहमात्राविधानंहिबृंहणंवातरक्तनुत् ।

अर्थ—परिश्रम, व्यायाम, भारवहन,मार्ग की थकावट, सवारी से थकित और स्त्रीसंगम से कर्षित तथा दुर्बल और वातग्रस्त रोगों में नीचे लिखीहुई मात्रावस्ति देनी चाहिये। मात्रावस्ति स्नेह की ह्रस्वमात्रा के समान होती है। मात्रावस्ति ग्रहण करके यथेष्ट आहार विहार करना चाहिये जिससे किसी प्रकार का उपद्रव न हो। मात्रानु-

सार स्नेह प्रयोग करनेसे यह स्नेह बल को बढाता है, मुख करता है दस्त सुख पूर्वक होता है। वातरक्त दूर होजाता है और पुष्टाई बढतीहै [मोस्नेह आधेदिन में पचजाता है और जो सुकुमार मनुष्यों के पक्ष में प्रयोग किया जाता है, उसेही स्नेह की ह्रस्वमात्रा कहते हैं] ॥

अध्यायका संक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकौ ।

वातादीनांशमायोक्ताःप्रवराःस्नेहवस्तयः। तेषांचाज्ञप्रयुक्तानांव्यापदःसचिकित्सिताः । प्राग्भोज्यंस्नेहवस्तेर्यद्यद्युवंयेऽर्हास्त्र्यहाश्चये । स्नेहवस्तिविधिश्चोक्तो मात्रावस्तिविधिस्तथा॥

अर्थ—इस स्नेहव्यापद अध्याय में वातादिदोषोंकी शान्ति के लिये उत्तम२ स्नेह वस्तियों का वर्णन कियागया है, तथा अयोग्य रीति से प्रयोग की हुई स्नेहवस्तियों के रोग, उनकी चिकित्सा और वस्ति के प्रयोग करने से पहिले जो आहार किया जाता है, जो स्नेह प्रयोग के योग्य हैं, जो तीन दिन के भीतर स्नेहवस्ति के योग्य हैं, उनका भी वर्णन कियागया है। तथा इसमें स्नेहवस्ति की विधि और मात्रावस्ति की विधि भी वर्णन की गई है ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांसिद्धिस्थानेस्नेहव्यापादिकासिद्धिर्नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

—:*:—

पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथातोनेत्रवस्तिव्यापादिकांसिद्धिंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम नेत्रवस्तिव्यापादिका सिद्धि अध्यायका वर्णन करेंगे ॥

अथनेत्राणिवस्तींश्चशृणुवर्ज्यानिकर्मसु नेत्रस्याज्ञमर्ण्तस्यव्यापदःसचिकित्सिताः ॥

अर्थ—चिकित्सा मे प्रयोग न कियेजाने के योग्य नेत्र और वस्ति तथा अज्ञान के हाथ से प्रयुक्त कीहुई वस्तिनलकी विपत्ति और फिर उन रोगों में जो २ चिकित्सा कर्तव्य हैं, उन सब का वर्णन विस्तारपूर्वक कियाजाता है ॥

वर्जित वस्तिनल ।

ह्रस्वंदीर्घंतनुस्थूलंजीर्णंशिथिलबन्धनम् पार्श्वछिद्रंतथावक्रमष्टौनेत्राणिवर्जयेत् ॥

अर्थ—ह्रस्व, दीर्घ, पतला, मोटा, पुराना शिथिल बन्धन, पार्श्वछिद्र (जिसके इधर विधर छेद हो) और टेढा, ये आठ प्रकार के वस्तिनल वर्जित हैं ॥

ह्रस्वादि वस्तिनलके उपद्रव ।

अप्राप्त्यतिगतिक्षोभकर्षणक्षणनस्रवाः । गुदपीडागतिर्जिह्मातेषांदोषायथाक्रमम् ।

अर्थ—वस्तिनल छोटा होने से उचित स्थान पर नहीं पहुंचता है । दीर्घ होनेसे उचित स्थान से ऊंचा चला जाता है ॥ पतला होने से क्षोभ को प्राप्त होता है । स्थूल होने से वस्ति मलमार्ग को खींचती

है। पुराना होने से भीतर जाकर टूटजाता है। शिथिल बन्धन होने से स्राव होताहै, पार्श्व में छिद्र होने से गुदा को पीडित करता है और टेढा होने से वस्ति की गति टेढी होती है ॥

वर्जित वस्ति ॥

विषमच्छिद्रमांसलस्थूलजालीकवातलाः। छिन्नः क्लिन्नश्चतानष्टौवस्तीनकर्मसुवर्जयेत् ॥

अर्थ—विषम, सछिद्र, मांसल (जिसका चमडा उडकर केवल मांस रह गया हो), स्थूल, जालीक [जालयुक्त], वातल [वायुयुक्त], छिन्न [फटीहुई] और क्लिन्न [गीली] ये आठ प्रकार की वस्ति वर्जित हैं ॥

विषमादिवस्तियोंके उपद्रव।

गतिवैषम्यविस्तत्वस्राव्यदौर्ग्राह्यनिस्रवाः। फेनिलच्युतिधार्य्यत्वंवास्तिःस्युर्वस्तिदोषतः ॥

अर्थ....विषम वस्ति होने से वस्ति की गति ऊंची नीची होजाती है। मांसल होने से विसृत्व, सछिद्र होनेसे स्राव, स्थूल होने से पकडनेके अयोग्य, जालयुक्त होनेसे स्राव, वातल होनेसे वस्तिके द्रव्यमें झाग, छिन्न होनेसे वस्ति द्रव्य का निकलना, और क्लिन्न होने से वस्ति द्रव्यकी रुकावट, ये उपद्रव होतेहैं ॥

प्रणेता की अज्ञता के उपद्रव।

सवातातिद्रुतोत्क्षिप्ततिर्यगुत्क्षिप्तकम्पिताः अतिमन्दगमन्दातिवेगदोषाःप्रणेतृतः॥

अर्थ—वस्ति की वायुके साथ प्रेरण होना अति उत्क्षिप्त, टेढापन के साथ उत्क्षिप्त, कम्पन, अति मन्दागति, मन्द वेग और अतिवेग। ये सब दोष वस्ति के प्रणेताकी अज्ञानता के हैं।

अनुच्छ्वासानुबन्धेवादत्वेनिःशेषएववा॥ प्रविश्यक्षुभितोवायुःशूलतोदकरोभवेत्। तत्राभ्यंगोगुदस्वेदोवातघ्नान्यशनानिच॥

अर्थ—वस्ति के प्रयोग करने से पहिले उसे दावकर भीतर की सब वायु निकाल देनी चाहिये। ऐसा न करने से वस्ति शेष जब वायुका अनुबन्ध हो और उसका भी प्रयोग कर दिया जाय तो वायु उदर में प्रवेश करके कुपित होगी तथा शूल और तोद उत्पन्न करेगी। इस जगह तैल का मर्दन, गुदा में स्वेदन कर्म और वातनाशक अन्नपान सेवन करना चाहिये।

द्रुतादि प्रणीत वस्ति के कर्म।

द्रुतंप्रणीतेनिष्क्रुष्टेसहसोत्क्षिप्तएववा॥ स्यात्कटीगुदजंघार्तिर्वस्तिस्तम्भोरुभेदनम्। भोजनंतत्रवातघ्नंस्नेहःस्वेदाःसवस्तयः॥

अर्थ—वस्ति के शीघ्रतासे प्रयोग करने शीघ्रता से निकलने और सहसा उत्क्षिप्त होने से कमर,गुदा और जंघा में वेदना होने लगती है,वस्ति में स्तम्भता और ऊरुओं में भेदन होता है। इस में वातनाशक भोजन, स्नेहन कर्म, स्वेदन कर्म तथा अनुवासन और निरूहण वस्तियों का प्रयोग करना उचित है।

तिर्यगुवन्धनकेलक्षण ।

तिर्य्यग्वन्धाद्गतद्वारेवद्धेवापिनगच्छति ॥
नेत्रेतदृजुनिष्कृष्यसंशोध्यचपुनर्नयेत् ।

अर्थ—टेढेवन्धन से वस्तिका मार्ग रुक जाने पर अथवा और किसी कारण से वद्ध होनेपर वस्ति जा नहीं सक्ती है । इस से उस समय वस्ति के नलको गुदा से अलग कर के उसे सीधा और शुद्ध कर के फिर प्रविष्ट करै ॥

पीडनकेउपद्रव ।

पीड्यमानेऽन्तरामुक्तेगुदेप्रतिहतोऽनिलः॥
उरःशिरोरुजंसादमूर्वोश्चजनयेद्वली ।
वस्तिःस्यात्तत्रविल्वादिफलश्यामादिमू
त्रवान् ॥

अर्थ—वस्ति पीडन पूर्वक वस्ति क्रिया के विना समाप्त हुयेही जो वस्ति मुक्त करदी जाय तो गुदा में प्रतिहत वायु कुपित होकर हृच्छूल, शिरोवेदना और ऊरुसाद उत्पन्न करती है । इसमें विल्वादिपंचमूल मैनफल, त्रिवृतादिगण और गोमूत्र इन से सिद्ध की हुई निरूहणवस्ति देवै ।

कम्पनकेउपद्रव ।

स्यादाहोदवथुःशोफःकम्पनाभिहतेगुदे।
कषायमधुराःशीताःसेकास्तत्रसवस्तयः॥

अर्थ—वस्ति प्रयोग में कम्पन होजाने से गुदा में चोट लगकर दाह, जलन और सूजन उत्पन्न होती है इसमें कषाय मधुर शीतल परिषेक और अनुवासन तथा निरूहण वस्ति का प्रयोग करना ठीक है ॥

अतिप्रणीतवस्ति के उपद्रव ।

अतिमात्रप्रणीतेननेत्रेणक्षणनाद्गलः ।
स्यात्सार्तिदाहनिस्तोदगुदवर्चःप्रवर्तनम्॥
तत्रसर्पिःपिचुःक्षीरंपिच्छावस्तिश्चशस्यते

अर्थ—वस्ति के अत्यन्त वलपूर्वक प्रविष्ट करने से गुदामार्ग विदीर्ण होजाताहै है, इससे वेदना, दाह, सुई छिदनेके समान पीडा और गुदा के मलका निकलना ये लक्षण होते हैं । इसमें घृत, पिचु (घृतप्लुत रुई का फोआ), दूध और पिच्छावस्ति हित हैं ।

मन्दप्रणीत वस्ति के लक्षण ।

नवाव्रहीतमन्दस्तुवाह्यस्त्वाशुनिवर्तते ।
स्नेहास्तत्रपुनःसम्यक्प्रणेयःसिद्धिमिच्छता

अर्थ—मन्दप्रणीत वस्ति गमन नहीं करसक्ती है किन्तु शीघ्रही प्रत्यागमन करती है । इस जगह पुनः अच्छी रीति से स्नेहन वस्ति का प्रयोग करना उचित है ।

अतिपीडित वस्ति के लक्षण ।

अतिप्रपीडितःकोष्ठेतिष्ठत्यायातिवागलम्
तत्रवस्तिविरेकश्चगलपीडादिकर्मच ॥

अर्थ....अत्यन्त पीडित वस्ति कोष्ठ में रुकजाती है अथवा गले में आजाती है । ऐसी जगह पर अनुवासन वस्ति, विरेचन और गलपीडनादिकर्म करना ठीक है ।

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकः ॥

नेत्रवस्तिप्रणेतॄणांदोषानेतान्सभेषजान्
वेत्तियस्तेनमतिमान्वस्तिकर्माणिकारयेत्

अर्थ—इस अध्याय में वस्तिनल और

वस्ति के दोष, अज्ञान प्रणेता से उत्पन्न हुए उपद्रव और उनकी चिकित्सा वर्णन कीगई है। इन सब बातों को जो बुद्धिमान् जानताहै उसीसेवस्तिकर्म कराना उचितहै।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांसिद्धिस्थानेनेत्रवस्तिव्यापादिकासिद्धिर्नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

——:++++:——

षष्ठोऽध्यायः ॥

अथातोवमनविरेचनव्यापत्सिद्धिंव्याख्यास्याम इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम वमन विरेचन व्यापत्सिद्धि नामकअध्याय की व्याख्या करेंगे ॥

अथशोधनयोःसम्यग्विधिमूर्द्धानुलोमयोः असम्यक्कृतयोश्चैवदोषान्वक्ष्यामिसौषधान् ॥

अर्थ....अबहम वमन विरेचनकी सम्यक् विधि तथा असम्यक् वमन विरेचन के दोष और उनकी चिकित्सा का वर्णन करतेहैं।

अत्युष्णवर्षशीताहिग्रीष्मवर्षाहिमागमाः॥ अन्तरेषुप्रावृडाद्याःतेषांसाधारणास्त्रयः॥

अर्थ—ग्रीष्मऋतु में अत्यन्त गरमी पड़ती है, वर्षाऋतुमें वर्षा अधिक होती है। और शीतऋतु में जाड़ा अधिक होता है। इन ऋतुओं के सन्धिकाल में प्रावृट, शरत् और वसन्त ये तीन ऋतु और होती हैं इन में वर्षा, गर्मी और शीत साधारण होताहै।

संशोधनकासमय।

प्रावृट्शुचिनभौज्ञेयौशरदूर्जसहौपुनः। तपस्यश्चमधुश्चैववसन्तःशोधनंप्रति ॥ एतानृतून्विकल्प्यैवंकुर्य्यात्संशोधनंनृणाम् ॥

अर्थ....आषाढ और श्रावण इनदो महीने में प्रावृटऋतु होती है। कार्तिक और अगहन में शरद तथा फाल्गुण और चैत्र में वसन्तऋतु होती है वमन विरेचन देने के येही तीन समय हैं ॥

स्वस्थवृत्तिमभिप्रेत्यव्याधौव्याधिवशेनतु कर्मणांवमनादीनांअन्तरेष्वन्तरेषुच ॥ स्नेहस्वेदौप्रयुञ्जीतस्नेहाद्यन्तेप्रयोजयेत्।

अर्थ....स्वस्थमनुष्यों को ऊपर कही हुई ऋतुओं में वमन विरेचन देना उचित है। परन्तु व्याधिग्रस्त मनुष्य को व्याधिके कारण ग्रीष्मादि ऋतुओं में भी संशोधन दियाजासक्ता है। वमनादि पंचकर्म कराने के पहिले स्नेहन स्वेदन करना चाहिये और पीछे वमनादि प्रयोग करे।

अविरेच्यरोगी ॥

विसर्पपिडकाशोफकामलापाण्डुरोगिणः। अभिघातविषार्तांश्चनातिस्निग्धान्विरेचयेत् ॥

अर्थ—विसर्प, पिडका, सूजन, कामला पांडुरोग, अभिघात और विष इन रोगों से पीडित मनुष्य को अत्यन्त स्निग्ध करके विरेचन न देवे अर्थात् थोड़ा स्निग्ध करकेही विरेचन देवे।

नातिस्निग्धशरीरायदद्यात्स्नेहविरेचनम्
स्नेहोत्क्लिष्टशरीरायरूक्षंदद्याद्विरेचनम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नेचजीर्णेमात्रावदौषधम् ॥
एकाग्रमनसापीतंसम्यग्योगायकल्पते ॥
स्निग्धात्पात्राद्यथातोयमयत्नेनप्रणुद्यते ।
कफादयःप्रणुद्यन्तेस्निग्धाद्देहात्तथौषधैः ।
आर्द्रकाष्ठंयथावह्निर्विष्यन्दयतिसर्वतः॥
तथास्निग्धस्यवैदोषान्स्वेदोविष्यन्दयेत् स्थिरान् ॥

अर्थ—अतिस्निग्ध शरीर वाले को स्नेह विरेचन न देना चाहिये । स्नेह से उत्क्लिष्ट शरीर वालेको रूक्ष बिरेचन देवे । पहिले दिन का आहार पचने पर स्नेह और स्वेद से युक्त होकर एकाग्रमन से वमन विरेचन औषधों का पान करने से वमन विरेचन का सम्यक् योग होता है । जैसे चिकने पात्रसे विना प्रयत्नही पानी निकल जाता है उसी तरह स्निग्ध औषधियों द्वारा स्निग्ध देह से कफादि दोष शीघ्रही निकल जाते हैं।

जैसे अग्नि गीले काष्ठ को चारों ओर से विष्यन्दित करदेती हैं अर्थात् उस के जल को खींच लाती है, उसी तरह से स्वेदन कर्म स्निग्ध देह के स्थिर दोषों को विष्यन्दित करदेता है ।

स्नेहस्वेद से संशोधन का दृष्टान्त॥

क्लिष्टंवासोयथोत्क्लेश्यमलैःसंशोध्यतेऽम्भसा॥ स्नेहस्वेदैस्तथोत्क्लेश्यशोध्यतेशोधनैर्मलः।

अर्थ—मैले वस्त्र को जैसे साबुन, सज्जी आदि से मसल कर जल से धोकर स्वच्छ करते हैं उसी तरह शरीरस्थ मल को स्नेहन स्वेदन से उत्क्लेशित करके संशोधन औषधियों द्वारा शुद्ध करतेहैं ।

अजीर्ण भोजनमें संशोधन निषेध॥

अजीर्णेवर्धतेग्लानिर्विबन्धश्चैवजायते॥
पीतंसंशोधनंश्चैवविपरीतंप्रवर्तते॥

अर्थ—अजीर्ण में वमन विरेचनादि औषध के सेवन करने से ग्लानि बढती है और विबन्ध उत्पन्न होजाता है तथा वमन विरेचन की विपरीत गति होजाती है ।

मात्रावत् औषधके लक्षण ॥

अल्पमात्रंमहावेगंबहुदोषहरंसुखम् ॥
लघुपाकंसुखास्वादंप्रीणनंव्याधिनाशनम्
अविकाराविपन्नञ्चनातिग्लानिकरञ्चतत्
गन्धवर्णरसोपेतंविद्यान्मात्रावदौषधम् ॥

अर्थ—जो औषध अल्पमात्रा होने पर भी महावेगवती होती है, बहुत दोषोंको नाश करनेवाली और सुखदायक होती है, जो लघुपाकी, सुस्वाद, प्रीणनकर्त्ती और व्याधिनाशक होती है,जो अविकारी, अव्यापन्न, ग्लानि न करनेवाली, गंधवर्ण और रससे युक्त है वह मात्रावत् कहाती है ।

सम्यग्योग करनेवाली औषध ॥

विधूयमानसान्दोषान्कामादीनशुभोदयान्
एकाग्रमनसापीतंसम्यग्योगायकल्पते॥

अर्थ—औषध पीनेके समय कामक्रोधादि अशुभकर्त्ता मानसिक दोषों को दूर करके जो औषध एकाग्रमनसे सेवन की जाती है उसका सम्यग्योग होता है ।

वमनविरेचन का पूर्वकर्म॥

नरःश्वोवमनंपाताभुञ्जीतकफवर्द्धनम् ।
सुजरंद्रवभूयिष्ठंलघुशीतंविरेचनम् ॥
उत्क्लिष्टाल्पकफत्वेनक्षिप्रंदोषाःस्रवन्तिहि।

अर्थ—जिस को प्रातःकाल वमनकारक औषध पान करानी है उसे आज कफका बढाने वाला भोजन कराना चाहिये। जिस को प्रातःकाल विरेचनकर्त्ता औषध पान करानी है उसे आज ऐसा लघु और शीतल आहार देवै जो बहुत शीघ्रही पचजाय। इस प्रकार आहार सेवन करने से कफके बढने के कारण वमन और घटने के कारण विरेचन बहुत शीघ्रही होता है।

शुद्धि के लक्षण ॥

पीतौषधस्यतुभिषक्शुद्धिलिंगानिलक्षयेत्
ऊर्द्धकफानुगेपित्तेविट्पित्तनुकफेत्वधः ॥

अर्थ—जिसने वमन विरेचन औषधपान करी हो उस के शुद्धिके लक्षण देखने चाहिये। वमन देने के पीछे जो प्रथम कफ उद्गीर्ण हो और पीछे पित्त उद्गीर्ण हो तो वमन से शुद्धि समझना चाहिये। वैरेचनिक औषधि के पीछे यदि विष्टा और पित्त के पीछे कफ आने लगे तो विरेचन द्वारा शुद्धि समझना चाहिये।

हृतदोषंवदेत्कार्श्यदौर्बल्यंचेत्सलाघवे।
वामयेत्तुततःशेषमौषधंनत्वलाघवे ॥
स्तैमित्येऽनिलसङ्गेचनिरुद्गारेऽपिवामयेत् ॥ आलाघवाचनुत्वाचकफस्यापरं भवेत् ॥ वमितेनर्द्धतेवह्निशमंदोषाव्रजन्तिहि ॥वमितंलंघयेत्सम्यक्जीर्णलिङ्गान्यलक्षयन् ॥ तानिदृष्ट्वातुपेयादिक्रमंकुर्यान्नलंघनम् ॥

अर्थ—यदि रोगी को कृशता, दुर्बलता और देह में हलकापन होजाय तो समझना चाहिये कि वमन ठीक होगई, उस में जो औषध उस के आमाशय में शेष बची हो उसे वमन कराके निकाल देवै। यदि देह में हलकापन न हुआ हो तो औषध को न निकाले। जो देह में स्तिमिता हो, अधोवायु और डकार रुकगई हो तो भी वमन करावै। जब तक देह में हलकापन न होगा और थोडा सा भी कफ रहैगा तब तक व्याधि रहैगी, वमन कराने के पीछे अग्नि बढती है और दोष सब शान्त होजाते हैं। वमन कराने के पीछे भी जो कफके जीर्ण होने के सम्यक् लक्षण न दिखाई दें तो लंघन करावै यदि कफके जीर्ण होने के सम्यक् लक्षण दिखाई दें तो पेयादि क्रमका पालन करावै। लंघन कराना उचित नहीं है।

पेयाकेयोग्यरोगी ॥

संशोधनाभ्यांशुद्धस्यहृतदोषस्यदेहिनः॥
यात्यग्निमन्दतांतस्मात्क्रमंपेयादिमाचरेत्

अर्थ—जिसका देह वमन विरेचन से शुद्ध होगया है और जिसके दोष सब दूर होगये हैं उसकी अग्नि मंद पडजाती है, इसलिये उसे पेयादिक्रमका पालन कराना चाहिये।

पंणादिक्रमंकुर्यात्पेयाभिष्यन्दयेद्धितान्
अर्थ—जिस मद्यप और वात पित्तरोगी काकफ पित्त वमन विरेचन द्वारा शुद्ध होगया है उसे अल्प मात्राके द्वारा तर्पणादिक्रम का पालन करावे । क्योंकि पेया उसको अभिष्यन्दित करती है ।

जीर्णऔषधकेलक्षण ॥

अनुलोमोऽनिलःस्वास्थ्यंक्षुत्तृष्णोर्जोमनस्विता ॥ लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिःजीर्णौषधाकृतिः ।
अर्थ—वायु का अनुलोमन, स्वस्थता, क्षुधा, तृषा, ऊर्जा, मन में प्रफुल्लता, इन्द्रियों का हलकापन और शुद्ध डकार ये सब जीर्ण औषध के लक्षण हैं ।

जीर्णावशिष्टऔषधकेलक्षण।

क्लमोदाहोङ्गमर्दश्चभ्रममूर्च्छाशिरोरुजा॥ अरतिर्बलहानिश्चसावशेषौषधाकृतिः॥
अर्थ—ग्लानि, दाह, अंगमर्द, भ्रम मूर्च्छा शिर में वेदना, यातना और बलहानि ये सब जीर्णावशिष्ट औषध के लक्षण हैं ।

अकालेऽल्पातिमात्रंचपुराणंनचभावितम्। असम्यक्संस्कृतंचैवव्यापद्येतौषधंद्रुतम्
अर्थ—जो औषध कुसमय पानकी जाय, अथवा अतिमात्रा या अल्पमात्रा या पुरानी, या अभावित या अच्छीतरह संस्कार न कीहुई औषध सेवन कीजाय तो उस से शीघ्रही उपद्रव होते हैं ॥

असम्यक्औषधकेदशउपद्रव ।

आध्मानंपरिकर्तिश्चस्रावोहृद्ग्रहगात्रयोर्ग्रहः जीवादानंसविभ्रंशःस्तम्भःसोपद्रवःक्लमः अयोगादतियोगाच्चदशैताव्यापदोमताः
अर्थ—औषध के अयोग वा अतियोगसे आध्मान, परिकर्तिका, स्राव, हृद्ग्रह, अंगग्रह, जीवादान, विभ्रंश, स्तम्भ, उपद्रव और क्लान्ति ये दसरोग उपस्थित होते हैं ।

प्रेष्यभैषज्यवैद्यानांवैगुण्यादातुरस्यच ॥ शुद्धेक्लिष्टेनदुर्गन्धामहृद्यमतिचाध्यते ॥
अर्थ—परिचारक, औषध, वैद्य और रोगी इनके बिगुणता से शुद्ध दोष भी उत्क्लिष्ट होकर दुर्गन्ध और अत्यन्त वा बहुत अप्रियताको उत्पन्न करते हैं ।

योगःसम्यक्प्रवृत्तिःस्यादतियोगोऽतिवर्तनम्॥अयोगः प्रातिलोम्येननचाल्पंवाप्रवर्त्तनम् ॥
अर्थ—औषध का योग होने से दोषों की सम्यक् प्रवृत्ति होती है । अतियोग होनेसे अत्यन्त प्रवृत्ति होती है । औषधका अयोग होने से दोषों की प्रतिलोमता के कारण दोषों की प्रवृत्ति सर्वथा नहीं होतीहै अथवा थोडी होती है ॥

अजीर्ण में विरेचनपानका अवगुण॥

श्लेष्मोत्क्लिष्टेन दुर्गन्धमहृद्यमतिवाबहु॥ विरेचनमजीर्णेचपीतमूर्ध्वंप्रवर्तते ॥
अर्थ—अजीर्ण में विरेचन के पान करने से कफकी उत्क्लिष्टता के कारण थोडा या बहुत ऊपर के मार्ग से निकलजाता है ।

वमनकर्त्ता औषध से विरेचन ॥

क्षुधार्तमृदुकोष्ठाभ्यांस्वल्पोत्क्लिष्टकफेनवा । तीक्ष्णंपीतंस्थितंक्षुब्धंवमनंस्याद्विरेचनम् ।

अर्थ–जिसको भूखलगरहीहो, जिसका कोठा मृदु हो वा जिसका कफ बहुत उद्गीर्णनहो उसको तीक्ष्ण वमन कारक औषधके पान करानेसे वह औषध स्थिर और क्षुब्ध होकर दस्त लाने लगती है।

प्रातिलोम्येनदोषाणांहरणात्सेह्यकृत्स्नशः अयोगसंज्ञेकृच्छ्रेणयदागच्छतिचाल्पशः॥

अर्थ....इस तरह वमन औषध के विरेचनमें बदल जानेसे प्रतिलोम रीति से दोषों के निकलने पर भी यदि रोगी को किसी प्रकारका कष्ट नहो तौभी वमनका अयोग होताहै क्योंकि इस दशामें दोष थोडे थोडे वा कष्टसे निकलते हैं।

पीतौपधोनशुद्धश्चज्जीर्णेतस्मिन् पुनःपिवेत्। औपधंनतुजीर्णेऽन्यद्भयंस्यादतियोगतः॥

अर्थ—संशोधन औषध के पान करनेसे यदि रोगी शुद्ध नहो तौ उस औषध के पचने पर फिर वही औषध पान कराना चाहिये। यदि औषध के विना पचे ही और औषध पान करादी जायगी तौ अति योग के कारण अन्य भय होगा।

कोष्ठस्यगुरुतांज्ञात्वालघुत्वंवलमेवच। अयोगेमृदुवादद्यादौपधंतीक्ष्णमेववा॥

अर्थ–संशोधन औषध के अयोग में कोष्ठका भारापन, हलकापन और वलका विचार कर फिर मृदु वा तीक्ष्ण औषधका पान करावें।

वमनंनतुदुश्छर्द्दंदुष्कोष्ठंनविरेचनम्। पाययेतौपधंभूयोहन्यात्पीतंपुनर्हितौ॥

अर्थ....जिसको वमन कठिनतासे होती है, उसे वमन न करावै। जिसका कोष्टक डाहो उसे विरेचन न देवै। क्योंकि ऐसे मनुष्यों को वमन विरेचन करानेसे प्राणों की हानि होती है॥

अस्निग्धास्विन्नदेहस्यरूक्षस्यानवमौषधम्। दोषानुत्क्लेश्यनिर्हर्तुमशक्तंजनयेद्गदान्॥ विभ्रंशश्वयथुंहिक्कांतमसोदर्शनंभृशम्। पिण्डिकोद्वेष्टनंकण्डूमूर्वोःसादंविवर्णताम्॥

अर्थ....अस्निग्ध, अस्वेदित और रूक्ष देह वाले को पुरानी औषध देनेसे दोष उत्क्लिष्ठ तो होजाते है परन्तु निकल नहीं सकते क्योंकि वह वीर्यहीन होती है॥ तथा रोग उत्पन्न होजाते हैं। ऐसी औषधियोंसे विभ्रंश, सूजन, हिचकी, अन्धकार दर्शन, पिंडलियोंमें ऐंठन, खुजली और ऊरुसाद ये उपद्रव होते हैं॥

स्निग्धस्विन्नस्यचाल्पंदीप्ताग्नेर्जीर्णमौषधम्। शीतैर्वास्तब्धमामैर्वादोषानुत्क्लेश्यनाहरेत्॥ तानेवजनयेद्रोगानयोगः सर्वएवसः। विज्ञायमतिमांस्तत्रयथोक्तांकारयेत्क्रियाम्॥

अर्थ....स्निग्ध और स्विन्नरोगी को यदि मात्रा थोडी दीजाय अथवा वह रोगी की दीप्ताग्निके कारण पचजाय, अथवा शीतल उपचार और आम द्वारा औषध स्तब्ध होजाय तो वह दोषों को उत्क्लिष्ट कर के निकाल नहीं सक्ती है। ऐसा होनेसे ऊपर लिखेहुए सम्पूर्ण रोग उपस्थित होते हैं। इसी को औषध का अयोगभी कहते हैं॥

इसतरह औषध का अयोग समझकर बुद्धिमान् वैद्य को उचित है कि नीचे लिखी हुई क्रिया का अवलंबन करै ॥

वमनविरेचन के अयोगमेंउपाय ॥

तंतैललवणाभ्यक्तंस्विन्नंप्रस्तरसङ्करैः॥ ॥ पाययेत्पुनर्जीर्णेसमूत्रैर्वानिरूहयेत् । निरूह्यंचरसैर्धान्वैर्भोजयित्वानुवासयेत् ॥ फलमागधिकादारुसिद्धतैलेनमात्रया ॥ स्निग्धंवातहरैः स्नेहैः पुनस्तीक्ष्णेनशोधयेत् ॥

अर्थ—ऐसे मनुष्य को नमक मिलेहुये तेल से अभ्यक्त कर के प्रस्तरस्वेद और संकरस्वेद द्वारा स्वेदितकरै पहिले औषध वा आहार के पचनेपर गोमूत्र मिली हुई निरूहण वस्ति देवै । तत्पश्चात् जांगल मांसरस के साथ भोजन कराके अनुवासन देवैं । अनुवासन का तेल मात्रावत् मैनफल पीपल और देवदारु इन के कल्क और काथ के साथ सिद्ध करना चाहिये । फिर इस रोगी को वातनाशक तैलों से स्निग्ध करके तीक्ष्ण संशोधन देना उचित है ।

अतितीक्ष्णंक्षुधार्तस्यमृदुकोष्ठस्यभेषजम्॥ हृत्वाशुविट्पित्तकफान्धातूनविस्रावयेद्द्रवान् ॥ वर्णस्वरक्षयंदाहंकण्ठशोषंभ्रमंतृषाम् ॥ कुर्याच्चमधुरैस्तत्रशेषमौषधमुल्लिखेत्॥

अर्थ—क्षुधा से पीडित और मृदु कोष्ठ वाले को तीक्ष्ण संशोधन दैने से प्रथम विष्टा पित्त और कफ निकल जाते हैं । वही औषध फिर धातुओं को पिघलाकर स्रावित करती है तथा वर्णनाश, स्वरभंग, दाह, खुनली, शोष, भ्रम और तृषा इन उपद्रवों को उत्पन्न करतीहै । ऐसे स्थलपर मधुरद्रव्यों से मिश्रित वमन देकर विनापची शेष औषध को वमन द्वारा निकालदेना चाहिये ।

वमनेतुविरेकःस्याद्विरेकेवमनंमृदु ॥ परिषेकावगाहाद्यैःसुशीतैःस्तम्भयेच्चतत् ॥ कषायमधुरैःशीतैरन्नपानौषधैस्तथा॥ रक्तपित्तातिसारघ्नैर्दाहज्वरहरैरपि ॥

अर्थ—वमन के अतियोग में विरेचन और विरेचन के अतियोग में मृदु वमन देना हित है, तत्पश्चात् शीतल परिषेक और अवगाहनादि द्वारा उसका स्तम्भन करै । कसीली, मीठी और शीतल अन्नपान और औषधी तथा रक्त पित्तातिसारनाशक और दाहज्वर नाशक औषधादिका व्यवहार कर के स्तम्भन करना चाहिये ॥

अतियोगनाशक प्रयोग ।

अञ्जनंचन्दनोशीरमजासृक्छर्करोदकम् लाजचूर्णैःपिबेन्मन्थमतियोगहरंपरम् ॥ शुङ्गाभिर्वावटादीनांसिद्धांपेयांसमाक्षिकाम् । वर्चःसांग्राहिकैःसिद्धांक्षीरभोज्यञ्चदापयेत्॥ जांगलैर्वारसैर्भोज्यंपिच्छावस्तिश्चशस्यते ॥ मधुरैरनुवास्यश्चसिद्धेनक्षीरसर्पिषा ॥

अर्थ — रसोत, रक्तचंदन, खस, इनको पीसकर बकरे के रुधिर और खांड के शरबत के साथ खील के चूर्ण मे मन्थ बनाकर पान करने से अतियोग दूर होजाता है । वटादि दूधवाले वृक्षों की टहनियों के अग्र-

भाग पेया में डालकर सिद्ध करै फिर ठंडा होनेपर शहत मिलाकर पानकरै तो अति योग दूर होजाता है ॥

मल को संग्रह करनेवाली औषधियां डालकर सिद्ध कियाहुआ दूध पान करनेसे भी अतियोग दूर होजाता है तथा जांगलमांस रस के साथ भोजन कराना और पिच्छावस्ति भी दैना हित है तथा जीवनीयादि मधुर गणोक्त द्रव्य डालकर दूध को पकावै फिर उस में से घी निकालकर उसकी अनुवासन वस्ति देवै ॥

ये ऊपर लिखे सब प्रयोग विरेचन के अति योग में हित हैं ॥

वमनातियोगमेंप्रयोग ॥

वमनस्यातियोगेतुशीताम्बुपरिषेचितम्
पिबेत्फलरसैर्मन्थंसघृतक्षौद्रशर्करम् ॥
सोद्गारायांभृशंवम्यांमूर्च्छायांधान्यमुस्त
योः। समधूकाञ्जनंचूर्णंलेहयेन्मधुसंयुतम्

अर्थ — वमन के अतियोग में शीतलजल के छींटे रोगी के मारे और फलों के रसों के साथ मन्थ बनाकर उस में घी, शहत और शर्करा डाल कर पान करै । डकार सहित अत्यन्त वमन में और मूर्छा में धनियां मोथा, मुलहटी और रसोत इनका चूर्ण शहत मिलाकर चटावै ।

वमतोऽन्तःप्रविष्टायांजिह्वायांकवलग्रहाः
स्निग्धाम्ललवणाहृद्यायूपक्षीररसैर्हिताः
फलान्यम्लानिखादेयुस्तस्यचान्येऽग्रतो
नराः ॥

अर्थ— वमन करते २ जो जिह्वाभीतर को घुसगई हो तो नमक और हृदय प्रिय यूप वा दूध वा मांसरसका कवल धारण करावै । ऐसे स्थलपर खट्टे अनार आदि के फल रोगी को खवावै अथवा रोगीके सामने किसी अन्य मनुष्य को खवावै ।

निःसृतजिह्वामें उपाय ॥

निःसृतांतुतिलद्राक्षाकल्कयुक्तांप्रवेशयेत्॥

अर्थ —वमन करते करते जो जिह्वा बाहर निकल आई हो तो जीभ पर तिल और दाख का लेप करने से जिह्वा भीतर को चली जायगी ।

वाग्ग्रहमें चिकित्सा॥

वाग्ग्रहानिलरोगेषुघृतमांसोपसाधितम्॥
यवागूंतनुकांदद्यात्स्नेहस्वेदौचबुद्धिमान्॥

अर्थ—वमन करते करते वाणी के रुक जाने पर वा वायुके कुपित होने पर घृत और मांसरसके साथ सिद्ध की हुई पतली यवागू और स्नेह स्वेद का प्रयोग करना चाहिये ।

वमितश्चाविरिक्तश्चमन्दाग्निश्चाविलंघितः॥
अग्निप्राणविवृद्ध्यर्थंक्रमंपेयादिकंभजेत्॥

अर्थ—वमन विरेचन द्वारा संशुद्ध, मन्दाग्नि और लंघन करने वाले की अग्नि का बल बढाने के लिये पेयादि क्रमका पालन करना उचित है।

बहुदोषस्यरूक्षस्यहीनाग्नेरल्पमौषधम्॥
सोदावर्तस्यचोत्क्लेश्यदोषान्मार्गान्निरु
द्धते। भृशमाध्मापयेन्नाभिपृष्ठपार्श्वशिरो
रुजम्॥ श्वासंविण्मूत्रवातानांसङ्गंकुर्या
च्चदारुणम् ॥

अर्थ—बहुत दोषों से युक्त, रूक्ष या मन्दाग्नि वाले को अथवा उदावर्त्त रोगी को अल्पमात्रा में वैरेचनिक औषध का पान कराने से दोष उत्क्लिष्ट होकर मार्गों को रोक देते हैं। इससे नाभि के पास बडा अफरा होजाता हैं, पीठ, पसली और सिर में दर्द होने लगता हैं। श्वास, विष्ठा, मूत्र और अधोवायु दारुण रीति से रुकजातेहैं ॥

अभ्यङ्गस्वेदवर्त्यादिसनिरूहानुवासनम् ॥ उदावर्तहरंसर्वकर्माध्मातस्यशस्यते

अर्थ—ऐसा अफरा होने पर तैल मर्दन स्वेद, वर्त्ति प्रयोग, निरूहण और अनुवासन तथा उदावर्त्तनाशक सम्पूर्ण प्रयोग इस जगह हित हैं।

ऐंठा होने का कारण ॥

स्निग्धेनगुरुकोष्ठेनसामेवलवदौषधम्॥
क्षामेणमृदुकोष्ठेनश्रान्तेनाल्पवलेनवा॥
पीतंवायुदंसाममाशुदोषंनिरस्यति ॥
तीव्रशूलांसपिच्छास्रांकरोतिपरिकर्त्ति-
काम् ॥

अर्थ—स्निग्ध मनुष्य को अथवा भारी कोठे वालेको अथवा आमदोष वाले को बलिष्ठ औषध देने से, अथवा क्षीण, मृदु कोष्ठ श्रान्त और अल्पवल वाले को वैसी ही औषध देने से आमसहित दोष उद्गीर्ण होकर गुदाके मार्ग से निकलने लगते है। तब पेट में अत्यन्त शूल युक्त, पिच्छा युक्त और रुधिर सहित परिकर्त्तिका वा मरोडा होने लगता है।

ऐंठेकी चिकित्सा ॥

लंघनंपाचनंसामेरूक्षोष्णंलघुभोजनम्॥
बृंहणीयोविधिःसर्वःक्षामस्यमधुरस्तथा।

अर्थ—इस तरह आमयुक्त दोष में लंघन पाचन तथा रुक्ष और उष्ण हलका भोजन हित है। यदि क्षीण पुरुष के ऐसा उपद्रव हो तो उसे बृंहणीय तथा मधुर औषधों का सेवन कराना हित है ॥

आमाजीर्णेतुवद्धश्चेत्क्षाराम्ललघुशस्यते ॥ पुष्पकासीसमिश्रांवाक्षारेणलवणेनवा। सदाडिमरसंसर्पिःपिवेद्वातेऽधिकेसति।

अर्थ—आमाजीर्ण के कारण जो विवन्ध हुआ हो तो क्षार और खटाई डालकर हलका भोजन प्रशस्त है। जो वायुकी अधिकता हो तो पुष्पकासीस मिश्रित, अथवा क्षार और नमक युक्त अनार कारस मिला हुआ घृत हित है।

दध्यम्लंभोजनेपानेसंयुक्तंदाडिमत्वचा।
देवदारुतिलानांवाकल्कमुष्णाम्बुनापिवेत् ॥ अश्वत्थोदुम्बरप्लक्षकदम्बैर्वाशृतं
पयः ॥

अर्थ—उसी तरह वायुकी अधिकता होने पर खाने पीने की द्रव्यों में अनारके छिलके के साथ खट्टे दही का सेवन करना चाहिये ॥ अथवा देवदारु और तिलके कल्कको गरम जल के साथ पान करै। अथवा पीपल गूलर, पाकड और कदंब की छाल दूध में सिद्ध करके पान करावे ॥

कषायमधुरंवस्तिपिच्छावस्तिमथापिवा॥
यष्टीमधुकसिद्धंवास्नेहवस्तिमदापयेत्।

अर्थ—कषाय और मधुर द्रव्योंकी वस्ति अथवा पिच्छावस्तिअथवामुलहटीके साथसिद्ध की हुई स्नेहवस्तिभी वायुकी अधिकतामें हितहै।

अल्पंतुबहुदोषस्यदोषानुत्क्लेश्यभेषजम्
अल्पाल्पंस्रावयेत्कण्डूशोफकुष्ठानिगौरवम्
कुर्याच्चाग्निवधंतुक्लेशस्तैमित्यारुचिपा
ण्डुताम्॥परिस्रावश्चतंद्रोपशमयेद्वामयेदपि

अर्थ....बहुत दोषों से युक्त मनुष्य को अल्प विरेचन देने से दोष उद्गीर्ण होकर थोडे थोडे स्रावित होते हैं। ऐसा होने से खुजली, सूजन, कोढ, भारापन, अग्निनाश उत्क्लेश, स्तिमिता, अरुचि और पांडुरोग उत्पन्न होते हैं और स्राव भी होता रहता है। इस उपद्रव में संशमन औषध देकर दोषों की शान्ति करे, जो संशमन से भी शान्त न हों तो वमन करावै॥

स्नेहयित्वापुनस्तीक्ष्णंपाययेत्तद्विरेचनम्।
शुद्धेचूर्णासवारिष्टान्संस्कृतांश्चमदा-
पयेत्।

अर्थ....रोगी को स्निग्ध करके फिर तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये। फिर शुद्ध होने पर चूर्ण, आसव, अरिष्ट और संस्कार किये हुए यूषादि का सेवन करावे॥

पीतौषधस्यवेगानांनिग्रहान्मारुतादयः
कुपिताहृदयंगत्वाघोरंकुर्वन्तिहृद्ग्रहम्॥
सहिक्काकासपार्श्वार्तिदैन्यलालाक्षिविभ्रमैः
जिह्वांखादतिनिःसंज्ञोदन्तान्किटिकटाय
यन्।नगच्छेद्विभ्रमंतत्रवामयेदाशुतंभिषक्

मधुरैःपित्तमूर्च्छार्तंकटुभिःकफमूर्च्छितम्।
पाचनैर्यस्ततश्चास्यदोषशेषंविपाचयेत्
कायाग्निञ्चबलंचास्यक्रमेणोत्थापयेत्ततः

अर्थ....वमन विरेचन कर्त्ता औषधि को पीकर जो वेगों का निग्रह करता है, उस के वातादिक दोष कुपित होकर हृदय में पहुंचकर घोर हृदयग्रह उत्पन्न करते हैं। हिचकी, खांसी, पसलीका दर्द, दीनता, नेत्र-रक्तता और विभ्रम ये उपद्रव भी उत्पन्न होते हैं, रोगी बेहोश होकर जिह्वा को चबाजाताहै दांतों को किडकिडाने लगताहै ऐसे समय पर वैद्य को उचित है कि बिन घबडाये शीघ्रही वमन करावे। जो रोगी पित्तकी अधिकता से मूर्च्छित हो तो मधुर द्रव्यों से और कफ मूर्च्छित को कटुद्रव्यों के प्रयोग से वमन करावै। फिर जो दोष शेष बचेहों उन्हें पाचनद्रव्योंसे पक्व करै। तत्पश्चात् रोगी की जठराग्नि और बल के बढाने का प्रयत्न करे।

पवनेनातिवमतोहृदयंयस्यपीड्यते॥तस्मै
स्निग्धाम्ललवणंदद्यात्पित्तकफेऽन्यथा॥

अर्थ—अत्यन्त वमन करनेके कारण वायु जिस के हृदयको पीडित करै उसको स्नि-ग्ध, नमकीन और खट्टी औषधदेनी चाहिये। परन्तु पित्तकफकी अधिकता होनेपर स्निग्ध खट्टी और नमकीन औषध न देनी चाहिये॥

पीत औषधकेवमननिग्रहमेंउपद्रव।

पीतौषधस्यवेगानांनिगृहेणकफेनवा॥ रु-
द्धोतिवाविशुद्धस्यगृह्णात्यङ्गानिमारुतः
स्तम्भवेपथुनिस्तोदसादोद्वेष्टार्तिमूर्च्छितैः
तत्रवातहरंसर्वंस्नेहस्वेदादिकारयेत्॥

अर्थ—जिसने वमन करानेवाली औषध पानकी हो और वह अपने उस वेग को रोकले, उसका कफ प्रवलहोजाता है और उस प्रवल कफ से वायु रुककर अंगग्रह, स्तम्भ, कम्पन, सुई भिदने कीसी पीडा, अंगसाद, उद्वेष्टन, यातना और मूर्च्छा रोगों को उत्पन्न करती है । ऐसी जगह पर वातनाशक क्रिया तथा स्नेह और स्वेददेना आवश्यकीय है ।

अतितीक्ष्णंमृदौकोष्ठेलघुदोषस्यभेषजम्। दोषान्हृत्वाविनिर्मथ्यजीवंहरतिशोणितम् ॥

अर्थ—लघुदोष वाले के मृदु कोष्ठ में अतितीक्ष्ण औषध का प्रयोग सम्पूर्ण दोषों को दूर करके तथा मन्थन करके जीव शोणित को निकाल देता है ।

शोणित की परीक्षा

तेनान्नंमिश्रितंदद्याद्वायसायशुनेऽपिवा भुंक्तेतच्चेद्वदेज्जीवंनभुंक्तेपित्तमादिशेत्।

अर्थ—तीक्ष्णवमन से जो रक्त निकलता है उसकी यह परीक्षाकरनेके लिये कि यह शोणित जीवशोणित है वा रक्त पित्तका शोणितहै, यह काम करना चाहिये कि उस वमनके रुधिरको अन्न में मिलाकर कौए कुत्ते को खवावेजो कुत्ते कौए उसे खालें तो उसे जीवशोणित समझना चाहिये और जो न खांय तो उसे पित्तरक्त समझना चाहिये।

दूसरीपरीक्षा ।

शुक्लंवाभावितंवस्त्रंसाधानंकोष्णवारिणा ॥ प्रक्षालितंविवर्णस्यपित्तंशुद्धंतु शोणितं ॥

अर्थ—दूसरी परीक्षा यह है कि एक सफेद कपडे को इस रक्त में भिगोकर सुखा लेवे, फिर इसे थोडे गरम जल से धोवे । यदि रंगत विगड जाय तो रक्तपित्त का रक्त है, यदि शुद्ध बनी रहे तो जीवशोणित समझना चाहिये ॥

तृष्णामूर्च्छामदार्तस्यकुर्यादामरणात्क्रियाम् ॥ तस्यापित्तहरांसर्वामतियोगेचया मता ।

अर्थ—विरेचन के अतियोग में तृषा, मूर्च्छा और मत्तता होनेपर मरणपर्य्यन्त पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये तथा अतियोग में जो जो उपाय कहे हैं वे भी सब करने चाहियें ।

मृगगोमहिषाजानांसद्यस्कंजीवतामसृक् पाययेताशुसन्धानंजीवोजीवेनगच्छति। तदेवदर्भमृदितंरक्तंवस्तिंप्रदापयेत् ॥

अर्थ—रक्त के अत्यन्त क्षीण होने पर हिरन, गौ, भैंस वा वकरे का तत्काल निकला हुआ रक्तपान करावे । इस से निकले हुए जीवशोणित का सन्धान होताहै और रोगी भी शीघ्रही सजीव होजायगा । तथा इन्ही पशुओं के रुधिर में दाभ रगडकर वस्ति देनी चाहिये ।

श्यामाकाश्मर्य्यवदरीदूर्वावीरैः मृतंजलम्॥घृतमण्डाञ्जनयुतंवस्तिंशीतंप्रदापयेत्।

अर्थ—अनन्तमूल, खंभारी, वेर, दूब, और क्षीरकाकोली इनका क्वाथ करले - उस क्वाथ में घृतमंड और रसौत मिलाकर शीतल वस्ति देवे ।

पिच्छावस्तिंसुशीतंवाघृतमण्डानुवासनम् । गुदंभ्रष्टंकषायैश्चस्तम्भयित्वामवेशयेत् ॥ सामगान्धर्वशब्दांश्चसंज्ञानाशेऽस्यकारयेत् ॥

अर्थ—अथवा शीतल पिच्छावस्ति देकर घृतमंडकी अनुवासन देवै ॥ वहुत विरेचन होने से जो गुदाभ्रंश होगई हो अर्थात् काच निकलती हो तौ उसे क्षीर वृक्षों के कषाय से स्तब्ध कर के भीतर को प्रवेश करदेवै । जो रोगी वेहोश होगया हो तौ सामवेदकी ऋचाओं का गान और सुन्दर बाजों का शब्द रोगी के सन्मुख करै ॥

यदाविरेचनंपीतंविडन्तमवतिष्ठते ॥ वमनंभेषजान्तंवाकोपान्नुत्क्लेश्यनावहेत् । तदाकुर्वन्तिकण्ड्वादीन्दोषाःप्रकुपितागदान् ॥ सविभ्रंशःपुनस्तत्रस्याद्यथाव्याधिभेषजम् ।

अर्थ—जो विष्टा के निकल चुकतेही वैरेचनिक औषध का फल जाता रहे और पित्त न निकले, इसीतरह वमन औषध के निकलतेही वमन क्रियाकाफल जातारहे और कफ का दर्शन न हो तौ उस मनुष्य के खुजली आदिरोग उत्पन्न होजाते हैं, इसको वमन विरेचन औषधों का विभ्रंश कहते हैं।

पीतंस्निग्धेनसस्नेहंतद्दोषान्मार्दवाद्धृतम् ॥ नवाहयतिदोषांस्तुस्वस्थानात्स्तम्भयेच्च्युतान् । वातसङ्गगुदस्तम्भशूलैःक्षरतिचाल्पशः ॥ तीक्ष्णंवस्तिविरेकंवा सोऽर्होलंघितपाचितः ।

अर्थ—जो स्निग्ध मनुष्य स्नेहयुक्त विरेचन पानकरै तौ वह विरेचन मृदुता के कारण दोषों से रुकजाता है और अपने स्थान से हटेहुए दोषों को भी स्तम्भित कर देता है, इससे वातविवन्ध, गुदस्तम्भ और गुदशूल होता है, उसः के मल थोडा थोडा निकलता है । ऐसी जगहपर तीक्ष्ण वमन विरेचन वा लंघन पाचन हित होताहै ।

रूक्षंविरेचनंपीतंरूक्षेणाल्पबलेनवा ॥ मारुतंकोपयित्वाशुकुर्याद्घोरानुपद्रवान् । स्तम्भशूलानिघोराणिसर्वगात्रेषु मुह्यतः ॥ स्नेहस्वेदादिकस्तत्रकार्योवा तद्धरोविधिः ।

अर्थ—रूक्ष वा बलहीन मनुष्य जो रूक्ष विरेचनका पान करै तौवह विरेचन वायु को कुपितकरकेघोर उपद्रवों को उत्पन्न करताहै इससे सम्पूर्ण देह में घोर स्तम्भ और शूल होते हैं । इस में वातनाशक स्नेहन स्वेदन विधि करनी चाहिये ।

स्निग्धस्यगुरुकोष्ठस्यमृदूत्क्लेश्यौषधंकफपित्तंवातंचसंरुध्यसतन्द्रागौरवंक्लमम् ॥ दौर्बल्यञ्चांगसादञ्चकुर्य्यादाशुतदुल्लिखेत् । लंघनंपाचनंचात्रस्निग्धंतीक्ष्णंचशोधनम् ॥

अर्थ—जो स्निग्ध और भारी कोठेवाला मनुष्य मृदु औषध का पान करै तौ वह औषध उसके कफको उत्क्लिष्ट कर और वात पित्त को रोककर तन्द्रा, भारापन, क्लान्ति, दुर्बलता और अंगसाद को उत्पन्न करती है । इस मे उस औषध को शीघ्रही वमन द्वारा निकलवा देवै, फिर लंघन और पाचन

द्वारा स्निग्धता और गुरुता को दूर करके तीक्ष्ण विरेचन देवै ॥

अध्याय का संक्षिप्त वर्णन

तत्रश्लोकौ ।

इत्येताव्यापदःप्रोक्ताः सर्वाहिसचिकित्सिताः ॥ वमनस्यविरेकस्यकृतस्याकुशलैर्नृणाम् ॥ एतान्विज्ञायमतिमानवस्थाश्चैवतत्त्वतः । कुर्यात्संशोधनंसम्यगारोग्यार्थीनृणांसदा ॥

अर्थ—इस अध्याय में अप्रवीण वैद्य द्वारा वमन विरेचन के प्रयोग में जो जो व्याधियां होजाती हैं वे सब चिकित्सा सहित वर्णन की गई हैं । बुद्धिमान वैद्यको उचित है कि इन बातों को और अवस्था को जानकर आरोग्य की अभिलाषासे मनुष्यों को वमन विरेचन देवैं ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांसिद्धिस्थानेवमनविरेचनव्यापत्सिद्धिर्नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

——:-+-+-:——

सप्तमोऽध्यायः ॥

अथातोबस्तिव्यापादिकांसिद्धिंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम व्यापादिका सिद्धि की व्याख्या करेंगे ॥

धीधैर्य्यौदार्यगाम्भीर्यक्षमादमतपोनिधिम् । पुनर्वसुंशिष्यगणःपप्रच्छविनयान्वितः ॥ काःकतिव्यापदोबस्तेःकिंसमुत्थानलक्षणाः । काश्चिकित्साइतिप्रश्नान् श्रुत्वातानब्रवीद्गुरुः ॥

अर्थ—शिष्यगणों ने बुद्धि, धीरता, गंभीरता, उदारता, क्षमा, दम और तपकी निधि पुनर्वसु से अत्यन्त नम्रतापूर्वक प्रश्न किया कि हे भगवन् ! बस्ति के रोग कैसे होते हैं, कितने हैं उन के उत्पन्न होनेके कारण और लक्षण क्याहैं और उनकी चिकित्स भी क्या हैं । इन प्रश्नों को सुनकर गुरु उनका समाधान करने लगे ॥

बस्ति के रोग ।

नातियोगौक्लमाध्मानौहिक्काहृत्प्राप्तिरुद्धता । प्रवाहिकाशिरोऽङ्गार्तिःपरिकर्त्तः परिस्रवः ॥ द्वादशव्यापदोबस्तेरसम्यग्योगसम्भवाः । आसामेकैकशोरूपंचिकित्सांचनिबोधत ॥

अर्थ—अयोग, अतियोग, क्लान्ति, आध्मान, हिचकी, हृदय में धक् २, उर्द्धता प्रवाहिका, शिरोवदना, अंगशूल, परिकर्त्तिका परिस्राव । ये बारह रोग बस्ति के हैं, ये सब रोग बस्ति के असम्यक् योग से होते हैं अब हम इन में से प्रत्येकके रूप और चिकित्सा का वर्णन करते हैं, श्रवण करो ।

अयोगव्यापल्लक्षण ।

गुरुकोष्ठेऽनिलप्रायेरूक्षेवातोल्बणेऽपिवा । शीतोऽल्पलवणस्नेहद्रवमात्रोघनोऽपिवा ॥ बस्तिःसंक्षोभ्यतंदोषंदुर्बलत्वादनिर्हरन् । करोतिगुरुकोष्ठत्ववातमूत्रशकृद्ग्रहम् ॥ नाभिबस्तिरुजंदाहंहृल्लेपंश्वयथुंगुदे । कण्डूंगण्डानिवैवर्ण्यमरुचिंवह्निमार्दवम् ॥

अर्थ—वातप्राय भारी कोष्ठवाला वा वातविरुद्ध रूक्ष पुरुष इनको शीतल, थोडे नमककी, थोडे स्नेह की, इसी तरह केवल पतली वा गाढी वस्ति दीजाय तो यह वस्ति दोषको कुपित करती है परन्तु दुर्बलता के कारण उसे निकाल नहीं सक्ती है, इससे कोष्ठ में भारापन, अधोवायु, मल और मूत्रकी रुकावट, नाभिशूल, वस्तिशूल, दाह, हृल्लेप, गुदामें सूजन, खुजली, गंडमाला, विवर्णता, अरुचि और मन्दाग्नि ये लक्षण होते हैं॥

अयोगव्यापचिकित्सा।

तत्रोष्णायाःप्रमथ्यायाःपानंस्वेदाःपृथग्विधाः। फलवर्त्योऽथवाकालंज्ञात्वाशस्तं विरेचनम्॥ विल्वमूलत्रिवृद्दारुयवकोल कुलत्थवान्। सुरादिमूत्रयान्वस्तिःस प्राक्पष्यस्तमानयेत्॥

अर्थ—इस रोगमें गरम प्रमथ्या पान करानी चाहिये, अनेक प्रकारके स्वेदनकर्म, फलवर्त्ति और यदि उचित समय होतो विरेचन भी देवै। [दोपल चांवलों को कूटकर अठगुने जलमें पक्कर चौथाई शेष रहने पर ग्रहण करै, इसे प्रमथ्या कहते हैं]॥

बेलकी जड़, निसोथ, देवदारु, जौ, बेर और कुलथी इनका कल्क तथा सुरा और गोमूत्र के साथ निरूहण देवै, परन्तु पहिले दीहुई वस्तिको प्रथम निकाल लैना चाहिये।

अतियोगव्यापल्लक्षण।

स्निग्धस्विन्नोऽतितीक्ष्णोष्णोमृदुकोष्ठेतियुज्यते। तस्यलिंगंचिकित्सांचशोधनाभ्यांसमाभवेत्॥

अर्थ—अत्यन्त स्नेह स्वेदन करने के पीछे मृदुकोष्ठ वाले मनुष्य को तीक्ष्ण और उष्ण वस्ति देने से वस्ति का अतियोग होता है। वमन विरेचन के अतियोग के सदृशही वस्ति के अतियोग के लक्षण और चिकित्सा होती है।

अतियोगव्यापचिकित्सा॥

पृश्निपर्णीस्थिरापद्मकाश्मर्यमधुकंवलाम्॥ पिष्ट्वाद्राक्षामधूकंचक्षीरेतण्डुलधावनम्। द्राक्षायाःपञ्चलोष्टस्यप्रमादेमधुकस्यच। विनीयसघृतंवस्तिंदद्याद्दाहातियोगिने।

अर्थ—दूधमें चांवलोंको धोकर उन में महुआ का कल्क, वा दाख का कल्क, वा जली हुई मृत्तिका, वा मुलहटी का कल्क डालकर जो प्रसाद अर्थात् स्वच्छ पदार्थ निकले उसमें पृश्निपर्णी, वा शालिपर्णी, वा पद्माकाष्ठ वा खंभारी वा मुलहटी वा खरैटी इनमें से एक एक का वा जो सब मिलसकें तो सबका कल्क मिलाकर घीके साथ वस्ति देने से अतियोगका दाह नष्ट होजाता है।

क्लमव्यापल्लक्षण॥

आमदोषेनिरूहणमृदुनादोषईरितः॥ रुणद्धिमार्गवातस्यहन्त्यग्निंमूर्च्छयत्यपि। क्लमंविदाहंहृच्छूलंमोहवेष्टनगौरवम्॥ कुर्यात्स्वेदैर्विरूक्षैस्तंपानैश्चाप्युपाचरेत्॥

अर्थ—आमदोष में मृदु निरूहण वस्ति देने से दोष उदीर्ण होकर वात के मार्ग

को रोक देते हैं, तथा अग्नि को मन्द कर के मूर्च्छित भी कर देते है। इस में क्लान्ति विदाह, हृदयशूल, मोह, अंगडाई और भारापन होता है। इस में रूक्ष स्वेदन और पाचन द्वारा चिकित्सा करनी उचित है।

वलमव्यापच्चिकित्सा।

पिप्पलीकत्तृणोशीरदारुमूर्वाशृतंजलम्। पिबेत्सौवर्चलोन्मिश्रंदीपनंहृद्विशोधनम्॥ वचानागरशठ्योवादधिमण्डेनचूर्णिताः। पेयाःप्रसन्नयावास्युररिष्टेनासवेनवा। दारुत्रिकटुकंपथ्यांपलाशंचित्रकंशठीम्। पिष्ट्वाकुष्ठञ्चमूत्रेणपिबेत्क्षारांश्चदीपनान्॥वस्तिमस्यविदध्याच्चसमूत्रंदाशमूलिकम् समूत्रमथवाव्यक्तलवणंमधुतैलिकम्॥

अर्थ—पीपल, रोहिषतृण, उसीर, देवदारु, मरोडफली इनके क्वाथ में सचलनमक डाल कर पान करने से अग्निसंदीपन और हृदय की विशुद्धि होती है

अथवा वच, सोंठ, कचूर [सर्ज्येला = सज्जी और छोटी इलायची पाठान्तर]इन के चूर्ण को दधि मंडके साथ, वा प्रसन्नाके साथ वा अरिष्ट के साथ, वा आसवके साथ पान करै।

अथवा देवदारु, त्रिकुटा, हरड, पलास चीता, कचूर और कूठ इन को गोमूत्र के साथ पीसकर पान करै अथवा सब प्रकार के दीपनकर्त्ता क्षीर पान करै।

अथवा दशमूल के क्वाथ में गोमूत्र मिलाकर वस्ति देवै अथवा गोमूत्र में थोडा सा नमक तथा शहत और तेल डालकर वस्तिदेना चाहिये।

आध्मानव्यापल्लक्षण॥

अल्पवीर्योमहादोषेरूक्षेक्रूराशयेकृतः॥ वस्तिर्दोषावृतोरुद्धमार्गोरुन्ध्यात्समीरणम्॥ सविमार्गोऽनिलःकुर्यादाध्मानंमर्मपीडनम्। विदाहंगुरुकोष्ठस्यमुष्कवंक्षणवेदनाम्॥ रुणद्धिहृदयंशूलैरितश्चेतश्च धावति॥

अर्थ—क्रूर कोष्ठवाले वहुत दोषोंसेयुक्त रूक्ष मनुष्यको अल्पवीर्यवाली वस्ति देने से दोषों से आवृतवायु ऊपर के और नीचेके सम्पूर्ण मार्गों को रोक देती है, वह विमार्ग गामी वायु मर्मपीडनकर्त्ता आध्मान उत्पन्न करती है विदाह, कोष्ठ में भारापन, अंडकोष और वंक्षण में वेदना और हृदय में रोध होता है। और वायु शूल करती हुई पेट में इधर उधर दौडती है।

आध्मानव्यापच्चिकित्सा।

फलश्यामादिभिःकुष्ठकृष्णालवणसर्षपैः। धूममाषवचाकिण्वक्षारचूर्णगुडैःकृताम्। करांगुष्ठनिभांवर्तियवमध्यांनिधापयेत्॥ स्वभ्यक्तस्विन्नगात्रस्यतैलाक्तांस्नेहितेगुदे। अथवालवणागारधूमसिद्धार्थकैःकृताम्॥ विल्वादिश्चनिरूहःस्यात्पीलुसर्षपमूत्रवान्॥ सरलामरदारुभ्यांसिद्धंचैवानुवासनम्।

अर्थ—इस जगह सूत्रस्थान के अपामार्ग तण्डुलीय अध्याय में कहेहुए मेनफलादि, और निसोथ आदि, कूठ, पीपल, सेंधानमक सरसों, धूमसा, माष, वच, सुराबीज और जवाखार इन सबको पीसकर गुड में सान-

कर हाथ के अंगूठे की बराबर वत्ती बनाकर उस में जौका चून भरदे, इस वत्ती को तेल में भिगोकर रोगीकी गुदा में रख-देवै। वत्ती रखने के पहिले रोगी को अच्छी तरह से अभ्यक्त और स्वेदित करले और गुदा में भी तेल लगादेवै। अथवा सेंधानमक, धूनसा और सफेद सरसों इनकी वत्ती बनाकर पूर्ववत् गुदा में रक्खै। अथवा बिल्वादि पंचमूल के क्काथ के साथ पील और सरसोंका कल्क और गोमूत्र मिलाकर निरूहणवस्ति देवै, अथवा सरलकाष्ठ और देवदारु इन से सिद्ध की हुई अनुवासन वस्ति देवै।

हिक्काव्यापच्चिकित्सा।

मृदुकोष्ठेऽवलेवस्तिरतितीक्ष्णोऽतिनिर्हरन्॥ कुर्याद्धिक्कां हितंतस्मैहिक्काघ्नंबृंहणञ्चयत्। बलास्थिरादिकाश्मर्यत्रिफला गुडसैन्धवैः। सुमसन्नारनालाम्लैस्तैलं पक्त्वानुवासयेत्॥ कृष्णालवणयोरंशं पिबेदुष्णाम्बुनायुतम्॥ धूमलेहरसक्षी रस्वेदाश्चान्नंचवातनुत्॥

अर्थ—मृदु कोष्ठवाले दुर्बल मनुष्य को तीक्ष्णवस्ति देने से वह वस्ति दोषों को निकाल कर हिचकी उत्पन्न करती है इस में हिक्कानाशक और बृंहण औषधदैना हित है। हिचकियों को रोकने के लिये खरैटी, शालिपर्ण्यादि पंचमूल, खंभारी, त्रिफला, गुड और सेंधानमक इन सबका कल्क एक सेर, तेल चारसेर, प्रसन्ना और अम्लकांजी सोलह सेर इन सबको मिलाकर पाक कर के अनुवासन देवै। अथवा पीपल और सेंधा नमक दोनों दो तोले लेकर गरम जल के साथ पीने चाहियें। इस में धूम, लेह, मांसरस, दूध, स्वेदन और वातनाशक अन्न हितकर होते हैं॥

हृदयचिकित्सा।

अतितीक्ष्णःसवातोवानवासम्यक्प्रपीडितःघट्टयेद्धृदयंवस्तिस्तत्रकाशकुशोत्कटैः स्यात्साम्ललवणस्कन्धकरीरवदरीफलैः शृतैर्वस्तिर्हितःसिद्धंवातघ्नैश्चानुवासनम्

अर्थ—वस्तिके अत्यन्त तीक्ष्ण होनेपर अथवा वायुयुक्त होनेपर अथवा ठीक रीति से पीडित न होनेपर वह हृदय में धकधकाहट उत्पन्न करती है। इस में कांस, कुशा और ईख की जड़ का क्वाथ करके इस में अम्लस्कन्ध और लवणवर्गके द्रव्य करीर और बेर डालकर सिद्ध करके वस्ति देवै। तथा वातनाशक औषधियों से सिद्ध कियेहुए तेलकी अनुवासन वस्ति देवै।

ऊर्ध्वव्यापच्चिकित्सा।

वातमूत्रपुरीषाणांदत्तवेगान्निगृह्णतः॥ अतिवापीडितोवस्तिर्मुखेनायातिनिर्गवान्॥ मूर्च्छाविकारंतस्याद्वौदघ्न्याच्छीताम्बुनामुखम्॥ सिञ्चेत्पार्श्वोदरंचाधःप्रमृज्याद्व्यजयेच्चतम्॥ केशेष्वालम्ब्यचाकाशेधनुपात्रासयेद्भृशम्॥ गोखराश्वगजैःसिंहराजभृत्यैस्तथोरगैः। उल्काभिरेवमन्यैश्चभीतस्याधःप्रवर्तते॥

अर्थ—अधोवायु, मूत्र और पुरीष के उपस्थित वेगों को रोककर वस्ति ग्रहण

की जाय अथवा वस्ति अत्यन्त पीडित कीजाय तौ यह मुखके द्वारा बाहर निकल जातीहै। ऐसा होने पर यदि रोगी को मूर्च्छा रोग होजाय तौ प्रथमही मुख पर ठंडे जल के छींटे मारै। पसली और उदर तथा अधोभाग में मार्जन करै और फिर उसे व्यग्र करदे। उसके केश पकडकर ऊंचे करै और धनुष खींच कर उसे डरावै अथवा गौ, घोडा, हाथी, सिंह, राजकर्मचारी, सर्प और उल्का आदि दिखाकर डरावै जिस से वस्ति नीचे को प्रवृतहो जाय।

वस्त्रपाणिग्रहैःकण्ठोरुन्ध्यान्नम्रियतेतदा प्राणोदाननिरोधाद्धिप्रसिद्धतरमार्गगः अपानःपवनोवस्तियमाश्वेवापकर्षति ॥ ततःक्रमुककल्काक्षंपाययेताम्लसंयुतम्। औष्ण्यात्तैक्ष्ण्यात्तसरत्वाच्चवस्तितस्यानुलोमयेत्॥ पक्वाशयस्थितेस्विन्नेनिरूहोदाशमूलिकः। यवकोल कुलत्थैश्च विधेयोमूत्रभावितः॥ विल्वादिपञ्चमूले नसिद्धोवस्तिरुरःस्थिते। शिरःस्थेनाव नंधूमःप्रच्छाद्यंसर्षपैःशिरः॥

अर्थ—वस्त्र और हाथ से कंठ को इस तरह दावै कि मरने न पावे, इस तरह कंठ को दावने से प्राण और उदान वायुके रुकने के कारण अपान वायु का वेग नीचे को बढ जाता है, इस से वस्ति शीघ्रही नीचे को चली जाती है। तत्पश्चात् दो तोले सुपारी का कल्क कांजी के साथ पान करावै इस कल्क की उष्णता, तीक्ष्णता, और खरता के कारण वस्ति शीघ्रही निकल आती है। जो वस्ति पक्वाशय में स्थित हो तौ उसे निकालने के लिये दशमूलके क्वाथ के साथ जौ, बेर, कुलथी का कल्क तथा गोमूत्र मिलाकर निरूहण देवै। जो वस्ति हृदय में स्थित होगई हो तौ विल्वादि पंचमूल के क्वाथ के साथ निरूहण देवै। जो वस्ति शिर में स्थित हो तौ नस्य और धूम पान का प्रयोग करै और सिरसे ऊपर सरसों का लेप करै।

प्रवाहिका व्यापच्चिकित्सा।

स्निग्धस्विन्नेमहादोषेवस्तिर्मृद्वल्पभेषजः उत्क्लेश्यालंहरेद्दोषंजनयेच्चप्रवाहिका म्॥ सवस्तिपायुशोफेनजंघोरुसदनेन वा। निरुद्धमारुतोजन्तुरभीक्ष्णंसंप्रवा हतः॥स्वेदाभ्यङ्गान्निरूहांश्चशोधनीयानु लोमिकान्। विदध्याल्लंघयित्वातुरुचिं कुर्य्याद्विरिक्तवत्।

अर्थ—बहुत दोषों से युक्त मनुष्य को स्निग्ध और स्विन्न करके मृदु वीर्य और अल्पवस्तिका प्रयोग किया जाय तौ वह सब दोषों को उद्गीर्ण करके अल्पदोष को निकालती हैं, इस से प्रवाहिका रोग होजाता है " प्रवाहिका उसे कहते हैं जो पुरीषोत्सर्ग की थोडी थोडी देर में शंका होती है और मल थोडासा निकल जाता है और पेट में दर्द सा रहता है ,, । इस वस्ति से गुदा में सूजन तथा जंघा और ऊरू में अवसाद उत्पन्न करती है। रुकी हुई वायुके कारण वार वार पुरीषोत्सर्ग की शंका होती है।

इस में स्वेदन, अभ्यंग, तथा शोधनीय और अनुलोमनकर्त्ता निरूहण देना उचित है। इस तरह रोगी को लंघन कराके विरेचन दिये हुए रोगी की तरह पेयादि क्रमका पालन करावे।

शिरःशूल के लक्षण।

दुर्बलेतीव्रदोषेचदुष्कोष्ठेचतनुर्मृदुः। शीतोऽल्पश्चाहृतोदोषोवस्तिस्तद्विहितोऽनिलः॥ मार्गैर्गात्राणिसन्धावन्नूर्द्धमूर्द्ध न्युपाहितम्। ग्रीवांमन्येचगृह्णातिशिरःकण्ठंभिनत्तिच॥ बाधिर्यकर्णनादंचपीनसंनेत्रविभ्रमम्॥

अर्थ—ऐसे मनुष्य को जो दुर्बल हो और जिस के दोष तीव्र हों और कोष्ठ मृदु हो उसे ठंडी और अल्पवस्ति देनेसे वह वस्ति दोषों से घिरजाती है, वस्ति के इसतरह आवृत होनेपर वायु विहत होकर ऊपर को जाती है, वहां जाकर ग्रीवा और दोनों मन्याओं को जकड लेती है। सिर और कंठ में भिदने कीसी पीडा होती है। तथा बहरापन, कर्णनाद (कानों में झनकार), पीनस और नेत्रविभ्रम ये उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

शिरःशूलचिकित्सा॥

कुर्यादभ्यञ्जनंतैललवणेनयथाविधि॥ युञ्ज्यात्प्रधमनैर्नस्यैर्धूमैरास्यविरेचनैः। विरेचनैर्निरूहैश्चवस्तिभिश्चानुलोमिकैः

अर्थ—इसरोगमें विधिपूर्वक तेल और नमक का अभ्यंग करै। तथा प्रधमन, धूम, नस्यआदि शिरोविरेचन का प्रयोग करै तथा विरेचन, निरूहणवस्ति और आनुलोमिक वस्तिका भी प्रयोग करै।

अंगशूललक्षण॥

सुस्विन्नस्निग्धदेहस्ययस्यवस्तिर्विधीयते अतितीक्ष्णोगुरुश्चैवसोऽतिमात्रंप्रवर्त्तयेत्॥ स्रुतेपुतस्यदोषेपुनिरूढस्यातिमात्रशः। स्तब्धोदावृत्तकोष्ठस्यवायुःसंप्रतिहन्यते॥ विलोममसमुद्भूतोरुजत्यङ्गानि देहिनः। गात्रवेष्टननिस्तोदभेदस्फुरणजृम्भणैः॥

अर्थ — जिस रोगी को अच्छी तरह से स्निग्ध और स्विन्न करके अतितीक्ष्ण और भारी वस्ति दी जाती है, उसके दोष बहुत निकलने लगते हैं। इस तरह दोषों के निकलने पर अत्यन्त निरूहित, स्तब्ध उदावृत कोष्टवाले मनुष्य की वायु प्रतिहत होजाती है। तब वायु की विलोमताके कारण अंगोंमे शूल होने लगता है। देह में अंगडाई, निस्तोद, भेद, स्फुरण और जंभाई ये उपद्रव उत्पन्न होते हैं।

अंगशूलचिकित्सा॥

तंतैललवणाभ्यक्तंसेचयेदुष्णवारिणा॥ एरण्डपत्रनिष्क्वाथैःप्रस्तरैश्चोपपादयेत्॥ यवान्कुलत्थान्कोलानिपञ्चमूलेतथोभये। जलाढकद्वयेपक्त्वापादशेषेणतेनच कुर्यात्सबिल्वतैलोष्णलवणेनानुवासनम्॥ निरूहणंसमाश्वस्तंद्रोण्यांसमवगाहयेत्। ततोभुक्तवतस्तस्यकारयेतानुवासनम्॥ यष्टीमधुकतैलेनबिल्वतैलेनवाभिपक्॥

अर्थ—उक्तरोगी के देहपर तेल और नमक का मर्दन करके उसे गरमजल से से-

चन करै तथा अरंड के पत्तों के क्वाथ से सेचन कर प्रस्तरस्वेद का प्रयोग करै ॥ जौ, कुलथी, बेर, दसमूल इनको अठगुने जल में पक्व करके चौथाई शेष रहने पर उतार लेवै, फिर इसमें प्रमाण से विल्वतैल और सेंधानमक मिलाकर गरम २ से अनुवासन देवै । तथा निरूहण देकर रोगी के स्वस्थ होनेपर जलसे भरीहुई द्रोणीमें स्नान करावै फिर भोजन कराके भोजनके पचनेपर अनुवासन देवै । इसमें मुलहटी के तेल का या विल्वके तेलका अनुवासन दियाजाता है।

परिकर्तिकाकीचिकित्सा ।

मृदुकोष्ठाल्पदोपस्यरूक्षतीक्ष्णोऽतिमात्र-वान्॥वस्तिदोषान्निरस्याशुजनयेत्परि-कर्तिकाम्॥त्रिकवंक्षणवस्तीनांतोदंनाभे-रधोरुजम् ॥ विबन्धाल्पाल्पमुत्थानंगुद-निर्लेखनंभवेत । स्वादुशीतौषधैस्तत्रपय इक्ष्वादिभिःशृतम् ॥ यष्ट्याह्वतिलक-ल्काभ्यांवस्तिस्यात्क्षीरभोजिनः ॥

अर्थ—ऐसे रोगीको जिसका कोष्ठ मृदु हो और दोप भी कमहों उसे रूक्ष, तीक्ष्ण और अतिमात्रावाली वस्ति देने से दोषों के निकलने पर परिकर्तिका रोग उत्पन्न होता है। तथा त्रिक, वंक्षण और वस्तिमें सुई छिदने कीसी पीडा होतीहै, नाभिके नीचे वेदना होतीहै, विबन्ध और मलका थोडा थोडा स्राव होताहै । वस्तिके अत्यन्त पीडन करनेसे गुदा विदीर्ण होजाती है । इस में ईख आदि स्वादु और शीतल द्रव्योंके साथ औटाये हुए दूध में मुलहटी और तिलका कल्क मिलाकर पान करावै । इस में केवल दूध का पथ्य हित है ॥

पित्तरक्त में चिकित्सा ।

पित्तरक्तेऽम्लउष्णोवातीक्ष्णोवालवणो-ऽथवा॥वस्तिर्लिखतिपायुंतुतीक्ष्णोऽतिवि-दहत्यपि॥सविदग्धःस्रवत्यस्रंपित्तंचानेकव-र्णवत्॥सार्यतेवहुवेगेनमोहंगच्छतिचासकृत् आर्द्रशाल्मलिवृन्तैस्तुक्षुण्णैराजंपयःशृतम्॥ सर्पिषायोजितंशीतवस्तिमस्मैप्रदापयेत् वटादिपल्लवेष्वेपःकल्पोयवतिलेषुच ॥ सुवर्चलापोदकयोःकर्बुदारेचशस्यते ॥ गुदेसेकाःप्रदेहाश्चशीताःस्युर्मधुराश्चये॥ रक्तपित्तातिसारघ्नीक्रियाचात्रप्रशस्यते

अर्थ—रक्तपित्तमें खट्टी, गरम, तीक्ष्ण या नमककी वस्ति देने से गुदा विदीर्ण होजातीहै ॥ अत्यन्त तीक्ष्ण होने पर विदाह भी होता है ॥ इस तरह गुदा के विदीर्ण और विदग्ध होने पर अनेक रंगका पित्त स्रावित होता है, तथा बहुत वेग से स्राव होने पर मूर्च्छा भी हो जाती है ।

इस रोग में सेमर के कच्चे डंठलों को कूटकर उनके साथ बकरीका दूध सिद्ध करै फिर इस में घृत मिला कर ठंडा होने पर वस्ति देवै ।

इसी तरह से बट आदि वृक्षोंके पत्तों का कल्क अथवा जौ और तिलका कल्क अथवा सुवर्चला और पोई अथवा रक्त कनेर इनके साथ दूध औटाकर घृत मिला कर ठंडा होने पर वस्ति देवै ।

गुदा में शीतल परिषेक, मधुर द्रव्यों का शीतल लेप तथा रक्तपित्तनाशक और अतिसार नाशक चिकित्सा इसमें करनी चाहिये ।

अध्यायकाउपसंहार ।

भवतिचात्र ॥

इत्येताव्यापदःमोक्तावस्तेःसाकृतिभेषजाः॥बुद्ध्याकात्स्न्र्येननानवस्तीन्नियुञ्जन्नापराध्यति॥तीक्ष्णत्वंमूत्रबिल्वादिलवणक्षारसर्षपैः॥माप्तकालंविधातव्यंक्षीराद्यैर्मार्दवंतथा॥आपादतलमूर्द्धस्थान्दोषान्पक्वाशयेस्थितः॥ वीर्येणवस्तिरादत्तेखस्थोऽर्कोभूरसानिव ॥ यद्वत्कुसुम्भसंमिश्राचोयाद्रागंहरेत्पटः ॥ तद्वद्द्रवीकृतात्कायान्निरूहोनिर्हरेन्मलान् ॥

अर्थ—ऊपर लिखी हुई रीतिके अनुसार वस्तिकी व्यापत् उन के लक्षण और चिकित्सा वर्णन कीगई हैं । इन सम्पूर्ण वातों को विचारकर वस्तिका प्रयोग करने से वैद्य अपराध का भागी नहीं होता है ॥

यदि योग्य समझाजाय तो गोमूत्र, विल्व, मैनफल, लवण, क्षार और सरसों मिलाकर वस्ति तीक्ष्ण करली जाती है ॥ तथा दूध और घृतादिके मिलानेसे वस्ति मृदु होजातीहै जैसे आकाश में स्थित सूर्य पृथ्वी के रस को खींचलेता है उसी तरह से मलाशयस्थ वस्ति अपने वीर्यसे पांव के तलुए से लेकर मस्तक के तलुए तकके दोषोंकोखींचलेतीहै जैसे वस्त्र कसूम मिलेहुए जलमें से ललाई को खींच लेताहै उसी तरह स्नेहनस्वेदनादिसे द्रवकी हुई देहमें से निरूहणवस्ति दोषों को खींच लेतीहै ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांसिद्धिस्थानेवस्तिव्यापादिकासिद्धिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

अष्टमोऽध्यायः ।

अथातःप्रासृतयोगिकांसिद्धिंव्याख्यास्यामइतिहस्माहभगवानात्रेयः॥

अर्थ....तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अव हम प्रासृतयोगिका सिद्धिकी व्याख्या करेंगे ॥

अथेमान्सुकुमाराणांनिरूहान्स्नेहनान्मृदून् ॥ कर्मणाविप्लुतानांचवक्ष्यामिप्रसृतैःपृथक् ॥

अर्थ....अव हम सुकुमार और परिश्रम से थकेहुए मनुष्योंके लिये जिस तरह मृदु निरूह और स्नेह का प्रयोग करना चाहिये उनके प्रसृत द्वारा अलग अलग प्रमाणों को कहेंगे ॥

क्षीरात्द्वौप्रसृतौकार्यौमधुतैलघृतात्त्रयः॥ खजेनमथितोवस्तिर्वातघ्नोबलवर्णकृत्॥

अर्थ....दो प्रसृत दूध और शहत, तेल तथा घी तीनों मिलेहुए तीन प्रसृत, इन सबको मिलाकर रई से मथकर वस्ति देवै। इससे वात दूर होजाता है तथा बल और वर्ण बढते हैं ॥

एकैकःप्रसृतस्तैलप्रसन्नाक्षौद्रसर्पिषः ॥ विल्वादिमूलक्वाथाद्द्वौकौलत्थाद्द्वौस वातनुत् ॥

अर्थ—तेल, प्रसन्ना, शहत और घी एक २ प्रसृत, विल्वादि पंचमूल का क्वाथ दो प्रसृत और कुलथी का क्वाथ दो प्रसृत, ये सब मिलाकर रई से मथकर वस्ति देवे तो वात दूर होजाताहै ।

पञ्चमूलरसात्पञ्चद्वौतैलात्क्षौद्रसर्पिषोः एकैकःप्रसृतौवस्तिःस्नेहनीयोऽनिलापहः

अर्थ—पंचमूल का क्वाथ पांच प्रसृत, तेल दो प्रसृत, शहत और घी एक एक प्रसृत इनको मिलाकर वस्ति देनेसे स्नेहन होता है और वादी दूर होजातीहै ।

वीर्यवर्द्धननिरूह ।

सैन्धवार्धाक्षएकैकःक्षौद्रतैलपयोघृतात् । प्रसृतोहपुषाख्यौचनिरूहःशुक्रकृत्परम्

अर्थ—सेंधानमक एक तोला, शहत, तेल, दूध और घी एक २ प्रसृत, इसी तरह हवुषा का क्वाथ एक प्रसृत । इन को मिलाकर निरूहण वस्ति देनेसे वीर्य की अत्यन्त वृद्धि होतीहै ।

पञ्चतिक्त निरूह वस्ति ॥

पटोलनिम्बभूनिम्बरास्नासप्तच्छदाम्भसः ॥ चत्वारःप्रसृताएकोघृतात्सर्षप कल्कितः । निरूहःपञ्चतिक्तोऽयंमोहा भिष्यन्दकुष्टनुत् ॥

अर्थ—परवल, नीमकी छाल, चिरायता, रास्ना और सतच्छद इनका क्वाथ चार प्रसृत, घी एक प्रसृत तथा उचित प्रमाण से सरसों का कल्क । इन सब को मिलाकर वस्तिका प्रयोग मोह, अभिष्यन्द और कुष्ट को दूर कर देताहै ।

क्रिमिनाशक वस्ति ।

विडङ्गत्रिफलाशिग्रुफलमुस्ताखुपर्णिजात् कषायात्प्रसृताःपञ्चतैलादेकोविमथ्यता न् । विडङ्गपिप्पलीकल्कान्निरूहःक्रिमि नाशनः ॥

अर्थ—वायविडंग, त्रिफला, सहजने के बीज, मोथा और मूषिकपर्णी इनका क्वाथ पांच प्रसृत और तेल एक प्रसृत । इनमें योग्य प्रमाणसे वायविडंग और पीपल का कल्क डालकर मथ डाले । इस निरूहण वस्ति से क्रिमि दूर होजातेहैं ।

तृप्यवस्ति ॥

पयस्येक्षुस्थिरारास्नाविदारीक्षौद्रसर्पिषः एकैकःप्रसृतोवस्तिः कृष्णाकल्कोतृपत्व कृत् ।

अर्थ—क्षीरकाकोली, ईख, शालिपर्णी, रास्ना, विदारीकन्द, शहत और घी, इन मेंसे क्वाथके योग्योंका क्वाथ और रसके योग्यों का रस एक एक प्रसृत लेकर पीपलका कल्क डालकर वस्ति दीजाय तो अत्यन्त तृपता होतीहै ।

चत्वारस्तैलगोमूत्रदधिमण्डाम्लकाञ्जिका त् ॥ प्रसृताःसर्षपैःकल्कैर्विट्सङ्गानाह भेदनः ॥

अर्थ....तेल, गोमूत्र, दधिमंड और अम्लकांजी एक एक प्रसृत और सरसों का

कल्क इनकी वस्ति देनेसे विष्टाका विन्ध और आनाह दूर होजाते हैं।

श्वदंष्ट्राश्मभिदेरण्डरसात्तैलात्सुरातथा॥ प्रसृताः पञ्चयष्ट्याह्वाकौन्तीमागधिकासिता। कल्कोवस्तिःसमानाहेमूत्रकृच्छ्रेपरो मतः॥

अर्थ—गोखरू,पाखान भेद और अरंड की जड इनका क्वाथ तीन प्रसृत,तेल एकप्रसृत, और सुरा एक प्रसृत इनमें मुलहटी, रेणुका, पीपल और मिश्री इनका कल्क उचित प्रमाण से डालकर वस्ति देवै। यह वस्ति आनाह और मूत्रकृच्छ्रमें अत्यन्त उत्कृष्टहै

एतेसलवणाःकोष्णानिरूहाःप्रसृतानव॥

अर्थ....ये जो ऊपर नौ प्रकार की वस्ति कही गईहैं, इनमें सेंधानमक डालकर कुछ गरम कर लैनी चाहियें और फिर इनका प्रयोग करना चाहिये॥

मृदुवस्तौजडीभूतेतीक्ष्णोऽन्यावस्तिरिष्यते॥ तीक्ष्णैर्विकर्षितैःस्वादुमल्पास्थापनमेवच।

अर्थ....मृदुवस्ति जब निकाम होजाय तब तीक्ष्ण वस्ति देनी चाहियें, तथा तीक्ष्ण वस्तिके प्रयोगसे रोगीके विकर्षित होने पर मधुर द्रव्योंके द्वारा आस्थापन करना हित है॥

वातोपसृष्टस्योष्णैःस्युर्गुदादाहादयोयदि द्राक्षाम्बुनात्रिवृत्कल्कंदद्याद्दोषानुलोमनम्॥ तद्धिपित्तशकृद्वातान्हृत्वादाहादिकानजयेत्॥

अर्थ—जो वातरोगी मनुष्य को तीक्ष्ण वस्ति देने से गुदा में दाह आदि उपद्रव उत्पन्न हों तो दाख के क्वाथ के साथ निसोथका कल्क पान करावे। इससे दोषों का अनुलोमन होताहै और पित्त, विष्टा और वायु दूर होकर दाहादि उपद्रव शान्त होजाते हैं।

शुद्धश्चापिपिबेत्शीतांयवागूंशर्करायुताम्।

अर्थ—इस तरह रोगी के शुद्ध होने पर उसे शीतल यवागू में शर्करा मिलाकर पान करावे।

अथवातिविरिक्तःस्यात्क्षीणविट्कःसभक्षयेत्।माषयूषेणकुल्माषान्पिबेद्दध्यथवा सुराम्॥

अर्थ—अत्यन्य विरेचनसे जिसका विष्टा क्षीण होगयाहो उसे माषयूषके साथ कुल्माष का भोजन देवै अथवा दही वा सुरा का पान करावै।

सामंचेदतिसार्येतमतिशूलैररोचकी। सतदाहपुषाकुष्ठनतदारुवचाःपिबेत्।

अर्थ—वस्ति देने से पीछे शूल, अरुचि और आमातिसार हों तो हाऊवेर, कूठ,तगर,देवदारु और वच इनका चूर्ण पान करै।

शकृद्वातमसृक्पित्तंकफंवायोऽतिसार्यते। पक्वस्तत्रस्ववर्गीयैर्वस्तिःश्रेष्ठंभिषग्जितम्

अर्थ—वस्ति प्रयोग के पीछे विष्टा,अधोवायु रक्त पित्त और कफ अत्यन्त निकलता हो तो अतिसारनाशक द्रव्यों से सिद्ध कीहुई वस्तिका प्रयोग अत्यन्त हित करहै॥

षण्णामेषांद्विसंसर्गात्त्रिंशद्भेदाभवन्तितु॥ केवलैःसहषट्त्रिंशद्विद्यात्सोपद्रवानपि।

अर्थ—आम, विष्टा, वायु, रक्त, पित्त और कफ इन दो दो के मिलने से पन्द्रह भेद होते हैं तथा केवल आमादि छः और नौ उपद्रव जो आगे वर्णन किये जांयगे इनसब के मिलने से तीसभेद होते हैं।

नौ उपद्रव॥

शूलप्रवाहिकाध्मानपरिकर्त्तारुचिज्वरान्। सतृष्णोदाहमूर्च्छार्दींश्चैषांविद्यादुपद्रवान्।

अर्थ—उपद्रव नौ प्रकारके होतेहैं यथा-शूल, प्रवाहिका, आध्मान, परिकर्त्तिका अरुचि, ज्वर, तृष्णा, दाह और मूर्च्छा॥

तत्रामेवमनंकार्य्यंव्योषाम्ललवणैर्युतम्॥ पाचनंशस्यतेवस्तिरामेहिप्रतिषिध्यते॥

अर्थ—आमातिसारमें त्रिकुटा, खटाई और नमक के साथ वमन कराना उचित है॥ अथवा पाचन देनाभी हित है परन्तु आम में वस्ति देना अहित है॥

वातघ्नग्राहिवर्गीयैर्वस्तिःशकृतिशस्यते। स्वाद्वम्ललवणःशस्तःस्नेहवस्तिसमीरणे रक्तेरक्तेनपित्तास्रेकषायःस्वादुतिक्तकैः

अर्थ....विष्टा के अतिसार में वातनाशक और संग्राही वर्गकी औषधें देवै। वातातिसार में स्वादु, अम्ल और लवण द्रव्यों की स्नेहनवस्ति देवै। रक्तातिसार में बकरे आदि के रक्तकी वस्ति देवै। पित्तरक्त में कषाय, स्वादु और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देवै॥ कफातिसार में कषाय, कटु और तिक्त द्रव्यों की वस्ति देवै॥

सामेमाणेकफेवस्तिःकषायकटुतिक्तकः। शकृतावायुनाचामेतनवर्चस्यथाऽनिले॥ संसृष्टेऽन्तरपानस्याद्व्योषाम्ललवणैर्युतम्॥

अर्थ—आमविष्टा से युक्त अतिसारमें वा आमवायुसे संसृष्ट अतिसारमें वस्ति कर्मसे पीछे त्रिकुटाका चूर्ण, कांजी और सेंधानमक पान करावै।

पित्तेनामेऽसृजावापितयोरामेनवापुनः॥ संसृष्टयोर्भवेत्पानंसव्योषस्वादुतिक्तकम्

अर्थ—पित्त और आमके संसर्ग युक्त अतिसार में अथवा रक्त और आम के संसर्ग युक्त अतिसारमें, पित्तरक्त आम के संसर्ग युक्त अतिसारमें त्रिकुटा, स्वादु और तिक्त द्रव्यों का सेवन करना चाहिये।

तथामेकफसंसृष्टेकेषांयव्योषातिक्तकम्॥ आमेतनुकफेव्योषकषायलवणैर्युतम्॥

अर्थ—आमकफातिसारमें कषाय, त्रिकुटा और तिक्तद्रव्यों का सेवन करै। तथा आमसृष्ट-अल्पकफ में त्रिकुटा, कषाय और नमक का सेवन हितहै॥

वातेनविशिपित्तेवाविट्पित्तास्रैस्तथानिले॥ मधुराम्लकषायःस्यात्संसृष्टेवस्तिरुत्तमः॥

अर्थ—वातसंसृष्ट विष्ठातिसारमें अथवा वातपित्तातिसार में अथवा वातपित्तयुक्त विष्ठातिसारमें वातयुक्त पित्तरक्तातिसारमें मधुर, अम्ल और कषाय द्रव्योंकी वस्ति देना हित है।

शकृच्छोणितयोःपित्तशकृतोरक्तपित्तयोः।
षस्तिरन्योन्यसंसर्गेकषायस्वादुतिक्तकः ॥

अर्थ-विष्टा और रक्त अथवा विष्टा और पित्त अथवा रक्त पित्त इनके अतिसारमें अथवा तीनों के सान्निपातिक अतिसारमें कषाय स्वादु और तिक्त द्रव्यों की बस्ति देवै ।

कफेनविशिपित्तेवाकफेविट्पित्तशोणितैः।
व्योपतिक्तकषायःस्यात्संसृष्टवस्तिरुत्तमः

अर्थ—कफविष्टातिसारमें वा कफपित्तातिसार में तथा कफ, विष्टा, पित्त और रक्तके अतिसार में त्रिकुटा, तिक्त और कषाय द्रव्यों की वस्ति हित है ।

स्याद्वस्तिर्व्योपतिक्ताम्लःसंसृष्टोवायुना कर्फ ॥ मधुरव्योपतिक्तस्तुरक्तेकफविमूर्च्छिते ॥

अर्थ—वात कफातिसार में त्रिकुटा और तिक्त अम्ल द्रव्यों की वस्ति हितहै । तथा कफ रक्तातिसारमें मधुर, त्रिकुटा और तिक्त द्रव्यों की वस्ति उत्तम है ।

मारुतेकफसंसृष्टेव्योपाम्ललवणोभवेत् ॥
वस्तिर्वातेनरक्तेतुकार्यःस्वाद्वम्लतिक्तकः

अर्थ—कफसंसृष्ट वातातिसारमें त्रिकुटा अम्ल और लवण द्रव्योंकी बस्ति देवै । तथा वातसंसृष्ट रक्तातिसारमें स्वादु, अम्ल और तिक्त द्रव्यों की बस्ति देनी चाहिये ॥

त्रिचतुःपञ्चषड्योगानेवमेवविकल्पयेत्॥
युक्तिश्चैषातिसारोक्तासर्वरोगेष्वपिस्मृतः

अर्थ—इसीतरह से आम, विष्टा, वायु पित्त, रक्त और कफ इन छः मलों के तीन तीन, चार चार, पांच पांच और छःदोषों के मिलने से बीस प्रकार के उपद्रव होते हैं, यथा आमविष्टावात, आमविष्टापित्त, आम विष्टारक्त, आमविष्टाकफ, विष्टावातपित्त, विष्टावातरक्त, विष्टावातकफ, वातपित्तरक्त, वातपित्त कफ और पित्तरक्त कफ । चार२ दोष वाले यथा आमविष्टा वातपित्त, आम विष्टावातरक्त, आमविष्टावात कफ, विष्टा वातपित्तरक्त, विष्टावातपित्तकफ और वात पित्तरक्तकफ ॥ पांच पांच दोष वाले- यथा आमविष्टावातपित्तरक्त, आमविष्टावातपित्त कफ और विष्टावातपित्तरक्त कफ ॥छःवाला एक, यथा—आमविष्टावात पित्तरक्तकफ ॥ अतिसार में कही हुई यही युक्ति सब रोगोंमें स्मरण रखनी चाहिये ॥

युगपत्षड्रसंषण्णांसंसर्गेपाचनंभवेत् ॥
निरामाणांनपञ्चानांवस्तिःषाड्रसिकोमतः

अर्थ— आमविष्टावातपित्तरक्तकफ इन छःओंके संसर्ग में स्वादु अम्ललवणकटु तिक्त कषाय इन छःओंका एक साथ प्रयोग करने से मलका पाक होता है तथा आमरहित अन्य पांच उपद्रवों के संसर्गमें छःओं रसोंकी वस्ति हित है ।

उदुम्बरशलाटूनिजम्ब्वाम्रोदुम्बरत्वचः।
शंखसर्जरसंलाक्षाकर्दमंचपलांशिकम् ॥
पिष्टैतैःसर्पिषःप्रस्थंक्षीराद्विगुणितंपचेत्
अतीसारेषुसर्वेषुपेयमेतद्यथाबलम् ॥

अर्थ—सूखा हुआ गूलर, जामनकी छाल आमकी छाल, गूलरकी छाल, शंखका चूर्ण, राल, लाख और कदन अलग २ एकएक

पल लेकर पीसलेवे इस में एक प्रस्थ घी और दो प्रस्थ दूध मिलाकर पकावे । इस को सब प्रकारके अतिसारोंमें बलके अनुसार पान कराना उचितहै।

कच्छुराधातकीबिल्वसमंगारक्तशालिभिः मसूराश्वत्थशुंगैश्चयवागूःस्याज्जलेशृतैः ॥

अर्थ—केंचके बीज, धायके फूल, बेलगिरी, लज्जालु, रक्तशाली, मसूर और पीपलके वृक्षकी डंठल इनके क्वाथ के साथ सिद्ध कर के यवागू पीने से अतिसार दूर हो जाता है

वालोदुम्बरकट्वंगसमंगाप्लक्षपल्लवैः । मसूरधातकीपुष्पवलाभिश्चतथाभवेत् ॥

अर्थ—नेत्रवाला, गूलर, श्योनाक, लजालू, पाकडके पत्ते, मसूर, धाय केफूल,और खरैटी इनके क्वाथके साथ पूर्ववत् यवागू पान करै

स्थिरादीनांवलादीनांइक्ष्वादीनामथापि वा । क्वाथेषुसमसूराणांयवाग्वःस्यात्पृथक्पृथक् ।

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूल, अथवा वलादि गणोक्त द्रव्य, अथवा इक्ष्वादि गण के द्रव्योंके क्वाथके साथ मसूरकी यवागू पान करै

कच्छुरामूलशाल्यादितण्डुलैरुपसाधिताः दधितक्रारनालाम्लक्षीरैरिक्षुरसेऽपिवा शीताःसशर्कराक्षौद्राःसर्वातीसारनाशनाः संसर्पिर्मरिचाजाजीमधुरालवणाःशिवाः॥

अर्थ....केंचकी जडके क्वाथ के साथ शालीतंडुलोंकी यवागू अथवा दही, तक्र, कांजी, जवाखार और ईखके साथ सिद्ध की हुई यवागूके ठंडा होने पर उसमें चीनी और शहत मिलाकर पान करनेसे सब प्रकार के अतिसार दूर होजातेहैं । सब प्रकारकी यवागू में घी, काली मिरच, जीरा, मधुर द्रव्य और नमक ये मसाले भी डालदेने चाहिये

अध्यायकाउपसंहार ।

तत्र श्लोकाः ।

स्निग्धाम्ललवणमधुरंपानंवस्तिश्चमारुतेकोपणः ॥ शीतंतिक्तकषायंमधुरंपित्ते चरक्तेच । तिक्तोष्णकषायकटुश्लेष्मणि संग्राहिवातनुच्छकृति ॥ पाचनमामेपानंपिच्छासृग्वस्तयोरक्ते । अतिसारात्मत्युक्तंमिश्रैर्द्वन्द्वादियोगजेष्वपिच ॥ तत्रोद्रेकविशेषाद्दोषेषूपक्रमःकार्यः ।

अर्थ....वातमें स्निग्ध, अम्ल, लवण और मधुर औषध सेवन करनी चाहिये और वस्ति कुछ कुछ उष्ण होना चाहिये । पित्त और रक्तमें शीतल, तिक्त,कषाय और मधुर औषधों का सेवन हितहै । कफमें तिक्त उष्ण,कषाय और कटु द्रव्य सेवन करने चाहिये । मलमें संग्राही और वातनाशक औषधों का सेवन हित है । आममें पाचन द्रव्योंका सेवन हितहै । रक्तमें पिच्छा वस्ति और रक्त वस्तिका सेवन उत्तम है । इसी तरहसे द्वन्द्वजादि और सान्निपातिक अतिसार में भी समझना चाहिये । मिश्रित दोषोंमें जिस दोषकी अधिकता दीखे पडे उसीके अनुसार चिकित्सा करना चाहिये ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

मास्थितिकाःसव्यापत्क्रियानिरूहास्तथातिसारहिताः ॥ रसकल्पघृतयवाग्वश्चोक्तागुरुणाममृतसिद्धाविति ।

अर्थ....इस प्रासृतिकासिद्धि अध्याय में सम्पूर्ण प्रासृतिक योग,जुदे २ उपद्रव,उनकी जुदी२ चिकित्सा,अतिसार को दूर करनेवाली भिन्न २ प्रकारकी निरूहण वस्ति, रसोंकी कल्पना, घृत और यवागू वर्णन कियेगये हैं॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांसिद्धि स्थानेप्रासृतियोगिकासिद्धिर्नामाष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

नवमोऽध्यायः।

अथातस्त्रिमर्मीयांसिद्धिंव्याख्यास्याम इतिहस्माह भगवानात्रेयः।

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम त्रिमर्मीय सिद्धि की व्याख्या करेंगे

सप्तोत्तरंमर्मशतंअस्मिन्शरीरेस्कन्धशाखाश्रितमग्निवेश ! तेषामन्यतमपीडायांस मधिकपीडाभवतिचेतनानिबद्धवैशेष्यात्

अर्थ—हे अग्निवेश ! इस शरीरमें स्कन्ध और शाखाओं में आश्रित एकसौसात मर्म हैं । इन मर्मों में से किसी एकमें भी पीडा होनेसे सम्पूर्ण शरीर में अत्यन्त व्याकुलता उत्पन्न होतीहै क्योंकि मर्मस्थानमें चेतना विशेषरूपसे निबद्ध है ॥

मर्मस्थानों में गुरुता ॥

तत्रशाखाश्रितेभ्योमर्म्मभ्यःस्कन्धाश्रितानिगरीयांसिशाखानांतदाश्रितत्वात्॥ स्कन्धाश्रितेभ्योऽपिहृद्वस्तिशिरांसितन्मूलत्वाच्छरीरस्य॥

अर्थ—इनमें से जो मर्म शाखामें (हाथ पावों में) आश्रितहैं उनसे स्कन्ध के मर्म गुरुतरहै ॥(स्कन्धसिर और धड) क्योंकि शाखा भी स्कन्ध के आश्रितहैं ॥ स्कन्धाश्रित मर्मोंमें भी अन्य मर्मोंकी अपेक्षा हृदय वस्ति और शिर अत्यन्त गुरुतर हैं, क्योंकि येही शरीरके मूलहैं ॥

तत्रहृदिदशधमन्यःप्राणोदानमनोबुद्धिचेतनामहाभूतानिचनाभ्यामराइवप्रतिष्ठितानि ॥

अर्थ—जैसे नाभिमें अमरानाडी रहती है, उसीतरह हृदयमें दस धमनियां रहतीहैं । प्राण, उदान, मन, बुद्धि और चेतना ये भी हृदयहीमें रहतीहैं ॥ शरीर के अन्य अंगोंकी अपेक्षा हृदयमें पंचमहाभूत का स्थान भी अधिकतर है ॥

शिरसीन्द्रियाणिइन्द्रियप्राणवाहानिच स्रोतांसिसूर्यमिवगभस्तयःसंश्रितानि ॥

अर्थ—जिस तरह सूर्यमें सम्पूर्ण किरण आश्रितहैं उसीतरह मस्तकमें सम्पूर्ण इन्द्रियां और इन्द्रियोंके प्राणवाही स्रोत आश्रितहैं ॥

वस्तिस्तुस्थूलगुदमुष्कसेवनीशुक्रमूत्रवाहिनीनांनालीनांमध्येमूत्राधारोम्बुवाहानां सर्वस्रोतसामुदधिरिवापगानांप्रतिष्ठिता भवतिबहुभिश्चतन्मूलैर्मर्म्मसंज्ञकैःस्रोतोभिर्गगनमिवदिनकरैर्व्याप्तमिदंशरीरम्

अर्थ—स्थूल अंत्र,अंडकोष,सीमन,शुक्रवाहिनी नाडी और मूत्रवाहिनी नाडियों के बीच में वस्ति होती है । जैसे समुद्र सब नदियों के बीच में रहता है इसतरह यह

वस्ति भी सम्पूर्ण जलवाही स्रोतोंकी मूत्राधार है अर्थात् मूत्र यहीं आकर इकट्ठा होता है ॥ जैसे आकाश सूर्यकी किरण जालों से व्याप्त है, उसीतरह से यह सम्पूर्ण शरीर भी तन्मूल मर्मसंज्ञक स्रोतोंके जाल से व्याप्त है ॥

तेषांत्रयाणामन्यतमस्यापिभेदादाश्वेवभेदःस्यादाश्रयनाशादाश्रितस्यनाशःतदुपरतात्तुयोरव्याधिप्रादुर्भावस्तस्मादेतानि विशेषेणरक्ष्याणिबाह्याभिघाताद्वातादिदोषेभ्यश्च ॥

अर्थ....उक्त तीनों मर्मों मेंसे किसी एक मर्मका भेद होनेसे शीघ्रही शरीर का भेद होजाताहै, क्योंकि आश्रय का नाश होनेसे आश्रित का भी नाश होजाता है ॥ इन मर्मस्थानोंके उपघातसे अनेक घोर व्याधियां उत्पन्न होजाती हैं, इसलिये इन मर्मस्थानों की बाह्य अभिघात और आन्तरिक वातादिदोषों से विशेषरक्षा करना चाहिये ॥

हृदयाभिघातके उपद्रव ।

तत्रहृदयेभिहतेकासश्वासबलक्षयकंठशोषक्लोमाकर्षणजिह्वानिर्गममुखतालुशोषापस्मारोन्मादप्रलापचित्तनाशादयःस्युः

अर्थ---इन मर्मों में से हृदय में चोट लगने पर खांसी, श्वास, बलकी क्षीणता, कंठशोष, क्लोमाकर्षण, जिह्वाका बाहर निकलना, मुखशोष, तालुशोष, अपस्मार, उन्माद, प्रलाप और संज्ञानाश ये उपद्रव होते हैं ॥

शिरमें चोट के उपद्रव ।

शिरस्यभिहतेमन्यास्तम्भार्दितचक्षुर्विभ्रममोहवेष्टनचेष्टानाशकासश्वासहनुग्रहमूकगद्गदत्वनिमीलनगण्डस्पन्दनजृम्भणलालास्रावस्वरहानिवदनजिह्मत्वादीनि

अर्थ—सिरमें चोट लगनेसे मन्यास्तम्भ, अर्दित, नेत्रविभ्रम, मोह, अंगडाई, चेष्टानाश, खांसी, श्वास, हनुग्रह, मूकता, गदगदता, चक्षुनिमीलन (आंखों में झपकीआना) गंड, स्पन्दन, जंभाई, लालास्राव, स्वरभंगता और मुखका टेढा पड जाना, ये उपद्रव होते हैं

वस्ति में चोटके उपद्रव ॥

वस्तौतुवातमूत्रवर्चोनिग्रहवंक्षणमेहनवस्तिशूलकुण्डलोदावर्तगुल्मवर्ध्मानिलाष्ठीलोपस्तम्भनाभिकुक्षिगुदश्रोणिग्रहादयः ।

अर्थ—वस्ति में चोट लगनेसे अधोवायु मूत्र और विष्टा का विबन्ध, वंक्षणशूल, लिंगशूल- वस्तिशूल, वात कुंडल, उदावर्त्त, गुल्म, वातष्ठीला, उपस्तम्भ, नाभिग्रह, कुक्षिग्रह, गुदग्रह, और श्रोणिगह, ये उपद्रव होते हैं ॥

वाताद्युपसृष्टानांत्वेषांलिङ्गानिचिकित्सितेसक्रियाविधीन्युक्तानि । किन्त्वेतानि विशेषतोऽनिलाद्रक्षाण्यनिलोहिपित्तकफसमुदीरणेहेतु ॥ प्राणमूलञ्चसचवस्तिसाध्यतमःतस्मान्नवस्तिसमंकिञ्चित्कर्ममर्मपरिपालनम् ॥

अर्थ—चिकित्सितस्थान में वातादि दोषों से संसृष्ट इन मर्मस्थानों के उपद्रवों के लक्षण और उनकी चिकित्सा विधिपूर्वक वर्णन करदी गई है, किन्तु ये तीनों मर्म

वायु से अधिकतर रक्षा के योग्यहैं क्योंकि वायुही पित्तकफ के उदीर्ण करने का हेतु है। यह प्राणमूल वायु अन्य उपायों की अपेक्षा वस्तिकर्म से अत्यन्त साध्य होती है। इसलिये मर्मों की रक्षाके लिये वस्ति कर्म से अधिक और कोई उपाय नहीं है।

तत्रषडास्थापनस्कन्धान्विमानेद्वौचानुवासनस्कन्धौविहचाविहितान्वस्तीन्बुद्ध्या विचार्यमहामर्मपरिपालनार्थंप्रयोजयेद्व्या तव्याधिचिकित्साञ्च।

अर्थ— इन में से विमानस्थान में छः आस्थापन स्कन्ध और सिद्धिस्थान में दो अनुवासन स्कन्ध वर्णन किये गयेहैं। इनका बुद्धि द्वारा अत्यन्त विचार करके महामर्मों की रक्षा के लिये इनका प्रयोग करना चाहिये। यदि इन मर्मों में वेदना होने लगे तो वातव्याधिके अनुसार चिकित्सा करना चाहिये।

वातोपसृष्टहृच्चिकित्सा।

भूयश्चहृदुपसृष्टेवातेहिंगुचूर्णलवणानामन्यतमचूर्णसंयुक्तंमातुलुङ्गस्यरसेनवान्येनवाम्लेनहृद्येनवापाययेतस्थिरादिपञ्चमूलरसःसशर्करःपानार्थंबिल्वादिपञ्चमूलरससिद्धाचयवागूःहृद्रोगविहितञ्चकर्म

अर्थ—वात द्वारा हृदय के उपसृष्ट होने पर हिंगुचूर्ण या और किसी प्रकारके नमक के साथ पेया बनाकर बिजौरे का रस या और किसी खट्टे द्रव्य का रस डालकर पान करै। शालिपर्ण्यादि पंचमूलके क्वाथ में शर्करा डालकर पानकरै अथवा बिल्वादि पंचमूल के क्वाथ में सिद्धकी हुई यवागू पान करै। तथा हृदयरोग में कही हुई चिकित्सा भी हित है।

वातोपसृष्टशिरकीचिकित्सा।

मूर्ध्निनुवातोपसृष्टेऽभ्यङ्गस्वेदनोपनाहनस्नेहपाननस्तःकर्मावपीडधूमादीनि।

अर्थ— वातोपसृष्ट शिर में अभ्यंग, स्वेदन,उपनाहन,स्नेहपान,नस्यकर्म, अवपीडन और धूमादिकर्म प्रशस्त हैं॥

वातोपसृष्टवस्तिमेंचिकित्सा।

वस्तौतुकुम्भीस्वेदोवर्तयश्च॥ श्यामादिभिर्गोमूत्रसिद्धोनिरूहः॥ बिल्वादिभिःस्वरससिद्धःशरकाशेक्षुदर्भगोक्षुरकमूलशृतक्षीरैश्च॥ त्रपुसैर्वारुखराश्वाबीजयवान्यद्धीकल्कितोनिरूहः॥ पीतदारुकसिद्धंतैलानुवासनम्। तैल्वकञ्चसर्पिर्विरेकार्थम्॥

अर्थ—वातोपसृष्ट वस्ति में कुम्भीस्वेद और वर्त्तिप्रयोगप्रशस्तहैं।त्रिवृतादि दसद्रव्यों काक्वाथकरके गोमूत्र में मिलाकर निरूहण देना चाहिये। बिल्वादि पंचमूल के क्वाथ के साथ सरकंडे की जड,कुशाकी जड, ईख की जड और गोखरूकी जड इन से सिद्ध किया हुआ दूध मिलाकर वस्ति का प्रयोग उत्तम है॥ अथवा खीरा ककडी के बीज, वन अजवायन इनके क्वाथ में ऋद्धि वृद्धि का कल्क डालकर निरूह देवै। सरलकाष्ट डालकर सिद्ध किये हुए तेल की अनुवासन देवै॥ तथा विरेचन करानेके लिये तिल्वक डालकर सिद्ध किया हुआ घृत हित है॥

शतावरीगोक्षुरकबृहतीकण्टकारिकागुडूची पुनर्नवोशीरमधुकाद्विशारिवालोध्रश्रेयसी कुशकाशमूलकषायक्षीरचतुर्गुणंवलावृषर्ष भकखराश्वोपकुञ्चिकावत्सकत्रपुषैर्वारु वीजाशितिमारकमधुकवचाशतपुष्पाश्मभे दमदनफलकल्कसिद्धंतैलमुत्तरवस्तिर्नि रूहशुद्धस्निग्धस्विन्नस्यवास्तिशूलमूत्रवि- कारहरइति ॥

अर्थ–सितावरी, गोखरू, वडी कटेरी, छोटी कटेरी, गिलोय, सांठ, उसीर, मुलहटी, निसोथकी जड, अनन्तमूल, लोध, गजपीपल, कुशाकी जड, कांसकी जड, इन सब द्रव्यों का काथ, क्वाथ से चौगुना दूध तथा खरैटी, अडूसा, ऋषभक, वन अजवायन कालाजीरा, इन्द्रजौ, खीराके वीज, ककडी के वीज, सितिमारक, मुलहटी, वच, सोंफ पाषाण भेद और मेनफल इन द्रव्यों का कल्क और तेल मिलाकर पाक करे। पीछे रोगी को निरूहित, शुद्ध, स्निग्ध और स्वेदित करके इस तेलकी उत्तर वस्ति देनी चाहिये इस से वस्तिशूल और मूत्रविकार दूर होजाते हैं ॥

मर्मप्रकरण का उपसंहार ।

भवतिचात्र ।

हृदिमूर्ध्निचवस्तौचनृणांप्राणाःप्रतिष्ठिताः तस्मात्तेषांसदायुक्तःकुर्वीतपरिपालनम्॥

अर्थ—हृदय, मूर्द्धा और वस्ति में मनुष्यों के प्राण रहते हैं । इस लिये युक्ति पूर्वक इन मर्मों की रक्षा करनी चाहिये ।

आघातवर्जनंनित्यंस्वस्थवृत्तानुवर्त्तनम्। उत्पन्नार्त्तिविघातश्चमर्मणांपरिपालनम्॥

अर्थ—मर्मोंकी रक्षाके लिये नित्य प्रति चोटसे वचना, स्वस्थवृत्ति का अनुसरण करना और उत्पन्न रोगों का नष्ट करना ये ही उपाय हैं ।

अतऊर्द्ध्वंविकारायेत्रिमर्मीयेचिकित्सिते। नमोक्तामर्मजास्तेषांकांश्चिद्वक्ष्याम्यसौप धान् ॥

अर्थ—जो जो मर्म संबंधी रोग त्रिमर्मीय चिकित्सिताध्याय में वर्णन करने से रहगये हैं अब उनका चिकित्सा सहित वर्णन किया जाता हैं ॥

अपतन्त्रकके लक्षण ।

क्रुद्धःस्वैःकोपनैर्वायुःस्थनादूर्द्ध्वमपद्यते । पीडयन्हृदयंगत्वाशिरःशंखौचपीडयन्॥ नमयेच्चाक्षिपेच्चांगान्युच्छासंनिरुणाद्धि च । उच्छसितिसचकृच्छ्रेणस्तब्धाक्षोऽ थनिमीलनः ॥ कपोतइवकूजंश्चनिःस ञ्ज्ञोऽपतन्त्रकः॥

अर्थ—अपने उदीर्ण होने के कारणों से वायु कुपित होकर अपने स्थान से ऊपर को जाती हैं और हृदय में पहुंचकर हृदय को अत्यन्त पीडित करती हैं, सिर और कनपटी में अत्यन्त वेदना उपस्थित करती हैं । अंगों को झुकादेती है और आक्षेपण करती है, श्वास को रोक देती है अथवा श्वास कठिनता से आता हैं । आंख स्तब्ध होजाती हैं अथवा आंखे झपकी, चली जाती हैं । कंठ में कबूतर की गुटरगूंके सदृश शब्द होने लगता है । वेहोशी छा जाती है, इसे ही अपतंत्रक कहते हैं ।

20504

अपतानक के लक्षण।

दृष्टिसंस्तम्भ्यसंज्ञाञ्चहृत्वाकण्ठेनकूजति हृदिमुक्तेनरःस्वास्थ्यंयातिमोहंवृतेपुनः। वायुनादारुणंमाहुरेकेतदपतानकम् ॥

अर्थ—नेत्रों का स्तब्ध होना, बेहोशी होना, कण्ठ में कूजन होना, हृदय से वायु के दूर होने पर स्वस्थता होना, तथा वायुके फिर आवृत होने पर अस्वास्थ्य होना ये सब लक्षण दारुण अपतानक केहैं।

श्वसनःकफवाताभ्यांरुद्धस्तस्यविमोचयेत्। तीक्ष्णैःप्रधमनैःसंज्ञान्तासुमुक्तासु विन्दति ।

अर्थ—जिस मनुष्य का श्वास कफ और वात से रुक गया हो उस श्वास को तीक्ष्ण प्रधमन द्वारा निकालने का यत्न करै। श्वास के खुलने पर चेतभी होजाता है।

मरिचंशिग्रुबीजानिविडङ्गंचफणिज्झकम् एतानिसूक्ष्मचूर्णानिदद्याच्छीर्षविरेचनम्

अर्थ—कालीमिरच, सहजने के बीज, वायविडंग, फणिज्झक, इनको महीन पीसकर शीर्ष विरेचन देवै।

तुम्बुरूण्यभयाहिंगुपौष्करंलवणत्रयम् ॥ यवक्वाथाम्बुनापेयंहृत्पार्श्वापतन्त्रके।

अर्थ—धनियां, हरड, हींग, पोहकरमूल, सैंधानमक, संचरनमक और विडनमक इन के चूर्ण को जौके क्वाथ के साथ पान करने से हृदयशूल, पार्श्वशूल और अपतंत्रक दूर होजाते हैं ॥

हिंग्वम्लवेतसंशुण्ठींससौवर्चलदाडिमम्। पिबेद्वातकफघ्नंचकर्महृद्रोगनुद्धितम् ॥ शोधनावस्तयस्तीक्ष्णाहितास्तस्यचक्रस्नशः। सौवर्चलाभयाव्योषैःसिद्धन्तु स्याद्धृतंहितम्॥

अर्थ—हींग, अमलवेद, सोंठ, संचलनमक और अनारका छिलका इनका चूर्ण पान करने से उक्त रोग दूर होजाते हैं, इन में वातकफनाशक और हृद्रोगनाशक क्रिया भी हित हैं। इन रोगों में शोधनकर्त्ता तीक्ष्णवस्ति पूर्णरीति से उपयोगी होती है। तथा संचलनमक हरड और त्रिकुटा इन के साथ सिद्ध किया हुआ घृत भी हित है।

तन्द्रारोगकाहेतु।

मधुरस्निग्धगुर्वम्लसेवनाच्चिन्तनाच्छ्रमात्॥शोकाद्व्याध्यनुषङ्गाच्चवायुनोदीरितःकफः॥ यदासौसमदस्कन्धहृदयं हृदयाश्रयान। समावृणोतिज्ञानादींस्तदातन्द्रोपजायते ॥

अर्थ....मधुर, स्निग्ध, भारी और खट्टे पदार्थों के अत्यन्त सेवन से, चिन्ता करने से परिश्रम से, शोक से, व्याधि के अनुषंग से वायु के कारण कफ उदीर्ण होकर जब रोगी के हृदय को आवृत कर लेता है तब हृदय के आश्रयभूत ज्ञान आदि को आवृत करलेता है उस समय तन्द्रानामक रोग उत्पन्न होता है।

तन्द्रा के लक्षण ॥

हृदयव्याकुलीभावोवाक्चेष्टेन्द्रियगौरवम्। मनोबुद्ध्यप्रसादश्चतन्द्रायांलक्षणं मतम् ॥

अर्थ...हृदय में व्याकुलता, वाणी में भारापन, चेष्टा में भारापन और इन्द्रियों में भारापन, मन और बुद्धिकी अप्रसन्नता ये सब तन्द्रा के लक्षण हैं।

तन्द्रा में चिकित्साक्रम ॥

कफघ्नंतत्रकर्तव्यंशोधनंशमनानिच ॥ व्यायामोरक्तमोक्षश्चभोज्यञ्चकटुतिक्तकम् ॥

अर्थ—तन्द्रारोग में कफनाशक संशोधन तथा रोगी के दुर्बल होनेपर संशमन क्रिया करनी चाहिये यदि यह तन्द्रा ज्वरादि रोगों से उत्पन्न न हुई हो तो व्यायाम, रक्तमोक्षण और कटु तिक्त द्रव्यों के साथ भोजन भी हित है ॥

वस्तिरोगों के भेद ॥

मूत्रौकसादंजठरंकृच्छ्रंस्रोतसङ्गसंक्षयम्॥ मूत्रातीतोऽनिलाष्ठीलावातवस्त्युष्णमारुतौ ॥ वातकुण्डलिकाग्रन्थिविड्घातोवस्तिकुण्डलम्त्रयोदशैतमूत्रस्यदोषास्तांल्लिंगतःशृणु॥

अर्थ—मूत्रौकसाद, मूत्रजठर, मूत्रकृच्छ्र, मूत्रोत्संग, मूत्रसंक्षय, मूत्रातीत, वाताष्ठीला, वातवस्ति, उष्णवायु, वातकुंडलिका, ग्रन्थि, विड. घात और वस्ति कुंडल । ये तेरह मूत्र के विकार हैं । अब इनके लक्षणों का वर्णन करते हैं ॥

मूत्रौकसाद के लक्षण ॥

पित्तंकफद्वयंवापिवस्तौसंहन्यतेयदा॥ मारुतेनतदामूत्रंरक्तपीतंघनंसृजेत् ॥ सदाहंश्वेतसान्द्रंवासर्वैर्वालक्षणैर्युतम् ॥ मूत्रौकसादंतंविद्वान्पित्तश्लेष्महरैर्जयेत् ॥

अर्थ....पित्त वा कफ अथवा दोनों पित्त कफ जब वायुके कारण वस्ति में इकट्ठे होजाते हैं तब लाल, पीला और गाढा पेशाब होने लगता है अथवा दाहयुक्त सफेद और गाढा पेशाब होता है अथवा समस्त लक्षणों से युक्त पेशाब होता है ॥ इसे मूत्रौकसाद कहते हैं।इसमें पित्तकफनाशक क्रिया करनी चाहिये ।

मूत्रजठरकीसहेतुचिकित्सा॥

विधारणात्प्रतिहतंवातोदावर्तिनंयदा ॥ पूरयत्युदरंमूत्रंतदातदनिमित्तरुक् ॥ अपक्तिमूत्रविट्सङ्गस्तन्मूत्रजठरंवदेत् । मूत्रवैरेचनींतत्रचिकित्सांसंप्रयोजयेत् ॥ हिंगुद्विरुत्तरंचूर्णंत्रिमर्मीयेप्रकीर्तितम्॥हन्यान्मूत्रोदरानाहध्मापितंगुदमेढ्रयोः ॥

अर्थ—मूत्र के उपस्थित वेगको रोकने से मूत्र प्रतिहत होकर जब वायुके कारण उलटा लौटता है तब उदर को पूर्ण करके मूत्र वहां स्थित होजाता है और विना कारण ही वेदना होने लगती है ॥ फिर धीरे २ पाचन शक्ति कम होजाती है और मूत्र तथा विष्टाका विबन्ध होजाता है इसे मूत्रजठर कहते हैं ॥ इसमें मूत्र के विरेचन करने वाली चिकित्सा करनी चाहिये । तथा त्रिमर्मीय चिकित्सित अध्यायमें जो द्विरुत्तर हिंगुचूर्ण वर्णन किया गया है वहभी हित है इसके प्रयोग से मूत्ररोग, उदर रोग, आनाह, अफरा तथा गुदा और लिंग के अन्य रोगभी दूर होजाते हैं ॥

ते हैं । इस से वस्ति और उपस्थ में वडी वेदना होता है ।

वातकुंडलिका के लक्षण ।

गतिसङ्गादुदावृत्तःसमूत्रस्थानमार्गयोः ॥ मूत्रस्यविगुणोवायुर्भग्नव्याविद्धकुण्डली। मूत्रंविहन्तिसंस्तम्भभङ्गगौरववेष्टनैः ॥ तीव्ररुक्मूत्रविट्संङ्गैर्वातकुण्डलिकेतिसा ।

अर्थ....वायु विगुण होकर मूत्राशय और मूत्र के मार्ग को रोक देता है, इससे मूत्र ऊपर को फिर चढने लगता है । यह वायु भग्न और व्याविद्ध होकर चक्कर खाजाती है, इससे मूत्राघात उत्पन्न होता है । इस रोग में स्तम्भता, टूटने की सी वेदना, भारापन, ऐंठन, तीव्रशूल, मूत्रविबन्ध और पुरीष विबन्ध ये लक्षण होते हैं । इसे वातकुंडलिका कहते हैं ॥

मूत्रग्रन्थि के लक्षण।

रक्तंवातकफाद्दुष्टंवस्तिद्वारेसुदारुणम्॥ ग्रन्थिंकुर्यात्सकृच्छ्रेणसृजेन्मूत्रंतदावृतम्।। अश्मरीसमशूलन्तंमूत्रग्रन्थिमचक्षते ।

अर्थ....वायु और कफके कुपित होजाने से बिगडा हुआ रुधिर वस्ति के द्वारपर एक दारुण गांठ उत्पन्न करता है ॥ इस गांठसे रुकजाने के कारण मूत्र वडी कठिनतासे होता है । इसमें पथरी के समान घोर वेदना होती है । इस रोगको मूत्रग्रन्थि कहते हैं ॥

विड्विघात के लक्षण ।

रूक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावृत्तंशकृद्यथा ॥ मूत्रस्रोतःप्रपद्येतविट्संसृष्टंतदानरः । विड्गन्धंमूत्रयेत्कृच्छ्राद्विड्विघातंविनिर्दिशेत् ॥

अर्थ—रूक्ष और दुर्बल मनुष्यके वात के प्रकोप से उलटा फिरा हुआ विष्टा मूत्रवाही स्रोत पर आक्रमण करलेता है । ऐसा होने से विष्टा मिला हुआ मूत्र कठिनता से निकलने लगता है और इस में विष्टा कीसी दुर्गन्ध आती है ॥इसरोग को विड्विघात कहते हैं ॥

वस्तिकुंडल के लक्षण ।

द्रुताध्वलङ्घनायासैरभीघातात्मपीडना तु ।स्वस्थानाद्वस्तिरुद्वृत्तस्थूलस्तिष्ठाति गर्भवत् ॥ शूलस्पन्दनदाहार्तोबिंदुबिन्दु स्रवत्यपि ।पीडितःसंसृजेद्धारासंस्तम्भो द्वेष्टनार्तिमान् । वस्तिकुण्डलमाहुस्तंघोर शस्त्रविषोपमम् ॥ पवनमबलमायोदुर्निवार्यमबुद्धिभिः।

अर्थ—जल्दी चलनेसे, भ्रमण करने से, छलांग मारनेसे, परिश्रम करनेसे, चोट लगनेसे, प्रपीडनसे वस्ति अपने स्थानसे उलटी फिरकर गर्भ की तरह स्थूल होकर ठहर जाती है ॥ इस से वस्ति में शूल, स्पन्दन, दाह और वेदना होती है और मूत्र बूंद २ टपककर निकलता है । वस्ति को हाथ से दबाने पर मूत्र की धारा निकलती है परन्तु निकलते समय संस्तम्भन, उद्वेष्टन और वडी घोर वेदना होती है ! इस रोगको वस्तिकुण्डल कहते हैं, यह शस्त्र और विष के समान दारुण रोग है इस रोग में प्रायः वात की प्रबलता

है । यह रोग निर्बुद्धि वैद्य से अच्छा नहीं होसक्ता है ॥

तस्मिन्पित्तान्वितेदाहःशूलमूत्रविवर्णता। श्लेष्मणागौरवंशोफःस्निग्धंमूत्रंघनंसितम्

अर्थ—इन रोगोंमे यदि वायु पित्तान्वित होती है तो दाह, शूल और मूत्र की विवर्णता होतीहै ॥यदि कफान्वित होती है तो वस्ति में भारापन और सूजन, तथा मूत्र में चिकनाई, गाढापन और सफेदाई होती है ॥

श्लेष्मरुद्धाविलोवस्तिःपित्तोदीर्णोनसिध्यति ॥ अविश्रान्ताविलःसाध्योनचयः कुण्डलीकृतः ।

अर्थ....जो वस्ति कफ से रुद्ध हो और कुपित पित्त से युक्त हो वह असाध्य होती है । परन्तु कुंडलीकृत वस्ति कफद्वारा रुद्ध न होनेपर भी असाध्य होती है ।

कुंडलीभूतवस्ति के लक्षण ।

स्याद्वस्तौकुण्डलीभूतेतृड्मोहःश्वासएवच

अर्थ—वस्ति के कुंडलीभूत होनेपर तृषा, मोह और श्वास ये उपद्रव होते है॥

दोषाधिक्यमपेक्ष्यैतान्मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत्। वस्तिमुत्तरवस्तिंचसर्वेषामेवयोजयेत् ॥

अर्थ .... मूत्रसंबंधी इन संपूर्ण रोगों में जिस दोषकी अधिकता हो उसीके अनुसार मूत्रकृच्छ्रको दूर करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये । इन सब प्रकार के रोगों में उत्तर वस्ति देना हित है

उत्तरवस्तिकावर्णन ।

पुष्पनेत्रंतुहैमंस्यात्सूक्ष्ममौत्तरवस्तिकम्। जातीपुष्पस्यवृन्तेनसमंगोपुच्छसंस्थितम्॥ रौप्यंवासर्षपच्छिद्रंद्विकर्णद्वादशांगुलम् ।

अर्थ—उत्तरवस्ति का नल सुवर्ण का बनाया जाता है इसका मुख चमेलीके फूल के डंठल के समान सूक्ष्म होता है और यह नल गौकी पूंछ के समान बीचमें मोटा होता है, यदि सुवर्ण का न होसके तो चांदी के ही से काम चलजाता है । इसके मुख का छिद्र सरसों के समान होताहै इसकी लम्बाई बारह अंगुल की होती है, तथा इन में दो कर्णिका होती हैं ।

उत्तरवस्तिकीमात्राकाप्रमाण ।

तेनाजवस्तियुक्तेनस्नेहस्यार्धपलंनयेत् । यथावयोविशेषेणस्नेहमात्रांविकल्पयेत्॥

अर्थ—बकरे की वस्ति से भी उत्तर वस्ति बनाई जाती है । उत्तरवस्ति द्वारा आधा पल स्नेह दिया जाता है । अथवा अवस्था के अनुसार भी स्नेहकी मात्रा न्यून वा अधिक होसक्ती है ॥

उत्तरवस्ति के देनेकी रीति ॥

स्नातस्यभुक्तभक्तस्यरसेनपयसापिवा॥ सृष्टविण्मूत्रवेगस्यपीठेजानुसमेमृदौ ॥ ऋजोःसुखोपविष्टस्यहृष्टेमेढ्रेघृतान्विते ॥ शलाकयान्विष्यगतिंयवमानेननायनेत्॥ ततःशेफःप्रमाणेनपुष्पनेत्रंप्रवेशयेत्। गुदवन्मूत्रमार्गेणप्रणयेदनुसेवनीम् ॥

अर्थ—रोगीको स्नान कराके मांसरस वा दूध के साथ भात का भोजन करावै ॥ फिर मलमूत्र का त्याग करवा के घुटने के समान ऊंचे कोमल आसन पर सीधा बिठा

देवै परन्तु इसमें रोगीको किसी प्रकार क्लेश न होने पावै।फिर चिकित्सक रोगीकेलिंगको दृष्ट और घृताभ्यक्त कर के उसके छिद्र में सलाई डालकर मार्ग को देखै कि मार्ग कहां तक ठीक है। यदि सलाई विना रुके चली जाय तो लिंग के समान उस के भीतर वस्ति का नल प्रवेश करदे ॥ इसके प्रवेश करते समय बडीही सावधानी का काम है कहीं ऐसा नहो कि हाथ हिलजाय। प्रवेश करते समय इसका मुख लिंग और गुदाके बीच में जो सीवन होती है. उसकी ओर होना चाहिये।

वस्तिकी गतिका वर्णन ॥

हिंस्याद्ध्यतिगतंत्वस्तिदूनेस्नेहोनगच्छति॥

अर्थ—अत्यन्त वेगसे प्रेरित की हुई वस्ति अनिष्ट संपादन करती है और अत्यन्त मन्द वेगसे प्रेरित वस्ति उचित स्थान पर नहीं पहुंच सक्ती है।

सुखंप्रपीड्यनिष्कम्पंनिष्कर्षेन्नेत्रमेवच॥
प्रत्यागतेद्वितीयंतुतृतीयंचप्रदापयेत् ॥
अनागच्छन्नुपेक्ष्यस्तुरजनीव्युषितस्यच॥

अर्थ—जिस तरह निष्कम्पता के साथ वस्ति नल प्रवेश कियागया है उसीतरह से पीडन करके निष्कम्पता के साथ निकाल लेना चाहिये। वस्ति के प्रत्यागत होने पर दूसरी और तीसरी वस्ति देवै। जो वस्ति प्रत्यागत न हुई हो तो एक रात्रि तक उपेक्षा करनी उचित है ॥

प्रत्यागमनकाउपाय।

पिप्पलीलवणागारधूमापामार्गसर्षपैः ।
वार्ताकुरसनिर्गुण्डीशम्पाकैःससहाचरैः
मूत्राम्लपिष्टैःसगुडैर्वर्तिकृत्वाप्रवेशयेत् ।

अर्थ—पीपल, सेंधानमक, धूमसा, ओंगा के बीज, सरसों, बेंगनका रस, निर्गुण्डी, अमलतास का गूदा और सहचरी इनको गोमूत्र और कांजीके साथ पीसकर गुड मिलाकर वत्ती बनाकर लिंगमें प्रवेश करने से वस्ति प्रत्यागमन करलेती है ॥

वत्तीकाआकारादिवर्णन।

अग्रेतुसर्षपाकारापश्चार्द्धमापसम्मिताम्॥
नेत्रदीर्घाघृताभ्यक्तांसुकुमारामभंगुराम्॥
नेत्रवन्मूत्रनाड्यांतुपायौवांगुष्ठसम्मिताम्॥

अर्थ—वत्ती का मुख आगेकी ओर सरसों के समान और नीचे को आधे उरद के बराबर होना चाहिये। यह भी वस्ति नल के समान बारह अंगुल लम्बी बनाई जातीहै। यह कोमल हो, टूटी हुई न हो और इसपर घी भी चुपड देना चाहिये। जो वत्ती मूत्रनाडी में होकर प्रविष्ट कीजाती है उसका आकार वस्तिके नलके सदृश होताहै और जो गुदामार्ग द्वारा प्रविष्ट कीजातीहै वह हाथके अंगूठेके समान होतीहै।

उत्तरवस्तिमेंपथ्यादिवर्णन॥

स्नेहेप्रत्यागतेताभ्यांसानुवासनिकोविधिः
परिहारश्चसव्यापत्ससम्यक्दत्तस्यलक्षणः

अर्थ—स्नेहके प्रत्यागत होने पर वही पथ्यादि सेवन करने चाहियें जो अनुवासन में वर्णन किये गयेहैं, उत्तर वस्तिमें किसी प्रकार का उपद्रव खडा होजाय तो वही काम करना चाहिये जो अनुवासन संबंधी

उपद्रवोंमें वर्णन कियागया है। सम्यक् प्रदत्त उत्तर वस्ति के लक्षण सम्यक् प्रदत्त अनुवासन वस्ति के सदृश होतेहैं ॥

स्त्रीको उत्तरवस्ति ॥

स्त्रीणांचार्त्तवकालेतुप्रतिकर्मतदाचरेत्॥
गर्भासनासुखंस्नेहंतदादत्तेह्यपावृता ॥
गर्भयोनिस्तदाशीघ्रंजितेगृह्णातिमारुते ॥

अर्थ....जो स्त्री को उत्तरवस्ति देनी हो तौ ऋतुकाल में देनी चाहिये क्योंकि उससमय योनिगर्भ ग्रहणके योग्य होतीहै और उसका मुख खुला रहता है इस लिये स्नेहको सुखपूर्वक ग्रहण कर सकती है। उस समय उत्तर वस्ति के देने से वायुके दूर होजाने के कारण गर्भ भी शीघ्र रहजाताहै।

वस्तिजेषुविकारेषुयोनिविभ्रंशजेषुच ॥
योनिशूलेषुतीव्रेषुयोनिव्यापत्स्वसृग्दरे।
अप्रस्रवतिमूत्रेचविन्दुंविन्दुंस्रवत्यपि ॥
विदध्यादुत्तरंवस्तिंयथास्वौषधसंस्कृतम्

अर्थ—सब प्रकारके वस्ति विकार, योनि विभ्रंशजन्य विकार, तीव्रयोनिशूल, योनिव्यापत्, रक्त प्रदर, मूत्ररोध, और मूत्रके बिंदु बिंदु टपकना। इन सब रोगों में स्त्रियोंको भिन्न २ औषधियों से संस्कार की हुई उत्तर वस्ति देनी चाहिये ॥

स्त्रियों की वस्ति का प्रमाण ॥

पुष्पनेत्रप्रमाणन्तुप्रमदानांदशांगुलम् ॥
मूत्रस्रोतःपरीणाहंमुद्गस्रोतोऽनुवाहिच ॥
गर्भमार्गेतुनारीणांविधेयंचतुरंगुलम् ।
द्व्यंगुलंमूत्रमार्गेतुबालायास्त्वेकमंगुलम्॥

अर्थ—स्त्रियोंकी उत्तरवस्तिका नल दस अंगुलका होता है। इसकी स्थूलता मूत्र के स्रोतकी स्थूलता के समान बनवावे ॥ इसकी गति मूत्र के स्रोत के अनुरूपहोती है ॥ नलका छिद्र मूंगकी बराबर होना चाहिये ॥ स्त्रियोंके गर्भमार्गमें चार अंगुल वस्ति, मूत्रमार्ग में दो अंगुल और बालिका के एक अंगुल लम्बी वस्ति होनी चाहिये ॥

उत्तानायाःशयानायाः सम्यक्सङ्कोच्य सक्थिनी। अथास्याःप्रणयेन्नेत्रमनुवंश गतंमुखम्। द्विस्त्रिश्चतुरितिस्नेहानहोरात्रे णयोजयेत्॥ वस्तित्रस्तौप्रणीतेचवस्ति- श्चान्तराभवेत् ॥ त्रिरात्रंकर्मकुर्वीतस्ने- हमात्रांविवर्द्धयेत्। अनेनैवविधानेनक र्मकुर्य्यात्पुनस्त्र्यहात् ॥

अर्थ....स्त्रियों को उत्तरवस्ति देनेके समय चित्त शयन करा देवै, दोनों पांव इकट्ठे कर दे फिर योनिमें पीठ के बांसे की ओर मुखकरके वस्तिनलको प्रविष्ट करै। एक दिन रातमें दो तीन या चारबार स्नेह का प्रयोग करे। इसतरह वस्ति के प्रत्यागमन करने पर फिर वस्तिका प्रयोग करे। इस तरह तीन दिन करता रहै परन्तु वस्तिकी मात्रा उत्तरोत्तर बढा देनी चाहिये फिर तीन दिन ठहर कर इसी तरह से फिर वस्ति देनी चाहिये॥

शंखकके सहेतु लक्षण ॥

अतःशिरोविकाराणांकश्चिद्भेदःप्रवक्ष्य- ते ॥ रक्तपित्तानिलादुष्टाःशंखदेशेविमू- र्च्छिताः। तीव्ररुग्दाहरागंहिशोफंकुर्व न्तिदारुणम् ॥ सशिरोविषवद्वेगीनिरुध्या

शुगलंतथा। शंखकोऽग्निनिभःशिघ्रंवि नाशयतिमानवम् ॥ जीवेत्त्र्यहंचेद्भिषज्यं प्रत्याख्यायास्यकारयेत्। शिरोविरेक सेकादिसर्वंवीसर्पनुच्यत्॥

अर्थ—अब हम सिरके विकारों के कुछ भेद वर्णन करते हैं। कनपटीमें रक्त पित्त और वायु दूषित होकर उसजगह तीव्र वेदना दाह, राग और शोफ उत्पन्न करते हैं। यह शंखकनाम रोग विष के समान वेगवान् होताहै और कंठको रोककर अग्निवत् शीघ्रही मनुष्य को मार डालता है। यदि रोगी तीन दिवस तक जीता रहै तब यह कहकर कि रोगी असाध्यहै, चिकित्सा करै। इस रोगमें शिरोविरेचन, परिषेक और सब प्रकारकी विसर्पनाशक क्रिया करै।

अर्द्धावभेदकके सहेतु लक्षण

रूक्षात्यध्यशनात्पूर्ववातावश्यायमैथुनैः। वेगसन्धारणायासव्यायामैःकुपितोऽनिलः। केवलःसकफोवार्द्धंगृहीत्वाशिरस स्ततः॥ मन्याभ्रूशंखकर्णाक्षिललाटेर्धे चवेदनाम्। शस्त्राशनिनिभांकुर्य्यात्ती व्रांसोऽर्धावभेदकः॥ नयनंवाथवाश्रो त्रमतिवृद्धोविनाशयेत्

अर्थ—रूक्षभोजन, अतिभोजन, अध्यशन, पुरवैया पवन, ओस, मैथुन, मलमूत्रादि वेग धारण, परिश्रम और व्यायाम, इनसे वायु कुपित होकर स्वयं वा कफके साथ मिलकर आधे मस्तकमें स्थित होजाती है, और मन्या, भृकुटी, कनपटी कान और नेत्र तथा आधे मस्तक में शस्त्र वा वज्रके समान तीव्र वेदना उत्पन्न करती है। यह अर्द्धावभेदक रोग जब बहुत बढ जाताहै तब नेत्र और कानोंको भी हानि पहुंचाताहै।

अर्द्धावभेदककी चिकित्सा॥

चतुःस्नेहोत्तमांमात्रांशिरःकायविरेचनम् नाडीस्वेदोपनाहादिकुर्य्याद्न्तेऽग्निकर्मच जीर्णञ्चघृतंदेयंवस्तिकर्मानुवासनम्॥ प्रतिश्यायेशिरोरोगेयच्चोद्दिष्टंचिकित्सितम्

अर्थ....इस अर्द्धावभेदक रोगमें चार प्रकार के स्नेह की उत्तम मात्राका पान कराना चाहिये। नाडी स्वेद, उपनाह, अग्निकर्म, पुराना घृत और अनुवासन वस्ति कर्म इस रोग में प्रशस्तहैं, तथा प्रतिश्याय और शिरोरोगमें जो २ चिकित्साएं कही गई हैं वेभी इस रोगमें करनी चाहिये॥

सूर्य्यावर्त्त के सहेतुलक्षण॥

सन्धारणाद्यजीर्णाद्यैर्मस्तिष्कंरक्तमारुतौ दुष्टौदूषयतस्तच्चदुष्टंताभ्यांविमूर्च्छितम् सूर्योदयांशुसन्तापाद्दुःखविष्यन्दतेश नैः॥ ततोदिनेशिरःशूलंदिनवृद्ध्याचव र्द्धते। दिनक्षयेचतत्स्त्यानोमस्तिष्केसं प्रशाम्यति॥ सूर्यावर्तःसतत्रस्यात्सर्पि रौत्तरभक्तिकम्

अर्थ—मल मूत्रादि वेगोंके संधारण और अजीर्णादि कारणोंसे रक्त और वायु दूषित होकर मस्तकको दूषित करदेतेहैं। इसतरह रक्त वातसे दूषित मस्तकमें सूर्यकी किरणों के तापसे ज्यों २ दिन चढताहै मस्तक में वेदना बढती चलीजाती है, तथा दुपहर पीछे ज्यों २ दिन घटता है वेदना भी

घटती चलीजाती है ॥ इस रोग को सूर्य्यावर्त्त कहतेहैं, इसमें भोजन के पीछे घृतपान करना हितहै ॥

सूर्य्यावर्त्तमेंउपाय ॥

शिरःकायविरेकौचमूर्ध्नोचस्नेहधारणम्।
जांगलैरुपनाहश्चघृतक्षीरैश्चसेचनम्॥
वर्हितित्तिरिलावादिमृतक्षीरोत्थितंघृतम्
नावनंजीवनीयाष्टगुणक्षीरोपसाधितम् ॥

अर्थ—इस रोग में शिरो विरेचन, काय विरेचन, मस्तकमें तैल धारण, जांगल मांसका उपनाह, तथा घृत और दुग्ध से सेचन करना हित हैं । मोर, तीतर, लवा आदि जांगल पक्षियोंके मांस डालकर औटायेहुए दूध का घी, जीवनीय गणोक्त द्रव्योंका कल्क और अटगुना दूध मिलाकर पाक करै। इस घृतकीनस्य लैने से यह रोग जाता रहता है ।

अनन्तवात के लक्षण ॥

उपवासातिशोकातिरूक्षशीताल्पभोजनैः।
दुष्टादोषास्त्रयीमन्यापश्चाद्घाटेतुवेदनाम्
तीव्रांकुर्वन्तिसाचाक्षिभ्रूशंखेव्यवतिष्ठिते।
स्यन्दनंगण्डपार्श्वस्यनेत्ररोगंहनुग्रहम् ॥
सोऽनन्तवातस्तंहन्यात्शिरोकार्वर्तनाशनैः

अर्थ—उपवास करना, अत्यन्त शोक करना, अत्यन्त रूखा और शीतल भोजन करना वा अत्यल्प भोजन करना । इन वातोंसे तीनों दोष कुपित होकर मन्या के पिछले भाग में अत्यन्त तीव्र वेदना उत्पन्न करते हैं, और यह वेदना आंख भृकुटी और कनपटी में स्थित होकर गण्डस्थल के इधर उधर स्पन्दन, नेत्ररोग और हनुग्रह को उत्पन्न करताहै । इस रोग को अनन्तवात कहतेहैं इसमें उदावर्त्तनाशिनी क्रिया हित है ।

शिरःकम्प के लक्षण ।

वातोरूक्षादिभिःक्रुद्धःशिरःकम्पमुदीरयेत्
स्नेहस्वेदातिवातघ्नंशस्तंनस्यञ्चतर्पणं

अर्थ—रूक्षादि सेवनसे क्रुद्ध हुई वात शिरःकम्पको उत्पन्न करताहैं इसमें वातनाशक स्नेह, स्वेद तथा नस्य और तर्पण हित है ॥

शिरोरोग में नस्यको प्रधानता

नस्यकर्म्मचकुर्वीतशिरोरोगेषुसूक्ष्मवित्॥
द्वारंहिशिरसोनासातेनतद्व्याप्यहन्तितान्

अर्थ—सब प्रकार के शिरोरोगोंमे नस्यकर्म करना हित हैं क्योंकि नासिका सिर का द्वार है, इस द्वारसे प्रेरित औषध मस्तक में पहुंचकर उसके सब रोगोंको नष्ट करदेती है ॥

नस्यकर्मकेभेद ।

नावनञ्चावपीडश्चध्मापनंधूमएवच ॥
प्रतिमर्षश्चविज्ञेयंनस्यःकर्मतुपञ्चधा ॥

अर्थ....नावन, अवपीड, ध्मापन, धूम और प्रतिमर्ष । ये पांच नस्य के भेद हैं।

नावनादि के लक्षण

स्नेहनः शोधनश्चैवद्विविधंनावनंस्मृतम्
शोधनःस्तम्भनश्चस्यादवपीडोद्विधामतम्
चूर्णस्याद्ध्मापनंनामदेहस्रोतोविशोध-
नम् ।विज्ञेयस्त्रिविधोधूमःप्रागुक्तःशमना

दिकः। प्रतिमर्षोभवेत्स्नेहोनिर्दोषउभ यार्थकृत् ॥

अर्थ—नावन के स्नेह और शोधन दो भेद हैं। शोधन और स्तम्भन ये दो भेद अवपीडके हैं ध्मापन नस्य उसे कहतेहैं कि इसका चूर्ण दो मुख के नलमें भर कर फूंक मार कर नाक में पहुंचाया जाता है इस से देह के सम्पूर्ण स्रोत शुद्ध हो जाते हैं। धूमके शमनादिक तीन भेदों का वर्णन पहिलेहो चुका है।प्रतिमर्ष में स्नेहका प्रयोग होता है, यह संशोधन और संशमन दोनों काम करता है और निर्दोष भी है ॥

नस्य के कर्म।

एवंतद्रेचनंकर्मतर्पणंशमनंत्रिधा।

अर्थ—इसी तरह रेचन, तर्पण और शमन ये नस्य के तीन कर्म हैं।

रेचन साध्यरोग।

स्तम्भसुप्तिगुरुत्वाद्याःश्लैष्मिकायेशिरोगदाः॥ शिरसोरेचनंतेपुनस्तः कर्म्मप्रशस्यते ॥

अर्थ—मस्तक की स्तम्भता, सुप्ति,भारापन तथा अन्य कफजन्य रोगोंमें रेचन कर्म हितहैं ॥

तर्पणसाध्यरोग।

येचवातात्मकारोगाःशिरःकम्पार्दितादयः॥ शिरसस्तर्पणंतेपुनस्तःकर्मप्रशस्यते

अर्थ—जो शिरःकम्प और अर्दित से आदि लेकर वातात्मक रोगहैं उनमें तर्पण नस्य प्रधानहैं।

शमनसाध्यरोग ॥

रक्तपित्तादिदोषेषुशमनंनस्यमिष्यते ॥

अर्थ....रक्तपित्तादि दोषों में शमननस्य हितकारी होती है ॥

ध्मापनंधूमपानञ्चयथायोग्येषुशस्यते ॥ दोषादिकंसमीक्ष्यैवभिषक्सम्यक्प्रकारयेत्

अर्थ—दोषादिक की परीक्षा करके यथायोग्य ध्मापन और धूमपान का प्रयोग करना चाहियें ॥

विरेचनद्रव्य।

फलादिभेषजंप्रोक्तंशिरसोयद्विरेचनम्॥ तच्चूर्णकल्पयेत्तत्रपचेत्स्नेहविरेचनम्॥

अर्थ—पहिले जो शिरोविरेचन के लिये फलादि द्रव्य वर्णन कियेगयेहैं उन्हीं द्रव्यों के साथ स्नेह को सिद्ध करके शिरोविरेचन देना चाहिये

तर्पणद्रव्य ॥

यदुक्तंमधुरस्कन्धेभेषजंतेनतर्पणम् ॥ साधयित्वाभिषक्स्नेहंनस्तःकुर्याद्विधानवित् ॥

अर्थ—मधुरस्कन्ध में जिन द्रव्यों का वर्णन कियागया है उन द्रव्यों के साथ स्नेह सिद्ध करके तर्पण देवे ॥

तर्पणकीरीति ॥

प्राक्सूर्येमध्यसूर्येवाप्रावकृतावश्यकस्यच उत्तानस्यशयानस्यशयनेवास्वास्तृतेसुख प्रलम्बशिरसःकिञ्चित्किञ्चित्पादोन्नतस्यच॥ दद्यान्नासापुटेस्नेहंतर्पणंबुद्धिमान्भिषक्।

अर्थ—प्रातःकाल वा मध्यान्ह के समय

मलमूत्रादि आवश्यकीय कर्मोके पीछे रोगी को सुखदाई शय्यापर आराम से सीधा शयन कराके सिर कुछ नीचा करा देवै और पांवों को सुकड़वा देवै ॥ इस तरह शयन कराके नासिका के छिद्र में स्नैहिक तर्पण भर देवै ।

अनवाक्शिरसोनस्यंनशिरःप्रतिपद्यते । अत्यवाक्शिरसोनस्यंमस्तुलुङ्गेचतिष्ठते॥

अर्थ....विना नीचा सिर किये नस्य देने से वह सिर में नहीं पहुंचती है और अत्यन्त नीचा सिर करके देने से भेजेमें पहुंचजातीहै

अतएवशयानस्यशुद्ध्यर्थंस्वेदयेच्छिरः संस्वेद्यनासाम्रुन्नाम्यवामेनाङ्गुष्ठपर्वणा हस्तेनदक्षिणेनाथकुर्यादुभयतः समम् ॥ प्रणाल्यापिचुनावापिनस्तःस्नेहंयथाविधि कृतेचस्वेदयेद्भूयआकर्षेच्चपुनः पुनः॥ तं स्नेहंश्लेष्मणासाकंतथास्नेहोनतिष्ठति॥

अर्थ—इस लिये रोगी को शयन कराके मस्तक की शुद्धि के लिये प्रथम सिर को स्वेदित करै पीछे वांये अंगूठे के पोरुए से नासिकाके पुटोंको उठाकर दोनोंको समान भावमें करके नलके से या रुईके फोए से विधिपूर्वक नस्यकर्म करै । इस तरह नस्य कर्म करके फिर स्वेदन देवै । ऐसा करनेसे स्नेह कफके साथ बाहर निकल आवेगा मस्तक के भीतर न रह सकेगा ॥

स्वेदनोत्क्लेशितः श्लेष्मानस्तः कर्मणु परिस्थिते । भूयःस्नेहस्यशैत्येनशिरसि स्त्यायतेततः । श्रोत्रमन्यागलाद्येषुविका रायप्रकल्पते॥

अर्थ—मस्तक का कफस्वेदन से उत्क्लिष्ट होजाता है परन्तु नस्यकर्म के स्नेह की शीतलता से फिर जमजाताहै । इससे कान मन्या और कंठ आदि में विकार उत्पन्न होजाते हैं ॥

ततोनस्तःकृतेधूमंपिबेत्कफविनाशनम् । हिताम्रभुङ्निवातोष्णसेवीस्यान्नियते-न्द्रियः ॥

अर्थ—तब नस्यकर्म करने के पीछे कफ-नाशक धूमपान करै, पथ्य अन्न का सेवन, निर्वात स्थान में वास और उष्णसेवन करै तथा जितेन्द्रियतासे रहै ।

प्रध्मापन विधि ।

विधिरेषोऽवपीडस्यकार्यःप्रध्मापनस्यतु। तत्षडंगुलयानाड्याधमेच्चूर्णंमुखेनतु ॥

अर्थ—यह ऊपर लिखी हुई विधि अव-पीडनकी कही गई है । छःअंगुलकी नली में नस्य का चूर्ण भरकर फूंक मारने सेजो चूर्ण मस्तक में पहुंचाया जाता है वह प्रध्मापन नस्य है ।

शिरोविरेचन के पश्चात्कर्म ।

विरिक्तशिरसंतूर्णंपाययित्वाम्बुभोजये-त् । लघुत्रिदोषविरुद्धंचानिवातस्थमतन्द्रि तम् ॥

अर्थ....शिरोविरेचन के पीछे रोगी को गरम जल पान कराके तीनों दोषों से अवि-रुद्ध लघुभोजन कराके निर्वात स्थान में बैठावै परन्तु नींद न लेने देवे ।

विरिक्तशुद्धदोषस्यकोपनंपस्यमेवने । स दोषोविचरंस्तत्रकरोतिस्वान्गदान्बहून्॥

दिकः । प्रतिमर्षोभवेत्स्नेहोनिर्दोषउभयाथकृत् ॥

अर्थ—नावन के स्नेह और शोधन दो भेद हैं । शोधन और स्तम्भन ये दो भेद अवपीडके हैं ध्मापन नस्य उसे कहतेहैं कि इसका चूर्ण दो मुख के नलमें भर कर फूंक मार कर नाक में पहुंचाया जाता है इस से देह के सम्पूर्ण स्रोत शुद्ध हो जाते हैं । धूमके शमनादिक तीन भेदों का वर्णन पहिलेहो चुका है।प्रतिमर्ष में स्नेहका प्रयोग होता है, यह संशोधन और संशमन दोनों काम करता है और निर्दोष भी है ॥

नस्य के कर्म ।

एवंतद्रेचनंकर्मतर्पणंशमनंत्रिधा ।

अर्थ—इसी तरह रेचन, तर्पण और शमन ये नस्य के तीन कर्म हैं ।

रेचन साध्यरोग ।

स्तम्भसुप्तिगुरुत्वाद्याःश्लैष्मिकायेशिरोगदाः ॥ शिरसोरेचनंतेषुनस्तः कर्मप्रशस्यते ॥

अर्थ—मस्तक की स्तम्भता, सुप्ति,भारापन तथा अन्य कफजन्य रोगोंमें रेचन कर्म हितहैं ॥

तर्पणसाध्यरोग ।

येचवातात्मकारोगाःशिरःकम्पार्दितादयः॥ शिरसस्तर्पणंतेषुनस्तःकर्मप्रशस्यते

अर्थ—जो शिरःकम्प और अर्दित से आदि लेकर वातात्मक रोगहैं उनमें तर्पण नस्य प्रधानहैं ।

शमनसाध्यरोग ॥

रक्तपित्तादिदोषेषुशमनंनस्यमिष्यते ॥

अर्थ....रक्तपित्तादि दोषों में शमननस्य हितकारी होती है ॥

ध्मापनंधूमपानञ्चयथायोग्येषुशस्यते ॥ दोषादिकंसमीक्ष्यैवभिषक्सम्यक्प्रचकारयेत्

अर्थ—दोषादिक की परीक्षा करके यथायोग्य ध्मापन और धूमपान का प्रयोग करना चाहियें ॥

विरेचनद्रव्य ।

फलादिभेषजंप्रोक्तंशिरसोयद्विरेचनम्॥ तच्चूर्णकल्पयेत्तत्रपचेत्स्नेहविरेचनम् ॥

अर्थ—पहिले जो शिरोविरेचन के लिये फलादि द्रव्य वर्णन कियेगयेहैं उन्हीं द्रव्यों के साथ स्नेह को सिद्ध करके शिरोविरेचन देना चाहिये

तर्पणद्रव्य ॥

यदुक्तंमधुरस्कन्धेभेषजंतेनतर्पणम् ॥ साधयित्वाभिषक्स्नेहंनस्तःकुर्याद्विधानवित् ॥

अर्थ—मधुरस्कन्ध में जिन द्रव्यों का वर्णन कियागया है उन द्रव्यों के साथ स्नेह सिद्ध करके तर्पण देवे ॥

तर्पणकीरीति ॥

प्राक्सूर्येमध्यसूर्येवाप्राक्कृतावश्यकस्यच उत्तानस्यप्रशयानस्यशयनेवास्वास्तृतेसुखप्रलम्बशिरसःकिञ्चित्किञ्चित्पादोन्नतस्यच॥ दद्यान्नासापुटेस्नेहंतर्पणंबुद्धिमान्भिषक् ।

अर्थ—प्रातःकाल वा मध्यान्ह के समय

मलमूत्रादि आवश्यकीय कर्मोंके पीछे रोगी को सुखदाई शय्यापर आराम से सीधा शयन कराके सिर कुछ नीचा करा देवै और पांवों को सुकड़वा देवै ॥ इस तरह शयन कराके नासिका के छिद्र में स्नैहिक तर्पण भर देवै ।

अनवाक्शिरसोनस्यंनशिरःप्रतिपद्यते । अत्यवाक्शिरसोनस्यंमस्तुलुङ्गेचतिष्ठते॥

अर्थ....विना नीचा सिर किये नस्य देने से वह सिर में नही पहुंचती है और अत्यन्त नीचा सिर करके देने से भेजेमें पहुंचजातीहै

अतएवशयानस्यशुद्ध्यर्थंस्वेदयेच्छिरः संस्वेद्यनासामुन्नाम्यवामेनाङ्गुष्ठपर्वणा हस्तेनदक्षिणेनाथकुर्यादुभयतः समम् ॥ प्रणाल्यापिचुनावापिनस्तःस्नेहंयथाविधि कृतेचस्वेदयेद्भूयआकर्षेच्चपुनः पुनः। तं स्नेहंश्लेष्मणासार्कतथास्नेहोनतिष्ठति।

अर्थ—इस लिये रोगी को शयन कराके मस्तक की शुद्धि के लिये प्रथम सिर को स्वेदित करै पीछे बांये अंगूठे के पोरुए से नासिकाके पुटोंको उठाकर दोनोंको समान भावमें करके नलके से वा रुईके फोए से विधिपूर्वक नस्यकर्म करै । इस तरह नस्य कर्म करके फिर स्वेदन देवै । ऐसा करनेसे स्नेह कफके साथ बाहर निकल आवेगा मस्तक के भीतर न रह सकैगा ॥

स्वेदनोत्क्लेशितः श्लेष्मानस्तः कर्मण्युपस्थिते । भूयःस्नेहस्यशैत्येनशिरसि स्त्यायतेततः । श्रोत्रमन्यागलाद्येषुविकारायसकल्प्यते॥

अर्थ—मस्तक का कफस्वेदन से उत्क्लिष्ट होजाता है परन्तु नस्यकर्म के स्नेह की शीतलता से फिर जमजाताहै । इससे कान मन्या और कंठ आदि में विकार उत्पन्न होजाते हैं ॥

ततोनस्तःकृतेधूमंपिवेत्कफविनाशनम् । हितान्नभुङ्निवातोष्णसेवीस्यान्नियते- न्द्रियः ॥

अर्थ—तब नस्यकर्म करने के पीछे कफनाशक धूमपान करै, पथ्य अन्न का सेवन, निर्वात स्थान में वास और उष्णसेवन करै तथा जितेन्द्रियतासे रहै ।

प्रध्मापन विधि ।

विधिरेषोऽवपीडस्यकार्यःप्रध्मापनस्यतु। तत्षडंगुल्यानाड्याधमेच्चूर्णंमुखेनतु ॥

अर्थ—यह ऊपर लिखी हुई विधि अवपीडनकी कही गई है । छःअंगुलकी नली में नस्य का चूर्ण भरकर फूक मारने सेजो चूर्ण मस्तक में पहुंचाया जाता है वह प्रध्मापन नस्य है ।

शिरोविरेचन के पश्चात्कर्म ।

विरिक्तशिरसंतूर्णंपाययित्वाम्बुभोजये- त् । लघुत्रिष्वविरुद्धञ्चानिवातस्थमतन्द्रि तम् ॥

अर्थ....शिरोविरेचन के पीछे रोगी को गरम जल पान कराके तीनो दोषों से अविरुद्ध लघुभोजन कराके निवात स्थान में बैठावे परन्तु नींद न लैने देवै ।

विरेकशुद्धौदोषस्यकोपनंयस्यसेवते। स दोषोविचरंस्तत्रकरोतिस्वान्गदान्बहून्॥

वर्ण, हर्ष, तथा शरीर में कोमलता और चिकनाई ये सब शीघ्रही बढते हैं ।

वस्तियोंकेगुण ॥

अनुवासनंनिरूहश्चोत्तरवस्तिश्चसत्रिविधः ॥ शाखावातार्तानांसकुञ्चितस्तब्धभग्नरुग्णानाम् । विट्सङ्गाध्मानारुचिपरिकर्तरुगादिपुचशस्तः ॥

अर्थ—अनुवासन, निरूहण और उत्तर ये तीन प्रकार की वस्तियां होतीहैं । वस्ति प्रयोग शाखागत वात, गात्रसंकोच, स्तम्भता, भग्नता, वेदना, मलविबन्ध, आध्मान अरुचि और परिकर्त्तिका आदि रोगों में हितकारी है ।

उष्णार्तानांशीतान्शीतार्तानांतथासुखोष्णांश्च । तद्योग्यौषधयुक्तान्वस्तीन्सर्वत्रविनियुञ्जयत् ॥

अर्थ—उष्णतासे पीडित मनुष्योंकोशीतल वस्ति और शीत से पीडितों को सुखोष्ण वस्ति हितकर है । उपर्युक्त औषधियों से संस्कार की हुई वस्ति सर्वत्र देनी चाहिये॥

बृंहणवस्तिके अयोग्यरोगी ।

वस्तीन्नबृंहणीयान्दद्याद्व्याधिषुविशोधनीयेषु । मेदस्विनोविशोध्यायेचनराःकुष्ठमेहार्ताः ॥

अर्थ—शोधन के योग्य व्याधियों में बृंहणवस्ति नहीं दी जाती है । जो मेदस्वी वमन विरेचन के योग्य तथा कुष्ठरोगी और प्रमेही हैं उनको आस्थापन नहीं दीजाती है ।

संशोधनवस्तिकेअयोग्यव्यक्ति ॥

नक्षीणक्षतदुर्बलमूर्च्छितकृशशुष्कदेहानाम् । युञ्ज्याद्विशोधनीयान्दोषनिबद्धायुषोयेच ॥

अर्थ—क्षीणरोगी, क्षतरोगी, दुर्बल, मूर्च्छाग्रस्त, कृश, शुष्क देहवालों को और जिन के दोष आयु से निबद्ध हैं उन को संशोधन वस्ति नहीं देनी चाहिये ॥

वाजीकरणेऽसृक्पित्तयोश्चमधुघृतपयोयुताः । सर्वेशस्ताःसतैलमूत्रारनाललवणश्चकफवाते ॥ युञ्ज्याद्द्रव्याणिवस्तिष्वम्लंमूत्रंपयःसुराक्राथम् । अविरोधाद्धातूनांरसयोनित्वाच्चजलमुष्णम् ॥

अर्थ—वाजीकरण के योग्य रोगों में और रक्त पित्त में शहत, घी और दूध की वस्ति देनी चाहिये । और कफवात में तेल, कांजी और सेंधेनमक की वस्ति देनी चाहिये । वस्ति में कांजी, गोमूत्र, दूध, मदिरा और क्काथ ये सब मिलाने चाहिये परन्तु इन द्रव्यों में से वे द्रव्य देने चाहिये जो रोगी की धातु से अविरुद्ध हों ॥ तथा जल सम्पूर्ण द्रव्योंकी योनि अर्थात् उत्पत्ति का कारण है इस से गरम करके जल देना चाहिये ॥

सुरदारुशताह्वैलाकुष्ठमधुकापिप्पलीमधुस्नेहाः । ऊर्द्धानुलोमभागानिसर्षपाःशर्करालवणम् ॥ आवापोवस्तीनामतःप्रयोज्यानियेषुयानिस्युः ॥

अर्थ—देवदारु, सोंफ, इलायची, कूठ, मुलहटी, पीपल, स्नेह, वमनकारक द्रव्य, वैरेचनिक द्रव्य, सरसों, शर्करा और सेंधानमक इन सब द्रव्यों को घोटकर वस्ति

में डालना चाहिये परन्तु इस बातपर ध्यानरहे कि जिससमय जौनसी डालनीहो वही डालनी चाहिये ॥

युक्तानिसहकषायैस्तदुत्तरतःप्रवक्ष्यन्ते । चिरजातकठिनवलिपुव्याधिपुतीक्ष्णान्वि पर्ययेचमृदून । समतिवापकषायान्युञ्ज्यनुवासननिरूहान् ।

अर्थ—अब कषायोपयोगी वस्तिद्रव्यों का वर्णन करतेहैं । जोरोग बहुत पुराने कठिन और बलवान् हैं उनमें तीक्ष्ण द्रव्यों से युक्त और तीक्ष्ण कषायों से युक्त अनुवासन वा निरूहण देवैं । और जो रोग इनसे विपरीत है अर्थात् नये साधारण और दुर्बल हैं उनमें मृदु द्रव्योंकी अनुवासन और निरूहण देनी चाहिये ॥

अर्द्धश्लोकैरतःसिद्धान्नानाव्याधिपुवर्गशः ॥ वस्तीन्वीर्यसमैर्भागैर्यथार्हानिह तान्शृणु॥

अर्थ....भिन्न भिन्न व्याधियोंमें लाभकारी सम्पूर्ण वस्तियां यथावीर्य और यथाभाग आधे आधे श्लोकोंमें नीचे लिखी जातीहैं, उन्हें ध्यानसे श्रवण करो ॥

वातनाशकप्रयोग ॥

विल्वाग्निमन्थश्योनाकाःकाश्मर्यःपाटलिस्तथा ॥ शालपर्णीपृश्निपर्णीबृहत्यौ वर्धमानकः । यवाःकुलत्थाःकोलास्थि स्थिराचेतित्रयेऽनिलो ॥ शस्यन्तेसचतुःस्नेहाःपिशितस्यरसान्विताः॥

अर्थ—(१)विल्व, अरनी, श्योनाक, खंभारी और पाढला, (२)शालिपर्णी, पृश्णिपर्णी, दोनों कटेरी और अरंडकी जड (३)जौ, कुलथी, बेरकी गुठली और शालिपर्णी । इन तीन वर्गों के भिन्न ९ कषायों में चारों प्रकार के स्नेह और मांसरस डालकर वस्ति देनेंसे वातरोग शान्त हो जाते हैं।

पित्तनाशक प्रयोग ।

नलवञ्जुलवानीरशतपत्राणिशैवलम् ॥ मञ्जिष्ठाशारिवानन्तापयस्यामधुयष्टिका चन्दनंपद्मकोशीरंतुङ्गश्चपैत्तिकेत्रयः ॥ सशर्कराक्षौद्रघृताःसक्षीरावस्तयोहिताः

अर्थ....[१]नरसल की जड, जलवेत, बेत, पद्मकमल, और शैवाल, [२]मजीठ, सारिवा, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली, और मुलहटी, (३) रक्तचन्दन, पद्माख, खस, और पुन्नाग । इन तीन भिन्न भिन्न वर्गों के कषाय चीनी, घी, शहत, और दूध के साथ मिलाकर वस्तिद्वारा प्रयोग करने से पित्तजरोगों को दूरकरते हैं॥

कफनाशकप्रयोग ।

अर्कस्तथैवचालार्कएकाष्ठीलापुनर्नवा ॥ हरिद्रात्रिफलामुस्तंपीतदारुकुटन्नटम् । पिप्पल्यःचित्रकश्चेतित्रयस्तेश्लेष्मरोगिणाम् ॥ सक्षारक्षौद्रगोमूत्रानातिस्नेहान्विताहिताः ॥

अर्थ—[१] सफेद आक, लाल आक, वक वृक्ष और सांठ, [२] हल्दी, त्रिफला, मोथा, दारुहलदी, और केवटी मोथा, [३] पीपल और चीते की जड । इन तीन भिन्न २ वर्गों का कषाय जवाखार, शहत, गोमूत्र और थोडे से स्नेह के

वर्ण, हर्ष, तथा शरीर में कोमलता और चिकनाई ये सब शीघ्रही वढते हैं ।

वस्तियोंकेगुण ॥

अनुवासनंनिरूहश्चोत्तरवस्तिश्चसत्रिविधः ॥ शाखावातार्तानांसकुञ्चितस्तब्धभग्नरुग्णानाम् । विट्सङ्गाध्मानारुचिपरिकर्तरुगादिपुचशस्तः ॥

अर्थ—अनुवासन, निरूहण और उत्तर ये तीन प्रकार की वस्तियां होतीहैं । वस्ति प्रयोग शाखागत वात, गात्रसंकोच, स्तम्भता, भग्नता, वेदना, मलविवन्ध, आध्मान अरुचि और परिकर्त्तिका आदि रोगों में हितकारी है ।

उष्णार्तानांशीतान्शीतार्तानांतथासुखोष्णांश्च । तद्योग्यौषधयुक्तान्वस्तीन्सर्वत्रविनियुञ्जयात् ॥

अर्थ—उष्णतासे पीडित मनुष्योंकोशीतल वस्ति और शीत से पीडितों को सुखोष्ण वस्ति हितकर है । उपयुक्त औषधियों से संस्कार की हुई वस्ति सर्वत्र देनी चाहिये॥

बृंहणवस्तिके अयोग्यरोगी ।

वस्तीन्नबृंहणीयान्दद्याद्व्याधिषुविशोधनीयेषु । मेदस्विनोविशोध्याश्चयेचनराःकुष्ठमेहार्ताः ॥

अर्थ—शोधन के योग्य व्याधियों में बृंहणवस्ति नहीं दी जाती है । जो मेदस्वी वमन विरेचन के योग्य तथा कुष्टरोगी और प्रमेही हैं उनको आस्थापन नहीं दीजाती है ।

संशोधनवस्तिकेअयोग्यव्यक्ति ।

नक्षीणक्षतदुर्बलमूर्च्छितकृशशुष्कदेहानाम् । युञ्ज्याद्विशोधनीयान्दोषनिबद्धायुषोयेच ॥

अर्थ—क्षीणरोगी, क्षतरोगी, दुर्बल, मूर्च्छाग्रस्त, कृस, शुष्क देहवालों को और जिन के दोष आयु से निबद्ध हैं उन को संशोधन वस्ति नहीं देनी चाहिये ॥

वाजीकरणेऽसृक्पित्तयोश्चमधुघृतपयोयुताः । सर्वेशस्ताःसतैलमूत्रारनाललवणश्चकफवाते ॥ युञ्ज्याद्द्रव्याणिवस्तिष्वम्लंमूत्रंपयःसुराक्वाथम् । अविरोधाद्धातूनांरसयोनित्वाच्चजलमुष्णम् ॥

अर्थ—वाजीकरण के योग्य रोगों में और रक्त पित्त में शहत, घी और दूध की वस्ति देनी चाहिये । और कफवात में तेल, कांजी और सेंधेनमक की वस्ति देनी चाहिये । वस्ति में कांजी, गोमूत्र, दूध, मदिरा और क्वाथ ये सब मिलाने चाहिये परन्तु इन द्रव्यों में से वे द्रव्य देने चाहिये जो रोगी की धातु से अविरुद्ध हों ॥ तथा जल सम्पूर्ण द्रव्योंकी योनि अर्थात् उत्पत्ति का कारण है इस से गरम करके जल देना चाहिये ॥

सुरदारुशताह्वैलाकुष्ठमधुकपिप्पलीमधुस्नेहाः । ऊर्द्ध्वानुलोमभागानिसर्षपाःशर्करालवणम् ॥ आदापोवस्तीनामतःप्रयोज्यानियेपुयानिस्युः ॥

अर्थ—देवदारु, सौंफ, इलायची, कूठ, मुलहटी, पीपल, स्नेह, वमनकारक द्रव्य, विरेचनिक द्रव्य, सरसों, शर्करा और सेंधानमक इन सब द्रव्यों को घोटकर वस्ति

में डालना चाहिये परन्तु इस बातपर ध्यानरहै कि जिससमय जौनसी डालनीहो वही डालनी चाहिये ॥

युक्तानिसद्रव्यकपायैस्तदुत्तरतःप्रवक्ष्यन्ते । चिरजातकठिनबलिपुव्याधिपुतीक्ष्णान्वि पर्ययेचमृदून । समतिवापकषायानयुञ्ज्यनुवासननिरूहान् ।

अर्थ—अब कषायोपयोगी वस्तिद्रव्यों का वर्णन करतेहैं । जोरोग बहुत पुराने कठिन और बलवान् हैं उनमें तीक्ष्ण द्रव्यों से युक्त और तीक्ष्ण कषायों से युक्त अनुवासन वा निरूहण देवैं । और जो रोग इनसे विपरीत है अर्थात् नये साधारण और दुर्बल हैं उनमें मृदु द्रव्योंकी अनुवासन और निरूहण देनी चाहिये ॥

अर्द्धश्लोकैरतःसिद्धान्नानाव्याधिपुवर्ग शः ॥ वस्तीन्वीर्यसमैर्भागैर्यथार्हानिह तान्शृणु॥

अर्थ....भिन्न भिन्न व्याधियोंमें लाभकारी सम्पूर्ण वस्तियां यथावीर्य और यथाभाग आधे आधे श्लोकोंमें नीचे लिखी जातीहैं, इन्हें ध्यानसे श्रवण करो ॥

वातनाशकप्रयोग ॥

बिल्वाग्निमन्थश्योनाकाःकाश्मर्यःपाट लिस्तथा ॥ शालपर्णीपृश्निपर्णीवृहत्यौ वर्धमानकः । यवाःकुलत्थाःकोलास्थि स्थिराचेतित्रयेऽनिले ॥ शस्यन्तेसचतुः स्नेहाःपिशितस्यरसान्विताः॥

अर्थ—(१)बिल्व, अरनी, श्योनाक, खम्भारी और पाढला, (२)शालिपर्णी, पृष्णिपर्णी, दोनों कटेरी और अरंडकी जड (३)जौ,कुलथी, बेरकी गुठली और शालिपर्णी । इन तीन वर्गों के भिन्न ९ कषायों में चारों प्रकार के स्नेह और मांसरस डालकर वस्ति देनेसे वातरोग शान्त हो जाते हैं।

पित्तनाशक प्रयोग ।

नलवञ्जुलवानीरशतपत्राणिशैवलम् ॥ मञ्जिष्ठाशारिवानन्तापयस्यामधुयष्टिका चन्दनंपद्मकोशीरन्तुङ्गश्चपैत्तिकेत्रयः ॥ सशर्कराक्षौद्रघृताःसक्षीरावस्तयोहिताः

अर्थ....[१]नरसल की जड, जलवेत, वेत, पद्मकमल, और शैवाल, [२]मजीठ, सारिवा, अनन्तमूल, क्षीरकाकोली, और मुलहटी, (३) रक्तचन्दन, पद्माख, खस, और पुन्नाग । इन तीन भिन्न भिन्न वर्गों के कषाय चीनी, घी, शहत, और दूध के साथ मिलाकर वस्तिद्वारा प्रयोग करने से पित्तजरोगों को दूरकरते हैं॥

कफनाशकप्रयोग ।

अर्कस्तथैवचालार्कएकाष्ठीलापुनर्नवा ॥ हरिद्रात्रिफलामुस्तंपीतदारुकुटन्नटम् । पिप्पल्यःचित्रकश्चेतित्रयस्तेश्लेष्मरोगि णाम् ॥ सक्षारक्षौद्रगोमूत्रानातिस्नेहा न्विताहिताः ॥

अर्थ—[१] सफेद आक, लाल आक, वक वृक्ष और सांठ, [२] हल्दी, त्रिफला, मोथा, दारुहल्दी, और केवटी मोथा, [३] पीपल और चीते की जड । इन तीन भिन्न २ वर्गों का कषाय जवाखार, शहत, गोमूत्र और थोडे से स्नेह के

साथ मिलाकर वस्ति द्वारा प्रयोग करने से कफरोग दूर होजाते हैं ॥

पक्वाशयशोधनप्रयोग ।

फलजीमूतकेक्ष्वाकुधामार्गवकवत्सकाः॥ श्यामाचत्रिफलाचैवस्थिरादन्तीद्रवन्त्य पिप्रकीर्याचोदकीर्याचनीलिनीक्षीरिणी तथा ॥ सप्तलाशंखिनीलोध्रंफलंकाम्पिल्लकस्यच । चत्वारोमूत्रसिद्धास्तेपक्वाशयविशोधनाः ॥

अर्थ— (१] मेनफल, जीमूत, कडुतुम्बी, तोरई और इन्द्रजौ, [२] श्यामानिसोथ, त्रिफला, दन्ती और द्रवन्ती, [३] दोनों प्रकार के कंजा, नीलिनी और क्षीरिणी, (४] सातला, शंखिनी, लोध, मेनफल और कवीला । इन चार भिन्न २ वर्ग के प्रयोग को गोमूत्र में सिद्ध करके वस्ति द्वारा प्रयोग करने से पक्वाशय शुद्ध होजाता है ।

शुक्रवर्द्धन प्रयोग ।

काकोलीक्षीरकाकोलीमुद्गपर्णीशितावरी विदारीमधुयष्ट्याह्वशृंगाटककशेरुके ॥ आत्मगुप्ताफलंमाषाःसगोधूमायवास्तथा जलजानूपजंमांसमित्येतेशुक्रवर्धनाः ॥

अर्थ—[१ । काकोली, क्षीरकाकोली मुद्गपर्णी और सितावर (२) विदारीकन्द, मुलहटी, सिंघाड़ा और कसेरू, [३] कौंच के बीज, उरद, गेहूं और जौ, (४) जांगल और आनूप मांस । ये चार प्रयोग शुक्र को बढाने वाले हैं ।

सांग्राहिक प्रयोग ।

जीवन्तीचाग्निमन्थश्चधातकीपुष्पवत्सकौ ।प्रग्रहःखादिरःकुष्ठंशमीपिण्डीतकोयवाः ॥ प्रियंगूरक्तमूलीचतरुणीस्वर्णयूथिका । वटाद्याः किंशुकंलोध्रमितिसांग्राहिकामताः ॥

अर्थ—(१) जीवन्ती, अरनी, धायके फूल और इन्द्रजौ, (२) अमलतास, खैर, कूठ, शमी, मेनफल और जौ, [३] प्रियंगु, लज्जालु, ग्वारपाठा और स्वर्णयूथी (४) वटादि क्षीर वृक्ष, किंशुक और लोध । ये चारों प्रयोग संग्राही हैं ॥

परिस्राव में प्रयोग ।

परिस्रावेशृतंक्षीरसंदंष्ट्रीरपुनर्नवम् । आखुपर्णिकयावापितण्डुलीयकयुक्तया ॥

अर्थ—सफेद सांठ और लालसांठ डाल कर औटाया हुआ दूध अथवा मूषिकपर्णी और चौलाई डालकर औटाये हुए दूध की वस्ति देने से परिस्राव दूर होजाता है ।

दाहनाशक प्रयोग ।

कोलंकतककाण्डेक्षुदर्भकालेक्षुशालिभिः । दाहघ्नःसघृतक्षीरोद्वितीयश्चोत्पलादिभिः

अर्थ—बेरकी गुठली, निर्मलीफल, काण्डेक्षु, दाभ, ईखकी जड, और शालि की जड और घी इन को दूधके साथ औटाकर वस्ति द्वारा प्रयोग करने से दाह दूर होजाता है। इसी तरह उत्पलादि गणोक्त द्रव्य और दूध के सिद्ध साथ किये हुए घृत की वस्ति दाहनाशक है ॥

कर्बुदाराढकीनीपाविदुलैःक्षीरसाधितैः ॥

वस्तिःप्रदेयाभिषजाशीतःसमधुशर्करः ॥

अर्थ....सफेद कचनार, अडहरकी जड, कदम्ब और वेत इन सम्पूर्ण द्रव्यों के साथ सिद्ध की हुई दूध की वस्ति को ठंडा करके शहत और चीनी डालकर प्रयोग करने से दाह दूर हो जाता है ।

परिकर्त्तिका में वस्ति ।

परिकर्ततथावृन्तैःश्रीपर्णीकोविदारजैः ॥ शुष्टिःशाल्मलिवृन्तानांक्षीरसिद्धोघृतान्वितः ।

अर्थ....खंभारी और लाल कचनारके डंठलों को दूध और घी के साथ सिद्ध करे अथवा सेमर के डंठल एक पल और दूध इनके साथ घी को सिद्ध करके वस्ति देने से परिकर्ति-का दूर होजाती है ॥

प्रवाहिकानाशक प्रयोग ॥

हितःप्रवाहणेतद्वद्वृन्तैःशाल्मलिकस्यच ॥

अर्थ....प्रवाहिका में सेमर के डंठल और दूध के साथ सिद्ध घृतकी वस्ति भी हित-कर है ॥

अतियोगनाशक प्रयोग ।

अश्वावरोहिकाःकाकनासाराजकशेरुकैः। सिद्धाःक्षीरेऽतियोगेस्युःक्षौद्राञ्जनघृतैर्युताः ॥ न्यग्रोधाद्यैश्चतुर्भिश्चतेनैवविधिनापरः ।

अर्थ---असगंध, कौआटोंटी और राज कसेरू इन के साथ सिद्ध दूधकी वस्ति में शहत, शर्करा और घी मिलाकर प्रयोग करने से अतियोग दूर होता है । इसी तरह से बड, गूलर, पीपल और पाकड इनके साथ सिद्ध दूधकी वस्ति भी अतियो-गनाशक है ।

बृहतीक्षीरकाकोलीपृश्निपर्णीशतावरी॥ काश्मर्यबदरीदूर्वातथोशीरप्रियङ्गवः । जीवनीयैःशृतौक्षीरौद्वौघृताञ्जनसंयुतौ ॥ वस्तीप्रदेयोभिषजाशीतौमधुसशर्करौ ।

अर्थ---[१] बडी कटेरी, क्षीरकाकोली, पृष्णिपणी, सितावर, [२] खंभारी, वेर की गुठली, दूब, उसीर और प्रियंगु । इन दो वर्गों के साथ पृथक् २ दूध सिद्धकर के उस में घी, अंजन, शहत और चीनी मिलाकर वस्ति देने से अतियोग दूर हो-जाता है ।

जीवशोणित में वस्ति ।

शशैणदक्षमार्जारमहिषाव्यजशोणितैः ॥ सद्यस्कैर्मृदितैर्वस्तिर्जीवादानेप्रशस्यते ।

अर्थ---खरगोश, हरिण, मुर्गा, बिल्ली, भैंस, भेड और बकरा इनका ताजा रुधिर लेकर वस्ति द्वारा प्रयोग करनेसे अतियोग से हुई जीवशोणित की क्षीणता दूर होजाती है

गोव्यजामहिषीक्षीरैर्जीवनीययुतैस्तथा ॥ तेनैवविधिनावस्तिर्देयःसक्षौद्रशर्करः ।

अर्थ--गौ, भेड, बकरी और भैंस इनका दूध जीवनीय गणका कल्क, घी, शहत और चीनी मिलाकर वस्ति देने से अतियोग दूर होजाता है ॥

मधूकमधुकद्राक्षादूर्वाकाश्मर्यचन्दनैः ॥ शर्कराचन्दनद्राक्षामधुधात्रीफलोत्पलैः ।

अर्थ---रक्त के क्षीण होनेपर महुआ, मुलहटी, दाख, दूब, खंभारी और चन्दनकी

वस्ति । अथवा चीनी, रक्तचन्दन, दाख मुलहटी, आंवला और नीलकमलकी वस्ति हितकारी होती है ॥

रक्तपित्तमेंप्रयोग ॥

रक्तपित्तप्रमेहेतुकषायःसोमवल्कजइति ॥

अर्थ—रक्तपित्त और प्रमेह में सफेद खैर के क्वाथ की वस्ति हित होती है ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन॥

त्रिकास्त्रयोऽनिलादीनांचतुष्काश्चापरे त्रयः ॥पक्वाशयविशुद्ध्यर्थंवृष्यासांग्राहि कास्तथा ॥ परिस्रावेतथादाहेपरिकर्तेप्र वाहणे ॥ सातियोगोमतौद्वौद्वौजीवादा नेतथात्रयः ॥ रक्तपित्तेद्वयंमेहएकत्रिंशच पञ्चच । सुलभाल्पौषधक्लेशावस्तयोगु णवत्तमाः ॥

अर्थ—इस वस्तिसिद्धि अध्यायमें वातरोग में तीन, पित्तरोगमें तीन, कफरोग में तीन, पक्वाशय के शोधन में चार, शुक्रवर्द्धक तीन, संग्राहक तीन, परिस्राव में तीन, दाह में दो, परिकर्तिका में एक, प्रवाहिकामें एक, अतियोग में पांच, जीवितरक्त के क्षय में तीन, रक्तपित्त में एक और प्रमेह में एक इस तरह वस्ति के छत्तीस प्रयोग वर्णन किये गये हैं ॥

अध्यायकाउपसंहार ॥

गुल्मातिसारोदावर्तस्तम्भसंकुचितादिपु सर्वाङ्गैकाङ्गरोगेपुरोगेष्वेवंविधेपुच ॥यथा स्वमौषधैःसिद्धान्वस्तीन्दद्याद्विचक्षण.पूर्वो क्तेनविधानेनकुर्य्याद्योगानपृथग्विधानिति॥

अर्थ—गुल्मरोग, अतीसार, उदावर्त्त, स्तम्भता, संकोच, सर्वांगघात, एकांगघात तथा इसी प्रकार के अन्यरोगों में भी उसी उसी रोग को नाश करनेवाली औषधियों के साथ सिद्ध की हुई वस्ति देना चाहिये ये वस्तियां विद्वान् वैद्य द्वारा पूर्वोक्त रीतिसे पृथक् २ कल्पना करके दीजासक्ती हैं ॥

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायांचरकप्रतिसंस्कृतायांसंहितायांसिद्धिस्थानेवस्तिसिद्धिर्नामदशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः ।

अथातःफलमात्रासिद्धिंव्याख्यास्यामः॥ इतिहस्माहभगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदनन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम फलमात्रा सिद्धि की व्याख्या करेंगे

भगवन्तमुदारसत्त्वधीश्रुतिविज्ञानसमृद्ध मत्रिजम् । फलवस्तिवरत्वनिश्चयेसत्रि वादामुनयोऽप्युपागमन् ॥ भृगुकौशिक काप्यशौनकाःसपुलस्त्यासितगौतमाद यः ॥ कतमत्प्रवरंफलादिपुस्मृतमास्था पनयोजनास्विति ।

अर्थ—एक समय भृगु, कौशिक, काप्य, शौनक, पुलस्त्य, असित और गौतम आदि मुनियों में इसबात पर विवाद हुआ कि आस्थापन में कौन फल श्रेष्ठ है । इस झगडे को निवटाने के लिये ये सब मिलकर उदारसत्व, उदारधी, श्रुति विज्ञानसम्पन्न भगवान् अत्रिनन्दन के पास उपस्थित हुए

फल विषय में भिन्न २ मत ॥

कफपित्तहरंपरंफलेष्वथजीमूतकमाहशौनकः। मृदुवीर्यतयाभिनत्तितदितिचोवाचनृपोऽथवामकः॥कटुतुम्बीफलमुत्तमंमतं वमनेदोषसमीरणक्षमं ॥ तदधृष्यमशैत्य तीक्ष्णताकटुरौक्ष्यैरितिगौतमोब्रवीत् ॥ कफपित्तनिबर्हणंपरंसतुधामार्गवमेष्वम-न्यतातदमन्यतवातलपुनर्बडिशोग्लानिकरं बलापहम्कुटजंमहाशंसचोत्तमंनवलघ्नंकफ पित्तहारिचअतिविज्जलमूर्द्धभागिंकपवन शोभिचकाप्यआहतत्कृतवेधनामाश्ववातलं कफपित्तमबलंहरेदिति॥तदसाध्विति भद्र शौनकःकटुचारोहिवलघ्नमित्यपि ॥

अर्थ—शौनक कहतेथे कि कफपित्तनाशक होने से जीमूतकाफल उत्तम है। राजावामक का यह मतथा कि जीमूत मृदुवीर्य और मलको भेदनकर्ता है, और कटुतुम्बी का फल वमन कराने में उत्तम है क्योंकि यह दोषों को शीघ्रही उद्गीर्ण करता है। परन्तु गौतम की यह रायथी कि कटुतुम्बी उष्ण, तीक्ष्ण कटु और रूक्ष होती है इससे अधृष्य होती है और धामार्गव कफपित्त को नाश करनेवाली है इससे इस काम में धामार्गव श्रेष्ठ है। इसपर बडिश बोल उठे कि धामार्गव वातकर्त्ता, ग्लानिकारक और बल-नाशक है, इससे तो इन्द्रजौ अच्छे हैं क्योंकि वे बल को दूर नहीं करते हैं और कफपित्तनाशक भी हैं। यह सुनकर काप्य बोले कि इन्द्रजौ अत्यन्त पिच्छिल, ऊर्ध्व-गामी और वातप्रकोपक है, किन्तु कृतवेधन आशुकारी, अवातल और प्रबल कफपित्त को दूर करनेवाली है ॥ भद्रशौनक बोले कि कृतवेधन अच्छी नहीं होती है, क्योंकि यह कड़वी है और बलघ्नमी है ॥

इतितद्वचनानिहेतुभिःसुविचित्राणिनिश म्यतुष्टिमान् ॥ प्रशशंसफलेपुनिश्चयंपर मश्चात्रिसुतोऽब्रवीदिदम् ॥

अर्थ—इनऋषियों के सहेतुक भिन्न भिन्न वचनों को सुनकर अत्रिनन्दन फलों के विषय में अपना मत प्रकाश करने लगे।

फलदोषगुणान्सरस्वतीमतिसर्वैरपिस-म्यगीरिता ॥ नतुकिञ्चिददोषनिर्गुणंगु णभूयस्त्वमतोविचिन्त्यते ॥

अर्थ—आप सब लोगों ने इन फलों के गुण दोषों का वर्णन बहुत अच्छी रीति से किया है। परन्तु इनमें से कोई द्रव्य निर्दोष और निर्गुण नहीं है ॥ किन्तु प्रत्येक द्रव्य में स्थान की विशेषता से गुणों की अधिकता होती है।

विषयविशेष से फलों को उत्कृष्टत्व।

इहकुष्ठहितागरागरीहितमिक्ष्वाकुतुमेहि नेमतम् ॥ कुटजस्यफलंहृदामयेमवरंकोट फलञ्चपाण्डुषु। उदरेकृतवेधनंहितंमदनं सर्वगदाविरोधितु॥

अर्थ—जीमूत का फल कोढमें हितकारी है, कटुतुम्बी प्रमेह में उत्तम है, इन्द्रजौ हृद्रोग में, कोटफल पांडुरोग में और कृत-वेधन उदररोग में हितकारीहै, तथा मैनफल सब प्रकार के रोगों में अविरोधी है।

मदनफलकी उत्कृष्टता ।

मधुरंसकषायतिक्तकंतदरूक्षसकटूष्णापिच्छलम् ॥ कफपित्तहृदाशुकारिचाप्यनपायपवनानुलोमिच ॥फलनामविशेषतस्त्वततोलभतेऽन्येषुफलेषुसत्स्वपि ।

अर्थ—मेनफल मधुर, कुछ कसीला, तिक्त, रूखापन से रहित, कटु, उष्ण और पिच्छिल होता है, यह कफपित्तनाशक, आशुकारी, उपद्रव रहित और वातानुलोमी है, इस हेतु से वमनकारक अन्य फलों के विद्यमान होनेपर भी मेनफल श्रेष्ठ होताहै

गुरुणाचवचस्युदाहृतेमुनिसंघैरितिपूजितेततः । प्रणिपत्यमुदासमन्वितः सहितःशिष्यगणोऽनुपृष्टवान् ॥

अर्थ....गुरू के इस वचन को सुनकर सब मुनियों ने पूजन किया और चरणों में नमस्कार करके फिर पूछा ।

सर्वकर्मगुणकृद्गुरुणोक्तोवस्तिरुर्द्धमतमर्थवेदिना ॥ नाभ्यधोगुदगतश्चशरीरात्सर्वतःकथमपोहतिदोषान् ॥

अर्थ....हेगुरो ! आपने पहिले कहा है कि वस्ति सम्पूर्ण कर्मोंके करनेवाली और सम्पूर्ण गुण करनेवाली है । परन्तु वस्ति नाभिके नीचे गुदा में स्थिर होकर किस तरह दोषोंका अपकर्षण करती है ।

तद्गुरुरब्रवीदिदंशरीरंतन्त्रयतेऽनिलःसङ्गविघातात् ॥ केवलएवदोषसहितःसहि वायुःप्रकोपमुपयाति ॥ तत्पवनंसपित्तकफविट्कंशुद्धिकरोऽनुलोमयतिवस्तिः॥ सर्वशरीरगश्चगदसंघात्मकाशनात्मशान्तमुपयाति ॥

अर्थ—उक्त प्रश्नको सुनकर गुरु बोले कि वायु शरीर के सम्पूर्ण द्रव्योंको इकट्ठे रखती है ॥ और वायुही शरीरको धारण करतीहै, अकेली वायु कुपित होजाती है तथा अन्य दोषके साथ भी कुपित होतीहै वस्ति पक्काशय में जाकर पित्त कफ और विष्टाके साथ उस वायुको अनुलोमित करतीहै । इस तरह शुद्ध हुई वायु सम्पूर्ण शरीरमें गमन करके रोगों के समूह को दूर करती हुई शान्त होजाती है । इसका यह तात्पर्य है कि वायुका शरीर के सब द्रव्योंसे संबंध है, इससे वायुके शुद्ध होने पर शेष द्रव्य भी शुद्ध होजातेहैं । किन्तु पक्काशय वायुका प्रधान स्थानहै और वस्ति पक्काशयकी वायुको मलके साथ शुद्ध करती है । इस तरह वायुके शुद्ध होनेपर वह सम्पूर्ण देह में विचरती हुई शरीर को शुद्ध करके रोगों को शान्त कर देतीहै ॥

अथाभिगम्यार्थमखण्डितधिया । गजोष्ट्रगोऽश्वाव्यजवस्तिकर्म ॥ अपृच्छदेनंसचवस्तिमब्रवीत् । विधिश्चतस्याहपुनःप्रचोदितः ॥

अर्थ—तत्पश्चात् शिष्योंने उक्त सब वर्णन जानकर पूछा कि हे महाराज ! हाथी, ऊंट गौ, घोडा, भेड और बकरी को वस्ति किस तरह दीजाती है । यह सुनकर आत्रेय उक्त पशुओं को वस्ति देनेकी विधि वर्णन करने लगे ॥

अजाविकेसौम्यगजोष्ट्रयोर्वागवाश्वयोर्वस्तिमुशन्तिमाहिषम् ॥ अजाविकादन्त

सुवस्तिमुत्तरंवदन्तिवस्तिविपरीतरूपम्॥

अर्थ—बकरी, भेड, हाथी, ऊंट, गौ और घोडे के लिये भैंसे की बस्तिपुट से वस्ति बनवानी चाहिये। बकरी, भेड आदि की वस्ति को सुवस्ति और उत्तरवस्ति को उत्तरसुवस्ति कहते हैं ॥

सुवस्तिकाप्रमाण।

सुवस्तिमष्टादशषोडशांगुलंतथैवनेत्रञ्चद शांगुलंक्रमात्। गजोष्ट्रगोऽश्वात्गजवस्ति संधौचतुर्थभागेचसकर्णिकंवदेत्॥

अर्थ—हाथी और ऊंट के लिये सुवस्ति के नल का प्रमाण अठारह अंगुल गौ और घोडे के लिये सोलह अंगुल तथा भेड और बकरी के लिये दश अंगुलका होताहै। इसकी कर्णिका मनुष्यकी वस्तिसे चौगुनी होती है ॥

सुवस्तिकीमात्राकाप्रमाण।

प्रस्थस्त्वजाव्योर्हिनिरूहमात्रागवादिषु द्वित्रिगुणोयथाबलम्॥ निरूहउष्ट्रस्यतथा ढकद्वयंगजस्यवृद्धिस्त्वनुवासनेऽष्टमः॥

अर्थ—बकरी और भेडकी निरूहण मात्रा एक प्रस्थ होती है। गौ और घोडे की निरूहमात्रा बल के अनुसार दो तीन प्रस्थकी होती है, ऊंटकी निरूहमात्रा दो आढक तथा हाथीकी मात्रा बलके अनुसार बढादी जाती है। इन सब जीवों को जो अनुवासन वस्ति देनी हो तो निरूह से आठवां भाग काम में लायाजाता है।

निरूहकासाधारणप्रयोग।

कलिंगकुष्ठमधुकंसपिप्पलिवचाशताह्वाम दनंरसाञ्जनम्। हितानिसर्वेषुगुडःससै-न्धवोद्विपञ्चमूलंसविकल्पनाविषम्॥

अर्थ—इन्द्रजौ, कूठ, मुलहटी, पीपल, वच, सोंफ और मैनफल इनके क्वाथ में रसौत, गुड और सेंधानमक मिलाकर सब प्रकार के जन्तुओं को साधारण रीति से निरूहण दीजाती है। तथा दशमूल के क्वाथ की भी निरूहणवस्ति दीजाती है।

हाथीकोनिरूहणप्रयोग।

गजेऽधिकोऽश्वत्थवराश्वकर्णजाः॥ सखादिराःप्रग्रहसालतालजाः॥

अर्थ—विशेष कर के हाथी को पीपल वड, सालकी निरूहण देवै, अथवा खैर, अमलतास साल और तालकी निरूहण वस्ति देनी चाहिये ॥

ऊंटका निरूहण प्रयोग।

तथाचउष्ट्रेधवशिग्रुपाटली।
मधूकसाराःसनिकुम्भचित्रकाः॥

अर्थ—ऊंटके लिये धौ, सहजना, पाटला महुआ का सार, दन्ती और चीते का निरूह प्रयोग करे।

गौ के लिये प्रयोग ॥

पलाशभूतीकसुराह्वरोहिणी॥
कषायउक्तस्त्वधिकोगवांहितः॥

अर्थ—गौके लिये पलास, अजवायन, देवदारु और कुटकी इनके कषायकी निरूहण देवै

घोडे के लिये प्रयोग ॥

पलाशदन्तीसुरदारुकत्तृण।
द्रवन्त्यउक्तास्तुरगस्यचाधिकाः॥

अर्थ....घोडे के लिये पलास, दन्ती, देवदारु, गन्धतृण और दन्तीकी निरूहण देवै॥

खरोष्ट्र प्रयोग ॥

खरोष्ट्रयोःपीलुकरीरखादिराः

शम्पाकबिल्वादिगणस्यचच्छदाः

अर्थ....गधे और ऊंट के लिये पीलू, करील, खेर,अथवा अमलतास और बिल्वादि गण के पत्तों का प्रयोग करे ॥

भेड बकरीकेलियेप्रयोग ।

अजाविकानांत्रिफलापरूषकं । कपित्थकर्कन्धुसबिल्वकोलजम् ॥

अर्थ....भेड बकरीयों के लिये त्रिफला और फालसा अथवा कैथ. बेर. बिल्व और बडा बेर इनको निरूहण देवै ।

आथग्निवेशःसततोन्तरान्तराहितंचपम च्छगुरुस्तदाहच ॥ सदातुराःश्रोत्रियरा जसेवकास्तैथवेश्याःसहपण्यजीविभिः॥

अर्थ—तदनन्तर अग्निवेश ने फिर पूछा कि हे महाराज ! श्रोत्रिय, राजसेवक. वेश्या और पण्यजीवी सदा रोगी क्यों रहते है. यह सुनकर गुरु बोले ॥

श्रोत्रियादिके रोगी रहने का कारण॥

द्विजोहिशिष्याध्ययनव्रतान्हिकक्रियादि भिर्देहहितंनचेष्टते।नृपोपसेवीनृपचित्तर क्षणात्परानुरोधाद्बहुचिन्तनाद्भयात् ॥ नृचित्तवर्तिन्युपचारतत्परामृजाविभूषा निरतापरांगना।सदासनादर्थ्यनुबद्धवि क्रयक्रयादिलोभादपिपण्यजीविनः॥

अर्थ—ब्राह्मण सदा शिष्यों को पढाने तथा व्रत और आन्हिक क्रिया में तत्पर रहते है, इससे शरीरकी भलाई की चेष्टा नहीं करते हैं । राजसेवक राजा के अनुकूल काम करने में तत्पर रहते हैं और पराधीनता, बहुचिन्ता और भय उनके जी में सदा बना रहता है इससे स्वस्थता का यत्न नहीं कर सकते हैं । वेश्या परपुरुषों के चित्तको लुभाने में और पराई सेवाकरने में तत्पर रहती है और रात दिन आभूषणादि से अपने देह को आभूषित करने में लीन रहती है इसीसे यह भी सदैव रोगिणी रहती हैं । दूकानदार एक स्थान पर बहुत बैठे रहते हैं, द्रव्योपार्जन तथा क्रयविक्रय (खरीद फरोख्त) में लगे रहते हैं, एवं लोभ के कारण स्वास्थ्यपालन में असमर्थ होते हैं ।

अन्य सदारोगियों का वर्णन ।

सदैवतेह्यागतवेगनिग्रहंसमाचरन्तेचनका लभोजनम् । अकालनिर्हारविहारसेवि- नोभवन्तियेन्येऽपिसदातुराश्चते॥

अर्थ—ये लोग मलमूत्रके उपस्थित वेगों को रोक लिया करते हैं, ठीक समय पर भोजन नहीं करते हैं, कुसमय मलत्याग करते हैं और कुसमय डोलते फिरते हैं । इससे सदारोगी बने रहते हैं ॥ तथा और भी मनुष्य जो इसी तरह करते हैं वे भी सदैव रोगी बने रहते हैं ॥

समीरणंवेगविधारणोद्धतंविबद्धसर्वाङ्ग रुजाकरंभिषक्।समीक्ष्यन्तेपांफलवर्ति मादितःसुकल्पितांस्नेहवर्तीमयोजयत् ॥

अर्थ....उपस्थित वेगों के रोकने से ऐसे मनुष्यों के वायु कुपित होजाती है, मल मूत्र का विबन्ध होजाता है और सम्पूर्ण अंग में वेदना होने लगती है । इसमें प्रथम ही अच्छी तरह तयार की हुई स्नेह युक्त फलवर्ती का प्रयोग करना चाहिये ।

निरूहणकापश्चात्कर्म ।

निरूढितंधन्वरसेनभोजितं।
निकुम्भतैलेनततोऽनुवासयेत् ॥

अर्थ—निरूहण के पीछे जांगल मांसरस के साथ भोजन कराके दन्तीके साथ सिद्ध किये हुए तेलकी अनुवासन देवै ॥

बलाश्वगन्धामहविल्वचित्रकान्द्विपञ्च मूलेकृतमालकोत्पले॥यवान्कुलत्थांश्च पचेज्जलाढकेरसःसपेप्यस्तुकलिङ्गकादि भिः॥सतैलसर्पिर्गुडसैन्धवोहितःसदा नराणांबलवर्द्धनःपरः ।

अर्थ—खरैटी, असगंध, बेल, चीता, दसमूल, अमलतास, नीलोफर, जौ, कुलथी, इनको एक आढक जलमें पकाकर चौथाई शेष रहने पर छानले, इस क्वाथ में इन्द्रयवादि दस द्रव्यों का कल्क तेल, घी, गुड़ और सेंधानमक मिलाकर पकावै । इसका अनुवासन श्रोत्रियादि रोगियों के बलका बढानेवाला है ॥

पुनर्नवैरण्डनिकुम्भचित्रकान्
सदेवदारुत्रिवृतानिदिग्धिकाम् ॥
महान्तिमूलानिचपञ्चतद्यवान्विपाच्य मूत्रेदधिमस्तुसंयुते । सतैलसर्पिर्लवणैश्च पञ्चभिर्विपूर्चितंबस्तिमथप्रयोजयेत् ॥

अर्थ—सोंठ, अरंड, दन्ती, चीता, देवदारु, निसोथ, कटेरी, वृहत्पंचमूल इन को दही के तोड मिलेहुए गोमूत्र में पकावै । फिर इस क्वाथ में तेल, घी और पांचों नमक मिलाकर वस्ति देवै ।

तथैवमरनमधुकेनसाधितम्
फलेनविल्वेनशताह्वयाथवा ॥

अर्थ— उक्तरीति से मुलहटी, अथवा बेलफल अथवा सौंफ के साथ सिद्ध किये हुए तेलकी अनुवासन देवै ॥

वालकऔरवृद्धकोनिरूहण ।

सजीवनीयस्तुरसोनुवासनेनिरूहणेचालवणेशिशोर्हितः॥नचान्यदाग्न्यङ्गबलाभिवर्द्धनंनिरूहवस्तेःशिशुवृद्धयोःपरम् ॥

अर्थ....बालकों के लिये जीवनीय गण के क्वाथ के साथ सिद्ध तेलकी अनुवासन देनी चाहिये । बालकों को जो निरूहण दीजाती है उस में नमक डाला नहीं जाता है बालक और वृद्धों के लिये निरूहण के अतिरिक्त शरीर के बलको शीघ्र बढानेवाली और कोई औषध नहीं है ॥

अध्यायकासंक्षिप्तवर्णन ।

तत्रश्लोकः ।

फलकर्म्मवस्तिरवरतत्वनिश्चयोवाज्यादीनाम् । सततातुरांश्चदृष्टाःफलमात्रायां • हितंचपाम्॥

अर्थ—इस फलमात्रा सिद्धि नामक अध्याय में वमनकारक औषधोंमें मैनफल की उत्कृष्टता, हाथी, घोड़े आदि जीवोंकी वस्तियों का वर्णन, राजसेवक, वेश्या आदि परोपजीवी मनुष्यों के सदा रोगी रहने का कारण और उनकी चिकित्सा विधिपूर्वक वर्णन की गई है ।

इतिश्रीभाषाटीकान्वितायांअग्निवेशविरचितायां चरकप्रतिसंस्कृतायां संहितायांसिद्धिस्थानेफलमात्रासिद्धिर्नामैका दशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

अथातउत्तरसिद्धिंव्याख्यास्यामइतिहस्मा
ह भगवानात्रेयः ॥

अर्थ—तदन्तर भगवान् आत्रेय बोले कि अब हम उत्तर वस्ति सिद्धि की व्याख्या करेंगे ।

संशोधनकेपीछेपेयादिविधि।

अथखल्वातुरंवैद्यःसंशुद्धंवमनादिभिः ॥
दुर्वलंकृशमल्पाग्निमुक्तसन्धानवन्धनम्।
निर्हृतानिलविण्मूत्रकफपित्तंकृशाशयम्॥
शून्यदेहंमतीकारासहिष्णुंपरिपालयेत् ।

अर्थ—जो रोगी वमन विरेचनादि संशोधन द्रव्योंके प्रयोगसे शुद्ध होकर दुर्वल कृश, मन्दाग्नि, तथा मुक्तसन्धिवन्धन [हाथ पांव आदि की सन्धियोंका दुर्वलता के कारण ढीला होना] होगयाहो,तथा वायु विष्ठा, मूत्र, कफ और पित्तके निकलने से उसका आशय कृश पडगयाहो। एवं देहके शून्य होजाने के कारण औषध को न सह सकता हो उसको औषध न देकर केवल परिपालन विधिका अवलम्बन करना चाहिये

यथैवतरुणंपूर्णंतैलपात्रंतथैवच ॥ गोपा
लाइवदण्डीगाःसर्वस्मादपचारतः।

अर्थ—जैसे तेल से भरेहुए नवीन घडेकी रक्षा यत्नपूर्वक कीजाती है और जिसतरह ग्वालिये लट्ठकी सहायता से गौओं की सव प्रकारके अपचार से रक्षा करतेहैं,उसी तरह वैद्य को उचित है कि रोगी की रक्षा करै ।

अग्निसंदीपनक्रम ।

अग्निसन्धुक्षणार्थन्तुपूर्वंपेयादिभिर्भिषक्
रसोत्तरैर्वचरेत्क्रमेणक्रमकोविदः ।

अर्थ—जठराग्नि के बढाने के निमित्त प्रथम पेयादि का पालन करावै, पीछे मांस रसका व्यवहार करना चाहिये ।

स्निग्धाम्लस्वादुहृद्यानिततोऽम्ललवणौर
सौ॥ स्वादुतिक्तौततोभूयःकषायकटुकौ
ततः ॥

अर्थ—तत्पश्चात् प्रथम स्निग्ध,अम्लस्वादु और हृद्य रस का सेवन कराके फिर खट्टे और नमकीन रस देवै, उस से पीछे स्वादु और तिक्तरस, फिर उससे पीछे कसीले और कडवे रसों का सेवन करावै ।

अन्योन्यप्रत्यनीकानांरसानांस्निग्धरूक्ष
योः ॥ व्यत्यासादुपयोगेनमकृतिंगमये
द्भिषक् ।

अर्थ—इसतरह विपरीत क्रम से रोगी को रसों का सेवन करावै अर्थात् किसी दिन स्निग्ध रस देदेवै और किसी दिन रूक्ष देवै। इस तरह क्रमसे उपचार करने पर रोगी अपनी पूर्व प्रकृति पर आजायगा ।

प्रकृतिगतकेलक्षण ॥

सर्वक्षमोनिरासंगोरतियुक्तःस्थिरेन्द्रियः
वलवान्सत्त्वसम्पन्नोविज्ञेयःमकृतिंगतः

अर्थ—जव रोगी सव प्रकार के आहार विहार करने में समर्थ होजाय, मलमूत्र का विवन्ध जातारहै, विषयों में चित्त स्थिर होने लगे, सव इन्द्रियां दृढ होकर अपने२ विषय में प्रवृत्त हो, शरीर में वल वढजाय और मन सत्वयुक्त होजाय तव समझना चाहिये कि मनुष्य अपनी पूर्वप्रकृति पर आगया है ॥

अमक्कृतिगतकोवर्जितकर्म ।
एतांप्रकृतिमप्राप्तःसर्वद्रव्याणिवर्जयेत् ॥
महादोषकराण्यष्टाविमानितुविशेषतः ॥
उच्चैर्भाष्यंरथक्षोभमतिचंक्रामणासने ।
अजीर्णाहितभोज्येचदिवास्वप्नंसमैथुनम्

अर्थ—जबतक रोगी अपनी प्रकृति पर न आवै तबतक सब प्रकारके वर्जित द्रव्यों को सेवन करना ठीक नहीं है। विशेष कर के अत्यन्त उपद्रवकर्त्ता नीचे लिखेहुए आठ कर्मों का परित्याग कर देवै । यथा उच्च भाषण [चिल्लाकर बोलना) रथक्षोभ (सवारी पर चढकर ऊंचे नीचे मार्गों पर चलना), अतिचंक्रमण [बहुत भ्रमण करना] अत्यासन (एक स्थानपर बहुत बैठना) अजीर्णभोजन (पूर्वान्न के बिना पचे वा दुष्पाच्यभोजन), अहित भोजन [अपथ्य द्रव्य] दिवास्वप्न [दिनमेंसोना] और मैथुन [स्त्री सहवास] ।

वर्ज्योपचारसेवनकेअवगुण ॥

तज्जादेहोऽर्धसर्वाधोमध्यपीडामदोषजाः
श्लेष्मजाःक्षयजाश्चैवव्याधयःस्युर्यथाक्रमम् ॥

अर्थ—क्योंकि उच्चभाषण से देह के ऊपर के भाग में रोग उत्पन्न होजाते हैं रथक्षोभ से सर्वांगयातना, अतिचंक्रमण से नीचे के देहमें व्याधियां होती हैं, अत्यासन से मध्य देह में रोग होतेहैं, अजीर्ण भोजन से आमदोषज व्याधियां होती हैं, अहित भोजन से वातज व्याधियां, दिवास्वप्न से कफजव्याधियां और मैथुन से क्षयज व्याधियां उत्पन्न होती है ।

तेषांविस्तरतोलिंगमेकैकस्यसभेदतः ॥
यथावत्संप्रवक्ष्यामिसिद्धान्वस्तींश्चयापनान् ।

अर्थ....अब हम इन प्रत्येक व्याधियों के जुदे २ भेद, लक्षण और चिकित्सा विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे, तथा कुछ अनुभवकी हुई यापनवस्तियों का वर्णन भी करेंगे ।

उच्चभाषणकेउपद्रव।

तत्रोच्चैर्भाष्यातिभाष्याभ्यांशिरस्ताप-
कर्णशंखनिस्तोदस्रोतोरोधमुखताल्वक-
ण्ठशोषतैमिर्यपिपासाज्वरतमकहनुम-
न्याग्रहनिष्ठीवनोरःपार्श्वशूलस्वरभेदहि-
क्काश्वासादयःस्युः॥

अर्थ—उच्चभाषण वा अतिभाषण से सिर में ताप, कान और कनपटी में सुई छिदने कीसी पीडा, स्रोतःसमूहका अवरोध मुखशोष, तालुशोष, कण्ठशोष, अन्धकार दर्शन, पिपासा, ज्वर, तमकश्वास, हनुग्रह, मन्याग्रह, निष्ठीवन, वक्षःशूल, पार्श्वशूल, स्वरभंग, हिचकी और श्वासादिकरोग उत्पन्न होजाते हैं ॥

रथक्षोभके उपद्रव ॥

रथक्षोभात्सन्धिपर्वशैथिल्यहनुनासाकर्ण
शिरःशूलतोदवन्हिविक्षोभाटपान्त्रकूजना
ध्मापनहृदयेन्द्रियोपरोधस्फिकपार्श्ववंक्ष
णवृषणकटीपृष्ठवेदनासन्धिस्कन्धग्रीवादौ
र्बल्याङ्गाभितापपादशोफप्रस्वापहर्षणा
दयः॥

अर्थ—रथक्षोभ से सन्धि और जोडों में शिथिलता, ठोडी नाक कान और सिर में शूल और सुई छिदने की सी वेदना, मन्दा-

ग्नि, आटप, आंतों का कूजना, अफरा, हृदयोपरोध, इन्द्रियगणोपरोध, नितम्ब, पसली वंक्षण अंडकोष कमर और पीठ में वेदना, सन्धि कन्धे और ग्रीवा में दुर्बलता अंगाभिताप, पांवों पर सूजन, प्रस्वाप [शरीर का सुन्न होजाना] और रोमहर्षण ये उपद्रव होते हैं।

अतिचंक्रमण के उपद्रव।

अतिचंक्रमणात्पादजंघोरुजानुवंक्षणश्रोणीपृष्ठशूलसक्थिसादनिस्तोदपिण्डिकोद्वेष्टनांगमर्दांसाभितापशिराधमनीहर्षकासश्वासाः।

अर्थ—अतिचंक्रमण से पांव, जांघ, ऊरू जानु, वंक्षण, श्रोणी, पीठ में शूल होताहै, सक्थियों में अवसन्नता और निस्तोद, पिंडलियों में ऐंठन, अंगमर्द, कंधो में ताप, शिरा और धमनियों में हर्षण, खांसी और श्वास आदि उपद्रव भी होते हैं॥

अत्यासन के उपद्रव।

अत्यासनाद्रथक्षोभजाः स्फिक्पार्श्ववंक्षणवृषणकटीपृष्ठवेदनादयः।

अर्थ....अत्यासन से वे सब उपद्रव होते हैं जो रथक्षोभ से होतेहैं तथा नितम्ब पार्श्व, वंक्षण, अंडकोष, कमर और पीठ में भी वेदना होती है॥

अजीर्ण भोजन के उपद्रव।

अजीर्णाध्यशनाभ्यांमुखशोषाध्मानशूलनिस्तोदपिपासागात्रसादच्छर्द्यतीसारमूर्च्छाज्वरप्रवाहणामविषादयः॥

अर्थ....अजीर्ण भोजन और अध्यशन से मुखशोष, आध्मान, शूल, निस्तोद, मूर्च्छा ज्वर, प्रवाहण और आमविष ये उपद्रव होते हैं॥

अहित भोजन के उपद्रव॥

विषमाहिताशनाभ्यामनन्नाभिलाषदौर्बल्यवैवर्ण्यकण्डूपामागात्रावसादयथादोषप्रकोपजाश्चग्रहण्यर्शोविकारादयः॥

अर्थ—विषम भोजन और अहित भोजन से अन्न में अरुचि, देह में दुर्बलता, विवर्णता, खुजली, पामा, अंगावसाद और जैसा दोष प्रकुपित हो उसी के अनुसार ग्रहणी और अर्श रोग उत्पन्न होजाते हैं।

दिवास्वप्न के उपद्रव॥

दिवास्वप्नादरोचकाविपाकाग्निनाशस्तैमित्यपाण्डुत्वकंडूपामादाहच्छर्द्यंगमर्दहृत्स्तम्भजाड्यतन्द्रानिद्राप्रसंगग्रन्थिजन्मदौर्बल्यरक्तमूत्राक्षितातालुलेपाःपिपासाच॥

अर्थ—दिन में सोने से अरुचि, अविपाक, मन्दाग्नि, स्तिमिता, पांडुत्व, खुजली, पामा, दाह, वमन, अंगमर्द, हृत्स्तम्भ, जडता, तन्द्रा, निद्रानाश, गांठ, होना, दुर्बलता, मूत्र और नेत्रों का लाल पडजाना, तालु में कफकी सी लिहसावट और पिपासा, ये उपद्रव होते है।

मैथुन के उपद्रव॥

व्यवायादाशुबलसादोरुसादशिरोगुदमेढ्रवंक्षणोरुजानुजंघापादशूलहृदयस्पन्दननेत्रपीडाङ्गशैथिल्यशुक्रमार्गशोणितागमनकासश्वासशोणितष्ठीवितस्वरावसादकटीदौर्बल्यैकांगसर्वांगरोगमुष्कश्वयथुवातवर्चोमूत्रासंगशुक्रावसर्गजाड्यवेपथुबाधिर्यविषादाः॥ उत्पाट्यतइवगुद

स्ताड्यतइवमेढ्रमवसीदतीवमनोवेपतेहृद-येपीड्यन्तेसन्धयस्तमःप्रविश्यतइवचेत्येव मेभिरष्टभिचारैरेतेमादुर्भवन्त्युपद्रवाः॥

अर्थ—स्त्रीगमन से बलहानि, ऊरुसाद, वस्ति प्रदेश, सिर, गुदा, मेढ्र, वंक्षण, ऊरु, जानु, जंघा, और दोनों पांवों में वेदना, हृदय का धडकना, नेत्रों में दर्द, अंग में शिथिलता, वीर्य के मार्गसे रुधिरका निकालना, खांसी, श्वास, कफके साथ रुधिर आना, स्वरभंग, कमरमें दुर्बलता, एकांगरोग, सर्वांगरोग, अंडकोष सूजन, अधोवायु विष्ठा और मूत्रका में विवन्ध, विना इच्छा ही वीर्यपात होना, जडता, कम्पन, वहिरापन, और विषाद आदि उपद्रव होतेहैं। गुदामें फटने कीसी पीडा होतीहै, मेढ्रमें चोट लगने कीसी पीडा होतीहै, मन अवसन्न होजाता है, हृदय में कम्पन होता है सन्धियों में पीडा होती हैं, और आंखों के साम्हने अंधेरासा छाजाता है ॥

इन आठ प्रकार के वर्जित कर्मोंके सेवन करने से ऊपर लिखेहुए उपद्रव होते हैं।

उच्चभाषणजन्यरोगों में उपाय ॥

तेषांसिद्धिरुच्चैर्भाष्यातिभाष्यजानामभ्यंगस्वेदोपनाहधूमनस्योपरिभक्तस्नेहपानरसक्षीरादिभिर्वातहरःसर्वोविधिर्मौनञ्च

अर्थ—उच्चभाषण और अतिभाषण जन्यरोगों में अभ्यंग, स्वेद, उपनाह, धूम, नस्य, भोजन के पीछे घृतपान, दुग्धादिसेवन, सब प्रकारकी वातनाशकविधि और मौनधारण करने चाहियें ॥

रथक्षोभजन्यरोगोंमेंउपद्रव ॥

रथक्षोभातिचंक्रमणात्यासनजानांस्नेहस्वेदादिवातहरंकर्मसर्वंनिदानवर्जम्।

अर्थ—रथक्षोभ से उत्पन्न हुए रोगों में तथा अतिचंक्रमण और अत्यासन से हुए रोगों में स्नेहन और स्वेदन से आदिलेकर वातनाशक कर्म करने चाहियें तथा जिन जिन कारणों से वे रोग उत्पन्न हुएहैं उन्हें भी छोड देना चाहिये।

अजीर्णाध्यशनजरोगोंमेंउपाय॥

अजीर्णाध्यशनजानांनिरवशेषनश्छर्दनं रूक्षस्वेदधूमपानलंघनीयपाचनीयदीपनीयौषधावधारणञ्च ॥

अर्थ—दुष्पाच्य भोजन करने से तथा अध्यशन से जो रोग होते हैं उनमें निःशेष वमन, रूक्षस्वेदन, धूमपान तथा लंघनीय, पाचनीय और दीपनीय औषधोंका प्रयोग करना चाहिये।

विषमभोजनादिजन्यरोगोंमेंउपाय।

विषमाध्यहिताशनजानांयथास्वंदोषक्रियाः

अर्थ—विषम भोजन और अहितभोजन करने से जो उपद्रव होते हैं उन में जैसा दोष हो उसीको नाश करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये।

दिवास्वप्नजरोगोंमेंउपाय॥

दिवास्वप्नजानांधूमपानलंघनवमनविरेचनव्यायामरूक्षाशनारिष्टदीपनीयौषधः प्रयोगः। प्रकर्षणोन्मर्दनपरिषेचनादिश्चश्लेष्महरःसर्वोविधिः॥

अर्थ—जो रोग दिन में सोने से उत्पन्न हुए हैं उन में धूमपान, लंघन, वमन,

शिरोविरेचन, व्यायाम, रूक्षभोजन और अनिष्ट दीपनीय औषधों का प्रयोग हित है इस में लेखन, उन्मर्दन और परिषेचनादि क्रियाओं का करना भी आवश्यकीय है ॥

मैथुनजन्यरोगोंमेंउपाय ।

मैथुनजानांजीवनीयसिद्धयोःक्षीरसर्पिषोरुपयोगःतथावातहराःस्वेदाभ्यंगोपनाहा वृष्याश्चाहाराःस्नेहास्नेहविधयो यापनवस्तयोऽनुवासनश्च ॥ मूत्रवैकृतवस्तिशूलेषुचोत्तरवस्तिः। विदारीगन्धादिगणजीवनीयगणक्षीरससिद्धंतैलस्यापनाश्चवस्तयःसर्वकालंदेयास्तानुपदेक्ष्यामः ॥

अर्थ—मैथुन से उत्पन्न हुए रोगों में जीवनीय गणोक्त द्रव्यों के साथ सिद्ध किये हुए दूध और घीका प्रयोगकरै। तथा वातको दूर करने वाले स्वेद, अभ्यंग, उपनाह, पुष्टिकारक आहार स्नेहनकर्म, स्नेहविधि, यापनवस्ति और अनुवासन वस्तिका प्रयोगभी हितहै, मैथुन के कारण जो मूत्र में विकारहो या वस्ति में शूल होतो उत्तर वस्ति का प्रयोग करना उचित है। विदारीगन्धादि गण, जीवनीय गण और दूध के साथ सिद्ध किया हुआ तेल और यापनवस्ति सदाही हित है ॥

अब यहां से यापन वस्तियोंका वर्णन करेंगे

यापनवस्तिकी विधि ॥

मुस्तोशीरवलारग्वधरास्नामाञ्जिष्ठाकटुरोहिणीत्रायमाणापुनर्नवाबिभीतकगुडूचीस्थिरादिपञ्चमूलानिपालकानिखण्डशःछिन्नान्यष्टौचमदनफलानिमक्षाल्यजलाढकेपरिक्वाथ्यपादशेषेरसःक्षीरद्विमस्थसंयुक्तःपुनःशृतःक्षीरावशेषेरसःक्षीरद्विमस्थसंयुक्तःपुनःपुनःशृतःक्षीरशेषःपादजांगलरसस्तुल्यमधुघृतःशतकुसुममधुककुटजफलरसाञ्जनप्रियंगुकल्कीकृतःससैन्धवःसुखोष्णवस्तिःशुक्रमांसवलजननःक्षतक्षीणकासगुल्मशूलविषमज्वरवर्ध्मकुण्डलोदावर्तकुक्षिशूलमूत्रकृच्छ्रासृग्दरविसर्पप्रवाहिकाशिरोरुजाजानूरुजंघावस्तिग्रहाश्मर्युन्मादार्शःप्रमेहाध्मानरक्तपित्तश्लेष्मव्याधिहरःसद्योवलजननोरसायनश्च ।

अर्थ....मोथा, उसीर, खरैटी, अमलतास, रास्ना, मजीठ, कुटकी, त्रायमाणा, सांठ, बहेडा, गिलोय, और शालिपर्ण्यादि पंचमूल इन सब द्रव्यों को एक २ पल लेवै तथा आठ मैनफल इन सब के टुकडे २ कर के पानी से धोकर एक आढक जल में पकावै। जब चौथाई शेष रहजाय तब उसे छानकर फिर उस में दो प्रस्थ दूध डालकर फिर औटावै, जब दूध शेष रहजाय तब उतारले और इस से चौथाई जांगल मांसरस और बराबर का दूध और घी डालै और इसी में सौंफ, मुलहटी, इन्द्रजौ, रसोत और प्रियंगु इन के कल्क में सैंधानमक मिलाकर डालदे फिर गुनगुना करके वस्ति देवै। यह वस्ति शुक्र, मांस और बलको बढातीहै। तथा क्षतक्षीण, खांसी, गुल्म, शूल, विषमज्वर, वर्ध्म, कुण्डल, उदावर्त्त, कुक्षिशूल, मूत्रकृच्छ्र, रक्तप्रदर, विसर्प, प्रवाहिका, शिरोरोग, जानुग्रह, ऊरुग्रह, जंघाग्र-

ह, वस्तिग्रह, अश्मरी, उन्माद, अर्शरोग, प्रमेह, आध्मान, रक्तपित्त, तथा कफजन्य व्याधियां इस वस्ति से दूर होजाती हैं। यह वस्ति सद्यः बलाकारक और रसायन है।

दूसरीयापनवस्ति।

एरण्डमूलपलाशात्पट्पलंशालपर्णीपृश्निपर्णीबृहतीकण्टकारिकागोक्षुरकरास्नाश्वगन्धागुडूचीवर्षाभूःआरग्वधदेवदार्वितिपलिकानिखण्डशःक्लृप्तानिफलानिचाष्टौप्रक्षाल्यजलाढकेक्षीरपादेपचेत्। पादशेषंकषायंपूतंशतकुसुमाकुष्ठमुस्तापिप्पलीहपुषाविल्ववचावत्सकफलरसाञ्जनप्रियंगुयवानीसंक्षेपकल्कितंमधुघृततैलसैन्धवयुक्तंसुखोष्णंनिरुहमेकंद्वौत्रीन्वाद्‌द्यात्। सर्वेषामशस्तोविशेषतोऽललितसुकुमारक्षतक्षीणस्थविरार्शसामपत्यकामानाञ्च।

अर्थ—अरंडकी जड, और ढाक छः २ पल। शालिपर्णी, पृश्णिपर्णी, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, रास्ना, असगंध, गिलोय, सांठ अमलतास, और देवदारु इन में से प्रत्येक एक २ पल लेकर टुकडे टुकडे करले फिर इन्हें जल से धोकर एक आढक जल में चौथाई आढक जल मिलाकर पकावै, जब चौथाई शेष रहजाय तब इनको छान लेवै फिर इस काथ में नीचे लिखे हुए द्रव्यों का कल्क तथा शहत, घी, तेल और सेंधानमक मिलाकर एक, दो, या तीन निरूहण वस्ति देवै। कल्कके द्रव्य, यथाः — सौंफ, कूठ, मोथा, पीपल, हाऊबेर, बिल्व, वच, इन्द्रजौ, मैनफल, रसौत, प्रियंगु और अजवायन हैं। यह वस्ति सुखोष्ण दीजाती है। यह वस्ति प्रायः सबके लिये हित है परन्तु विशेष करके ललित, सुकुमार, क्षतक्षीण, स्थविर और अर्शरोगियोंको हितहै तथा जो संतान की इच्छा करते हैं उनके लिये भी हितहै ॥

तीसरीविधि।

सहचरबलामूर्वामूलशारिवासिद्धेनपयसा तथाबृहतीकण्टकारीशतावरीछिन्नरुहाशृतेनपयसामधुकमदनपिप्पलीकल्कक्तेन पूर्ववद्वस्तिः॥

अर्थ—सहचरी, खरैटी, मरोडफली और अनन्तमूल इनके साथ दूध सिद्ध करके अथवा बडी कटेरी, छोटी कटेरी, सितावर और गिलोय इनके साथ दूध औटाकर उसमें मुलहटी, मेनफल और पीपल का कल्क मिलाकर पहिलेकी तरह वस्ति देवे।

चौथीविधि।

तथाबलातिबलाविदारीशालपर्णीपृश्णिपर्णीबृहतीकण्टकारिकादर्भमूलयवकाश्मर्यविल्वफलसिद्धेनपयसामधुकमदनकल्कीकृतेनमधुघृतसौवर्चलप्रयुक्तेनकासज्वरगुल्मप्लीहार्दितस्त्रीमद्यक्लिष्टानांसद्योबलजननोरसायनश्च॥

अर्थ—इसी रीतिसे खरैटी, अतिबला, विदारीकन्द, शालिपर्णी, पृश्णिपर्णी, दोनों कटेरी, दाभकी जड, जौ, खंभारी, बेलफल और मैनफल इनके साथ में सिद्ध कियेहुए दूध में महुआ और मुलहटी का कल्क तथा शहत, घी और संचर नमक डालकर वस्तिदेवे॥ यह वस्ति खांसी, ज्वर, गुल्म

और प्लीहासे पीडित, अर्दितरोगी, स्त्री कर्षित और मद्यकर्षित रोगियों को तत्काल बलकी देनेवाली और रसायन है ।

पांचवींविधि ॥

तथाबलातिबलारास्नारग्वधमदनबिल्व गुडूचीपुनर्नवैरण्डाश्वगन्धासहचरपला-शदेवदारुद्विपञ्चमूलानिपलिकानियवको लकुलत्थद्विप्रसृतंशुष्कमूलकानाञ्चजलद्रो णासिद्धंनिरूहप्रमाणंशेषंकषायंपूतंमधुकम दनशतपुष्पाकुष्ठपिप्पलीवचावत्सकफल रसाञ्जनप्रियंगुयवानीकल्कीकृतं गुडघृततै लक्षौद्रक्षीरमांसरसाम्लकाञ्जिकसैन्धवयु क्तंसुखोष्णंवस्तिंदद्यात् । शुक्रमूत्रवर्चःसं गेऽनिलजेगुल्महृद्रोगाध्मानवर्ध्मपार्श्वपृष्ठ कटीग्रहसंज्ञानाशबलक्षयेषुच ॥

अर्थ—इसीतरह बला, अतिबला, रास्ना अमलतास, मेनफल, वेलफल, गिलोय, सांठ अरंडकीजड, असगंध, सहचर, ढाक, देवदारु और दशमूल इन को एक एक पल लेवे तथा जौ, बेर और कुलथी तथा सूखी मूली दोदो प्रसृत लेकर एक द्रोण जलमें पाककर । जितना निरूहके लिये क्वाथ आवश्यक होता है उतना शेष रहने पर छान ले । फिर इस क्वाथ में मुलहटी, मेनफल, सौंफ, कूठ, पीपल, वच, इन्द्रजौ, रसौत, प्रियंगु औरअजवायन का कल्क मिलावे तथा गुड, घी तेल, शहत, दूध मांसरस, अम्लकांजी और सेंधानमक मिलाकर सुखोष्ण बस्ति देवे । यह वस्ति शुक्र, मूत्र और विष्टा के विवन्ध में, तथा वातज गुल्मरोग, हृद्रोग, आध्मान, वर्ध्म, पार्श्वग्रह, पृष्ठग्रह, कटीग्रह, संज्ञानाश और बलक्षय में बहुत उत्तम है ॥

छटी विधि

ह्रपुपार्द्धकुडवद्विगुणार्द्धक्षुण्णयवःक्षीरो-दकसिद्धःक्षीरशेषोमधुघृततैललवणयुक्तः सर्वांगविसृतवातरक्तसक्तविण्मूत्रस्त्रीखेदि ताहितोवातहरोबुद्धिमेधाग्निबलजननश्च।

अर्थ—हाऊवेर आधाकुडव, आधे कुटेहुए जौ एक कुडव, इनको समानभाग मिले हुए दूध और जल में औटावे, जब दूध शेष रहजाय तब इस में शहत, घी, तेल, और नमक मिलाकर वस्ति देवे तो सर्वांगगत वातरक्त, विष्टा का विबन्ध, मूत्रका विबन्ध तथा अत्यन्त स्त्री प्रसंग से उत्पन्न हुई क्षीणता को दूर करता है, यह वस्ति वात नाशक, बुद्धिवर्द्धक, मेधावर्द्धक, अग्निवर्द्धक और बलवर्द्धक होती है ।

सातवीं विधि

ह्रस्वमूलपञ्चकषायक्षीरोदकसिद्धःपिप्पलीमधुकमदनकल्कःसगुडघृततैललवणः क्षीणविषमज्वरकर्षितस्यवस्तिः ॥

अर्थ—लघु पंचमूलको समानभाग दूध और जलमें सिद्ध करके दूधकेशेष रहने पर इसमें पीपल, मुलहटी, मेनफलका कल्क तथा गुड, घी, तेल और नमक मिलाकर यह वस्ति विषम ज्वरके कारण कृश हुए रोगी को देवै॥

आठवीं विधि ।

बलातिबलापामार्गात्मगुप्ताष्टपलार्द्धक्षुण्ण यवाञ्जलिकषायःपूर्ववद्वस्तिःस्थविरदुर्बलक्षीणस्त्रीनिषेविणांपथ्यउत्तमः ।

अर्थ—बला, अतिबला, ओंगा, कौंचके

बीज ये सब आठपल तथाआधे कुटे हुए जौ एक अंजलि इन को समानभाग दूध और जल में क्वथित करके इस क्वाथ में पूर्वोक्त पीपल आदिका कल्क डालकर तथा गुड, घी, तेल और नमक मिलाकर वृद्ध दुर्बल, क्षीण और स्त्रीसेवियों को वस्ति देवै । यह वस्ति बहुत उत्तम है ।

नवीं विधि ।

बलामधुकविदारीदर्भमूलमृद्वीकायवैःकषायमाजेनपयसापक्त्वामधुकल्कितंसमधुघृतसैन्धवज्वरार्तेभ्योवस्तिंदद्यात् ॥

अर्थ–खरैटी, मुलहठी विदारीकन्द, दाभकी जड, किसमिस और जौ इनको बकरीके दूध में पकाकर मुलहठी का कल्क तथा घी, शहत और सेंधानमक डालकर ज्वरपीडित रोगियों को वस्ति देवै ।

दसवीं विधि ।

शालपर्णीपृश्निपर्णीगोक्षुरकमूलकाश्मर्यपरूपकखर्जूरफलमधुकपुष्पैरजाक्षीरजलप्रस्थाभ्यांसिद्धःकषायःपिप्पलीमधुकोत्पलकल्कितःसघृतसैन्धवोक्षीणेन्द्रियाविषमज्वरकर्षितस्यवस्तिः ॥

अर्थ....शालिपर्णी, पृश्णिपर्णी, गोखरू की जड, खंभारी, फाउसा, खजूर, मेनफल, और महुआ इन को एक प्रस्थ बकरी के दूध और जल में क्वथितकरके, इस क्वाथमें पीपल, मुलहटी और नीलकमल का कल्क तथा घी और सेंधानमक मिलाकर दुर्बलेन्द्रिय और विषम ज्वर से कर्षित रोगी को वस्ति देवै॥

ग्यारहवींविधि ।

स्थिरादिपञ्चमूलीपञ्चपलेनशालिषष्टिकयवगोधूममाषकषायपञ्चप्रसृतेनछागपयःशृतं । पादशेषंकुक्कुटाण्डरसमधुघृतशर्करासैन्धवसौवर्चलयुक्तोवस्तिर्वृष्यतमोबलजननश्च ॥

अर्थ....शालिपर्ण्यादि पंचमूल के पांचों द्रव्य पांचपल, शालिचांवल, साठी चांवल, जौ, गेंहू और उर्द ये सब पांच प्रसृत इन को बकरी के दूध में सिद्ध करै चौथाई शेष रहने पर उस को छानकर उसमें मुर्गे के अंडे का रस, शहत, घी, चीनी, सेंधानमक, संचरनमक, मिलाकर वस्ति देवै । यहवस्ति अत्यन्तवृष्य और बलकारक होती है ।

बारहवींविधि ।

कल्पश्चैषांशिखिगोनर्दहंसाण्डरसेस्यात् ।

अर्थ....उक्त क्वाथ में मुर्गे के अण्डे के रसकी जगह मोर, सारस वा हंस के अंडों का रस डालकर वस्ति दीजाय तौ भी यही गुण करती है ॥

तेरहवींविधि ।

सतित्तिरिःसमयूरःराजहंसपंचमूलीपयःसिद्धं । शतकुसुममधुकरास्नाकुटजफलपिप्पलीकल्कः ॥घृततैलगुडसैन्धवयुक्तोवस्तिर्बलवर्णशुक्रजननोरसायनश्च ॥

अर्थ—शालिपर्ण्यादि पंचमूलको समान भाग दूध और जल में क्वथित करके उन का क्वाथ लेलेवै इस क्वाथ में तीतर, मोर वा राजहंस का मांसरस तथा सौंफ, मुलहटी, रास्ना, इन्द्रजौ और पीपल इनका कल्क तथा घी, तेल, गुड और सेंधानमक मिलाकर वस्ति देनेसे बल, वर्ण और वीर्य की वृद्धि होती है ॥ यह वस्ति रसायनहै ।

चौदहवीं विधि ।

द्विपञ्चमूलीकुक्कुटरसासिद्धंपयःपादशेषं पिप्पलीमधुकरास्नामदनमधुककल्कशर्करामधुघृतयुक्तंस्त्रीष्वातिकामानांबलजननोवस्तिः ॥

अर्थ—दसमूल और मुर्गे के मांसरसको एकत्र करके दूध में औटावै जब चौथाई शेष रहजाय तब पीपल, मुलहटी, रास्ना, मेनफल और मुलहटी का कल्क तथा चीनी शहत और घी मिलाकर उनको वस्ति देवै जो स्त्रियों में अत्यन्त आसक्ति रखते हैं । यह वस्ति बलकारक भी है ।

पन्द्रहवींविधि ॥

मयूरमपित्तपक्षपादास्यान्त्रंस्थिरादिभिः पलिकैःसहजलेपयसिपक्त्वाक्षीरशेषंमदनविदारीशतकुसुमामधुककल्कीकृतंमधुघृतसैन्धवयुक्तंवस्तिंदद्यात् । स्त्रीष्वतिप्रसक्तक्षीणेन्द्रियेभ्योहितोबलवर्णकरः ॥

अर्थ—एक मोर के पित्ते, पंख, पांव, मुख और आंतों को दूर करके केवल मांस और हड्डियों को लेलेवै ॥ फिर इस मांसको पांच पल जल और दूध में सिद्ध करके दूध शेष रहने पर छानले, फिर इसमें मेनफल, विदारीकन्द, सौंफ और मुलहटी का कल्क तथा शहत, घी और सेंधानमक मिलाकर वस्ति देवै, यह वस्ति स्त्रियों में अत्यन्त प्रसक्त और क्षीणेन्द्रिय वालों के लिये हितकारी और बल तथा वर्ण को बढानेवाली है ॥

सोलहवींविधि ।

तद्वच्चैषविष्किरप्रतुदप्रसहाम्बुचरेषुस्या दक्षीरोहितादिषुमत्स्येषु ।

अर्थ—मोर के मांस के बदले विष्किर, प्रतुद, प्रसह और जलचारी जीवों का मांस प्रयोग करै, परन्तु रोहू मछली के प्रयोग के साथ दूध का प्रयोग न करना चाहिये

सत्रहवीं विधि ।

गोधानकुलमार्जारमूषकशल्लकमांसानांदशपलान्भागान्सपञ्चमूलान्पयसिपक्त्वा तत्पयःपिप्पलीफलकल्कसैन्धवसौवर्चलक्षौद्रमधुघृततैलयुक्तंवस्तिर्वल्योरसायनः क्षीणक्षतस्यसन्धानकरोमथितोरस्करथगजहयभग्नवातबलासकफमूत्रयुदावर्तवातसक्तमूत्रवर्चःशुक्राणांहिततमश्चः

अर्थ—गोह, नौला, बिल्ली, चूहा और सेह इन सबका मांस पांचपल, पंचमूल पांचपल, इन को दूध और जल समान भागमें औटावै, दूध शेष रहनेपर छानकर इनमें पीपल और मेनफल का कल्क सेंधानमक, संचरनमक, चीनी, शहत, घी मिलाकर वस्ति देवै, यह वस्ति बलकारक और रसायन होती है । क्षत और क्षीणरोगी को संधान करने वाली है। जिसका हृदय फट गया हो, जिसका शरीर रथ, हाथी वा घोडे से टूट गया हो, जिस को वातवलास और उदावर्त्त रोग हो, तथा वातके कारण जिसका मूत्र, विष्ठा और वीर्य रुकगया हो, ऐसे रोगियों को यह वस्ति बहुत हित है ।

अठारहवीं विधि ।

कूर्मादीनांअन्यतमपिशितसिद्धंपयोगोष्ट्रपनागहयनक्रहंसकुक्कुटाण्डरसमधुघृतशर्करासैन्धवेक्षुरकात्मगुप्तफलकल्कसंसृष्टो

वस्तिःवृद्धानामपिवलजननः ॥

अर्थ—कछुए आदि दस प्रकार के जलजन्तुओं में से किसी एकके मांसको दूध में सिद्ध करके उस दूधमें गौ बैल हाथी, घोडा का मांसरस, हंस और मोर के अंडो का रस, शहत, घी, चीनी, सेंधानमक, तालमखाना, कैंचके बीज और मेनफल इनका कल्क मिलाकर वस्ति देनें से वृद्ध मनुष्यभी बलवान् होजाते हैं।

उन्नीसवीं विधि ।

गोवृषवस्तवराहवृषणकर्कटचटकासिद्धंक्षीरमुच्चटकेक्षुरकात्मगुप्तामधुघृतयुतंकिञ्चिल्लवणितंवस्तिः ॥

अर्थ—बैल, बिजार, बकरा और शूकर इनके अंडकोष, तथा किरकेंटा और चिडा इन का मांसरस इन को डालकर औटाये हुए दूध में उच्चटक, तालमखाना और कैंचके बीज का कल्क तथा शहत घी और थोडा सा नमक मिलाकर वस्ति देवै।

बीसवीं विधि।

कर्कटकरसश्चटकाण्डरसयुक्तःसमधुघृतशर्करोवस्तिःइत्येतेवस्तयःपरमवृष्याः ॥

अर्थ—कर्कटरस, चिरोंटे के अंडे का रस शहत घी और चीनी मिलाकर वस्ति देवै, ये वस्ति अत्यन्त वृष्य होती है।

इकीसवीं विधि।

उच्चटकेक्षुरकात्मगुप्ताःशृतक्षीरमतिभोजनानुपानाःस्त्रीशतगामिनंकुर्युः ॥

अर्थ—उच्चटा, तालमखाना और केंच के बीज इन के साथ सिद्ध कियाहुआ दूध भोजन करनेके साथ वा भोजनसे पीछे पान करै तो सौ स्त्रियोंसे भोगकी शक्तिहोवै।

॥ाईसवीं विधि ।

दशमूलमयूरहंसकुक्कुटक्वाथात्पञ्चप्रसृतंतैलघृतवसामज्जचतुष्प्रसृतयुक्तंशतपुष्पामुस्तहपुषाकल्कीकृतंसलवणोवस्तिःपादगुल्फोरुजानुजंघात्रिकवंक्षणवस्तिवृषणानिलहरः।

अर्थ—दशमूल, तथा मोर, हंस और मुर्गा इनके मांसका क्वाथ करके पांच प्रसृत लेवै और इस क्वाथमें तेल, घी, चर्वी और और मज्जा चार प्रस्थ तथा सौंफ, मोथा, हाऊबेर इनका कल्क और थोडा सा नमक मिलाकर वस्ति देवै। यह वस्ति पांव, टकना, ऊरू, जानु, जंघा, त्रिक, वंक्षण वस्ति और अंडकोषके वायुसंबंधी रोगोंको दूर करती है

तेईसवीं विधि ।

मृगविष्करानूपविलेशयानामेतेनैवकल्पेनवस्तयोदेयाः ।

अर्थ—मृग, विष्किर, आनूप और विलेशयों के मांस की वस्ति भी इसीतरह से दीजाती है ॥

चौबीसवीं विधि ।

मधुघृताद्विप्रसृतंतुल्योष्णोदकंशतपुष्पार्द्धपलंसैन्धवार्द्धाक्षयुक्तोवस्तिर्दीपनोबृंहणोबलवर्णकरोनिरुपद्रवोवृष्यतमोरसायनः क्रिमिकुष्ठोदावर्त्तगुल्मार्शोब्रध्नप्लीहमेहहरः

अर्थ—शहत और घी दो प्रसृत, गरम जल दो प्रसृत, सौंफ आधापल, सेंधानमक आधा तोला इनको मिलाकर वस्ति देवै। यह वस्ति दीपन, बृंहणकर्त्ता, बलवर्णवर्द्धक, निरुपद्रव, अत्यन्त वृष्य और रसायन है।

एषवृष्योवर्ण्योबृंहणआयुष्योवलीपलित
नुत् । क्षतक्षीणनष्टशुक्राविषमज्वरार्त्ता
नांव्यापन्नयोनीनाञ्चपथ्यतमः ॥

अर्थ—खरैटी, गोखरू, रास्ना, असगंध सितावर और सहचर इनमें से प्रत्येक सौ २ पल लेकर सौ द्रोण जल में पकावे जब पकते २ एक द्रोण रहजाय तब उसे वस्त्र में छानलेवे। फिर विदारीकंद और आंवले का रस एक २ प्रस्थ, वकरा, भैंसा, सूअर, वैल, मुर्गा, मोर, हंस, कारण्डव और सारस इनका मांसरस एक २ प्रस्थ, घृत और तेल एक २ प्रस्थ और दूध आठ प्रस्थ इन सबको इकट्ठा करै फिर चन्दन, मुलहटी, मधूलिका, वंशलोचन, कमलनाल, मृणाल, नीलोफर, परवल, मेनफल, कैंचके बीज, अन्नपाकी, तालका गूदा, खजूर, किसमिस, भूआंवला, कटेरी, जीवक, ऋषभक, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, सितावर, मेदा, पीपल, नेत्रवाला, दालचीनी और तेजपात इनका कल्क। इन सबको मिलाकर पूर्ववत् वेदध्वनि के साथ सिद्ध करै और फिर इसका प्रयोग करै। इस वस्ति के सेवनसे मनुष्य में सौ स्त्रियों से गमन करनेकीशक्ति होजाती है इसमें आहार विहारकी किसी प्रकारकी रोक टोक नहीं है । यह वस्ति पुष्टिकारक, वर्णकारक, बृंहण, आयुवर्द्धकऔर बली पलित नाशकहै। यह वस्ति क्षतक्षीण रोगी, नष्टशुक्ररोगी विषमज्वरपीडिततथा योनिरोग से पीड़ित स्त्रियों के लिये हितहै।

सहचरादिस्नेह ।

सहचरपलशतमुदकद्रोणचतुष्टयेपक्त्वा
द्रोणशेषेरसेसुपूतेविदारीक्षुरसप्रस्था-
भ्यामष्टगुणक्षीरंघृततैलप्रस्थंवलामधुकम
धूकचन्दनमधूलिकाशारिवामेदामहामे
दाकाकोलीक्षीरकाकोलीपयस्यागुरुशा
र्ङ्गेष्टाव्याघ्रनखशटीसहचरसहस्रवीर्याव
रांगलोध्राणामक्षसमैर्द्विगुणशर्करैःकल्कैः
साधयित्वाब्रह्मघोषादिविधिना । तत्
सिद्धंवस्तिदद्यादेषसर्वरोगहरोरसायनो
ललितानांश्रेष्ठोऽन्तःपुरचारिणीनांक्षत
क्षयवातपित्तवेदनाश्वासकासहरस्त्रिभा
गमाक्षिकोवलीपलितनुद्वर्णरूपवलमांस
शुक्रवर्द्धनः ॥

अर्थ सौपल सहचर को चारद्रोणजल में पकावे, चौथाई शेष रहने पर उतार कर छानले। फिर विदारीकन्दका रस एक प्रस्थ, ईख का रस एक प्रस्थ, दूध आठप्रस्थ घृत एक प्रस्थ तेल एक प्रस्थ ग्रहण करे। तथा खरैटी, मुलहटी, महुआ, चन्दन, मधूलिका, शारिवा, मेदा, महामेदा काकोली, क्षीरकोली भूमिकूष्मांड, अगर, शार्ङ्गेष्टा, वघनखी, कचूर, सहचरी, दूब, दालचीनी और लोध प्रत्येक एक एक तोला तथा इन सब से दूनी चीनी मिलाकर वेदध्वनि के साथ पूर्ववत् पाक करे । सिद्ध होने पर वस्ति द्वारा इसका प्रयोग करै। यह वस्ति सम्पूर्ण रोगोंके नाश करनेवाली, रसायन, सुकुमार तथा अन्तःपुर में रहनेवालियों के लिये हित है इससे क्षतरोग, क्षयीरोग, वातज वेदना, पित्तज वेदना, श्वास और खांसी दूर हो जाती है। इस स्नेह में तिहाई शहद मि-

लाकर सेवन करनेसे वली पलित दूर होजाता है। इससे वर्ण, रूप, बल, मांस और वीर्य बढता है।

इत्येतेरसायनाःस्नेहवस्तयः। सतिविभवेशतपाकावासहस्रपाकावाकार्यावीर्यबलाधानार्थमिति॥

अर्थ—इस तरह सब रसायन प्रयोग और स्नेह वस्तियोंका वर्णन किया गया है। विभव होने पर वीर्य और बल बढाने के निमित्त इन स्नेहों का शतपाक और सहस्रपाक करके वस्तिद्वारा प्रयोग करना चाहिये।

भवन्तिचात्र।

इत्येतेवस्तयःस्नेहाश्चोक्ताप्राणिषुसद्धिताः। सुस्थानामातुराणाञ्चवृद्धानाञ्चावरोधिनः॥ अतिव्यवायशीलानांशुक्रमांसबलप्रदाः। सर्वरोगप्रशमनाःसर्वेष्वृतुयोगिकाः॥ नारीणामप्रजातानांनराणाञ्चाप्यपत्यताम्। उभयार्थकराद्दृष्टा स्नेहवस्तिनिरूहयोः॥

अर्थ—प्राणियों के हित के लिये इन स्नेहवस्तियों का वर्णन किया गया गया है,ये वस्तियां रोगरहित, रोगग्रस्त और वृद्ध सब ही को अनुकूल हैं। जो अत्यन्त स्त्रीसेवी हैं उनके शुक्र, मांस और बलको बढाती हैं,सम्पूर्ण रोगों को नाशकरनेवाली हैं ये सब ऋतुओं में दी जा सक्ती हैं। इनका सेवन बन्ध्या स्त्री और निःसन्तान पुरुषोंके सन्तान उत्पन्न करता है ये वस्तियां अनुपान और निरूहण दोनों का कामदेतीहैं

वस्तिसेवनमेंवर्जितकर्म।

व्यायाममैथुनंमद्यंमधूनिशिशिराम्बुच। सम्भोजनंरथक्षोभंवस्तिष्वेतेषुगर्हितम्।

अर्थ—इन वस्तियों में व्यायाम, मैथुन, मद्यपान शहत सेवन, शीतल जल, अत्यन्त भोजन और रथक्षोभ वर्जित हैं।

वस्तियोंकी संख्या।

शिखिगोनर्दहंसाण्डैर्दक्षवद्वस्तयस्त्रयः। विंशतिर्विष्किरैस्त्रिंशत्प्रतुदैःप्रसहैस्तथा त्रिंशदेकास्तथासप्तविंशतिश्चाम्बुचारिभिः नवमत्स्यादिभिश्चैवशिखिकल्पेनवस्तयः। दशकर्कटकाद्यैश्चकूर्मकल्पेनवस्तयः मृगैः सप्तदशैकोनविंशतिर्विष्किरैर्नव। आनूपैर्दक्षशिखिवद्भूशयैश्चचतुर्दश॥एकोनत्रिंशदित्येतेसहस्नेहैःसमासतः। प्रोक्ताविस्तरशोभिन्नाद्विशतेषोडशोत्तरे॥ एते माक्षिकसंयुक्ताःकुर्वन्त्यतितर्पणनरम्।

अर्थ—मोर, सारस और हंस के अंडे की तीन वस्ति, मुर्गेकी एक, विष्किर पक्षी वीस प्रकार के होते हैं इस से उनकीवीस वस्ति, प्रतुद तीस प्रकार के होते हैं इससे उनकी तीस वस्ति, प्रसहोंकी इकत्तीस वस्ति जलचारियों की सत्ताईस,मछलियों की नौ, कर्कटकादि की दस, हिरनों की सत्रह, विष्किरो की उन्नीस, आनूप की नौ, भूशयों की चौदह तथा उन्तीस प्रकार के स्नेह। इस तरह सब प्रकार की वस्तियां मिलकर दो सौ सोलह हैं पर इनकी संख्या कुछ अधिक होती है।

इन वस्तियों में यदि शहत और मिलादिया जाय तो अत्यन्त पुष्टिकारक हो जाती हैं।

नातियोगंनचायोगंस्तम्भितास्तेचकुर्वते

अर्थ—इन वस्तियोंके प्रयोग से अयोग